सद्गुरवे नमः

कबीर-पथान्तर्गत परमार्थ-क्षेत्र-स्थित सद्स्वरूपनिष्ठ

आदर्श वैराग्य तत्पर पारखी संत

सद्गुरु

श्री विशाल साहिब

की

सर्वहितैषी देन

मुक्तिद्वार

(सटीक)

भूल मिटै गुरु मिलै पारखी, पारख देहिं लखाई।
कहहिं कबीर भूल की औषध, पारख सबकी भाई।।

'बीजक'

आप ग्रन्थकर्त्ता गुरुवर से स्पष्ट श्रवण-मनन पश्चात

टीकाकार

प्रेमदास

सद्गुरवे नम

मुक्तिद्वार

(सटीक)

निर्विवाद सत्य सरल शिक्षक परम सावधान शांतिप्रिय

सद्गुरु श्री विशाल साहिब

द्वारा

सर्व श्रेणियो का सुधार, मगलमूल गुरु कबीर के
परम पवित्र पारख सिद्धात का स्पष्ट विवेचन,
यथार्थ भक्ति, वैराग्य, सदाचरण युक्त
स्वरूपज्ञान, निर्वासना, एकरस
शाति, जीवन्मुक्ति स्थिति
तक वर्णन किया
गया है।

प्रकाशक

साधु विशाल शरण दास

श्री कबीर मंदिर दलसराय

पोस्ट—तेलियानी

बाराबंकी (उत्तर प्रदेश)

द्वितीय संस्करण

विक्रमाब्द संवत २०४०, सन १९८३

सत्कबीराब्द ५८३

आवरण—साधु परीक्षादास

मुद्रक

बीजक प्रेस

प्रीतम नगर, इलाहाबाद

ध्यान

सत्य शील तप तेज पुञ्ज रबि बोध शोध अबिरोध परम।
पूज्यपाद सर्वोच्च जीव मग महिमा मूल अबोध हरम॥
बिश्व वन्द्य वैराग्य प्रमुख सिद्धांत श्रेय गुरु परख बरम।
ध्यान ध्येय स्मृत्ति चारु चित गुरु कबीर पद नित्य भजम॥

प्रार्थना प्रवेश

हे अबिकार बिनय बहुबारा। हो प्रबेश मन मुक्ति के द्वारा॥
जीवन मेरा ब्यर्थ न जाये। अनाचार अविचार न भाये॥
सद्गुण मग मे चलै सम्हारा। हे अबिकार बिनय ··· ॥ १॥

जगत अनादि समज्ञ भ्रम ढावैं। जड चेतन बल करि बिलगावैं।
भूल भटक कर दे हम क्षारा। हे अबिकार बिनय ··· ॥ २॥

है स्वतत्र द्रष्टा अविनाशी। जेहि जाने सब सकट नाशी।
प्रकृति पार अजरामर प्यारा। हे अविकार बिनय ··· ॥ ३॥

बन्धन सकल मनोमय धारा। जन्मत मरत अनन्तन बारा।
तज के भोग मुक्त निरधारा। हे अबिकार बिनय ·· ॥ ४॥

साहस का नित शस्त्र हो आगे। दृढ सयम पावन पथ पागे।
हो अडिग्ग सद निश्चय सारा। हे अबिकार विनय .. ॥ ५॥

शाति पियूष छकाछक पीवैं। शुभ विराग हित बलि बलि जीवैं।
किंचित हो न हमे हकारा। हे अबिकार बिनय ··· ॥ ६॥

गुरुपद मे शिर अपना धरकर। जो कवीरपद पारग्व है बर।
प्रेम पूर्ण सतशव्द अधारा। हे अविकारा विनय वहुबारा॥ ७॥

प्रेम पुष्पार्पण

इस वर्तमान युग मे, जब कि विद्या की धारा बह रही है। नित्य-प्रति साहित्य का गौरव अपनी चरम सीमा पर पहुँच रहा है। सुधीजन अपनी परिमार्जित एव परिष्कृत वाणियो के माध्यम से मानव मात्र का ध्यान यथार्थ वस्तु-स्थिति पर जमाना चाहते हैं। इसी देश-काल के प्रवाह मे सर्व विवेकी सन्त जन भी निज-निज उक्ति-युक्ति द्वारा सत्य सिद्धात के प्रचार-प्रचार मे तत्पर हे। तैसे ही श्री अभिलाष सहेब जी ने सद्गुरु-सत्सग एव अनेक सद्शास्त्रो सद्ग्रन्थो का अध्यन-मनन करते हुये बीजक टीका लिखने के पश्चात जो कबीरदर्शन सद्ग्रन्थकी रचना की है, वह सत्य बोध एव स्थिति समर्थक तथागोष कतत्वपूर्ण है। इसे पढ-समझकर सभी बुद्धिमान धन्यवाद दिये बिना नही रहते।

ऐसा वक्तव्य और कर्तव्य जो अहिसा से प्रेरित होकर मानवता की रक्षा करे और स्वरूप बोध प्रदानकर सर्व दुखो से विमुक्त करे, वही जीवन मे सत्कर्म की साधना सद्बोध की तरफ ले जाने वाली है। जीवन की तपस्या कला एव चातुर्यता यही है कि वह पूर्णता प्रदान करे और स्वयं सत्य-पथ पर चलते हुए पूर्णता प्राप्त कर दूसरो के लिये एक सच्चा आदर्श स्थापित करे। श्री अभिलाष साहेब जी सन्त दशा मे ऐसे ही एक आदर्श महापुरुष हैं। नि.स्वार्थरूप से परहितरत रहना आप का स्वभाव है आप शील, समता, विनम्रता, निर्विवादिता, शान्ति, विवेक आदि सद्गुणो से सम्पन्न सन्तो के तुल्य ही दर्शित होते है।

आपने प्रस्तुत सद्ग्रन्थ का भी देख-भाल सहित आद्योपान्त परिशोधन करके पुन. भूमिका लिखकर जिज्ञासु-जगत की जो भलाई की है वह सदा अविस्मरणीय, आचरणीय एव अभिनन्दनीय है। हमारी हार्दिक आकाक्षा है कि आप और आप समान सन्त-सज्जन महोदय बहुत काल तक सुरक्षित इस अवनितल पर विचरण करते रहे। जिससे जन-समाज को सदा-सर्वदा गुप्त-प्रगट रूप से कल्याण का सम्बल प्राप्त होता रहे।

पारख प्रकाशक कबीर सस्थान इलाहाबादके सर्व प्रेमी सत ब्रह्मचारीगण और इधर पुरुषार्थी परमार्थ दास जी, उत्साहदास जी, विशालशरण दासजी निष्ठा दास जी आदि जो इस मुक्तिद्वार सटीक-प्रकाशन मे गुप्त-प्रगट रूप से सहायक हुए हैं—सबके प्रति हमारी ओर से हार्दिक साधुवाद। इसी प्रकार जीवन पर्यन्त कल्याण अगो की तत्परता ही तो जीवन्मुक्ति का हेतु है।

निश्चल एव निर्छल भाव से प्रेरित

प्रेमदास

ग्रंथ परिचय

सद्गुरु श्री विशाल साहेब कबीरपंथ पारख सिद्धात के अतर्गत ही नही, अपितु भारतवर्ष के एक महत्तम संत है। आपने अपने उत्कट वैराग्य, तपस्या, एकात वास तथा लोककल्याण कार्य के द्वारा एक बहुत बडे जनमानस को प्रभावित्त किया है। आपकी चार रचनाये है—भवयान, मुक्तिद्वार, सत्य-निष्ठा तथा नौ नियम। यह ग्रन्थ मुक्तिद्वार है, जो व्यवहार तथा परमार्थ दोनो पथ के लिये प्रकाश स्तम्भ है। भारतीय चूडात मनीषियो ने मोक्षप्राप्ति के लिये व्यवहार की अवहेलना नही बतायी है, अपितु उन्होने बताया है कि व्यवहार की पवित्रता एवं समुन्नति मोक्ष के लिये सहायक है।

इस ग्रन्थ की उच्च आध्यात्मिकता के सूक्ष्म विवेचन के लिये जितनी प्रशंसा की जाय, कम है। यह ग्रन्थ पारख सिद्धात का उपनिषद् है। हम आगे प्रत्येक प्रकरण मे ग्रन्थकर्ता के कथन के सार को प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयत्न करेंगे।

१ सद्गुण शतक

सद्गुण शतक मुक्तिद्वार का पहला प्रकरण है। मनुष्य दुर्गुणो मे फंस कर दुखी है। सद्गुणो के धारण से ही उनका उद्धार सभव है। गुरुभक्ति, वैराग्य, दया, क्षमा, सतोष, सत्य, विवेक, धैर्य, वीरता, शील, विचार, निर्मानता, निष्कामता, निष्क्रोधता, निर्लोभता, निर्मोहता, निर्भयता, आसक्ति-हीनता, प्रतिष्ठा एव सम्मान से उदासीनता—इन उन्नीस (१९) सद्गुणो के लक्षणो पर विशालदेव ने विस्तृत चर्चा की है।

कल्याणेच्छुक व्यक्ति को यह आवश्यक है कि वह किसी बोधवान निष्काम महात्मा पुरुष की शरण लेकर उनका तन, मन, वचन से सेवापरायण, आज्ञाकारी होकर उनको सर्वतोभाव्या अर्पित हो। उसे विषयो से पूर्ण वैराग्य हो। वह दयापालन करे और अपने अपराधी का भी अहित न सोचे। उसे हर दिशा मे सतोष हो और आशा तृष्णा से सर्वथा मुक्त होकर संतोष पूर्वक जीवन यापन करे। उसे सत्य स्व-स्वरूप का बोध हो, साथ-साथ वह अपने व्यवहार और वाणी मे सत्य का पालन करता हो वह अपने स्वरूप को देहादि जड पदार्थो से विवेक द्वारा पृथक करता रहे और सारा काम विवेक पूर्वक करे।

उसे हर समय धैर्यवान होना चाहिये। थोडी विपत्ति से घबरा जाने वाला किसी दिशा मे सफल नही हो सकता। अतएव घोर विपत्ति आने पर

भी वह सतपथ से विचलित न हो। उसमे दुर्गुणो पर विजय करने के लिये वीरता हो। वह किंचित भी दोषो को अपने मे न रहने दे। उसे शीलवान होना चाहिये। वह मन वाणी कर्म से कठोरता बिलकुल छोड दे। उसे विचारवान होना चाहिये और जीवन के गहन-गम्भीर तथा साधारण पहलुओ पर भी उसे विचार करके ही कार्य करना चाहिये।

कल्याण साधक को अहकार से एकदम दूर रहना चाहिये। अहंकारी व्यक्ति साधक नहीं बन सकता। अहकार करने योग्य कोई वस्तु है भी नही, क्योकि यहाँ का सब कुछ नाशवान है। उसे मन, वाणी, कर्म से मैथुन कर्म को छोड़कर निष्काम होना चाहिये। उसे शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन अत्यन्त आवश्यक है। उसे क्रोध पर भी विजय पाना चाहिये। क्रोधी व्यक्ति तो अहंकार से पूर्ण होता है। क्रोध को सर्वथा छोड़ दिये बिना किसी का कल्याण सम्भव नही है। लोभरहित हुए बिना कोई साधक नही बन सकता। अधिक धन का सग्रह तो दु.ख को ही बटोरना है। धन का सदुपयोग करते हुए निर्लोभ होना चाहिये।

मोह महा पिशाच है। मोह पर विजय हुए बिना बधन कट नही सकते। संसार मे कोई अपना है भी नही। मेला, पथ, बाजार मे मिली हुई भीड के समान सारे प्राणियो का सम्बन्ध है। इस ससार मे कोई किसी का नहीं है। अतएव मोह निरर्थक है, प्रत्युत दु.खप्रद है। साधक के जीवन मे निर्भयता की महान आवश्यकता है और निर्भयता तभी आयेगी जब वह नाशवान देहादि पदार्थो की आसक्ति छोड देगा। अतएव समस्त पीड़ाओ का कारण आसक्ति है। उसे सर्वथा त्यागना अत्यन्त आवश्यक है।

साधक के लिये अत्यन्त आवश्यक है कि वह मान प्रतिष्ठा मिलने पर अहकार मे फले नही और हृदय से उसका अभाव रखते हुए निर्मान रहे। मान-प्रतिष्ठा का भूखा व्यक्ति साधक नही बन सकता।

उपर्युक्त सद्गुणो को जीवन मे धारण करने मे लगे हुए व्यक्ति के लिये समय ही नहीं है कि वह दूसरे के दोषो को देखे व प्रपचासक्ति मे डूबे। जीवन थोडा और क्षणिक है, अतएव इस काम को शीघ्र कर लेना है।

उपर्युक्त सद्गुण ही जीव के उद्धारमार्ग मे सच्चे साथी है। ये न धोखा देते है न इन्हे कोई चुरा सकता है और न ये कही खो सकते है, बस केवल इन्हे याद रखना चाहिये, इन्हे अपनाये रखना चाहिये। ये बिना दाम के मजदूर है। यदि साधक इन्हे पूर्णतया जीवनपर्यन्त अपनाये रहे तो उसका उद्धार होना निश्चित है। उक्त सद्गुणो को अपनाकर तुम सबके प्राणप्रिय

बने रहोगे। यदि तुम अपनी भूल छोडकर सद्गुण-ग्राही बने रहो, तो तुम्हारा कोई वैरी नही है। सब जीव तो सजाति मित्र है। वस्तुत. न बाहर कोई मित्र है न शत्रु। तुम्हारे दुर्गुण ही तुम्हारे शत्रु बन जाते है तथा सद्गुण ही मित्र। अतएव सदैव सद्गुणग्राही वनो।

२ जगत अनादि शतक

नाना मत के लोगो ने नाना प्रकार से जगत की उत्पत्ति मानी है जो सब काल्पनिक है। वर्तमान मे भौतिकवादी वैज्ञानिको की दृष्टि से एक काल्पनिक सूक्ष्मतम ईथर नामक द्रव्य से नीहारिकाये तथा उनसे सूर्यादि ग्रह तथा उनसे पृथ्वी आदि की उत्पत्ति मानी है। पृथ्वी आग की गोला थी, पीछे ठंढी हुई। अर्मावा नाम के एक कोशीय जन्तु हुए। उन्ही से विकास होकर मछली, मेढक, शशक, बन्दर, वनमानुष तथा मनुष्य करोडो वर्ष मे हुए— यह उनकी धारणा है। जिसका नाम विकासवाद है।

इस प्रकरण मे उपर्युक्त धारणा का खण्डन है। ईथर अनादि द्रव्य है, तब उसमे रही हुई क्रिया भी अनादि होनी चाहिये और तब सृष्टि भी अनादि होनी चाहिये। फिर ईथर मे अमुक काल मे क्रिया मानना सर्वथा अयुक्त है। यदि ईथर मे स्वभावसिद्ध अनादि क्रिया नही है, तब उसमे अमुक काल मे क्रिया उत्पन्न करने वाला कौन द्रव्य है? यदि कोई द्रव्य है तो वह अनादि स्वभावसिद्ध क्रियावान होगा। यदि उसका भी अन्य प्रेरक है, तो कौन है? फिर प्रेरक का प्रेरक मानते जाने से कही विराम न होगा। अततः तो कोई एक अनादि क्रियावान पदार्थ मानना होगा जिससे जगत का निर्माण सम्भव होता है और जब अनादि क्रियावान कारण मिल गया तब सृष्टि अनादि सिद्ध हो गयी। फिर सृष्टि के विषय मे अनेक लालबुझक्कडी अटकले निरर्थक है।

विकासवाद का सारा सिद्धान्त चट्टानो की खोदाइयो तथा उनमे पाये गये चिन्हो के आधार पर गढा गया है जो केवल पौराणिक गपोडो से स्वस्थ लगता है, परन्तु थोडा विचार करने पर वह भी लालबुझक्कडी अटकल बाजियो से अधिक नही है। गर्भस्त नरशिशु नौ महीने के भीतर शशक, शूकर, बन्दर आदि अनेक जन्तुओ के आकारो मे बदल कर नराकार मे आता है, तो इस आधार पर हम यह कैसे मान ले कि मनुष्य इन जन्तुओ से विकसित होकर आया है? चट्टानो के स्तरो मे किसी विलक्षण प्राणी के चिन्ह मिले तो हम उसको अपना नगडदादा कैसे मान ले? जब सभी प्राणियो की खानियो की सृष्टि एक दूसरे से भिन्न निरन्तर दीख रही है, तब सबको एक मे मिलाकर विकासवाद का हौआ खड़ा करना कितना निरर्थक है?

'जहाँ देहधारी जीव होते है वहा सुख की चेष्टा, तीन अवस्था, बुद्धि, त्याग, ग्रहण, पश्चाताप, छल, प्रियता, भय देना-लेना, बदला लेना, अहभाव, दीनभाव, लोभदंभ, चेष्टा, सावधानी, चलना, रुकना इत्यादि देहोपाधि युक्त अनेक क्रियाये रहती है। जीव का शुद्ध स्वरूप केवल ज्ञान है। उसे अपने आप की सत्ता का भास निरन्तर होता है। जीव पाँचो विषयो से पृथक एवं जड प्रकृति से सर्वथा परे है। उसमे संसार का कोई उदाहरण घट नही सकता।

'संत अपने शुद्ध चेतन स्वरूप के शोधन मे अपने शरीर, वाणी और मन को अर्पित करके उसके बोध की उपलब्धि कर लेते है और पूर्णकाम होकर कृतार्थ हो जाते है। भला, जो भोगो मे रात-दिन उलझा है वह स्वस्वरूप के विषय मे क्या जान सकता है ? परन्तु उसकी शक्ति व्यर्थ है जिसने अपने चेतन स्वरूप की शक्ति को नही समझा। जड प्रकृति की केवल छानबीन करके मनुष्य बाह्य जगत मे अवश्य आगे बढ गया, परन्तु अपने आपको भूलकर बधनो मे जकड़ गया है। अपने आप को प्रवीण मानकर भी मनुष्य इन्द्रिय-मन के अधीन बना दीन है।

'जिसे जड चेतन के लक्षणो का विचार नही है, जो मोह मे प्रमत्त होकर विश्व अभिमान मे चूर है, जिसकी दृष्टि सदैव स्वार्थ से घिरी है, जो मन-इन्द्रियो का दास है, जो क्षण मात्र भी प्रपंच छोड़कर सारासार पर विचार नही करता, जो निर्मान, निष्कपट और शात होकर न कभी साधु संगत मे बैठकर सत्सग करता है और न सद्ग्रन्थो का मनन करता है, वह भला स्वरूपज्ञान के विषय मे क्या जान सकता है ? पान, सुपारी, गन्ना, धान, गेहूँ, अरहर आदि के बीज बिना अपनी अनुकूल भूमिका पाये पैदा नही होते, इसी प्रकार शुद्ध, सरल और तर्कयुक्त अंत.करण हुए बिना कोई स्वस्वरूप का ज्ञान कैसे पा सकता है ?

'तुम इगलिश, संस्कृत आदि अनेक भापाओ के विद्वान भले हो जाओ, परन्तु स्वरूप ज्ञान बिना तुम केवल भोग पदार्थो के ही ज्ञाता हो। सो वह तो अनपढ़ लोग भी कम-वेश जानते है, पशु भी भोग भोगते है। शुभगुग धारण बिना सारी विद्या निरर्थक ही नही विघातक भी है। यदि मनुष्य सावधान न रहा तो विद्वता एवं बाह्य ज्ञान उसके लिये महान कुसग एव पतन कारक है। सारे दुर्गुण एवं अहंकार की अधियारी इस विद्या प्रमाद मे घर कर जाते है। वस्तुओ को स्वय जानना और दूसरो को जना देना इतना ही विद्या (भाषा तथा लिपि) का प्रयोजन है। इससे अधिक इसमे क्या रखा है ? अत. सावधान !' (३-१९)

एक पहिये की भद्दी साईकिलो का उत्तरोत्तर विकास होकर जब आज की अच्छी साइकिले बन गयी, तब उन भद्दी साइकिलो का बनना बंद हो गया। यदि अमीबा, मेढक, बदर आदि भद्दे प्राणियो का उत्तरोत्तर विकास होकर उन्नत प्राणी मनुष्य का विकास हो गया तब वे पहले के भद्दे प्राणी क्यो रह गये ?

वस्तुत: यह अनन्त ब्रह्माण्ड एवं जगत अनादि है। सृष्टियां प्रवाहरूप अनादि है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु कहिये या आक्सीजन, हाइड्रोजन आदि शताधिक सूक्ष्म तत्त्वो के समूह ठोस, तरल, वायव्य एवं अतिवायव्य कहिये—ये सभी तत्त्व जड है। इनमे उनके अपने गुण, धर्म, स्वभाव, क्रिया, आकारादि स्वभाव सिद्ध अनादि है। इन्ही से सारी जडात्मक सृष्टि है। और इनसे सर्वथा पृथक अविनाशी असख्य चेतन जीव है, जो अनादिकाल से स्वरूपभूल-वश वासना-वश पुनर्जन्म मे घूम रहे है। इस प्रकार जड-चेतन मिलकर जड़-चेतनात्मक सृष्टि है और यह प्रवाहरूप अनादि है। जगत और सृष्टि इस प्रकार अनादि जड-चेतन के आधार मे अनादि है।

इस 'जगत अनादि शतक' मे सद्गुरु विशाल साहेब ने विकासवाद का खण्डन करके जगत अनादि सिद्ध किया है।

३. स्वतंत्र जीव शतक

भौतिकवादी कहते है कि चेतन जीव जड़ पदार्थो का बना उसका ही परिणाम है और ईश्वरवादी एव ब्रह्मवादी कहते है कि जीव ईश्वर या ब्रह्म का अश प्रतिविम्ब आभास आदि है, अत. वह परिछिन्न, किंचिज्ञ, अल्पज्ञ आदि है।

सद्गुरु कबीरदेव को उपर्युक्त बाते बहुत खटकी और उन्होने कहा 'झगरा एक वढो राजाराम ......। ब्रह्म बडा कि जहाँ से आया ?...... राम बडा कि रामहि जाना.........।' आदि। अर्थात ब्रह्म एव ईश्वर बडे है कि उनकी कल्पना करने वाले जीव बडे है ? वस्तुत जीव ही श्रेष्ठ है।

उन्ही विचारो को लेकर सद्गुरु विशालदेव कहते है 'परतंत्र कहै सब जीव को, जो स्वतत्र पद नित्य.........।'

जड तत्वो मे चेतना का कोई लक्षण नही है। अतएव चेतन जड तत्वो से सर्वथा पृथक है। मस्तिष्क, हृदय, शरीर, इन्द्रिय—सब जड है, किंतु मै-मैं कहने वाला, निरन्तर ज्ञान ज्योति से आलोकित निश्चित चेतन है।

ये असख्य चेतन जीव जड तत्वो से सर्वथा पृथक अजर, अमर अखण्ड है। कारण–कार्य, अश-अंशी, व्याप्य-व्यापक भाव से रहित शुद्ध, बुद्ध, स्वतंत्र है—इन्ही सिद्धान्तो का प्रतिपादन इस प्रकरण मे विविध प्रकार से हुआ है।

'सारी वस्तुये केवल आँखो से नही देखी जाती। शब्द, गध, स्पर्श और रस—इन चारो का ज्ञान आँखो से संभव नही। आँखो से तो केवल रूप देखते है। अपने आप चेतन स्वरूप को देखा कैसे जा सकता है? वह तो सबको देखने वाला है। जो सबको देखता है वह देखने मे कैसे आ सकता है। अपने आपका तो केवल अनुभव किया जा सकता है। जीव सत्य, अनादि तथा अविनाशी है। वह जड-वासना-वश जन्मातरो मे भटकता है। जीव का शुद्ध स्वरूप माया से सर्वथा रहित है। माया तो मन है और जब मन को बटोर लिया जाता है, तब बंधन समाप्त हो जाता है। जीव तो अगोचर है। वह बाह्य चक्षु से नही दिखता, किंतु ज्ञान से समझ मे आता है कि मै ही सबका द्रष्टा हूँ। जब माना हुआ विषय सुख दु:ख पूर्ण लगे, अहंकार तथा मन की उलझनो का त्याग हो और हृदय शात हो, तब स्वस्वरूप के विषय मे मनुष्य कुछ जान सकता है। सारे बंधन भूल से है, भूल मे बुद्धि उल्टी होती ही है, फिर बुद्धि को सीधी किये बिना यथार्थ कैसे जाना जा सकता है? जब मन पवित्र हो, पाचो विषयो से कुछ विरति हो, अच्छे आचरणो एवं सद्गुरु संत महात्मा पुरुषो मे निष्ठा हो, तब मनुष्य अपने आप चेतन स्वरूप को शोध सकता है।

विचार करो, जानी हुई सारी बाते एक ही समय स्मरण मे नही आती, फिर कोई विरोध एवं वाद-विवाद करके सत्य न्याय को कैसे समझ सकता है? मन क्रोध रहित शात, निर्भय, निश्चित, निष्फिक्र एव विषय विरत हो, तब कही व्यक्ति सत्य स्वरूप को समझ सकता है।' (६४-७२)

अन्य इन्द्रियो के विषय अन्य इन्द्रियो से नही जाने जा सकते, जैसे नेत्र से शब्द एवं कान से रूप आदि, परन्तु सभी इन्द्रियो से सारे विषयो का ज्ञान जीव को होता है। अतएव जीव सभी इन्द्रियो पर स्वतत्र है। वही मान-मान कर क्रिया करता है, और सबको जानता है, परन्तु जड पदार्थ उसे नही जान सकते। जिस पर सारा दारमदार है व्यक्ति उस अपने स्वरूप को ही भूल गया है, इसलिये उसको अनन्त कष्ट है।

'मस्तिष्क और हृदय पच विषय के कार्य है। भोग पदार्थ सुख-दु:ख मानकर भोगो की प्राप्ति के लिये प्रयत्न नही करते और न भोग, भोग भोगते ही है। दाल-भात को पीढा-लोटा नही खाते। चेतन ही जड का उपभोग करता है। विषय को विषय नही जानते, किन्तु सारे विषयो को चेतन जानता है। जीव ही सबको जानता-मानता है। यदि जीव न जाने-माने, तो जड़ पदार्थो की सारी महत्ता खोई हुई है। रूप के अतिरिक्त अन्य चार विषयो—शब्द, स्पर्श, रस तथा गध का किसने चित्र ग्रहण किया है? फिर जो पाँचो

विषयो से पृथक है उस चेतन का चित्र लेना कैसे संभव है। जो तत्वो के सम्मिश्रण से बनता है वह सब जड़ है, परन्तु जो सबका ज्ञाता, ध्याता ज्ञान-स्वरूप चेतन है उसमे जडता का कोई लक्षण नही है। वह जड तत्वो एव उनके कार्यो को जानता है और उनसे पृथक रहता है। साक्षी, ज्ञाता, द्रष्टा कभी साक्ष्य, ज्ञेय एव दृश्य नही हो सकता। जीव स्वत चेतन है, जड से पृथक है। वह चाहे कहीं भी रहे, किसी मे मिलकर वह एकरूप नही हो सकता। कपड़े को पहना हुआ व्यक्ति कपडा नही है, इसी प्रकार शरीर को धारण किया हुआ जीव शरीर नही है। यंत्र और यत्र का चालक, घट और उसमे भरा जल, पथ और उसमे चलता हुआ पथिक, ग्राम, घर तथा उसमे रहने वाले व्यक्ति एव पुस्तक और उसके लेखक पृथक-पृथक है, इसी प्रकार शरीर तथा शरीर का चालक चेतन जीव पृथक-पृथक है—इतना भी ज्ञान जिसको नही हो, उसको बुद्धिमान कहना वैसे लगता है जैसे कूए मे भाग घोलकर सब लोग उसके जल पी लिये हो और सबकी बुद्धि मारी गयी हो।' (८५-९६)

'पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु—ये चार तत्व (महाभूत) है। इनमे धर्म, गुग, क्रिया, शक्ति, मेल और आकार—ये छह भेद है। पृथ्वी का धर्म (स्वभाव) ठोस, जल का शीतल, अग्नि का गर्म एवं वायु का कोमल है। पृथ्वी का गुण (विषय) गध, जल का रस, अग्नि का रूप, वायु के स्पर्श और शब्द हैं। चारो तत्वो के परमाणुओ मे क्रिया है। पृथ्वी में धारणा एवं गुरुत्वा शक्ति है, जल मे रसायना शक्ति है, अग्नि मे दाहक एव वायु मे तोडने-जोडने आदि की शक्ति है। चारो तत्वो मे स्थूल-सूक्ष्म आकार है एव चारो मे चारो मिले है। इन्ही छह-छह भेदो के कारग तत्वो मे कारग-कार्य भाव बना रहता है। वैज्ञानिको द्वारा माने गये शताधिक तत्वो के ये ही चार समूह है जिन्हे वे ठोस, तरल, वायव्य तथा अतिवायव्य कहते है।

'उक्त चार या शताधिक तत्व भेदो के स्वरूप जड हे। चेतन जीव उक्त तत्वो से सर्वथा पृथक है। जैसे जल मे उष्णता रहती है, परन्तु दिखायी पड़ता है वहाँ जल। परन्तु उष्ण पानी नही, आग है। इसी प्रकार देह मे चेतना है, परन्तु दिखती है यह देह, परन्तु जीव देह नही है। जीव ज्ञाता है, ज्ञेय-जड नही। जीव का स्वरूप तो जड-माया से पृथक है। वह भूल-भ्रम कर मनोमय मे भटकता है। जीव का स्वरूप पारख (ज्ञान) है जब वह अपने आप को सबसे पृथक परख लेता है, तब उसका भवजाल नष्ट हो जाता है। सामने सकल्प आने पर ही जीव जगत को देखता है। सकल्प न हो तो जीव से ससार का सम्बन्ध नही। ज्ञानी जब ज्ञान की कथा कहता है तब जैसे वह ज्ञानी रहता

है, उसी प्रकार वह मौन होने पर भी ज्ञानी ही रहता है। इसी प्रकार जीव देह मे रहे या विदेह, उसका स्वरूप ज्ञान है। देह मे स्मरणवृत्ति-पूर्वक रहता है तथा देहोपाधि रहित विदेहस्थिति मे स्मरण रहित रहता है, परन्तु उसका स्वरूप वही रहता है—ज्ञान स्वरूप। जो जीव न कारण है और न कार्य, प्रत्युत स्वयं प्रत्यक्ष एवं सत्य है, वह बधन या मोक्ष कही भी रहे, स्वयं सत्ता-युक्त रहता है। जैसे पुरुष रागवश विवाह करके रहता है और वही वैराग्य होने पर स्त्री को छोड़ कर अकेला हो जाता है, तो व्यक्ति वही रहता है। एक समय बंध है दूसरे समय मुक्त। इसी प्रकार जीव सदेह हो या विदेह अपनी सत्ता मे रहता है। शरीर नाशवान है और जीव अविनाशी है। वह शरीर बधन से मुक्त होकर अपने आप रहता है।

'यह जीव सब अनुमान की कल्पना करने वाला और जड तत्वो का प्रत्यक्ष करने वाला, उन अनुमित परोक्ष मान्यताओ एव प्रत्यक्ष जड पदार्थो दोनो से पृथक एकरस सत्य है। अमर जीव विदेह अवस्था मे जड़ से पृथक एकरस निराधार (असग) रहता है। उसमे देहोपाधि न होने से संशय का आभाव एवं मन का आभाव है। उस मुक्तिस्थिति की शक्ति अक्षय हे।' (१०७-१३१)

४. बंध-मोक्ष शतक

विशाल देव ने इस प्रकरण मे अविनाशी जीवो के वासना-वश जन्मान्तरो मे भटकने के सम्बन्ध मे अनेक प्रबल युक्तिया दी है। और वासनाओ से छूट कर मुक्त होने मे भी स्पष्ट निर्णय दिया है।

आवागमन, कर्मफलभोग, जीव का स्वरूप, वासना की उत्पत्ति, वृद्धि, संहार, वासना की शक्ति, गमनागमन कराने मे हेतु, कर्म होने तथा भोगने का मुख्य हेतु, अदृश्य प्रारब्ध-भोग की प्रबलता, पूर्व जन्म-जन्मातरो मे जीवो के रहते हुए भी उनके न स्मरण रहने का भेद, वैराग्य तथा मोक्ष—इन महत्वपूर्ण प्रसंगो पर इस प्रकरण मे काफी छानबीन की गई है।

'हर समय जीव के सामने इन्द्रिय-भोगो की आसक्ति एवं वासनाये रहती है। जीव अंत.करण के सयुक्त मन मे आसक्त हुआ उसको प्रेरणा देता रहता है। कर्मो की वासनाये जीव के अत.करण मे इकट्ठी होती रहती है। जीव के साथ सूक्ष्म-शरीर रहता है जो स्थूल-शरीर के छूट जाने पर भी नही छूटता। उसी सूक्ष्म-शरीर मे वासनाये रहती है जो जन्म-मरण के बीज है। वासनावश जीव योनिज तथा अयोनिज खानियो मे जाता है। जीव स्वय प्रत्यक्ष है, किंतु वासना के वश भटकता है। जैसे बीज से वृक्ष तथा वृक्ष से

बीज बनता है, वैसे वासना से देह तथा देह मे कर्म करके वासनाये बनती है।' (३-८)

स्थूल शरीर से पृथक वासनाओ का एक अलग जगत है। स्थूल शरीर की सारी क्रियाओ के बन्द हो जाने के बाद भी उसी मे स्वप्न की क्रियाये संपादित होती है। जीव प्रकृति से पृथक है। वह प्राकृतिक वस्तुओ की वासना रख कर भटकता है, जब तक जगत की वासना सर्वथा समाप्त नही होती, तब तक जीव जन्म-मरण के प्रवाह से मुक्त नही होता।

अपने किये हुए कर्मो का फल सब जीवो को भोगना पड़ता है। पूर्व जन्मो के जो कर्म है वे अदृश्य प्रारब्ध के रूप मे जीव के साथ रहते है और वे अचानक भोग देने के लिये उसके सामने प्रस्तुत हो जाते है। न चाहते हुए अनुकूल प्राणी पदार्थो का वियोग हो जाता है और प्रतिकूलता का संयोग हो जाता है और कभी अनुकूलता आ जाती है।

सब जीवो की देहे, रूप, स्वास्थ्य, बुद्धि, योग्यता की भिन्नता उनके भिन्न पूर्व कर्मो के स्पष्ट प्रमाण देते है।

पूर्वजन्मो की याद इसलिये नही होती, क्योकि पूर्वजन्म की देह ही आज नही है। जीव स्मरणो से ही दृश्य को देखता है और स्मरण परिवर्तनशील है, इसलिये पूर्व की बाते भूल जाती है। वर्तमान घटना या एक स्मरण के आधार मे अन्य स्मरण उठते है। यह सब कोई आधार न होने से पूर्वजन्मो का स्मरण नही होता।

पूर्व जन्म की बाते छोड़ दीजिये, इसी जन्म के शिशुपन का स्मरण नही होता। बचपन की सारी बाते याद नही होती। कल इतने ही समय हम क्या सोचते थे इसी का स्मरण नही होता।

वस्तुत. यह सारा जड़दृश्य जीव से सर्वथा पृथक है, अतएव उसका भूल जाना स्वाभाविक है।

जीव प्रकृति से भिन्न चेतन है। उसको अपनी प्रतीति हर क्षण होती है। उसका मुख्य कर्तव्य है जड प्रकृति की वासना छोड़कर मुक्त हो जाना। उसको देहाभिमान, विलास, विषय-वासना का त्यागना आवश्यक है।

कल्याणार्थी का कर्तव्य है कि वह इच्छाओ को जीते, कुसग का त्याग करे, शरीर निर्वाह आसक्ति रहित होकर ले, किसी के मिलने-बिछुडने मे हर्ष-शोक न करे, पहले स्वस्वरूप को जाने, फिर बन्धनो को परख कर छोडे, कुवाक्य-कटु-अश्लील-असत्य वचनो का त्याग करे, हर काम विचार कर करे, शीत, उष्ण, भूख, प्यास का सहन करे, शरीर निर्वाह मे आवश्यक स्पर्श के अतिरिक्त उन स्पर्शो का त्याग करे जो केवल सुख मानकर किया जाता है,

भोजन सात्विक एव हल्का करे, वस्त्र, पात्र आदि सादे, सरल, मध्यवर्ती रखे, विक्षेप रहित जमीन एव मकान मे रहे ।

सुनने, देखने, सूघने, खाने, छूने की बिल्कुल इच्छा न करे, केवल शरीर निर्वाह के लिये अनासक्ति पूर्वक सुने, देखे, सूघे, खाये एवं छूये। सुखासक्ति एव विषयासक्ति की किंचित भी गन्ध जीवन मे न रहने दे।

जीव अनादिकाल से बधनो मे बधा है। वह केवल हठ करके बधनो से नही छूट सकता। विवेक एव साधना द्वारा जड़ासक्ति छोड़ने पर ही वह बधनो से मुक्त होगा।

५. निवृत्ति साहस शतक

इस प्रकरण मे विशाल देव ने बधनो से छूटने के लिये साधको मे साहस का बल भरा है उन्होने बताया है कि चेतन जड से सर्वथा पृथक अविनाशी है। वह स्वरूप की भूल से विषयो की इच्छा करके भवबन्धनो मे बंधा है। स्वरूपज्ञान प्राप्त करके जब वह विषयो की इच्छा से निवृत्त हो जायेगा, तब उसका भव-बंधन कट जायेगा।

यदि मनुष्य वर्तमान को सुधार ले तो भूत और भविष्य सुधर जाते है। जो साधक वर्तमान मे वासनाओ को क्षीण कर रहा है उसके हृदय की भूतपूर्व की वासनाये क्षीण हो जाती है और सुधरा होने से सारा भविष्य वर्तमान होता जाता है, इस प्रकार भविष्य भी सुधरता जाता है। वर्तमान सुधर जाने से भूत की वासनाये मिट जाती है और भविष्य के लिये वासनाओ का आकर्षण नही होता। इसलिये वर्तमान का सुधार ही भूत और भविष्य का सुधार है।

हम जिसे नेत्रो से नही देखते, कानो से नही सुनते, मुख से नही बोलते और उसके विषय मे सुख की निश्चयता भी छोड देते है—इन चारो के छोड़ देने पर उसके विषय मे हमारी वासनाये क्षीण हो जाती है। जिसमे हमारा प्रेम, निश्चयता और कर्तव्य होगा, वही कार्य सिद्ध होगा। अतएव यह सब आत्मकल्याण की ओर हो जाने से भवबधन कट जाते है। मनुष्य माने हुए किंचित विषय-सुख की प्राप्ति के लिये कितना घोर कष्ट सह लेता है, फिर भी वह विषय-सुख छूट जाता है और मुक्ति तो उसी प्रकार प्रत्यक्ष एव सरल सहज है जिस प्रकार हाथ का गेंद। केवल बंधनो को समझ लेने की देरी है। मुक्ति एकरस और अचल है। विषय-सुख पाने के लिये मनुष्य क्या-क्या नही करता। जिसे मोक्ष का निश्चय है वह उसके पथ के कंटको को नही डरेगा। वह शरीर निर्वाह-कार्य से भी अधिक श्रेय मोक्ष कार्य को देगा और विवेकी महात्मा की शरण लेकर साधना मे डंट जायेगा।

कुछ लोग कहते है कि वर्तमान मे बोध-वैराग्य की स्थिति हो जाने पर भी पूर्व तथा वर्तमान जन्म के पूर्व भूलदशा मे किये गये शुभाशुभ रूप सचित कर्म जीव को नाना योनियो मे भटकायेगे। विशालदेव कहते है यह बात सही नही है। क्योकि वर्तमान के अज्ञानयुक्त क्रियमान कर्म के आधार पर ही भूत-पूर्व के संचित कर्म फल देने मे समर्थ है। जव व्यक्ति वर्तमान मे वोध-वैराग्य की अखण्ड धारणा मे ठहर जाता है, तव सचित कर्म शक्तिहीन होकर नष्ट हो जाते है।

दूषित क्रियाये और विपयासक्ति जितनी मिटती जाती है, उतना ही पूर्व के संचित कर्म भी क्षीण होते जाते है। जब विषयासक्ति सर्वथा मिट जाती है, तव जीव वंधनो से सर्वथा मुक्त हो जाता है। जो दीर्घकाल से वैराग्य साधना मे एकरस लगा है उसकी उत्तरोत्तर देहासक्ति क्षीण होकर वह मुक्त होता जाता है। जिसका मोक्ष ध्येय अडिग है, उसके वैराग्य का पुरुषार्थ एकरस चलता है।

जीव के बंधन तीन कर्म है—क्रियमाण, सचित और प्रारब्ध। वर्तमान मे अज्ञानयुक्त जो पाप-पुण्य कर्म होते है वे क्रियमाण कर्म है, पूर्वजन्मो या इस जन्म के पूर्व भूल दशा के पाप-पुण्य कर्म सचित कर्म है और सुख-दु.ख भोग के लिये प्रस्तुत शरीर—प्रारब्ध कर्म है। क्रियमाण ही सचित और प्रारब्ध होता है।

कुछ लोग कहते है कि जीव पूर्व सचित (संस्कार) के अनुसार ही क्रियमाण कर्म करता है। यदि उसके मन मे पाप के सस्कार है तो वह पाप करता है, पुण्य के सस्कार है तो पुण्य करता है। विशालदेव कहते है बिलकुल यह मानना ठीक नही। यदि ऐसा हो तो जीव के साथ पाप या पुण्य—एक ही प्रकार का कर्म होना चाहिये। पुण्य सचित, तदनुसार पुण्य कर्म तथा उसी प्रकार पुन. पुण्य ही संचित और क्रियमाण। परन्तु ऐसा नही देखा जाता। एक ही जीव के साथ पाप-पुण्य के विविध संस्कार एव कर्म रहते है। अतएव मनुष्य स्वतंत्र है। वह बुरे सचित संस्कारो को दवाकर भला क्रियमाण (कर्म) कर सकता है तथा भले संस्कारो को दवाकर बुरे कर्म कर सकता है। मनुष्य सगत और समझ बदलने तथा तदनुसार कर्म करने मे स्वतन्त्र है। अतएव अच्छी सगत, समझ अपना कर वह अच्छा बन सकता है चाहे वह पहले कितना ही पापी रहा हो। जीव ही तो कर्मो का निर्माता है, अतः वह कर्मो को उखाड़ फेकने मे भी समर्थ है।

जो लोग साधु-भक्त के वेप तथा परमार्थ मार्ग मे आकर भी कल्याण के हेतु-भूत सत्सग के लाभ से वचित रहते है, उसका कारण विशालदेव

वतलाते है—वे अपनी मन की प्रतिकूलता नही सह पाते, दूसरे की ईर्ष्या और तिरस्कार करते है। वे परमार्थ की आड मे भोग-मान की इच्छा रखते है। अपने मे त्रुटि न देखने वाले अहकार के वश वेहोश रहते हे। वे सत्संग की वात सुनकर प्रसन्न नही होते। भोग की इच्छा, अपने दोप को न देखना और दूसरे मे थोडा भी दोप देखकर आग वरसाने लगना। अपनी वुद्धि के मदवश या देह के दुर्स्वभाव वश सत्संग मे छिराव-दुराव रखना। हिताहित पर विचार न करके सवको जीतने मे आनन्द मानना। दूसरे का मान भंग करके अहता मे फूलते रहना। सकोच, क्षमा, निर्विवादिता छोड देना, केवल सम्मान का भूखा रहकर स्वकर्तव्य से वचित रहना। साधु नीति छोडकर मन का भटकते रहना। स्वरूपवोध, वैराग्य और साधना के विना केवल वाक्य ज्ञान के मद से मन जीना नही जा सकता। जो सद्ग्रथो को तिलाजलि दे देना है, महात्माओ मे उपासना नही रखता, सवका अभाव करके स्वरूप-स्थिति मे ठहरना नही जानता। जो भीड-भडक्का मे हरक्षण रहते हुए अपनी स्थिति मानता है और चाहे जैसे रहकर अपने को निर्वन्ध समझता है। दूसरे को रिझाने के चक्कर मे स्वय जगत का गुलाम वना भटकता है। इस प्रकार जो भोग प्रतिष्ठा मे वधा है।

ऐसे व्यक्ति की जव कामना भंग होती है, तव उसे अगम अपार दु:ख होते है। वह भले ही वाणी वोलने मे धारा प्रवाह हो, परन्तु वह अपने शरीर और मन के समुद्र मे पडा डूवता रहता है। वह तो लडने-भिडने की प्रवृत्ति लेकर अपना मान वढाने के पक्ष मे पडा है और राग-द्वेष से पीड़ित मेढक के समान व्यर्थ वकवाद करता है। जिसके मन मे यह भावना है कि मैं सारे विश्व पर विजयी हो जाऊँ, वह शाति कहा पा सकता है ? उपर्युक्त दुर्गुणो को पास मे रखकर कोई सत्सग का लाभ नही पा सकता, अतएव इनका सर्वथा परित्याग करके सत्सङ्ग साधना का लाभ लेना चाहिये।' (४६-५८)

विशालदेव कहते है कि जो जिस प्रकार ध्यान देता है सत्सङ्ग से समझ वढती है, हानि-लाभ का ज्ञान होता और जीवन का लक्ष्य मिलता है। शान्ति, सुवुद्धि, समता, तृष्णा-क्षय, सन्तोप आदि शुभगुण सत्सङ्ग से मिलते है। सत्सङ्ग पाकर जो व्यक्ति जितना पुरुपार्थ करेगा, वह उतना निर्दोप होता जायगा। मनुष्य स्वभाव से ही दु ख नही चाहता, वह सत्सङ्ग पाकर जव वधनो की दु खरूपता समझ लेगा, तव वह उन्हे तोडने मे देरी नही करेगा।

मनुष्य अपने निश्चय के अनुसार कर्म करने मे स्वतंत्र है। राजा के अधिकार मे प्रजा, पिता के अधिकार मे पुत्र, पति के अधिकार मे पत्नी प्राय:

रहते है; परन्तु उनकी जो निश्चयता होती है वह करते रहते है। यहा तक जेल मे पडा हुआ व्यक्ति भी उससे छूटने के लिये रात-दिन सोचता रहता है। अतएव बधनो को तोडने के लिये जिसे पक्का निश्चय हो जायेगा वह उसे तोड़ डालेगा चाहे जितने विघ्न हो। सभी शास्त्रो मे समस्त शुभ–कर्मो का फल विवेक युक्त मानव शरीर की प्राप्ति बताया गया है और उसे आज पाकर भी क्यो न बधनों को तोड़कर मोक्ष लिया जाय!

विशालदेव कहते है कि मनुष्य मे सदैव सावधान रहने की शक्ति होने से वह कर्म बंधनो का सर्वथा परित्याग करके मुक्त हो सकता है। मनुष्य दीर्घकाल तक जो काम एकनिष्ठा से करता है, जागृत मे उसी का हरक्षण मनन रहता है, स्वप्न मे उसी का सस्कार रहता है और सुषुप्ति मे उन्ही वासनाओ का बीज रहता है। इसी प्रकार जो दीर्घदाल से बोध, वैराग्य और स्वरूपस्थिति की साधना एक निष्ठा से करता है उसको उसी का स्मरण, स्वप्न तथा सुषुप्ति मे लयता रहती है। साधक को कायर नही होना चाहिये। उसे शूरवीर की भाति राग का विध्वंस करके मोक्ष प्राप्त करना चाहिये।

जिस वैराग्य के स्मरण, ध्येय, ध्यान, चर्चा, धारणा –सब मे शाति-ही-शाति है, उसको छोड करके साधक क्यो दु.खपूर्ण विपयो मे भटके ? वस्तुत. मन के अविवेक मे पड़े हुए लोग ही भटकते है।

असली प्रेम का लक्षण है कि प्रिय के अतिरिक्त कुछ अच्छा न लगे। जैसे लोभी को धन, कामी को कामिनी तथा मोही को पुत्र-मित्रादि अच्छे लगते है, और इनका कभी वियोग हो जाय तो उन्हे प्राण पीड़ा जैसी लग जाती है। इसी प्रकार जिनको वैराग और स्वरूपस्थिति प्रिय है, उन्हे उनके अतिरिक्त कुछ अच्छा नही लगता। वे शरीर के प्रेमियो का मोह छोड देते है, और ससार के समस्त भोगो से अचाह हो जाते है। वे शरीर का अभिमान छोड़कर स्वरूपस्थिति राज्य मे विहरते है।

विशाल देव कहते है "हे स्थितिवान ! हम सब मित्रो से मिले, उन्हे देखे, उनसे बाते करे, उन्हे अपनी बाते बताये तथा उनकी बाते जाने–इसमे अपना क्या हानि-लाभ है, जो इसके लिये परेशानी उठायी जाय ? अरे प्रकाश रूप, स्पर्श, रस, शब्द और गध—ये पाचो विषय अविनाशी चेतन के लिये निष्प्रयोजन है। देहोपाधि मन-इन्द्रिय संघात से इन विषयो को जान-जान तथा भोग-भोग कर ही उपद्रव है और हर्ष-शोक का उद्वेग है। यदि इन्हे न जाना जाय तो जीव अपना स्वरूपस्थिति धाम मे विश्राम पा जाय। जहाँ तक प्राणी है, उनसे मिलने मे तुम्हारा कोई प्रयोजन नही है। प्राणियो से मिलने पर सावधान न रहे तो उनसे राग होगा या द्वेष, अतएव असगता ही अच्छी

है। भौतिक शरीर इन्द्रिय और संकल्पो मे राग करने से इच्छाये बाहर की ओर चलती है और यह सब प्रपंच व्यक्ति के कल्पित है और यह विना प्रयोजन दु खो को निमन्त्रित करना है। यहाँ पारख (ज्ञान) की अविचल समाधि लगी है जो देहाभिमान से पृथक स्वरूपज्ञान की स्थिति है। अब देह अभी कुछ दिन बनी रहे या अभी मिट जाय, समान दृष्टि रखकर मैं कृतार्थ हूँ। हे साधक ! यही रहनी तुम भी अपनाओ, यही सर्वोच्च स्थिति है। इसके अतिरिक्त कुछ अच्छा नही है, क्योकि सब छूटने वाला है। सबसे उत्तम अपनी स्वरूपस्थिति है, जिसमे पहुँचने पर अन्य सब तुच्छ एव त्याज्य हो जाते है। जब से मान्यताओ का जाल टूट गया तब से अब तो मन मे कोई बन्धन नही रह गया। गुरूपदेश रूप उनकी कृपा और अपनी बोध शक्ति से मैं अपने आप स्थित हो गया और मन का राग बन्धन टूट गया। जिस अनन्त शाति के लिये हम अनादिकाल से सब कुछ करके हार गये थे और वह नही मिली थी, वह आज मिल गयी। अब तो कुछ भी कामना शेष नही है, केवल स्वतः पारख स्वरूप की स्थिति है।" (१३१-१३८)

६—शान्ति शतक

निवृत्ति साहस शतक के विषयो के क्रम मे ही शातिशतक कहा गया है, प्रत्युत शातिशतक मे विषय और गहन गंभीर होता गया है।

विशालदेव कहते है कि अबोध और राग से मन मे कर्म उत्पन्न होते है और बोध तथा वैराग से कर्मो का नाश होता है और जीव शुद्ध मुक्त हो जाता है। व्यक्ति अपने से पृथक राग करके दु खी है। जब वह पृथक की वासना छोड देता है, मुक्त हो जाता है। भक्ति, बोध, वैराग्य का अभ्यास जीवन-पर्यन्त बने रहने से कभी बन्धन नही ठहरते। जीवन निर्वाह मे जितने प्राणी-पदार्थ मिले, सबका अहंकार छोड़कर विवेक पूर्वक वर्तमान करे।

इच्छा ही जीव को बाँधती है। जो इच्छा को छोड देता है वह बधनो को जीत लेता है। इच्छा छोडने मे कोई कठिनाई नही है। जब व्यक्ति अपनी प्रिय पत्नी को जान लेता है कि यह भ्रष्ट हो गयी है और हमारी जान ले लेगी, तब वह उसको या तो मार डालता है या सर्वथा त्याग देता है। अपने प्राण का घातक समझ कर मनुष्य धन को भी छोड देता है। इसी प्रकार विषयो की इच्छाओ को जिस दिन वह दु खप्रद समझ लेगा, उसे छोड देगा। मुक्ति ऐसी वस्तु है जो अन्य सब कुछ की वासना छोड देने पर ही मिलती है। हाँ, देह रहे तक निर्वाह की आवश्यकता है। परन्तु बोधवान उसको भी इच्छारहित होकर ही लेते है।

उल्टी समझ से मनुष्य बंधता तथा सीधी समझ से छूटता है। धर्म, भक्ति, सत्संग करने से बुद्धि शुद्ध होती है। शुद्ध बुद्धि वाला अपने हृदय को देखता है कि मै स्ववश हूँ या मनेन्द्रियो के अधीन। वह पराधीनता को मृत्यु से बढकर दु:खप्रद समझकर स्ववश होने के लिये प्रयत्न करता है।

लोग भूल दशा मे यज्ञ, तप, तीर्थादि या चोरी, हिंसा व्यभिचारादि शुभाशुभ कर्म करते है; परन्तु जब उनको स्वरूपज्ञान हो जाता है, और वे सत्सग, सद्ग्रन्थ अध्ययन तथा सद्साधना मे दीर्घकाल व्यतीत करते हुये वर्तमान करते है, तब धीरे-धीरे उनकी पूर्व की दोनो वासनाये मिटकर वे स्वरूप-स्थिति को पा जाते है। दृढ बोध वैराग्य के ठहराव मे कर्म बन्धन दग्ध हो जाते है।

जिनकी अहता-ममता का जाल टूट गया है, वे मुक्त ही है। राग की अधियारी ही अबोध है और उसका त्याग ही सबेरा होना—मोक्ष है। वासना वीज को नष्ट करने के लिये ज्ञान तथा रहनी दोनों की आवश्यकता है। भोग रहित रहकर जीवनपर्यन्त साधना मे रहना चाहिये, क्योकि जब तक देह है तव तक बन्धनो का कारण है अतएव शरीरान्त तक सावधानी की आवश्यकता है।

मनुष्य मे अमित शक्ति है। उसमे परख की महान शक्ति है। जब वह अपने को परख लेगा। तव वन्धनो को नष्ट करने मे वह विलम्ब न करेगा। यह मनुष्य जी जान से जहाँ लगता है सव कुछ करने को तैयार हो जाता है। यह अपने कल्याण के लिये लग जायेगा, उसे करके ही छोड़ेगा। मनुष्य मे साहस, सावधानी और बन्धनों को नष्ट करने की प्रबल क्षमता है। जब यह मोक्ष का लाभ समझ लेगा तब अन्य विघ्नो को तृणवत हटाकर मोक्ष ले लेगा।

मान्यता अर्थात अहता-ममता ही बन्धन है। जब बोध पूर्वक व्यक्ति साधना मे लगता है और जब उसकी सारी अभिलाषाये समाप्त हो जाती है और वह चेष्टा रहित हो जाता है, तव वह मुक्त हो जाता है। चेष्टा भी दो प्रकार की होती है, एक मनभोग की दूसरी तनभोग की। मैथुन, नशा, विषय-विलासादि मनभोग है तथा खाना-पीना, सोना-जागना, चलना-फिरना आदि तनभोग है। बोधवान मन भोग का सर्वथा परित्याग करके केवल तन भोग अर्थात जीवन निर्वाह लेते है। वह भी आसक्ति रहित होकर। अतएव शरीर-निर्वाह की चेष्टा वस्तुत. चेष्टा नही है। जैसे बीज को आग मे सेक देने पर वह उगता नही, इसी प्रकार ज्ञान-वैराग्य युक्त निर्वाह लेने से आसक्ति बंधन वनता नही। बोधवान अपने को पथिकवत समझकर सर्वत्र अनासक्त होकर

व्यवहार करते है। वे पथ मे मोहते नही। भूला व्यक्ति तो अपने शरीर इन्द्रिय, बाहरी पदार्थ, प्राणी आदि को देख-देख कर रीझता रहता है। वह यह नही समझ पाता कि मै इन सबसे पृथक हूँ। परन्तु बोधवान सबके द्रष्टा, रहकर सबसे अनासक्त रहते है।

सद्गुरु विशाल साहेब स्मरणो का द्रष्टा बनकर पारख समाधि मे स्थिति होने पर अधिक बल देते है। उन्होने इस प्रकरण के अन्त में बताया है—

'कौन मनुष्य होगा जो स्मरणो को मिटाये बिना आपत्तिरहित होकर सुखी होगा ? अतएव दु खो से मुक्त होने के लिये स्मरणो को शात करना आवश्यक है और यह काम करने के लिये मनुष्य मात्र स्ववश है, फिर साधक साधु का तो यही मुख्य काम है। जिस मन.शक्ति से हम इन्द्रियो को बटोरते और फैलाते है, उसी से हम स्मरणो को भी रोक सकते है, क्योकि हम स्मरणो से पृथक है। यह जीव स्वय भूलवश विषयो एव दृश्य प्रपंचो मे आकर्षित होकर नाना स्मरण उठाता है। जब वह आकर्षित नही होता तब स्मरण शात हो जाते है। कदाचित स्मरण आये तो उसका अभाव हो जाता है। स्मरण की जितनी क्रियाये है सब जड है, अर्थात देहोपाधि जनित है। जीव एक स्मरण को छोडता और दूसरे को लेता है। साधक को चाहिये कि वह अपने परख बल के द्वारा सभी स्मरणो से अपने आप को पृथक ज्ञान स्वरूप एवं अकेला समझे। अर्थात चलवृत्ति छोडकर स्थिरवृत्ति अपनाये और अन्तत. स्थिरवृत्ति का भी द्रष्टा बनकर अपने को सबसे असंग समझे।

'जैसे स्मरण रुकते है वैसे साधक को शाति मिलती है और जब कुछ स्मरण होने लगता है तब चचलता आ जाती है। स्मरणो को देखने की जितनी सावधानी रहेगी, स्मरण शात रहेगे। सावधानी हटी और स्मरणो की दुर्घटना हुई। अतएव एकात मे स्थिर आसन से बैठकर सावधानी से मन का द्रष्टा बने। यह दशा बडी सूक्ष्म है। यह जल्दीबाजी करके कोई नही समझ सकता। इसको वे बोधवान पुरुष धैर्यपूर्वक समझते है जिन्हे देह बन्धन और संसार के दु खो का ज्ञान है। जन्म, रोग, बुढापा, विपत्ति, मरणादि समस्त दु.खो का कारण विषयासक्ति है—इस बात को समझ पाना बडा कठिन है। ससार की सारी बाते सरल है, परन्तु विषयासक्ति को दावानल के समान दु.खपूर्ण समझना बड़ा कठिन है। देहासक्ति एवं देहाभिमान मे दोष समझे बिना स्वरूप-स्थिति की बात कैसे प्रिय लगेगी। शव मे आसक्त व्यक्ति शिव कैसे बने ? सात्विक बुद्धि बिना कोई धीर-गभीर विचार नही पा सकता। अतएव कल्याण

की पूरी रहनी लेकर चलने से ही यह धर्म मार्ग का अंतिमी फल—स्वरूप-स्थिति मिल सकता है ।

साधक को चाहिये कि वह एकान्त मे स्थिर आसन से वैठ जाय और यह निश्चय करके वैठे कि मै इस समय केवल संकल्पो को देखूँगा । इस समय सारी चिताये छोड़कर केवल मन को देखे कि वह क्या कर रहा है । जव तक स्मरणो को देखने की सावधानी रहेगी स्मरण शात रहेगे और जव सावधानी हटेगी तब स्मरण चलने लगेगे । साधक को चाहिये मन के भुलावे को छोड़-छोड़ कर देखने की सावधानी करे । यही अपना कर्तव्य है ऐसा समझ कर घवराये नही । साधना के आरम्भकाल मे मन को देखने की यह दशा अर्थात 'द्रष्टा-अभ्यास' शीघ्र-शीघ्र छूट जाया करेगा और मन का भुलावा आकर कुछ-न-कुछ स्मरण होने लगेगा, परन्तु अभ्यास करते जाने पर कुछ दिनों के पीछे विलम्ब तक मन को देखने की दशा बनी रहेगी और यह 'द्रष्टा-अभ्यास' परिपक्व हो जाने से इसमे पूरी स्ववशता हो जायगी और आप जब चाहेगे मन को देखने लगेगे और उसे शात पायेगे । सिद्ध पुरुष जब चाहता है सकल्पो को शान्त कर निर्विकल्प दशा मे स्थिर हो जाता है ।

'स्मरणो को देखते समय उनमें लीन न हो—यह सावधानी वरतनी चाहिये । अपनी चेतना सत्ता को स्मरणो मे न लगाकर अपनी ओर लौटाता रहे । इस प्रकार जब जीव की सत्ता नही पाते, तब स्मरण शात हो जाते है । जितना ही संकल्प के तागे टूटेंगे उतना ही साधक स्ववश होगा और उतना ही आगे मन की चाल परखने और जीतने मे आयेगी । मन को जीतकर साधक अपने आप स्थित हो जाता है और उसका जगतबन्धन कट जाता है । साधक को चाहिये कि समय निकाल कर उपर्युक्त अभ्यास प्रतिदिन करे । फिर उसके सारे दु:खो का शमन हो जायेगा और वह अचल स्वरूपस्थिति मे ठहर जायेगा ।

'ऐसे स्थितिवान को न तो किसी से मिलने की इच्छा रहती है और न छूटने की चिता । वे धन प्राणी और शरीर-निर्वाह के व्यवहारो मे—कही भी आसक्त नही होते । वे शरीर-निर्वाह और शरीरात की यात्रा के संबंध मे नि सशय वोधयुक्त होते है । हाथी के गले की माला कव टूट कर गिरी इसका उसे पता नही चलता, इसी प्रकार शरीर-यात्रा सहित शरीरात तक के लिये वोधवान निश्चित होते है । वे तो समस्त सदेहो से रहित अपने निराधार असंग स्वरूप मे ही निरन्तर रमण करते है । वे शरीर निर्वाह की वस्तुओ को चाहते है अवश्य, परन्तु बिना चाह के । उसके लिये वे न दीन होते है न

उनमे आसक्त होते है । वे अनासक्ति पूर्वक संयमित निर्वाह लेते हुए स्वरूप-बोध मे विचरते है ।' (१०२-११८)

'उक्त पारखस्थिति एव स्वरूपस्थिति के मिलने पर व्यक्ति दीनता से मुक्त होकर कृतार्थ हो जाता है । अतएव सारी कामना छोडकर अपने आप मे स्थित होना चाहिये । यही सब कर्तव्यो का कर्तव्य है, सब जपो का जप है, सब ज्ञानो का ज्ञान है, क्योकि यहाँ पहुँच कर सारे सतापो की समाप्ति है । यह स्वरूप-विचार ही सब वेदोका वेद तथा सब शास्त्रोका शास्त्र है । जीव ही की तो सब रचना है । जहा जीव को अपने स्वरूप का बोध न मिले वहाँ सब अवेद और अशास्त्र है । चेतन जीव के बिना कोई मत, पथ, ग्रन्थ का निर्माण नही हुआ है । यह जीव ही नाना मत, पथ, ग्रन्थ खडा करता है । यदि मनुष्य देह न हो और वह मुख से न बोले तो वेदादि समस्त वाणियाँ कैसे अस्तित्व मे आये ? जीव को छोड़कर कही अन्य कल्पना करने वाला नही है । सबका कल्पक मनुष्य जीव ही है । सारे जड दृश्यो को छोडकर अपने आप मे ठहरना ही सब रहनी की रहनी है, यह स्वरूपस्थिति ही सब धामो से बढकर परम धाम है । अतएव जिससे स्वरूपज्ञान तथा स्वरूपस्थिति की प्राप्ति हो, वही साधन और कर्तव्य सर्वोच्च है ।' (११९-१२४)

७. शब्द विभाग

मुक्तिद्वार ग्रन्थ का अतिम प्रकरण 'शब्द विभाग' है । इसमे प्राय. शब्दो का सग्रह है । इस प्रकरण के आरभ मे विशालदेव ने उपदेश दिया है 'हे मनुष्यो ! निष्काम सत पुरुषो के पास जाओ । मन को इधर-उधर न भटका कर उसमे भक्तिभाव को स्थान दो । सतो को अपना परम हितकारी मानकर उनकी सेवा करो और अत.करण शुद्ध करो । देहाभिमान छोडकर जीव का कल्याण साधन करो । अमीरी श्रेष्ठता तथा बड़प्पन का अहकार छोडकर निष्काम महात्मा पुरुष के मन के अनुसार चलो । उनका मन बन जाओ । उनके विविध निर्णय सुनकर मन को सदेह रहित बनाओ । हठता कुतर्क और मन की चाल को छोडकर अपना कल्याण साधन करो । सर्वत्र सद्गुण ग्रहण करते हुए दुर्गुणो का त्याग करो और मन की हानि-लाभ की चिता छोडकर सत समागम करते हुए अपना कल्याण करो ।' (१)

विशाल देव प्रमादी साधको को फटकारते हुए कहते है—अरे ! तू दुनिया की वाहवाही मे भूल-भूलैया मे पड़ गया है । तू सबसे यही तो चाहता है कि तुमसे लोग बडा निश्छल प्रेम करे । वे निर्मान रहे और तुम्हे सम्मान दे और वे खूब परिश्रम पूर्वक तुम्हारी हरक्षण सेवा करते रहे । वे तुम्हे अपने तन, मन, धन अर्पित कर दे और वे उसमे जरा भी दु ख न माने और कभी

सुख सुविधा न चाहे। तू जैसे चाहे वे प्रेमी वैसे ही बर्ताव करे, कभी तुम्हारी मनसा के विरुद्ध न जाये। वे प्रसन्नता पूर्वक तुम्हे अपने हृदय मे बसाये रहे दूसरे को किंचित भी न चाहे।

'हे पागल! उपर्युक्त कामनाओ को लेकर तू दर-दर का भिक्षुक बना है। और इसके लिये सब कर्तव्य करने के लिये तू सदैव तैयार रहता है। यदि तेरे उपर्युक्त कामनानुसार कोई व्यक्ति तुम्हे मिल जाये, तो तू निश्चय ही उसके हाथो बिक जायेगा और तुम्हे अपने आपका होशहवाश न रहेगा। परन्तु नादान! ध्यान रख, अन्ततः तेरा कोई काम न देगा, प्रत्युत उलट कर तेरे को सारा दुःख द्वन्द्व सहना पडेगा। तू जिसके लिये सब कुछ का त्याग कर साधना पथ मे उतरा था उस दुःख निवृत्ति एव कल्याण का रास्ता भूल कर भटक गया है।' (२)

ससार के सभी महापुरुष समय-समय पर ससार से खीज कर अपने आपकी ओर मुड़े है। विशालदेव भी लोगो से खीज कर अपने आपको संबोधित करते हुए कहते है—

'हे विशाल! कोई कैसा भी आचरण करे तुमसे क्या प्रयोजन है? चाहे कोई अच्छा आचरण करके अपने आप को बना ले या बुरा आचरण करके अपने आप को बिगाड़ ले और तुम्हारे लिये कोई प्रेम करे या वैर करे—तू इन सब बातो की चिन्ता छोड दे। तू अपना मार्ग पकड़ और अपने स्वरूप-ज्ञान मे अविचल भाव से स्थित रहे। आधी-तूफान चलने पर भी पृथ्वी उसे सहन करके अडिग्ग रहती है। तुम भी वैसे बन जाओ। बाहरी प्राणी-पदार्थो के उपद्रव या भीतरी मन के उपद्रव आये तो उन्हे हटा दो। अपने हृदय-द्वार पर विवेक वैराग्य पहरुये रखो और उनसे कह दो कि वे किसी को भी हृदय मे घुसने न दे। कोई प्राणी या मन के संकल्प धन, सम्मान, मन्दिर, प्रचार आदि का लोभ देकर तुम्हारे हृदय मे घुसना चाहें तो उनसे इच्छा रहित होकर मचल जाओ कि हमे कुछ नही चाहिये।

'अरे तू स्वयं पूर्ण है, फिर बाहरी तुच्छ अपूर्ण वस्तुओ को बटोर कर क्यो पूर्णता पाने की कल्पना करता है? अतः इस बोध का स्मरण रख, फिर तेरे हृदय मे गलत कल्पनाये नही भरेगी।

'तू तीनो कालो मे हानि से रहित है। तेरी कभी कोई हानि हो ही नही सकती। कल्पना उठा-उठा कर तू व्यर्थ ही हानि की अनुभूति मे फँस गया है। तू दुनिया के जालो मे फँसा हुआ लाभ खोज रहा है? तेरी कभी हानि ही नही, तो हानि को क्यो डर रहा है? तेरी वस्तुतः हानि तो तभी

होती है जब तू अपने आप को भोगो, जगत प्रपंचो एव कल्पनाओ में अर्पित कर देता है। परन्तु तू इस अपनी मूढता पर कभी विचार ही नही करता ,

'जो अनमिल है, तुमसे नही मिलने वाला विजाति, जड दृष्य पंचविपय है, उसे अनपिल (दूर) ही रखो। देखो, अन्याय का वर्ताव छोड दो। जो तुम्हारा नही है उस पर तुम अपना अधिकार मानते हो यही अन्याय का वर्ताव है और विवेक करके देखो, अपने माने हुये शरीर से लेकर धन, प्राणी मठ, मन्दिर, समाज, मान-प्रतिष्ठा यावत दृश्यमान पच विपय है—कुछ भी तुम्हारा नही है और उसे तुम अपना मानकर आसक्त होते हो। यह अन्याय का वर्ताव है, इसे सर्वथा छोड दो।

'स्वरूपस्थिति रूपी परसपद जो नित्य प्राप्त है, उसी मे रमण करो, भोगो के लिये उठ-उठ कर दौडना छोड दो। सारी चिन्ताओ को छोड दो, परन्तु निश्चिन्तता न छूटने पावे, इसके लिये सतत सावधान रहो। हे विशाल दास ! अपनी कुशलता चाहो तो अकुशलता रूपी सारी क्षणभगुर वस्तुओ की ममता छोड दो और जिस प्रकार अपना सकुशल अविनाशी स्वरूपधाम है उसी प्रकार निष्काम होकर उसमे स्थित होओ, फिर तो इस दास का सद्गुरू के घर—मोक्ष मे विश्राम है।' (३)

आगे विशाल देव ने मन पर काफी कहा है। यह मन सबका राजा बन बैठा है। लोग भूल-वश मन के दास बन गये। जो मन के चक्कर मे आरामतलबी, विद्या-प्रमाद एव विषयासक्ति मे पडते है, उनको मन खूब रुलाता है। मनुष्य अज्ञानवश ही मन के भुलावे मे पडता है और इससे उसका पतन होता है। हा, जो मन को जीत लेता है वह सर्वोच्च एवं सच्चा सुखी हो जाता है।

आगे विशालदेव कहते है कि यहाँ सब कुछ छूटने वाला है। जिन प्राणियो मे ममता करके तुम उनके लिये अन्याय करते हो, वे ही तुम्हारी पीडा के कारण बनेगे। अन्त मे तुम्हारे साथ क्या जायेगा ? परिवार, मित्र, धन, घर, जमीन, मन्दिर, वस्त्र, वाहन, शासन, मान-प्रतिष्ठा एवं तुम्हारी मानी हुई देह तक एक दिन छूट जायेगी। अतएव सारा प्रमाद छोडकर भजन करो।

विशालदेव हमे बतलाते है कि जीव का किसी से भी नाता नही है। माता, पिता, स्त्री,-पुत्र आदि, वेद, शास्त्र, मत, पंथ, ग्रन्थ, गुरू, शिष्य आदि किसी से भी जीव का मुख्य नाता नही है। बस, दु खो से छूटने का उसका नाता है। यह दु ख-निवृत्ति का काम जिस प्रकार बन जाय वही सम्बन्ध, शास्त्र, सगत आदि का थोडे समय के लिये नाता है।

आगे उन्होने कामवासना निवृत्ति पर जोर दिया है और जीव को जड़ तत्वो से पृथक बताने के लिये प्रयास किया है।

इस प्रकार इस गहन-गंभीर ग्रन्थ-सागर मे छिपे अमूल्य मोतियो को पाने के लिये मैने अपने अल्पबुद्धि रूपी बाल-कर-पग से अवगाहन करने की चेष्टा की है। निवेदन है कि सुधी पाठक स्वय इस रत्नाकर मे प्रवेश कर ज्ञान-धन बटोरे।

इस ग्रन्थ के टीकाकार परम श्रद्धेय श्री प्रेम साहेब की जो मेरे ऊपर करुणा है, उसे शब्दो मे तो कहा ही नही जा सकता। आपके निर्देशानुसार ही यह ग्रन्थ-परिचय यहा रखा गया है।

पारख प्रकाशक कबीर सस्थान
प्रीतमनगर, इलाहाबाद
भाद्र कृष्ण १२, २०४० वि०

विनम्र
अभिलाष दास

भूमिका



परम वैराग्य युक्त, पूर्ण बोध, सदाचरण सम्पन्न सन्त महात्माओ के सम्मुख इस दास मे न तो उतनी बुद्धि है न उतने पूर्ण रहस्य है, न कहने का साहस ही है, न उनको शिक्षा देने का मै अधिकारी ही हूँ, क्योकि आप सब तो "समुझब कहब करब तुम सोई । धर्म सार जग महँ जो होई ।। (रा०) "हद बेहद दोऊ तजे, ताकर मता अगाध !" (बी०) ऐसे रहस्यवान सन्त पूर्ण है। उनसे यह दास शिक्षा पाने को इच्छुक है । कृपया मुझ दास को भी स्थिति मे डटायेगे । केवल यह आपके वचनामृत निर्णयरूप सत्य सार सिद्धांत मुझे भी मनन हो । साथ ही प्रेमी अधिकारी जिज्ञासु तथा सर्व दुख पीड़ित मनुष्यो का कुछ रास्ता साफ हो जाय । निर्विघ्न सत्य चेतन स्वरूप मे स्थिति पावे । सत्य बोधक वाक्यो मे प्रेम बढे, इस हेतु इस प्रसंग को विनम्र जिज्ञासुओ के सम्मुख करता हूँ । यद्यपि रास्ता देखना अब उतना कठिन नही है । पथ प्रदर्शक सन्तजन और अनेक सद्ग्रन्थ मुमुक्षुओ को प्राप्त ही है । उनमे लगन लगाकर एकरस अभ्यास बनाने की निरन्तर आवश्यकता हे । साथ ही अपनी-अपनी समझ के अनुसार अधिक-अधिक निर्विघ्न रहस्य, सत्य सिद्धात सहायक गुरुपद प्रेम-नेम सद्भाव की विशेष-विशेष सरल युक्ति कौन कल्याणार्थी नही चाहता ? मुमुक्षुओ की तो कमल भ्रमरवत वृत्ति होती है । वे निरन्तर सुवास मधुरूप सत्य निर्णय के क्षुधित होते है । वर्तमान मे विजातीय बन्धनो-शंकाओ विघ्न-बाधाओ को शात करके सदा सत्य स्वरूप मे जिज्ञासुजन विराजना चाहते है । इस हेतु वे सदा नित नव निर्णय विवेक के लिये गुणग्राही होते है । फिर इसी बहाने इस दास को भी निर्णययुक्त गुरुपद का कुछ गुण-गान मनन होता रहेगा । अब हे मेरे प्रिय बन्धुओ ! किसी भी यथार्थ वक्ता पारखी सन्त सद्गुरु के निर्णय वचन का आधार लेकर स्वरूपबोध दृढ करके जडाध्यास त्यागने का दृढ प्रयत्न करते रहिये । जिससे इसी जीवन मे सर्व शोक मोह प्रपच आसक्ति अज्ञानरूप घोर विपत्ति वन का दहन हो और जीव कुशलता पूर्वक निर्वासना होकर स्ववश-सत्य स्वरूप देश मे सावधान विराजे । यदि किसी सन्त या सद्ग्रन्थ मे रुचि न लगे, तो आपका जो स्वतः स्वरूप चैतन्य

है वह अपने लिये कभी दुख-द्वन्द्व स्वीकार नही कर सकता। इसलिये आ.ने को सर्व वाह्य प्रपच से रहित करके एकान्त मे सारे कुचिन्तनो को हटाकर स्ववश मन को ठहरा के अपने परम हित का विचार उत्पन्न कीजिये। निश्चय ही ऐसा करने से अपने कल्याण करने का विवेक वहा से उत्पन्न होगा। जब आपको स्वत. विवेक से हितैपी दृष्टि प्राप्ति होगी, तब आपको सद्गुग सम्पन्न सन्त-सज्जनो का ससर्ग और सत्य सदेशक सद्ग्रन्थो तथा सदाचरगो से कभी अरुचि नही होगी। बल्कि स्थिरवृत्ति करने पर यह निर्मल विचार दृढ होगा कि इस अविनाशी जीव के पीछे देहोपाधि कृत मनोवासना सम्बन्धी सपूर्ण प्रतिकूलता जन्म-मरण, राग-द्वेप, काम-कोधादि का रोग प्रत्यक्ष लग रहा है। देह सम्बन्धी ज्वर-जूड़ी, कुष्टादि असख्य रोग, अन्य सर्प-सिहादि दुप्ट विरोधी जवर्दस्तो द्वारा सताये जाने का भौतिक दुख झूरा-पत्थर, पानी सम्बन्धी दैविक दुख, मानसिक लत इन्द्रिय खिचाव, अवस्था सम्बन्धी सर्व दुख द्वन्द्व का मूल अध्यास आसक्ति अज्ञान ही है। इसीसे देह रचना, देह सम्वन्ध से ही सर्व दुख होते है। इस दुख मूल भयकर अज्ञान रोग के नाशक सद्वैद्य महा प्रभु सद्-गुरुदेव हे। अत सद्रहस्य सम्पन्न दृढ विवेक-वैराग्यवान सन्त तथा सदाचारी-मुमुक्षु भक्त-सज्जनो का सम्वन्ध और सद्ग्रन्थ मनन करके हमेशा सत्साधन सयम रूप औपधि सहित निष्प्रपच या एकात जीवन विताने की परम आवश्य-कता है। जिससे जीव का अज्ञान-आसक्ति रोग से पीछा छूटकर सर्व दुखो का अन्त हो।

बीजक और सारशब्द तथा सम्पूर्ण पारख स्थित अनुभवी सन्तों के सत्य निर्णय अभेदरूप हैं

जैसे अग्नि के वोधार्थ अनल, वन्हि, बसन्दर आदि कई शब्दो का प्रयोग होता है। सबका लक्ष्य है उष्ण गुणयुक्त अग्नि प्राप्ति ही का। जिस इशारे से अपने नित्य सत्य वस्तुत सद्स्वरूप चैतन्य या पारख स्वरूप का वोध दिया-लिया जा सके, वह लक्ष्य लक्षित सर्व शब्द-प्रकरण, प्रबन्ध-ग्रन्थ, सत्सग-निर्णय कथा वार्ता सर्व सद्गुरु कबीर साहेब के पारख सिद्धात का लक्ष्यक दर्शावक बोधक होने से कल्याणार्थियो को सदा ग्राह्य होता ही है, होना भी चाहिये। दोहा—"जैसे कोई प्रेमि को, ढूँढत बहु अकुलाय। पावत नहि भटकत अहै, कोऊ मिलि वतलाय॥ तैसे समझो सत्य को, देत सदेश सुसत। जेहि विधि पावै बोध निज, ठहरै लखि वुधि वन्त॥" एक तो सद्गुरु कवीर कृत बीजक को पारख बोध रहस्य लक्ष्य से पठन-पाठन करते हुये परस्पर सत्सगयुक्त पारखदृष्टि की प्राप्ति तथा पुष्टि करना इस कार्यक्रम का मुख्य लक्ष्य स्वरूप-

स्थिति में एकरस टिकना ही है । "तेहि कारण मैं कहत हौं जाते होय उवार" दूसरे सद्गुरु कबीर साहेब जिस दृष्टि से पहिले पारख सिद्धांत को ग्रहण किये, पश्चात उस दृष्टि-सैन को सत्संग-प्रसंग द्वारे क्रमशः जो सन्तो मे प्रेरणा किये, वह पारखदृष्टि जो क्रमश' शका और समाधान द्वारा सत्संग प्रवाह से गुरुबल, स्वबल द्वारा विचारवानो मे चली आ रही है । उस पारखदृष्टि से प्रथम सर्व निसिद्ध असत् कर्म त्यागकर सर्व पुनीत सदाचार युक्त निराश वर्तमान मे स्थिर होने के लिये देश, काल, भाषा अनुसार सैन-संज्ञा, दृष्टात-सिद्धांत द्वारा निजी हृदय में मिथ्या भास का खण्डन, यथार्थ विवेक का मण्डन, यथार्थ शुद्ध बोध-यथार्थ गुण-लक्षण द्वारा जड़-चेतन का, पिण्ड-ब्रह्माण्ड का, शरीर और शरीर वासी का बन्धन-मोक्ष का, रहनी-रहस्य का, स्वरूप-आवागवन-कर्मफल इत्यादि का यथार्थ पारख करते हुये निर्भ्रान्ति दृढ सयम विचारयुक्त स्वरूपस्थिति में शात होना और सरल निर्विवाद जिज्ञासु जो कि विशेष इच्छुक निरुपाधि हो ऐसे को पारख स्थिति का सहजिक परिचय देना, जीवन्मुक्त के ये मुख्य रहस्य है । इस कार्यक्रम का भी हेतु स्वरूपस्थिति है । कल्याणार्थियो को दोनो धारा प्रिय है । जिस किसी सहायता से निराश वर्तमान मे ठहरा जा सके । इतना होने पर भी एक दूसरे के सब पुष्टीकरण है, "पारख बिन परिचय नही, बिन सत्संग न जान ।" एव जब पारख सिद्धात की रक्षा रहेगी, तब सर्व निर्णय ग्रन्थ सत्सग सदाचरण में सहज ही जिज्ञासुजनों की प्रियता रहेगी । यही आवश्यकता जानकर पारखी सन्त समय-समय पर सत्य शब्द निर्माण करते ही आ रहे है । उनके अनुभवपूर्ण स्पष्ट प्रबन्धो को जन समाज मे प्रचार एवं मनन हो तो अवश्य पारख बोध मे सरलता हो जावे । अन्य सत्यन्यायी सन्तो के समान इस ग्रन्थ के निर्माता पहिले भवयान नामक सद्ग्रन्थ की रचना कर आये है । वह बिल्कुल बीजक सिद्धान्त लेकर पारखोक्त टीका के अर्थ समान ही पारख सिद्धात का स्पष्टीकरण होने से जिज्ञासुओ का ग्राह्य हुआ है, होता ही रहेगा, होना ही चाहिये "नवपल्लव भे विटप अनेका । साधु के मन जस होय विवेका ।" (रामा०) जैसे बरसात मे नये-नये पल्लव पत्ते वृक्षो मे फूटते है, तैसे जितना ही जन समाज या तन-मन उपाधि द्वारा जब तक अविवेक सन्मुख आता है, तब तक विवेकवान के अन्त.करण मे नये-नये विवेक उत्पन्न हुआ ही करते है । यदि ऐसा न हो तो निर्णय रहित किसी अन्ध मार्ग मे गिर जाना पडे । अतः—"कहहि कबीर सुनो सन्तो हो रमैया राम । परखि लेहु खरा खोट हो रमैया राम ।।" बीजक ।। चौपाई—"खराखोट परखहु बहु भाँती । तबही होय जीव कुशलाती ।। सदा विचार करहु मोरे भाई । जौ लो देह बिखरि नहि जाई ।। शब्द शब्द बहु अन्तरे, सार शब्द मथि लीजै ।

कहहिं कबीर जहाँ सार शब्द नहि, धृग जीवन सो जीजै ।" इसकी टीका में श्री पूरण साहेब कहते है 'जा शब्द से जीव पारखपद को प्राप्त होय सो सार शब्द' "काया बीर तब कबीर कहावै, बीजक का यही कहना जी ।।" (श्री काशी सा०) निर्णयसार की समाप्ति करते हुए श्री पूरण साहेब कहते हैं 'यह निर्णय कबीर कृपाला । कहि निरुवारो हसन जाला ।।" पारखबोध की पुष्टि के लिये सब निर्णय टकसार रूप समान ही सत्य है । उसमे चाहे जिसको ग्रहण करके देहाध्यास का झगडा शान्त करे । "कहहि कबीर सोई जन मेरा, जो घर की रारि निवेरे" ।।बीजक ।। इससे सार यह लेना है कि जल्दी से जल्दी पारखोक्त सत्सग-सद्ग्रन्थ का आधार लेकर स्वरूप भाव मे एकरस टिकने हुये सर्व जडासक्तियो का दमन कर देना चाहिये ।

सद्गुरु कबीर साहेब का दिव्य संदेश तदनुसार यह ग्रन्थ

सद्गुरु कबीर साहेब तो सूर्यवत सबको विदित ही है । आपके हृदय रवि मण्डल से जो शब्द रूप किरण समूह फूटकर संसार मे बिखरी, उनसे कितने कितने अधिकारी सदाचरण मे सन्लग्न हुये कितने पारख प्रकाश पाकर इस दुक्खालय ससार से मुक्त हो गये, अब हो रहे है, आगे भी होगे ।

१—अहिसा, धर्म, शील, क्षमा और ब्रह्मचर्य आदि सर्व सदाचार ग्रहण करना कराना तो आपकी खास मनसा ही हे । आप विदित करते हे साखी—"सकलो दुर्मति दूर करु, अच्छा जन्म बनाव । काग गवन गति छोड़ि के, हस गवन चलि आव । मानुष तेरा गुण बडा, मास न आवै काज । हाड न होते आभरण, त्वचा न बाजन बाज" ।। बीजक ।।

इसी लक्ष्य-विचार का विस्तारक इस ग्रन्थ का प्रथम पाठ "सद्गुण शतक' आप देखेगे । दया, अमान आदि (१९) उन्नीस लक्षणो का इसमे विस्तार हुआ है, जो विश्वभर के जन समाज मे एक शांति सदेश का कान्ति-कारी रहस्य है ।

२ - गुरु कबीर का ध्येय समग्र मिथ्या सदेहो का निवारण करना था । आप जगत अनादि के बारे मे इशारा दे रहे है—"तहिया होते पवन नहि पानी । तहिया सृष्टि कौन उत्पानी (बीजक रमैनी ७) नहि जल नहि थल नहि थिर पवना । को धरे नाम हुकुम को बरना ।। बीजक रमैनी—६ ।। "झूलत-झूलत बहु कल्प बीते मन नहि छाड़े आश" ।। हिडोला २ ।। कहहि कबीर नर किया न खोज । भटिक मुआ जस बन के रोझ ।। बसत १२ ।। इस सिद्धात से पृथक जितने मिथ्या तर्क या भौतिकवाद की भावनाये है, उनके नाश के लिये इसमे "जगत अनादि शतक" पाइयेगा । इसमे भौतिकपक्ष विकासवाद के निर्णय सहित युक्ति युक्त जड-चेतन अनादि बताया है ।

३—आप जड़-चेतन को पृथक्-पृथक दर्शाते हुये स्वतन्त्र जीव के प्रतिपादन में अतिशय जोर दिये—"बीजक वित्त बतावै, जो वित्त गुप्ता होय। ऐसे शब्द बतावै जीव को, बूझै बिरला कोय।। (बीजक रमैनी ३७ की साखी) कहहु हो अम्मर। कासो लागा ? चेतनहारा चेत सुभागा।। जो खोजो सो उहवाँ नाही। सो तो आहि अमर पद माही।। (बीजक शब्द ७९) अमृत वस्तु जानै नही, मगन भया सब लोय। कहहि कबीर कामो नही, जीवहि मरण न होय।। (रमैनी १० की साखी) पूर्वोक्त लक्ष्य विस्तारक तीसरा पाठ 'स्वतंत्र जीव शतक" का विचार प्रगट है। इसमे उत्तमोत्तम युक्तियो द्वारा जड तत्त्वो से चेतन जीव का स्वरूप निराला प्रतिपादन किया गया है।

४—निज स्वरूप को भूलकर बन्धन और शुभाशुभ कर्म अनुसार ही समस्त अविनाशी जीव बारम्बार चार खानियो मे देह धर-धर के पीडित रहते है। यदि सत्संग विचार से सर्व अज्ञान आसक्ति का अन्त कर दिया जाय तो जीव ही मुक्त स्वदेश गुरुपद रूप हैं। "जसरे कियेहु तस पायउ हो रमैया राम। हमरे दोप का देहु हो रमैया राम।। (बेलि १) कोटि सुमेरु ढूँढि फिरि आवै। जो गढ गढै गढैया सो पावै।। (ज्ञान चौतीसा ६) कर्म पटरिया बैठि के, को को न झूले आनि।। ये झुलबे को भय नही, जो होय सन्त सुजान। कहहि कबीर सतसुकृत मिलै तो, बहुरि न झूलै आन।।" हिंडोला १।। इसी सिद्धान्त को विस्तार से समझने हेतु चौथा "बन्ध मोक्ष शतक" है। पुनर्जन्म बन्धन विभेद और जीवन्मुक्ति के रहस्य स्पष्ट इसमे मिलेगा।

५—आप श्री गुरु कबीर साहेब का पूर्ण ध्येय दु खालय से भिन्न होकर मुक्तिपद प्राप्त कराने का है। अस्तु वासना और असत कर्म त्यागने मे ढिलाई नही करना चाहिये—"मरते मरते जग मुवा, मुये न जाना कोय। ऐसा होय के ना मुवा, जो बहुरि न मरना होय।। तौ लौ तारा जग मगे, जो लौ उगै न सूर। तौ तौ जीव कर्म वश डोलै, जौ लौ ज्ञान न पूर।। (साखी २०५) तेहि साहेब के लागहु साथा। दुइ दुख मेटि के होहु सनाथा (रमैनी ७५) करहु विचार जो सब दुख जाई। परिहरि झूठा केर सगाई।। भरम क बाँधा ई जग, यहि विधि आवै जाय। मानुष जन्म पाय के, नर काहे को जहँडाय"।। (रमैनी २३) इस मुक्ति स्थिति से भली प्रकार साहस बढै इस हेतु पाचवाँ पाठ "निवृत्ति साहस शतक" है।

६—आप शान्ति पूर्वक शुभाचार सहित सदस्वरूप प्रिय होकर जीवन्मुक्त दशा की अतिशय पुष्टि किये है—"जो तू चाहे मुझ को, छाँड सकल की आश। मुझ ही ऐसा होय रहो, सब सुख तेरे पास।।" (साखी २९८) निराश वर्तमान

मे किस युक्ति से मुक्तरूप यह जीव विराजे ये सब बातो का शाति शतक" छठे पाठ मे वर्णन हुआ है।

७—"सब्द बिना सुरति आँधरी···।। साखी आँखी ज्ञान की···।।" इत्यादि विचार वृद्धि हेतु इसमे-सातवाँ पाठ "शब्द विभाग" है। जिसमे जगत नि सार दिखाकर जड-चेतन निर्णय पर स्पष्ट वर्णन है।

"मूल गहे ते काम है, तै मत भरम भुलाव। मन सायर मनसा लहरि, वहे कतहुँ मत जाव।। तेहि कारण मै कहा हौ, जाते होय उबार। कहहि कबीर मूल की औषध, पारख सबकी भाई।।" (बीजक) तात्पर्य—जैसे जीव की स्थिति हेतु सारा बीजक गुरु कबीरसाहेब रचना किये, उसी प्रकार प्रत्येक वैराग्य-बोध सम्पन्न पारखी सन्त जीवो की स्थिति हेतु निर्णय करते है, सो सब ग्राह्य है। परम सजग सावधान परिणामदर्शी महात्मा श्री "विशालसाहेब" रचित यह "मुक्तिद्वार" है। विशेष आपकी रचना का हेतु यह है कि वर्तमान देश समाज भौतिक जड तम रहन-सहन कुबुद्धि को भाँति-भाँति से अपनाकर अति सकट ग्रस्त है, उनके निवारणार्थ भाँति-भाँति प्रसग लेकर पारखबोध को पुष्ट करना ही है।

प्रबन्ध गौरव

विविध अनमिल भाषाओ और विविध विद्याओ के देखने से ज्ञात होता है कि वास्तविक सम्पूर्ण भाषा और विद्या किसी भी वस्तु ज्ञान के लिये काल्पनिक प्रवाह रूप से निश्चयात्मक रूढि है। जो भाषा और विद्या की कल्पना निश्चय अभ्यास आपको नही है, उस भाषा या विद्या से आप कुछ नही जान सकते, न दूसरे को जना सकते। अन्य जो उस भाषा उस विद्या का अभ्यास किया है, वह उस बोली मे सब कुछ स्वय जान लेगा और दूसरे सम्बन्धियो को जना भी देगा। "बिष रस भरा कनक घट जैसे।" न्याय से सदाचरण सद्भाव प्रेरणा रहित वाणी सुन्दरता किस काम की ? (भणित भदेश वस्तु भलि बरणी) इस गोसाईं जी के कथन न्याय से यह स्पष्ट हुआ कि वही गद्य-प्रबन्ध वही पद्य पिंगल छन्द साहित्य श्लोक या लोक भाषा सराहनीय है, जिस करके जन समाज की बुद्धि मे सद्भाव-सदाचरण का पताका फहरै। अविनाशी स्वरूप ज्ञान का सूर्योदय हो, क्षमा, शील सत्यादि का स्पष्ट सतमार्ग सूझै, सर्व असत-अशुभाचार का वड़ा फूटै। यही लक्ष्य लेकर पूर्व के विवेकवान सद्बोध विशेषज्ञ सन्त-सज्जन और वर्तमान मे भी सब सन्त-सज्जन अपने अपने पुण्य भावो को जन समूह मे अपनी-अपनी भाषा अनुसार प्रवेश करते आये है। उनकी दिव्य विभूति सद् विद्या उनका परमबोध पारखरूप ज्ञान विचार जिस किसी

भाषा से कही जाय, उनकी सारी हितैपिता जीवन रहस्य सर्व कल्याणकारी परम पारख सिद्धान्त ससार सिन्धु से तरने के लिये जहाज रूप है। अत. हमें जैसो कैसी भाषा से भी सद् वस्तु को पिछानकर स्थिति वनाना परम कर्तव्य है। "जेहि विधि सतपद मे जिव लागै। ठहरि रहै सोइ मत्र सुभागै॥"

सर्वोच्च स्थिति लाभ

हमारा लक्ष्य केवल अविनाशी सत्य स्वरूप पारख मे स्थिति ही के लिये होना चाहिये। क्योकि एक गात्र सर्व दुख रहित और परम शान्ति का स्थान तथा सवसे वढकर जानने मानने प्राप्त करने योग्य अपने आपका वोध ही है। अपने स्वत: शुद्ध चैतन्य का कभी अभाव होता नही। आप सत्य स्वरूपदेव के रहते ही मे और अपनी ही दुखनिवृत्ति के ही नाते से सर्व विशेपताओ की स्थापना होती है। सर्व स्थापक कौन है ? विचारने से अपना चेतन जीव सत्य स्वरूप ही है। सो सर्वदृश्य भौतिक जड तत्त्वो से पृथक अनादि अखण्ड ज्ञाता ज्ञान मात्र है। ऐसा सर्वोच्च वोध नि.सदेह प्राप्त करने के लिये सर्व असत मत पथ ग्रन्थो का पक्ष छोडकर देह मद और विषयासक्ति को शिथिल करके इसी देह मे अविनाशी का शोधनकर अविनाशी द्रष्टा-साक्षी से पृथक सर्व आसक्तियाँ और सग-स्नेह त्यागकर सदा के लिये जन्म-मृत्यु से छुट्टी ले लेना चाहिये। क्योकि अपने दुख की निर्वृत्ति हो यही परम लक्ष्य सव जीवो का है, अत. सर्वका स्थापक ज्ञाता ध्याता सर्वसे श्रेष्ठ शुद्ध अपना पारख स्वरूप ही है, सवका अन्तिम अपने आप ही अचल हो रहना जीवन लक्ष्य है। "चहत जिव अपने मे आप रहै" "अवकी वार जो होय चुकाव। कहहि कवीर ताकी पूरी दॉव"॥ "वन्दे करल्ने आपु निवेरा।" (वीजक)

प्रतिकूलता, उलझन-अशांति नाश का सर्वोत्तम उपाय

जैसे सूर्य का प्रकाश, चन्द्र की किरणे, नदी और वायु समस्त विश्ववासी के शरीर रक्षा मे साधक है। इस प्रकार सत्पुरुपो के वाक्य केवल एक पथ एक समाज के लिये नही, वल्कि समस्त व्यक्तियो के कल्याण के साधन है। जैसे जौहरी की दूकान पर जाकर हीरा-मोती, नग-रत्न आदिको की कसौटी या पारख करना छोड़कर उल्टे जौहरी की उत्पत्ति आदि के वारे मे लडने-झगडने लगे तो उसे रत्नो की परीक्षा मिल ही नही सकती। उनका अज्ञान है जो सत्य सिद्धान्त निर्णय पर ध्यान न देकर श्री कवीर साहेव की उत्पत्ति के वारे मे या शिक्षको के प्रति प्रतिकूल भावनावश नाना कुतर्को मे ही अमूल्य समय नष्ट करते रहते। उन्हे यह नही विचार है कि सृष्टिक्रम के अन्दर ही सवका जन्म और मरण होता है। 'एक-एक दिना याहि गति

चाह दीना हो" किसी भी मास्टर या गुणवान से गुण, विद्या लिया ही जाता है। सन्देहशील पथिक किसी ज्ञाता से रास्ता पूछकर विचारपूर्वक अपने मार्ग में लगता है। 'संत हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार' अतः हमें किसी भी स्वार्थिक प्रापंचिक कल्पनाओं में न उलझना चाहिये, यथार्थ ही पर ध्यान देना चाहिये। 'सुनि आश्चर्य करै जनि कोई। सत्संगतिमहिमा नहिं गोई ।। रा० ।। बाहर जब सब ठीक हो, दूसरे यथार्थ मार्ग या रहस्य गहे, बाहर की सर्व परिस्थिति हमारे अनुकूल हो, तब हम सुधार करेंगे, तो यह तीन काल में होना ही असम्भव है। अतः बाहर जनसमूह कोई कुछ भी माने-कहे, चले-सुने, उसकी चिन्ता छोड़कर हमें यदि सब उलझनों से छुटकारा लेना है तो गाली, कठोर मिथ्या वचन, परनिन्दा, ईर्ष्या, द्वेष, असहन और सर्व विषय तृष्णा शीघ्रता से त्यागकर केवल अपने सुधार में ही इस प्रकार लक्ष्य देना चाहिये। यथा—"कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभी के प्रिय दाम।" आन्तरिक शोक, मोह, आसक्ति, उलझन मिटाने अर्थ ही यह सारा मुक्तिद्वार निर्मित हुआ है। फिर भी विशेष करके इसमें का सारा सद्गुण शतक, बन्ध मोक्ष का अन्तिम प्रसंग, निर्वृति साहस शतक पे का स्थिति प्रसंग, शांति शतक का दृश्य अभाव व स्वरूपविशेषता प्रसंग और सम्पूर्ण शब्द विभाग ये सब तो मृतसंजीवनी महौषधि रस-भस्मों के समान शीघ्र फलदायक समझिये। इसे जितना ही मनन किया जाय उतना ही अमोघ फल प्रत्यक्ष प्राप्त होगा।

छन्द—तीर्थ जप तप योग विद्या ज्ञान यहि विज्ञानकम्।
यहि लाभ सब पर नागरिक आदर्श जीवन मार्गकम् ।।
जेहि यत्न सद्गुण बल बढ़े दुर्गुण कुबोध कुठारकम्।
जनता समूह स्वमार्ग लहि सोइ मुक्तिद्वार विचारकम् ।।

विवेक से सर्व श्रेणियों का सुधार

स्वरूप में एकरस स्थित के हेतु ही संत महात्मा तथा इस प्रयत्न में लीन जिज्ञासु भक्त मुमुक्षु का लक्ष्य रहनी रहस्य बोल चाल वर्ताव निश्चय सर्व परख-परख के यथार्थ की तरफ हुआ करते हैं। जीवन्मुक्ति में तो जड़ाध्यास और अशुभाचार का किंचित ग्रहण नहीं होता। उनके गुण लक्षणों का सद्ग्रन्थों में विस्तार से वर्णन हुआ है। बीजक, पंचग्रंथी, तत्त्वयुक्त आदि ग्रन्थों में दया, क्षमा, सत्य, धैर्य, विचार, विवेक, वैराग्य गुरुभक्ति इन अष्ट लक्षणों के अन्दर सर्व जीवन्मुक्ति रहस्य वर्णन हुआ है। "हंस गवन चलि आव" पंचग्रन्थी में जो हंस देह का वर्णन हुआ है, वे जीवन्मुक्त के वास्तविक लक्षण ही हैं। उसे श्री काशी साहेब तत्त्वयुक्त में विस्तार से, श्री राम रहस्य साहेब भी

विस्तार से दया, क्षमा, सत्य, धैर्य विचार इनके पाँच-पाँच अंग से पच्चीस प्रकृत्तियाँ वर्णन करते हुये फिर विवेक, वैराग्य, गुरुभक्ति इन तीन गुणो के लक्षग ऐसे हितैषी ढंग से वर्णन किये है कि देह रहे तक उन सद्गुणो के घेरे में रहते हुये विल्कुल जड़ासक्ति मान गुमान सर्व नष्ट होकर जीवन्मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है और वह सव स्थिति हंस देह नाम से प्रसिद्ध है। हंस देह के रहस्यो को लेते हुये भी प्रारब्ध का सम्वन्ध वने रहने से कभी वाहर-भीतर भुलावा के संस्कार उदय होने का सम्भव होता रहता है। तहाँ स्वरूपवोध-निष्ठ पारखी सन्त उस हंस देह का भी द्रष्टा होते हुये शुभ गुगो का भी प्रमाद न कर अत्यन्त निर्मद और निर्विकार स्थिति प्राप्ति करते हे। "आपा तजै हरि भजै नख शिख तजै विकार। सब जीवन से निर्वैर रहै, साधु मता है सार" ॥ देखिये त्रिजा ने इसका अर्थ—विचार, शील, दया, वीरता इन चार लक्षणो के युक्त मनुष्य होता है। जब शुद्ध मनुष्य हुआ तो गुरुपद स्वरूपस्थिति का सोई अधिकारी होगा है। इसका वर्णन रामरहस्य साहेव मानुपविचार मे किये है, वही से मनन कीजिये। निर्पक्ष सत्यज्ञानदर्शन के जीवन्मुक्त प्रसंग मे मुक्त रहस्य वर्णन हुआ है। वह सव जीवन्मुक्त के लक्षण हैं। जैसे वही चावल आँटा दाल को कई प्रकार से व्यंजन वनाकर खाया जाता है। उन सवो का हेतु शरीर में शक्ति लाना ही है। इसी प्रकार उन्ही सद्गुणो के कही पाँच, कहीं आठ, कही पच्चीस, कहो विवेक फौज, कही (१९) उन्नीस, कहीं हंस देह, कहीं साधु सम्पत्ति, कहीं मानुप धर्म मे स्पष्ट किया गया है। सवका हेतु है कल्याग के रहस्यो का सुझाव और तहाँ एकरस टिकाव वनाना। कल्याण इच्छुक हंस या पारखी सन्त वड़े गुगग्राही होते हैं, सदा हंसवत क्षीर रूप सद्गुण ही चुनते रहते हैं। इस ग्रन्थ में (१९) उन्नीस लक्षगो के अंदर जीवन्मुक्ति स्थिति के लक्षण वताये गये हैं, उनका सद्गुण शतक में विस्तार देखिये। संक्षिप्त मर्म निम्न प्रकार है—

विवेक युक्त १—सद्गुरु की उपासना, इससे
होकर स्वरूपस्थिति को जीव प्राप्त होता है। २—[illegible]
मुख्य सम्पत्ति है। ३–दया से किन्ही प्राणियों का [illegible]
निरन्तर तिनकी भलाई ही का लक्ष्य आ जाता है।
शहन होता ही है, वल्कि कोई तलवार लेकर शिर काट[illegible]
कष्ट देने की गंध तक नही आती। ५-सन्तोष तो मार्[illegible]
का प्रयोजन ही नही रखता [illegible] ६—सत्य तो सदा [illegible]
वाहर मन कर्म वाणी मे [illegible] है। ७—[illegible]
सूर्य के समान है। [illegible] क पछोर [illegible]

८–धीर तो कुसग कुमार्ग कुभावना कुसंकट मे धँसने ही नही देता। ९–वीर तो वाहरी प्रलोभन और भीतरी मनोमय के खिचाव मे कभी पडने ही नही देता, परमार्थ मे नित-नित साहस, हिम्मत श्रद्धा वढती ही जाती है। १०–शील तो कठोर पक्ष आपास्वार्थी विषय व्यवहार को चूर चूर कर डालता है। ११–विचार धारा को जिसने ग्रहण किया उसकी दृष्टि मे प्रतिक्षण जगत भोग सब प्रवल दावाग्नि के समान दिखाई देकर हरदम इससे छूट के स्थिति की ही लगन बढ़ जाती है। १२–निर्मान मे किंचित किसी पद का लेश नही ग्रहण होता, क्योकि स्वरूप सर्व–मदो का द्रष्टा एकरस है। १३–निष्काम-पूर्ण स्पर्श अष्ट मैथुन का त्याग करना ही जहाँ का मुख्य व्रत होता है। १४–अक्रोध—निर्वाह सतुष्ट होने से तामस की गंध ही नही। १५–निर्लोभ–माया सग्रह रहित। १६–निर्मोह–प्राणी-पदार्थो की अनस्थिरता समझ के उदासीनता युक्त स्ववश रहना। १७–निर्भयता–इसे ही लेकर वो जीवन्मुक्त या परमार्थी पुरुष सत्मार्ग मे डटे रहते है, वहा किन्ही नाशवान चीजो के मिलने-बिछुडने का भय नही। १८–आसक्तियो का दमन ही तो जीवन्मुक्त का मुख्य व्यापार है। १९–प्रतिष्ठा की खुशी मान का छेदन करते हुये स्वरूप बोध वल से सदा निर्विकार स्वरूप भाव मे ही जिज्ञासुजन स्थित होते है। ये उन्नीस (१९) लक्षण जिसे सत्सग सद्ग्रन्थ स्वानुभव द्वारा महान प्रयत्न से प्राप्त हुये जो इन्ही मे तद्गत हो वह ही जीवन्मुक्त है। इसी को या अन्य हस गुणो का या सत्साधनो को कही कम-विशेष लक्षणो से अनेक प्रकार वर्णन हुआ है। सबका साराश यह है कि स्वरूपबोध तत्पर पुरुषो मे कोई भी दुर्गुण-दुराचार आसक्ति ममता, राग-द्वेष, कलह-कल्पना, प्रपच भाव नही होता। यद्यपि उधर देहोपाधि युक्त कुछ विकारो का आना असम्भव नही है, किन्तु उन्ही विकारो को वुहारने के हेतु हो तो सर्व हंस रहस्य, मानुष धर्म जीवन्मुक्त के लक्षण, मानस विचार, विवेक फौज के अनेक प्रकार वर्णन तथा ग्रहण आचरण कल्याणार्थी जन करते ही रहते है। जिन संतो के समीप रहने से तिनके भाति-भाति निर्णय सुनने से पतित से पतित जीव सदाचरण युक्त वन जाते है, उन विचारवान सतो मे राग-द्वेप, ममता-आसक्ति का आक्षेप कैसे वन सकता है ? किन्तु वहुत से अवोध अज्ञानी मनुष्य गुरुपद बोध रहस्य सत्सग विचार का महत्व न जानकर इधर-उधर कलह-कल्पना मे ही अमूल्य समय नष्ट करते रहते है। हमे उस पर ध्यान न देना चाहिये। उसमे यह विवेक है कि सिद्धात वोध रहस्य धारण मे एक समानता हो सकती है, किन्तु देहो का प्रारब्ध भोग भिन्न-भिन्न देश काल मे होने से, उनके प्रारब्ध सम्वन्धित देश काल अनुसार व्यवहारो मे कुछ भिन्नता रहेगी ही। 'शब्द मिलावा मिलत है, देह मिलावा

नाहि ।" किन्तु सिद्धात बोध रहस्य में बराबर रुचि आचरण साधन तत्परता रहेगी । अब हमारा कर्तव्य होता है कि जीवन्मुक्ति के रहस्यो को शीघ्र हसवत ग्रहण कर अपना कार्य बना के कृतार्थ होवें । अन्य कोई गहे या न गहे । स्वतन्त्र स्ववश स्थिर निर्विक्षेप गुरुपद रहस्यो के अन्दर एकरस टिकना ही चाहिये । हम मनोमय शूल रोग से पीड़ित हैं । उसकी दवा भी हमे मिलती जा रही है । तो क्या कारण है कि हम दूसरे की तरफ ख्याल करे ? वो दवा नही पीता तो हम क्यो पीवें या अन्य पिया या नही ? इस पटैती से तो यह मालूम होता है कि हमे मनोमय सम्बन्धी शूलों का सन्निपात ग्रसित हो जाने से ख्याल ही नहीं है । सन्निपात विभ्रान्त अवस्था तो और विशेष विवशता दुख का कारण है । अतः ध्यान देकर सत्संग सद्ग्रन्थ सद्गुण ग्रहण करने पर इन भूल कसर विकारो की आप ही सफाई हो जायगी । "जस जस परखहु फीका होई । व्यापै न काल कला पुनि कोई ।।"

साखी—"शुभ गुग साथी सबन के, स्वारथ औ परमार्थ ।
बिन तेहि के सुखिया कवन, निशदिन बिबश अनाथ ।।"

शुभाचरण मे प्रीति तभी होगी, जब निम्न बाते निश्चय हो—१— अविनाशी जीव को संस्कार के अनुसार पुनर्जन्म कर्म फल होता है । २—विषय विलासो से अन्तर तृप्ति नही हो सकती । ३—यथार्थ सत्य प्रिय व्यवहार धर्म भक्ति का ज्ञान स्ववश रहे हुये वैराग्यवान सत मुमुक्षु द्वारा होता है । सदा सत्य शोधक सत्य निष्ठा भोग-विलास आवर्ण रहित एकान्तवासी निष्प्रपंच सदाचारी स्वरूप विचार मे लीन ऐसे महात्मा विवेकी पारखी सन्त द्वारा निर्णीत वचन और तिनके रहस्य सर्व के हितैषी होते है । ४—सर्व का निश्चय कर्त्ता परीक्षक अपना स्वरूप सत्य है, वह ही राम है । ५—दुर्गुण दुराचार वासना का त्याग सत्साधन ग्रहण से हो जाता है और नित्य जीव मुक्तिपद को प्राप्त हो जाता है । ६—परिणाम मे दुर्गुण दुराचार आसक्ति ममता न बढ़े वे सर्व ही सदाचरण है । जिनका फल अन्तर शान्ति स्ववश उपरामता-स्थिरता, तृप्ति और निर्वासनामई सत्य स्थिति है ।

"उत्तम मध्यम कनिष्ठ जो, सबही हित को साध । निज-निज श्रेणी से चले, करते दुख को बाध ।।" देखिये ! सद्गुण शतक साखी ५६ मे इसका विस्तार अर्थ । इसमें गृहस्थ और मुमुक्षु (ब्रह्मचारी) तथा वैराग्यवान संत सबके लिये सुधार विचार का उत्तम प्रबन्ध वर्णन है । अपनी अपनी श्रेणी के अनुसार सब कोई सुधारपथ की ओर चलते हुये पूर्ण परीक्षा प्राप्त कर नित्य गुरुपद में एकरस विराजेगे ।

दोहा--"उत्तम अरु चाण्डाल घर, जेहि दीपक उजियार।
तुलसी मते पतंग के, सभी ज्योति इकसार।।"
"वालक जो आयकर कहे, वाजिव जो कोई वात।
उसकी भि मानने मे है, उनको उजर नही।।"

अव बालक की भी हितैषी बात गुणवान ले लेते है तो सत्यन्यायी सतो का निर्णय तो प्राण प्रिय लगेगा ही ? एव जव यथार्थ निर्णय मे प्रेम वढे तव बोध-रहस्य पुष्ट होगा।

साखी—"गुणिया तो गुण ही कहै, निर्गुणिया गुर्णाह घिनाय।
वैलहि दीजै जायफर, क्या वूझै क्या खाय।।
सशय सव जग खण्डिया, संशय खण्डे न कोय।
सशय खण्डे सो जना, जो शब्द विवेकी होय।।" बीजक।।

इस प्रसंग का तात्पर्य है–हम सब विमल से विमल सत्सग, सद्विचार, सद्ग्रन्थ सदाचरण मे प्रेम करे और जो दूसरा इनमे प्रेम करता हो, तो उनके पथ मे विघ्न-बाधा न छोडे। हित की वात दिखाने की कोशिश की गई है, उसे ग्रहण करना आपकी मर्जी पर है।

उपरोक्त सर्व सत्य निर्णय का लक्ष्यांश

कोई भी नर नारी क्यो न हो, १—सवकी भलाई उच्चता सद्गुण सदाचार से ही है। २—जगत सतत प्रवाह रूप अनादि है। ३—यह चैतन्य-रूप राम सत्य स्वतन्त्र है। ४—पुनर्जन्म कर्म फल होना, वासना-आसक्ति त्याग से सदा के लिये मुक्त होना नि सदेह है। ५—जड़ाध्यास असत्कर्म त्याग करने मे कायर न बन रणधीर बनना परम पुरुषार्थ है। ६—हर प्रकार मन इन्द्रियो को रोक कर अन्तरमुख हो स्वरूप मे शात होना ही सर्व शिरे लाभ है। ७—गुणग्राही होना यथार्थ रहस्य युक्त यथार्थ वक्ता सद्गुरु को शरण मे जाकर अपना शीघ्र उद्धार करना जीवन फल है। इन्ही निर्णयो का इस सद्ग्रन्थ मे अनेको प्रसग से वर्णन हुआ है।

साखी—"पारख सवको थीर पद, ठहरि रहै सत्सग।
मन माया कृत गुणन को, देखै मिथ्या भग।।
काल अनेकन रूप से, जीवहि रखे भुलाय।
दयाल एकै रूप ते, साधु गुरू कहाय।। प० गुरुवोध।।

यदि सत्सग सद्ग्रन्थ स्वानुभव से पारखबोध हो गया। पुन उस बोध भाव को वारम्वार विवेक रूप अभ्यास न करते रहा गया और एकरत्ता शुद्ध रहस्य पारखस्थिति का घेरा नियम सयम दृढ विवेक वैराग्य युक्त वर्ताव के अन्दर न रहा गया, तो वुद्धि विपरीत होकर स्वरूप स्थिति से विचलित हो

जाना देहोपाधि रूप भ्रम स्थल मे सहज ही है "काको रोवो गैल बहुतेरा, बहुतक मुवल फिरल नहि फेरा।" भँवर जाल बकु जाल है, बूडे बहुत अचेत। कहहि कबीर ते बाचिहै, जाके हृदय विवेक ॥ नित खरसान लोहा घुन छूटै, नित की गोष्टि माया मोह टूटै ॥" साराश—जीवन भर सत्सग सद्ग्रन्थ सद्विवेक मे लगन बढती ही रहनी चाहिये।

गुरुदेव संत और मुमुक्षु से एक निवेदन

इस दास द्वारा जो कुछ अब तक लिखा गया है, आगे जो कुछ आप देखेंगे, उसमे जो कुछ विशेषता, उत्तमता है, वह मुख्य बोधक सद्गुरुदेव की दयादृष्टि और परम नि स्वार्थ सहायक संतजन तथा मुमुक्षुओ की ही परम सहायता है। ग्रंथ प्रकाशन की सब प्रकार शुद्धता मे नि स्वार्थ परोपकारी गुरुभ्राता सन्तजन तथा मुमुक्षुजन का ही परिश्रम विशेष है। अकेले यह दास कर ही क्या सकता था। आप सन्तो की परोपकारशीलता का मेरे हृदय मे स्मरण होता ही रहेगा। मूल शब्दो का अर्थ भाव सूक्ष्मता तो गुरुदेव के बताये बिना मुझसे कुछ का कुछ हो जाता, सद्ग्रन्थ भवयान और इस मुक्तिद्वार के बार बार अर्थ बताने मे आप सद्गुरुदेव को विशेष नियम सहित फिक्रयुक्त परिश्रम पडा है। चाहिये तो दास को आपके बिना परिश्रम ही आपके विचार अनुकूल एक बार समझाने से सर्व यथार्थ अर्थ लिख देना और उसी अनुसार पूर्ण रहस्य बनाना, पर इतनी बुद्धि हम मे कहाँ है ? छोटे बच्चे को आधार माता पिता है, वैसे मेरे धर्म रक्षक आपही है। अत अत में यही स्मरण होता है कि "प्रति उपकार करहुँ का तोरा। सन्मुख ह्वै न सकत मन मोरा ॥(रा०)
तथा दो०—जो कुछ उत्तम गुरु कियो, मध्यम दास की ओर।
दास से उत्तम जो बनै, दया दृष्टि गुरु तोर ॥

ऐसा समझ के कही कुछ मूल से अर्थ मे विषमता हो गई हो, तो मेरी भूल समझ के सुधार लीजियेगा तथा सन्त भक्त मुमुक्षु जन और भी इसके पढ़ने वाले पाठक गण हंसवत इस सत्य निर्णय को ग्रहण करके इसका पोषण रक्षण करते रहेगे, क्योकि यह आपही का सिद्धान्त है—'नीर क्षीर का करे निबेरा। कहहिं कबीर सोई जन मेरा ॥' 'जो कुछ है सो आपका, लीजै ताहि निबाहि ॥'

अविवेक पक्ष त्याग और विवेक का ग्रहण

विविध अनमिल मत पंथ ग्रन्थो का समुदाय कम-विशेष बुद्धि, संस्कार उत्तम मध्यम-कनिष्ट आचरण, शुद्ध एकरस विवेक, धुधलापन लिये अर्ध विवेक, पक्ष निष्पक्ष, भावनाये, गुणनिधि– दुर्गुण भण्डार, उपकार और ईर्ष्या की बाढ,

दुष्टता–साधुता, सहिष्णुता असहिष्णुता, ये सब परस्पर मानव समूह मे विरोधी भावनाये गति मति की विभिन्न धारा वेग से वहती हुई प्रत्यक्ष दर्शित हो रही है। ससार सघर्षमय दिख रहा है। इस दिशा मे प्रश्न हो कि कौन सा मार्ग कल्याणकारी है ? तो उत्तर मे यही कहना होगा कि सत्यासत्य परीक्षा करके ही सत्य का ग्रहण असत्य का त्याग करना चाहिये और स्व स्व चरित्र पावन बनाकर सुखी होना चाहिये।

नीर क्षीर का करे निबेरा। कहहिं कबीर सोई जन मेरा ॥ (बीजक)
'संत हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार ॥' (रामा०)
सबते साँचा भला, जो साचा दिल होय।
साच बिना सुख नाहिना, कोटि करै जो कोय ॥ (बीजक)

ऐसे गुण ग्राहीपन मे जिनकी विशेष अथवा सामान्य अभिरुचि है उन सज्जो के लिये सद्गुरु सत प्रथम से ही सकेत देते रहे है यथा—

करहु विचार जो सब दुख जाई। परिहरि झूठा केर सगाई ॥
कहहिं कबीर गुरु सिकली दर्पण। हरदम करहि पुकारा ॥
भूल मिटै गुरु मिलै पारखी, पारख देहिं लखाई।
कहहिं कबीर भूल की औषध, पारख सबकी भाई ॥ (बीजक)
सदा विचार करहु मोरे भाई। जौ लौ देह बिखरि नहिं जाई ॥
(निर्णयसार)

अनन्त शास्त्रं बहुलाश्च विद्या,
अल्पश्च कालो बहु विघ्नता च
यत्सार भूत तदुपासनीयं,
हंसो यथा क्षीर मिवाम्बु मध्यात् ॥
(नीति संग्रह)

हाँ, तो हम जिस विवेकोदय और विवेक धारण की बात चला रहे है वह हम और हमारे गुरुदेव ही एक मात्र निर्णय कर रहे हो, ऐसी बात नही है। यह तो सार्वभौमिक दृष्टि से कथन किया जा रहा है, यहाँ एक सद्ग्रन्थ, एक गुरु, एक सन्त-महात्मा एक समय की बात नही है। सब काल, सब देश, सब यथार्थ सन्त-गुरु, सब सद्ग्रन्थ, सर्व सद्विवेक—चाहे अपना हो चाहे अन्य सर्व का हो—छोटे-बडे अपना-पराया सर्व सतसग शाखा के अन्तर्गत होने से सर्व कल्याण हेतु ग्राह्य है, स्वीकृत है। जहाँ कही जिस देश काल, जिन सद्ग्रन्थो, जिन महात्माओ सन्तो गुरुओ या निज विवेक बल से मानसिक दुखो का सदा के लिये निवारण होकर एकरस अविचल सत्य स्थिति की प्राप्ति हो जाय वह वहाँ सम्माननीय, आदरणीय हुआ, होता है, होता रहेगा।

'मन सायर मनसा लहरि बूडे बहुत अचेत ।
कहहि कबीर ते बाचिहै जाके हृदय विवेक ।।'

पूर्ण विवेक तो वही कहा जा सकता है जिसमे १—सशय न हो, २—करने के पश्चात पश्चाताप न हो, ३—अन्याय बेईमानी बलात्कार हिसादि न हो, ४—अपने और दूसरे सर्व की हितकारी साधनो से घट पूर्ण हो, ५—लौकिक भूषग सहित पारलौकिक शुद्धि के सूक्ष्म विचार अवगत हो— इस विवेक विषयक लेखक प्रवरो के निम्न प्रकार सुधी वाक्य स्मर्ण योग्य है ।

सुमन-संचय

(गद्य-प्रभा से संग्रह)

ज्ञान—राशि के संचित कोष ही का नाम साहित्य है ।

(पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी)

अब तुम्हे क्या करना चाहिये, इसका ठीक ठीक उत्तर तुम्ही को देना होगा । दूसरा कोई नही दे सकता, कैसा भी विश्वास पात्र मित्र हो, तुम्हारे इस काम को वह अपने ऊपर नही ले सकता । हम अनुभवी लोगो की बातो को आदर के साथ सुने, बुद्धिमानो की सलाह को कृतज्ञता पूर्वक माने पर इस बात को निश्चित समझ कर कि हमारे कामो से ही हमारी रक्षा व हमारा पतन होगा, हमे अपने विचार और निर्णय की स्वतन्त्रता को दृढ़ता पूर्वक बनाये रखना चाहिये । (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल)

परन्तु जो साहित्य मनुष्य समाज को रोग शोक, दारिद्रय—अज्ञान तथा परमुखापेक्षिता से बचाकर उसमे आत्म बल का सचार करता है वह निश्चय ही अक्षय निधि है ।" (प० हजारी प्रसाद द्विवेदी)

सच्चे प्रयत्न कभी हमारे व्यर्थ हो सकते नही ।
ससार भर के विघ्न भी उनको डुबो सकते नही ।।
क्या साप्रदायिक भेद से भी ऐक्य मिट सकता अहो ।
बनती नही क्या विविध सुमनो की भला माला कहो ।
आचार मे कुछ भेद हो पर प्रेम हो व्यवहार मे ।
देखे हमे फिर कौन सुख मिलता नही ससार मे ।।

(मैथिली शरण गुप्त)

मै प्रत्येक सुखाभिलाषियो से पूछता हूँ कि जब तुम्हे कोई सुख नही प्रतीत होता और दुख भी नही होता तब ध्यान देकर देखो क्या रहता है ? तुम समझो या न समझो पर जब सुख या दु.खानुभव नही होता तब केवल शाश्वत शक्ति रहती है । उसका योगानुभव इच्छा तथा द्वेष की सीमा से ऊपर उठने पर हर समय हो सकती है । (पथिक जी महाराज)

भाषा भास्कर ग्रन्थ मे शात स्वरूप दीक्षित एम० ए० ने लिखा है— 'मनुष्य की गरीबी दूर करने के लिये विज्ञान कोई कसर नही छोडी है। वह उसे कार्य करते हुये नही देख सकता है। एक स्वामिभक्त सेवक की भाँति विज्ञान हर समय सेवा करने को तत्पर रहता है। परन्तु किसी एक दोष होने के कारण ही उसकी सहस्रो उपलब्धियाँ एक मानव विनाश करने मे समर्थ हो गयी है वडे-वडे राष्ट्र अपने सापने अविकसित देशों के नागरिको की महत्वाकाक्षा को समझ ही नही पाते। उसकी स्वतन्त्रता समाप्त करने का यत्न करते है। वेचारे निरीह नागरिको को जन धन की हानि के साथ-साथ प्राणो से व चित कर दिया जाता है। उनकी सम्पूर्ण शान्ति मानव कृत क्रियाओ को क्षण भर मे समाप्त कर देती है। यह है वैज्ञानिक आविष्कार का एक दृश्य।……जहा मानव द्वारा कल्याणकारी निर्माण हुआ है। वहाँ अहित-कर पदार्थ भी पैदा किये है… । वैज्ञानिक परमाणु एवं उद्जन बम क्षण भर मे यौवन से इठलाती प्रकृति के यौवन को क्षण भर मे समाप्त कर देते है। जिसे देखकर विज्ञान वरदान न कहकर अभिशाप ही कहना पडता है। ऐसी वस्तु से क्या लाभ जो स्वय निर्माण कर्ता के ही प्राण सहारक वन जावे।

धर्म तथा आध्यात्मिकता से रहित विज्ञान मनुष्य को हिंसक तथा स्वार्थी बना देगा। और विज्ञान से रहित धर्म मनुष्य को अधविश्वासी, ढोंगी तथा पलायनवादी बना देगा। जिस प्रकार मनुष्य को भोजन वस्त्र औषधादि गृह की आवश्यक……विज्ञान की आवश्यकता है, उसी प्रकार जीवन को शान्ति मय तथा सन्तोष पूर्ण बनाने के लिये दया क्षमा नम्रता आदि प्रदायक धर्म की आवश्यकता है।……आज का वैज्ञानिक अणुबम उद्जन बम तथा दूर प्रक्षेपणास्त्रो का निर्माण करके केवल मानव ही नही मानवता का नाश करने मे तुला हुआ है।……" इत्यादि—

(शाति स्वरूप दीक्षित)

'हमे यह न भूलना चाहिये कि हमारा प्रत्येक भला या बुरा कार्य देश को उन्नत या अवनत बनाता है……वह प्रेम क्या जिसमे स्वार्थो का वलिदान न हो, देशोन्नति का सबसे पहला रूप है आत्मोन्नति………।

(बाबू गुलाब राय)

विज्ञान : वरदान या अभिशाप

"आचार्य विनोबा के अनुसार जब तक विज्ञान की सगाई अहिंसा के साथ नही हो जायेगी और जब तक ससार के सभी राष्ट्र अपनी स्वार्थपरता-पूर्ण कुत्सित भावनाओ का परित्याग न कर देगे, अपनी घृणित चेष्टाओ और

कुभावनाओ की इति श्री नही करेगे जब तक उनके दुर्भावो और पापो की लाँछना विज्ञान को सहनी ही पडेगी।

इसलिये मानवीय सभ्यता की रक्षा एवं सवर्द्धना की दिशा मे जब तक पारस्परिक ईर्ष्या, घृणा, राग-द्वेष, प्रलोभन, दर्प का प्रदर्शन रुकता नही है तब तक विज्ञान का स्वार्थियो के द्वारा दुरुपयोग होता ही रहेगा और मानवता की पल्लवित खेती नष्ट होती ही रहेगी। आज विज्ञान का उपयोग मानवता के विकास और विश्व-बन्धुत्व की कडियो को जोडने की दिशा में किया जाय, तो कितना श्रेयस्कर होगा। अत विज्ञान को जन-जन का सेवक बनाइये। उसे संहारक के पद पर प्रतिष्ठित करके मानवता को कलंकित मत कीजिये विज्ञान वरदान है। उसे अपने स्वार्थो की पूर्ति के लिये अभिशाप न बनाइये।"

—हिन्दी पाथेय

"मेरे जीवन का उद्देश्य"

"लक्ष्यहीन जीवन, जीवन नही है। बिना उद्देश्य के भटकना, बिना पतवार के नौका मे बैठने के समान ही होता है। अत. जीवन में सफलता प्राप्ति के लिये सर्व प्रथम हमे अपने निश्चित उद्देश्य का अनुसंधान करना चाहिये। बिना लक्ष्य निर्धारित किये लगातार श्रम करते चलना उस राहागीर की तरह है जो मार्ग के दुखो और कठिनाइयो को तो पार करता जाता है, किन्तु जिसे अपने गन्तव्य का निश्चित बोध नही होता, अत. उसका श्रम निरर्थक सिद्ध होता है। ऐसे व्यक्ति को कोई बुद्धिमान नही कह सकता है।"

"हिन्दी पाथेय"

सादा जीवन उच्च विचार

'विचार ही मानव की सर्वोपम निधि तथा उसके अभ्युत्थान एवं पतन के कारण होते है। यदि साधन हीन होते हुये भी मानव उच्च विचारो का संबल ग्रहण कर जीवन-पथ पर अग्रसर होता है तो उसे सचमुच ही महान सफलता प्राप्त होती है। उसके समुन्नयन के मार्ग को भौतिक बाधाये नही घेर सकती। यदि घेर भी लेती है, तो वे कुहरे के उस धुंध की तरह साबित होती है, जिन्हे सूरज की किरण क्षग मात्र मे नष्ट कर देती है।'

—हिन्दी पाथेय

हा तो उपर्युक्त सबसे गुण ग्रहण करते हुये निज-निज ज्ञान धर्म की महान महत्ता समझनी चाहिये।

१—दुःख कोई नही चाहता। २—सुख इच्छा सब प्राणियो को है। ३—पुखो से तृष्णा ज्वाला न बुझती देखकर कोई-कोई सुखो को त्याग कर

शान्तपद चाहते है । ४— कोई-कोई निष्पक्ष संस्कारी मानव सत्य के खोजने मे सर्वगुण ग्राही वनकर सद्गुणो का सबसे चयन करते है । ५—सर्व दु:खो से छूटकर मोक्ष होने की दृढ अभिलाषा किसी-किसी को हो जाती हे । ६—वहुत से मनुष्यो जंतुओ के सवधो से जो यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है उसको सादर ग्रहण करते हुये अज्ञानभाव को त्यागते रहना । ७—अपरोक्ष स्वरूप वोध अमृतमय विवेकोदय का होना इन सातो वातो को देखते हुये—अपने भव वन्धन हारक साधनो को शीघ्र अपना कर स्ववश सिद्ध होना मानव जीवन का प्रगति पूर्ण मार्ग कहा गया है । अव कहने को अधिक आवश्यकता नहीं । आगे-आगे आप प्रस्तुत ग्रन्थ पढते हुये शुद्ध विवेक पुष्टिकरण विषयक इसके समस्त प्रकरण देखेंगे और रुचि अनुसार दिनोदिन इस ग्रन्थ या अन्य सर्व सत्यन्याय के सद्ग्रन्थ और गुरुसन्त-महात्माओ मे प्रेम पूर्ति द्वारा अपने स्वबोध वल से भव सिन्धु से पार पा जायेंगे । इसीलिये तो गुरु विशालदेव द्वारा स्पष्ट निष्पक्ष घोषणा हुई है ।

'चहे जहां जेहि गुरु रहे, चहे वरण कुल जौन ।
वोध रहस्य जेहि ठीक हो, जीव कृतारथ तौन ।।

हम वलात आपके शिर इस ग्रन्थ को थोपना नही चाहते । हम चाहे भी तो केवल हमारे चाहने से सव का काम हो सकता है ? हा आपके विचार मे मिलकर थोडा सा हम अपना विचार वता सकते है किन्तु कथन मात्र से भी क्या होगा ? जव हमारे भीतर सत्य सद्भाव और रहस्य उदारता एवं सर्व हित-भावना न होगी तो कुछ भी प्रभाव नही पड़ सकता । अतएव समस्त कथन के साथ हमें अपनी सच्चाई को देखते रहना है । इतने पर भी एक स्वाभाविक सी वात है कि—

'जो जेहि मारग मे रहत, तेहि दिशि लावन हेत ।
निज निज प्रेमी के मिलत, तैसी शिक्षा देत ।।

इस भाव मे जिस रहस्य और सिद्धात द्वारा निज दुःख दूर हुआ है उसको अधिकारी प्रति कहते एवं धारणा बनाते रहना एक सर्वहितचितना की सही दिशा पर चलना है ।

इसीलिये सत्पुरुषो का यह निर्विकार सर्वोदय विचार है—

'हितचिंतक सवके वनौ, जौन दशा मे होउ ।
उत्तम मध्यम कनिष्ठ पर, करौ न ईर्षा कोउ ।।

(सद्गुण शतक)

इस प्रकार सद्भाव प्रेरित यह सत्य न्याय का सद्ग्रन्थ आप्तवक्ता द्वारा आपके सामने प्रस्तुत है आपका जैसा विचार हो उस प्रकार इसे समझे अन्त से भाषा जनित त्रुटियो के लिये क्षमा प्रार्थी हूँ।

विनम्र टीकाकार
प्रेमदास

सत्य दर्शन

हो सद्‌वोध हमे अति प्यारा,
जीवन धन सर्वस्व हमारा ॥ टेक ॥

तुम झूठे यह किसको भाये। सत्य सत्य प्रिय शोधक लाये ॥
जानि बूझि धोखा को धारा ॥ १ ॥

दुख छूटन हित सबकी गति है। सावधान शोधत सव मति है ॥
भिन्न भिन्न प्रति जीव विचारा ॥ २ ॥

ठोकर खाय खाय के ज्ञाना। सव धोखा से उलटि पिछाना ॥
सव कल्पक को आहि अधारा ॥ ३ ॥

चाह वेग को डारि हो थीरा। हो एकान्त स्वत निर्भीरा ॥
तव ठहरै सद् शांत अभारा ॥ ४ ॥

जाकी जस मति तस वल जाये। सब कुछ पूरण शक्ति दिखाये ॥
हो नित तृप्त स्वबल निरधारा ॥ ५ ॥

अभिलाषा सव पूरण क्षण मे। अजर अमर अविचल निज रग मे ॥
गुरुपद सोइ निज शोध सँभारा ॥ ६ ॥

जो कबीर पारख बतलाये। सकल सत मत जो समझाये ॥
वहि विशाल पद भेद निवारा ॥ ७ ॥

जाहि सग साधन तव काजा। निर्भय धीर वीर तहँ भ्राजा ॥
जीवन धन्य प्रेम बलिहारा ॥ ८ ॥

मुक्तिद्वार मंत्रणा

भूल भरम भवसागर मे, ये डूब रहे बिलखाय रहे।
सन्त दुखी देखे जीवन को, तब मुक्तिद्वार सुझाय रहे॥ टेक॥

शुभ गुण साथी जीव के, जहाँ चोर मग माँझ।
आयु भर रक्षा करे, जब तक अत न साँझ॥
समता सजग शील की नौका, खेय के पार लगाय रहे॥ १॥

सब दिन ये सबही रहे, दिनौ-रात यकतार।
तीनो काल प्रत्यक्ष है, जग अनादि व्यवहार॥
जड़-चेतन दुइ वस्तु अनादी, उत्पत्ति हीन दिखाय रहे॥ २॥

कल्पक सब अनुमान को, करै तत्व प्रत्यक्ष।
तिन दोनो से रहित जीव, स्थित सदा सो अक्ष॥
मन विकल्प व्यापारो को' व्यापारी जीव चलाय रहे॥ ३॥

सुखाध्यास को मित्र लखि, तन उत्पत्ति - सहार।
जब दुख देखा ताहि मे, मेटि सोई व्यापार॥
भ्रांति जो भास भार लखिडाले, पारख सत्य सदाय रहे॥ ४॥

सदमग गामी शूर जो, साहस दिन-दिन दून।
कादर बनौ न भूल कोइ, सिद्धि काज दुख भून॥
उत्पीड़न आशान्ति छुटी, निज निर्भय पद को पाय रहे॥ ५॥

सब मानन्दी भूल से, पारख पाय नशाय।
आवागमन को हेतु नहि, जो निज ही टिक जाय॥
यात्रा रेल-पथिक सम वर्ते, काहु मे नाहि भुलाय रहे॥ ६॥

पाय मानुष तन वृथा न खोवो, दुख से छोरि गले।
लहौ विशाल परम पद अबकी, सुयश सुपास थले॥
मजुल कमल प्रेम उर विकसित, बोधक सूर्य उगाय रहे॥ ७॥

अर्पण

हे विश्व संघर्ष से पृथक ! एकान्त वासी, कामना के ध्वस कर्ता, उपराम स्ववश परम वैराग्यवान सदाचारी, नित्य सतुष्ट जीवो पर अनुकूल, जग-सजता की मूर्ति, सहनशील सम्पन्न जीवो के मन गति जाननहार-विविध साधन-बोध भर्ता यथार्थ निर्णयकर्त्ता व्यवहार मे शुद्ध ग्रहण सत्य स्वरूपस्थित यथार्थ सद्गुण भण्डार, निराधार पारखरूप एवं कल्याण लक्षित, सद्गुरु कबीर साहेब । व गुरुपद स्थित सतजन तथा प्रत्यक्ष बोधकर्ता सद्गुरु विशाल साहेब ! आप गुरुवर की दृष्टि से जो देखते है तो कितना सहन प्रेम नेम कितना अर्पण बलिदान निछावर कितनी तद्गतता, सजगता चतुरता कितनी एकरसता अथक परिश्रम जीवो मे है जिसकी इति नही । केवल जिसमे दृढता से सुख निश्चय है उसी के लिये उपरोक्त बाते, काम भावना तद्गत नरनारि समूह, क्रोध भावना एव लोभ-मोह इत्यादि पच भोगाभ्यास हेतु सब कुछ करते-सहते, कोटि-कोटि तन मन धन निछावर करते रहते है, किन्तु भ्रान्ति वश उल्टा मार्ग चलने का परिश्रम करते हुये भी इच्छा शातिरूप यथार्थ फल नही मिलता । अब हे साहेब ! आप के दर्शन से सत्संग से दृष्टि मे कुछ सारासार की सूझ हुई, यथार्थ मार्ग मिला, सत्य स्वरूप मे जगत वासना नही है, सारी वासनाये भूल और आसक्ति सम्बन्ध से उठती है अब हम सम्पूर्ण वासना- कामनादल को पछाडने के लिये उतना ही प्रयत्न गहै-सहै जितना मनजाने सुख के लिये पूर्वोक्त अज्ञ जीव करते है । बस नित्य पारखस्थिति रूप कार्य पूर्ण हो जायेगा, वह सब निर्चाह निर्लोभ नि.शोक आदि सद्गुण सामग्री आपकी कृपा और यत्न से निश्चय ही प्राप्त होकर स्ववश रहेगी । इसके लिये धर्म भक्ति निष्काम गति मति आपके रहस्यो मे हम सबो की सद्भावना बनी रहे, अब आप और आप सदृश्य सतो के भवतारक चरण कमलो मे बारम्बार शिर धर के अपना माना हुआ नाशवान तन मन धन निछावर करते हुये बदले मे सर्वोपर गुरुपद नित्य पद एकरस स्थिति रहस्य धारणा की याचना हम सब दास करते है, यद्यपि आप नि.स्वार्थ रत सहज ही करुणारूप है तद्यपि हम सब अपने अत करण पवित्र करने के लिये आपके सिद्धात अनुकूल भक्ति धर्म आचरण साधन समता क्षमा शीलता सत्य शब्द मनन प्रेम-नेम के निरन्तर गर्जी होकर आपसे सद्गुण प्राप्ति की ही अभिलाषा रखते है सो आप समर्थ सत सद्गुरु अनुचरो पर कृपादृष्टि करेगे ही, यही निश्चय है ।

दोहा—दासन से होवै कहा, बिन पाये गुरुज्ञान ।
गुरु का गुरु के सामने, गुरुपद शुद्ध रहान ।। १ ।।
जो सतमारग महँ चलै, सो सब गुरु प्रताप ।
गुरु दाया से काज बनि, हन्ता दलि गुरु जाप ।।

आप गुरुवर के बोध पूर्ण वचनामृत निर्णय के सदा इच्छुक—

श्रीपाल दोनो (इज्जतपुर-जियापुर) पूरणलाल,
रामलाल, दयाली, दस्तगीर, धर्मेसुर,
श्री ३ बडी महारानी पद्मकुमारी (पद्मनिवास) आदि
नेपाल और बाराबकी के समस्त नेमी प्रेमी वर्ग ।

द्वितीय प्रकाशन में अर्थ अर्पण करने वालों की नामावली

नाम	स्थान	प्रदेश
परमार्थ दास	सत-समाज बाराबकी	उत्तर प्रदेश
रक्षा दास	,,	,,
क्षमा दास	,,	,,
गुरुमन दास	,,	,,
गुरुसहाय दास	,,	,,
गुरुगम दास	,,	,,
धीरज दास	,,	,,
एकरस दास	,,	,,
उदार दास	,,	,,
अभय दास	,,	,,
उपराम दास	,,	,,
गुरुप्रकाश दास	,,	,,
सजग दास	,,	,,
प्रवेश दास	,,	,,
निष्ठा दास	,,	,,
गुरुमिलन दास	,,	,,

नाम	स्थान	प्रदेश
निर्मान दास	संत समाज वारावकी	उत्तर प्रदेश
वैराग दास	"	"
भक्त हरिनाम सिंह	वारावकी	"
सतशरण दास	काठमाडू	नेपाल
आज्ञा दास	"	"
शैला कुमारी	"	"
दिल कुमारी	"	"
प्रभा कुमारी-सेनो दर्वार	"	"
मिनट	"	"
जुलाई	"	"
गीता	"	"
विवेक वाई	"	"
चेतन वाई	"	"
सरिता वाई	"	"
गुणवती वाई	"	"
शतरूपा	"	"
सेवा दास	"	"
रतन वाई	"	"
गुरुसहाय दास	चिवरी रायपुर	म० प्र०
श्री कवीर धर्म प्रचार समिति	डोमा	"
समस्त सेवक गण	"	"
नारद दास साहू	"	"
हेमिन वाई	"	"
मगल राम	"	"
दानी राम	सिवनी कला	
चुरवा वाई	"	"
जाना वाई	पोटिया डीह	"
हुकुम लाल साहू	कुटेना	"
रूप दास	शाहवाडा वस्तर	"
ब्र० छविलाल	पारख प्रकाशक कवीर संस्थान	इलाहावाद

अनुक्रमणिका

३—स्वतन्त्र जीव शतक २५५

४—बन्ध मोक्ष शतक ३३७

५—निवृत्ति साहस शतक ४२७

६—शांति शतक ५२७

—:—

सम्वाद

एक अन्तरचक्षु नामक युवक जब पहिले पढ़ता था तो उसके विद्यालय जाने के मार्ग मे सत्संग आश्रम पड़ता था। कभी-कभी उसे सत्वार्ता की भनक कान मे पड़ी थी। उसे सत्सग करने की तीव्र लालसा जग रही थी। अब अवकाश पाकर अपने साथियो सहित वह भी मुक्तिद्वार के कथारम्भ मे नित्य उपस्थित होने लगा था तहाँ उपदेशक सत अन्तर चक्षु सहित सबो को यथा-योग्य शिक्षा उपदेश करते हुये कह रहे है—

युवक यंत्री तथा सर्व हितैषी मंत्र

प्रिय नवयुवक विद्यार्थीवृन्द तथा आधुनिक पठित नर नारी वर्ग ! तुम सबो ने प्रकृति भिन्न अविनाशी चैतन्य की ओर प्रतिपादक सिद्धांत का तो वहुत कम मनन किया होगा, क्योकि आजकल तुम्हारे कोर्स मे प्रकृति चरित्र ही का अधिकाश वर्णन है। उसे ही तुमने अध्ययन किया। टामसन, लैमार्क और डारविन की कहानियाँ तुम सब पाठको ने पढी, जो विकासवाद के आदि स्थापक है। कोलम्बस वास्कोडिगामा (जो देश का पता लगाने वाले यात्री है) फ्रासीसी वैज्ञानिक पैपिन (जो भाप की शक्ति का पता लगाने वाले) तथा सर जगदीश चन्द्र बोस और मारकोनी (जो विना तार के विद्युत तरगो के आविष्कारक हुये) क्लोरोफार्म के अनुसन्धानक सर जेम्स सिम्पसन, रसा-यनाचार्य डा० शान्तस्वरूप भटनागर की कहानियाँ पढी होगी। पढी ही नही वल्कि तुमने विज्ञान के अनेक प्रयोग सीखे, विज्ञान द्वारा तरह तरह के यंत्रो की रचना किये।

(१) प्रत्यामिन जो गाढे रस की भाँति होता है। उद्भिज वनस्पतियो का प्रत्यामिन हितैषी है। (२) कार्बोहाइड्रेट या माडी। (३) चिकनाई। (४) बिटामिन, अर्थात पोषक तत्व जो अकुरज पदार्थ मे ही पर्याप्त रूप से प्राप्त होता है। मनुष्य को शाकाहारी ही होना चाहिये। इसलिये मास या अण्डा सेवन की बिल्कुल आवश्यकता नही। जो मासाहार सज्जनो से निन्दित हिसा रूप है तथा रोग-शोक का घर है। (५) लवण। (६) जल आदि पौष्टिक पदार्थो द्वारा नाशवान शरीर मोटवाने-स्थिर करने की बहुत कोशिश किये, तुमने लेलिन और मार्क्स साम्यवाद तथा गाधी के जनतंत्रवाद सव कुछ समझे ठीक है ! तुम इन वातो मे बड़े ज्ञानी हो गये। संसार का सबसे वडा महाद्वीप

एशिया जिसमे वहुत देश है। उस एशिया के नक्शा का भलिभाँति अध्ययन किये, घूमे, साथ ही रोज के पत्रिका, अखवार, सिनेमा को पढ देख सुन करके तुम बडे बडे हर्ष शोक के तरगो मे मन को मुटाते रहे। यहाँ तक कि तुमने सर्व पृथ्वी के एक कोने का सन्देश दूसरे कोने में पल भर ही मे रेडियो या वायरलेस द्वारा अनुभव कर लिये। समुद्र मन्थन किये। आकाश पातालकी सैर किये। अपने देश के डिस्ट्रिक्ट बोर्ड (जिलो) के हाल तुमने भलीविधि जाने। हिमालय (एवरेस्ट) सवसे उच्च शिखर की कहानी पढकर आनन्द के हिलोरे लेने रहे। कई समाज एव पार्टीवन्दो मे रहे। डाक्टरी भी पास किये। सब प्रकार की चालाकियाँ भी तुमने सीखी। अपने सुख के लक्ष्य से क्या क्या न छान बीन किये ? सब कुछ किये। और भी स स्कृत के व्याकरण, साहित्य आदि मे शास्त्री, आचार्य तक हो गये। चिकित्सा शास्त्र विशेषज्ञ धनवन्तरि, परमाणु सिद्धात मे कणादि मुनि, गणित और ज्योतिष मे आर्य भट्ट तथा भास्कराचार्य, कर्म मीमासक ऋषि जैमिनि और पातजलि योग आदि भारतीय दर्शन विद्या, कला से भी परिचित हुये, इसमे कोई सदेह नही। श्रेष्ठ नरतन को पाये हुये बुद्धिमान एव सराहनीय हो। देखो ! हे नरजीव शक्ति सिह ! तुम्हारी प्रशसा सद्‌गुरु कवीरसाहेव इस प्रकार करते हैं कि साखी—"हंसा तू तो सवल था, हल्की अपनी चाल। रग कुरगे रगिया, तै किया और लग-वार ॥ (वीजक) हे जीव ! तुम्हारा स्वरूप ही ज्ञान से ठोस सवल शक्तिमान अखण्ड है। इसलिये तो तुम जड प्रकृति मे फूलते हुये भी शोधन की वुनियादी असर तुम्हारे साथ ही है। शोध शोध कर सुख के नाते से ही सारी क्रियाये करते हो। तुम जब जब नर तन धारण करते हो, तब तब अपने नित्य तृप्त अखण्ड स्वरूप के जानने की भूमिका मे आ जाते हो, परन्तु तुम अपनी चैतन्यता की कीमत को कुछ न समझ कर जड प्रकृति की चमक दमक मे ही फूल गये। यही तुम्हारी हल्की चाल है। अपना साधन विचार पारख रंग छोड के इन्द्रिय विषयो के परिवर्तनीय रगो मे रगकर अध्यासी वन के तुमने अपने असख्य खशम कायम कर लिये। कही तो सूर्य को सव कुछ मान लिये। कही जल थल अग्नि वायु के अनन्त कार्यो मे मस्त हो गये। उन्ही को सव कुछ मान लिये। कही अन्य परोक्ष कर्त्ता धरता कायम किये। "हंसा तू सुवरण वरण, क्या वर्णो मैं तोहि। तरिवर पाय पहेलि हो, तवै सराहो तोहिं ॥" यह बात विल्कुल सच है "अदभुद अगम औगाह रच्यो है, ई सव शोभा तेरे।' सबसे श्रेष्ठ होते हुये भी तुम उन्ही वस्तुओ मे राजी हो जो तुम्हारे हाथ सदा नही है, पल मे जब चाहे छिन लुट जाय, कट-दव जाय। जो तुम्हारे लिये रोगरूप तथा उपाधि है फिर भी तुम्हे तो विषय सुखाध्यास के नशे में सव

सच-सच मालूम हो रहा है। आओ थोडा सा पारमार्थिक लक्ष्य का भी तुम्हारी दृष्टि के सामने चित्रण करे। जिससे तुम्हे स्थाई सुख-शाति की प्राप्ति हो और जिस पर तुम्हारा सदा अखत्यार रहे। तुम इस पारमार्थिक क्षेत्र मे उतर कर देखोगे तो तुम्हारी सारी दौड धूप कल्पनाये मिटकर तुम चारो ओर से नित्य तृप्त सदा सन्तुष्ट पुण्यवान होकर अपनी अचल अजरामर महिमा मे स्थिरता पाओगे। आखिर तुम्हारी मानी हुई देह निश्चय ही छूट जायगी। इसलिये तन छूटने के पहिले ही तुम अपना सत्कार्य पूर्ण कर लो। देखो ! श्री कबीर साहेब कहते है—

हंसा प्यारे सरवर तजि कहं जाय।
जेहि सरवर बिच मोतिया चुगत होते, बहु बिधि केलि कराय॥
सूखे ताल पुरइन जल छाँडे, कमल गये कुम्हिलाय॥
कहहिं कबीर जो अबकी बिछुरे, बहुरि मिलो कब आय॥"

(बीजक–श०–३३)

तात्पर्य यह है कि नर तन छोड़कर फिर तुम्हारी स्थिति नही हो सकती। अस्तु अभी तुम अपना सत्य स्वरूप पिछानो।

भूला लोग कहै घर मेरा।
जा घर मे तू भूला डोलै, सो घर नाही तेरा॥

(वीजक–श०–८५)

एव इस जड तत्व के घर मे निवास किये हुये अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप को समझो। परलोकरूप पुनर्जन्म कर्मफल के सूक्ष्म सार रहस्य को धीरता पूर्वक सत्सग मे जाकर समझ के इन्द्रिय, मन जीतने के अनन्त लाभ को सम्मुख रक्खो। अहिंसा सत्य उदारता क्षमा के मार्गावम्बी श्रद्धालु पथिक बनो। दया धर्म परोपकारादि सम्पूर्ण धर्म के मच पर आरूढ होकर परम शोभा को प्राप्त होओ ! देखो ! बिना इन बातो का सेवन किये तुम्हारा हृदय कितना मलीन हो गया है ? उलट के अपनी बरबडता कुशारी सदृश वैज्ञानिक यन्त्रिक और समग्र वाचालता-खर खरता पर कुछ विचार तो करो। भूत वैज्ञानिक शक्ति देखने मात्र एक तरफ से सुख की कलई से जग जीवो को जगमगाता है, दूसरी किसिम-किसिम के सहारकारक यत्र गैस राजसी द्रव्यो का उत्पादन कर-करके सबको दुर्गुणो द्वारा उद्धत हिसक बनाकर सबका क्षय करता, यह सबको प्रत्यक्ष अनुभव है। मोटी दृष्टि से माना कि सर्दी, वायु, जल, थल, पहाडादि के नाप जोख कर लिये। परन्तु सारी विशेपता तुम्हारी वही धूल हो जाती है, जहा तुम बात-बात मे मनोवासना के वश तुच्छ प्रकृति प्रमाद मे सारे दुर्गुण दुराचारो को धारण करके नाचते रहते हो। पाखी के समान चर्म

फैसन की ज्योति मे उलझ-उलझ के जलते रहना, सदा कामी वन के ऐसे अनर्थ करना जिसका कुछ ठेकाना नही। परस्पर असहन प्रतिकूल कठोरवर्ती स्वभाव वनाय सबको पीड़ा पहुँचाते रहना, केवल देह ही सत्य समझ के सदा पासादि अभक्ष्य असयम सेवन करके सभ्य बनना, इन्द्रिय विलासिक रचनाओं का अधिक-अधिक प्रचार करके सबको निर्वल रोगी लाचार परवश कर देना और आप भी पशु भोगो मे अग्रगण्य होना फिर क्या हुआ ? माटी-पानी आग वायु को मथने से जो तुम अपने छोटे से इन्द्रिय, मन पर विजय न किये तो शूलरोगी या क्षुधित को सेज पर वैठाने न्याय तुम्हारी आन्तरिक दौड तृष्णा-अग्नि तो तुम्हे निरतर जला रही है। सोचो ! इन प्रकृति भोगो से अल्प सुख सम्भव भी हो तो विपयुक्त मिष्ठ भोजन के समान, फलत. मानसिक तृष्णा रोगो को वढाय दुराचरणो द्वारा परस्पर हिसा द्रोह क्षोह मदान्धता वश सदा दुख द्वन्द्व का ही अनुभव कराने वाला है। आश्चर्य तो यह है कि जो वाते शारीरिक, मानसिक, पारमार्थिक चेतन पक्ष उन्नति मे नितान्त बाधक, वेकार, निरर्थक है तिनको तो आज युवक पठित समाज अच्छाई समझ के उधर अग्र-गामी हो रहा है। जैसे विविध नशेवाजी, अनेक किस्म के फैसनवाजी, हिसा, लोभ, मोह, विकारोत्पादक—नाटक, सिनेमा, नाना खेल, मेहरापन, परिणामी क्षणिक चचल प्रकृति का अभिमान, श्रेष्ठता इसीमे वह अपनी सभ्यता समझता है और जो प्रकृति भिन्न अविनाशी सद्रूप का विचार सदाचार सत्साधन सर्वदा सबके हितकारी हे, उधर ध्यान ही नही देता, बल्कि मनोवासना की पूर्ति मे खलल देखकर सत्य धर्मपथ का हर प्रकार से रोक करना चाहता है। ब्रह्म-चर्य, दया, धर्म, सद्शास्त्र विचार—प्रकृति भिन्न अविनाशी का विवेक, क्षमा सत्य पोपण पुनर्जन्म-कर्मफल का निश्चय, वैराग्यवान सन्त महात्माओ को वेकार समझ के उनकी अवहेलना तथा तिरस्कार कर रहा है, यह उसका दुर्भाग्य ही है। इसमे मुख्य कारण आसुरी- विद्या की आँधी मे घबराते हुये भ्रम से प्रकृति —भूतवाद को अपनाय लेना ही है। प्रिय स्वजाति वन्धुओ ! होनहार युवक संघ तथा सम्पूर्ण नर-नारीवर्ग ! सचमुच में नरतन को पाने-वाले विद्या-बुद्धियुक्त आप भाग्यशाली है। आपके करतल मे वन्धन और मोक्ष की सामग्री उपस्थित है। चाहे तो विपपूर्ण विषयो का सेवन करके थोडी जिन्दगी मे सव अनर्थ पाप वन्धन शोक मोह बढाकर अन्त मे अनाथ असहाय की भाति चौरासी के कीडा वनो, अथवा सतसग प्रसंग द्वारा निज अविनाशी सत्यस्वरूप का विशेप जान प्राप्त करके विपयो के त्याग द्वारा सदा के लिये मुक्तपद प्राप्त कर अपना जीवन सफल करलो। "अब भी चेत करोगे क्या नहि। सब प्रकार क्या पतित हुये नहि ॥ गहो पतित पावन की शरना। अब

तो होगा तुम्हे सम्हरना ।। हमे शाति को पाना जब है । सद् रहस्य को लाना तब है ।।"

आइये ! अब इधर जरा ध्यान दीजिये ! कायिक, वाचिक, मानसिक निश्चयात्मक सम्पूर्ण कर्मो के सुधार विचार का विस्तार से "मुक्तिद्वार" मे अध्ययन करिये । १—गृहस्थ विरक्त नर नारी सर्व के सुख शाति हित सद्गुणो के विस्तार बाटिका मे घूमिये । २—गुण धर्मयुक्त जड़ और चैतन्य ये दो वस्तुओ के अनादि नित्य तत्व का सुधामृत पान कीजिये । ३—कर्मफल बन्ध-मोक्ष को दिव्यदृष्टि द्वारा देखिये । ४—अपना आप परम स्वतन्त्र स्वरूप धन को विवेकयुक्त प्राप्त कीजिये । ५—इन्द्रियाँ मन रूप उन्मत्त हाथी को स्ववश करने का तीव्र ज्ञानाकुश सम्हालिये । ६—ससार, जगतप्राणी, देह, मन के सम्बन्ध, से जीव के दुखपूर्ण दृश्य का स्पष्ट चित्र देखिये ! जिससे कि इससे भिन्न सत्यस्वरूप शोधन मे मन लगे । ७—अपना स्वरूप, देह सम्बन्ध, मोक्ष विचार, सब श्रेणियो के सुधार विचार, जीवन्मुक्तिरहस्य, ग्रन्थिछेदन, स्थित रहस्य, सन्त चरित्र, भक्त नीति, सत्य स्वय स्वदेश परिचय इन सब बातो के निर्णयरूप साहित्य गगा प्रवाह मे डुबकी लगाकर त्रिविध ज्वाला से तप्त हृदय शीतल कीजिये । ये सब प्रसंग का मुक्तिद्वार मे विस्तार से अवलोकन कीजिये । बस, बुद्धिमान प्रति विशेष न कहकर इशारा मात्र बहुत है '

गुरुदेव और जिज्ञासुजनो का सम्वाद

जहँ जहँ रहत पारखी सन्ता । निर्णय दै लै तजि तजि हन्ता ।।
मै हूँ कौन जगत क्या कहिये । कौन सबन्ध छूटै किमि रहिये ।।
मुक्ति रहनि कर कौन है भेदा । सन्त भक्त का लक्ष्य अखेदा ।।
सदा एकरस अविचल ठाऊ । नहि बिचलै किमि बोध प्रभाऊ ।।
अधिकारी के प्रश्न अनेका । सुनि गुरुदेव कहे सुबिबेका ।।
सोइ विवेक सब भाँतिन भाँती । कहत सुनत समुझत भ्रम जाती ।।
एक बार इक सन्त बिरागी । पहुँचे जहाँ भाविक अनुरागी ।।
यथा उचित सव देह कि रच्छा । करत धरत प्रेमी जन इच्छा ।।
जग जन हेतु साधु गुरुदेवा । कहहु कछुक रचना निज भेवा ।।
हम जग जीव विशेष न जानौ । केवल तुम बल तुहहि पिछानौ ।।
जो सिद्धान्त सकल सुखकारी । सो सब कहहु कथा विस्तारी ।।
लखि सुति विनय भाव अधिकारी ।.लक्ष्य स्वत. शम शात विचारी ।।
गुरुपद पुष्टि सोचि जन हेतु । देश काल अवसर सम चेतू ।।
शुभ आसन आसीन कृपाला । बोलत वचन हरत उर शाला ।।
बीत राग जन मन विच कैसे । तेज पुज रवि उदय हो जैसे ।।

सत कमल वन विकसित भयऊ। सुजन मधुप गूंजत सुख लयऊ ॥
शुभाचरण अनुकूल बयारी। नदी प्रवाह विचार सदारी ॥
मज्जन पान करहिं जन प्रेमी। समाधान सब संशय क्षेमी ॥
दोहा—युवति धनिक विज्ञानि नृप, जो सुख हेतु दुखरूप।
सो गुरु पारख निकट ही, सत्य स्वत. पद भूप ॥
गृहि विरक्त उत्तम निकृष्ट, नीच ऊँच कोउ ऐन।
मुक्तिद्वार जे मुनि गुनै, नित नव पावैं चैन ॥
साखी—"ये सर जीवा अमृत पीवा, क्या धँसि मरसि पतार।
गुरु की दया साधु की संगति, निकरि आव यहि द्वार" ॥
गुरु कबीर की सुन्दर साखी। सत्सगति महिमा बड भाखी ॥
"बहुरि न पइहौ ऐसो थाना। साधु सगति तुम नहि पहिचाना" ॥
जेहि समझत मद जाय हेराई। जेहि रहनी सब शोक नशाई ॥
जाहि मनन दृढ विरति प्रकाशे। सत सुजन जेहि गावत खासे ॥
भक्तन को नित जो रक्षपाला। परख प्रखावत दुख सब टाला ॥
जाहि हेतु ऋषि मुनिगण नाना। गुरुपारख विन औरहि ठाना ॥
जेहि पद हेतु ज्ञान विज्ञाना। शोधत तदपि न विन गुरु जाना ॥
सोइ यथार्थ गुरुदेव कबीरा। शोधि शोधि लहि पारख हीरा ॥
पुनि बहु संत जाहि बल धारे। अर्थ भाव सिद्धात प्रचारे ॥
सोइ निर्णय सत्संग कि धारा। दृष्टि कबीर परख लहि सारा ॥
परख परस्पर बोध कि शैली। दीप दीप लेशत बुधि फैली ॥
सो परिचय बहु संत मुखागर। कोइ कोइ लेख बद्ध करि नागर ॥
सबहि हेतु शुभ मंगल मूला। मिलहि परखपद नाशहि भूला ॥
गुरुदयाल जेहि पारख हेतू। रामरहस्य बहु युक्ति कहेतू ॥
जेहि पारख हित पूरण साहब। युक्ति अमित कहि हंस निबाहब ॥
औरहुँ देश देश के सन्ता। विदित कोऊ अविदितहित कन्ता ॥
सोइ निज सत्य परखपद मूला। जेहि बल पाय मिटत सब शूला ॥
जेहि दृष्टी से रहनी गहनी। सब बिलगात जहाँ जस चहनी ॥
दोहा—साधक बाधक हित अहित, काल दयाल विभेद।
गुरू सत लक्षण समुझि, पारख नित्य अखेद ॥
सोइ पारख पद भाँतिन भाँती। कहहुँ बुझाय सुनहु मम जाती ॥
कहत माहि अनुचित जो लागै। ताको कबहुँ न गहेहु सुभागै ॥
हम तुम सबको मंगल मूला। परख बोध निर्णय निर्भूला ॥
जहँ लगि कसर खोट भ्रम देशू। सो परखत नहि रहि है लेशू ॥

जो कछु स्वारथ मान औ मोहा । पक्ष व्यसन बश जिय अति कोहा ।।
तब निर्णय नहि बनत बनावै । तासे पारख दूरि रहावै ।।
सब कुवेग तजि सुनहु सयाने । हमहुँ स्ववश मन कहहुँ पिछाने ।।
निजपर हानि लाभ गुण दोषू । सत्य झूँठ लखि पारख पोषू ।।
यद्यपि पूर्व संत सब भाखे । तदपि विवेक करत सब साखे ।।
जस जस रोग बढ़ै अविवेकू । जन समाज जेहि भूलत टेकू ।।
जस सदेह बढत ससारा । तस निर्णय सब संत प्रचारा ।।
विन निर्णय सब सशय गाँसे । गुरु कबीर सिद्धात बिनाशे ।।
अस हिय शोधि सकल शुचि सता । रुकि न सके सब कहेउ कहता ।।
देश काल जन हृदय बिचारी । पारख प्रभु संशय सब क्षारी ।।
ऐसे अमित सत सब भाखे । सोई नीति इतहू लै राखे ।।
गुरुपद साधक समुझि सदाही । संत भक्त नित रुचत रहाही ।।
दोहा—भौतिक बाद विपाद भव, महा घोर तम छाय ।
तेहि नाशन हित कहहुँ कछु, सहज परख बल पाय ।।
परखदृष्टि जब पइहौ ताता । सब देखिहौ जसका तस भ्राता ।।
ग्रन्थ पथ प्राचीन नवीना । सब गुरु परख दृष्टि बल चीना ।।
सोई दृष्टि वल सकल पिछनिहौ । गुरुपद जानि गुरूपद ठनिहौ ।।
शीघ्र कृतघ्न दोष सब नशिहौ । पारख पाय परख मे वसिहौ ।।
क्रोध के बदले गम नित खइहौ । भक्तिपदारथ लहि पद पइहौ ।।
सावधान समता नित लइहौ । सर्व कुसगति तट नहि जइहौ ।।
विपय कामना सबही तजिहौ । सत गुरू सेवा मे मँजिहौ ।।
तजि अखबार जो शोक सदेशू । नित नव प्रीति परखपद पेशू ।।
नाच सिनेमा लगिहै फीके । अंतस शात स्ववश सुख जीके ।।
गुणको ग्रहण सकल तुम करिहौ । सद्ग्रन्थन को प्रेम से पढिहौ ।।
भौतिक क्लेश लेश सब तजिहौ । पारख स्वतः स्वदेश मे रजिहौ ।।
होय यकन्त वासना तजिहौ । मनरिपु जानि मनहि कसि रहिहौ ।।
सर्वोपर स्थिति को पइहौ । बहुरि न कबहूँ भव भय लइहौ ।।
दोहा—जो सुख सपनेहु नहि मिलै, धनिक नृपति सब साज ।।
तृष्णा चिन्ता चाट मद, वैर मोह दुख राज ।।
सो निर्भय अविकार पद, अति अविघ्न अभिराम ।।
सत्य कथा सुनि जागि कै, परखि परखि विश्राम ।।
अस बल असधन असस्ववश, कमी न रंच बियोग ।।
जाकी तुलना कछु नही, स्वत. सत्य निःशोग ।।

ऐसो परम पुनीत यह, मंगल मूल सँदेश ॥
सुनि गुनि गइहैं हस सब, पारख रूप हमेश ॥
श्री कवीर सिद्धात लै, वीजक भाव सम्हारि ॥
विविध प्रसग सुवोध हित, गुरु वल मंत्र विचारि ॥
है प्रकाश सव दीप ज्यो, त्यों सव निर्णय वैन ॥
जेहि तेहि लै निज काज करु, भ्रम तम नाशै चैन ॥
परखे बिन नहिं काज वनि, चाहे कोटि उपाय ॥
सोइ पारख कल्याण मग, सव हित हेतु सदाय ॥

छंद

मूल शब्द मे अर्थ हो औ अर्थ मे सिद्धात हो।
सिद्धात परिचय हेतु ही गुरुदेव कहि निर्भ्रान्ति हो ॥
सिद्धात पुष्टि करावने हित सत गुरु सद्ग्रन्थ हो।
सो सकल प्रिय परख हित जासे लखै सत पथ हो ॥ १ ॥
गुरु वोध औ निज पर्ख वल सिद्धात पुष्टी के लिये।
पारख परख निर्णय सदा वहु भाँति हित ही के लिये ॥
जेहि भाँति सब शुभ सत मग त्यो मुक्तिद्वार अरम्भ कर।
गुरुपद विशेप सँदेश सुनि गुनि हो प्रफुल्ल विवेकि नर ॥ २ ॥
दोहा—पारख पद सनमुख करै, ते सव प्राण समान।
पारख से जो विमुख करि, कोटिन रिपु तज जान ॥
"भूल मिटै गुरु मिलै पारखी, पारख देहि लखाई।
कहहिं कवीर भूल की औषध, पारख सबकी भाई ॥
सगति कीजै साधु की, हरै और की व्याधि।
ओछी सगति क्रूर की, आठो पहर उपाधि" ॥
(वीजक)

सत कहै गुरुपद को भेटौ। गुरुवल निज पद लहि दुख मेटौ ॥
गुरु वोधक दै वोध सहारा। सतन के रहिये टकसारा ॥
गुरु कवीर दै मत्र अनूपा। गुरु पारख लहि परहु न कूपा ॥
सतन मे मोको तुम पाओ। तुम स्वजाति कव्वीर रहाओ ॥
श्रेणी त्रिविधि गृहस्थ मुमुक्षू। साधुदशा त्रय हित बच पक्षू ॥
तीनो के हित हेतु प्रधाना। प्रथम विवेक सुसग पिछाना ॥
सोइ विवेक गहि मुक्ति को द्वारा। गहत होय सव केर सुधारा ॥
दोहा—सत प्रेरक जो सत जन, सत प्रेरक जे बैन।
सत्य कथा रुचि जिय वढ़ै, तव जानौ मिलि चैन ॥

सत्संग उत्कण्ठा मनन—प्रार्थना

यह सत्य कथा आरम्भ हुआ, चित लीन रहे चित लीन रहे।
गुरुज्ञान मधुप रस पान करै, निर्बिघ्न रहे निर्बिघ्न रहे।।टेक।।

सब शोक रु ताप मिटै उर के, विश्राम मिलै भटके जिव के।
गुरुदेव दया के श्रोत श्रवै, चित शान्त रहे चित शान्त रहे।। १ ।।

अब ऊब रु आलस नीद कहाँ, नित नवल नवल उत्कण्ठ यहाँ।
सत्सगत तीर्थ नहाय रहे, निरुपाधि रहे निरुपाधि रहे।। २ ।।

यह सर्ब परीक्षक मार्ग मिले, सब कण्टक भोग कुमार्ग जले।
सब सद्गुण रक्षक मित्र मिले, जो सुधार रहे जो सुधार रहे।। ३ ।।

सब सुकृत का फल पाय रहे, सब लाभ क मूल कमाय रहे।
अब श्रेष्ठ समाधि लगाय रहे, निरधार रहे निरधार रहे।। ४ ।।

नित जो सुख हेतु भ्रमे जग मे, मद क्रोध रु मोह पचे जड़ मे।
अब सो सुख आपमे आप मिले, गुरु प्रेम रहे निज प्रेम रहे।। ५ ।।

संत समाज बाराबंकी की पुस्तकें

सद्गुरु श्री विशाल साहेब कृत		मुमुक्षु स्थिति शिक्षा प्रवाह	—
विशाल वचनामृत		विशाल सरोज भजनमाला	—
मुक्तिद्वार मूल	२ ००	विशाल वृत्तात	१०.००
इष्ट विनय	०.५४	विशाल शतदलकमल	० ६८
सद्गुण शतक	१ ००	**संत श्री प्रकाश साहेब कृत**	
सत श्री प्रेम साहेब कृत		प्रकाश भजनावली	२.००
भवयान सटीक	३२ ००	**संत श्री आज्ञा साहेब कृत**	
मुक्तिद्वार सटीक	—	विशाल विभूति (भाग १)	८ ००
सत्यनिष्ठा सटीक	१० ००	विशाल विभूति (भाग २)	३ ००
नौ-नियम सटीक	२ ००	**संत श्री सत्य साहेब कृत**	
सत्यज्ञान प्रकाश	४ ००	सत्य निवेदन	२ ००
अपनी जागृति	६ ००		

ग्रन्थ मिलने के पते .

पारख प्रकाशक कबीर संस्थान

प्रीतमनगर कालोनी (मुन्नेम सराय) इलाहाबाद-२११००१

साधु क्षमादास गुरुमन दास

श्री कबीर आश्रम मुस्तफाबाद

पोस्ट—अलीगंज, जि०—खीरी (लखीमपुर), उ० प्र०

राम सेवक कबीरपंथी

४६६/१६४, छोटा चाँदगंज, लखनऊ-२२१००६

श्री कबीर मंदिर अड़हरा की पुस्तकें

सद्गुरु श्री कबीर साहेब कृत

बीजक मूल	४.००

सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब कृत

विवेक प्रकाश मूल	०१.००
रहनि प्रबोधिनी मूल	—
बोधसार मूल	.८०

संत श्री निर्बन्ध साहेब कृत

भजन प्रवेशिका	२ ००

संत श्री अभिलाष साहेब कृत

बीजक सटीक	४४.००
पंचग्रन्थी सटीक	४० ००
विवेक प्रकाश सटीक	—
कबीर दर्शन	३६.००
बीजक शिक्षा	—
रहनि प्रबोधिनी सटीक	—
गीतासार	—
कबीर अमृतवाणी सटीक	—
कबीर परिचय सटीक	६.००
बोधसार सटीक	—
जगन्मीमांसा	५ ००
कल्याण पथ	८.००
ब्रह्मचर्य जीवन	—
मानसमणि	—
सरल शिक्षा	—
संत सम्राट सद्गुरु कबीर	८.००
वैराग्य सजीवनी	३.३३
तुलसी पंचामृत	—
स्त्री बाल शिक्षा	४ ४०
गुरु पारख बोध सटीक	४.००
आप किधर जा रहे हैं	२.४०
राम से कबीर	२.४०
भजनावली	३.६०
बीजक प्रवचन	२ ००
व्यवहार	२.४०
अनंत की ओर	२ ००
बुरहानपुर........के महापुरुष	१.६०
कबीरपंथी-जीवनचर्या	२ ६७
हितोपदेश समाधान	१ ६०
अहिंसा शुद्धाहार	—
संत महिमा	२.००
मैं कौन हूँ ?	१ ४०
Who am I ?	२ ००
जीवन क्या है ?	१ २०
कबीर कौन ?	१.००
सरल बोध	१.२०
आदेश प्रभा	१ ००
कबीर संदेश	० ८०
श्री राम-लक्ष्मण प्रश्नोत्तर शतक	० ६०
संत वचनामृत (अज्ञात कृत)	० ६०
मोहभंग नाटक (शुकदेव दास)	० ६०
पुष्पांजलि (नीलमणि कृत	० ८०
जीवन गीत (सजीवन दास कृत)	—
बहाना (भावसिंह हिर० कृत)	५ ००
ज्ञानगीता (विष्णुदयालु दास)	१ ४०

संत श्री निर्मल साहेब कृत

निर्मल सत्यज्ञान प्रभाकर	६ ७०

संत श्री ज्ञान साहेब कृत

संगति कीजै साधु की	४ ४०
दो में से एक	१ ४०
नारी	१ ८०

ग्रन्थ मिलने का पता

पारख प्रकाशक कबीर संस्थान

प्रीतमनगर कलोनी, (सुलेमसराय) इलाहाबाद-२११००१

सद्‌गुरवे नमः

मुक्तिद्वार

प्रथम पाठ

सद्‌गुण शतक

वन्दना छन्द

पारख प्रकाशी जो भये गुरुदेव आप कबीर हैं।
वन्दौं चरण तिनके भले जेहि प्रेम सद्‌गुण तीर हैं ॥
प्रेमी कि भावै चाल मन जो प्रेम दिल साँचा रहै।
वहि बोध औ वहि शोध गहि तब प्राप्ति हो स्थिति वहै ॥ १ ॥

टीका—जड़ तत्त्वों से सर्वथा पृथक सबका जनैया अपरोक्ष चैतन्य जीव स्वयं स्वतः शुद्ध स्वरूप है, केवल वासना-वश बँधा है। भूल वासना छोड़कर परमपद रूप चेतन जीव ही है। पारख प्रकाश करने वाले जो सद्‌गुरु देव काया वीर कबीर साहेब आप हुये और अब आप ही सदृश वर्तमान में जो साधु गुरु है तिनके चरणों को भाव भक्ति पूर्ण श्रद्धा से नमस्कार करता हूँ, जिन साधु गुरु रूप पारखी श्री "कबीर साहेब" के चरणो में प्रेम करने से निकट ही इस जीव को सम्पूर्ण सद्‌गुणों की प्राप्ति होती है। यदि हृदय से इष्ट में सच्ची श्रद्धा हो तो जिनमे प्रेम किया जाता है उन प्रिय इष्टदेव के आचरण सब ही दास को अच्छे लगते है और उन्ही

पूज्य साहेब का बोध-सिद्धान्त और शोध—पारखदृष्टि ग्रहण करके उनकी जो अचल स्थिति है वही स्थिति दर्जा प्रेम करने वाले को भी प्राप्त हो जाता है। "जो मोहि जानै, ताहि मैं जानौ ॥" इत्यादि गुरु वाक्य भी है ॥ १ ॥

आप ही ने नाशि भ्रम मारग चलाया ज्ञान का।
बीजक बनाया ग्रन्थ जो सोई भया परमान का ॥
कबीर ऐसा नाम जेहि सोई जनाया जान का।
अज्ञान को जो हान कर वहि वन्दि मम मन मान का ॥ २ ॥

टीका—जगतकर्ता का भ्रम, जड़ तत्त्वो को ही चैतन्य जीव मानने का भ्रम, विषयों में सुख निश्चय मानने का भ्रम तथा देह में सत्य बुद्धि का भ्रम, व्याप्य व्यापक का भ्रम इत्यादि भ्रम सन्देहों को नष्ट करने के लिये रवि वत ज्ञान पन्थ आप ही सद्गुरु स्थापन किये। आप जो बीजक नामक सद्ग्रन्थ बना दिये, पारख सिद्धांत के लिये वही प्रमाण स्वरूप है। आपके सत्संग निर्णय द्वारा जो रहस्य युक्त पारख सिद्धान्त स्थापन हुआ वह सम्पूर्ण जन समाज के लिये परम हितकर है। अहिंसा धर्म प्रतिपादन की सुन्दर स्वच्छ पताका, चर्म देह के नाम और रूप ऐश्वर्य स्त्री पुत्रादि मान मन्दिर माया के घमण्ड रूप घड़ा को फोड़ने के लिये कठिन दण्ड, दोनो दीन को दया धर्म-सत्य दृढाने मे परम पण्डित शिक्षक रूप, जड वादियो के भ्रम पूर्ण सिद्धान्त तृण को उड़ाने में वेगवान वायुरूप, जीव के अविनाशित्व और कर्म वासना अनुसार आवागवन पुनर्जन्म फल प्राप्ति और वासना त्याग से मोक्ष मार्ग दिखलाने को सीधी सड़क अन्धविश्वास, अन्धलीक, अन्धकार को नष्ट करने मे तेज राशि सूर्योदय, मनोद्रष्टा स्थिति की पावन वाटिका, जड़ासक्ति वृक्ष को काटने हेतु तीव्र कुल्हाड़ी। कहाँ तक कहा जाय "श्री कबीर" ऐसा जिस पुरुष का नाम था शुभ गुण लक्षण लक्षित वे ही स्वय

सत्य पारख सिद्धान्त ठीक-ठीक जाने और दूसरे को भी जनाये। आप और आप सरीखे जो आज भी वर्तमान मे पारखी वैराग्यवान सद्गुण युक्त सन्तजन है, जो अज्ञान भूल भ्रम सर्व बन्धन विवशता को हरने वाले है, उन्ही की ही वन्दना, प्रणाम, शरणागत मेरा मन मंजूर करता है। जिनमें अपना मन सहज ही खिचा हुआ है ॥ २ ॥

वन्दि चरण गुरुपद शरण, जैसा मैं हूँ आप।
तैसे होय रहस्य में, बुद्धि हमैं तजि ताप ॥ १ ॥

टीका—आपके पद कमलों की वन्दना करते हुये हे श्री गुरुदेव ! आपकी शरणाधार पकड़ कर यह माँगन माँगता हूँ कि जैसा मैं एकरस अखण्ड शुद्ध ज्ञान स्वरूप अपने आप हूँ वैसे ही एकरस शुद्ध रहनी हम गहें, जो सद्स्वरूप स्थिति मे साधक हो। एव शुद्ध बोध, शुद्ध धारणा बनाने की बुद्धि—अचल निश्चयता हम दृढ रक्खें और काम क्रोध लोभादि जो कि जीव को उद्वेगन करके जलाते रहते है, उन्हे जलनप्रद दुखपूर्ण जानकर हम त्याग देवें, ऐसी दया आप से चाहता हूँ ॥ १ ॥

स्वयं सिद्ध गुरु आप हैं, आप समानहिं आप।
बन्ध हरण तारण तरण, पटतर केहिको थाप ॥ २ ॥

टीका—अश-अंशी रहित सदा रहनहार सर्व चैतन्य जीव स्वरूप से अजर अमर नित्य है परन्तु वे सव अपने स्वरूप को भूले हुये है। तिन नर समूहों मे श्रेष्ठ आप सद्गुरुदेव अपने स्वतः स्वरूप को जानकर परीक्षा करके सद् रहस्य युक्त सदैव स्थित है। अतः बोध-वैराग्य-स्थिति सयुक्त स्वयंसिद्ध गुरु आप है। सर्व देहधारियो की गति-मति और जड़ तत्त्वों के परीक्षक बोध, धारणा रहस्य गे पूर्ण होने से आपके समान आप ही है। आप तो स्वय संसार सागर से पार ही है; साथ ही अन्य जीवों के इन्द्रिय सुखाशा और भोग क्रिया रूप मुख्य बन्धन हरणकर स्वजाति जीवों पर

करुणा करके तारने वाले होने से आप तरण-तारण रूप है। आपकी समता मे कौन सी उपमा दिया जाय ? आप निरुपम महिमा मूल हमारे हृदय में बसे ॥ २ ॥

गजल

सब पर बिशेष गुरुवर, सद्ज्ञान देने वाले।
सशय समूह ढेरी, तिसको जलाने वाले ॥टेक॥
दुनिया कि बुद्धि ऐसी, पाँखी जलै है जैसी।
सुख भोग के नशा में, ठगने ठगाने वाले ॥ १ ॥
विषयों में फँस के अपना, बाँधे जु पाप गठरी।
सो वासना के वश हो, तन धर रुलाने वाले ॥ २ ॥
गुरुदेव धन्य पाये, सौभाग्य प्रेम लाये।
गहि धर्म भक्ति अविचल, फिर भव न आने वाले ॥ ३ ॥

स्वारथ पटतर छोड़ि कै, रहस्य आप अपनाय।
ऐसी समझ स्वधीनता, करनी मिलै सहाय ॥ ३ ॥

टीका—क्षणभगुर काया के ही हानि-लाभ, सुख-दुख में पचना-पचाना स्वार्थ है। स्वार्थ मे दूसरे की बराबरी करना, अमुक वैसा करता है तो हम क्यो न करे ? अर्थात एक दूसरे की देखा-देखी स्त्री, पुत्र, धन, यश, कीर्ति तुच्छ जालो की कामना करना, भेष मे आकर विशेप-विशेष "प्रेम मान सेवा की ख्वाहिश मन अनुकूल अभागे ॥" अन्य के समान पूजा-बडाई न पाकर तुरन्त क्रोधी बन वाद-विवाद करके यह भूला जीव जलने जलाने लगता है। ऐसी कुबुद्धिकृत नाशवान देह सुखार्थ अनुगामिता और पटैतीपने हम भली प्रकार त्याग देवे और आपकी दया से जो शुद्ध चैतन्य मात्र अपना स्व-स्वरूप है तिसके उद्धार के लिये शील सत्य सन्तोषादि सद्गुणो को हम सावधानी से अपनावे। इस प्रकार की दृढ समझ प्राप्त होवे

साँचा—शुद्ध अन्त करण बना लेने पर सत्य स्वरूप का ज्ञान सत्य जीव को प्राप्त हो जायगा । तब इसके बन्धनप्रद क्रिया और द्वन्द्व सम्पूर्ण भस्म हो जायेंगे । चौपाई—"जस साँचा जिव आप रहावै । तैसो साँच दशा सो लावै ॥ तब निज साँचे देश मे ठहरै । कोई द्वन्द फिर नाहि न पकरै ॥ याते मुझे साँचा सरल बनाकर सच्चे देश नित्य पारख पद का अधिकारी बना दीजिये, यही आपसे ये बालक निष्कपट विनय करता है ॥ ५ ॥

सवैया

देखि दुखी जन दीन दया करि ज्ञान पियूष वर्षावन लागे ।
प्यासे हि घूमत जन्म अनन्त गे आजु अँचै छकि तृप्ति सुभागे ॥
पद्म खिले जु प्रसग प्रसग के सोई सुबोध सुवास तड़ागे ।
मोदित पीवत प्रेम बढै नव दास सदा यह ही बर माँगे ॥ १ ॥

श्रीगुरुदेव कबीर कहै सब सन्त यही सतमार्ग को टेरे ।
जीवन को सब लक्ष्य यही जेहिते सब शोक रु मोह नशे रे ॥
धर्म विवेक सुबुद्धि यही कहि जा विधि जीव स्व बोध लहेरे ।
सोइ सुयुक्ति प्रकाश यथा मति हो बड़ भाग्य विचार करे रे ॥ २ ॥

प्रसग १—सद्गुणनिरूपण, तिसके धारण करने का फल राग-द्वेष रहित स्वरूप स्थिति की प्राप्ति

हानि न होवै आपनी, गुरुभक्ती वैराग ।
दया क्षमा संतोष सत, लहि विवेक हित जाग ॥ ६ ॥

कल्याण होने के रहस्य स्मरण

टीका—अपने हितैषी गुरुभक्ति, वैराग्यादि शुद्ध गुणो की हानि न होने देना चाहिये । इनमे किसी अंग से ढिलाई न करना चाहिये । साथ ही दया, क्षमा, सतोष, सत्य और विवेक अगों को ग्रहण कर अपने कल्याण मार्ग के पुरुषार्थ मे जाग्रत हो जाना चाहिये । जिन

सद्गुणों से जन्म-जन्म दुखदाई वासनाओ का विनाश होकर सदा स्वरूपस्थिति प्राप्त हो वही कल्याणार्थी का परम धन है। उसकी प्राप्ति-रक्षा करने में सदा प्रयत्नवान–पुरुषार्थी बनना चाहिये ॥६॥

धीर वीरता शील को, साथी राखि हमेश।
करै काज निज जीव को, संशय बचै न शेष ॥ ७ ॥

टीका—धैर्य, परमार्थ मग मे वीरता और शील का बर्ताव इन्हे अपना परम रक्षक सदा सहायक जान कर जीवन भर साथ रखते हुये इन्ही की सहायता से अपने जीव का काज—निर्विपय, निराधार स्थिति पूर्ण रूप से बना लेना चाहिये। इनको पूर्णतया अपना लेने पर निश्चय ही शोक-मोह जगत प्रपच तन, मन उपाधियॉ निःशेष सर्वथा नष्ट होकर कल्याण होने में कोई संदेह नही रह जाता ॥७॥

सब जीवन के घेर में, सब देहन के बीच।
अमित काल भरमत रहे, बिन विचार जग कीच ॥ ८ ॥

टीका—चार खानि देहधारी जीवो के चौतरफ झमेले के वीच मे रहकर अनंत कष्ट सहना पडता है। पुन सव खानियो मे जड़ाध्यास वश देह धारणकर सर्व उपाधियो का भार ढोना पडता है। सवैया—"सर्प डसे कहुं बाघ चबे कहुं लूटि लिये धन मारत घेरे। बीछि व बर्रई हिंसक घाती जु एकहि एक परस्पर घेरे ॥ या विधि जीवहि जीव के घेरे पे आपहुं सर्व दुखाय दुखेरे। चारिउ खानि मे देह जु धारत ताप अनन्त बिचार न नेरे ॥" इस प्रकार अनन्त काल से सबको सताता तिसके परिणाम मे सबके द्वारा सताया जाता, पुन तिस अध्यास वश सब खानियों की देह धारण कर तिनमे शारीरिक कष्ट और मानसिक कष्टों मे अनन्त काल से यह जीव झूला के समान भ्रमण कर रहा है। इस जगत रूप कीचड़ उभय ग्रन्थी मे वासनामई तन, मन, अपनी-पराई अनन्त उपाधियो को

इसीलिये सहना पड़ता है कि यह जीव स्वरूप विचार को नही प्राप्त किया। अत सर्व कुविचार को हटाने के लिये परम साथी विचार को भी ग्रहण करना चाहिये ॥ ८ ॥

निज स्वरूप क्या बधन मुक्ती। यहि विचार गहि दुक्ख निवृत्ती ॥

अमान अकाम अक्रोध जहँ, तहँ सबही सख साज।
जहाँ न ये बासा करैं, तहाँ सदा दुख राज ॥ ९ ॥

टीका—सर्व दृश्य का अभिमान त्यागना अमानता है। इससे सबको सुख पहुँचता, गाफिली नही घेरती। मैथुन स्पर्श सुखाध्यास सहित सर्व कामना के त्याग को अकाम कहते है। ब्रह्मचर्य सेवन से सम्पूर्ण परवशता नष्ट होती, कल्याण की वीरता प्राप्त होती है। प्रतिकूल देखकर प्राणियो की हानि करने का उद्वेग शांत रखना अक्रोध है। अक्रोध से सर्व उपाधि नष्ट हो जाती है, अत जहाँ ये तीनो रहते है तहाँ ही सम्पूर्ण सुखसाज—सद्गुण सामग्री इकट्ठी हो जाती है। जिसके घट मे ये तीनो रक्षक नही वासा किये है तहाँ हमेशा दुख ही दुख का शासन रहता है। अभिमान से उन्माद होकर सन्मार्ग से पतित होना पड़ता। शक्ति क्षीण होकर सर्व परतन्त्रता, कायरता मैथुन से प्राप्त होती। क्रोध से लड़ाई, झगड़ा, हिसा, कलह की बढती होती जाती है। एव सर्व दुराचरण आ जाने से चारों ओर दुख ही दुख के सिवा और कुछ नही मिलता ॥ १० ॥

रावणादि आसुर की रीती। यहि दृष्टांत लेहु दुख नीती ॥
शूकर श्वान समान दुखारी। ताते तीनो तजि सुख भारी ॥

लोभ रहित औ मोह तजि, अभय गहै जो कोय।
दलि आसक्ति विवेक निज, निशदिन जाग्रत सोय ॥ १० ॥

टीका—जो मायावी पदार्थ सग्रह रूप लोभ छोड़ के साथ ही प्राणी और पदार्थों का मोह ममता त्याग करेंगे तथा कल्याणकारी

पुरुषार्थ में निर्भयता से जुटेंगे और जो सम्पूर्ण भोगासक्तियों को जीत कर अपने स्वयं प्रकाशी सत्य स्वरूप का विवेक प्राप्त करेंगे, वे ही रात दिन जाग्रत रूप है। अर्थात वे कभी भी धोखा न खाने वाले सबसे श्रेष्ठ एव महा माननीय मुक्त रूप है ॥ ११ ॥

खुशी प्रतिष्ठा की तजै, तजै ताहि अभिमान।
सो नहिं भूलै याहि में, जो फन्दा पहिचान ॥ ११ ॥

टीका—लोगों की तरफ से मिली हुई वाहवाही से मन में सुख मानकर जो हर्ष-फुलावा होता है कि "मै सबसे बड़ा हूँ, मेरे समान कोई भी नही" ऐसे मिथ्या प्रतिष्ठा अभिमान को गुरु के चरण कमलों का आधार लेकर या स्वय विवेक से जो त्याग करते रहेगे वे प्रयत्नशील पुरुष इन दुर्गुणो मे भूल-भटक नही सकते, न तो सतमार्ग से खिसक ही सकते है। जो प्रतिष्ठा तथा तज्जनित अभिमान को बधन रूप गले की फाँसी है ऐसी परीक्षा करता रहता है, वह उसमे नही भूलता। इन सर्व शुभगुणो को सादर अपनाने की जी-जान से कोशिश करना चाहिये ॥ ११ ॥

इन सबको पूरा किहे, नहीं समय जग काज।
सोई गहैं सम्हारि कै, साधु सन्त शिरताज ॥ १२ ॥

टीका—पूर्वोक्त रहस्य-रत्नों को सर्वाङ्ग अपनाने की कोशिश मे लगे रहने से राग-द्वेष, विषयासक्ति, मिथ्या प्रपचादि वार्ता जिससे जगत मे जन्म-मरण की पुष्टि हो, ऐसे जगत काज करने को पल मात्र भी मोक्षार्थियों को समय नही है। हर समय तो उनका सद्गुणो की पूर्ति मे जाता है, फिर किस पल मे वे झगड़ा, मोह, ममता करे? फिर प्रपच क्रिया की आवश्यकता ही क्या है? ऊपर कहे गये लक्षणो को चौकसी पूर्वक शिरमौर श्रेष्ठ संतजन ग्रहण करते है। अतः सर्व नर जीवों को चाहिये कि श्रेष्ठ पद पाने के लिये इन्ही सद्गुणो को हृदयङ्गम करे ॥ १२ ॥

प्रसग २ —गुरुभक्ति लक्षग

भक्ति विना मनुष्य उसी प्रकार दुर्गुणो मे बह जाता है जैसे मल्लाह और पतवार के विना नाव । तो दुर्गुणो और मन की गुलामी से वचने के लिये हम सवको सदाचरणप्रिय सद्गुरु की तन, मन, वचन से भक्ति करनी चाहिये, तभी हमारा जीवन मुखमय रहेगा, नही तो करोड़ो उपाय से शाति न प्राप्ति होगी । इस भक्ति प्रसङ्ग को प्यासे को पानी की प्रियता न्याय हृदयङ्गम करना चाहिये ।

"तेहि साहेव के लगहु साथा । दुइ दुख मेटि के होहु सनाथा ॥"

(वीजक)

इष्ट प्रेम दिच्छा गुरू, सेवा ध्यान प्रसन्न ।
मुदित वितावै राति दिन, गुरु रुख साधि अमन्न ॥ १३ ॥

टीका—हे भक्ति रूप रत्न प्राप्त करने वाले प्रिय वन्धु ! पूज्य सद्गुरु से निर्दोप एव सच्चा प्रेम करो । सद्गुरु की दीक्षा-शिक्षा को सादर स्मरण रक्खो । गुरु सरकार के शरीर की सेवा टहल करो । सद्गुरु के चरण कमल और उनकी रहनी का हर्प पूर्वक ध्यान करो । इन्ही कर्तव्यो के घेरे मे प्रसन्नता पूर्वक दिन-रात विताओ । गुरुदेव की मनसा का पालन करो और स्वय दास वन के अमन्न अर्थात अपनी मन मनसा कामना को मिटाकर सद्गुरु के अनुसार भली-भॉति चलो । इतने मे भक्ति का सव अग पूर्ण है ॥ १३ ॥

प्रश्न—सद्गुरु के लक्षण क्या है ?

उत्तर—जड़ से भिन्न चैतन्य रूप राम जो अपना शुद्ध स्वरूप है उसका यथार्थ वोध करता हो, जितेन्द्रिय हो, पुनर्जन्म कर्म फल भोग प्रतिपादक हो, वासना त्याग से मोक्ष दृढ करता हो, भ्रम-हारक हो, सद्धर्म रक्षक हो, ऐसे सद्गुरुदेव सर्वोपर देव है तिनकी शरण जाओ ।

गुरु सेवा सच्ची करै, छोड़ि कपट ब्यौहार।
अनभल चहैं न जौनि गुरु, तिनसे झूठ बिसार ॥ १४ ॥

टीका—पूर्वोक्त सर्व अंगों को लेकर सच्चाई के साथ चैतन्य रूप गुरुदेव की सेवा-टहल करो, उस सेवा मे कपट छल का व्यापार न आने दो। "चौ०—गाँजा मद्य अमल जे नाना। स्वांग बिविधि मदमस्त दिवाना॥ विषयासक्ति औ मान वड़ाई। आलस अहं बिक्षेप बनाई॥ कपट बीज ये सब तजि दीजै। गुरुपद प्रेम अमी रस पीजै॥" अर्थात गुरुदेव के साथ निर्दम्भ, निर्छल बर्ताव करना चाहिये। पुन जो सद्गुरु वैराग्य बोध हितैषी सद्गुणो से पूर्ण किसी का अनभल-अकाज स्वप्न मे भी नही चाहते, ऐसे गुरुदेव से दास को झूठ बोलने की बात ही भूल जाना चाहिये। इस युक्ति से भक्ति अङ्ग मिल सकता है, नही तो वही दशा होगी कि "दुबिधा मे दोनो गये, माया मिली न राम" "मै चितवत हौ तोंहि को, तू चितवत है वोहि। कहँहि कबीर कैसे बनि है, मोहि तोहि औ वोहि॥" बीजक॥ अतः सावधान॥ १४॥

सवन हितैषी जो रहैं, तजि मन की परतीति।
उनसे करै दुराव जो, निशदिन शिष्यहिं भीति॥ १५ ॥

टीका—जो सद्गुरु स्वार्थ रहित निरन्तर नित्य स्वरूप मे स्थित सर्व जीवो के कल्याण हेतु सर्व सद्गुणो का बर्ताव आचरते रहते है, दूसरे मन वशवर्ती प्राणियों का विश्वास करके अनुचित बर्ताव करना तो दूर रहा, जो अपने ही मन स्मरणो का विश्वास नही रखते, प्रत्येक स्मरण का परिणाम सोचकर हितैषी कार्य करते रहते है। ऐसे पुरुषोत्तम से दूसरे की हानि होना बिल्कुल असम्भव है। ऐसे रहस्य-बोध निष्ठ सद्गुरु से जो अन्तर, छल, कपट करता है उस शिष्य को रात-दिन भयभीत अवश्य रहना पडेगा। साहेब से छूटकर

वह भयकर जगत प्रपच मानसिक कुचेष्टा ही मे तो गिरेगा और कहाँ आधार ? ॥ १५ ॥

स्पष्ट—मुख्य इतने गुरु माने गये है—१. माता-पिता। २. धाई (दाई)। ३ नामकरण करने वाला। ४. विद्यादि जगत नीति पढाने वाला। ५. राम-कृष्णादि का मन्त्र सुनाने वाला। ६. वाहरी खानिजाल का वन्धन छोडाकर एक ईश्वर मे योग कराने वाला। ७ अद्वैत ज्ञान देने वाला। परन्तु इन सवो का परीक्षक सर्व पारखी सद् रहस्य युक्त गुरु कोई विरले है, उन्ही की शरण मे जाने से जन्म-मरण का वीज नाश होगा। दोहा—"सर्व कार्य के गुरु वहुत, इक इक के शिरताज। खानि वानि परखावई, विरले गरिब निवाज ॥" याते—"कर वन्दगी विवेक की.. . ...।" और भी—कवीर साहेव कहते है—"जाके जिभ्या वन्द नही, हृदया नाही साँच। ताके सग न लागिये घालै वटिया माँझ।" (वीजक) अस्तु दृढ विवेक वैराग्य रहस्यवान पारखी सत का शोधन करके तिन्ही की शरण जाना चाहिये।

बाढ़ै अघ व्यौहार तव, होवै तेहिका नाश।
स्वारथ परमारथ नशै, होय विविधि विधि त्रास ॥ १६ ॥

टीका—सच्चे सद्गुरु से मन, वच, कर्म द्वारा विपरीत क्रिया रूप छल करके पाप की करनी वढ जाती है, तव तो अन्त.करण मलीन हो जाता है। फिर कुसग सेवी बन के मन-माया के विप से अधिक-अधिक अन्ध होकर विपयासक्ति, हिसा, अनीति वर्ताव रूप अनन्त पाप करते रहने से उसका विनाश हो जाता है। परमार्थ साधन-विवेक वैराग्य कृत अचल सुख से तो वह हाथ ही धो लेता है। उसकी शारीरिक यात्रा देह निर्वाह रूप स्वार्थ सिद्धि में भी कठिनता आ जाती है और उसे विविध विधि से वहुत भाँति के अनेक आपदाये चोतर्फ गाँसे-गाँसे घूमती है ॥ १६ ॥

साधू को सरबस हरै, गिरही तो गृह गास।
परलोक न पूरा दृष्टि जेहि, सो कस हानि निकास ॥ १७ ॥

टीका--जो साधु त्यागी होकर यथार्थ पारख गुरु से छलयुक्त कार्य किया, उसका लोक-परलोक नष्ट हो जाते है। सर्व हितैषी से विमुख होने पर शुभाचरण और सद्बुद्धि मिलने का कोई अवलम्ब ही नही रह जाता तथा जो घर गृहस्थी के गॉस-फॉस मे जकडे हुये है जिन्हे परलोक परमार्थ रहस्यों को धारण करने का अनेक लाभ और न धारण करने की अनेक हानि दोनों बातों का पूर्ण परीक्षा ही नही, तो वे हानि वाले कार्य–विषयासक्ति, प्रपंच, रागादि सर्वथा अपने मे से त्याग ही कैसे कर सकते है ? हॉ ! ज्यों-ज्यों वे सत्सग को प्राप्त करके भक्ति का लाभ समझेगे, त्यो-त्यों भक्ति में निश्चय ही जुटकर जीव का काज बना सकते है, सोई बनाना चाहिये। विशेष यहॉ आगे बढकर फिर मार्ग छोड़ देने वालों को सावधान कराया जाता है ॥ १७ ॥

भक्ति प्रेरक—गजल

गुरु ज्ञान क्यों न लेता, क्यो ब्यर्थ शोक लावै।
अन्तस मे सत्य साक्षी, जाने बिना दुखावै ॥टेक ॥
जग जन्म नट कला है, सब लोग कह भला है।
जब खेल बन्द मेला, आपी अकेल जावै ॥ १ ॥
अन्तस मुकुर मे काई, निज रूप न लखाई।
दिल की करो सफाई, बस राम ही रहावै ॥ २ ॥
भूला जो घर को पावै, तो भूल सब नशावै।
चेतै जभी से तबहीं, जानो सबेर भावै ॥ ३ ॥
वोवै व सीचै जोई, वहि फूल फल लहोई।
गुरु भक्ति धर्म कर कर, परलोक सुक्ख पावै ॥ ४ ॥

भव सिन्धु मध्य नैया, गुरुदेव ही खेवैया।।
तिनसे करो चिन्हारी, वस पार शीघ्र पावै ॥ ५ ॥
सग्राम से न भागो, सुमती मे शीघ्र जागो।
कुमती को मार डारो, वस प्रेम दुख भगावै ॥ ६ ॥

जो कीमत पद की लखै, करै निरादर भूल।
मन रुज होय न नाश तेहि, अधिक अधिक दे शूल ॥ १८ ॥

टीका—जो अपने कल्याण स्वरूप और वन्धन तथा तिसकी निवृत्ति की सर्वोपरि विशेपता सव कुछ जान वूझ सद्गुरु शरण मे आकर पुन किसी विद्या, वुद्धि, मान या विपय सुखाध्यास के पक्ष वश उस अविनाशी गुरुपद और रहस्यो का निरादर करता है। पारख गुरु और वैराग्यवान सन्त समाज से विद्रोह, आलस्य, प्रमाद करता है उसके मनरोग नाश के वदले काम क्रोधादि वढकर कुकृत बर्ताव उसे अभी और आगे भी भाँति-भाँति से अनन्त शूल-पीडा देते रहेगे। भाव यह कि अनजान अज्ञानी का दुख तो अनन्त है ही, फिर भी यदि वह चेतै तो छुटकरा का मार्ग मिल सकता है। उसे ज्ञान का अभिमान न होने से सत्संग सद्ग्रथ, सद् अभ्यास द्वारा वह भूल मिटा सकता है। इधर उस अनजान से भी उसकी दशा वडी भयानक है, जो जान वूझ के गाफिली करता है, क्योकि उसे अपने ज्ञान का जोश तथा अभिमान रहता है। वह दूसरे के निर्णय पर ध्यान ही नही देता ॥ १८ ॥

सम्वाद—पूर्व भक्ति भाव मे लग कर पुन शिथिल हुये प्राणी को झगडे-रगडे मे अत्यन्त दुखी देखकर एक दूसरे ने पूछा ऐसी दशा क्यो ? उसने उत्तर दिया—दोहा—"भक्ति पुरानी परि गई, फीका परिगौ ज्ञान। श्रद्धा रही सो घट गई, तासे जिव हैरान ॥ दुर्गुण वढि सदगुण गये, खौलत मोह अपार। नृप सपना वाघिनि चवै,

जागे विन न सँभार ॥" सारांश—गुरु-भक्ति छोड़कर अनन्त दुख मिलता रहता है।

यहिते सच्चे मीत से, सच्चा करिये प्रीत।
और न साथी है यहॉ, कहर सिन्धु जल तीत ॥ १६ ॥

टीका—पूर्वोक्त विचारों से कल्याण के सहायक सच्चे मित्र पारखी सद्गुरु से सच्चा भेद भाव रहित प्रेम करना चाहिये। क्योकि इस छल-बल पूर्ण नि'सार ससार मे और सगे सम्बन्धी माता पिता भाई वन्धु इष्ट मित्र प्रकृति-कला विशेषज्ञ, विद्वान एव श्रमिक मत-वादी सिवा विषयासक्ति और नाना कल्पना के बड़े भयकर खधक मे डालने के अलावा वे कोई भी अमृत स्थिति में सहायक नही है। उल्टे वे सब तो स्वय इस कहरसिन्धु भयकर जल राशि के समान अज्ञान समुद्र में डूबते हुए काम-क्रोधादि भॅवरों मे गोते लगा रहे है, फिर वे कब पार करने लगे ? "जो जाको मर्म न जाने, सो ताको काह कराय।" केवल आप सद्गुरु इस अज्ञान और दुष्कर्तव्य रूप सिन्धु से पार है। बस जो पार है, वे ही पार लगा सकते है। ऐसा समझ बूझकर तथा बोध-वैराग्य सम्पन्न सद्गुरु का एकमात्र अव-लम्ब लेकर भवार्णव से पार हो जाना चाहिये ॥ १६ ॥

सम्वाद—एक ने पूछा मित्र ! जीवन भर सदाचार युक्त परमार्थ मार्ग मे दृढ रहे वह उपाय क्या है ? उत्तर दिया कि भक्ति ही है।

दोहा—भक्ति पुरानी ना परी, चोखा परिगौ ज्ञान।
श्रद्धा रही सो बढ़ गई, तासे जिव सुख मान ॥
भक्ति किहे पावै क्षमा, यश बुद्धी धन लाभ।
तन मन बचन पवित्र हो, शात बोध समताभ ॥"

जिज्ञासु—"प्रतिज्ञा पूर्वक मै भी भक्ति मार्ग पर चलूँगा।"

गजल

गुरु के समान कोई, नहिं और इष्ट जग में।
गुरुसेव जप व तप कर, राजै सदा सुमग में ॥टेक॥
वाहर के भोग ऐसे, फाँसी पै स्वाद जैसे।
जड़ देह मद छुड़ाकर, दे दिव्य दृष्टि वर मे ॥ १ ॥
चैतन्य जड़ अनादी, गुण धर्म सव मुझादी।
मानव स्वधर्म परिचय, शीलादि शम सजग मे ॥ २ ॥
सब वेद शास्त्र गीता, सब राम कृष्ण धीता।
सब सन्त भक्त गावें, गुरु की शरण अमद में ॥ ३ ॥
यद्यपि गुरू अनेकों, वहु भाँति से भनेको।
तद्यपि स्ववोध लक्षित, गुरु पर्व ही असल मे ॥ ४ ॥
सब पुण्य आचरण फल, साँचे गुरू मिलें भल।
मिथ्या को पक्ष तजि के, सेवै सोई सुघर मे ॥ ५ ॥
गुरु की शरण मे आवै, निज रूप बोध पावै।
सत्सग प्रेम प्रेमी, हो जा कृतार्थ रन में ॥ ६ ॥

दोहा—काह कहौ गुरुदेव की, महिमा वड़ी वनाय।
सव महिमा इक कण अहै, महिमा मूल सहाय ॥

प्रसग ३—वैराग्य लक्षण

दुख छुडाने को प्रत्येक मनुष्य गर्जी है। जगत विपय का राग ही सव दुख समूहो को एकत्र कर लेता है, अस्तु सब दुख छूटने अर्थ सर्व जगत-राग मे पूर्ण दुख देख कर तिसका अभाव करना मनुष्य जीवन का उच्च सिद्धान्त है। निज शक्ति अनुसार सर्वको वैराग्य लक्ष्य की पूर्ति की तरफ ही चलना चाहिये। इसके लिये इस वैराग्य प्रसंग को भली प्रकार पुन: पुनः मनन करके रोगी औषध न्याय सयम पूर्ण जीवन वनाते हुये कल्याण कार्य मे अग्रसर होकर मुक्त हो जाना चाहिये।

साखी—जो तू चाहे मूझको, छॉड़ सकल की आस।
मुझही ऐसा होय रहो, सब सुख तेरे पास ॥ बीजक ॥

पंच विषय जग राग तजि, अपन परार बिसारि।
शिथिल करै अध्यास को, देह मोह को जारि ॥ २० ॥

टीका—शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध ये पच विषयों का समूह रूप जहॉ तक जीवो की जड़ देहैं और केवल जड़ पदार्थ इन्द्रिय गोचर होते है, तहॉ तक सब जगत है। तिस जगत का मोह तत्परता पूर्वक त्याग करना चाहिये। तिस पच विषय रूप जगत में दो भेद है—अपना और पराया। एक तो देह-गेह, स्त्री-पुत्र, धन-जमीन, देश-गॉव, मान-बड़ाई आदि जहॉ तक जड पदार्थों को और देहधारियो को अपना करके मान लिया है, दूसरे जहॉ तक प्राणी और पदार्थो को पराया करके माना सो दोनों वैराग्यवान को वाहर-भीतर जहॉ जैसा त्यागने योग्य हो उस प्रकार पूर्ण त्याग करना चाहिये। जहॉ अपना मानकर पदार्थ और कुटुम्बियों की आसक्ति-पोषण की चिन्ता लगी है तथा पराया मानकर उधर की हानि भावना बनी है, तहॉ तक वैराग्य नही। ताते अपन-परार बाहर का बिसार तिन से लक्ष हटाकर भीतर टिकी हुई-पूर्व की आसक्तियो को निर्मूल करने का प्रयत्न करते रहना चाहिये। यहॉ तक कि जो पास में स्थूल देह है उसकी चिकनाई, मोटाई, छोटाई के ममताबीज को वैराग्य वल से भस्म कर डालना चाहिये ॥ २० ॥

समय न खोवै आपनी, मुख्य काज को ढील।
निज पर मन के फन्द बहु, पचै न तिनमें मील ॥ २१ ॥

टीका—जो क्षण-क्षण समय जा रहा है, वह फिर लौट कर आता नहीं। ऐसे अमूल्य रत्न समय को प्रपंच वार्ता मे न गॅवावे। अपना मुख्य काज एकरस तीव्र वैराग्य द्वारा मिथ्या वासनाओ पर

विजय करके अचल स्वरूपस्थिति बनाना है। इसमें ढिलाई-कमजोरी न आने पावे, क्योंकि इस कार्य मे बडे-बडे रोडे-रुकावट हैं। बाहरी पदार्थो की खैंच तो है ही, मुख्य अपनी मन-मानन्दी का फन्दा और पराये नर-नारी घटधारियों के जाल फरेब का फन्दा भुलावा रेंच-पेच अनन्त है। चौपाई—ठग ठगनी ज्यों चतुर भुलावैं। तन मन धन ज्यों चूसि दुरावैं॥ हरियर तृण दै गऊ कसाई। पकरि फन्द करि ताहि गिराई॥ सुख देखाय दुख मे सब डारें। नशा जोर मे काहि सम्हारें॥ काम क्रोध मद लोभ अपारा। वंह जात सब सब गहि मारा॥ निज पर मन के फन्द है ऐसे। लखि अनुकूल न भूलहु तैसे॥" इस प्रकार सावधान होकर अनुकूल-प्रतिकूल, नर-नारी, शत्रु-मित्र, सेवक-कुसेवक, वचक-श्रमिक किसी के स्नेह और वैर व्यवहार मे मोह वश बन्धमान होकर कष्ट मे अपने को न डाले॥ २१॥

सवैया

आँख त्वचा रसनादिक के सुख टारि बिचार विराग मे जागौ।
स्वार्थिक भार जहाँ तक झञ्झट, प्रेमी व द्वेषी मे ना अनुरागौ॥
काम को काटि के क्रोध को डाटि के और सवै चल वृत्ति से भागौ।
करौ सत साधन शात लहौ फल सो गुरु पारख ने अब रागौ॥

अशन शयन को हलुक करि, करै शुद्ध वैराग।
अंतिम जानै काज यह, तेहि सम को बड़भाग॥ २२॥

टीका—वैराग्यइच्छुक को चाहिये कि भोजन और निद्रा की कमी करै। जिससे जागृत होकर सतपुरुषार्थ करने-कराने मे आलस और मन मे विकार न व्यापै। इस प्रकार ढिलाई, आरामी त्याग कर वल पूर्वक निर्दोप त्याग वैराग्य का एकरस पुरुषार्थ करै। यही निश्चय रक्खे कि यह वैराग्य साधन कल्याण करने का अन्तिम कार्य

है (जैसे किसी की फाँसी से छूटने की अन्तिम अपील हो तो उसमे वह तन,मन, धन सब शक्ति लगाने मे कोई उपाय बाकी नही रखता। जैसे कोई धार्मिक श्रद्धालु मनुष्य अपने प्रिय श्रेष्ट सम्वन्धी के मरते हुये जो हितैषी वाक्य अन्त मे वह कह गया हो उसका जन्म भर पालन करता है। या जैसे किसी बड़े दो व्यापारियों का अन्तिम लेना-देना हो उसमे वे चूक नही रखते) इसी प्रकार वैराग्य का कार्य अन्तिम सबके शिरे सर्व दुखहारक जानकर जो काय, वचन, मन से तत्परता पूर्वक वैराग्य साधन में दिन-दिन लौ लगाते है उनके समान भाग्यशाली कौन होगा ? कोई नही॥ २२॥

मृतक चिन्ह सो जानिये, गुरु कफनी कौपीन।
चिता भूमि से ना डिगै, जो जग मृतु लै लीन॥ २३॥

टीका—जैसे मरा हुआ मनुष्य जगत की हानि-लाभ से निश्चेष्ट हो जाता है। पुनः उसकी मुण्डन कराय कौपीन पहना कर सफेद वस्त्र से कफनाय के मृतक ठाट रच कर श्मशान मे ले जाय काठ की चिता वनाय के तिस पर धर के तिसे भस्म कर दिया जाता है। तैसे वैराग्वान गुरु की तरफ से मिला हुआ भेष अचला और कौपीन (लँगोटी) ये सब मृतक साज पहिन कर वैराग्यवृत्ति चिता भूमि मे अडिग्गता से आरूढ़ होते हुये जगत के नेमी-प्रेमी तथा अनुकूल-प्रतिकूल सवसे चित्त हटाकर बिल्कुल मन के भ्रम जालो से मर जावे, निश्चेष्ट हो जावे। मृतक दशा ही वैराग्य है॥ २३॥

दृष्टान्त—एक सन्त से एक ने पूछा आप किस चिन्ता मे निमग्न जगत से उदासीन रात-दिन जाग्रत रहते है ? सन्त ने कहा—हमारे अन्दर ही छिपा चोर मन है। वह काम क्रोधादि दुर्गुण सैनिक सहित हरदम लूट फूक मे तत्पर रहता है। उससे बचने के लिये यह यत्न मैं करता हूँ—आलस्य व सुख सुस्ती त्याग के गुरुभक्ति, पठन, स्थितिअभ्यास रत रहता हूँ। व्यवहारप्रपंच वार्ता त्याग अल्प सादा

शुद्ध आहार अर्थात रस त्याग, नारी संग से विरक्ति, एकान्त और सत्संग का ग्रहण, सद्ग्रंथ का नित्य मनन इन बातों से मन और मन के साथी दोष मृतक रहते है, जिससे मै सुख पूर्वक सत्य अमृत स्थिति मे निष्काम भाव से सदा तृप्त रहता हूं। वह मनुष्य बोला—धन्य! धन्य!! साधु-साधु! आपको कोटिश धन्यवाद है। हम भी ऐसा ही करेगे।

यहाँ देह तजि जीव चला, यहाँ जक्त मन त्याग।
सबसे रहै उदास ह्वै, मोक्ष पन्थ में लाग॥ २४॥

टीका—वहाँ मृत्यु होने पर देह छोड़ के जीव चल देता है। यहाँ वैराग्यवान के लिये जगत-कुल-कुटुम्ब स्थूल प्रपच और मन-मानन्दी कृत सव सूक्ष्म मानना जो कि जगत उत्पत्ति रूप पुनर्देह का वीज है उसे पूर्ण रूप से त्यागना ही जगत से मर जाना है। इस प्रकार सबसे उदास, निश्चेष्ट, निर्मोह, निर्माया होकर मोक्ष मार्ग के साधन अभ्यास में वैराग्यवान को लग जाना चाहिये॥ २४॥

तन प्रारब्धि को भोग करि, पुनर्देह मन दग्ध।
गुरू ज्ञान से काज तोहि, और सुने नहिं वग्ध॥ २५॥

टीका—पूर्व प्रकार जगत सुखों से मृतक होकर प्रारब्ध भोग को भोग डालो और आगे देह धरने का वीज भून डालो, वस हे वैराग्य तत्पर नर जीव! गुरु ज्ञान से ही तुम्हारा मुख्य प्रयोजन पूर्ण हो जायगा। यह वात समझ कर वैराग्य मार्ग से भिन्न जड़ा-सक्त, जग जीवो की तरफ का सुख लोभ बडाई तथा मिथ्या भ्रम-मानन्दी और तिनकी प्रापञ्चिक वार्ता सुन या देखकर गुरुमार्ग से वग्धो नही—विचलित होओ नही॥ २५॥

सत मारग से जो चलै, सब दुख का तेहि अंत।
जगत सुखन को ध्यान तजि, दोष दृष्टि गत नंत॥ २६॥

टीका—अपने आप चैतन्य स्वरूप ही सत्य है। वह इन्द्रिय-विषय, लोक-प्रपच से पृथक है। जिस प्रकार अपना सत्य स्वरूप पृथक है, उसी प्रकार जिन-जिन सदाचरणो से अपने स्वरूप की तरफ स्थिति बना सके वह सब सत्सङ्ग, विचार, संतोष और शम-दम, वैराग्यादि रूप सतमार्ग पर नर-नारी नीच-ऊँच कोई भी चले, उसे धारण करे, तो उसके मनमम्भव जन्म-मरणादि तृष्णा जनित सर्व दुख विनष्ट हो जायँगे। इसलिये जगत के बनिता, वित्त, प्रभु-तादि सब सुख-विहार से लक्ष घुमाकर, तिन सुखों मे ऐंचातानी, दुर्गुण, तृष्णा, नाश, परिश्रम, जन्म-मरणादि पूर्ण दुख ही दुख की दृष्टि रख कर, तथा सर्व आशा-राग रूप तन्तु-लगाव संस्कार को तोड़ कर, सन्मार्ग में ही आरूढ रहना चाहिये ॥ २६ ॥

प्रश्न—सच्चा मार्ग बताइये, आपकी बडी दया होगी ?

उत्तर—केवल हमारी दया से क्या होगा जब तक आप अपने ऊपर कृपा न करे ? लीजिये ! सम्हारिये ! जो कुछ गुरुदेव का धन है उसे देते चलता हूँ, ऊपर कुछ कहा ही गया है, आगे के निर्णय पर ध्यान दीजिये। झूठी माया पंच विषय का स्नेह त्याग करके शेष सत्य स्वरूप ही तो है ! अत सत्य स्वरूप का रक्षक वैराग्य सन्मार्ग है। जगत का राग प्रपच झूठा है। जितना-जितना उसका त्याग हो उतना-उतना सत पन्थ मे चलोगे।

जग वैराग्य अमुल्य है, जाहि प्राप्ति सब धूर।
गुरू दया निज भाग्य वश, गहै कोई बर शूर ॥ २७ ॥

टीका—जगत मे एक वैराग्य ही अमूल्य है। जिसकी कीमत की थाह नही। जिसके पटतर मे कुछ नही। सर्व गोचर नारी सुत धन राग भोग से तृष्णा की अपार ज्वाला बढते देखकर जिसे वैराग्य भाव की प्राप्ति होती है, उसे वैराग्य सुख के आगे दुनिया के राग-

रङ्ग, मनोहर राज काज, सम्पत्ति, नारीसंयोगादि की कामनाये सब धूर हो जाती है। निःसार बन्धन समझ के वह त्याग कर देता है। यहाँ तक कि वैराग्यवान जहाँ मान सम्पत्ति का संयोग हो वहाँ से भाग कर एकान्त में गरीबी जीवन पसन्द करता है। सयम से रहना, सबकी सहना, मन को मारना, वन, बाग, नदी एकात स्थलो पर भ्रमण करते हुये सारी मनोगत वेगो को हटाय निश्चल स्थित होना, अविरोध गुरु सन्त की सेवा भक्ति मे टिकना, प्राप्त सुखो को त्यागना, अप्राप्ति का सङ्कल्प तक न करना, हलचल उद्वेग रहित शान्त रहना, उदासीनता युक्त कड़ाई से इन्द्रियो को सत्य मार्ग मे लगाना, भली प्रकार स्त्री और कामी पुरुषों के फन्द से अपने को बचा लेना, विवेक वृद्धि हेतु सदा सत्य निर्णय शब्दों का मनन करना, स्वतन्त्र स्ववश हो कर चलना-फिरना। नित्य स्नान ध्यान नेम युक्त शुद्ध आहार व्यवहार पवित्र भेप विवेक रख के सत्य स्वरूप को तन मन स्मरणो के दुखों से हरदम पृथक देखना, सर्व सदाचरण का फल तृष्णा कामना रहित होकर स्वय अनादि अक्षय अमृत सत्य स्वरूप भाव मे शम रहना, इस हेतु जो स्ववशता पूर्ण सुख शान्ति अभार सत्य निर्दोषपना वैराग्यपथ में है वह किसी मे नही। ऐसा अनुपम वैराग्य गुरुदेव की जब कृपा दृष्टि प्राप्त होती है और अपने जन्म-जन्म के बलिष्ट शुभ सस्कार सहित सद्पुरुषार्थ मे मन लग जाता है तब कोई वीर धीर पुरुष उस दृढ वैराग्य[१] को जीवन पर्यन्त एकरस धारण कर लेता है॥ २७ ॥

१ टिप्पणी—स्मरण रहे कितने वैराग्य भेप मे आकर पछताते है कि नाहक भेप मे आ गये, रण सग्राम में भर्ती होकर कादरो जैसी उनकी शोचनीय दशा है। कितने साधु भेप की भी लज्जा न रखकर ससारी से भी अधिक काम, क्रोध, अनीति, अधर्म सेवन मे तत्पर होकर आप और सामाजिक अनन्त दुर्घटना उपद्रव उत्पन्न करते नजर आ रहे हे। भला गृहस्थी मे रहते तो भाव भक्ति शुभ जीविका तो करते! बालक को छुरा पकड़ा देने

छन्द—राग द्वेष प्रपच छल अन्याय शोषण ध्वस हो।
व्यभिचार अत्याचार सब कुविचार का क्यो अश हो ॥
आदर्श सन्तो के चरित को हे नरो! अपनाय लो।
बस फिर तुम्हे क्या कुछ कमी जब मन स्ववश ठहराय लो ॥
वैराग्य कहि वैराग्य सुनि वैराग्य गुनि वैराग्य मे।
वैराग्य पथ वैराग्य सद वैराग्य ले बड़ भाग्य मे ॥
वैराग्य गुरु वैराग्य उर वैराग्य सगति जाग मे।
वैराग्य भक्ति विराग मुक्ति विराग पारख लाग मे ॥

प्रसंग ४—दया लक्षण

स्वार्थ वश कठोरता-परपीड़न का मैल जो जमा है सो अपने और दूसरे के लिये हमेशा दुखपूर्ण है। तिस मल को त्यागने अर्थ दया धारण करना सब को आवश्यक है। इस दया प्रसग को भली भाँति मनन युक्त आचरण मे लाकर सुखी होना चाहिये।

न्याय उत्तम दर्जे का भेष पाकर विवेक शक्ति साधन न प्राप्त करने से उसकी और उसके स्नेही की बडी दुर्गति होती हे। अतः बहुत काल तक सत्संग सद्ग्रन्थ धर्माचरण द्वारा वर्तते हुए गृहस्थी मे साधन युक्त जीवन व्यतीत करने से १—अपने कुटुम्बी ग्राम्यजनो की पारमार्थिक श्रद्धा बढ जाती है। २—वैराग्य पथ का राह घाट प्रथम से ही मिलकर वैराग्य भेष मे आने पर पश्चाताप तथा पुन. गिरने का भय नही होता। ३—जल्दबाजी का स्वभाव छूटकर धैर्य गंभीर बुद्धि प्राप्त होती है। ४—सहनशील निमान भाव भक्ति की जड़ पुष्ट हो जाती। अत. सजग होकर कही भी हो वैराग्य भाव का निरन्तर पोषण करते रहने से आगे बढ जायगा, ऊँचे दर्जे का काम पूरा करते हुए उस दर्जे के मान्य पूज्यता, बडाई प्रभुत्व संग्रह से बचा रहे, तब वासना रोग शीघ्र नष्ट होगा। नही तो ऊँचे दर्जे का दिखावा भेष मात्र रच के अगर उस दर्जे की सुखासक्ति रोग विघ्नो से बचने की शक्ति न लाई गई तो साधु वेष रच के भाव भक्ति नम्रता से भी हाथ धोकर भयंकर अनर्थकारी होगा ताते बहुत सोच समझ के वैराग्य वेष लेना चाहिये, जल्दबाजी न करना चाहिये।

है विगरायल ओर का, विगरो नाहि विगारो।
घाव काहि पर घालो, जित देखो तित प्राण हमारो ॥ (बीजक)

दुखिया सबही जीव हैं, मन माया के चक्र।
विग्रह करौ न काहु में, होय अनाथन वक्र ॥ २८ ॥

टीका—सब जीव आपही दुखित है। वे मनोद्वेग ओर व्याधि, प्राणियो की वशिता, माया-काया के प्रवाह मे बहते हुए राजस-तामस चक्र पर चढे हुए स्वार्थ वश अपने होश-हवाश ही मे नही है। वे माया के चक्र वश जो कुछ उल्टे कार्य करे और उसके परिणाम मे जो कुछ दुख प्राप्त कर लेवें, वह सब थोडा ही है। ऐसे दुखियो मे विग्रह-झगड़ा या उनको दुख देने की कोई भी क्रिया मत करो। भला! स्वरूपज्ञान से विछुटे सद्गुण सम्पत्ति रहित लाचारो पर दया करना चाहिये कि उनके साथ कुटिल कठोरता पूर्ण बर्ताव कर घाव मे कुल्हाडी मारना चाहिये ? ऐसा बर्ताव समझदार को कितना पापपूर्ण है ? याते सर्व देहधारी जीवो से कुटिल वर्ताव त्याग कर देना चाहिये ॥ २८ ॥

बाल दीन को खीन लखि, माता पिता सयान।
सहत उपाधी हित करैं, तजि बदला का ध्यान ॥ २९ ॥

टीका—बालक मे न बुद्धि है, न शरीर का वल है, ऐसा वह लाचार है। भूँख-प्यास लगने, बुखार आदि ठण्डी-गर्मी तथा मानसिक प्रतिकूलता आदि दुखो से खिन्न होता हुआ भी वालक उसके निवारण का यत्न नहीं कर सकता, न स्पष्ट कह ही सकता है। भले ही वालक अपनी अबोधता वश माता-पिता को मारे-पीटे, गाली देवे, कोई उत्तम वस्तु को विगाड़े तो भी सब कुछ उपाधि सहन कर बुद्धि और शरीर बल मे श्रेष्ठ सयाने माता-पिता सच्चे भाव से वही प्रयत्न रचते है जिस प्रकार बालक की रक्षा हो तथा

बालक के अनुचित बर्ताव को देख उससे बदला ले कर दुख देने मे नही पड़ते। यही बात यहाँ लेना चाहिये। सम्पूर्ण चारो खानि के छोटे-बड़े देह धारी जीव भूल वश सरासर अपनी हानि का कार्य करते हुये अत्यत लाचार, मायासक्त हो रहे है, तहाँ माता-पिता के समान भाव रख के अबोध ग्रसित सम्पूर्ण जीवों की उपाधि प्रतिकूलता सहन करते हुये बदला का ध्यान छोड़कर यथाशक्ति उनके हित का ही ध्यान रखना चाहिये ॥२९॥

दृष्टात—चूल्हा जलता था, किसी कार्य वश माता दूसरी ओर चली गई। उसका छोटा बालक वहाँ अग्नि सुन्दर समझ के अग्नि से खेल मचाने लगा। फल हुआ कि वह जलने लगा। उसके कपडो में आग लग गई। दृष्टि जाते ही माता दौड़ कर बच्चे को बाहर खेंच अग्नि बुझायी, महीनो औषधि करके बच्चे की जान बचाई। अग्नि इधर-उधर हो जाने से तिसी समय घर में आग लग कर अन्न वस्त्र सर्व सामग्री जल गई थी, किन्तु बच्चा पहिले ही अग्नि से निकाल लेने से बच गया। इसी प्रकार अज्ञान आसक्ति भूल वश सब मनुष्य, पशु, पक्षी देहधारियो को देख कर तिनके उल्टे कर्तव्य का ख्याल न कर हरदम सब पर दया भाव से ही बर्तना परम धर्म है। मनुष्य सबका रक्षक पिता के समान हैं। उसे किसी पर निर्दय न होना चाहिये।

जो कारज लखिये वहाँ, यहाँ कार्य दिल शुद्ध।
अंतःकरण मलीन बिन, कैसे क्रिया अशुद्ध ॥ ३० ॥

टीका—जो कहो माता पिता स्वार्थ सिद्धि के लिये बाल बच्चो को पालते है, तो यहाँ भी अत करण शुद्ध रखने का हेतु समझना चाहिये। जो कहो हमारा अतःकरण पवित्र ही है, तो सुनो! अत-करण मे वासना रूप मलीनता एव कूड़ा करकट भये [illegible] अज्ञानी

के समान दूसरे के दुख हेतुक कर्त्तव्य कैसे आचरण हो सकते है ? ॥ ३० ॥

वहाँ समझ जो मोह वश, यहाँ कामना ठान।
बिना कामना हेतु का, दुख देने को भान ॥ ३१ ॥

टीका—यदि माता-पिता ममता वश स्वार्थ समझ कर बच्चे से प्रेम करते है, तो इधर कामना वश जो अतःकरण में मलीनता छाई हे उसकी निवृत्ति करना ही बड़ा हेतु समझ कर सब जीवों पर सम्यक दयाभाव गहना चाहिये। क्योंकि दूसरे को दुख देने के लिये मन, कर्म, वाणी से प्रतिहिंसा, अपकार, अनभल, कुटिलपना करना ये सब भयङ्कर कुकर्तव्य करने का इच्छा होना किसी कठिन कामना बिना कैसे सध सकता है ? सोचिये तो सही। अतः कामना-रूप मल निरोध हेतु समस्त स्वजाति जीवो पर निर्वैरता-उपकार-रूप दया अवश्य रक्खो ॥ ३१ ॥

दृष्टान्त—एक समझदार माता अपने शिकारी पुत्र के बाँह मे काँटा चुभाती हुई शिक्षा करती है—

शब्द

मन इन्द्रिन सम्बन्ध जहाँ पर, तीन अवस्था खासा रे ॥
दुख सुख हानि लाभ जहँ होवै, तहँ तहँ जीवन वासा रे।
धर्म अहिंसा गहौ शक्ति भर, यहि कल्याण सुपासा रे ॥
नर पशु अण्डज उष्मज खानी, भूलि न दुखवो तासा रे।
निज समान पर पीड़ा लख के, माँस न खाव दुखाशा रे ॥
अकुर मात्र अहार करौ नर, जहँ जड तत्त्व प्रकाशा रे।
दीप प्रकाशवत बीज वृक्ष गति, ज्ञान धर्म नहिं पासा रे ॥
छानौ बीनौ करौ अमनियाँ, दृष्टि देख पग धारौ रे।
मधुर बचन बोलौ सुखदाई, सहन क्षमा गहि तारो रे ॥

प्रेम सहित सत्सङ्ग करौ नित, सद्गुरु शरण सम्हारौ रे ।
जग प्रपंच से बृत्ति निरोधौ, निज स्वरूप निरधारौ रे ।।

इस प्रकार और भी दया भाव का सम्यक अर्थ समझ कर तथा माता का चरण छूकर पुत्र प्रतिज्ञा पूर्वक दया धर्म की रीति सँभाला । हम सब लोग भी यही दया पथ गहे जिससे अशान्ति ज्वाला नष्ट हो ।

प्रसग ५—क्षमा लक्षण

स्वार्थिक प्रतिकूलता देख या सुनकर, असहनता गह के दूसरे को काय वचन मन से घात करने, पीड़ा पहुँचाने की चेष्टा क्रिया करना जैसे—गाली, झगड़ा, ईर्षा, मार-काट, उद्वेग आदि सुख शान्ति के घातक है। इन्हे सर्वथा नष्ट करने के लिये क्षमा की सब को आवश्यकता है। उद्वेग शान्त करके स्वस्थ रहने के लिये इस क्षमा प्रसग को भूखे-भोजन न्याय भली प्रकार हृदयङ्गम करना चाहिये। "मोर तोर मे जरे जग सारा । धृग स्वारथ झूठा हकारा ।।" (बीजक, रमैनी)

बिबश कामना जीव सब, मानि देह सुख साँच ।
बोधवान सो ध्येय तजि, हो निष्काम अयाँच ।। ३२ ।।

टीका—सम्पूर्ण देहधारी जीव इच्छा के अधीन है। वे अज्ञान वश नाशवान विजाति देह और देह सम्बन्धी इन्द्रियो के सुख को सत्य मान रहे है। उसी की रक्षा, वृद्धि व पालन में परस्पर कौडी, चर्म, मिट्टी और मान हेतु युद्ध कर रहे हैं। स्वरूपज्ञानी समझदार उस अज्ञान कृत ध्येय-निश्चय को छोड़ देवे। देह तो क्षणभंगुर रोग-शोक ग्रसित है और सुख भ्रम मात्र दुख पूर्ण ही है, ऐसा स्वरूप वल से दृढ निश्चय करके निष्काम अमृत पीते हुए अयाँच हो जावे। अयाँच का अर्थ किसी भी मायाबी पदार्थ के लिये दीन न होना,

प्राप्ति मे भी आसक्त न होना तथा अप्राप्ति में कायल होकर उसके लिये किसी को आपदा मे न डालना, यह अयाॅचता वृत्ति है; सो धारण करे ॥ ३२ ॥

सहै सबन की घात को, रहै अपन मन मार ।
काज न छेकै अन्य को, आपन जानि सुधार ॥ ३३ ॥

टीका—सब जीवों की तरफ से जो घात, वार अर्थात दुख मिले उसे सहन करे, अपना मन मार के रहे, उद्वेगित न हो, अन्य के कार्य मे रुकावट न डाले । क्या समझकर ? कि सहन-क्षमादि रहनी के धारण करने से समय व्यर्थ न जायगा । इन्ही रहनियों मे अपना सब सुधार का लाभ भरा है ॥ ३३ ॥

प्रश्न—सहनशील कैसे हो ?

उत्तर—दूसरों को दुर्गुणी हानिकारी समझ कर ही तो क्रोध वश असहनशीलता बढती है । इसका हेतु मुख्य अपने को सब प्रकार वड़प्पन का प्रमाद ही है । मद है तो अवश्य दुर्गुणो मे कम नही ! प्रारब्ध, मानसिक रोग, इन्द्रियो के घेरा में बडे संयम से सत्पद की ओर चलना है, दवा अपनी करे अभिमान दूसरों से; यह भूल रोग कम नहीं है । अभिमान को हर प्रकार ढीला करके सहिष्णु बन जाना ही क्षमा का मूल मत्र है ।

व्यर्थ समय होवै नहीं, निश्चल अपना काम ।
उलटि पलटि झगड़ा मिटै, तजि परिशर्म अराम ॥ ३४ ॥

टीका—पूर्वोक्त क्षमा सहनशीलता रखने से सर्वोपर लाभ ही लाभ हाथ रहेगा । प्रथम अपना अमूल्य समय विपाद-विलाप, हार-जीत, लड़ाई-झगडा, प्रतिद्वन्द्वता और दुर्वाद मे व्यर्थ न जायेगा । निर्विघ्न अटल रूप से अपनी स्वरूपस्थिति का कार्य गुरुभक्ति, सद्ग्रन्थ मनन-चिन्तन, मनोद्रष्टा, निर्णय, एकान्तवास आदि हुआ

करेगा। एव मनोनाश रूप अटल काम भी बन जायेगा और इश्वर जन्म-जन्म का तथा वर्तमान का बदला-बदली, झगड़ा-हिंसा, घात का वोझ उतरकर सब व्यर्थ परिश्रम भी छूट के सद्गुण सेज पर चैन से बन्दा विश्राम करेगा। कितना सर्वोपर लाभ ? इस क्षमा को अवश्य ही गहना चाहिये ॥ २४ ॥

चौपाई

जो कोई सब कर घात न सहई। घात के बदले घातैं करई ॥
ता स्वभाव घातक बनि जावै। घातक भाव से घातहिं पावै ॥
निज मन मारत प्रथम न जोई। रोय रोय मन मारत सोई ॥
जो कोइ सबकर मारग रोकै। सब मिलि ताहू कहँ दें शोकै ॥
ताते तीनौ तजत जु सन्ता। जानि सुपास क्षमैं बुधिवन्ता ॥

दृष्टात—एक सज्जन मनुष्य के ऊपर एक दुर्जन अकारण गालियो की वर्षा करने लगा। आप कुछ न बोले। तीसरा यह तमासा देख रहा था। वहाँ समीप मे जाकर बोला कहिये इसको ठीक कर दे ? समझदार ने कहा ठीक तो अपनी अपनी समझ को करना है। समझ ठीक हो तो सभी ठीक है, नही तो चारो ओर ऑच ही ऑच है। अपना-अपना सौदा सब बेचते है, पुकारते है। हमको वह सौदा नही लेना है, तो उसकी पुकार पर ध्यान ही क्यो दे। एक वृत्ति से अपना कार्य हम भी कर रहे है।

लाभ जानि सब कुछ करै, क्षमा लाभ भरिपूर।
तेहिको धारैं श्रेष्ठ नर, मेटैं सकल अपूर ॥ २५ ॥

टीका—लाभ समझकर मनुष्य क्या नही करता ? पराई ताबेदारी, रण संग्राम, खेती आदि कठिन से कठिन काम सब साध लेते है। कितने तो मार-गारी, दुतकार-फटकार सहन कर भी अपनी वासना पुरौती करते है। जब तुच्छ लाभ हेतु मनुष्य सब कुछ सहन

कर लेता है तो भला क्षमा लाभ से बढ़कर कौन लाभ ? क्योकि जो कुछ द्वेपाग्नि कृत दंगा, फसाद, हर्जा-खर्चा, जेल-सजा, मार-गारी आदि अनन्त रगडे-झगडे लगे रहते हैं, वह गम खाकर बर्तने से सब द्वन्द्व जड मूल से नष्ट हो जाते है और सहन करने का अभ्यास पड़ जाने से क्षमा रूप सद्‌गुण की प्राप्ति हो जाती है, तब सहज ही अतःकरण पवित्र हो कर परम पद योग्य पात्र बन जाता है, याते सब लाभों से बढकर पूर्ण लाभ क्षमा करना-गमखाना ही है। उसे बडे पुरुष धारण करके सर्व अपूर्ण भोग की तृष्णा, राग, द्वेप तथा कामना मिटा डालते है ॥ ३५ ॥

प्रश्न—घर मे, बाहर समाज मे, ससार में, चारों ओर कलह-कल्पना अशान्ति की बाढ क्यों है ?

उत्तर—क्षमा का पाठ नही पढ़ने से। एक प्रभावशाली सत के पास एक मनुष्य आकर बार-बार यही कहा करे कि आपकी अमुक मनुष्य निन्दा करता है इसका इन्तजाम कराइये ! सत ने नम्रता से समझा कर कहा आप आकर यह सब सन्देशा मुझसे न कहो, बस यही इसका प्रबन्ध है। अनुचित करने वाले के साथ अनुचित न करे, समय पड़ने पर रक्षा करे, दूसरे की त्रुटि विदित न करे, स्ववश निर्वाह रहे, बस विजय।

राग द्वेष में लागि कै, होवै भूल अपार।
दोनौं छोड़ि बेकाम को, लागै निज पद सार ॥ ३६ ॥

टीका—स्वार्थिक लाभ लोभ वश राग और वैर भाव इनमे वृत्ति बँध जाने पर यह ख्याल नही रहता कि मै कौन हूँ ? मेरा कर्तव्य क्या है ? एवं परिणाम ज्ञान नष्ट होते ही फिर अनन्त भूल जनित कर्तव्य उससे बन जाते है। इस हेतु राग प्रबल मदिरा है, जिसे पान करते ही तनधारी जीव बेभान हो जाते है। जिन-जिन

मे अपना मोह होता है, उन-उन के दु:ख विघ्न अपने को सताते है, सत्सग भक्ति मनोदमन स्वरूपज्ञान को छोडकर केवल मोह वश सम्पूर्ण दुर्गुणो को स्वीकार करता है। राग जन्य दु ख होता है, फिर तिस राग बीज ही से द्वेष के अकुर उग आते है। अपनी मानी हुई प्रिय वस्तु और प्रिय जनों की रक्षा जो किसी को मार डालने से निश्चय कर लेगा, तो वह हिसा का विचार न कर वैसा ही कर डालेगा। अत मोह और क्रोधावेश मे जगत के न्याय-अन्याय, राग-द्वेष मे लगने से ज्ञान नष्ट होते हुये भी अनन्त भूल होकर स्वार्थ परमार्थ दोनो नष्ट हो जाते है। इसके अनेक दृष्टात सामने है। अत राग-द्वेष को छोड़कर तथा अपना चैतन्यपद सार समझ कर स्थिति रूप कल्याण कृत कार्य में लग जाना चाहिये ॥ ३६ ॥

राग द्वेष मे अपार भूल

दृष्टात—एक ग्राम में दो सगे भाई थे। पहले दोनो बड़े प्रेम से एकत्र ही रहते थे। जब दोनों का विवाह हुआ, दोनों की स्त्रियाँ आयी, तो उन दोनो के प्रेम में बट्टा पड़ने लगा। भ्रातृत्व छोड कर मात्र दोनों अपनी-अपनी स्त्री की मन पुरौती करने लगे। स्त्रियाँ अधिकाश समता, क्षमा का नाम ही नही जानती। शाम से सबेरे तक खूब गालियो की वर्षा हुआ करे। अंत में दोनों अलग हो गये। दोनो अपनी-अपनी स्त्री मे अधिक आसक्त होने के कारण कौड़ी-कौड़ी लोभ से खेत पात अन्न धन घरबार में हमे कम मिला तुम्हे ज्यादा इत्यादि परस्पर दोनों एक दूसरे को दोष देकर लडा करे, पंचायत हुआ करे। परन्तु कहाँ हर घड़ी नित्य घर की पंचायत और कहाँ हफ्ते की एक घण्टा ग्राम पचायत ? निदान एक दिन बडे भाई ने कहा—तुम्हारा नाबदान हमारे घर के पास में निकलने से हमारा घर गिरा जाता है। इतने मे छोटा भाई मारे क्रोध से गाली देते हुए कहा—नाबदान हमारा यहाँ ही बहेगा। तुम कुछ नही कर

सकते। मेरा तो मेरा ही है, मै नीति ही पर रहूँगा। बात-बात मे जो तुम दबाया करते हो, सो मै तुम्हारी शेखी एक दिन सब झाड़ दूँगा। बडा भाई दौड़ा छोटे को पकड लिया, छोटा भी वलवान था। दोनों मे खूब घमासान युद्ध हुआ। दोनो को खून सवार हो गया। निदान छोटा भाई दौड़ा कुल्हाड़ी उठाकर उसका शिर ही धड से अलग कर दिया, तब भी उसका क्रोध शांत न हुआ बल्कि अधिक क्रोधवश मे वह उसकी स्त्री को भी समाप्त करने दौड़ा। स्त्री ने अचानक उसका शस्त्र छीनकर उसी की देह से उसकी बिदाई दे दी। इस प्रकार अपने देवर को मारकर उसकी स्त्री को मार डाली। और आप यह सोचकर कि मुझे अन्त मे फजीहत सहित मरना ही पडेगी। इसलिये अपने हाथ अपना शिर छेदन कर आप ही मर रही। इस प्रकार वैर की जड़ जगतवस्तु तथा प्राणी की अहता-ममता ही है। यदि वे लोग तोर-मोर में नही फॅसते, तो इतनी भूल नही होती। सोचिये ! ऐसे प्रेम और वैर से, विश्वमोह तथा अहं से किसकी रक्षा होगो ? किसका उपकार ? किसका सत्कार ? अत. यह स्मरण रहे—

"माया मोह बॅधा सब लोई। अल्प लाभ मूल गौ खोई ॥" बीजक॥

"याते बैर प्रेम नहि करिये, स्वतः मे लक्ष रहाई।
शुभ लक्षण से रक्षौ सबको, निजपद छोड़ि न जाई॥

दुख देने के भाव को, दिल से देय निकारि।
जानि आप दुख बीच में, इत उत अरुझनि टारि॥ ३७॥

टीका—छोटे-बडे मनुष्यादि किन्ही भी देहधारी जीवों को मन, वच, कर्मो से पीड़ा पहुँचाने की मनसा को हृदय से कण्टक के समान जान के निकाल कर फेक देना चाहिये। यह समझ के कि बाल, युवा, वृद्ध अवस्थादि मृत्यु निर्वाह रोग-व्याधि और मानसिक—काम,

क्रोध, लोभादि अध्यासो से घिरे हुये हम स्वय महा दुखिया है। तो दुखिया अपने दुख छुड़ाने का यत्न करे या इधर-उधर राग-द्वेषरूप झाड़ी-जगल, खाईं-खन्धक मे गिर-गिरा के दुख बढावे ? जब आप दूसरे को दुख देने की क्रिया मे पड़ेगा तो वह भी सवाई लेकर आगे बढेगा। फिर हम भी बढेंगे, पुनः वह भी बढेगा। इस प्रकार द्वेष-भाव मे जिन्दगी ही बरबाद हो जायगी, तब अपना काम कब होवेगा ? अतः कार्य पूरा करने के मार्ग मे राग-द्वेष दो अरुझनि-रुकावट है, तिन्हे त्याग शाति पूर्वक एक चित से निर्विक्षेप अपने सत साधन अभ्यास को पुष्ट करना चाहिये ॥ ३७ ॥

दृष्टात—एक सज्जन को एक दुर्जन मनुष्य जब-जब मिले तब-तब उसकी निन्दा उपहास किया करे, वे सहा करते थे। एक दिन खूब घाम हो रहा था, भूखा प्यासा थका कही दूर से वह दुर्जन मनुष्य आकर बाग मे बैठा जल पीने को आतुर हो रहा था। उसके पास जल पीने का कोई साधन था नही, क्या हो ? इतने मे वह सज्जन वहाँ पहुँचा। शीघ्र बिना कहे उस दुर्जन को जल भर के पिला दिया। कुछ गुड़ चबेना भी दिया। उस सज्जन के पास ये सब सामान थे। विवादी ने कहा—मर जाता, मगर आपसे लोटा-डोर माँगने की हिम्मत नही थी। आपको बहुत बार मैने कटु बाते कही। भले मनुष्य ने कहा—कोई हर्ज नही, "जैसी जाकी बुद्धि है, तैसी कहै बनाय। दोष न ताको दीजिये, लेन कहाँ को जाय ॥" "धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपति काल परखिये चारी ॥" उस दिन से वह मनुष्य भी धार्मिक हो गया। क्षमा के साधक मन्त्र—१ खर-खर, भर-भर बात न कहे। २. यथाशक्ति किसी का मान भग न करे। ३. निर्मान, हित-प्रिय वाक्य कहे। ४. हृदय साफ रक्खे। ५. दूसरे की अनुचित क्रिया भूल जावे। ६. कुसंग-विक्षेपी सग त्याग देवे। ७. सब पर जबरन कब्जा न करे। ८. दूसरे के किये उपकार को

याद रक्खे। ९. अपने किये उपकार का दूसरे पर भार न डाले, ताना-उलाहना न देवे। १०. कुछ अपनी भी भूल शोधे। ११. तन-मन दु.खो की विवशता में अपने को घिरा देखकर निर्मान रहे।

क्षमा पोषक गजल

तुम्हारे दिल की उलझन सब, क्षमा बल से क्षमा होवै।
सदा सत्सग के आश्रय, सहज निर्विघ्न पद पोवै ॥टेक॥
तुम्हारे वश में सब होवैं, ये हित पच पच के लड़ते हो।
तुम्ही अपने को वश कर लो, कहो फिर द्वन्द्व क्या होवै ॥ १ ॥
भला साझे कि चीजों में, स्ववशता का अह कैसे।
स्ववश तुम आप हो ज्ञाता, निजी मे शात से सोवै ॥ २ ॥
सभी नित लाभ को चाहै, पै पल्ले हानि ही आती।
बिना सत मार्ग के प्यारे, जमा औ लाभ सब खोवै ॥ ३ ॥
सहो प्रूरब के दुख सुख को, जो हानी लाभ हो वपु में।
गहो सन्तोप जग मग से, गुरू मग के यतन लोवै ॥ ४ ॥
विजय सिद्धी बडाई सब, तुम्हारे प्रेम करतल मे।
न हो निर्वाह मे घाटा, गहो सन्तों के गुण जोवै ॥ ५ ॥

प्रसग—६ सतोप लक्षण

कही न कही सबको मन मार के रुकना पड़ता है, लाचारी से रुकते हुये भी हृदय मे तृष्णाग्नि धधकती हुई पुन॰-पुन सर्व विघ्न बन्धनो में डालती रहती है। इस तृष्णा डाकिनी के विनाशार्थ और नित्य स्वरूप मे स्थिति के लिये प्रथम से ही समझ द्वारा पूर्ण सतोषामृत पान करके निर्वासना ठहरने की सबको आवश्यकता है। इस संतोप प्रसग मे उसी भाँति प्रेम हो—मानो अपराधी फाँसी से छूट कर घर की तरफ जाता हो। "सन्तो सन्तोष सुख है, रहहु तो हृदय जुडाय ॥"(बीजक)

सूँघी खाई परश की, देखी सुनी जो चीज।
तेहि में लहि सन्तोष को, जेहि जेहि ख्वाहिश खीज ॥ ३८ ॥

टीका—सूँघी हुई, खाई हुई, स्पर्श की हुई' देखी तथा सुनी हुई जहाँ तक इन्द्रियो की भोग्य वस्तुयें है, उन सबो की तरफ से सन्तोष धारण करे। विशेष करके निर्वाह के अलावा जिन-जिन इच्छित वस्तुओ के न मिलने पर मन मे कुढन एव जलन होती रहती है, उन वस्तुओ की कामनाओं का सर्वथा त्याग करना चाहिये ॥ ३८ ॥

गर्ज होय तेहिं की नहीं, दुख को जानि प्रवेश।
नैराश्य वृत्ति निर्वाह लै, तहँ सन्तोष रहेश ॥ ३९ ॥

टीका—पंच विषय पदार्थो की कामना न उठने पावे। क्या समझ के गर्ज त्याग करे? जो हम विषयों की गर्ज रक्खेगे तो हमारे अन्दर सब प्रकार के दुसह दुख प्रविष्ट हो-आयँगे। प्रथम तो सबका गर्जबन्दा बन जाना पड़ेगा, फिर इससे कभी तृप्ति भी न होगी। साथ ही दुर्गुण बढ जायँगे, जो कि हमेशा रूलाते रहेगे। अत: यदि हम दुसह दुख से बचना चाहते हैं, सदैव सुख-शाति के इच्छुक है, तो पंच विषयों की सुख-कामनाओं में सर्व दुख का आगमन जानकर तिसकी चाहना ही हमें रोक देना चाहिये तथा प्रारब्धिक निर्वाह मे भी सुख की भावना त्यागकर निराशता से यात्रा पूर्ण हित मोटे भाव में देह रक्षण मात्र लेते हुये सब प्राप्त-अप्राप्त कामनाओं को शात करता रहे। ऐसी जहाँ धारणा हो, तहाँ ही पूर्ण सन्तोष का बासा हुआ है, ऐसा जानिये ॥ ३९ ॥

जेहि जेहि सुख की चाह हो, तेहि से लक्ष समेटि।
दुख देखाय कहुँ अन्य विधि, जवरन ताहि दवेटि ॥ ४० ॥

टीका—स्वरूपस्थिति के अलावा जहाँ तक पंच भोगो में उत्त-

मता मानकर जिस-जिस सुख मे इच्छा चले तिसे सर्प-बीच्छू वत काल रूप जानकर शीघ्र अपने लक्ष्य को लौटा कर शांत करे, विवेक युक्त दुख समझ कर या और भी सद्ग्रन्थो के कथन अनुसार साधनों को लेकर जबर्दस्ती हठ करके जिस प्रकार बन सके उसी प्रकार उस सुख कामना रूप हैजा रोग को निर्मूल कर डाले ॥ ४० ॥

दृष्टांत—एक राजा ने कई करोड़ रुपये लगाकर सुन्दर मकान बनवाया। हीरा रत्न जटित कई किस्म के फर्नीचर, रेडियो, टेलीविजन, चित्र, रंग-रग की बिजली मनोरम गद्दियाँ, सुगन्ध सुस्वाद, सौन्दर्य वस्तुओं से खूब सजाया, छोडे-बडे सर्व प्रजाओं को आमन्त्रित किया। सब लोगो के आने पर राजा ने कहा—अभी कुछ कसर हो तो हम ठीक करवा दे। सब लोग राज भवन की प्रशंसा करने लगे। नि:कसर राज भवन निश्चय ही दर्शनीय एव सराहनीय है। इतना सुनकर एक सत्सगी मनुष्य बड़े जोर चीत्कार हाय! किया और रोने लगा। राजा ने पूछा—कहिये क्या है? उसने कहा आपके विलास सम्पन्न भवन में ऐसे-ऐसे दूषण है जो कभी मिट ही नहीं सकते, जब तक इनका त्याग न किया जा सके, अथवा इन्हे सदुपयोग मे जब तक लाया न जा सके तब तक कसर मिटना असम्भव है। राजा—ने कहा कृपया कहिये? तब उसने कहा—कसर तो अनेक है, मुख्य दो—एक दिन भवन निर्माण कर्ता, गर्वभर्ता का इस पर कुछ अख्त्यार-स्ववशता न रहेगी अर्थात उसका शरीर छूट जायेगा। दूसरा वह दिन नि:सन्देह आयेगा जब राजभवन का नामोनिशान तक न रहेगा, मिट जायेगा और भी कई त्रुटियाँ है, इन क्षणिक विलासी वस्तुओ के उपभोग मे जो पड़ेगा, उसकी १—कामनाये बढती जायँगी। २—सद्स्वरूप का ज्ञान न प्राप्त होकर स्वरूप ज्ञान से दूर होता जायेगा। ३—मन: शान्ति का विचार न सूझेगा। ४—साधु सद्ग्रन्थ आध्यात्मिक सन्मार्ग में रुचि न लगेगी। ५—सर्व

काम क्रोधादि राक्षसी सेना हृदय को नर्कमय बना देगी। ६—प्रकृति-वाद, देहवाद में पड़ कर कुकर्मों द्वारा अब और आगे अनन्त काल तक कष्ट होता रहेगा। उपर्युक्त बातें सुनकर राजा का मद उतर गया। इस दृष्टांत से अच्छी प्रकार हृदय में सन्तोष का पक्ष लेना चाहिये। शूल रोगी को शूलवर्धक मिष्ट दवा खिलाने न्याय सम्पूर्ण राजसी भोग सुख का ग्रहण ही अध्यास शूल को पुष्ट करता है। इस हेतु सर्व सुख सामग्री और तिसके उपभोग से अपने को बचाते रहना चाहिये। उसका यत्न पारमार्थिक कार्यों में लगे पगे रहना है।

दोहा—एक यत्न तृष्णा लिये, एक यत्न संतुष्ट।
दोनों फल परत्यक्ष हैं, खूब समुझि चलु पुष्ट॥

ख्वाहिश सबहीं देत दुख, जहँ तक निज से दूर।
फादिल तजिये जानि दुख, कम से कम में पूर॥ ४१॥

टीका—जहाँ तक कामनायें दृश्य होती है, सब निज स्वरूप से दूर ही है। वे ही जीव को सताती रहती है। अलग वाली भोग वस्तुयें मिलने-बिछुड़ने वाली, कामना रोग लगाने वाली होने से उनसे दुख ही होता रहता है। जब सब पदार्थ और तिनकी कामना ही दुख है, तो निर्वाह के अलावा भोग्य पदार्थों को भार रूप जान-कर यथायोग्य सर्वथा त्यागते ही रहना चाहिये। रह गया प्रारब्ध निर्वाह, सो प्रयोजन मात्र ग्रहण करे। यदि प्रयोजन में भी कम से कम प्राप्त हो तो उसी में सतोष रखना चाहिये। स्वरूप नित्य तृप्त जानकर उद्विग्न रहित संतोष युक्त रहना चाहिये। यदि आश्रम युक्त हो, बहुतों का आधारक हो तो तहाँ भी आवश्यकीय पुरुषार्थ करते हुये जो कुछ प्राप्त हो उस हानि-लाभ में समान वृत्ति रखकर संतोष बल से सुखी रहना चाहिये॥ ४१॥

छन्द—"ससार की सब वस्तुयें सब कामना सब चाल जो।
ताजा पुराना देखना सुनना जहाँ तक हाल जो॥
ससार का संसार ही की तर्फ सब लौटार दो।
चिद मात्र पारख आप रहि बस मुक्त नित सुविचार दो॥"

साखी—"मोट छोट कुछ कापड़ा, पेट भरन कुछ अन्न।
फिक्र रहित मन स्ववश करि, तोपी सदा प्रसन्न॥
राज पाट के ठाट से, वढ़ि कै समझै ताहि।
शीलवान संतोष युत, निर्मल वुद्धी जाहि॥"

"अजर अमर अबिकार निज, काहु अपेक्षा नाहि।
नित्य प्राप्त निज रूप सुधि, और कामना काहि॥"

प्रश्न—संतोष मे आलस्य, प्रमाद और बेकारी होती है या नही ?

उत्तर—बिल्कुल नही, किन्तु तृष्णालु और संतोषी के परिश्रम सावधानी सक्रियता में बहुत अन्तर है। अधिक-अधिक ऐश्वर्य संपत्ति राजस-तामस भोग विलास एवं तृष्णालु का अथक परिश्रम विष विषयेन्द्रिय भोग के लिये ऐसे ही आपत्ति मूल है मानो पाँखी का परिश्रम कर-कर के दीपक में जलना। भला जिससे दुर्बुद्धि और आसक्ति बढे वह मद्यपी या अन्ध दौड़ने न्याय कब सुखदाई प्रयत्न हो सकता है ? दूसरा श्रेष्ठ प्रयत्न संतोपी का सहजिक देह यात्रा मात्र का यत्न करते हुये उनका अथक यत्न विषयो को त्याग मन की दौड़ तोड़के अविनाशी स्थिति के लिये होता है। संतोषी कामना रोग की पुष्टि ही नही करता, यही हमारा भी पुनीत कर्तव्य है।

तृष्णा को तो नाम नहिं, आशा को क्या काम।
अछय कोप सन्तोष गहि, मिटै दरिद्र बेकाम॥ ४२॥

टीका—स्वरूप सत्य नित्य तृप्त अखण्ड है, फिर अन्य तृष्णा का नाम ही न लेना चाहिये। देह निर्वाह मे भी जब कम से कम मे वृत्ति ठहरा लिया गया, तो वहाँ तृष्णा की चाल ही नष्ट हो गई। ऐसे सज्जन को तृष्णा नही सताती और विवेक युक्त नैराश्य वर्तमान के अलावा जो आगे की आशा चिन्ता उठती है, जैसे—शरीर कहाँ-किस प्रकार छूटेगा ? कोई निर्वाहिक पदार्थ मिलेगा या नही ? एव आने-जाने लेने-देने, मिलने-बिछुड़ने यहाँ तक कि निज चैतन्य रूप राम के अलावा कल्पित स्वर्ग लोकादि मिलने की सब आशा मात्र बन्धन रूप समझ के स्वरूप दृष्टि के बल से सबो का त्याग करे। आशा करे या न करे देह का जैसा प्रारब्ध वर्तमान होगा वैसा बर्त जायगा। न नाश होने वाला अपना पारख शुद्ध स्वरूप, सो तो हमेशा नित्य संतुष्ट रूप ही है, अन्य चाहनाओ से जीव का कोई काज बनता नही, सिवा चचलता कष्ट के। इस निश्चय द्वारा अखण्ड, अखूट, संतोष ग्रहण करते ही सारी दरिद्रता जो कि विना प्रयोजन सता रही है, वह नष्ट हो जायेगी ॥ ४२ ॥

तृष्णा का रूप—कवित्त

पाये है सुन्दरी मन मोद के सपूत, पाये है शब्द गन्ध रूप रस ठावने। पाये है कोमल मृदु शुचि स्पर्श हूँ को, पाये है भाँति भाँति भोगन सुहावने ॥ पाये है राज काज उदय अस्त लौ समाज, पाये है विद्वता की चातुरी सुहावने। पाये है सभी कुछ पर पाये न कछू हाय, तृष्णा की अकथ कथा और और भावने ॥

संतोष सुधा—गजल

भला ! सतोष से बढकर हमारा कौन है रक्षक ॥ टेक ॥
वढी है चाह जग सुख से, तो मिथ्या यत्न मृग जल से।
मिला अनमिल सदृश सबही, जो दुर्गुण बढ रहे भक्षक ॥ १ ॥

उलट कर देख लो प्यारे, सकल चाहों को तू करता।
पकड़ निज मूल को ठहरो, गहो द्रष्टापना स्वक्षक ॥ २ ॥
आखिर मन मारना सबको, पडे दिल में विचारो तुम।
तो प्रथमै क्यों न त्यागो तुम, ये इच्छा चूहड़ी लक्षक ॥ ३ ॥
लहौ छुट्टी व आजादी, स्ववश निश्चिन्तता सहजै।
रहोगे चैन चैनों में, सबूरी शान्ति के पक्षक ॥ ४ ॥
गहो प्रिय प्रेम से रहनी, गरीबी शुद्ध सब सद्गुण।
करो प्रारब्ध को पूरा, गुरूपद श्रेष्ठ दुख ध्वंसक ॥ ५ ॥

प्रश्न—संतोष के सहायक दिया जाय ?

उत्तर—भोजन देते हुए भी घुट्ट तो स्वय ही करने से काम चलेगा। पूर्व कथन को आचरण में लाइये, भोगों से तृप्ति होगी ही नही, अत· शुद्ध गरीबी से, निर्वाह मात्र लेते हुये यथावत शक्ति के अन्दर शीत, उष्ण, भूख, मानामान के द्वन्द्व को सहते हुये अन्तर निर्वासनिक स्थिति जाग्रत करते रहिये।

प्रसंग ७—सत्य लक्षग

निज स्वरूप की सत्यता को भूल कर झूठी माया-काया मे आसक्त हो मन, कर्म, वाणी मे असत्यता धारण करके राग-द्वेष-कामना, विषयासक्ति, हिसा, छल, घोर पाप-ताप आदि मे सदा संतप्त दुखी जीव विश्राम ढूँढता है। इस हेतु सर्व पाप-दोष दुख से छूटने अर्थ सत्य स्वरूप और मन, कर्म, वाणी मे सत्य की प्रतिष्ठा रखके सत्य स्वरूप मे स्थित हो मुक्त हो जाना चाहिये। इस 'सत्य' प्रसग को उसी प्रकार प्रेम से हृदयस्थ करना चाहिये मानो सबसे बढकर अत्यत हितैषी प्रिय से बहुत दिन के बाद मिल रहे हो।

"साँच बराबर तप नही, झूठ बराबर पाप।
जाके हृदया साँच है, ताके हृदया आप॥" (बीजक)

होवै अडिग्ग रहस्य में, न्यायक सत्य अमोल।
सत्य वचन व्यवहार में, डारि प्रपंचिक झोल ॥ ४३ ॥

टीका—हे सत्य प्रेमी ! जैसा अपना स्वरूप सत्य एकरस अचल है, तैसे ही तिसकी स्थिति के लिये शुद्ध रहस्य भी अटलता से गहो। अपने सद्रहस्यों से कभी चलायमान न होओ, एकरस साधन-अभ्यास मे डटे रहो और सत्यन्यायी बनो। जिसका मोल नही तथा जिसके समान कोई नही, ऐसा सर्व शिरोमणि जो अपना सत्य स्वरूप है, सर्व का न्यायक परीक्षक सबसे श्रेष्ठ महान पद है, इसी सर्वोच्च गुरुपद विचार को स्वयं गहते हुये अधिकारी प्रति ज्यो का त्यो यथार्थ निर्णय करो, यही सत्य न्याय कर्ता के लक्षण है और देह व्यवहार मे भी सत्य वचन जैसा का तैसा समय-पात्र और प्रिय वचन से नम्रता युक्त बोलो, मन-कर्म मे भी सत्य ही से सम्बन्ध रक्खो। जो कहो जगत मे झूठ बोले बिना काम नही चलता, तो प्रथम ऐसी निश्चयता ही मिथ्या का पक्ष दृढ करती है। प्रत्यक्ष जगत व्यवहार मे भी कोई-कोई सत्यवादी है, उनके व्यवहार मे त्रुटि नही वल्कि वे निर्दोष प्रिय सुखमय देखे जाते है। यदि कुछ स्वार्थिक त्रुटि भी दीखे तो सत्यवादी को सत्यपालन के आगे कुछ त्रुटि नही प्रतीत होती, जो कुछ घाटा होगा सो मिथ्यावादी ही का। दूसरी बात जिसके लिये मन, कर्म, वाणी मे मिथ्या ठगाई, जाल-साजी ग्रहण हो, वह सब मिथ्या झोल—माया कृत प्रपच समझ के छोड़ देना चाहिये ॥ ४३ ॥

प्रश्न—झूठ बोलने का कैसे त्याग हो ?

उत्तर—दृष्टान्त—एक गड़रिया बन मे भेड़ों को चराते समय झूठा ही शेर आया, शेर आया, कहि के हल्ला मचाया करे। एक दो बार किसान दौड़े, उसकी बात मिथ्या जान कर पुनः दौड़ना

वन्द कर दिये। एक दिन सचमुच सिंह आ गया। हल्ला मचाने पर भी एक मनुष्य नही दौडे। तमाम भेडो को सिंह मार डाला। इस प्रकार मिथ्यावादी अविश्वासी बन के तिरस्कृत होता है, लाभ भी उसका नही ठहरता। अनुमानी बात, सुनी-सुनाई बात, हँसी बात, निज-पर वैर मोह उत्पादक बात, हलवली अयुक्त उत्तर त्यागे, तब झूठ छूटै।

अहै अनादि जड़ यद्पि, तौ भी दृश्य असार।
हानि लाभ दुख रूप सो, मिलन बिछोह अपार॥ ४४॥

टीका—दृश्य जड़ तत्व कारणरूप अनादि उत्पत्ति और प्रलय रहित है। नियम है कि कारण का कारण नही हो सकता। जैसे सूर्य का अन्य सूर्य नही तैसे पृथ्वी की अन्य पृथ्वी, जल का अन्य जल, अग्नि की अन्य अग्नि तथा वायु की अन्य वायु न होने से ये सब अनादि है। यद्यपि जड़ तत्व सदा से अनादि रहे हुये है, तो भी एकरस सत्य सर्व द्रष्टा जीव के आ गेये सब दृश्य जड़ पदार्थ दिखाई देने वाले असार—कार्य रूप बन-बन कर बार-बार नाश हो के इधर-उधर होने वाले चचल तुच्छ है। प्रकृति रचित चरित्र में सार—भलाई स्थिति कुछ नही, दिन-रात गर्मी-सर्दी अतिवृष्टि झूरा पत्थर पाला आदि का झगड़ा प्रत्यक्ष ही है। जड़ तत्त्वो की बनी इन्द्रियाँ जड़ है और बाहर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तिनके कार्य पदार्थ भी जड़ है, तो तिन्ही जड विषयो के सम्बन्ध से शुद्ध जीव मे हानि-लाभ का दुख लगा रहता है, ताते जड तत्व प्रत्यक्ष दुख पूर्ण हैं। पुन जड ग्रन्थि ही करके मिलने और बिछुडने के अपार-अनन्त झगड़े दुसह दुख जीव के सामने बने रहते है॥ ४४॥

चंचल रहै न थिर कहूँ, लोभ मोह लासार।
अहै विकार न कार यह, बिना हेतु सब जार॥ ४५॥

टीका—चल-विचल, अनस्थिर तथा एकरस न रहने वाले क्रियाशील ऐसे जड़ तत्व है। फिर इन जड वस्तुओ मे सुख मानने से लोभ और मोह रूप लासा जीव को लग जाता है। कैसे लासा लगता है ? सुनिये शब्द—"ऐसी देहियाँ में जीव भुलाय रहे ॥ टेक ॥ माटी केरो ठाठ ठठा है। कलई चाम सजाय रहे ॥ दस औ पाँच राक्षसी चूसैं। तहवाँ प्रेम लगाय रहे ॥ ना सत्सगति ना गुरु भक्ती। ताडी पीटि हहाय रहे ॥ सत विशाल चेतावत नीके। कोइ बड़ भाग डटाय रहे ॥" पूर्वोक्त सर्व मानसिक विकार बीजो का हेतु जड़ सबध होने से सब जड तत्व विकारी है। देहोपाधि के त्रिविध ताप मे जलाने वाले है। इसमे फँस के जीव का आज तक कोई काज नहीं बन सका, अपने स्वरूप मे स्थिति नही हुई। इससे यह सपूर्ण पिण्ड-ब्रह्माण्ड 'न कार' कहिये आवश्यकता रहित निष्प्रयोजन है और जीवो के फँसाने का प्रलोभन रूप महा जाल है। जड़ इन्द्रियो के सम्बन्ध ही करके समाज, धन, मकान, अन्न, जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु सबकी विवशता लेनी पड़ती है और इन्ही की वासना रखने से जीव को वारम्बार जन्म-मरण का दुख सहना पडता है; याते जड तत्व जाल रूप है ॥ ४५ ॥

चेतन चेतन जान जो, सबकी कीमत कीन्ह।
बिन तेहि के नहिं सिद्धि कुछ, साची सबको चीन्ह ॥ ४६ ॥

टीका—चेतन जो स्वरूप से ही चैतन्य है, जिसमे अन्य चीज नही मिली है। जैसे जल मे शीत ही गुण है और अग्नि मे उष्ण ही उष्ण गुण है, तैसे चैतन्य ही चेतन का गुण-धर्म है, चैतन्य के अलावा उसमे जड़ का लेश नहीं, वही चेतन ही सबको जानता रहता है, ताते उसका जान भी नाम है। वही जान चेतन अपने आप है। यह स्वयं चेतन ही सम्पूर्ण जड तत्वों को जान-मान कर कीमत करता, तिनके गुण-दोष ठहराय के त्याग-ग्रहण करता। चेतन जीव न हो तो

सबकी सिद्धि कौन करे ? याते चेतन जीव सबको सिद्ध करने वाला होने से सर्व से श्रेष्ठ है। वही सबका साक्षी न्यायक है, वह आप ही साक्षी सबको चीन्हता—परखता है ॥ ४६ ॥

यहिते साँचा सार है, जीव जमा जो मुख्य।
जेहि की समता कुछ नहीं, पारख सार अमुख्य ॥ ४७ ॥

टीका—इसलिए कभी उत्पत्ति-नाश, कम-विशेष न होने वाला साँचा-सार जीव-जमा ही असली मुख्य है। जिसकी समता मे खानि-बानी पच विषय जड़ पिण्ड-ब्रह्माण्ड सब तुच्छ है। याते सर्व उपमा-उपमेय का साक्षी जनैया की समता मे कोई भी वस्तु नही है। जिसका शुद्ध स्वरूप पारख है, जो पारख सब कामना भूख से रहित नित्य तृप्त है ॥ ४७ ॥

स्ववश स्वतन्त्र न आदि कोइ, भूल दृष्टि भ्रम बन्ध।
मानि जड़हिं व्यौपार यह, पारख पाय अबन्ध ॥ ४८ ॥

टीका—चेतन जीव स्ववश है। स्ववश इससे है कि अपनी भूल के अलावा इसको कोई भी बन्धन मे बाँधने को समर्थ नही। अपनी भूल से बन्धन और भूल को मिथ्या परख लेने पर तिसको त्याग के मोक्ष होने मे समर्थ होने से जीव स्ववश है। स्वतन्त्र इससे है कि इसका कोई रचनहार आदि कर्ता-धर्ता विधाता नही। काहे ते कि कोई भी देहधारी जीव त्रिकाल मे अपना अभाव नही देखता। मै नही हूँ, ऐसी प्रतीति किसी को किसी काल में नही हो सकती। यदि भ्रम वश "मै नही हूँ या नहीं था या न रहूँगा" ऐसा कहे भी तो अपने कन्धे पर आप ही चढ के नाचने और मेरे मुख में जीभ नही, ऐसा कहने के समान विषम है। क्योकि अपने होने ही मे होना न होना दोनो का निर्णय होता है, याते जीव त्रिकाल सत्य है। स्वतः अनादि नित्य हमेशा रहनहार सत्य स्वतन्त्र है। यह अनादि काल से

देहोपाधि युक्त अपने आपको भूल के जड़ विषयो में सुख मानकर तिसे भोगता, जड़ का सस्कार गहता, फिर देह धरता-छोड़ता, पुन गहता, बारम्बार सुख-दुख भोगता रहा। अनादि काल से जड़ मे अहंता मान कर जड़ प्रकृति में प्रवृत्ति का यह चेतन जीव बड़ा व्यापारी बन गया है। तिसके फलरूप मे त्रिविध ताप तन-मन के दुखों मे तड़फा करता है। जब इस जीव को व्यापार का मिथ्यापन और तिसमे का दुख हानि घाटा जानने मे आवे, साथ ही सर्व व्यापार रचयिता अपने आप चेतन स्वरूप की नित्य तृप्तता, महानता, सत्यता की परख मिल जावे तभी जीव सर्व मनोमय व्यापार त्यागकर स्वरूपस्थिति गह के निर्बन्ध हो अचल रूप से ठहर जायगा, याते सर्व भ्रम त्यागे, यथार्थ सत्य पारख में पागे ॥ ४८ ॥

सत्य न सादृश्य जगत कछु, आप आप ही सत्ति।
सत्य कि समता कौन करि, सबका थापक अस्ति ॥ ४९ ॥

टीका—सत्य की तुल्यता का पिण्ड-ब्रह्माण्ड रूप जगत मे कुछ नही। वह सत्य है क्या ? तो आप जो शुद्ध चैतन्य पारख रूप है वही अपने आप स्वत सत्य सतुष्ट नित्य है, "स्वय प्रत्यक्ष है आपको आपहि, दृश्य प्रत्यक्ष कि कौनि बडाई !" स्वय चेतन अपने आप ही

१ टिप्पणी—स्वरूप की सत्यता की विशेषता तुलसीदास जी विनय पत्रिका मे कह रहे है। छन्द—"अनुराग सो निज रूप जो जग ते बिलक्षन देखिये। सन्तोष सम शीतल सदा दम देहवन्त न लेखिये ॥ निर्मल निरामय एकरस तेहि हर्ष शोक न व्यापई। त्रयलोक पावन सो सदा जाकी दशा ऐसी भई ॥" राम के स्वरूप के बारे मे भी बालमीकि ने कहा है—"राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर। अबिगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह ॥ सोइ जानै जेहि देहु जनाई। जानत तुमहि तुमहि ह्वै जाई ॥ रामा० ॥" राम ने तारा को समझाते हुये कहा है —"क्षिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित यह अधम शरीरा ॥ प्रगट सो तन तव आगे सोवा। जीव नित्य तुम केहि लगि रोवा ॥" एवं इस चेतन पुरुष को नित्य कर्म फल भोगने अविनाशी

सत्य अविनाशी है। उसकी तुल्यता कौन कर सकता ? क्योंकि वह तो सब उपमा-उपमेय का स्थापन करने वाला चेतन रूप सदा रहनहार साक्षी परीक्षक स्वयं सत्य है ॥ ४६ ॥

होने के अनन्त प्रमाण भरे है। उपनिषदो का सार भगवद्गीता मे भी चेतन जीव को निल्य और प्रकृति को भी अनादि वतलाये है—दोहा "प्रकृति पुरुष अनादि तू, अर्जुन दोउ जान। गुण विकार सब प्रकृति ते, उपजे अस लो मान ॥ १ ॥ यह न मरै उपजै नही, भयो न बहुरी होय। अजर पुरातन नित्य है, मारे मरै न सोय ॥ २ ॥ जैसे पट जीरण तजै, गहि पट नर जु नवीन। देह पुरातन जीव तजि, नई गहत परवीन ॥ ३ ॥ यह कटै हथियार सो, पावक सकै न जारि। भीज सकै जल नाहि सो, सोखि सकै न वयारि ॥ ४ ॥ और भी जैसे पुष्प गध को वायु उडाती, तैसे इस अमर आत्मा को धर्माधर्म का सस्कार पुन -पुन. देह धारण कराता है। इन वातो से यह जाना जाता है कि सवो ने स्वरूप की सत्यता ठहराय उसका क्रमश. निर्णय करके सत्य पद प्राप्ति और झूठे के त्याग द्वारा मुक्ति स्थिति ठहराई। परन्तु यथार्थ पारख न होने से पुन -पुन सदेह हो जाने से कही कुछ कही कुछ कहने लगे। जैसे कहा अश, कही अविनाशी अखण्ड, कहा एकदेशी, कही व्यापक, कही एक, कही अनन्त, कही द्वैत, कही अद्वैत, एव पूर्वापर सिद्धात विरोध होने मे उनकी वाते कुछ अंश मे ठीक-ठीक होते हुए भी सवा श सत्य नही ठहरी। स्वरूप का यथार्थ विवेक परीक्षा कसौटी पर ठीक न उतरा। क्योंकि स्वरूपात्मा को सवो ने सर्वत्र भरा हुआ एक अवकाशवत वताया। फिर ऐसी दशा मे अनन्त अखण्ड देहधारी जीव और समग्र चार तत्व कहाँ रहेंगे ? क्योंकि सब पदार्थ एकदेशी ही रहे हुए पृथक-पृथक अनादि अनुभव होते है। स्थूल का स्थूल विरोधी सूक्ष्म का सूक्ष्म विरोधी होने से एक ठौर मे कई चीजे नही रह सकती। विभु आकाश तो शून्य हो है, शून्य मे भी शून्य कहना आकाश मे वन्ध्या पुत्र के समान मिथ्या है तथा चार तत्व के अलावा काल दिशा अवकाश कोई स्वतन्त्र वस्तु न होने से कपिलदेव जी ने अनन्त पुरुष माना परन्तु वे भी प्रकृति की विकृति से उत्पत्ति प्रलय मान पुरुष को असग अभोगता मान फिर ठीक-ठीक पारख न कर सके। वशिष्ठ जी ने राम से दैव का खूब खण्डन किया। स्वसवेद्य-स्वयं ज्ञान स्वरूप चेतन मात्र आत्मा को सत्य कहा। परन्तु वे भी परमाणु सृष्टि को भ्रान्ति मात्र कह के अनिसवाद मे ही फिर जगत तरङ्ग से आत्मा को पृथक न कर सके। "कसत

दृष्टांत—सवैया

पैरि नदी उस पार गयो जब छौ जन आप में शोधन लाग्यो।
और गिनै निज नाहि गिनै पुनि याहि ते भ्रान्ति बशी दुख पाग्यो।
आय सुझाय दियो जब ही कोउ भ्रान्ति गई निज ही निज राग्यो।
सर्व परीक्षक सत्य को बोध हो जानौ तबै दुख द्वन्द दुराग्यो।

यहिते राखौ सत्य को, चाहौ जो दुख से छूट।
नहिं तो कोटि उपाय करु, कबहुँ न फन्दा टूट ॥ ५० ॥

टीका—सर्व का स्थापक इस चेतन से श्रेष्ठ सत्य कोई नही है और सत्य से ही दुख-द्वन्द्व की निवृत्ति होगी। इसलिये सत्य पारख सिद्धात और तिसके रहस्य को विवेक युक्त काय, वचन, मन से ग्रहण करो। जो जगत के सम्पूर्ण दुख द्वन्द्व से अलग होना चाहते, जन्म-मरण भव कूप मे नही पडना चाहते, तन, मन सम्बन्धियो के तापो मे नही जलना चाहते हो तो निजी सत्य के रंग मे रगो। सत्य जीव तो तुम्ही हो, मात्र झूठे को त्याग करने की कोशिश करो। झूठा त्याग होते ही बाकी शेष सत्य ही तो रहेगा ! झूठा सिद्धान्त, झूठी

कसौटी ना टिका, पीतर भया निदान"। इसलिये व्याप्य व्यापक वर्जित सर्व द्रष्टे अनन्त अविनाशी चेतन जीव अखण्ड अनादि है और दृश्य कारण-कार्य जड तत्व ये भी प्रवाहरूप अनादि है। क्योंकि अध्यास इच्छा भ्रान्ति स्वप्न रूप माया इस जड-चेतन ग्रन्थि को छोड़कर कही अन्यत्र देखने मे नही आती। अध्यास इच्छा भूल भ्रम उभय सम्बन्ध के बिना नही होते। एक व्यापक मे बन्ध-मोक्ष, गुरु-शिष्य सुख-दुख भिन्न-भिन्न कर्म भोग का भी प्रसंग नही बन सकता। "कहै कबीर तै मै क्या जान। को धौ छूटल को अरुझान" अत· सम्बध तो प्रत्येक घटधारी अनन्त अविनाशी जीवों का भिन्न-भिन्न अपने-अपने स्थूल-सूक्ष्म देहो से कर्म वासना अध्यास युक्त प्रत्यक्ष देख ही रहे है। कर्म भोग बन्ध-मोक्ष-का भी एक दूसरे मे साझा नही अनुभव होता। अस्तु—यही पक्ष सयुक्त सत्य एवं निर्भ्रान्त है। "सत्य ही को जानना, सत्य ही को मानना, सत्य ही बखानना सत्यवादी कहिये ॥"

क्रिया, झूठा निश्चय, झूठा सब आचरण त्याग कर जब तक सत्य ग्रहण न करोगे तब तक स्मरण रक्खो, कोटि उपाय भले करो, जगत-ब्रह्म भले बनो, सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान पारङ्गत होओ, परन्तु कभी जडग्रथि-जड़ाध्यास रूप तन्तु को तोड कर स्वयं जन्म-मरण से रहित न हो सकोगे ॥ ५० ॥

शब्द

सच्चा पारख ध्येय हमारा, सत्य रहनि कहनी सत सारा ॥टेक॥
जड़ चेतन दो वस्तु अनादी, द्रष्टा दृश्य विभिन्न बतादी ।
आपन आप सबन कूँ प्यारा, सच्चा पारख ध्येय हमारा ॥ १ ॥
दुइ की ग्रन्थि भूल वश जानौ, पच विषय वश जीव दिखानौ ।
दुख देखै तब हटै सँभारा, सच्चा पारख ... ... ॥ २ ॥
विषयानन्द काल की फाँसी, मृगतृष्णा भ्रम तज सुखराशी ।
मन रण क्षेत्र मे दे ललकारा, सच्चा पारख ... ... ॥ ३ ॥
सत्य विलग सब झूठ हटाओ, सत्य स्वतः पद जीव रहाओ ।
कहहि कबीर मुक्त निरधारा, सच्चा पारख ध्येय हमारा ॥ ४ ॥

प्रसग ८—विवेक लक्षण

विवेक की प्राप्ति किये बिना मनुष्य उसी प्रकार सुख शांति को नही प्राप्त करता जैसे भूखे-प्यासे या दर्द पीड़ित मनुष्य को बाहर का श्रृङ्गार-ठाठ । अस्तु सर्व अज्ञान आसक्ति नाश निमित्त विवेक की प्राप्ति करना ही मनुष्य का मुख्य कर्तव्य है । इस विवेक प्रसङ्ग को भली प्रकार उसी भाँति अपनाना चाहिये जैसे "आँखे प्रकाश को" और जैसे "मनुष्य श्वाँस को" । साखी—

मन सायर मनसा लहरि, बूडे बहुत अचेत ।
कहहि कबीर ते बाचि है, जाके हृदय विवेक ॥ (बीजक)

अविवेक फँसावै जक्त में, तरह तरह की फाँस।
अबन्ध आप बन्धन करै, सहै अनन्तौं त्रास ॥ ५१ ॥

टीका—विवेक के उल्टा अविवेक है, सो अविवेक ही जगत के अनेक बन्धनों में फँसाने वाला है। जिस समझ तथा कर्तव्य से दुख प्रपञ्च और असत्य रूप भाँति-भाँति के अनन्त बन्धनों में फँस जाय वह सब अविवेक है। तरह-तरह की फाँस—कवित्त :—"बिनाहि विवेक काम करै जौन जौन नर, सोई सब फाँसी होके गले मढ़ि जात जू। विद्या को प्रलोभ मद मान केरो क्षोभ कहुँ, फैसन को रोग कहुँ भोग हूँ मिठात जू॥ प्रेमिन को भार कहूँ धन को सम्हार निज, बाढ़े विस्तार कहूँ थापत थपात जू। सबको स्ववश कहुँ बुद्धि को प्रमाद कहूँ, ऐसे ऐसे अबिबेक देखिये दिखात जू॥" इस प्रकार "भूलन कि गली है अमित धारा भि जोर है।" यदि प्रथम विवेक द्वारा मुमुक्षु संत दशा मे शुभाचरण युक्त आप निर्बन्ध रहकर फिर बाद में विवेक छोड़ देवे तो पुनः अविवेक द्वारा पूर्वोक्त विविध प्रकार का बन्धन रच लेता है, पीछे अगणित कष्टो को सहता रहता है अथवा स्वरूप निर्बन्ध होते हुए भी देहोपाधि कृत अविवेक धारण करके अगणित दुख प्राप्त करता रहता है॥ ५१॥

साधु होय या गृहस्थ कोइ, जेहि में ऐसी बुद्धि।
सो सबही अविवेक है, भूलि आपनी सुद्धि॥ ५२॥

टीका—साधु हो या कल्याण इच्छुक गृहस्थ-मुमुक्षु कोई भी हो, जिसमें पूर्व कथन प्रमाण बन्धन में ही सुख मान के दुख रचने की बुद्धि—निगाह प्राप्त होवे सो सब अविवेक जानना चाहिये। सो अविवेक अपने स्वरूप का स्मरण न रखने से होता है। अर्थात जैसे

१ टिप्पणी—अविवेक का कष्ट "आपनपौ आपहि विसर्यो। जैसे श्वान···" इस शब्द मे कबीर साहेब स्पष्ट किये है। देखिये बीजक शब्द ७६।

अपना शुद्ध स्वरूप है, सुखाध्यास रहित नित्य शान्त स्थिर है, ऐसे अपने स्वरूप की शक्ति सामर्थ्य की सुध-बुध खबर न रखने से भूल वश सर्व अविवेक आसक्ति की प्राप्ति होती है ॥ ५२ ॥

दृष्टांत—दोहा

नदी धार प्रतिविम्ब लखि, रोटी निज मुख श्वान ।
कूदि मर्‌यो जल धार में, यों अविवेक भुलान ॥
छल वल लूट अनीति सव, भोगै कष्ट अपार ।
शान्ति गई तृष्णा मची, अस जिय शोधि सुधार ॥

जेहि जेहि निर्णय के गहे, हानि न लागै कोय ।
सिद्धान्त होय या रहस्य में, वही यथारथ होय ॥ ५३ ॥

टीका—जिस-जिस निर्णय से किसी कल्याण अङ्ग मे हानि-घाटा-धोखाधार की न प्राप्ति हो उसी को विवेक[1] कहते हैं । अनेक सिद्धान्त है, अनेक रहनी हैं, तिनमे कोन-सा सिद्धान्त, कौन-सी रहनी कल्याणकारक है ? इस प्रकार सिद्धान्त और रहस्य के बारे में ठीक-ठीक निर्णय द्वारा ज्ञान-शोध वोध लगाना वही यथार्थ विवेक है, तिसको ग्रहण करना चाहिये ॥ ५३ ॥

दोहा—पय मथि धरती खोदि जल, धान कूटि मधु सार ।
कंचन ताव कपास धुनि, त्यो विवेक लहि सार ॥

बहुत जनम नर देह को, सुकृत का फल येह ।
मिलै विवेक यथार्थ जब, तबही सब दुख खेह ॥ ५४ ॥

टीका—अनेक नर जन्मो से शुभ साधन मे लगे हुये सुकृत सचय का परिणाम और इस जन्म के सत्संगादि पुरुषार्थ तथा सद्‌गुरु कृपा

[1]—टिप्पणी—विन सतगुरु नर फिरत भुलाना ॥ ····इस पूरे शब्द मे। विवेक की प्राप्ति सद्‌गुरु मे बताया गया है, देखिये "कबीर भजन माला" मे

ये सब सौभाग्य के फल स्वरूप में यथार्थ विवेक की प्राप्ति होती है। ज्यों का त्यों जड़-चेतन, बन्ध-मोक्ष समझने की दृष्टि और रहस्य (रहनी) ठहराव की युक्ति ऐसा यथार्थ विवेक जब प्राप्त होता है तभी सर्व शंका-भ्रम, अध्यास, आसक्ति जनित सर्व दु.ख द्वन्द्व नष्ट हो जाते है ॥ ५४ ॥

प्रश्न—मै कौन हूँ ?

उत्तर—इन्द्रिय मन द्वारा जहाँ तक पिण्ड-ब्रह्माण्ड तुम्हारे आगे भासै–प्रतीत हों सो सब तुम नही ।

प्रश्न—सर्व मनोभास छोड़ता हूँ तो शेष क्या ?

उत्तर—जो कुछ शेष नही है तो सबको छोड़कर फिर आगे वृत्ति लय रूप शून्य को भी भास-प्रतीत (मानने) वाला कौन है ? विचारने से सर्व मनोवृत्ति को छोड़ने वाला तुम्हारा अपना चेतन स्वरूप है। तुम अपने को ढूढने चलो तो आगे दृश्य जड़ में न पाओगे। तिससे उलटकर देखो ! जो अपने को ढूँढता है वह ढूँढने वाला कौन है ? आप चेतन ही तो है। अनादि काल से देहोपाधि युत मनोभास में दृढ अहन्ता के कारण तुम अपने को भूल गये हो इस भूल को सद्गुरु की सहायता से त्याग करो। एव जड़-चेतन का विवेक और रहनी (रहस्य) धारण करके विपरीत क्रिया रूप बीज को भस्म कर डालने से आगे देह ही नही, तो सब दुख कहाँ ? ये भी मिथ्या हो गये। अस्तु—

"परम विवेकवान सोइ जीवत। अपर अन्ध सम दुख में सीदत।
बिन देखे ज्यों मग नहि चलई। त्यो सब काज शोधि हित करई॥"

निर्णय सत्यासत्य को, साधन कहत विवेक।
गहे ताहि कल्याण हो, छूटै सब अविवेक॥ ५५ ॥

टीका—साँच-झूठ, चेतन-जड़ ये दोनों एकमेक भ्रम से प्रतीत होते है। सो भ्रम को दूर कर सत्य-असत्य को जिस निर्णय दृष्टि से विलगाय के सत्य पर आरूढ़ रहा जाता है उस दृष्टि का नाम विवेक है। ऐसा विवेक ही सत्य पारख वोध और स्थिति का साधन शस्त्र या सहायक कहा जाता है। जिसको सत्संग, सद्ग्रथ और निर्मल अंत करण करके स्वानुभव से धारण करते ही सर्व दुखों से छुटकारा रूप कल्याणपद मिल जाता है। साथ ही सब अविवेक—असूझ अज्ञान पना दूर होकर भीतर की दृष्टि खुल जाती है। भाव—विवेक से वह महान पद मिलता है जो रुपये, स्त्री, कुल-सुत, त्रिलोक ऐश्वर्य से नहीं मिलता ॥ ५५ ॥

दोहा—उत्तम भोग अपार जेहि, ज्यों रोगी मिष्ठान।
देखि दुखी तेहि त्याग बल, सन्त सुखी सद ज्ञान ॥
ज्यों भूपति सुख सेज पर, सपने व्याघ्र चवाय।
जान्यो जाग्यो आप तब, अस विबेक सुख दाय ॥
नख शिख इन्द्री प्राण मन, व्यापक व्याप्य न टेक।
सब द्रष्टा सबसे पृथक, ज्ञानहि मात्र विवेक ॥

प्रश्न—विवेकी का सुख कैसा है ?

उत्तर—आखो वाला देख-देख के चलता, अन्ध सदृश आपत्ति मे नही पडता, एव स्वरूप वोध वल से सदा संतुष्ट स्थित निर्चाह पद प्राप्ति होती है।

उत्तम मध्यम कनिष्ठ जो, सबही हित को साध।
निज निज श्रेणी से चले, करते दुख को बाध ॥ ५६ ॥

टीका—यह विवेक सबको ऐसा सहायक है कि उत्तम सतोगुणी धार्मिक मनुष्य मध्यम-गृहासक्त राजसी धर्माधर्म मिश्रित मनुष्य। कनिष्ट-तमोगुणी-हिंसक चोर,वटपार। इनमे कोई भी विवेक धारण

करे तो आगे सबको कल्याण का मार्ग सूझ जाय। सात्विक शुद्ध पात्र तो स्वरूपज्ञान और वैराग्यादि सब साधन सम्पन्न होके जीवन्मुक्ति सहित विदेह मुक्ति का अधिकारी बन जावे। राजसी मनुष्य दया-क्षमादि मनुष्य के गुण-लक्षण ग्रहण करते हुए एकरस भक्ति भाव का अधिकारी बन के चौरासी योनियों से अपने को बचा लेवे ओर तामसी भी अविनाशी जीव के कर्म फल विवेक द्वारा अच्छे अच्छे दया धर्म की रीति सम्हार कर सर्व पाप कर्म त्याग के अब और आगे परलोक मे सुख शान्ति का बीज बो लेवें। इसी प्रकार स्त्री भी घूमना और बहु सङ्ग त्याग कर गृह में ही भक्ति विवेक सत्य शील क्षमादि शुद्ध लक्षणो को धारण करके जगत दुखों से अपने को पृथक कर सकती है। गृहस्थ अपनी शुद्ध वृत्ति से कमाई करते हुये उस अन्न-धन को दया धर्म सेवा सत्सग मे लगाकर अपनी शक्ति अनुसार परमार्थ मार्ग का अभ्यास करते-करते फिर सब जड़ाध्यास त्यागने की शक्ति बनाकर परमपद का भागी बन जायगा। वैराग्यवान सच्चे दिल से अपनी इन्द्रिय-मन को जीतने का यत्न करके प्रत्यक्ष जीवन्मुक्ति की प्राप्ति कर लेगे। इस प्रकार अपने-अपने दर्जे और घट-शक्ति अनुसार धर्म कर्म सदाचरण बोध भाव के मार्ग मे आगे-पीछे सब उधर ही चलते हुए अपने-अपने दुखो के बोझ हल्के करलेंगे। तथा जो स्वरूपज्ञान सहित जड़ाध्यास बीज जला देंगे वे जन्म-मरण के दुखों से अपने को बचा लेगे। एव विवेक से सबका सुधार होता है ॥ ५६ ॥

लावनी शिक्षा—निज-निज श्रेणी सुधार

यथा योग्य नर नारि सभी कोइ सत मारग में लग जाओ।
जानि सु औसर जीव काज का कभी नही तुम अलसाओ ॥टेक॥
यदी गृहस्थी में भी कमाई शुभ नीती से नित्य करो।
कुल पोषण के साथ ध्यान हो गुरुजन सेवा प्रेम धरो ॥ १ ॥

सतसगत मे लगो लगाओ जो गुरुज्ञान यथारथ है।
जड चेतन का भेद अनारी नर तन फल परमारथ है ॥ २ ॥
नारी जन भी भक्ति मे लागे शुद्धाचार विचार गहें।
जीव दया औ शील एक व्रत धर्म अग सुख सार लहैं ॥ ३ ॥
ईर्षा झगडा कभी करे नहि, हिल मिल सहन के साथ रहें।
बहुत सङ्ग बहु रंग भ्रमण तजि शुभ गुण भूषण तोष गहैं॥ ४ ॥
सुख दुख आते जाते है तुम स्वस्थ सदा रहने वाले।
जग सरॉय मे ठगे न जाओ गुरु ज्ञान ढाल गहने वाले ॥ ५ ॥
नित्य प्रेम से ग्रथ पठन कर गुरु दर्शन करना चहिये।
निज दुर्गुण का त्याग करो क्रमश: आगे बढना चहिये ॥ ६ ॥
सुख निश्चय हो भोगो मे गृह तजने से फिर लाभ नही।
धर्म भक्ति सम्बल दृढ लावै कही दिखै विश्राम नही ॥ ७ ॥
यदि विराग मे चलना हो तो सयम बड़ी कड़ाई से।
मोहाकर्षण हो न कभी दु सग से हट हट काई से ॥ ८ ॥
जब शुभ करनी से इस मन को तनिक न दो अवकाश कहीं।
तब निश्चय ही मन पवित्र हो गुरु अधार ना छुटे कहीं ॥ ९ ॥
इत उत लस फस ठीक न होगा निरस स्ववश रहना चहिये।
मन हर प्राणी वस्तु से भागौ कभी न मद गहना चहिये ॥१०॥
सत्य बोध सदा विजय हो सत्य धर्म गहना चहिये।
गुरु कबीर का ज्ञान सार यह पारख मे रहना चहिये ॥११॥

प्रसङ्ग ९—धीरता लक्षण

"धीरज साहस जोर बढावै, छॉड़ि अधीर नदान। यहि धारण बिन काम न पूरा, कोटिन यतनि करान।" याते इस धैर्य प्रसंग को मनन करके इसकी मिठास उसी प्रकार लेना चाहिये जैसे कमल पुष्प की मिठास को भ्रमर॥ "उथले रहहु परहु जनि गहरे, मति हाथहुं की खोवहु हो॥" (बीजक, कहरा)

विपति परे घबड़ाय नहिं, जानि देह को भोग।
ठहरि रहै उद्धार में, समर देह के योग॥ ५७॥

टीका—देश समाज कृत हलचल या शारीरिक कोई भी व्याधि, उपाधि सामने आ जाय तो उसमें घबडाना न चाहिये। क्या समझ के न घबड़ावे कि वह अपने पूर्व कर्मो से रचित भोग देने के सनमुख इस प्रारब्ध वृक्ष का दुख-सुख रूप फल है। ऐसा अपनी कमाई का फल जानकर धीरता पकडे और अपने उद्धार-कल्याण रहस्य के मार्ग मे ठहरा रहे। कल्याणार्थी को इधर प्रारब्ध रूप देह की यात्रा भोग कर समाप्त करना है, साथ ही इस देह धरने का बीज सुखाध्यास शत्रु को हनन करते हुये स्वरूपस्थिति रूप अक्षय साम्राज्य भी प्राप्त करना है। अर्थात देह भोग को पूरा करना और पुरुषार्थ करके देह बन्धन से जीव का उद्धार करना इन दोनों का योग कहिये सामना है—संग्राम है, ताते इस सग्राम मे दुख-सुख सहते हुये निज पद में आरूढ़ रहे॥ ५७॥

"धन अर्थी ज्यो धैर्य न छोडै। भाँति भाँति उपयोग करोडै॥
त्यों परमारथ हेतु, अनेका। धैर्य सहित परमारथ टेका॥"

उपाय सोचि तन चेत्र में, विघ्न रहित करतूति।
निरवार करै जड़ग्रन्थि को, गाफिल होय न सूति॥ ५८॥

टीका—इस देहरूप रणक्षेत्र मे शत्रु नाश करने की युक्ति विचारै। ऐसा सोच विचार के कर्तव्य आचरण करे कि जिससे पुरुषार्थ करने मे विघ्न-बाधा न पडे। दीर्घ काल तक सोच के कार्य करने का अभ्यास बनावै। जिस कर्तव्य, सग, मनन, जिस पाठ-पठन, व्यवहार का परिणाम स्वतन्त्र, अफिक्र, निवृत्ति, नैराश्य, निर्मानिता युक्त स्वरूप-स्थिति हो वही सब यथार्थ है। यदि उसके गहने मे प्रथम कुछ कष्ट बन्धन जान पडे तो भी दृढता से गहना चाहिये। नवयुवती और

अन्य रूपवान पदार्थो में खींचे नही। विविध स्वाद से मन रोके, सन्तोप पूर्वक देह गुजारा करे। कामुक स्पर्शासक्ति को बिलकुल निर्मूल करे। निरर्थक शब्द विषय को छोड़ देवे। गन्धासक्ति को निवारण करे। देह जनित हर्प-शोक, मिलन-बिछोह मे समवृत्ति रक्खे। देश-समाज और जड़ पिण्ड-ब्रह्माण्ड मे सुख भावना का त्याग करे। इस प्रकार जडग्रन्थि मनोमय को निरुवारे-छुड़ावे। इधर-उधर प्रपच राग मे भुलावे नही, कल्याण के पुरुपार्थ मे निप्फिक्रता की नीद[1] न लावे, चौरास्ता के सिपाही न्याय हरदम सत्कार्य मे लीन रहे। एवं "गाफिल होय न सूति"॥ ५८॥

लोभ मोह वायू चले, हटै न तिल भरि आप।
काम क्रोध की उष्णता, लगै न मन में ताप॥ ५९॥

टीका—द्रव्य संग्रह रूप लोभ और सगे साथियो को सदा रखने की हठता रूप मोह ये प्रचण्ड वायु आँधी के समान भीतर हिलोरा दे रही है, तहाँ कल्याण इच्छुक को पत्थर के समान अडिग्ग होकर रच मात्र भी लोभ मोहरूप वायु मे न उड़ना चाहिये। मैथुन कामना–काम और विपरीतो के विनाश की चिन्ता–क्रोध ये दो अग्नि ज्वाला के समान सनमुख आते है उनमें ऐसा करे कि उस ज्वाला की आँच तक अपने को न छूने पावे। यह विचार करके उसका नाश करे कि लोभ, मोह, काम, क्रोध चारो मे सब प्रकार के बन्धन विवशता विघ्न ताप है, इससे रहित होने मे सर्व विघ्न–द्वन्द्वो की निवृत्ति और सदा शाति सुख है। ऐसा समझ के जड़ मूल से तिसे विनाशने में डटा रहे॥ ५९॥

१–टिप्पणी–दोहा—बिल्ली बकु रिपु मध्य नृप, शूल दुखी को भाव।
ऐसहि लक्ष विचार इत, क्यो न भला बनि जाव॥
भाव—स्वरूप स्थिति हेतु उक्त दृष्टांत न्याय सदा प्रयत्नशील रहे।

प्रश्न—सुखाध्यास मे धैर्य छूटने लगता है सो क्या कारण है ?

उत्तर—प्रारब्ध उपाधि तो साथ ही है किन्तु संयम और सद् अभ्यास परीक्षा दृष्टि की प्रबलता बढा लिया जाय तो सुखाध्यासों मे तदाकार नही होगा। भूलकृत रोग के दमनार्थ तो धैर्ययुक्त स्वरूप भाव मनन ही श्रेष्ठ औषधी है, कुछ दिन सेवन करते रहिये बस धैर्य बल पुष्ट हो जायगा।

धीर सुजान सयान सोइ, आपन आप प्रकाश।
प्राप्ति करै पद आपनो, लहि धीरज सुख राश ॥ ६० ॥

टीका—धैर्यवान, शुद्ध समझदार, सर्व से श्रेष्ठ वही है जो अपने शुद्ध स्वरूप मे ठहर के मानसिक विकारो के आने पर उसके बहकावे में न आवे, स्वयं प्रकाशी स्थिर रहे। अर्थात शुद्ध स्वरूप के अलावा जो दुर्गुण जड़ाध्यासों का सचार होता है, उन सर्व स्मरणो और कर्त्तव्यो को त्याग कर जैसा अपना सर्व परीक्षक केवल पारख स्वरूप है तैसा ही लक्ष्य समझ के स्ववश स्वतन्त्र होकर ठहरे, यही अपना आप पारख प्रकाश है। इस रीति से धैर्य द्वारा विविध विघ्न-बाधा नष्ट करते हुए अपने शुद्ध मुक्तिपद स्वरूप स्थिति की प्राप्ति करना चाहिये। अपने पद से विचलित न होने देने वाला ये धीरज ही सुख की ढेरी है। बुद्धिमान सदा इसे गहे, भूलकर भी न त्यागे ॥६०॥

प्रश्न—धैर्यवान कौन है ?

उत्तर—युवती शिशु सम्पत्ति तथा मान के प्रति मोह जगने पर उनमे न खिचे, स्ववश रहे, सुखाध्यास ध्वस करे, निवृति मे ही मग्न रहे।

गजल

बड़ा बल धैर्य का भाई, उसे मन तू गहाता जा।
नही कहुँ यत्न से हारे, स्व शक्ती भर कराता जा ॥टेक॥

मिलेगा फल ये निश्चय है, जो बागो को सिचाता जा।
करै परमार्थ का साधन, तो नैय्या पार पाता जा ॥ १ ॥
अजर मै हूँ अनाशी मैं, सदा नित तृप्त ध्याता जा।
विजय तेरी अहै निश्चय, ये मन दल को भगाता जा ॥ २ ॥
नही कुछ लाभ जग मग से, गुरू मग ही निभाता जा।
सरल अभ्यास करते ही, सकल ऊबै हटाता जा ॥ ३ ॥

प्रसंग १०—वीरता लक्षण

मनोमय के भीषण युद्ध मे जीव कायर बन गया है। यहाँ तक कि मन इन्द्रिय और प्रपची जग जीवो के हाथ अपने को यह बेच दिया है। इसीसे यह सत्सग, सद्ग्रथ, सत्साधन, संयम, स्वरूपस्थिति से दूर पडकर सर्व दुखो का भोक्ता बन रहा है। इस कायरता के त्याग अर्थ इस वीरत्व प्रसग से उसी प्रकार प्रेम करो, मानो राज्यार्थी को राज्य मिल गया हो।

साखी—करु बहियाँ बल आपनी, छाँड़ बिरानी आस।
जाके आँगन नदिया बहै, सो कस मरै पियास ॥ (बीजक)

भीत न होवै वीर को, एकरस अपना जोश।
चला जाय संग्राम में, बरबस अरि के कोष ॥ ६१ ॥

टीका—तीर तलवार की चोट लगने, प्राण छूटने या सुन्दर स्त्री पुत्र, धनादि के बिछुडने आदि किसी प्रकार के सकट मे वीर पुरुष भयभीत नही होते। उसे मात्र शत्रु जीतने का दिन-रात एकरस क्षण-क्षण जोश-तरग बढता रहता। वह रणक्षेत्र मे शत्रु का नाम ही मात्र सुनकर लडने का दौड़ जाता। हठ करके रिपुदल की भीड़ के अन्दर में घुस जाता है ॥ ६१ ॥

निज मरने को दूर धरि, सबहि हतौं ततकाल।
यहीं भाव दिल में धरे, युद्धि करै बलशाल ॥ ६२ ॥

टीका—अपने मरने जीने की परवाह दूर धर के 'तत्काल अपने दुश्मनो का नाश कर दूँगा' यही भावना हृदय मे धारण कर महान बली वीर पुरुष युद्ध करता रहता है ॥ ६२ ॥

साधू को है काम यह, बझै न तन के कोट।
रैनि दिवस संग्राम करि, मेटि वासना खोट ॥ ६३ ॥

टीका—सन्त का यही कर्तव्य है कि वह वीर के समान शारीरिक सुख स्वार्थ का ध्यान छोड़कर नख-शिख देह का जो कोट खिंचा हुआ है उस घेरे में न बझै अर्थात इन्द्रियों के विषयो मे न खिंचे। रात दिन मानसिक युद्ध करके अपने जन्म-जन्म की वैरिणी खोटी वासनाओं को मिटा डाले ॥ ६३ ॥

दोहा—मन बुधि इन्द्री गढ़ बिजय, कीन्हे सन्त नृपाल।
स्ववश अभय स्थीर पद, काल कर्म रिपु टाल ॥

प्रश्न—पारमार्थिक वीरता आगे-आगे बढ़नी चाहिये, उसमे कमी क्यों होने लगती है ?

उत्तर—स्वार्थिक प्रपच की हानि-लाभ की फिक्र लाद लेने से, वोध रहस्य विमुख कायरों का सग करने से, मद सुख भोग से। अतः इन्हे त्याग करो।

लिहे वीरता को भले, दुर्गुण को दल छाँटि।
खोजि खोजि निर्मूल करि, जहँतक तिन्हकी चाँटि ॥ ६४ ॥

टीका—इस प्रकार बुद्धिमान यत्नशील मनुष्य वीरत्व भाव को अच्छी प्रकार धारण कर दुर्गुणो की सेना (मोह की फौज) को काट-छाँट डालते है, शोध-शोध करके शत्रुओं के दल कामादि सुखासक्ति विकार को जड़मूल से नष्ट करते रहते हैं। जहाँ तक शत्रुओ की चाँटि—सिलसिला (स्थान-भूमिका) है अर्थात जहाँ तक शत्रुओ की पहुँच ...ति... तक परीक्षा कर-करके ...स

रिपु को सर्वाङ्ग साधन से नष्ट करते रहते है। यही सन्त. जनों का संग्राम है ॥ ६४ ॥ यह आदर्श मन्त्र स्मरण रहे—

गजल

वही है राम सर्वोपर जो मन को जीत पाते है ॥ टेक ॥
काया गढ लंका महै, कामादिक भट वीर।
मन रावण दस इन्द्रि मुख, विषयन हेतु अधीर ॥
यही मन शाति सीता को हरै हरिजन दुखाते है ॥ १ ॥
भक्ति बिभीषण भेद दै, महावीर सत्सग।
दया क्षमा सत शील भट, सकल विवेक प्रसंग ॥
अहै अनगन्य रामादल जो सद्गुण नाम भाते है ॥ २ ॥
प्रवल विरागी रामजू, बोध चाप सन्धान।
मन माया घनघोर तम, काटि कियो निज भान ॥
सकल रिपु दल दमन करके सदा ये शाति लाते है ॥ ३ ॥
राम राज शुभ साज यह, भ्राता भरत अमान।
अचल अखण्ड स्वरूप मे, नहि कोइ पटतर आन ॥
जिसे यश प्रेम से सन्तों सदा सद्ग्रन्थ गाते है ॥ ४ ॥

प्रश्न—वीर कौन है ?

उत्तर—जो मन इन्द्रियो की सुखासक्ति का छेदन करते हुए प्रारब्ध भोग पूर्ण कर देवे। अन्य तो सब मदारी के वन्दर कायर कुपूत है।

प्रसंग ११—शील लक्षण

शील ग्रहण विना साथी, साथी से ही जला करता है। विपरीत व्रर्ती से तो भीतर से काल ही वन जाता है, जिससे कि वर्ताव मे अन्याय हिसा मिथ्या पक्ष कपटादि ग्रहण होने से उसे चारो ओर दुख की अग्नि में जलना पड़ता है। इस कुशीलता का सत्यानाश हो,

इसके लिये इस प्रसग को उसी प्रकार अपनाओ जैसे भूखा बच्चा माता का आश्रय लेकर सादर समोद दुग्ध ग्रहण करता है ।

साखी—सकलो दुर्मति दूरि करु, अच्छा जन्म बनाव ।
　　काग गवन गति छोड़ि के, हंस गवन चलि आव ॥बीजक॥

काँट न बोवै और को, आप दूरि से त्यागि ।
शुद्ध करै मन आपना, गहै शान्ति तजि आगि ॥ ६५ ॥

टीका—किसीके मार्ग में कॉटा न डाले, किसीको किसी प्रकार झगडे में न फँसावे । यदि दूसरा तुम्हारे जीवन-यात्रा में कॉटा बोवे तुम्हे कष्ट देवे तो भी तुम उसके साथ वैसा न बनो । बल्कि उसे सताने की इच्छा और कर्तव्य को दूर से ही त्याग दो । अन्य के रचे हुये रेच-पेच झगड़ा-झंझट विबाद-विषाद जाल से अपने को बार-बार बचा कर उस झगड़ा वाले कार्य, सग, व्यवहार को दूर से ही त्याग देना चाहिये । इसी श्रेष्ठ रहस्य से अपने मन की कठोरता, प्रमादता, असहनता, लोलुपता, जलन, इर्ष्यारूप मैल को निकाल कर इस मन को शुद्ध शील वृत्ति से पवित्र कर लेना चाहिये । एव शान्ति भाव धारण करके प्रतिकूलता में जो क्रोध भभकता है उसे छोड़ देना चाहिये ॥ ६५ ॥

करि अभ्यास मिटाइये, ज्वालामय जो क्रोध ।
निर्छल ह्वै शीतल बनै, तोड़ि सबै अनुरोध ॥ ६६ ॥

टीका—हे सुखशान्ति के इच्छुक ! अग्निज्वाला के समान सम्पूर्ण लोक को भस्म करने वाली यह क्रोधाग्नि जब-जब भभकै तब-तब इसे हानिकर समझ के तिसे रोकने का अभ्यास करो । क्रोध मे सहन का अभ्यास बनाकर क्रोध को मिटा डालो । छल प्रपच कामना से रहित सच्चाई के साथ शीतल हो जाओ । छल रहित शील धारण करने में जो रुकावट पडती है, कही मान हानि, कही देह सुख धन-

जन की हानि समझ के, कहीं ईर्ष्या वश जो कुशीलता धारण हो जाती है सो उन सबका मोह छोड़ने ही मे शीलवृत्ति आयेगी। ताते शुद्ध शील के विरोधी बातो को छोड देना चाहिये। कोई ऐसी हानि ही नही जिसके लिये शुद्ध शील त्याग किया जा सके ॥ ६६ ॥

सकल विषय तृण जारि कै, करै कामना भंग।
शुद्ध शील साथी मिलै, कबहुँ न तेहिको तंग ॥ ६७ ॥

टीका—यावत विषय भोग मान-बड़ाई तथा उनकी चाह तृण के समान जानकर अभ्यासरूप अनल से उसे जला के सब कामना को भग कर दो। सर्व कामनाये झूठे विषय सुख के ही लिये होती हे, तो विषय भोग की इच्छा छोड़ देने पर कामनाये आपही नष्ट हो जाएँगी। जब कामनारूप कुछ प्रयोजन ही नही तो कुशीलता का हेतु ही नही, फिर तो सहज ही शुद्ध शील परम हितैषी मित्र मिल जायगा। इस प्रकार शुद्ध शील जिसने धारण कर लिया, उसको कभी आपदा नही सता सकती। मध्यवर्ती व्यवहार को शुद्ध शील कहते हैं। जिससे अपने और दूसरे को दोष दुर्गुण बन्धन विक्षेप न हो वही शुद्ध शील है। न्यूनाधिक शील मे स्थिति मार्ग से विचलित होने का भय है, याते अशुद्ध शील त्यागै, शुद्ध शील मे पागै ॥ ६७ ॥

असहन कठिन स्वभाव तजि, गहै नम्रता चाल।
कबहुँ न काहुइ होय दुख, बोलत वचन सँभाल ॥ ६८ ॥

टीका—अपने विरुद्ध क्रिया और वार्ता देखकर भीतर खलबली मच के क्रोधवान हो जाने को असहन कहते है और अपनी कामना सिद्धि अर्थ दूसरे के हानि-लाभ, दुख-सुख की परवाह छोड़कर कठोर और घातक वचन तथा क्रिया करना ये कठिन स्वभाव के लक्षण है, सो इन दोनो को विवेक से हटा कर सबसे नम्र हो के बर्ताव करे। जिससे अपनी तरफ से किसी को हानि व दुख न पहुँचे, ऐसे वचन

सावधान होके बोले। काम क्रोधादि के वश होकर या किसी भी विकारी मनोभावना वश वचन न बोले। किसी प्राणी या पदार्थ के मोह वश होके बोलने से अनीति-अधर्म का बर्ताव हो जाता है। द्वेष कृत वचन बोलने से तो उत्पात ही खडा हो जाता है। झूठ दम्भ कृत वचन बोलने से सब प्रकार झगड़ा पश्चाताप बन्धन ही प्राप्त होता है। तो जिन वचनों से राग द्वेष असत्य की प्राप्ति हो और अपने को परवश वन्धन मे फँस जाना पडे ऐसे वचन न बोले। जैसे हाथ का फल स्ववश रक्खा जाता है तैसे स्मरण स्ववश रख के निर्बन्ध, निर्दोष, सरलता युक्त वचन बोले अथवा मौन रहे, ये सम्हाल का अर्थ है॥ ६८ ॥

प्रसग १२—विचार लक्षण

बिना पारमार्थिक विचार के परिवर्तनमयी तुच्छ प्रकृति भोग-रूप दीपक में पाँखी के समान उलझे हुये हम सब जीव नित्य-नित्य कोटि-कोटि दुखो को प्रत्यक्ष भोग रहे है। इन अनन्त अविचार जन्य दुखों से पीछा छुडाने अर्थ इस विचार प्रसग को नित्य उसी प्रकार प्रयोजन समझ के अपनाना चाहिये कि जितना शरीर रक्षा हेतु नित्य-नित्य अन्न जल और श्वास का ग्रहण।

"करहु बिचार जो सब दुख जाई परिहर झूठा केर सगाई॥" बीजक॥

कौनि लाभ जग साथ में, जो सहते दुख नित्य।
बिबिधि उपाधि सबन की, भार धरे नहिं मित्य॥ ६९॥

टीका—देह, मन, अन्त करण सम्पूर्ण प्राणी तथा जड़ पदार्थादि ऐसे जगत का साथ करके क्या लाभ मिला? तीन सौ साठ दिन नित्य-नित्य का दुसह दुख जगत के सम्बन्ध से ही तो सहना पड़ता है। अहो! सर्व जगत के अनन्त प्रकार के रगडे-झगडे का इतना वोझा लादते आया कि जिसकी थाह नही॥ ६९॥

अनन्त देह चव खानि को, तिन दुख को का थाह ।
तद्पि न चेते आजु तक, त्राहि त्राहि करि त्राह ॥ ७० ॥

टीका—अहो ! मनुष्य, पशु, अण्डज, उष्मज ये चार राशियों की अगणित देहो मे एक-एक खानि मे अनन्त देह धर-धर के मै कितना कष्ट पाया ? जिसकी थाह नहीं । अनेक रोग-व्याधि जनित कष्ट, असख्य प्राणियो के मिलन-बिछोह अनुकूल-प्रतिकूल, राग-द्वेष, तृष्णा जनित आपदाये, ठण्डी गर्मी, वरसात जड़ क्रियाओं के विपरीतिता जनित दुसह दु ख, भ्रम रूप मत-पन्थ कृत परिश्रम का कष्ट, जन्म मृत्यु, गभ, बाल, युवा-वृद्ध उपाधि कृत दारुण दाह, खान-पान का झगडा इस प्रकार कह के इति न हो सके ऐसे अगणित दुखो को पाता रहा । तब पर भी अनादि काल से आज तक दुख छूटने के मार्ग को चेते नही—समझे नही । अहो ! त्राहि !! त्राहि !!! शोक-सन्ताप मे ही सब दिन व्यतीत हो रहे है ॥ ७० ॥

कबहुँ न सोचे मार्ग वह, जेहिते सब दुख जाय ।
घूमि घूमि उतही रहे, कबहुँ न सोच समाय ॥ ७१ ॥

टीका—पूर्वोक्त जगत यमसदन का सब कष्ट पाते हुए भी कभी हम विवेक विचार न कर सके कि मेरे सब दुखों का अन्त कैसे होगा ? दुख न चाहते हुये भी बिना विचार रूप प्रकाश के अन्ध असूझ वन के घूमि-घूमि बारम्बार उसी दुख मार्ग में ही भटकते रहे । अहो ! ठहर कर किसी काल मे जरा भी सोच विचार हमारे मे न उदय हुआ । हम कभी इस बात की चिन्ता तक न किये कि जिससे जीव की स्थिति होकर सब दुख द्वन्द्व दूर होवे ॥ ७१ ॥

भो उपराम विचार करि, कहाँ जाउँ केहि पास ।
होय सकल दुख हानि मम, गौरव विविधि प्रकाश ॥ ७२ ॥

टीका—सब दुसह दुख को अपने माथे समझ कर उसके निर्मूल

करने के लिये जब निरन्तर स्मरण होता है कि अहो ! मै इस-जलती अग्नि से भाग कर कहाँ जाऊँ ? किसके पास जाऊँ जिससे मेरे सम्पूर्ण दुक्खो का विनाश हो ? ऐसे अनेक भाव जब होने लगते है तब जानिये विचार का आगमन हुआ । कवित्त—"अहो मेरी आयु सब धोखे माँहि बीति गई, समुझि फटत हिय कैसे मग पाइये । सर्व के परीक्षक प्रसन्न होय साँचो उर, जड़ अरु चेतन को भेद जो लखाइये ॥ वासना की ग्रन्थि अहो ! छूटि जाय कौन बिधि, जाते गर्भ कूप फिरि भूलि न गिराइये । सत्य औ असत्य बन्ध मुक्त भेद जानि सब, रहनी रहस्य पूर्ण अहो कब भाइये ॥" ऐसे-ऐसे दुख निवृत्ति के चिन्तन-मनन को विचार कहते है ॥ ७२ ॥

प्रश्न—आपने तन धर के क्या देखा ?

उत्तर—दुख, जैसे गऊ, भैसा, मछली आदि कसाई शिकारी द्वारा लूटे फूँके मारे काटे जिन्दे जलाये जाते है, तैसे इन्द्रिय और मनोकामना वश नित्य-नित्य मनुष्य जन्म-मरण की फाँसी पर चढता है । कैसे-कैसे रोग शोग वियोग उत्पात बन्धन दिखाई देरहे है जिनकी गणना नही । अत: गुरुज्ञान के आधार से दुख बीज नष्ट करना चाहिये ।

ऐसी मनन मथानियाँ, चलै रैनि दिन जाहि ।
वही बचै यहि फन्द से, जसका तसहिं देखाहि ॥ ७३ ॥

टीका—पूर्वोक्त मनन चिन्तन रूप मथानी अन्त:करण मे रात-दिन खलबली मचाये रहे । जगत दुख राशि समझ के तिससे छूटने की तरंग क्षण-क्षण उठती रहे । वही जगत के सुख-भोग पदार्थ, नर-नारी—प्राणियो तथा तन-मन के फन्दे—भुलावे से बच सकता है और उसे ही ज्यों का त्यो एकरस पारख दृष्टि से जड़-चेतन, बन्ध मोक्ष और रक्षक-भक्षक का मर्म मिलकर सत्य स्वच्छ मार्ग दिखाई देने लगेगा ॥ ७३ ॥

विचार साथ उपरामता, दुखहि विचार जगाय।
भयो अखण्ड विराग तब, तोड़ि फन्द मन काय॥ ७४॥

टीका—जगत में दुसह दुःख पाने पर तिससे छूटने का विचार उत्पन्न होता है। सोये हुये विचार को दुख ही जाग्रत करता है। जब उस विचार से जगत मे दुख ही दुख देखने में आ जाता है तब तिस दुख से छूटने के लिये दृढ ग्लानि होती है। विचार करने से उपरामता पुष्ट होती है। जहाँ विचार और दुख पूर्ण जगत से दृढ ग्लानि की प्राप्ति है वहाँ ही जीव अखण्ड वैराग्य द्वारा सूक्ष्म-स्थूल मन इन्द्रियों की आसक्ति को तोड़कर अक्षय परमपद का भागी बन जाता है॥ ७४॥

प्रसग १३—अमान लक्षग

देह सम्बन्धी सुख भोग ऐश्वर्य मे फूलते रहना, ऐसे मद ने आँखों के माडा के समान जीव को बिल्कुल अन्धा बना दिया है। वह सब चीजों को वे हाथ देखते हुये भी नहीं देखता, इसी से सब अनाचार धारण हो जाते है। अस्तु अन्धता निवृत्ति हेतु इस अमान प्रसंग को आदर उसी प्रकार अपनाइये, जैसे माड़ा निवारण हेतु नित्य अमृताञ्जन।

साखी—"जेहि खोजत कल्पो गया, घट ही माँहि सो मूर।
वाढी गर्भ गुमान ते, ताते परिगइ दूर॥" (बीजक)

बल बुधि विद्या स्ववश नहिं, काहि करौं मैं मान।
धन प्रभुता क्षणभंग सब, जिनको मानि भुलान॥ ७५॥

टीका—चर्ममयी स्थूल का जहाँ तक बल है तथा सूक्ष्म स्मरण कृत उक्ति-युक्ति मानसिक निश्चयात्मक सामर्थ्य बुद्धि और वाणी विस्तार—उर्दू, अंग्रेजी, सस्कृत भाषा आदि सम्पूर्ण विद्या, ये सब बातें विजाति होने से खास अपने स्ववश नहीं है। अभी शरीर निर्बल या

रोगी हो जाय अथवा जिससे जो पुष्ट है वह न मिले, बस सब नष्ट-भ्रष्ट हो जावे। विवेकवान कहते है कि हम किस वस्तु मे फूले ? हमारे हाथ क्या है ? लौकिक रूप मे रुपये-पैसे, सोना-चॉदी और सब पर अपनी हुकूमत मान-महन्ती सर्व पूज्यता बड़ा दर्जा ये भी तो पलक मारते ही विला जाते है। अहो ! जिन देहोपाधि कृत इन्द्रिय-गोचर ऐश्वर्य को अपना मानकर मनुष्य फूल जाता है। मै कौन हूँ ? जगत क्या है ? मेरा कर्तव्य क्या है ? इन बातो की सुधि तक नही करता, सो सब इन्द्रिय-गोचर प्रेमी और पदार्थो को चल-विचल होते देर नही लगती ॥ ७५ ॥

दृष्टान्त—एक राजकुमार लखनऊ से अंग्रेजी में साइन्स पास करके अपने देश जन्म-भूमि पर जाने लगा। इधर तो रेल से गया। उधर पहाडी प्रदेश मे दस सिपाहियो के साथ घोड़ा पर चढते हुये जब बीच में एक छोटी नदी सूखी पड़ी थी, वहाँ पहुँचा एकाएक ऊपर से बाढ आ गयी। घोड़ा सहित राजकुमार बहकर मर गया। उसकी आशाओ पर पानी फिर गया। इस प्रकार जब इस देह का ही कोई करार नही किसी साइन्स विज्ञान का भी इसमे जोर नही चलता तो फिर अन्य पर स्ववशता का क्या प्रमाद ?

फटी मलीनी चीथियाँ, जो तन ढाँकि रहात।
उत्तम भोग को नाम कहँ, नित न अहार लहात ॥ ७६ ॥

टीका—फटे पुराने मैले टुकडे जोडे चीथियों को पहिन ओढ कर जो मनुष्य शरीर की रक्षा करते है, उन्हे अच्छे-अच्छे बेशकीमती कपड़े, महल, मकान, हाथी, घोड़े. बाहन आदि ऐसे विलास को भोगना दूर रहा उन्हे उन भोग पदार्थो के दर्शन तक नही, नाम तक नही मालूम। जब कि उन्हे रूखा फीका सूखा आहार भी नित्य नही मिलता तो अन्य भोगो की क्या बात है ? ॥ ७६ ॥

रूखा फीका अशन जो, मिलत कठिन से जाहि।
करत निरादर भूल वशि, अन्य मनुष्य तिन काहि ॥ ७७ ॥

टीका—रोटी है तो शाक नही, भात है तो दाल नही, कही नमक मसाला नही, एवं रूखा फीका भोजन वह भी बड़े परिश्रम से, तिस पर भी रोज-रोज नही, कभी मिलता, कभी नही; ऐसे असहाय गरीब मनुष्यो को देखकर कितने मनुष्य भूल वश उनका निरादर करते, दुतकारते, फटकार मचाते, कितने तो हँसी हेतु लाचार मनुष्य को पकड के खेत मे विविध पीडा पहुँचा कर आप सब ठट्ठा मारते। देखो! कितनी अधमता अज्ञान की बात है ॥ ७७ ॥

आप सरीखे वै मनुष्य, जिनको देखौ तुच्छ।
ह्वै निर्मान न मान गहि, करिकै अन्तस सुच्छ ॥ ७८ ॥

टीका—अरे ! वे अपने ही समान तो मनुष्य है, जिन्हे हम तुच्छ समझते है। विचारने से मालूम होता है कि कर्म-फल अनुसार इस रहट चक्र में वे भी हमारे सरीखे कभी सम्पत्तिवान, विद्यावान, श्रीमान होंगे। परन्तु अभिमान करके अत्यन्त नीच कर्म-सस्काराधीन आज वे निर्वल लाचार हुए, फिर भी उनमें शरीर इन्द्रिय जीव बरावर ही है, फिर वे कैसे छोटे हुये ? यदि हम आज बड़प्पा का प्रमाद करेंगे तो फिर फूल कर अधर्म करने से क्या उन्ही के समान या उनसे भी नीची गति मुझे न मिलेगी ? अवश्य मिलेगी। इन बातो को सोच समझ कर अभिमान रहित हो जाना चाहिये और निर्मानता धारण कर अन्तःकरण को स्वच्छ कर लेना चाहिये ॥ ७८ ॥

तिनकी दशा को देखि कै, करो न कोई मान।
शुद्ध करौ दिल आपना, गहि सुन्दर निर्मान ॥ ७९ ॥

टीका—भूल वश उन दुखी गरीब जीवो की ऐसी दुखमय दशा देख कर कोई भी अभिमान मत ग्रहण करो। बल्कि मद रूप मैल

त्यागकर अपने अन्त.करण को शुद्ध शीशा के समान कर लो। सुन्दर चमकदार अलौकिक शुद्ध नम्रता धारण कर सर्वोपर परम शोभा को प्राप्त होओ ॥ ७९ ॥

प्रश्न—निर्मानिता सबसे सुन्दर और श्रेष्ठ क्यो है ?

उत्तर—उसमें हठ पक्ष आलस्य झूठापन कुशीलादि दुराचरण न होने से, सदा गुणग्राही सेवा भक्ति कोमल निष्कपट बर्ताव मे ही वह अमान सर्व मोहक है ।

हित चिन्तक सबके बनौ, जौनि दशा में होउ।
उत्तम मध्यम कनिष्ठ पर, करौ न इर्षा कोउ ॥ ८० ॥

टीका—हे सुख शान्ति चाहने वाले मनुष्य ! सब प्राणियों के हित चिन्तक बनो। जिस प्रकार उनका कुछ कल्याण हो या दुख न पहुँचे वह उपाय करो। गृहस्थी मे हो या विरक्ति मे, नर हो या नारी, पढ हो या अपढ कोई भी हो अपने से किसी बात मे किसीको उत्तम देखकर ईर्ष्या मत करो। अपनी बराबरी वालों से परस्पर विपरीत बर्ताव मत करो। अपने से छोटे या भूल वश नीचे कर्म करने वालो का घात या अनभल मत करो। सुखियो मे प्रसन्नता, दुखियो में करुणा, पापियो मे उपरामता, सब प्राणियो में समता से बर्तना ही अपने और अन्य के सुख का साधन है। इसे ग्रहण करो ॥ ८० ॥

नहिं बिगारौ काहु को, जहँ तक बनै बनाव।
अपने से जो नहिं बनै, तबहुँ हितै मन चाव ॥ ८१ ॥

टीका—जान बूझ कर कभी भी घटधारी मात्र की हानि मत करो। जहाँ तक बने नम्रता, समता, अनुग्रहता, शीलता, यथायोग्य सब के साथ उदारता, क्षमा, दया, धर्म, निष्काम बर्ताव करके उनका हित करो। यदि उनका किसी प्रकार हित या कल्याण अपने से

नही वन पडे, शक्ति के वाहर हो तो भी मन मे यही उल्लास होना चाहिये कि अपने साथ ही स्वजाति जीवों का हित हो जाय तो कितना उत्तम था ? ॥ ८१ ॥

प्रश्न—निर्मान होने के रहस्य कहिये ?

उत्तर—सुने हुये पर ध्यान न दिया जाय तो सुनने का फल नहीं होता । ध्यान देने का फल सच्चाई से आचरण करना है । ऊपर की साखी का भाव मनन कीजिये, उसी-मे निर्मानिता के रहस्य आ टिकेगे । "ऊपर के मिठ वोल भीतर कपट कतरनी" ये ठगाई है। यथार्थ हितैषीपना ही नम्रता है, इसे धारण कीजिये ।

अन्तःकरण पवित्र करि, रहौ सदा निर्मान ।
करकट कूरा ना वनै, जहाँ सदा यह ज्ञान ॥ ८२ ॥

टीका—पूर्वोक्त सम्पूर्ण प्राणियो के साथ स्वार्थ भावना त्यागकर हितैपिता के साथ वर्तते हुये अन्त करण पवित्र कर सर्वदा नम्रता सरलता धारण करो । ऐसा करने से कूरा करकट रूप परमार्थ वाधक–मद सम्वन्धी काम, क्रोधादि दुर्भावना आप ही नष्ट हो जायँगे । सुख-शान्ति हेतु नम्रता निरभिमानता ही है, ऐसा ज्ञान जहाँ सदा स्मरण रहता है, वहाँ करकट-कूरा दुराचरण-दुर्वुद्धि सव भस्म ही समझो ॥ ८२ ॥

प्रसंग १४ निष्काम लक्षण

सकामता से ही तो सव उत्पात पीडन, घात तथा आवागमन हो रहा है उसे निष्काम द्वारा जल्दी त्यागो । कामना त्यागे विना ब्रह्मचर्य नहीं । ब्रह्मचर्य के विना किसी का कल्याण नही हो सकता । सकामी अपने जीवन मे सुख शान्ति को नही पा सकता । आज शुद्ध ब्रह्मचर्य के धारण न करने से हम लोग इतना कष्ट पाते हैं कि जिसकी मिति नही । अस्तु ब्रह्मचर्य पालन करना प्रधान लक्ष्य होना चाहिये ।

काम अन्ध गज बशि परे मन बौरा हो।
अंकुश सहियो शीश समुझि मन बौरा हो ॥ (बीजक, चाचर)

काम विवश नर नारि को, दुख में देते डारि।
आप विके तेहि साथ में, सकल स्ववशता हारि ॥ ८३ ॥

टीका—स्त्री विषय कामना ही काम है[1]। तिसके वश होकर पुरुष स्त्री को दुसह दुख मे डाल देता है। उसे गर्भ धारण का भार दे देता है और तिसके मन की पुरौती हेतु तेली-बैल न्याय आप भी उसीके हाथ बिक जाता है। मन को जीतकर स्ववश, स्वतन्त्र, निर्भार, निश्चिन्त रहना ऐसी सम्पूर्ण स्ववशता को स्त्री के मोह मे गवाँ देता है ॥ ८३ ॥

१ टिप्पणी—यहाँ दशरथ के दृष्टात से ही समझ लीजिये कि काम मे कितनी आतुरता मदान्धता हो जाती है ? दशरथजी काम वश होकर कैकेयी से मिलने गये। कैकैयी को कोप भवन मे सुन उसकी अप्रसन्नता जान इतना काँपे कि आगे पाँव ही नही बढता। "चौपाई—सुरपति बसहि बाहु बल जाके। नरपति रहै सकल रुख ताके ॥ सो तिय रिस सुनि गयो सुखाई। देखहु काम प्रताप बडाई ॥" फिर ज्यो-त्यो कोप भवन मे जाकर देखा तो भूषण श्रृङ्गार रहित कैकेयी फटे मोटे वस्त्र लपेटे शोकातुर बैठी है। पुन. उसको मनाने के लिये बारम्बार उसके शरीर को स्पर्श करते हुये दीनता प्रकट कर रहे है। वह बारम्बार दशरथ के हाथ को झटक के फेक देती है। ज्यो-ज्यो वह हटती है त्यो-त्यो दशरथ और मदनोन्मत्त होकर उनको बिरह बेग सता रहा है। व्याकुलता से दशरथ कह रहे है—सोरठा—"बार-बार कह राउ, सुमुखि सुलोचनि पिकबयनि। कारन मोहि सुनाउ, गजगामिनि निज कोप कर ॥ चौपाई—अनहित तोर प्रिया केहि कीन्हा। केहि दुई शिर केहि यम चह लीन्हा ॥ कहु केहि रङ्कहि करौ नरेशू। कहु केहि नृपहि निकारौ देशू ॥ सकउँ तोर अरि अमरहु मारी। काह कीट बपु रे नर नारी ॥" देखिये कितनी कामान्धता ? यहाँ धर्माधर्म, नीति अनीति, लोक परलोक की कुछ परवाह नहीं। मात्र स्त्री की प्रसन्नता होनी चाहिये। काम वश अन्ध बने दशरथ यहाँ तक कहते है "जानसि मोर स्वभाव बरोरू। मन तव आनन चन्द चकोरू ॥ प्रिया प्राण सुत सरवस मोरे। परिजन प्रजा सकल बश तोरे ॥" इस प्रकार काम वश कैकेयी के मन को बढावा देकर उसे प्रसन्न करना चाहा। तब

आप दुखी दूसर दुखी, कहौ लाभ भै काह।
फिर फिरि चाह जलावती, पुनि भोगत अधिकाह ॥ ८४ ॥

टीका—जगत प्रपंच को वढाकर स्वार्थ की ही हानि लाभ मे पचते हुये इन्द्रियासक्ति वश पुरुप भी शोक-मोह-विरह वियोग सयुक्त दुखी रहता है और उसके साथ ही स्त्री भी इसी जगत रहट मे दुखी है। सोचिये! विचारिये!! इस काम भावना से स्त्री पुरुप का क्या लाभ हुआ? सिवा वल, वीर्य, वुद्धि परमार्थ साधन हानि के। यही कि वारम्वार चाह-इच्छा ज्वाला उठ-उठ के जीव को सदा के लिये जलाती और भोगते-भोगते वह ज्वाला अधिक-अधिक प्रचण्ड होती। यदि सुख मिल जाता तो निःगर्ज, निःतृष्णा हो जाता, सो तो होता नही, वल्कि जो जितना ही विपय विलास मे लीन होते है, उनकी कामाग्नि अग्नि घी के समान अधिक-अधिक वलवती हो जाती है॥ ८४ ॥

रामचन्द्र को वनवास और भरत को राज्य तिलक ये कैकेयी के माँगने पर पुत्र मोह मे दशरथ वहुत दुखी हो गये। कहते सुनते कैकेयी के सरोप उठ खड़े होने पर उसके चरण पकड़ कर उसे वैठा लिये "गहि पद विनय कीन्ह वैठारी। जनि दिनकर कुल होसि कुठारी॥ माँगु माथ अवही देउँ तोही। राम विरह जनि मारेसि मोही॥ कण्ठ सूख मुख आव न वानी। जनु पाठीन दीन विनु पानी॥" (रामायण) एव अपनी स्ववशता-स्वतंत्रता सव नष्ट करके दशरथ अन्त मे रोते धोते विलपते हुये कहते है—दोहा—कौने अवसर का भयो, गयउँ नारि विश्वास। योग सिद्धि फल समय जिमि, यतिहि अविद्या नाश॥ (रामायण) फलतः दशरथ जी राम विरह मे प्राण त्याग दिये और सारी अयोध्या मे खलमण्डल मच गया। सिद्धान्त यह है कि स्त्री और पुरुप दोनो को काम के वश न होना चाहिये, न एक दूसरे मे मोह को प्राप्त होना चाहिये, नही तो सव दुर्दशा धरी है। गृह इच्छुक को भी भाँड़पना, मेहरापन, वहुवृत्ति त्याग कर एक नारी व नारी एक पुरुपव्रत रख के धीरे-धीरे ज्यो-ज्यो ज्ञान प्राप्त हो, त्यो-त्यो संयम करते-करते इसी जीवन मे काम क्रोध के वेग को सर्वथा जीत लेना चाहिये। सर्वथा त्यागी पुरुप तो वहुत प्रयत्न द्वारा सावधान हो निरन्तर परमार्थ मे लगकर निष्काम, मुक्त रहे।

मन के दुख का थाह नहिं, तन का दुख अतियन्त ।
छल बल अमित उपाय करि, सहाँ परीश्रम वन्त ॥ ८५ ॥

टीका—कामासक्त हो जाने से मन मे कितनी चिन्ता की तरगे उठती है ? उसकी कोई मिति नही । भय, मिलन, बिछोह, अनुकूल-प्रतिकूल की चिन्ताये, धन, भूषण, बसन, महल, अनेकों प्रकार से स्त्रियो मे मन का दौड़ाव तथा स्त्री का मन और तिसके प्रेमियो के मन को रक्षा करने की अनन्त चिन्ता रूप अग्नि मे सुलगता रहता है । इस प्रकार मन के दुख की थाह नही और भोग पूर्ति तथा धनोपार्जन के हेतु रात-दिन कष्ट सह के कमाना पड़ता है । चौपाई—"शीत उष्ण गर्मी नांहि देखै । छल बल रचत प्रपंच बिशेषै ॥ तन परियत्न क भार अनन्ता । क्षणभर शान्ति न लेत सहन्ता ॥" ब्रह्मचर्य न पालन करने से बारम्बार रज-वीर्य नाश हो-होके शक्ति क्षीणता युक्त नाना रोगो से ग्रसित निर्बल बन के दोनों हाय-हाय किया करते है, एव तन का दुख अतियन्त । पुनः कामासक्ति मे तृष्णा अधिक बढ जाने से न तो थोडे धन मे संतुष्टि होती है, न थोड़े भोग विषय मे सन्तुष्टि होती है । इसके लिये कामोन्मादी स्त्री और पुरुष कितना छल प्रपच करते है कि जितनी उनकी शक्ति-युक्ति चले सारा पुरुषार्थ दूसरे के तन धन ऐश्वर्य आदि हरण करने मे ही लगा देते है । अनन्त जालसाजी करते हुये इक्के के घोड़े के समान महा परिश्रम का पहाड़ शिर पर लादे हुये हरदम परिश्रम-वन्त बनके दुखी रहा करते है ॥ ८५ ॥

स०—देह की शक्ति जु बीर्य नशाय के खोई बनाय केचिन्तित रहिहौ ।
डूबि मरौ विष खावो कि काह करौ यह ही चित मे नित चहिहौ ।
डाक्टर वैद्य हकीम के पायन कोटि उपाय किये नांहि पइहौ ।
ताते रहौ नर नारि सम्हारि जु भद्र॰ रहे सबही सुख लइहौ ।

१—टिप्पणी ब्रह्मचर्य ।

मन इन्द्रिन विश्रान्ति नर, मानि मुग्ध ह्वै जास।
रमण कियो तिय देह में, पुनः भास लहि गॉस॥ ८६॥

टीका—पुरुष अपने मन इन्द्रियों की तृप्ति सुख आराम स्त्री के मन इन्द्रियों से मानकर उसकी मनसा ओर इन्द्रियों मे कमल-भ्रमर[२] न्याय मुग्ध हो अत्यन्त सुख मान कर वेहोश हो जाता है। पुनः स्त्री की देह मे मोदयुत स्पर्श करता है, जिससे स्त्री का अग-अग भोग क्रिया स्पर्श जनित सब नक्शा हृदय मे भासित (पुष्ट) हो जाता है। वही आसक्ति उसी भोग-क्रिया के लिए वेर-वेर गॉमती-कायल करती रहती। इस प्रकार जन्म भर भामिनि भावना में गोते लगाते-लगाते कल्याण का अवसर समाप्त हो जाता है॥ ८६॥

यही कामना काल है, अन्य देह के योग।
सो भरमावै जक्त सब, असह दुखन उपयोग॥ ८७॥

टीका—स्त्री-पुरुषो मे कामोपभोग की कामना ही काल है। काल क्यो है कि आज जन्म भर नाना वन्धन, अनेक चिन्ता, नाना ववाल, अमित हानि, असख्य पाप कर्म मे रुलाती है और तन छूटे वाद यही मैथुन की आसक्ति सूक्ष्म देह पुष्ट कराय अन्य चौरासी देह धारण कराने की योग्यता कराती है। एव यही विषय पूर्ण कामासक्ति जगत के कूकर, शूकर, पशु, पक्षी, सर्प, कीटादि सर्व योनियो मे

२—'खेलति माया मोहनी जिन्ह जेर कियो ससार' इस पूरे चाचर मे गुरु कवीर ने भी भली प्रकार मोहक जाल को वन्धन रूप वनाये हैं, देखिये! वीजक मे और गृहस्थाश्रम मे भी अनियमित काम भावना मे आसक्त हो जाने से गृह धर्म भी ठीक नही चलता, 'ससुरारि पियारि लगी जवते। रिपु रूप कुटुम्ब भये तव ते॥ सुत मानहि मात पिता तव लौं। अवलानन दीख नही जव लौ॥ गुण मदिर सुन्दर पति त्यागी। भजहि नारि पर पुरुष अभागी॥ नारि बिवस नर सकल गोसाई। नाचहि नट मरकट की नाई॥"
(रामायण उत्तर काण्ड)

भ्रमण कराती है । इस प्रकार तन-मन की विविध पीड़ा, जन्म, मृत्यु फाँसी, विरह वेग दुर्गुण विवशता ऐसे न सहने योग्य भयकर कष्ट समूहो की प्राप्ति का उपयोग (यत्न) धन्धा यह कामकला ही रचा देता है ।। ८७ ।।

चौपाई

मैथुन सुखासक्ति आधारा । जहँ तक कष्ट सो दिखै अपारा ।।
सबै प्राप्ति के योग करावै । अस यह काम शत्रु रिपु भावै ।।

प्रश्न—कामरूप कामना क्यों काल है ?

उत्तर—ऊपर कहा ही गया है, उसे विस्तार से मनन करो । सच्चाई से ध्यान देकर विचार न किया जाय तो क्या ? किसी भी प्रकार वीर्य ध्वंसक आदत पड़ जाने से वह मद्य नशा वत बेफह्म करा के सारे दुष्कर्मो मे डाल देती है, तब फिर दुख की क्या थाह ?

व्यभिचार वृत्ती या गृहस्थ बिधि, सबही दुख को रूप ।
तेहिते त्यागैं सन्त सब, ह्वै भूपन के भूप ।। ८८ ।।

टीका—परस्त्रीगमन, वेश्यागमन अथवा अन्य कुकृत्य तो प्रन्यक्ष लोक निन्दा, छल-कपट, मार काट, जेल-फाँसी युक्त दुख पूर्ण ही है । परन्तु जिसे अपनी कहते है, जिसमे लोक निन्दा का भय नही है, वह भी पाँचो विषयों से विवेक बुद्धि नष्ट करके सद्गुण सम्पत्ति ठग लेने मे कम नही है । अरे ! जिसका स्मरण ही सत्य स्वरूप के विपरीत है, जो काम स्त्री-पुरुषों के नर्कमय मलीन घटो को सुन्दर प्रतीत कराता, जिस सूकर-कूकरादि खानियों की क्रिया-भोगादि को देख कर मनुष्य हँस-हँस के उपेक्षा करता, परन्तु स्वय काम वश उसीको अमृत समझता । जो दूसरे को क्रोध, लोभ, मोह मे लोलुप देखकर तिरस्कार करता, वह स्वयं काम वश सर्व दुराचरण हर्ष से धारण कर लेता है । इस प्रकार भ्रम पूर्ण काम चेष्टा का बल यह

मानी हुई अपनी स्त्री ही है। जब निज मानी हुई स्त्री को अमृत समझ के तिसमे आसक्त होता है तब इसकी बुद्धि भ्रष्ट होकर फिर अन्य अनाचार भी करने मे विवश हो जाता है अत' अङ्गार वत पराई और विवाहिता सबही दुख के रूप है। इसी कारण मोक्ष चाहने वाले निर्बन्ध स्वतन्त्र अभय पद के इच्छुक सन्त और जिज्ञासु जन दोनो प्रकार इसके स्थूल का कुसंग और अन्दर से मैथुन भावना मात्र को दूर से ही त्यागकर राजाओ के भी राजा इन्द्रियजित होकर विराजते है ॥ ८८ ॥

शान्ताकार की कथा

शान्ताकार सुजन इक नीको। दया शील तोषादिक ठीको ॥
विरति बोध को सो अधिकारी। ढूँढत सो सत्संग अधारी ॥
एते महँ सत्सग मिलान्यो। जानि भेद होइ भद्र रहान्यो ॥
ब्रह्मचर्य युत पठन रु भक्ती। शान्ताकार सम्हारि सुवृत्ती ॥

दोहा—एक दिवस तेहि मीत इक, पूंछत दोउ कर जोरि।
बहुत दुखी बिन ज्ञान के, चित चिन्ता अति मोरि ॥ १ ॥

जौन ज्ञान लहि दुख न सतावै। मन चंचल की गति ठहरावै ।
जोन वस्तु होवै अविनाशी। कहहु सोई लखि ज्ञान प्रकाशी ॥
शान्त देखि निज शिर पर भारू। सोचत कछुक न कहत बिचारू ॥
ताही सम औरौ नर नारी। आय गये लखि समय बिचारी ॥
शिक्षक पद यद्यपि नहि मेरो। गुरुपद मनन तदपि हित मेरो ॥
अस हिय सोचि कहत निज भाऊ। सुनहु सुजन हित बात प्रभाऊ ॥

दोहा—दुख न चहत कोउ जन कबहुं, लहत सदा सुख भोग ।
दीप पाँखि सम सुख सकल, देवत नित प्रति शोग ॥ २ ॥

है तू चेतन राम स्वरूपा। सत्य सदा नित तृप्त अनूपा ॥
स्वन अस्तिता सबसे भारी। सब भूले पै आप सदारी ॥

आपु हेतु सबमे सुख मानै। मानन वाला आपु न जानै ॥
जानत हूँ अनजान जु काहे। गो गोचर मे भूल्यो ताहे ॥
सो सम्वन्ध अनादी जानौ। भूल औ मेल परस्पर तानौ ॥
पाँचो मे स्पर्श विशेषा। बन्धन रूप न सुख को लेशा ॥

दोहा—सुन्दर लखि तुष्टी समुझि, सृष्टि बढ़ावन हेतु।
यहि भूल दुख देत नित, समुझि करौ चित चेतु ॥ ३ ॥
जीव बिना सुन्दर कहाँ, मलिन नर्क सब देह।
तृप्ति कहाँ तृष्णा जलै, बृथा भार दुख लेह ॥ ४ ॥
श्वान पाँखि हस्ती भ्रमर, कामी दशा निहारि।
दौड़त पचत न थाह कहुँ, इन्द्री मन बरवारि ॥ ५ ॥

लूटि अहो! जीवहि दुख कूटै। जन्म जन्म कवहूँ नहि छूटै ॥
ताते करि बिचार इह त्यागै। बन्धन मूल देखि जिय जागै ॥
कुटुम भार दुर्गुण दुख बोझू। समुझि समुझि गुरुपद मे सोझू ॥
जो पै गृह इच्छुक नर नारी। तउ बहु बृत्ति से कष्ट अपारी ॥
पर पर त्यागि सुघर नर नारी। मैथुन अष्ट तजे सुख भारी ॥
निज हूँ महँ नित सग न धारी। शिशु हित तउ मन बहुत लजारी ॥
उभय सग नित सेज जे धारी। होइ न सकत ते कहुँ ब्रह्मचारी ॥
मोहक पेखि पेखि अनुरागै। हृदय मथन करि मन्मथ जागै ॥
रूख फीक उत से होइ जइये। तब निज शाति जनित सुख पइ ये ॥
भक्ति ग्रन्थ सतसग सम्हारी। करत करत रुचि मुक्ति वढ़ारी ॥
दुख छूटन हित तीव्र दुखारी। व्रत निष्काम सदै तब धारी ॥
सयम साधन करि करि भारी। लहै परमपद होइ अधिकारी ॥
काम तजे बिन काम न बनि है। स्वबश रहे बिन यम शिर हनिहै ॥

दोहा—तेहिते उत्तम प्रथमयत, पीछे मध्यम जान।
श्रेणी शक्ति सम्हारि के, सकल करो कल्याण ॥ ६ ॥

ऐसो सुनि नर नारि सब, डूबत जानु लहि नाव।
श्रेणी शक्ति सम्हारि बल, गुरुपद प्रेम बढ़ाव॥ ७॥
स्तुति भाव करन सब लागे। व्रत निष्काम हेतु रुचि पागे॥

विनय

काम वृत्ति की कुटिल कुचाली, हर लीजै हे दया निधे।
शुद्ध वृत्ति निर्मल मन स्थिर, कर दीजै हे दया निधे॥ टेक॥
अस्थि मास मल मुत्र त्वचा मय, कफ पित्त वात अपावन है।
करत विचार घृणा अति लागत, तिसको मानत पावन है॥
रुष्ट तुष्ट क्षण क्षण अति चिन्ता, हर लीजै हे दया निधे॥ १॥
दृष्टि सग स्मर्ण वयन औ, सयन श्रृगार बढ़ाई है।
सब इन्द्रिन को मेल नारि नर, विप मद माती धाई है॥
इससे उदासीन हम होवें, सुधि दीजै हे दया निधे॥ २॥
जड़ चेतन दोउ भिन्न निरन्तर, बीच मनोमय कल्पित है।
सत्सगत सद्ग्रथ प्रेम गहि, सत्साधन करि पुष्टित है॥
स्वतः स्वतन्त्र बोध मे स्थिर, कर दीजै हे दया निधे॥ ३॥
जन्म जन्म मे पशुवत नाचे, अबतो "मुक्तिद्वार" मिला।
शीघ्र मार्ग मे हम जुट जावै, विघ्न द्वन्द सब जाय टला॥
हिम्मत प्रेम क्षणै क्षण बाढ़े, भर दीजै हे दया निधे॥ ४॥

निष्काम वृत्ती आरोग्यता, मेटि कामना भूख।
कबहूँ न होते दीन वह, जो रहते नित रूख॥ ८९॥

टीका—युवती का अंग-प्रत्यङ्ग क्रिया भोग यहाँ तक कि काम सम्बन्धी पाँचो विपयो की चाहना न उठने देना, उठते ही शीघ्र सर्प वत भयानक जानकर तिरस्कार करके स्थिर रहना, वाहर भी मोहक विकारी सग से दूर रहना ही निष्काम वृत्ति है। यह मानसिक रोग रहित आरोग्य पद इसलिये है कि यह कामना भूख को

जडमूल से नष्ट कर देता है। प्रत्यक्ष ही काम कला का अन्दर बाहर से त्याग कर त्यागी पुरुष निश्चिन्त, स्वतन्त्र, निर्बन्ध, शान्त एवं निर्भार प्रसन्न रहते है। देह की आरोग्यता मे वीर्यरक्षा साधक है। नर नारियो के शरीर मे प्रथम खाया हुआ भोजन पाचन होकर रस, रस से रक्त, रक्त से मास आदि से क्रमश: अन्तिम वीर्य पुष्ट होता है। जो कि एक बूंद भी रज-वीर्य क्षीणता से तमाम रक्त की हानि होकर क्रमश: देह का खून शुष्क हो के अनेक रोग व्याधि से घिर जाने के कारण सतमार्ग का साधन न वन पाने से कामादिक वेग अधिक-अधिक बढ के अनेक प्रकार से जलाते रहते है। इसलिये समझदार मनुष्य हमेशा वीर्यरक्षा करते है। वे मनुष्य कभी दुख-दैन्य एवं विषय भोगो के हेतु असमजस मे नहीं पड़ते, जो इस काम के साधक सर्व कुसगों से रूखे फीके उदासीन रहते है ॥ ८६ ॥ चौपाई—

चटक मटक तिय सगरु क्रीड़ा। तकि तकि गुनत भाव भ्रम ब्रीड़ा ॥
यहि बिधि कामी कामिनि भूले। तजौ याहि तब होय न शूले ॥

काम रोग निवृत्ति हेतु औषधि

१. व्यक्ति पूर्ण युवावस्था मे भी परमार्थ दृढ निश्चय के बल से काम वेग को जीत लेता है, किन्तु परमार्थ निश्चय ढीला पड़ते ही वृद्ध भी नारीलोलुप होते देखा गया है। इस हेतु कामजित होने मे मुख्य परमार्थ निश्चय को बलवान करते रहना प्रधान उपाय है। २. सब इन्द्रियो से चित्त उद्वेगक संग-भोग तो त्याग करना अति आवश्यक ही है, शिक्षा, निर्वाह, शुद्ध व्यवहार भी उदासीनता युक्त चंचलता रहित सबों के समक्ष हो। ३. सेवा लेने का अहदीपना ही घेरघार के दुर्गुणों की ओर ले जाता है। इस हेतु किसीकी सेवा का अवलम्बी न होना, धर्म-श्रेणी अनुसार स्वय सेवक होना, अन्य के सुधारने का हेतु भी तो तभी सिद्ध होगा जब अपने को अदाग रक्खा जा सके। ४. जिस प्रकार अनेकों का पतन हुआ है उस प्रकार मोहक

संग-रग मे प्रेम करके अपने को निश्चय कर लेना कि मै तो वैसा नही हो सकता, यह एक वडी भूल है। अस्तु कथनशक्ति, लेखनशक्ति, चतुरताशक्ति ये सव असंयम वर्ताव मे कपूर हो जायगी, ताते सदा दुर्गुण उत्तेजक मोहक विक्षेप विजातीय संगो से पृथक रहे। ५. पुरुषार्थ मे न लगने से मन तो पूर्व वासना को ही धरे उठायेगा, फिर क्या समझ के निठल्ले रहते हो ? सत्य शब्द को रटो, अर्थ पढो, सन्त गुरु इष्ट की खूब सेवा करो, समय पर अधिकारी से धर्म वार्ता करो, एकान्त मे इन्द्रिय-मौन, चित्तमौन करके पारख समाधि का अभ्यास करो। निर्विवाद रहो, निर्विपय रहो, इसीके लिये उपाय ढूंढो, गुरुदेव की शरण गहो, वस विजय है।

है निष्काम महान धन, ब्रह्मचर्य को धार।
मैथुन अष्ट को छोड़ि कै, सदा सुखी तजि भार॥ ९०॥

टीका—विपय भोगों को त्यागकर कामना रहित निष्काम वृत्ति धारण करना यह सवसे वड़ी सम्पत्ति है। सम्पत्ति इससे है कि इसी निष्काम के प्रताप से जीव सर्व इच्छा वासनाओ को जीत कर निश्चिन्तता से अपने अचल स्वरूप मे टिक रहते है। जो कि मायिक द्रव्य–विद्या सम्पत्ति आदि से होना सर्वथा असम्भव है। चारो ओर से इन्ही सद्गुणो द्वारा रक्षा होती रहती है और साधक कभी भी जगत जजाल मे नही पड़ता। ऐसी सर्वोपर निष्काम सम्पत्ति ब्रह्मचर्य धारण करने से प्राप्त होती है। १. स्त्री व स्त्री सम्वन्धी भोगो का स्मरण करना। २. स्त्री के गाना-वजाना तथा अन्य कामोद्भूतक वाक्यो को सुनना। ३. स्वयं स्त्री-पुरुपों का विरह-सयोग, सुन्दरता और उपभोग काम कला का वारम्वार सहर्ष कीर्तन करना। ४. नर-नारी परस्पर हँसी-खेल विविध केलि–क्रीड़ा करना। ५. युवती घटो को या तिनके चित्रो को सुन्दर मान के प्रेक्षण—देखते रहना। ६. शरीर को चटक-मटक, सजधज से ठाठ-शृगार वढ़ाना या कामुक

लक्ष्य से अगो को चलित करना । ७. एकान्त में कामुक वार्ता या परस्पर आसन, रहन-चलन आदि मे निर्भेद बर्ताव । ८. नर-नारि का परस्पर सम्भोग या कामोद्देश्य के लक्ष से किसी का अयोग्य वीर्य नाशक स्पर्श । ये अष्ट मैथुन है । इन्हे त्यागना चाहिये । यही बाते ब्रह्मचारिणी स्त्रियाँ पुरुषों के प्रति घटा लेवै । सवैया—"यादि करै युवती कहँ नाहिन, नाहि शृङ्गार सुने बहु भाँती । दम्पति क्रीड़ा पढ़ै न कहै कधि, नाहि निहारैं रमा रम जाती ॥ केलि जु खेल हँसी न करै बहु, देह ठठै नहि फैसन भाती । एकान्त अभेद न बात करै कछु, भोगे न नारि न बीर्य नशाती ॥ चौपाई—"मैथुन आठ तजै यहि भाँती । जीवनचर्य गहै कुशलाती ॥ ऐसहि यती नारि नर रागा । तृण इव अग्नि से रहै विभागा ॥ काम बेग तजि निर्जन बासू । तेहि सम सुख नहि काहि सुपासू ॥" इस प्रकार आठ मैथुन छोड़ देने से सर्व दुनिया के भार से छुट्टी मिल जाती है । कुल कुटुम्ब चलाने का भार, सन्ततियों के मरने-जीने का भार, सर्व जग जीवो को मनाने का भार, गृह मर्यादा चलाने का भार, सर्व दुर्गुण बढ़ जाने का भार, भोग क्रिया का भार, विशेष धन भूषण एकत्र करने का भार, कुसंग का भार, यहाँ तक सर्व भार एक निष्काम व्रत को पालन करते ही उतर जाता है । यही हेतु है कि विषय वासना जीतने वाले पुरुष या स्त्री कोई भी हों सदा सुखी रहते है । सुखी होना हो तो आप भी दृढ संयम रख के यही करे ॥ ६० ॥

प्रसंग १५—अक्रोध लक्षण

उतना विनाश कारक तीर-तलवार-तोप विष नही है, जितना क्रोध सर्व सत्यानाशी है । क्रोध से ही विश्वभर मे अशान्ति है । अपने भीतर से क्रोध बाहर जाय, इसलिये अक्रोध प्रसंग को चाव-चपट से पढ़ना करना चाहिये ।

साखी—"जैसी कहै करै जो तैसी, राग द्वेष निरुवारे।
तामें घटे बढे रतियो नहिं, यहि विधि आप सँवारे।।"(बीजक)

अपनि पराई हानि करि, जारै तन मन क्रोध।
रहत सदा भयभीत वह, मन में राखि विरोध ॥ ६१ ॥

टीका—क्रोध अपना और दूसरे अन्य सब जीवों का नुकसान करने वाला है। प्रथम तो क्रोध आते ही मन उद्विग्न करके शरीर के खून को जला देता है। कही तो अपने हाथों शिर मे पत्थर मार लेता, गाली देते-देते थकता, अपने ही वस्त्र फाड़ देता, घर मे आग लगा देता, चिन्ताक्रान्त रहता, एव अनेक प्रकार से यह क्रोध अपना नाश करता है। पुन' व्यक्ति का जिस पर क्रोध होता है उसको और उसके अन्न-धन, प्रेमियों को नष्ट करने का उद्योग करता है। क्रोध के वश लूट-फूँक मार-काट, जहर देना और निन्दादि जग जाहिर है। इस प्रकार अपना और दूसरे का हानिकारक यह क्रोध है। दूसरे से मन मे विरोध करके क्रोधाग्नि रखने से हृदय मे भयभीत रहना पड़ता है कि क्रोधभाव से प्रेरित सबको कप्ट होने की क्रिया हो जाने से वह भी मुझे घात पाकर बदला अवश्य लेवेगा। ऐसा हरदम खटका क्रोधी को सवार रहता है ॥ ६१ ॥

है अक्रोध न फिक्र पद, लेहु ताहि तुम साथ।
नहिं भय होवै और को, आप में आप सनाथ ॥ ६२ ॥

टीका—क्रोध त्याग देने पर अपने से किसी को दुख वाली क्रिया नही होती और विरोधीवार्ता भी नही होती, तव अन्य भी हमे दुख देने की कोशिश नही करते। अक्रोधी को किसीसे अपने को बचाने की चिन्ता नही होती इसलिये यह अकोध न-फिक्र-अचिन्त भूमिका है। इस रक्षक को हे जीव ! तुम सदा साथ रक्खो, जिससे तुम्हारी ओर से किसी को किंचित भी भय न पहुँचे। ऐसे भावनायुक्त कर्तव्य पालन करते ही तुमसे निर्वैरता युक्त क्रिया होने लगेगी। फिर तो

तुम अपना जो सत्य स्वरूप है उसमे स्थित होकर कृतार्थ हो जाओगे ॥ ६२ ॥

कहि सुनि कै ना भंग करु, कबहुँ किसीको मान।
अन्तःकरण मलीन ह्वै, वहो भाव के ध्यान ॥ ६३ ॥

टीका—दूसरे की खोटाई आक्षेपवाली बात स्वयं कथन करके और दूसरे से सुन के किसीके श्रेष्ठत्व एव मान का कभी विनाश मत करे। अन्यकी खोटाई आक्षपप्रद बाते कहने-सुनने से राग-द्वेष में ध्यान जम के हृदय मैला हो जायगा, तो कभी तुमको सुख शान्ति नही मिलेगी ॥ ६३ ॥

सम्वाद—एक जिज्ञासु आकर एक महात्मा से प्रार्थना किया—हे सन्त भगवान ! कटुवादी रिपु कैसे वश हो ? सन्त उसे एक यन्त्र देते हुए बोले—लो ! इसे दाँतो तले तब तक दबाये रहना, जब तक कटु-वादी गाली आदि कुशब्दो की वर्षा करे। उस मौके पर ऐसा करने से बदले मे वह कटुवाद नही कह सकता। वह मनुष्य वैसा ही किया, जिससे उसकी लड़ाई बन्द हो गई। पश्चात महात्माजी ने क्षमा का पाठ पढाकर उसे शत्रुरहित कर दिया।

“निज सुख शान्तिक कौन उपाई। सहहु गहहु मन मारि रहाई ॥”

दुखी हेतु दुख को रचै, तेरे शिर पर वैस।
यहिते सच्ची शान्ति गहि, और उपाय न तैस ॥ ६४ ॥

टीका—एक तो अज्ञान अबोध बस उल्टे आचरण करके राग-द्वेष अग्नि मे वह स्वय जल-बल कर दुखी हो रहा है और तुम भी उसकी हानि और अपमान करने के लिए प्रयत्न कर रहे हो, तो दुखिया को दुख देने के सस्कार से तुम्हारे शिर पर भी वैसे ही झगड़ा उपाधि कृत बोझा लदता रहेगा। शान्ति न गहने से अब तो दुख होगा ही, आगे के लिये भी यही स्वभाव बन के कुसस्कार वश

दुखी होना पडेगा और परमार्थ तो छूट ही जायेगा। याते सत्यता पूर्वक हानि-लाभ समझ कर तथा शान्ति ही में अपना सर्व लाभ देखकर सदा शान्ति ही का सेवन करे। इसके अलावा झगड़ा छूटने का और कोई उत्तम उपाय नही है ॥ ६४ ॥

हिंसा ते छुट्टी मिलै, निज हिंसा दुख धूर।
सच्चे ज्ञान को फल यहै, निज पर को दुख दूर ॥ ६५ ॥

टीका—सच्ची शान्ति गहने से चारों ओर लाभ ही लाभ है। पहिले तो मन, कर्म, वाणी द्वारा दूसरे का अहित करने रूप हिंसा घात की क्रिया छूट जायगी, तब अपना भी हिंसा घात जनित जो कष्ट है वह चूर धूर हो जायगा। वर्तमान मे भी अन्तःकरण पवित्र होकर वैर-विरोध रहित सदा सुखमय स्थिति रहेगी। साथ ही आगे के लिये भी अज्ञान को ध्वस करने के पुरुपार्थ मे लीन रह के पुनर्जन्म न होकर भविष्य मे भी अपना घात न होगा। सच्चे सर्वोपरि पारखज्ञान का फल विशेषता यही है कि अपने हृदय मे राग-द्वेष कृत विकार न वने। अपना भी दुख दूर हो जाय साथ ही अपने से दूसरे को किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचे। धन्य ऐसी शान्ति स्थिति! यदि दूसरा भी सच्ची शान्ति का आचरण करे तो उसका भी काम वन जाय। यहाँ तक कि सारा ससार सुखी हो जाय जो उस शान्ति पद का पालन करे ॥ ६५ ॥

है अक्रोध सरूप यह, रहै सो जेहिके पास।
तेहिको दुख दारिद्र गो, संसृत को नहिं त्रास ॥ ६६ ॥

टीका— अक्रोध का स्वरूप यही है कि जो ऊपर की साखी में कहा गया। जिसके निकट यह अक्रोध रहता है उसके विक्षेप-प्रतिकूल, वैर-विरोध आदि सव दुख द्वन्द्व और कामना रूप सब दरिद्रता विदा हो जाती है। यहाँ तक कि वासनाकृत जन्म-मरण का भय भी उसका मिट जाता है। निर्भय-निर्द्वन्द्व, धन्य-धन्य ऐसी स्थिति ॥ ६६ ॥

क्षमा दत्त की कथा

क्षमादत्त यक रहि निर्दोषी। दुष्ट प्रकृति तेहि बसै पडोसी॥
गाली दै बहु भाँति सतावै। क्षमादत्त सहि मौन रहावै॥
एक बार करि कुजन जु चोरी। धन भूषण लै गयउ न थोरी॥
क्षमा सिन्धु गम्भीर न खलभल। दुख सुख आवत जात रहत जल॥
कछु दिन बाद मन्दजन ऐसे। भूखे मरत दरिद्र घिरैसे॥
क्षमा तिन्हे लखि दया बहोरो। उद्यम दै पट भोजन जोरी॥
कछु दिन बाद सम्हरि फिरि वेही। कज्जल चरित न छूटै तेही॥
दो०—पूर्व राग महँ रह्यो जब, क्षमा केर एक पूत।
　　द्वादश बर्षी खेल बन, दुष्टन घात करूत॥
छीनि अभूषण जान से मार्यो। मारत कुछ जन देखि पुकार्यो॥
आस पास सब जन बहु दौडे। दुष्ट जनन को घेरि बँधौडे॥
सोरठा—तहाँ पच मिलि आय, कह्यो कि मारहु जान से।
　　दुष्ट बडे दुख दाय, सर्प दुग्ध दे तउ डसत॥
　　क्षमादत्त सुनि बैन, नैन माँहि आँसू भरे।
　　पूत न आवै ऐन, इन्हे हानि कर लाभ कहँ॥
　　आखिर इनको दण्ड, कछु धन मेरो देय कर।
　　छोड़हु इनहि अदण्ड, सुबुधि दान दो इनहि भल॥
　　इतना सुनि पुनि मन्द, बहुत भाँति पायन परे।
　　लज्जित होइ तजि गन्द, सज्जन होइ सब दिन रहे॥
देखु क्षमा को अस परतापा। कौनिउ भाँति न होइ सन्तापा॥
छुटनहार निश्चय छुटि जैहै। क्षमा शांति नित सुख सरसइहै॥
मन्द कुबुधि जन सन्तहि ताडै। गालिउ देत न जु बस्तु बिगाड़ै॥
सोना सिन्धु दुग्ध व मक्खन। तपै अँगै शुचि सन्त महज्जन॥
भलयन सँग भल जगकी रीति। अनभल सँग भल सन्त की नीती॥
जगत बरत बहु दिन ते आयो। क्षमा तोष गहि हृदय जुडायो॥

दोहा—तन मन धन सर्वस्व वलि, पापी पाप के हेत ।
त्यो सर्वस दुख हानि सहि, क्षमा सन्त जन लेत ॥

प्रश्न—ऐसा कीजिये कि क्रोध जगे ही नही । आपकी शीतल अमृत झरी वाणी से निश्चय ही ताप बुझ रही है ।

उत्तर—वही तो उपाय अभी दिये है, इसीकी बार-वार चित्त मे पुनरावृत्ति कीजिये, जिससे इसका भाव अध्यस्त हो जाय, वस क्रोध की जगह पर जव आयगा तव क्षमा ही ।

स्वार्थ रहित अक्रोध यह, परमारथ को कोष ।
मनुष्य मात्र को भय हरै, जो यहि वसै परोस ॥ ६७ ॥

टीका—स्वार्थ विपयासक्ति, मोर-तोर रहित अक्रोध है अर्थात धन-जन इन्द्रिय सुख हानि मे सन्तोपवृत्ति रखने से ही अक्रोध ठहरता है । सो अक्रोध परमार्थ का तो खजाना ही है । क्योकि अक्रोध मे सब सद्गुण ग्रहण हो जाते है । नर-नारी, गृहस्थ-विरक्त, नीच-ऊँच कोई भी क्रोध-रहित दशा धारण करे, तो उसको भय का लेश भी न रह जायगा । जो कोई भी इस अक्रोध की छत्रछाया के निकट जावे, वह भय देने-लेने से रहित होकर निर्भय निर्द्वन्द्व सुख शान्ति लूटे ॥ ६७ ॥

अक्रोधान्तर्गत सच्ची अहिंसा से सब सुख सुधार

हिंसा ही भयकर राक्षसी वृत्ति है । जीव वध करना, हर प्रकार देहधारी को पीड़ा पहुँचाना इस हिंसा का प्रधान कार्य है । जिसका फल स्वयं निरन्तर दुख द्वन्द्व मे बिललाते रहना है । ऐसी हिंसा राक्षसी की जड़मूल से सफाई करने के लिये इस अहिंसा प्रसग को सादर ग्रहण करना ही अपने और पर के लिये परम उपकार, सेवा तथा उद्धार मार्ग मे लगना-लगाना है । आप इसे प्रसन्नता से अपनाइये ।

'कोटि सुमेरु ढूँढ़ि जो आवै । जो गढ गढै गढैया सो पावे ।' (बीजक)

दुख छूटन सबही चहैं, दुख देना बिन बन्द ।
समुझौ हिये बिचारि कै, कैसे तुम निर्द्वन्द ॥ ९८ ॥

टीका—अपना दुख सब छुड़ाना चाहते है । जब तक दूसरे को दुख देने की क्रिया न छोड़ोगे तब तक तुम दूसरे से सताये न जाओ ये बात कैसे हो सकती है ? आपही अपने अन्त करण मे ठहर के गंभीर विचार द्वारा देखो ! यह वाह्य ससार अपने मनोमय की प्रति-क्रिया-रूप शीशा मैं छाया के समान ही तो दृश्य होता है । याते जहाँ दूसरे के सताने का भाव बनाया गया कि तहाँ तुम निर्द्वन्द्व, उपाधि रहित कैसे हो सकोगे ? एक न एक झगडा लगा ही रहेगा ॥ ९८ ॥

जो कदापि तुम गाँसि कै, दै दूसर को कष्ट ।
सहि सहि बीतै राति दिन, वह सब तुमको नष्ट ॥ ९९ ॥

टीका—जो आप कदाचित किसी युक्ति उक्ति, गाँस-फाँस, जालसाजी द्वारा दूसरे के तन-धन-मन को ध्वंस करके उसे पीड़ा पहुँचाओगे, तो ऐसे तुम्हारे दिये दुखों को वह मनुष्य सहि-सहि के रात-दिन सन्तापित रहेगा । ये तुम्हारी विरोध जनित क्रियायें सबको पीडा पहुँचाने वाली होने से अन्य सब तुम्हे भी पीड़ा पहुँचा-कर नष्ट करेंगे तथा ऐसी कुवासना ही तुम्हारे लोक-परलोक सबधी सुख-शान्ति को नष्ट कर देगी, अतः सावधान ॥ ९९ ॥

यही देह वा अन्य में, संस्कार जो ढालि ।
सो भरमावै जीव को, यह मति जानौ खालि ॥१००॥

टीका—जो पर पीड़ा देने का संस्कार ढालि कहिये क्रिया करके अन्त करण मे बना लिये हो, वे सस्कार वर्तमान देह मे भी अशान्ति ज्वाला से जलाते रहेगे तथा यही सस्कार वश अन्य योनियों मे देह धर-धर के दुख अवश्य भोगना पड़ेगा । यह बात झूठी नही हो

सकती अत. यदि स्वतः दुख न चाहो तो किसी को भी जान-बूझ कर मत सताओ ॥ १०० ॥

दुसरि नहीं उपाय कोइ, जो न सताउब छूट।
सुख सोवो तब तक नहीं, सब धन जावै लूट ॥१०१॥

टीका—दुख से छूटने का और उपाय कोई नहीं, सिवा इसके कि दूसरे को किसी प्रकार कष्ट न दिया जाय। जब तक दूसरे को मन, कर्म, वाणी से पीड़ा पहुँचाना रूप व्यापार न बन्द किया जायगा, तब तक चाहे तीर-धनुष रक्खो, चाहे बन्दूक या तोप रक्खो अथवा लाखो फौज के अन्दर रहो या सत खण्डो के ऊपर शयन करो, किसी प्रकार सुख से अभय निद्रा नही ले सकते, सुख शान्ति नही पा सकते। तुम्हारा स्वार्थिक धन लाख-करोड जो कुछ हो सब लूट-फूँक लडाई-झगड़ा द्वारा हरण हो जायगा और सन्तोप शील सत्यादि सद्गुण रूप पारमार्थिक सब धन भी हिंसा, वैर, घात कृत वासनाओं द्वारा नष्ट हो जायगा। तुम्हे अब और आगे जन्मों में भी दुख भोगते न चुकेगा ॥ १०१ ॥

सतसंगति सद्ग्रन्थ फल, तन मन साधि अखण्ड।
सबको फल दुख देन तजि, गुरुमत राखि अदण्ड ॥१०२॥

टीका—कथा-वार्ता, सत्सग श्रवण करने का और सद्ग्रंथ मनन करने का मतलब यही है कि अपने तन, मन, इन्द्रियों को जीते, काबू करे, अनाचर मे न जाने दे और मन से सर्व कुसकल्प त्याग कर अडिग्ग एकरस सत्साधनो का अभ्यास बनावे। बोध और सर्व शुभ साधन धारण करने का अन्तिम फल यह है कि सर्व स्वजाति छोटे-बडे जीवो को काय, वचन, मन से वैर, घात, बदला, निन्दा और कठोरता रूप दुख देने की क्रिया त्याग कर दिया जावे, ऐसे गुरु मत, गुरु सिद्धान्त को अदण्ड अर्थात निर्विघ्न रूप से पालन करना चाहिये ॥ १०२ ॥

जब तक हिंसा घर रहै, तब तक दुर्गुण घेर।
तन मन वच हिंसा बिना, कैसे दुर्गुण हेर ॥१०३॥

टीका—जब तक हिंसावृत्ति का घट में निवास है, तब तक काम-क्रोध, लोभ-मोह, आशा-तृष्णा, लूट-फूँक, छल-जबरन, कुसंग-कुमति सर्व अवगुण अवश्य घेरे रहेगे या घेर लेगे। यदि काया, वाचा, मन से दूसरे को कष्ट न देवे, हिंसा-घात न करे तो उसके पास दुर्गुण कैसे टिक सकते है? नही टिक सकते। भाव—अहिंसा व्रत गहने से दुर्गुण ढूँढने पर भी नही मिल सकते ॥ १०३ ॥

काम क्रोध मद लोभ में, मोह अंधेरा जोर।
जितनै जितना ये बढ़ैं, तितनै हिंसा घोर ॥१०४॥

टीका—नर-नारी का परस्पर क्रीड़ा करना काम है। विपरीत प्राणियों को कष्ट देने की अग्नि क्रोध है, नश्वर धन, पुत्रादि मे सुख मानकर फूलना मद है, सुख वस्तुओ के विशेष संग्रह की भावना लोभ है, विजातीय को स्थिर रखने की भावना मोह है। ये सब घनघोर भादौं की अँधेरी रात्रि के समान प्रबल अज्ञान रूप अँधेरा जिस घट मे बलवान है उसी घट मे हिंसा रहती है। ये दुर्गुण जितना बढते जायँगे उतना-उतना वैर, घात, परद्रोह, पर निन्दा, पर की हानि रूप घोर हिंसा सर्व अनाचार बढते ही जायँगे ॥१०४॥

कहुँ मन में कहूँ तन में लखौ, कहूँ बचन परकाश।
जो जैसे इनको गहै, तैसहिं सबको त्रास ॥१०५॥

टीका—पूर्वोक्त दुर्गुणों को कोई मन मे धारण करता, कोई इन्द्रियो द्वारा वैसे ही बर्ताव करता, और कोई वाक्य द्वारा वैसे ही दुर्गुणों का व्यवहार करता या अपने ही घट में जब तक भूल है तब तक समय-समय पर तन-मन-वचन मे दुर्गुणकृत बर्ताव आया करते है। जो जितना इन दुर्गुणो को धारण करता, उतना ही सबको उसकी तरफ से त्रास—कष्ट मिलता रहता है, यह प्रत्यक्ष है ॥१०५॥

कवित्त

काम ही के वश होय क्या क्या न अनर्थ करे,
छल घात जवरन झूठ सो दुखन्त जू।
क्रोध ही के वश होय वन्धु वन्धु शिर काटे,
लोभ ही के वश होय लूट फूंक वन्त जू।
मोह ही के वश होय हिंसा अनरीति करे,
ऐसे सव भोग वश पर को दुखन्त जू।
पाप ही को मूल ये तो मिले जुले एकमेक,
ताते इन्हे त्यागि सन्त सुख से रहन्त जू।

पहिले अपना नष्ट ह्वै, पाछे अन्य को नष्ट।
यह निश्चय मन में धरै, कबहुँ न होवै भ्रष्ट ॥ १०६ ॥

टीका—परपीड़ा एवं घात करने की भावना लाते ही प्रथम स्वय भयभीत, हानि के भार से खिन्नता, नाना चिन्ता, उपाधि ग्रसित हो पुन कल्याण मार्ग के शुद्ध सस्कार छोड़कर अपना ही नष्ट होता है। फिर कुचिन्तन और घात हिंसा की क्रिया द्वारा दूसरे को भी सता के नष्ट करता है। इस प्रकार अपना और दूसरे तथा सवके लिये अनेक कष्ट देने वाली हिंसा वृत्ति अहितकर है। ऐसे विचार को दृढता से जो मन मे पुष्ट कर लेते है, वे हिंसावृति को दूर से ही त्यागकर अहिंसा धर्म मे लीन रहते है। फिर उन्हे श्रेष्ठ शुद्ध मार्ग से विचलित होने का तीन काल मे अवसर नही आ सकता ॥ १०६ ॥

शिक्षा—मलीन और पाप वीज समझ कर मद्य, मांस, मछली, अण्डादि न पीवे-खावे, जीव घात शक्ति भर न करे, किसी का अन-भल न चाहे, वदला लेने मे न पडे। ये सव अहिंसा धर्म की प्रथम नीव है, इसे ग्रहण पर तत्पश्चात सूक्ष्म दुर्गुण देखने मे आ जायेंगे।

तब तिसे भी त्यागकर अहिंसा अनुरागी सदा सत्य मार्ग मे चलते रहेगे।

अहिंसा-धर्म पौष्टिक शब्द गजल

हमारा धर्म हो प्यारा, अहिंसक हो अहिंसक हो।
इसीसे सर्व निस्तारा, अहिंसक हो अहिंसक हो ।।टेक।।
नहीं कोई आप दुख चाहे, अगर नास्तिक से नास्तिक हो।
सताये पर को फिर कैसे, अहिंसक हो अहिंसक हो ।। १ ।।
जहाँ पर तीनवस्था हो, गॅसे तन मन के घेरे मे।
दया पालो तिन्ही सब पर, अहिंसक हो अहिंसक हो ।। २ ।।
हमारे जीव सब भाई, सबो के सामने हम है।
परस्पर क्यो न दाया हो, अहिंसक हो अहिंसक हो ।। ३ ।।
भला कहुँ बाल अन्धे को, सताते शुद्ध बुद्धी जन।
सकल तन मन से दुखिया है, अहिंसक हो अहिंसक हो ।। ४ ।।
लखो कब्बीर की बानी, अभय निर्द्वन्द्व रस सानी।
पियो तुम प्रेम से भाई, अहिंसक हो अहिंसक हो ।। ५ ।।

प्रसंग १६—निर्लोभ-लक्षण

शोषक पीड़क घातक कौन ऐसे सर्व दुखदाई कर्म इस लोभ के फेर में नहीं हो रहे है? सब हो रहे हैं। लोभ का फल पल-पल अशान्ति, द्रोह, चिन्ताक्रान्त होकर अविनाशी स्वरूप को भूल जाना है। अस्तु इस लोभ के दमनार्थ निर्लोभ प्रसंग को मनन करना ही उत्तम औषधि है। इसको समोद ग्रहण कीजिये। "लोभै जन्म गॅवाइया ·····"(बीजक)

जेते धन जग मानते, सो सबही छल रूप।
मिलै, छुटै जवरन हरै, अहंकार दुख कूप ।। १०७ ।।

टीका—हीरा-जवाहिरात, रुपये-पैसे, सोना-चाँदी आदि धन,

हाथी-घोडे, वैल-भैंस-गौ आदि पशु धन, स्त्री-पुत्र-सेवक आदि जन धन; मान, वड़ाई, विद्या, प्रभुतादि ऐश्वर्य धन जहां तक इन्द्रिय सुख उपयोगी पदार्थ जगजीवो ने मान लिया है सो सव सम्पत्ति छल कपट रूप है। उनमे आसक्ति वढा के मनुष्य अपना स्वधर्म-कर्म त्यागकर तिनकी प्राप्ति, रक्षा, वृद्धि के लिये सवसे सव छल-कपट विश्वासघात करने लग जाते हैं। याते ये सव छलरूप देखे जाते हैं। इनमे एक वडी भारी विपत्ति यह भी है कि महा प्रयत्न से मिलते और विना परिश्रम ही, न इच्छा होते हुये भी छूट जाते। कभी तो जर्वद-स्ती द्वारा ये सव हरण हो जाते, लूट, फूंक जाते या ऐसे ही आते जाते रहते है। यदि वने भी रहे, तो इनके संसर्ग से नर जीव वृथा अभिमान का वोझा लाद लेते। मेरे समान कोन है? एव विविध अन्याय के कूप मे यह लोभ ही ढकेल देता है॥ १०७ ॥

दृष्टात—एक धनिक सत्तर साल के वुड्ढे ने नवतरुणी स्त्री की चाहना की। यह जानकर दूसरा छली मनुष्य नवतरुणी का सव ठाट वना के हावभाव दिखाकर उसके घर मे वास किया। मौका देख के एक दिन उसका गर्दन दवाकर भय दिखाय छल-वल द्वारा लिखा-पढा के सारे धन पर कब्जा कर लिया। यह देखकर वुड्ढे के पट्टीदारो ने भी उस ठग मनुष्य को छल से मारकर धन ले लिया। इस प्रकार धन-स्त्री आदि सव छल रूप दुर्गुण से पूर्ण है।

परिश्रम वढ़ावै वैर दै, रत्तक करै परार।
हरन देह को भय सदा, आशा तृष्णा भार॥ १०८॥

टीका—थोडे मे सन्तोप न होने से यह लोभ इतना विशेप धन्धा लेन-देन परिश्रम बढ़ा देता है कि पल मात्र विश्राम करने की छुट्टी नही मिलती, तो सत्सग, भजन, पूजन का समय ही उसे कहाँ है? यही दूसरे से वैर वढवा देता। छल-वल गहने से सव दुश्मन हो जाते है। यह सग्रहवृत्ति रूप लोभ ही अपने साथियो मे उदारता से

यथायोग्य नहीं बर्तने देता। इसी हेतु अपनी रक्षा करने वाले दास-दासी या कुटुम्बी नौकर-चाकर या शिष्यजन भी विमुख बन के पराये होकर कष्ट देने लगते है। इस लोभ का साथ करके बडे अपराध में मनुष्य फॅस जाता है। धन हर जाने का भय और अपनी देह का घात कोई नही कर दे, ऐसी दहसत सदा सवार रहती है तथा लोभी-संग्रही के पास झार-झार (निखालिस) आशा-तृष्णा ही आ बसती है। उसकी सारी विद्या, चतुराई और सम्पूर्ण बल आगे-आगे दौड़ने में सहायक बनने से वह हृदय मे कभी विश्राम नही पाता ॥ १०८ ॥

धन में पन्द्रह दोष कहि, कविन कीन्ह परमान।
यहिते त्यागैं सुज्ञ जो, करैं न अपनी हान ॥ १०९ ॥

टीका—१. चोरी, २. हिंसा ३. मिथ्या भाषण, ४. दम्भ, ५. काम, ६. क्रोध, ७. बडेपन का हंकार, ८. मद, ९. भेद, १०. वैर, ११.अविश्वास, १२. ईर्ष्या, १३. वेश्या गमन, १४. जुवा खेलना, १५. नाना प्रकार के नाच गायन बैठक तमाशा आदि क्रीड़ा खेल इस प्रकार धन संग्रह रूप लोभ मे पन्द्रह दोष शास्त्र वक्ताओ ने कहा सो ठीक ही है। धनमद से परलोकरूप पुनर्जन्म कर्म-फल भोग की सुधि न रखने से तमाम अनर्थ उत्पन्न हो जाते है। ऐसा समझ-बूझ के समझदार ज्ञानवान इस संग्रहवृत्ति रूप लोभ का त्याग करते है। वे धन को सेवा, धर्म में लगाकर अथवा सर्वथा परिग्रह त्याग के लोभ को पास मे आने नही देते ओर स्वरूपस्थितिरूप महान धन को इस लौकिक जड़ धन के लोभ प्रपच में पड़कर नही खोते, किन्तु हर हालत में सत्य स्वरूप स्मरण रखते है ॥ १०९ ॥

प्रश्न—लोभ त्याग कैसे हो?

उत्तर—अन्याय अधर्म से धन न बढ़ावे। दर्जे अनुसार धर्मोचित

परिश्रम करते हुए जो कुछ हानि-लाभ हो उसी मे समान चित्त रक्खे। एक भक्त जिज्ञासु से एक ने कहा खूब कमाइये, फिर सिनेमा देखिये, ठाट-वाट वढाइये, उपन्यास, रेडियो, देशी-विदेशी हलचलों मे धाइये, इससे आपकी बुद्धि में विकास होगा, विज्ञान वढ़ाकर आप मस्त रहेगे। जिज्ञासु ने कहा—जो सधता है सो करते ही है, क्षमा कीजिये। आँख मे मदार का दूध भर के कौन तूतिया मिश्रित घृत का लेपन करेगा? इस वाल परिश्रम से तो वृक्ष मे शिर पटक कर उपचार के लिये फिर आप ही जैसे बुद्धिमान पुरुप पुरुपार्थी वनें। भला! जिससे काम, क्रोध, विपयासक्ति नाना दुर्गुणो की वाढ आ जावे, वह सुख का साधन हो सकता है क्या? कदापि नही। अत सुखी होना हो तो सन्तोप युक्त शुभ जीविका करते हुए आध्यात्मिक एव परमार्थ क्षेत्र मे आओ। काम-काज निर्वाह के लिये है। निर्वाह का फल कामना त्यागकर मुक्त होने के लिये है। यही विकास, यही विज्ञान, यही सभ्यता, गौरव तथा आजादी है। जिससे दिनोदिन स्वरूपज्ञान, सदाचरण, मनोदमन, धर्माचरण की पुष्टि हो, नही तो सव उन्माद है।

"बहुत गई थोड़िउ भी जावै। ताल भग नहि होने पावै॥
है यह कथा प्रसिद्ध निवेरो। लोभ छोड़ि निज धर्म सवेरो॥"

गजल

अरे मन चेत तू प्यारे, यही है लोभ दुख खानी।
करै संग्रह जो माया का, सकल दुर्गुण जगै हानी॥टेक॥

वनै जो वीज का लोभी, न वोवै खेत मे भाई।
भला फिर होय क्या पैदा, इसी से धर्म ले ठानी॥ १॥

वढै शुभ आचरण कीर्ती, सदा परसन्न पूरण मे।
गहै औदार्यता यदि तू, तो कूआँ सोत से दानी॥ २॥

नहीं कुछ अग्र की आशा, ये काया भंग हो क्षण में।
अहै ब्याधी बड़ा संचय, जो आवै फेर दे ज्ञानी ॥ ३ ॥
सकल जीव चाहते रक्षा, परस्पर प्रेम से हितकर।
करो रक्षा स्व शक्ती भर, तो सबके प्राण प्रिय जानी ॥ ४ ॥

प्रसंग १७—निर्मोह लक्षण

मोह मदिरा से छके हुये हम लोग अपने चलने, करने, धरने योग्य पुण्य पथ को भूल रहे है। शिशुपन खेल कूद में, युवावस्था मदमस्ती कामादि विकारों में, वृद्धपन वासनाओं के प्रेरणा मे खो-कर अपने अविनाशी को योनि यन्त्रणा के कष्ट मे डाल रहे है। जीते जी सबके मोह वश शिर पटक-पटक के रो रहे है। इन सब असह अनन्त दुखों के दमनार्थ निर्मोह प्रसंग को हर्ष पूर्वक ग्रहण करके लाभ लीजिये।

"कहँहि कबीर ते ऊबरे, जाहि न मोह समाय ॥"
(बीजक, चाचर)

कहँ तक करिये मोह को, मिलि मिलि सबही लोप।
मेला बाट बजार सम, निज तन सदा न रोप ॥ ११० ॥

टीका—कहाँ तक किसका-किसका मोह किया जाय? इस देह के प्रत्यक्ष स्त्री पुत्र माता पिता स्वार्थ के सकल हितैषी मित्र मिलि-मिलि के सब छूट जाते है। "आदि अन्त कोइ साथ न रहई। बीचहिं आय स्वप्न सो दिखई ॥" "मेला कैसो मेल" मार्ग के किनारे रहे हुये गाँव वृक्षादि चलने वाले पुरुष से जैसे छूटते जाते, नये-नये मिलते जाते तथा तमाम प्राणी रास्ते मिलकर छूटते जाते, बाजार में बहुत मिलते, सौदा ले-दे कर फिर सब अलग हो जाते, तैसे जीव का हाल है। अपनी देह भी सदा 'न-रोप' नाम स्थिर होने वाली नही। कितनी देहे बनी और छूटी? जब अपनी देह का यह हाल है

तो देह सम्बन्धी अपने माने हुये समग्र साथियो से कैसे स्थिर नाता रह सकता है ? याते मोह बाँधना निरर्थक है।

धरि धरि तन छोड़त रहत, जीव सदा भ्रम पन्थ।
यहिते उचित न मोह तोहि, जानि सबै मन मन्थ ॥ १११ ॥

टीका—सब जीव देह धर के पुनः छोड़ते रहते है। जो यथार्थ न हो—बाल, जवानी, बुढापा, मृत्यु, पुनः गर्भ-जन्म भिन्न-भिन्न नर-नारी चार खानियो के शरीर, त्रिविध कर्म, तीन अवस्था, लोक-वेद-खानि-बानी, मन इन्द्रिय, अन्तःकरण जहाँ तक इन्द्रिय-गोचर मन कृत भासमान होता है, उन्ही मे जीव सदा से सुख मान-मान कर कर्म सस्कार अवस्था उभय ग्रथि अनुसार रहट माला न्याय भटकते रहता है, यही भ्रम पन्थ मनोमय सृष्टि है। इसी मानन्दी अध्यास सुख भावना प्रवाह मे बहते हुए अनस्थिर व्यक्तियों का मोह करना उचित नही है। ये कल्याणार्थी ! तुम यही समझकर मोह त्यागो कि मन से कल्पना की हुई सबकी सुख प्रियता, सबका मोह सब में अपनैयत ये सब झूठे है ॥ १११ ॥

नहिं अरुझौ जग में कहूँ, समय जात सब खीस।
दुख रचना अरु छूटना, नर तन बिस्वाबीस ॥ ११२॥

टीका—जगत मे किसी नर-नारी घट की प्रियता करके कही भी बन्धन मत बनाओ। देखो ! आज तक सारा कल्याण योग्य रत्न समय मोह-माया में व्यर्थ नष्ट होते जा रहा हे। देखो ! दुख रचने के असत कार्य और दुख छूटने के सत्कार्य इन दोनों बातो को मनुष्य त्याग-ग्रहण करने मे शक्तिमान है। अतः दुख बनाना और दुखो से छुटकारा पाना इस मनुष्य देह कर्म भूमिका ही में पूर्ण सत्य समझो। इस देह मे ही चाहे बनाओ, चाहे बिगाड़ो, दोनों मे तुम्हारा पूरा पूरा अख्त्यार है। ताते दुख छुटने का उपाय करो, मोह माया में समय न गवाँओ ॥ ११२ ॥

तन यात्रा में जो मिलै, धर्म सहित तिन साथ।
वर्ति करौ निज काज को, मिलन बिछोह न माथ ॥ ११३ ॥

टीका—रहा, शरीर निर्वाह प्रारब्ध रूप यात्रा पूर्ण करने में जो देहधारी मिल जावे उनके साथ न्यायशीलता युक्त बर्तते हुये अपने निर्बन्ध होने के काज को सवाँरो-बनाओ और व्यर्थ किसी के मरने-जीने, बिछुड़ने पर मोह बोझ शिर पर न लादो ॥ ११३ ॥

"कथा प्रसिद्ध निर्मोही केरो। समुझि मोह तजि सुखी सबेरो ॥"

करि अनीति बर्ताव को, लै अध्यास में बन्ध।
बदली बदला फेर में, या ऐसहिं करि धन्ध ॥ ११४ ॥

टीका—शरीर यात्रा मे साथियों के साथ अनीति अधर्म न करो, यदि अनीति छल प्रपच करोगे तो तिस का संस्कार ठहर के उसी अध्यासमें अब और आगे-आगे जन्म धर-धर के दुख भोग करोगे। अनीति दो प्रकार की है—एक तो तुम्हारे साथ दूसरा अन्याय किया फिर पीछे तुम भी बदला लेने के लिये अन्याय करने लगे। दूसरी बात अन्य के अन्याय न करने पर भी आप ही एक तर्फी लोभ-मोह वश अन्याय अधर्म का धन्धा बना लेना, जैसे चोरी व्यभिचार, झूठ, चुगुली, मानभंग, फौरेब करते रहना, सो इन दोनों प्रकार के अन्यायों को बुद्धिमान त्याग देवे ॥ ११४ ॥

कर्मदत्त की कथा

प्राचीन समय मे एक कर्मदत्त नामक विद्वान विप्र हुआ है। युवक कर्मदत्त की आज्ञाकारी स्त्री हैज़ा की बीमारी मे पहिले मरी। एक-दो दिन बाद पुत्र भी मर गया। पण्डित कर्मदत्त इस मोहावेश मे फाँसी लेने या अग्नि मे जलने या नदी मे डूब कर किसी प्रकार निजी घात करने को सोच कर नदी के तट पर एकान्त मे चला गया। पहिले तो बड़े जोरो से चिघार मार कर रोया। रोते-रोते पुनः हाय-हाय करके हाथो से शिर पीटने लगा। दीवाना बन के दाँतो से अपना अङ्ग काटने लगा। इतने मे एक सन्त आये।

सन्त ने तिसे देखकर और पहिचान कर कहा—अरे रे ! कर्मदत्त !! होश कर। इस मोह मदिरा में बेभान होकर क्यो घर की जमा खो रहा है ? जाग ! जाग !! इधर देख ! देख !! कर्मदत्त पलक उठाकर हा-हा करते डरावनी और दीन सूरत से देखकर पुन. पलक मूँद बेहोश हो गया। सन्त बोले—अरे ! तू क्या चाहता है ? मै तेरी कामनाओ को पूर्ण कर दूँगा। जोर से ऐसे वचन सुनकर एकाएकी वह चौक कर तथा सावधान होकर बोला—क्या आप हमारी प्राणप्रिय स्त्री और पुत्र से भेंट करा सकते हैं ? सन्त ने कहा—अवश्य। पर शर्त यह है कि मेरी अमर कहानी ध्यान से सुनो। तब कर्मदत्त ने कहा—अच्छा कहिये ! क्या आप कोई सन्त भगवान है ? सन्त ने कहा—जो कुछ समझो, आगे सुनो और गुनो। एक मनुष्य शहर से दूर एक धर्मशाला मे शाम को आकर ठहर गया। ठहरने के पश्चात वह क्या देखता है कि उस जंगल के धर्मशाला मे सब प्रकार के यात्री नर-नारियाँ भरे होने से सब रङ्ग उसमे उड रहे थे। कही भोजन, कही कथा-पुराण, कही नाच-रङ्ग, कही परस्पर द्रव्य प्राप्ति के उपाय का चिंतन, कही लडाई-झगडा। तात्पर्य—"दुनिया दुरंगो मकारा सरॉय, कहो खूब खूबी, कही हाय हाय।" इस तमाशा का अनुभव करते-करते वह सो गया। सोते-सोते वह पथिक थका मॉदा होने से इतना सोया कि दस बजे दिन को उसकी नीद खुली। नेत्र खोल कर देखा तो हक्का-बक्का सा रह गया। वहाँ रात के रहैया अब दिन मे कोई नही। केवल चुगने के लिये दो-चार कौवे और कुत्ते उसे दृष्टि गोचर हुये। वह पूर्व देखे बारात समूह नर-नारियो को स्मरण कर अहं-मम सुख प्रियता से मोहित होकर तिनके वियोग काल मे हाय-हाय करके रोता है। वह कहता है—हाय ! कोई भी पास वाले मुझे चलते समय प्रेम से मिल क्यो न गये ? हाय ? जो मुझे आदर किये, प्रेम से बैठाये और मोहक रूप वाले थे वे सब क्या हो गये ? ऐसा कहते-कहते मोतियो के समान टप्प-टप्प ऑसू गिराने लगा। ऐ कर्मदत्त ! क्या इसी प्रकार तुम्हारा अज्ञान नहीं है ? अरे मोह वश सारे ससारी जुआरी हैं। इन्द्रिय सुख की बाजी लगा कर एक-दूसरे के लिये कल्पते हे। जो मनसा पुरौती नही देखते तो जीते जी उसका त्याग तो कर ही देते, बल्कि प्राण तक हरते देखे गये है। ऐ कर्मदत्त ! तू इस नश्वर शरीर का द्रष्टा होने से जड से भिन्न अविनाशी है। तेरे कर्म सस्कारानुसार कोटियो जन्म होते आये हे। कितने माता-पिता, कितने भाई-मित्र, कितनी स्त्री, कितना ऐश्वर्य जन्म-जन्म मे रहे होगे, कितने प्रेमी, कितने वैरी आदि आज सब स्मरण तक नही होते। अभी तू सुख मान-मान के कल्पता है। शरीर छूट जाय बस तेरा यहाँ का याद स्नेह नाता टूट जाय। टोला पडोस मे तमाम मरते है दुख नही होता। जिसमे स्वार्थ वश मोह नाता है, उसी के बिछुडने मे दुख का भान होता है।

दुख भान कराने वाला मन-मोह ही है। अहो कर्मदत्त! अभी सोच! समझ!! देख!!! बाजार मे जैसे सौदा लेना-देना करके सब अलग-अलग चल बसे, तद्वत प्रारब्ध पूर्ण होते ही कोई किसी को नही जुहारता। तेरा ही प्रारब्ध पूर्ण हो जाय तो तू अचानक चल देगा। इतनी बात सुनकर कर्मदत्त की मोहाग्नि कुछ शान्त हो गई। वह रोना-पीटना छोडकर सावधान होता हुआ सद्गुरु के चरणो मे गिरकर देर तक पड़ा रहा। बार-बार उठो! उठो!! सन्त के ऐसे शब्द सुनकर वह उठा, और सन्त के पद-रज को मस्तक पर लगा लिया और कहा—हे मृत सञ्जीवनी दायक! आप की कृपा से मै दुखिया से सुखिया होने लगा हूँ। कृपया मुझे और भी इस सतसग रस का पान कराइये। सन्त ने कहा—प्रथम तुम अपने सत्य स्वरूप का स्मरण करो। जो केवल ज्ञान मात्र सत्य है। जिसमे स्वप्न मे भी मिलन-विछोह का द्वन्द्व नही है। वही अपने को भूलकर जड तत्वो के शरीर को अपना मान बैठा है। हे कर्मदत्त! यह सब दुख-द्वन्द्व क्यो मिलता है? तो सुनो—अनादि काल से स्वरूप की विस्मृति किये हुये सम्बन्ध मे भूल, भूल से सम्बन्ध, एव इन्द्रियावरग वश मोहित हुये दुख-सुख के लिये सर्व को मानकर जीवो ने मन बना लिये है, सो मनोमय ससार ही दुखदाता है। इसीसे मोहगीती आरम्भ होती है। ध्यान देकर श्रवण करो—

दोहा—ज्ञान मात्र चैतन्य है, अबिनाशी थिर भूप।
मन-तन भौतिक गन्ध नहि, स्वय प्रकाश अनूप॥ १॥
ऐसो अपनो रूप तेहि, इन्द्रिय सङ्ग बिसारि।
इन्द्रिय नख सिख मानि निज, नारि ललाम निहारि॥ २॥
ज्ञानेन्द्री नेत्रादि रिपु, खैचत बिपयन हेत।
काम मोह लोभादि ठग, कठिन कुठौर दुखेत॥ ३॥

चौपाई—एक जीव को खैचत सब ही। बाल खेल इव आपै भ्रम ही॥
सर्वहि खुराक देत तन थाना। सुख आशा वश जीव भुलाना।
केवल भ्रम जल के सम आशा। मानहि मान मे फूलत खासा॥

कवित्त—देह एक मानव अनेक देखो भिन्न भिन्न,
दादा चाचा नाना मामा भाई जु कहतु है॥
औरहु अनेक नाथ जोरि-जोरि भाव तैसो,
दोउ दीन माने जस भाव मे पचतु है॥
तैसे देह तत्वन की मानि-मानि आपन सो,
इन्द्रिन के सुख लत भ्रम से गहतु है॥

प्रसंग १८—अभय लक्षण

सतसंग, सद्ग्रन्थ, सदाचरण, सत्साधन, सतमार्ग में चलने में जो

बाल ज्वान वृद्ध मृत्यु जन्म कछु सुधि नही,
जहाँ जहाँ देह स्वप्न मोह से लहतु है ॥

छन्द---आप मन भव धार मे किंचित दया नहि आप .पर।
अन्य लखि के सोचता अपनी दशा न निहार कर ॥
हे कर्मदत्त विचार कर तू कौन किसका नात है।
सब स्वार्थ सुख का हेतु है बिन स्वार्थ सर्व रिसात है ॥ १ ॥

दोहा---बोलत सेवत हर्ष से, धन बल रूप निहारि।
अहो! वही सब कुटिल भे, सुख नाता न तो टारि ॥ ४ ॥

छन्द---इस देह रूपी क्षेत्र मे यह जीव जान किसान है।
नौकर अहै मन इन्द्रिया सब भोग माहि लुभान है ॥
खेति लाभ मजूर लै तब क्या मिला फल जीव को।
भक्ति ज्ञान विराग फल तजि जन्म-जन्म ठगीव .को ॥ २ ॥

भुजगी---गयो वासना वश जबै गर्भ माही।
नवो मास उलटै गिरै भूमि बाही ॥
कि हाँ हाँ कि हाँ! रोय आगे न जाना।
शिशूपन की व्याधि मे मा शोक माना ॥
नही स्वच्छना ज्ञान भक्ती विचारा।
कहा शुद्ध चेतन को है भान प्यारा ॥
अहो! देह सुख भ्रम सबै सुख जानै।
ह्वै कै मलिन मोह जननी जुड़ानै ॥

त्रिभंगी---सब दुख सहि के, शिशु बड कइके, खेल माहि शिशु दौरे।
सुनि तोतरि बाता, प्रमुदित माता, कब समान हो औरे ॥
तेहि महिमा भावै, खूब पढावै, ह्वै मदमस्त जवानी।
लहि नारि बिमोहनि, उर मे सोहनि, परे अहं अघ खानी ॥

सवैया---बाल सवाँरि शृङ्गारत वस्त्रहि फ़ैसन और अनन्त गनै को।
नारि के ज्योति मे घूमहि घूमि के मस्त जो हर्ष से बाहि जनै को ॥
कोऊ सुज्ञाव्रत धर्म कथा तब ताहि को मूढ अनारि भनै को।
आप विज्ञानि बडो बनि चातुर बन्दर के सम कार ठनै को ॥

कवित्त—मैथुन पिशाच चूसै मोह के त्रिशूल छेदै,
क्रोध के अगिनि माहि लोभ खाँच गिरे गिरे।

हिचकिचाहट या रुकावट है वह भय ही करके है। इस मिथ्या भय के आते ही सब प्रकार विह्वलता-निर्बलता आ जाती है। अस्तु इस भय के निवारणार्थ अभय प्रसंग को लीजिये।

"ड डा डर उपजे डर होई। डर ही में डर राखु समोई॥"

(बीजक ज्ञान चौतीसा)

अहंकार बोझ लादे ईर्ष्या की बीछि छेदे,
छल औ कपट बडो मान देखो हरे हरे॥
नाच रंग भोग खाज नीको लागे शूल फेरि,
चर्म की बेगारि लिए खर लादि परे परे।
हिंसा अति कुटिल कठोर सर्प अघ राशि,
काल गाल माँहि तऊ गर्व सब तरे तरे॥

सोरठा—ऐसो मदन प्रचण्ड, साथी सब वैसहि मिले।
ह्वै उनमाद उदण्ड, अल्प उजेरी राति पुनि॥ ५॥
एक से ह्वै जब दोय, चार पाँव पशुवत भयो।
सुत पुत्री जब होय, आठ पाँव मकरा बनै॥ ६॥
आगे बढै तमाम, कनखजूर बहु पग भ्रमै।
भय बश बीते याम, ऐसो ममता रहट है॥ ७॥

कु०—वृद्ध भयो बल हीन ह्वै, मोह धार बलवान।
जाके हित सत मग तज्यो, सो आपन भे आन॥
सो आपन भे आन, मानो पहिचानत नाही।
कोटि शत्रु सम त्यागि, तऊ निज मानत जाही॥
जा तन हन्ता मोर सब, सो तन अन्त असिद्ध।
कर्म रहट वश पथिक पुनि, कौन काहि रे बृद्ध॥

छन्द—यहि भाँति से भ्रमि जन्म जन्म मे आप निज गुरु पद तजे।
जो एकरस अविकार अविचल नित्य तृप्त न तेहि भजे॥
भ्रम वारि से शान्ती चहै मद पी कुमग से नहि लजे।
अपना सम्हारि सुधारि अजहूँ ठानु वहि निज पद रजे॥

दोहा—इन्द्री मनहि घुमाय करि, सद्गुण सेज विराज।
स्वस्वरूप मे शान्ति गहि, जग तजि वलि पशु साज॥

छन्द—सुनि ऐस बैन, कर्म दत्त चैन। विनय विस्तार, डूबत उतार।
गुरुपद अधार, तेहि गहव सार। जो कथा धार, पावै सो पार॥

,गुरु जी के ज्ञान अभय करौ मन का'''।।" (भवयान)

अभय रहौ भय छोड़ि कै, तजि भयमान पदार्थ।
अपने तक कोइ ना अँटै, बीचै में सब आर्थ ।।११५।।

टीका—हे जीव ! निर्भयता गहो। देह छूटने, प्रिय वस्तु के बिछुड़ने आदि किसी चीज का भय मत करो। भय उत्पन्न करने वाली जगत की मानी हुई उत्तम-उत्तम चीजे—भोग सम्पत्ति आदि का सग्रह छोड़ दो जो आवश्यक संग्रह हो उसमे भी सहज भाव से वर्तो। देखो ! जो सर्वका ज्ञाता अपना ज्ञान स्वरूप शुद्ध चैतन्य है, तहाँ तक ये दृश्य वस्तुये नही पहुँच सकती। बीच मे इस नश्वर शरीर के ही लिये सबसे प्रयोजन पड़ता है, सो शरीर नाशवन्त है। दोहा—"सरै गलै छिन मे छुटै, साथ न होय अखीर। शोक व्याधि मनरुज दुखै, ताते नाम शरीर ।।" अत: जो नश्वर देह सम्वन्धी प्रयोजन है, जैसे- द्रव्य, भोग, मान, प्रेम, व्यवहार, विद्या-अविद्या, उन्नति आदि यह सब बीच मे है। अर्थात मध्य ही मे मिलते और छूट जाते है। इससे जीव का काज कुछ सिद्ध नही हो सकता, ऐसा समझ के निर्भय हो जाओ ।। ११५ ।।

थोड़े में निर्वाह लै, संचय छोड़ि सुपास।
मन की आशा दूर धरि, अभय स्वरूप मवास ।। ११६ ।।

टीका—सहनशीलता युक्त थोडे (मोटे भाव) ही मे शुद्ध गरीबी चाल से निर्वाह करो, तो फिर अधिक सग्रह की आवश्यकता ही क्या है ? जोई पावे सोई इकट्ठा करके धरता जावे, ऐसी मधुमक्खी वृत्ति छोडकर ही विश्रान्ति मिल सकती है। इसके अलावा विश्राम मिलने का अन्य कोई आधार है ही नही। क्योकि "सचय मे सब चिन्ता व्यापै। ज्ञान भक्ति तजि जग मग थापै ।।" याते उदारता से सचय त्याग करो ऐसी रहनी के सहित स्वतन्त्र रहो।

मन मे जो सुख की आशा लग रही है कि इतना-इतना होता तो ऐसा-ऐसा काम चलता या अमुक सुख भोगते, अमुक व्यवहार चलाते, अमुक कार्य करते ऐसा आकाश-पाताल मन नापता है, ऐसी कल्पित आशा को फेककर नैराश्य वर्तमान मे अभय होकर स्वरूप भाव से ठहरो। एक स्वस्वरूप ही अभय ठौर है, तिसमें ठहराव बनाकर परम सुख शान्ति का अनुभव करो ॥ ११६ ॥

प्रश्न—निर्भय स्थान क्या ?

उत्तर—अपना शुद्ध चैतन्य देश ही है, क्योकि वो छिनने, लूटने, कटने, दबने, किसी प्रकार परिवर्तन होने वाला नही, जो किसी समय पराया नही होता, जिसमें भौतिक पिण्ड, ब्रह्माण्ड, मन, वाणी, प्राण, क्रियाओं की अटन नही, जो सबको मनोमय चश्मा से देखता है, सबका परम पारखी है, उसी अपने आप अमृत स्वरूप के शोध बोध द्वारा वृत्ति समेट के वैराग्य पूर्वक स्थिर रहो, यही अभय, यही परम धाम है।

प्रारब्ध भोग तन दृश्य जो, तेहि हित भय को साथ।
सो बिजाति दुख रूप है, तब कस होय अनाथ ॥ ११७ ॥

टीका—प्रारब्धरूप वर्तमान शरीर जो कि घर के समान दिखाई दे रहा है। तिसी प्रारब्ध शरीर के रक्षण-पोषणार्थ भय लगा रहता है। कोई नाश न कर दे, कोइ निर्वाहिक वस्तुयें छीन न ले जाय इत्यादि। तो जिस देह को अपनी मान रात-दिन भयभीत रहा जाता है, सो देह और देह उपयोगी पदार्थ समस्त विजाति नाशवान प्रत्यक्ष दुखपूर्ण है। फिर ऐसी वस्तुओ के लिये लाचार वन के अपने स्वरूपस्थिति का कार्य क्यो छोड़े ॥ ११७ ॥

यथायोग्य बर्तै अभय, राखि न कुछु जग काज।
तबहीं दुख से मुक्त ह्वै, त्यागि मनोमय राज ॥ ११८ ॥

टीका—भूत भविष्य की चिन्ता त्याग के वर्तमान में शरीर को प्रारब्ध आधीन डालकर जिस प्रकार अपना सुखाध्यास बन्धन छूटे और स्वरूपस्थिति की प्राप्ति होती जान मिले, उसी प्रकार जैसा निर्णय से यथायोग्य चाहिये वैसा निर्भय होकर वर्ताव करो। कल्याणकृत कार्य के अलावा जगत की जहाँ तक चाहना उठती है, सो सब करना कुछ नहीं, मात्र गुरु की दया से अविनाशी अपने आप मे टिककर मेरा सर्व कार्य पूर्ण हो गया। लेना-देना, आना-जाना, मिलना-बिछूड़ना, प्राप्त करना आदि कुछ बाकी नहीं। प्रारब्ध भोग आवश्यक सहज भाव से विवेक युक्त होते हुये आप ही समाप्त हो जायगा। निज स्वरूप तो नित्य तृप्त है ही। ऐसे निश्चय और अभय कर्तव्य द्वारा दुख-द्वन्द्वो से छुटकारा मिल जायगा। इसके साथ यह भी कर्तव्य है कि सर्व मनोमय राज्य को त्याग कर दिया जावे। जो ज्ञान दृष्टि से देखने पर सत्य न हो, निरर्थक ही सत्य भासे, जहाँ तक पच विषयो में सुख मानना है सो सब मनःकल्पित लड्डू के समान मनोमय बन्धन रूप व्यवहार को छोड़कर शान्त रहना चाहिये॥ ११८ ॥

मनोराज्य दोहा

भेड़ा तित्तुल श्वान खर, पाँखी मनमय फूलि।
लेन देन नहिं तउ लड़त, पगत जु इमि नर झूलि॥ १ ॥
प्राप्ति न जाको कुछ करन, ज्ञान स्वरूप अखण्ड।
रात दिना बिललात सोइ, मनोराज्य बलवण्ड॥ २ ॥
विषय भोग जग मान्यता, कम विशेष बहु राग।
मनोराज्य भ्रम त्यागि के, सद्गुण युत निज पाग॥ ३ ॥

शुद्ध अभय बिन का करै, पचत जाय दिन शाम।
छोड़ि विवशता झूठ की, करौ जीव को काम॥ ११९ ॥

टीका—भय कृत कार्य—चोरी, हिंसा, व्यभिचार, कुटिलवार्ता आदि जिन-जिन कार्यो से उपाधि बढ के भय बढे उन सब भय कृत कार्यो को छोड़कर निर्भय रहे। ऐसी शुद्ध निर्भयता धारण किये बिना मनुष्य क्या कर सकता है ? कुछ भी नहीं। दिन रात देह-स्वार्थ, बनने-बिगड़ने पर ध्यान देकर जगत प्रपंच मे ही रचा-पचा करेगा। अत देह और देह सम्बन्धी मान-अपमान, सुख-दुख, कम-विशेष, सर्व मनोमय माया कृत विशेषता मिथ्या समझ के उसकी हानि होने का ध्यान छोड़ कर जीव के काज—ज्ञान-वैराग्य, गुरु-भक्ति, सत्सगादि साधनो को जोर लगा कर करो ॥ ११९ ॥

शब्द—१

गहौ गुरु ज्ञान जा लड़ने दे ॥ टेक ॥
हाथी अपनी चाल चलतु है, कूकुर भुकै तो भुकने दे ॥ १ ॥
यह संसार काँट के बेनई, अरुझि मरै तेहि मरने दे ॥ २ ॥

१ टिप्पणी—निर्भयता पर दृष्टात—एक अहिसक परमार्थशील मनुष्य था। एक बार उसे भयकर बीमारी हुई। मित्र सगे उसे चिकित्सक के पास ले गये। डाक्टर चिकित्सक ने कहा—यदि तुम अण्डा और मास खाओ तो तुम्हारी बीमारी शीघ्र दूर हो जावे। परमार्थवादी ने अपने मित्रो से कहा—शीघ्र मुझे यहाँ से उठा ले चलो। ऐसे नराधमो का सग ही अपना मृत्यु समझता हूँ। क्यो डाक्टर साहब ! अण्डे माँस खाने वाले अमर हो गये। रोगी दोषी मलीन अल्प आयु मे वे क्यो मरते नजर आ रहे है ? कुखाद्य से मनुष्य अधिक रोगी होता है। अकुरज पदार्थ ही मनुष्य को आरोग्य वर्धक है। देखिये ! मुझे यहाँ तक निश्चय है—"चहु तन टूक टूक कै डारौ। भावै अनल माहि धरि जारौ ॥ धरती खोदि तोप बरु देहू। तजौ न रामहि प्रण मम येहू ॥ वि० ॥" अथवा—"तनु तिय तनय धाम धन धरणी। .सत्य सिन्धु कहँ तृण सम वरणी ॥" अहिसाव्रत पूर्ण अर्थ मेरा तन मन प्राण वलि है, परवाह नही, शरीर नष्ट हो जावे इसकी तो गति यही है। डाक्टर साहब लज्जित हो गये, फिर यथार्थ चिकित्सा किया। साराश—अहिंसा पालन, सत्संग-साधन, सत्कर्म पालन मे किसी का डर भय न करे।

भैरव भूत शीतला देवी, जो पूजै तेहि पूजने दे ॥ ३ ॥
साधु गुरू के चरण मे लागो, जगत बकै तो बकने दे ॥ ४ ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, जगत हम तो हँसने दे ॥ ५ ॥

शब्द—२

शुभ मारग से चलना, काहू को भय रखना जी ॥ टेक ॥
वलि वलि पापी पाप करन मे, तुम सत मारग से काहे हिचकनाजी ।
क्षमा न तजना सम्हरि के चलना, अब काहे को पाछे पछड़नाजी ।
मरना जरूरी तो मरने छुटन हित, जासे न फिर गरभ में पड़नाजी ।
सतसग से प्रेमनछूटै, देखो अब से न कोई कुरीति को धरनाजी ।

प्रसंग १६—आसक्ति दलि स्वरूप विवेक

सबको पीड़ा देने वाली, सबसे अनर्थ कराने वाली, ऊँचे से नीचे डालने वाली, सबकी सब अवदशा कराने वाली एक है तो वह जग मे प्रपंच की आसक्ति ही है। इस आसक्ति का जीते जी जब नाश किया जा सके, तब यह जीव अपने परम लक्ष्य को पूरा कर सके। स्त्री-पुरुष प्रत्येक को खोटी लत, खोटे अध्यास का त्याग करना जरूरी है। सन्त तो आसक्ति त्याग के लिये ही कटिबद्ध रहते है। अस्तु आसक्ति दलि स्वरूपविवेक को परम मित्र के समान अपनाइये।

"मत सुनु मानिक मत सुनु मानिक हृदया बन्द निवारहु हो ॥"
(बीजक, कहरा)

आसक्ती निर्मूल को, पुनि पुनि मनन विचार।
अलग केर अलगै धरै, लहु विचार को धार ॥ १२० ॥

टीका—इन्द्रिय-मन कृत सर्व लत-आदत को नष्ट करने के लिये बारम्बार मनन-विचार करो। अपने से पृथक सामने दृश्य होती हुई काम-क्रोध, राग-द्वेष, सुखाध्यास की भावनायें अलग ही है।

तिन पृथक भावनाओ को पृथक ही निश्चय कर अपने से भिन्न देख देख के डालते रहो। इस प्रकार विचार की धारा सदा प्राप्त करो। यहाँ तक यह धारा पुष्ट करो कि चलते-बैठते, जागते-सोते, मिलते-बिछुडते हर समय मे हम सत्य चैतन्य पृथक है और वासनाये हमसे पृथक दुख पूर्ण भ्रम मात्र है। जब यह निर्णय कर-करके स्मरणो से पृथक रहने का बहुत काल तक अभ्यास लीनता द्वारा एकरस विचारधारा बना लिया जाय तो सब आसक्तियाँ आप ही नष्ट हो जायँगी ॥ १२० ॥

करै सचेत अचेत नहिं, कबहूँ होने देय।
शनै शनै आगे बढ़ै, लखि परिणाम अजेय ॥ १२१ ॥

टीका—पूर्वोक्त अन्तर विवेक धारा जब पुष्ट कर लिया जावे तो वही विचार स्मरण घड़ी-कूक न्याय सदा सनमुख हो-होकर अपने को गुरुपद मे सावधान रक्खेगे। वे कभी सुखासक्ति मे अचेत होकर मिलने न देगे। आसक्तियों के सग्राम मे घबराने, ऊब लाने, जल्दी ही सिद्धि की प्राप्ति हो जाने की चिन्ता से साहस हीन मत बन जाओ, बल्कि सम्हल-सम्हल के क्रम क्रम धैर्य पूर्वक साधन संयम सहित आगे बढो। सत्सग, सद्ग्रथ, सद्विवेक, मनोद्रष्टा आदि सब रहस्यो को उपयोग मे लाते हुये स्वरूपविचार को ही पुष्ट करो। इस अभ्यास का अन्तिम फल अजेय समझो, अजेय का अर्थ जिसे कोई जीत न सके, स्वयं सब पर विजय सिद्ध हो। पूर्वोक्त विवेक धारापुष्ट कर लेने पर फिर आसक्तियाँ खीच न सकेंगी ॥ १२१ ॥

सुख साँचा लखि मनन जो, पुनि पुनि वस्तुन देखि।
सो अज्ञान अपार है, रचि रचि दुख को लेखि ॥ १२२ ॥

टीका—अच्छी फुलवारी, अच्छे मकान, अच्छे वाहन, सुन्दर स्त्री-पुरुषों की देहे, राज, कोप, अच्छे वस्त्र, अच्छे सुवर्ण-पात्र, वेश-

कीमती कपडे, मान-सम्मान जहाँ तक इन्द्रिय सनमुख पड़ते भये पदार्थ और प्राणी वर्ग की आसक्ति सब दुख-द्वन्द्व मूल है। तिन्हों को ही सुख रूप समझना, नाशवान मिथ्या की जगह सत्य-सत्य असली सुखानन्द निश्चय करके उनका स्नेह पूर्वक मनन करते रहना, तिन्हे वारम्वार देख-देख कर प्राप्ति और उपभोग के लिये ललचाते रहना, यही महान अज्ञान के लक्षण है। आप शुद्ध चैतन्य आप ही अपने से पृथक जड़ भोगो मे सुख कल्पना कर-कर आप ही तिसके लिये नाचते रहना यह अपने हाथो से नाना दुखों का वार-वार निर्माण करके दुख लेना है। ऐसा निर्णय करके परखो और इस अज्ञान का दृढ़ता से त्याग करो ॥ १२२ ॥

प्रश्न—क्या दुख अपना ही वनाया है ?

उत्तर—अवश्य प्रवाह रूप अनादि काल से देहोपाधि युक्त वहिरलक्ष्य मे सुख मान-मान आप ही तो लत-आदत, राग-द्वेष, अभ्यास से पीडित है। आगे सुनिये।

चेतन स्वतः अछेद पद, घट वढ़ रहनि प्रकाश।
विन माने तेहिके विषे, कवहुँ न दुख को भास ॥ १२३ ॥

टीका—सर्वका जानने वाला उत्पत्ति-नाश रहित चेतन स्वतः है। किसी कर्ता-कारण का कार्य या अंश अथवा प्रतिविम्व नही है, वल्कि अनादि नित्य है। किसी जड़ या किसी कल्पनादि से वह नाश होने वाला नही है। तीन अवस्था, तीन पन, दिन-रात, वीज-वृक्ष, सूर्य चन्द्रादि सव जड कम-विशेष वाले है। जीव इन सवो का देखने वाला सवसे भिन्न घट-वढ रहित एकरस स्वय ज्ञान प्रकाश है। मानन्दी करके ही उसे दुख से भेट होती है। मानन्दी रहित उस चेतन के स्वरूप मे कभी दुख का लेश नही है। प्रत्यक्ष अनुभव है कि अपना माना हुआ कुल-कुटुम्व, व्यवहार, नात-गोत, नाम-रूप लत—आदत ये सव अपने ही को मोह माया वश खीचते रहते है।

इसके उल्टे जिसमे अपनी सुख निश्चयता नही, प्रेम मानन्दी नही, उसके वारे मे कुछ भी खैंच हर्ष-शोक नही व्याप्त होते। एव मानन्दी ही मानन्दी कर्ता को सताती है। मानन्दी न करने से जीव सदा शुद्ध स्थित रहता है ॥ १२३ ॥

जब जीवहिं पारख मिलै, तब मानव भ्रम नाश।
मानव के संहार हित, तट ही साज निवास ॥ १२४ ॥

टीका—जब जीव को सत्सग से पारखपद की प्राप्ति हो, तिस पारख द्वारा अनादि जड़ और चेतन के गुण-लक्षणो का यथार्थ बोध हो जाय, तब इसके सर्व कल्पित पिण्ड-ब्रह्माण्ड का भ्रमकृत सुख मानना नष्ट हो जावे। उक्त मानन्दी रूप जड़ाध्यास छेदन करने के लिये नर देह मे जीव के पास ही विवेक, वैराग्य, सद्बोध आदि सब मोक्ष सामग्री विराजमान है ॥ १२४ ॥

खोजि मिलावै और कोइ, या आपै लखि हेरि।
बिन साँचा सो ना मिलै, तहाँ बहुत अरुझेरि ॥ १२५ ॥

टीका—अन्य कोई दृढ विवेक, वैराग्य सपन्न शोधक सन्तगुरु जालो को परखाकर शुद्ध स्वरूप का और तिसकी स्थिति रहस्य का परिचय देवें या स्वयं शोधन करके स्वरूप वित्त और तिसके रक्षक

टिप्पणी—मानन्दी तीन—१ जड देह को सत्य समझ के विषयासक्त होना। २ जीव के ऊपर कोई देव गोसैयाँ समझ के कर्म, उपासना, योगादि भास दर्शन मे लगना। ३ जीव का स्वरूप, जगत का सरूप अद्वैत एक मानकर आकाश-शून्यतवत निर्लेप बन के पुन. विषयासक्त हो जाना। एवं ज्ञान-विज्ञान, कही सर्वत्र पूर्ण व्याप्य-व्यापक भाव, सर्व साक्षी और सर्व व्यापक, तुर्यस्थ होना, कही जगत-ब्रह्म एक समझ लेना, इस मुख्य तीन मानन्दियो की अनन्त शाखाये है, परन्तु मुख्य तीन ही के अन्तर्गत है। सो तीनो नर जीवो की कल्पना है, क्योकि जड और चेतन दोनो अनादि काल से वर्तमान मे जैसे स्थित है तैसे सदा से रहे और रहेगे। इन सबो का विस्तार "जगत अनादि शतक" मे आया है तहाँ भली प्रकार मनन कीजिये।

सत्साधनो को ढूँढ कर प्राप्त करे, दोनो प्रकार हो सकता है। किसी भी भाँति हो जब तक सच्चा अन्त:करण करके छल-बल छोड कर एकाग्र वृत्ति से दुख छूटने अर्थ शुद्ध निश्चयता न प्राप्त होगी तब तक सर्व जडाध्यास नष्ट होकर स्वरूपस्थिति मिल नही सकती। क्योकि इस मार्ग मे बडे-बडे प्रलोभन-कुसगादि काँटे है जो आगे बढने नही देते। मन का भुलावा, निर्वाह का भुलावा, प्रकृति चमत्कार का भुलावा, जगत तथा भेप प्रपच का भुलावा, इन्द्रिय स्वभाव लत-आदत का भुलावा, नारि-बानी गुरुवाओं का भुलावा, विज्ञान-विकास तथा मतवादियों का भुलावा विश्व हन्ता का भुलावा, यहाँ तक कि बिना दृढ पारख बाहर भीतर सब भुलावा की फाँसी तैयार है ॥ १२५ ॥

यहिते गुरुमग मुख्य है, जानि रहौ तेहि माहिं।
ह्वै उनमाद न अन्ध ह्वै, इत उत भरमि रहाहि ॥ १२६ ॥

टीका—इसलिये सर्व भुलावा से बचने के लिये एकवृत्ति से पारखनिष्ठ सर्व सद्गुण सम्पन्न सद्गुरुदेव की शरण मे रह कर बोध और रहस्य जो कि मुक्ति मार्ग की सीधी सड़क है तिसे समझ-बूझ के उसी मार्ग के पन्थी बन जाओ और किसी प्रमाद के वश उन्मत्त होकर विवेकहीन न बनो। नही तो जहाँ-तहाँ कही देहाध्यास मे, कही अनेक मत-पन्थ के सघन वन मे भटकते-भटकते ही वृथा तुम्हारी सारी आयु व्यतीत हो जायगी। फिर तो अज्ञानवश जन्म-मरण का कष्ट तुम्हारा ज्यो का त्यो बना रहेगा, अतः सावधान ॥ १२६ ॥

अभेद करैं बर्ताव नहिं, जहाँ अकर्षक अंग।
दोनो चलैं सम्हारि कै, अपने अपने ढंग ॥ १२७ ॥

टीका—कल्याण-इच्छुक नर-नारियो को परस्पर भेद रहित बर्ताव नही करना चाहिये। विशेप कर जहाँ अधिक मोहासक्ति

उदय होने का सशय हो, ऐसी जगह से सावधान रहना चाहिये। विजाति युवती घट से तो एकान्त मे वार्तालाप और परस्पर साथ मे आसन लगाना तथा घूमना-फिरना, एकत्र रहना दोनो के लिये देह स्वभाव मनोविकार उत्पन्न करने के कारण वैसा करना दोनों को हानिकारी है। निर्वाहिक तथा सहजिक गुरुपद शिक्षागिक आवश्यक सम्बन्धों मे नेत्रादि अंग शान्त रखते हुये सावधानी से स्ववशता पूर्वक गुरुपद का लक्ष्य दृड रखते हुये छिपाव रहित शीघ्र मोक्ष का शुभ कार्य बनाकर दूर ही स्थित रहना चाहिये। कभी-कभी आवश्यक व्यवहार ही मोह हेतुक हो जाता है, तहॉ बहुत सजगता, लज्जा, सकोच धर्मोचित बर्ताव रखते हुये आवश्यकताओ को कमी करते हुये बडी तत्परता से परहेज करना चाहिये। 'लस न राखि जहॅ भूल योग्यता' कल्याण तो दोनो का इन्द्रिय, स्वभाव, मन मन जीतने से ही होगा, याते दोनों को सॅभलकर जिस प्रकार मोह न जगे उसी प्रकार दृढ युक्ति पूर्वक अपने-अपने घट भेद के अनुसार सयम पूर्ण बर्ताव करना चाहिये। अर्थात मुमुक्षु स्त्री घट को आश्रम मे पुरुष सग रागासक्ति से पृथक ही रह कर और पुरुष घट को शक्तिबल शोध-विचार कर भ्रमण या आश्रम युक्त रह के नारी निकटासक्ति त्यागकर सयम दृढ करना चाहिये ॥ १२७ ॥

ओढ़न पहिरन उटॅग करि, उटँग करै व्यवहार।
हँसन्न हॅसाउन्न छोड़ि कै, तन मन दुखन विचार ॥ १२८ ॥

१ -टि० किसीने कहा है--दोहा---विद्या बौडी नृपति तिय, इनका यही सुभाव।
ये जिनके नेरे बसै, धाय धाय लपटाय ॥
"महॉ अन्ध को जो मदनातुर। निज भल करै सोई वड चातुर" ॥
याते--वैराग्य इच्छुक दोनो को वहुत परहेज से रहना चाहिये।
दोहा—संगदोप से मोह हो, मोहसे जागै काम।
संग राग से पृथक ह्वै, सहजै शान्ति स्वराम ॥

टीका—ओढना और पहिनना थोडे मे रखना चाहिये। उदासीन गरीबवत सादगी स्वभाव ही सबको हितैषी तथा शान्तिप्रद है। साथ ही नर-नारियो के सम्वन्ध की कमी करना चाहिये। व्यावहारिक प्रपच से मन न हटाया जाय तो कभी मुक्ति हाथ नही आ सकती। सादगीपन और व्यवहार को कमी रखने से वासनायें निर्वल होकर कब्जे मे आ जाती है, बन्धन का बोझा नही पड़ता, प्रवृत्ति झगडे से लक्ष्य सिमिट कर परमार्थ साधन पुष्ट हो जाता है, राग-द्वेप सर्व कामनाओ की निवृत्ति होकर सहज ही स्थिति मिल जाती है। वात-चीत मे हँसना, दूसरे को हँसाना, वारम्वार मुस्काना आदि सब राजस मय जडाध्यास चचल रूप होने से इनको त्यागते हुये साथ ही शोक-मोह, मानसिक कष्ट, निर्वाह रोग भोगादिक और दैहिक कष्टों का सदा विचार करते रहना कि ये सब दुखो का अन्त कैसे होगा ? फिर हँसने-हँसाने का मौका ही कहाँ है ? ॥ १२८ ॥

दो०—"पर मन रीझन हेतु लै, निज मन हर्ष हहाय।
बहत बासना धार मे, ठट्ठा बड़ी वलाय ॥"

चौ०—द्रष्टा स्ववश राग से पारा। उदासीन मनवेग से न्यारा ॥
उदासीन उपराम सुभागी। हर्ष शोक शम सोवत जागी ॥

हँसी वेग को लच्छ लखि, करै कठिन दुख यादि।
दोनौं को संग्राम करि, करै हँसी भ्रम बादि ॥ १२९ ॥

टीका—हँसीवेग आने पर तिसे रोकने का यह साधन है—हँसी आते ही उसे वन्धनप्रद समझ के साथ ही शीघ्र किसी कठिन दु ख का स्मरण करो। देहग्रन्थि मे सब प्रकार अपनी अवदशा सोचकर, प्रवल दुखमय विवशता के विचार की अन्त करण में कूक भर दो। फिर तो उधर राजसमय होकर दोनो वृत्तियो का सग्राम हो जायगा। अन्त मे अपने को कठोर दुख के वीच मे निश्चय होते ही एकदम हँसी रुक जायगी। यही साधना मान-बड़ाई आदि मे हर्ष आते ही

उसे त्याग करने में उपयोगी है। फिर तो स्वयं ये जीव स्वतन्त्र अभय विराजेगा। इस प्रकार उदासीन वृत्ति ही परम शान्त सुखमय समझ के इधर उधर दृष्टि चचलता हँसी वृत्ति का नाश करके राजस वासना पर कब्जा कर लेना चाहिये। "हर्ष शोक तजि स्वस्थ रहीजै। सद्स्वरूप शम निज मे भीजै" ॥ १२६ ॥

रसिक बचन बोलब तजै, गुप्त प्रगट लखि कीच।
आसन करै एकान्त नहिं, ग्राम धाम के बीच॥ १३० ॥

टीका—विषयोत्पादक प्रापञ्चिक वाक्यों का बोलना छोड देवे, चाहे एकान्त में छिप के हो चाहे सबके सामने हो। अश्लील कामुक वार्ता, ममता, राग-द्वेष पक्ष वार्ता, पर दुर्गुण उभाड़ वार्ता ये सब बाते कीचड़ रूप अन्तःकरण को मलीन करने वाली ही है। ऐसी पारखदृष्टि रखके उनसे बचे। वैराग्यवान यह भी हिसाब रक्खे कि जब ग्राम मे किसी घरगृहस्थी के यहाँ रहना हो तो ऐसे एकान्त घर के अन्दर छिपे ठौर में भीतरी आसन न लगावे कि जहाँ पुरुषों के दिखावे के बाहर अर्थात अलग हो। भाव—जहाँ पुरुषों का सम्बन्ध न पड़े, स्त्रियों का अधिक सहवास पड़े ऐसे एकान्त में रहना विरक्त को खतरे से खाली नही है॥ १३० ॥

इच्छा सेवा लेन की, दीजै सब ही त्याग।
तब सुख लहै विराग को, मोह नींद से जाग॥ १३१ ॥

टीका—कोई स्नान करवावे, वस्त्र साफ करे, प्रसाद बना के खवावे, आसन ले चले, आसन बिछावे, कोई बर्तन माँजे, सवारी लावे, देह दाबे इत्यादि शरीर की सेवा करवाने की इच्छा वैराग्यवान को दिल से त्याग देना चाहिये। निजी कार्य स्वयं करता रहे। असमर्थ में अथवा कोई अपना धर्म भक्ति पुष्ट करने के लिये वह अपनी तीव्र श्रद्धाभाव से करे तो भले करे, किन्तु तहाँ भी वैराग्यवान

को किसी समय आशावद्ध और आसक्त न होना चाहिये। तभी वैराग्य जनित स्वतन्त्र अभय निश्चिन्त निर्भार निर्विषय सुख प्राप्त हो सकता है और तभी देह के सुखाध्यास सम्वन्धियों के भार रूप मोह नीद से वह जाग्रत हो जायगा ॥ १३१ ॥

प्रश्न—आसक्तियो का ध्वंस कैसे हो ?

उत्तर—ऊपर का कथन मनन और आचरण मे लाओ, सेवा-भक्ति मे परिश्रमी बनो, अन्य से सेवा लेने की कामना त्यागो, स्वयं निर्मान यत्नशील रहो।

प्रसग २०—प्रतिष्ठा की खुशी और मान का छेदन

सव कुछ त्याग के मुक्ति स्थिति के समीप पहुँच कर भी पुन· खेंच कर जगत-जंजाल के गहिरे खड्ढे मे डाल देने में समर्थ यह प्रतिष्ठा मे हर्ष और मान वड़ाई मे फूलना ही है। ये विघ्न पूज्य मार्ग मे अवश्य आते है। अतः इस शत्रु से वचना परम कर्तव्य है। इसके लिये यह प्रसंग अत्यन्त उपयोगी समझ के सादर ग्रहण कीजिये।

"विप के संग कौन गुण होई। किंचित लाभ मूल गौ खोई ॥।"
(वीजक, रमैनी)

मान पाय मन में खुशी, मानि व्रड़ा मैं आप।
छोट भया सवसे अधिक, नेकु नहीं सन्ताप ॥ १३२ ॥

टीका—मान वड़ाई पूज्यता पाकर मन मे जो प्रसन्नता होती है कि मै सवसे ऊँचा, ज्ञानी-गुणज्ञ हूँ, मेरे सरवर कोई नही, किन्तु ऐसा मानने से सवसे छोटा होता जाता है। पच विपयो मे आसक्ति के विना मान-व्रड़ाई पाकर हर्ष हो नही सकता और जहाँ विपयासक्ति रूप मैल जमा है तहाँ सो मनुष्य सबसे छोटा ही है। अज्ञान युक्त दुर्गुण वर्ताव सोई नीचता—तुच्छता है। इतने पर भी किंचित मन मे पश्चाताप नही होता कि हम अघ-अवगुण मूल मान-वडाई मे क्यो फूलते है? यह भी प्रमाद का परिणाम है ॥ १३२ ॥

धँसत जाय दुख में चला, अहंकार दुख छूट।
येहिते कौन नदानपन, समुझि तजौ दुख घूँट ॥ १३३ ॥

टीका—धँसते तो दुख के दल-दल मे जा रहे है। सुखासक्ति, व्यवहार-प्रपच की तरफ खिचाव होना, सो भीतर से चालू है, इतने पर भी मद है कि मै अपना दुख से पीछा छुड़ा रहा हूँ, मुझे विशेष ज्ञान-वैराग्य की प्राप्ति है और अज्ञानकृत जन्म-मरण, राग-द्वेष से छूटते जा रहा हूँ, परन्तु इससे क्या अनारीपन होगा? प्यासे को पानी पीने न्याय दुखरूप मान-बड़ाई जगत बन्धनों को ही प्रेम से यह जीव ग्रहण करने जा रहा है। इससे बढ के अज्ञान क्या होगा? अत· इस अज्ञान कृत मद-बोझ को पटक के हल्के रहना चाहिये ॥ १३३ ॥

जेहिते हो अभिमान मन, औ ममता को ध्यान।
उन्नति में तिसकी लगै, सत पुरुषार्थ न भान ॥ १३४ ॥

टीका—जिस पुजापा मान-बड़ाई की प्राप्ति से अपने में अभिमान भर जाय और मान देने वालो मे ममता-आसक्ति बन जाय तथा उसी मान-दान बढाने के पुरुषार्थ में जुट जावे तो इसका परिणाम अन्तिम यह निकलेगा कि अपने जीव के उद्धार का पुरुषार्थ ही भूल जायगा। वहाँ रात दिन जन समूह को बढाने की फिक्र, पदार्थो के सग्रह की फिक्र, मोहासक्ति प्राणी को राजी रखने की फिक्र एव तमाम हानि-लाभ की फिक्र जलायेगी फिर तो नैराश्य, निवृत्ति, स्वतन्त्र, विवेक, वैराग्य, सत्संग, स्वरूप विचार, सद्ग्रथावलोकन आदि न भायेगा इनमें मन नही लगेगा ॥ १३४ ॥

तम समुद्र तेहिको लखौ, सावधान मतिमान।
नहिं नीचे गिरि जावगे, सफल न ध्येय लहान ॥ १३५ ॥

टीका—जगत पूज्यता, जगत ममता, प्रपंची मनासक्तो की तरफ आकर्षित होना यही अथाह अन्धकार अज्ञान का समुद्र है। इसमे जो

न अनर्थ हो जाय वह थोड़ा ही है । याते हे बुद्धिमान सन्त-जिज्ञासु ! इससे बचकर सदा के लिये सजग होशियार रहो, किसी तरफ से मिली वडाई ओर स्नेह मे फूलो मत । नही तो उच्च श्रेणी वैराग्य-भक्ति दशा से उतर के कामादि विकारो मे गिर जाओगे । फिर तुम्हारा जगत बन्धन छूटकर सदा के लिये स्थिति मिल जाय वह ध्येय भी पूर्ण न होगा; क्योकि जगत की मान-वड़ाई में फूलने से उधर ही प्रवृत्ति होगी । प्रवृत्ति से सकल राग द्वेप, इन्द्रिय विकार मन मे जग जायेंगे और तुम बीच ही मे गोते लगाया करोगे ॥ १३५ ॥

धन जन कुटुम असार लखि, जानि दुखन को मूल ।
अब कस भूल्यो ताहि में, जो देते नित शूल ॥ १३६ ॥

टीका—कनक-कामिनी, माता-पिता, पुत्र, पौत्र, भाई-भौजाई आदि सर्व कुटुम्ब नश्वर एव दुर्गुण हेतुक निःसार दुखरूप जान के और तिनका स्नेह जन्म-मरण का हेतु समझ के हे जिज्ञासु ! तिन्हे तुम त्याग दिये । अब मुक्ति मार्ग मे आकर फिर उन्ही धन जन आदि तुच्छ वस्तुओ मे और उसी तुच्छ मान प्रतिष्ठा मे क्यो भूलने लगे ? देखो ! तुम्हे मान प्रतिष्ठा से धन-जन इन्द्रिय आराम की चीजे ही तो मिलेगी, जो कि नश्वर और दुर्गुण-भूल के मूल है। उनमे सुख क्यो मान रहे हो ? जो हमेशा त्रिविधताप देने वाले है वे ही देखो ! पूर्व के बन्धन बदल कर तुम्हारे सामने पुन आ रहे है, अत सावधान ॥१३६॥

पूजा सेवा पाय जो, होंय खुशी नहिं लेश ।
वहो गुरुन के गुरु अहैं, मन के शत्रु हमेश ॥ १३७ ॥

टीका—जो जगत के राजा, धनी, कवि, पण्डितों तथा अन्य मनुष्यो से वड़ाई और पूजा सेवा अर्चा पाकर लेश मात्र हर्ष नही

उत्पन्न करते, बल्कि इन्हें आपदा मूल समझ के तिरस्कार करते, इनसे दूर भागते । सम्पूर्ण बाह्यवृत्ति दुख-मूल समझ के लोक-भीड़ से पृथक होकर निराधार स्थिति पुष्ट करते, वही सर्व गुरु से बढकर श्रेष्ठ सद्गुरु है और वही मन मानन्दी रिपु के हमेशा काल रूप है । भाव—मन को प्रिय लगने वाली चीजो को त्यागकर मनवेगो को निर्मूल करके जो शान्त रहते है वही सर्व शिरोमणि है ॥ १३७ ॥

छन्द—भागिये सुख स्वाद से नित लागिये निज रूप से ।
अनुरागिये गुरु परख मे वैराग्य रक्षा भूप से ॥
नित चाखिये निर्णय बिविध वच भाखिये निर्मान से ।
नित राखिये धीरज सजग बस मुक्त हो निष्काम से ॥

सन्त सुखी गुरुज्ञान में, जहाँ न दुख को नाम ।
ज्ञानै करैं अहार नित, बसैं ज्ञान के धाम ॥ १३८ ॥

टीका—वैराग्य-वोध युक्त, जगत जजाल से निवृत्त मोक्ष साधन मे तत्पर सो सत, ऐसे संत गुरु पारख बोध मे ही सदा सन्तुष्ट निरन्तर सुखमय रहते । जिस साधु रहनी और बोध धारणा मे लेश मात्र कोई दुख नही है, दुख रूप कुटुम्ब ममता और काम-क्रोधादि लोकैषणा और मान्य विद्या स्वर्गादि की आशा ये दोनो का जहाॅ त्याग है वहाॅ कहाॅ हर्ष-शोक ? नित्य-नित्य वे ज्ञान-विचार का ही भोजन करते, जिससे उनकी मनोभूख नष्ट हो जाती । निर्णय बोध ज्ञान के आहार से ही वे परमार्थ मार्ग मे कभी थकते नही, सदा बलवान हो गुरुपद पथिक बने रहते है और सत्यज्ञान के ही मन्दिर मे निवास करते है । लक्ष्य के सामने दुख-सुख, हानि-लाभ, मान-अपमान, हर्ष-शोक कोई आवरण नही आने देते । निर्णय युक्त बन्धनो का निवारण करना ही उनका विश्राम स्थान है । पूर्वोक्त प्रकार सन्तजन गुरुज्ञान मे सुखी रहते तथा गुरुज्ञान के ही निर्णय—विचार-

रूप आहार से ज्ञानशक्ति पुष्ट रखते, शरीर निर्वाह भी उसी स्थिति के नाते ही से उनका होता रहता है ॥ १३८ ॥

मन की भूॅख मिटाय कै, तन की को नहिं झंख।
प्रारब्धी पुरुषार्थ सत, तेहि वल सदा अशंख ॥ १३६ ॥

टीका—मन से जो कल्पना करके सुख माना गया, उसकी कामना मे कष्टित होना मन की भूख है। मन की भूख—स्त्री सुख की इच्छा, धन, मान, प्रभुता प्राप्ति की इच्छा तथा नाच-रंग, वहु विद्या, खेल-तमाशा, छवि गृह, मेला-वाजार देखने की इच्छा, यहाॅ तक कि सम्पूर्ण इन्द्रिय गोचर–विद्या वानी, भोग वासना सम्पूर्ण राजस सुखो को मृग जल वत मिथ्या जान कर उस उठी हुई कामना को ही संत जन ज्ञान द्वारा तोड़ देते है। एव ज्ञान पान द्वारा मन की भूख मिटा देते है। अब रहा स्थूल देह की भूख के लिये भी वे चिन्तित नही होते। फिक्र करै तो भी न फिक्र करै तो भी पूर्व अदृश्य प्रारब्ध कृत आवश्यक दुख-सुख भोगने ही पड़ते है। अपना स्वरूप बोध तो नित्य अक्षय-अखण्ड ही है। शरीर नाशवान एक दिन नाश होने वाला अवश्य है, तो फिर शरीर यात्रा मे कुछ विघ्न पड़ा तो जहाॅ तक सहन के अन्दर होगा तहाॅ तक सहन तितिक्षा से ही हम शान्त सुखी है और यदि सहन के वाहर कोई आपत्ति आई तो भी छूटने वाली शरीर ग्रंथि छूट ही जायगी। चलो! विजाति भार प्रारब्ध भोग समाप्त हुआ कि वस निराधार पद की निरन्तर प्राप्ति हुई। इस प्रकार प्रारब्ध और पुरुषार्थ फल सत्य समझ के सन्तजन सदा अशक—निर्भय निर्द्वन्द्व स्वरूपस्थिति साम्राज्य मे विराजते है ॥ १३६ ॥

वैराग्यवान का सर्वोपर निश्चय—पद

अहै गुदरिया ओढन की इक, उदासीन कुछ वस्तर है।
सहन वृत्ति से भूख गई सव, लोग कहै कम अक्कल है ॥

मस्त हुये हम गुरू ज्ञान में, जिसकी नहिं कुछ सरबर है।
उलटि पलटि हम मन को मारैं, वार पार हो शस्तर है॥ १॥
प्राण हथेली पर रख घूमैं, दुख सुख का कुछ ख्याल नही।
चहौ गालि दुतकारि खिझाओ, रंग हमारा बढ़ै सही॥
नारि नबेली जलती भट्ठी, मान भोग की चाह नही।
सड़ी गली दुर्गन्धी, दुनियाँ तज-तज के एकान्त चही॥ २॥
घट ही अन्दर अजब तमाशा, दुनिया भर की लीला है।
घट ही अन्दर परम प्रकाशी, स्थिर शान्त अकेला है॥
बाहर दौड़त हारी दुनिया, करती धक्कम धेला है।
सर्व शिरोमणि सर्व परीक्षक, अन्दर नित हम खेला है॥ ३॥
बड़ी दया सतगुरु ने कीन्हा, अपना परख प्रकाश दिया।
अमृत रस को पी पी खेलै, बिष रस का अब ध्यान गया॥
गुरु मस्ती से नयन खुले, अब झकाझूम कर पन्थ लिया।
किसी तरह अब डिगै न बन्दा, श्री कबीर ने ज्ञान दिया॥ ४॥

प्रसंग २१—फल निरूपण

शुभ गुण साथी जीव के, जहाँ चोर मग माँझ।
आयू भर रक्षा करैं, जब तक अन्त न साँझ॥ १४०॥

टीका—सद्गुण शतक में विस्तार किये गये जितने शुभ गुण है वे सब देहधारी चेतन जीवों की सदा रक्षा करने वाले परम मित्र है। जिस देह मार्ग में काम-क्रोधादिक चोर लगते है इन काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सरादि डाकुओं से बचाकर आयु पर्यन्त रक्षा करने-वाले ये सद्गुण ही है। जब तक देह मार्ग चल के समाप्त न हो जाय, तब तक ये सद्गुण सदा सहायक है। भाव—इस देह या अन्य देह पर्यन्त जब तक प्रारब्ध भोग भोगते हुये आगामी संस्कार दग्ध हो के प्रारब्ध क्षय होकर जीव की विदेहमुक्ति न हो जायगी तब तक ये सद्गुण सदा साथी रहेंगे॥ १४०॥

धन रो धन साथी बड़े, जो बिन दाम मजूर।
यात्रा भर को खर्च सब, काम करैं भरपूर ॥ १४१ ॥

टीका—इस सद्गुण शतक मे जितने दया-शील आदि सद्गुणो का वर्णन हुआ है वे सब लाख-करोड नश्वर लौकिक धन से भी वढकर अनन्त असीम धन हैं। लाख-करोड़ रुपये एव सोना से जो सुख भोग की सिद्धि मानी जाती है, उसमे राग-द्वेष, लड़ाई-झगडा, आसक्तियाँ लगकर सुख-शान्ति के वदले अशान्ति ही प्राप्ति होती है, इसलिये लौकिक सब धनो से विशेष सुख-शान्ति उपजाने वाले सद्गुण ही हैं और सगे कुटुम्बी साथियों से वढकर नि.स्वार्थ ये बड़े ही सगे सहायक है। माता-पिता, स्त्री आदि शरीर-रक्षा मे मदद देते हुये भी नाशवान नशा कारक विषयों में ही डालकर कष्ट देने वाले है और इन सद्गुणों की सहायता से वन्धनदाई सर्व कुसगो की आसक्ति से छूट कर जीव सदा स्वस्थ स्ववश निर्विषय विराजता है तथा विना दाम-कौड़ी के लिये ही ऐसे ये विश्वासपात्र मजदूर (सिपाही) है कि जरा भी स्वामी-जीव का वाल वाँका नही होने देते और शरीर यात्रा भर का खर्चा ये ही पूरा करते रहते है। वाहर के सिपाही आदि स्वामी के लिये प्राण देते हुये भी स्वामी को मानसिक रोगो से छुड़ा नही सकते तथा जन्म-मरण फाँसी छुड़ा नही सकते है और ये सद्गुण का रूप सिपाही तो वर्तमान मे भी खाने-पीने ठहरने जीवन निर्वाह सव रसद पहुँचाते और काम-क्रोधादि सव शत्रुओं से वचाते, अन्त मे विदेह मुक्त भी कर देते है। फिर भला इनसे वढकर कौन सिपाही होगा ॥ १४१ ॥

यहिते रच्छो नित इन्हें, जेहिते ह्वै बलवान।
विजय मिलै इन साथ लै, जो दुर्गुण मन मान ॥ १४२ ॥

टीका—याते कल्याणेच्छुक ! हमेशा इन सद्गुणो की रक्षा करो। धारणा मे लाने का निरन्तर अभ्यास करो, जिससे वे सद्गुण अत्यन्त

वलवान हो जावें । जब वे बलवान हो जावेंगे, तब इन्ही सद्गुण सैनिको को साथ लेकर तुम्हे उन दुर्गुण रूप शत्रुओ पर विजय मिल जायगी । जिन दुर्गुणो को मन ग्रहण करके सदा बेचैन है, उनको तुम इन सद्गुणो के प्रताप से चूर-धूर कर डालोगे ॥ १४२ ॥

कबहुँ न धोखा देंय ये, जो तुम भूलि न जाव ।
जब तक इनको यादि रहि, लगै न कोइक दॉव ॥ १४३ ॥

टीका—ये सद्गुण सोते-जागते, देश-विदेश, वन-गॉव, चलते-बैठते, रोगी-निरोगी यहॉ तक कि मृत्यु के समय भी तुम्हे धोखा न देंगे । सद्गुणों के सामर्थ्य से कुसस्कार व कुचाल नष्ट हो जायॅग, फिर इसी जीवन मे तुम हर हालत मे स्ववश सुख शान्ति को प्राप्त होते हुए आगामी गर्भकूप से भी बच जाओगे । किन्तु इनके साथ यही नियम है कि तुम इन्हे कभी न भूलो, सुरति से इन्हे न टालो, सदा स्मरण रक्खो । देखो ! जब तक ये सद्गुण लक्षण प्रभाव सहित अपने को स्मरण रहेगे तब तक कोई भी प्रलोभन, कोई भी विघ्न, कोई भी इन्द्रिय, बाहरी घटधारी और मानसिक उपाधियो के चक्कर में पड़ने का दॉव, लड़ाई, झगड़ा, झंझटो तथा विविध अध्यास-आसक्तियो में गिरने का अवसर न मिलेगा । इनके प्रताप से कोई भी तुम्हे रंचक दुख नही दे सकता है । भला ! ऐसा मित्र कौन होगा ? सोचिये तो सही ! निश्चय ही हमे इन्हे कभी न भूलना चाहिये । भूलना तो दूर रहा इनका निरन्तर—वारम्वार श्रवण-मनन करते हुये इन्हे छाती पेट से लगाते हुए जाप जपना चाहिये, बस मोक्ष ॥ १४३ ॥

पढ़ि गुनि अर्थ विचार करि, इन सम अन्तःकर्ण ।
प्राप्ति होय नहिं तेहि कहूँ, जग दुख मन की जर्ण ॥ १४४ ॥

टीका—सद्गुण शतक को ध्यान पूर्वक पढि गुनि के भावार्थ

विचार कर इन्ही के सम लक्षणाकार अन्तःकरण का भाव वना कर वही आचरण मे लावे वर्ते धारण करे। फिर तो कही भी जगत के सम्वन्ध सस्कार से जो मन मे प्रतिकूलता की जलन हुआ करती है सो तिसे कभी न होगी। भाव—सद्गुणवर्ती को जगत सम्वन्ध से कोई भी मानसिक खिचाव रूप प्रतिकूलता का कष्ट नही हो सकता, न कोई जगत की उपाधि में वह पड सकता है ॥१४४॥

यह धन खोवै नहिं कहूँ, चोर सकैं नहि लूटि।
बाँटि सकै नहिं याहि कोइ, जल्दी गहौ अटूटि ॥ १४५ ॥

टीका—यह सद्गुण रूप परम वित्त ऐसा है कि कभी अपनी गाँठि से छूटकर गिर नही सकता। बाहर चोर-डाकू भी इसे लूट सकते नही, कोई हिस्सेदार इसमे वटाई भी नहीं कर सकता, ऐसे निर्भय स्ववश-स्वतन्त्र रक्षक परम धन को हे जीव! शीघ्रातिशीघ्र अटूट होकर धारण करो। अटूट का मतलब सद्गुणों की अखण्ड धारावत एकरस पुरुपार्थ बनाये रहो। किसी अंग से इनमें कसर न रक्खो। अपनी सारी शक्ति, सारा पुरुपार्थ, तन-मन और प्राण इन्ही सद्गुणो की रक्षा मे निछावर कर दो ॥ १४५ ॥

दोहा—कामादिक दुर्गुण विपे, वलि बलि जात निलज्ज।
चेत करौ अव सुगुण हित, बलि बलि जावसुलज्ज ॥

प्राण पियारे सवन तुम, जो इनको अपनाय।
सवही मित्र स्वजातिया, जो तजि भूल रहाय ॥ १४६ ॥

टीका—हे सद्गुण तत्पर जीव! तुम सर्व मनुष्यो के प्राण प्रिय हो जाओगे, जो इन सद्गुणो को हृदयगम कर लोगे। जो तुम अज्ञान दृष्टि छोड़ कर इन शुद्ध आचरणो से वर्ताव करो तो सव जीव स्वजातीय के नाते से अपने मित्र ही है। चाहे कोई अनुकूल हो या प्रतिकूल, चाहे कोई वैर करता हो या प्रेम, निज-निज समझ अनुसार

जो कुछ करेंगे उसके भोक्ता वे है, परन्तु तुम्हारी दृष्टि मे तो सब ही मित्र स्वजातीय है ऐसा समझ के तुम अपने सद्गुणो द्वारा सुखी रहो ॥ १४६ ॥

अपने आपै शत्रु सब, अपने आपै मित्र।
शत्रु न अन्ते कोइ कहूँ, जो पद प्राप्ति पवित्र ॥ १४७ ॥

टीका—कुबुद्धि प्रेरक दुराचरण करके अपने आप क्रिया द्वारा आप ही दुख पाने वाले सब जीव अपने के आप ही शत्रु है और वही अपने आप जीव सुबुद्धि द्वारा अच्छे-अच्छे आचरण धारण करके शुद्ध संस्कार बनाकर वर्तमान मे और भविष्य मे सुख-शान्ति के भागी होने से और ज्ञान बोध साधन द्वारा मुक्तिपद तक प्राप्त करने के कारण आप आप ही परम मित्र है। हे जीव, देखो! तुम्हारे बाहर कही दुश्मन नही है, जो तुम परम पवित्र स्वरूप बोध सहित पूर्व सर्व शुभ गुणो को प्राप्त हो जाओ तो तुम्हारी दिव्य दृष्टि के आगे कोई भी शत्रु ही न दिखाई पडेगा ॥ १४७ ॥

सुगम मार्ग सबके लिये, मनुष्य मात्र के हेत।
पढ़ि लहि देखै आप जब, तबहीं होय सचेत ॥ १४८ ॥

टीका—इन शुभ गुणों का रास्ता सरल शुद्ध सीधा है। इन सबके धारण करने से किसी प्रकार किसीको दिक्कत न होगी। स्त्री-पुरुष, गरीब-अमीर, विरक्त-गृहस्थ, देशी विदेशी कोई भी समाज, सोसाइटी व संस्था या संघ हो तथा नीच ऊँच कोई भी इस पर चले चलावे सरबसर मुक्ति की सीधी सड़क को प्राप्त होवेगा। ध्यान से पढ के इन्हे पूरी तौर से जब आप पालन करेंगे, तो स्वय अनुभव प्रत्यक्ष हो जायगा कि सद्गुणों के सेवन मे कितना लाभ, कितना सुधार, कितना उद्धार, कितना विचार भरा है? इन सद्गुणो के बल से ही आप सचेत, जागृतरूप, सावधान हो जायँगे ॥ १४८ ॥

विनय—छन्द

दरशा दिये गुरु मग मुझे जिससे सकल दुख अन्त हो।
जल्दी चलैं निज मग तरफ नहिं देर करि भरमन्त हो॥
कब से पचैं तन स्वार्थ हित जिसका न कुछ भी अन्त हो।
अब तौ सजग रहनी रहैं गुरुदेव दे निज मन्त्र हो॥
उपकार गुरु का है अमित परखाय सब ही तन्त हो॥ १ ॥

टीका—हे सद्गुरुदेव ! पूज्य प्रभो !! आप अपना सतपन्थ दिखा दिये। चैतन्य जीव ही अविनाशी सत्य है और जहाँ तक सामने इन्द्रिय-मन, गोचर है सो सर्व जड है। तिसको अपना करके सुख मानना ही अविद्या तम है। तिस अविद्या तम को ध्वस करने वाले स्वरूपज्ञान प्रकाश स्थिति के साधक सकल पूर्व कथित शुभ गुण ही है। तिन्हे प्राप्त करने मे अटूट लगे रहना मनुष्य जीवन की सार्थकता है। जिस प्रकार से देहोपाधि जन्य सब दुख विनष्ट हो जायँ, वही सरल रास्ता आप दर्शा दिये हो। अब आपकी दयादृष्टि से हम अपने गुरुपद अर्थात निज स्थिति मार्ग पर जल्दी से जल्दी आरूढ हो कर सन्मार्गगामी बन जावे। यदि हम मार्ग जानकर भी देर करेगे, ढिलाई—आलस्य रक्खेगे, तो इधर उधर से भ्रम वायु लगकर हम भी जगतप्रपच, लोभ मोह मे अवश्य भूल जावेगे। ससार धारा मे फिर गोते लगाने लगेगे। अहो ! अनन्त काल से हम शरीर स्वार्थ के लिये अच्छे से अच्छा देखने सुनने भोगने को मिला करे बस इसी हेतु दुसह दुख उठाते रहे। जिस स्वार्थपूर्ति का, जगत धन्धाओं का और जगत विषयो का आज तक वारापार न मिला, न मिलेगा। भूल वश रहटमाला न्याय वही वही आपदाये भोगनी पड़ती, किन्तु आज तक इससे पृथक न हो सके। अब हम इन दुखो से पार पाने के लिये बडी सजगता रख के जो कि आप सद्गुरुदेव मन्त्र उपदेश दिये है उसे अब अवश्य धारण कर लेवेगे। हे गुरुदेव ! यह आपका उपकार

दया दान इस दास के प्रति अनन्त है। इस दया की हम तुलना कर ही कैसे सकेंगे ? हाँ ! आपका हम सदा गुणानुवाद गावेंगे। आपही तो सब आशा-तृष्णा तन्तु—रस्सी सर्व वासना बन्धन को मिथ्या परीक्षा करा दिये हो, जिससे अब हमारी उधर से दृष्टि हटकर अपने सत्य स्वरूप द्रष्टा मे निराधार हो गई है और मै आपकी दया से स्थित हुआ, धन्य ! धन्य !! संकटमोचन बन्दीछोर ! बन्दीछोर !!

प्रार्थना

हे इष्टदेव तव त्याग मूर्ति का मेरे उर मे ध्यान रहे।
वह बोध शोध वह मन निरोध का मेरे उर मे भान रहे ॥टेक॥
जो कुछ करते धरते हो लेते देते दिखते हो।
वह सब जन के हेतु हितैषी हितकर तेरा ज्ञान रहे ॥ १ ॥
निर्बिकार निरधार तमो हे शुद्ध शान्त अबिनाशी हे।
हे अदोष हे सत्य तृप्त नित हे परख रूप परमान रहे ॥ २ ॥
हे उपराम अकाम अमद नित आप आप मे स्थित हे।
आप की इच्छा ही अब क्या है आप निरीक्षा थान रहे ॥ ॥
आपके पदरज को हम नित ही मस्तक ऊपर धारण कर।
सेवक का सौभाग्य सेव से प्रेम क यह ही माँग रहे ॥ ४ ॥
गुरु पारख हे सन्त मूर्ति हे शरणागत के पालक हे।
इधर उधर से बृत्ति हटा बस आपके गुण का बान रहे ॥ ५ ॥

शिष्य कृतज्ञता—चौपाई

सद्गुरु देव दया बहु कीन्ह्यो। निज जन जानि शरण मे लीन्ह्यो ॥
तुम सब जाननहार सुदेवा। परखरूप करु संत कि सेवा ॥
भक्तिज्ञान वैराग दृढायो। बिषय लहर से जीव बचायो ॥
दिन दिन बाढै चरण को नेहा। तोड़ि भरम गढ अबिचल गेहा ॥
कोइ नहि साथी और सहारा। मोह भँवर मनसिज घरियारा ॥
बिषय बास दुर्गन्ध कि धारा। तुमही एक बचावनहारा ॥

चक्रव्यूह बहुवाद उच्छेदे । पारख मग आदर्श अखेदे ॥
तेइ गुरु सन्त कबीर स्वत:पद । क्लेश रहित जिव पाय बिगतमद ॥
सो सब युक्ति सरल आदर्शम । प्रेम नमो कहि धन्य प्रदर्शग ॥
संतन को यह सहज स्वभाऊ । निर्णय बोध परख परखाऊ ॥
अस भवयान व मुक्ति को द्वारा । बीजक भाव स्पष्ट पुकारा ॥
सत लोक मे सत विशाला । गुरु बिशाल दै बोध विशाला ॥
यद्यपि संत जगत बहुतेरे । पतित अनेक तरत तेहि बेरे ॥
ते सब इष्ट दुराव न आनौ । बोध रहनि गुरु सम जेहि जानौ ॥
तदपि जौन नाविक जेहि तारे । रुकत न हृदय सहज तेहि धारे ॥
निश्चय जाको जेहिते काजा । प्रगटि हुलास धन्य शिरताजा ॥
जो निज खाल खैंचि गुरु पनही । तदपि उरिण नहि अस मन गुनही
सत सेव आदिक शुभ नीती । सबको फल मागौ गुरु प्रीती ॥

दोहा—गुरु महिमा है सूर्य सम, वाक्य मोर है दीप ।
मनोदमन करु स्वार्थ यहि, गाऊँ कछुक समीप ॥
पढ़िगुनि अधिक समोद युत, पइहै जन बिश्राम ।
चखत मिष्ठ फल मिष्ठ लहि, सर्वोपर निज ठाम ॥

॥ सद्ग्रन्थ मुक्तिद्वार सटीक प्रथय पाठ सद्गुणशतक समाप्त ॥

फल-छन्द

नित दुर्गुणो के बीच मे
जो हम अनादी काल से।
पाया अनन्तो कष्ट हा!
पुनि पुनि गॅसे विष ब्याल से॥
यह देखि जन की अवदशा
द्रवि दीन वन्धु दयाल से।
सद्गुण शतक निज मन्त्र दै
हर द्वन्द दुख निज हाल से॥

चौपाई

सद्गुण शतक नित्य जो गावै।
सद्गुण सुमति सहायक पावै॥
मुक्त दशा निर्विघ्न रहावै।
जीवन जन्म सफल करि लावै॥

हेतु-छन्द

गुण धर्म युत सद्भाव जेहि
आभाव वे होते नहीं।
चैतन्य जड दोउ भिन्न धर्मी
ना कभी खोते कहीं॥
लख लो अनादि प्रवाह जग
फिर क्यों कहे उतपति सही।
बिन गुरु यथारथ बोध के
यह जीव भटकै जहँ तहीं॥

साखी

संशय भ्रम छेदन करन,
सत्य सुबोध दृढाय।
जगत अनादी शतक यह,
पढे गुने दुख जाय॥

सद्गुरवे नम

मुक्तिद्वार

द्वितीय पाठ

जगत अनादि शतक

[सूर्यादि से जगत उत्पति की वार्ता लिखी व बिना लिखी अयुक्त असम्भव कल्पना मात्र इस शतक मे दर्शाया गया है।]

मङ्गलाचरण– साखी

भर्म नशावन इष्ट मम, धर्माचरण कबीर ।
चैतन्य पद परकाश करि, टारि देह की भीर ॥ १ ॥

टीका–छन्द "इन्द्रियो के भोग जड मे सुख समझना भर्म है। उल्टी समझभी है यही यह ही अविद्या पर्म है ॥ सो भूल दलिमलिधर्म धारी श्री कबीर यथेष्ट हो। चैतन्य सद् सिद्धात कहि इह देह भार हरेष्ट हो ॥" यथार्थ ज्ञान देकर भर्म नाश करने वाले पुन अक्रोध, वैराग्य-इन्द्रिय, जित, दया,क्षमा,वाक्य सयम, अलोभ, मनोद्वेगो को शान्त करना, सदाचरणयुक्त निर्वाह और यथार्थ स्वरूप स्थिति-नीति ही का ग्रहन करना ये सब धर्म के मार्ग है। इन्हें धारणकर तरण-तारण रूप काया के सम्पूर्ण दुर्गुणों को जीत कर स्ववश-स्वतत्र रहने वाले ऐसे हमारे इष्ट पूज्य साधु-गुरु रूप कबीर देव है। जिन सद्गुरु कबीर साहेब ने सर्व गोचर जड़ पिण्ड-ब्रह्माण्ड के सुखावरण

से अपने आपको पृथक करके स श्रेष्ठ गम्भीर चैतन्य पारख रूप अपने आप मे तो अचलरूप से स्थिर हो ही गये, साथ ही आपने अवोध जीवो के उद्धार हेतु चैतन्य वोधक सत्य शव्द कहकर पारख सिद्धान्त का जगत मे प्रचार कर दिये। जिस पद का परिचय देकर जन्म-मरण-गर्भवास, दुख-सुख, हानि-लाभ मिलन-विछोह, शोक-मोह कम-ज्यादा, विक्षेप, प्रतिकूल-अनुकूल तीन ताप यहाँ तक कि सर्व स्मरण मनोद्भव-जलन शुद्ध स्वरूप मे नही है। ऐसे दृढ वोध पर शुद्ध रहस्य युक्त कायम कराके आप देहोपाधि की भीर-भार नष्ट कर दिये ॥१ ॥

चौपाई

चारो ओर लगी दुख भीरा। देखि दुसह दुख द्रवित कवीरा ॥
जो कवीर निज पारख चीन्हे। द्रवि दयाल सो पारख दीन्हे ॥
सोई सन्त निर्णय करि अजहूँ। कहत सुनत ठहरत सुख सवहूँ ॥

गति मति ध्येय को ध्यान करि, जस कछु दीन्हा दृष्टि।
निर्णय लखौं यथार्थ की, काटि कल्पना वृष्टि॥ २ ॥

टीका—आप सद्गुरुदेव की गति—सत्साधन संयम स्थिति रूप पुरुपार्थ, मति कहिये अज्ञान भूल रहित एकरस यथार्थ वुद्धि तथा ध्येय—दृढ पारख सिद्धातका निश्चय इन तीन रहस्योका ध्यान—एक चित्त से स्मरण करता हूँ। जैसा कुछ आप सद्-वुद्धि प्रदान किये है, उसी वल से आपका त्रिविध प्रकार से ध्यान करते हुये आपके ठीक-ठीक जगत अनादि निर्णय को देखूँ—समझूँ और उसी निर्णय प्रवन्ध को कहते, सुनते, विचार करते हुये भौतिकवाद सम्वन्धी सम्पूर्ण अनुमान कल्पना और विपयासक्ति तथा कर्त्तादि विश्व उत्पति प्रलय की सारी झूठी कल्पनाओ की जो चौतरफ से झडी लग रही है, उस भ्रान्ति समूहो को काटि छाँटि के निर्भ्रान्त सत्य स्वरूप मे स्थित रहूँ, यही आप वन्दिमोचन से विनय है ॥ २ ॥

प्रार्थना

हरु हरु दीनता मम सन्त ॥ टेक ॥
बिबिधि बानो चलत आँधी जहाँ तहाँ भटकन्त ॥ १ ॥
साँच शब्द सुनाय गुरुवर, कीजिये भ्रम अन्त ॥ २ ॥
रहनि एकौ नाहि प्रभु जी, दीजिये निज मन्त ॥ ३ ॥
देखि चारो ओर ज्वाला, भागि तव पद जन्त ॥ ४ ॥
कीजिये ठहराव प्रेमहि, बार बार नमन्त ॥ ५ ॥

[प्रसग १—सूर्य या उत्ताप अथवा किसी भी एक द्रव्य शक्ति से जगत उत्पत्ति कहना अयुक्त प्रतिपादन]

सूरज से धरणी कहै, अन्धकार से भान ।
कहत असम्भव का लगै, बूड़ा शून्य जहान ॥ ३ ॥

टीका—कितने सूरज से पृथ्वी की उत्पत्ति कहते है, ऐसी अनहोनी बात को सुनकर दूसरा कहता है कि हमारे मत से तो सूर्य की उत्पत्ति अन्धकार से हो गई है, जब तेज—उत्तापमय सूर्य से निस्तेज पृथ्वी होना सच है तो अवश्य अन्धकार से सूर्य होना भी सच है । फिर तीसरा कहता है कि हमारी बात भी सुन कर आप लोगों को असम्भव न लगना चाहिये, वह यह बात है कि जहाँ पानी न कीचड़ यहाँ तक कोई अन्य वस्तुही नही, ऐसेशून्य स्थलमे सम्पूर्णप्राणी डूब गये । यदि ये दोनों बाते झूठ कहो तो सूर्य से पृथ्वी की उत्पत्ति भी तीनो काल मे अप्रत्यक्ष होने से अयुक्त है । यदि अन्धकार से सूर्य की उत्पत्ति और शून्य मे जगत का डूबना सच मानो तो अन्धकार से सूर्य होना कहाँ किसे प्रत्यक्ष है ? तथा शून्य मे डूबना कैसा ? जैसे ये बाते तीनो काल मे अघटित होने से मिथ्या है । तैसे सूर्य प्रबल उत्ताप से पृथ्वी की उत्पत्ति कहना भी झूठा ही है । झूठी बात को विना विवेक किये मनुष्य मान लेते है ॥ ३ ॥

अप्रकाश छिति परकाश ते, उतपति भई न खोज ।
तड़पत सिहहि चूहा भख्यो, भरा उदर बिन भोज ॥ ४ ॥

टीका—पृथ्वी प्रकाशहीन है, यहाँ तक कि महा घोर अन्धकार होने पर सूझती भी नही । ऐसी तेजहीन पृथ्वी प्रकार रूप तेजोमय सूर्य से टूट पडी, यह कितना उल्टा कथन है ? सोचिये तो सही ! जिसमे जिसका खोजने तलाश करने पर भी पता न चले ऐसा प्रवल उत्तापमय रवि मे से पृथ्वी की उत्पत्ति कहना ऐसा ही अयुक्त तथा भ्रम है जैसे कोई कहै कि गर्जते हुये सिह को एक चूहा ने पकड़ कर खा लिया और किसी चीज के खाये पिये अहार किये बिना ही हमारा पेट भर जाता है तद्वत ॥४ ॥

लोह दण्ड चूहे खा गये

दृष्टात—एक पण्डित और सोनारमें मित्रता थी । एक वार पडित जी तीर्थयात्रा जाने लगे । तब अपना एक हजार सुवर्णमुद्रा एक पोल-दार लोहे की छडी मे भर के ऊपर लोहे की डाटसे भली प्रकार वन्द कर उस लोहे की छड़ी को अपने परम मित्र सोनार के यहाँ ले गये और बोले कि हे मित्र ! इसको रख छोड़ना, तीर्थयात्रासे लौटकर इसे मैं ले लूँगा । सोनार ने कहा पण्डित चाचा ! घर आप ही का है, चलकर चाहे जहाँ अपने हाथ से सुरक्षित जगह मे धर दीजिये और चाहे जव आकर उसे ले लीजिये । पडित जी जाकर सवसे भीतरी कोठरी के एक कोने मे उसे धर दिया और आप तीर्थ यात्रा चले गये । इधर मित्र सोनार के मन मे आया कि देखे पड़ित जी कैसी छडी धर गये है ? जा कर जव उसे उठाया तव वह वहुत वजनदार मालूम हुई । उसने सोच लिया कि इसमे हो न हो द्रव्य ही भरा है "लोभ मूलानि पापानि" लोभ ही पाप की जड़ है, सो ठीक ही है । परद्रव्य हरना पाप है तिसमे भी विश्वास देकर हरना यह महा पाप है । इस वात को भुलाकर सोनार उस लोह छड़ी की डाट युक्ति से

खोल के सुवर्ण मुद्रा निकालकर सन्दूक मे धर लिया और उस लोह छडी को भूसा मे गाड दिया, पहिले की जगह में मूसों की बिष्ठा तमाम इधर-उधर छिटका दिया। कुछ दिन बाद पंडित जी आये, और लोह छडी की याचना करने पर तुरन्त मित्र सोनार ने कहा— पण्डित चाचा ! घर में जाकर निर्भेद लोह दण्ड को उठा लाइये। पण्डित जी उस भीतरी कोठरी मे गये तो देखा कि वहाँ लोह दण्ड तो है ही नही। उस जगह में चूहे के मल की अधिकता है। पण्डित जी ने चकित होते हुये बाहर निकल कर सोनार से कहा—मित्र ! वहाँ तो लोह दण्ड है ही नहीं। सोनारने कहा—देखिये पंडित चाचा ! जबसे आप उसे धरकर चले गये तबसे तो यह कोठरी बन्द कर दी गई थी और कोई यहाँ नही आ सकता था। यहाँ मूष मल की अधिकता आँखों के सामने है। अतः अनुमान होता है कि बहुत से मूस मिलकर आपके भर्तू—ठोस लोह दण्ड को खा गये होंगे। पण्डित जी बोले— मूपक लोह दण्ड को खा ही नही सकते। सोनार ने कहा—सम्भव है जगली चूहे आ गये हों, वे खा लिये हों, असम्भव नही। पण्डित जी असमय जानकर एकदम चुपचाप रहकर बाद में बोले—होगा, ऐसा ही होगा कोई हर्ज नही, जो हुआ सो हुआ। ऐसा कहकर अपने घर को चले गये। कुछ दिन बाद सोच विचारकर पण्डितजी ने एक दिन सबेरे ही सोनार मित्र से कहा—हमारे छोटे पुत्र का दूर देश से विवाह होना निश्चत हुआ है, उसका साथी (शहबाला) कोई नही, सो आप अपने पुत्र को कृपया मेरे साथ भेज दीजिये। सोनार मित्र ने कहा—वाह ! यह तो आपका ही पुत्र है। इसमे कोई सकोच नही। ऐसा कहके पुत्र को सज-धज से पण्डित के साथ भेज दिया। पण्डित जी अपने पुत्र के साथ उसे भी ले लिया। कही दूर ले जाकर सोनार के लड़के को भोजन-पानी धर के एक प्रकाश-दार कोठरी मे बन्द कर दिया औ एक वन्दर के वच्चे को पकड़ के

उसे इस प्रकार सिखा दिया कि जब कोई कहे "भइया तुमका का होइगा ?" इतना सुनते ही वह बन्दर बच्चा मस्तक पर हाथ ठोकने लगे, मानो सूचना दे रहा है कि "जैसा करम—लिलार मे लिखा था वैसा हो गया अब क्या करूँ ? " बन्दर बच्चा को मस्तक पर हाथ धरना सिखा के बन्दर बच्चा तथा अपने पुत्र को साथ लेते हुये पण्डित जी अपने ग्राम को लौट आये। द्वार पर आते ही मित्र सोनार अपने पुत्र को न देखकर बोल उठा, पण्डित जी! मेरा पुत्र कहाँ है ? पण्डित जी उदास होते हुये इस प्रकार बोले—अरे मित्र! कुछ कहा नही जाता सब जन साथ ही साथ जा रहे थे। एक बडे जोर से बोंडर आया उसमे आपका पुत्र पड़ गया। बौंडर निकल जाने के पश्चात देखा तो आपका पुत्र बन्दर बच्चा बन गया। पुनः बहुतेरा वायुदेव की विनती की परन्तु सुनवाई एक न हुई, अब क्या हो ? इसी बच्चे से पूछ देखिये! सोनार घबराकर बच्चे की तरफ देख कर कहा—भइया! तुमका का होइगा ? तुरन्त बन्दर बच्चा कपाल पर हाथ धर के हाँ! मानो सूचना दिया कि "जो लिलार मे लिखा था सो हो गया, होनी हो के रहती है।" सोनार राने लगा, रोते हुये पण्डित जी से बोला—ब्रह्मदेव! कोई उपाय है कि बन्दर बच्चा फिर हमारा पुत्र बन जाय ? उसने कहा—हाँ! जो चूहे लोह दण्ड उगिल दे तो तुम्हारा पुत्र भी शीघ्र बन्दर से मनुष्य हो सकता है। सोनार ने कहा—मूषक लोह दण्ड अवश्य दे देगे, मैं जा रहा हूँ। शीघ्रता से सोनार ने लोह दण्ड मे सुवर्ण मुद्रा भर के उसी प्रकार उसे बन्दकर पण्डित जी को समर्पित कर दिया और कहा कि मूसको से बड़ी विनय करने पर ये आपका लोहदण्ड मिला। पण्डित जी भी शीघ्र जाकर उस बन्द कोठरी से लड़के को निकाल कर सोनार मित्रको दे दिया और बोले कि बड़ी विनय वानी से वायुदेव इसे बन्दर से मनुष्य बनाया। दोनो मन ही मन चालाकी दुख समझकर फिर छल—

चालाकी करना छोड दिये। इस प्रकार चूहे न तो लोह दण्ड खा सकते, न वायु मनुष्य को बन्दर बना सकता, न स्वयं बन्दर मनुष्य बन सकते। परन्तु ऐसा जानते हुये लोभ के वश वे असम्भव प्रपंच रचे। तैसे अत्यन्त तेजोमय सूर्यसे निस्तेज पृथ्वी कभी नही हो सकती। यदि सूर्य का टुकडा पृथ्वी होती तो यह भी तेजोमय होती। जैसे बडे गुड़के फोकवा–पारीमे बहुत मिठाई है तो उसके छोटे छोटे टुकड़ो मे थोड़ी मिठाई रहती अवश्य है, तद्वत सूर्य का टुकड़ा पृथ्वी और बन्दर की पूँछ झड़के मनुष्य का विकास होना उतना ही झूठा है जैसे उपरोक्त दृष्टात झूठा है।

नहिं कारज विपरितता, कारण के गुण कर्म।
तब कैसे विपरीति भे, तीनि तत्त्व के धर्म॥ ५॥

टीका—जब अपने-अपने कारण तत्त्वों के गुण (पच विषय) और क्रियाओ से अपने-अपने कार्य विपरीत नही होते तो एक अग्नि तत्त्व या विद्युत शक्ति से बिलकुल उल्टे धर्म वाले जल पृथ्वी वायु तत्त्व कैसे हो गये?॥ ५॥

स्पष्ट—जैसे कारण तत्त्व पच विषय युक्त क्रियाशीलहै तैसे उनके कार्य भी बनते-बिगडते हुये पंच विषय शीत, उष्ण, कठिन, कोमल युक्त क्रियाशील देखे जाते है। इससे अनुभव हुआ कि कारण के गुण ही कार्य मे होते है। अग्नि के कार्य अगार, दीप, गैस, मसाल आदि अग्नि के गुण धर्म से अलग नही, एव जलके कार्य–बर्फ, बुद-बुदा, ओस जल से निरा विपरीत नही। अब विचारिये! जब अपने-अपने कारणो से कर्यो मे उल्टे गुण-धर्म नही होते, तव फिर एक तत्व से अन्य विरोधी गुण धर्म वाले तीन तत्व की उत्पति कहना चीटी के गर्भ से हाथी की उत्पत्ति न्याय सर्वथा असम्भव है। जिसमे जो गुण धर्म नही है अगर उससे वह चीज हो जावे तो शून्य से भी विविध वस्तु बननी चाहिये। यदि शून्य से कोई चीज प्रत्यक्ष नही

वनती, तो इसी प्रकार सूर्य से विरोधी धर्म वाले पृथ्वी जलादि की सृष्टि कदापि नही हो सकती।

कारण अन्य समूह नहिं, कारण एक लपेटि।
जिनहिं विरोधी धर्म गुण, ते क्रम जायँ समेटि ॥ ६ ॥

टीका—समूह रूप विस्तार से फैले हुये समुद्र पृथ्वी आदि बृहद कारणो को अपने मे एक कारण सूर्य या कोई भी कारण तत्व समेट कर रख नही सकता। जब अपने ही वृहद आकार को छोटे रूप में नही कर सकता तो विरोधी गुण-धर्म वाले अन्य विस्तार से फैले हुये तत्वो को अपने मे रखते कैसे वनेगा? एक तत्व से दूसरे तत्व विरोधी गुण धर्म वाले है। जैसे जल ठण्डा तो अग्नि गर्म, एवं विरोधी गुण धर्म वाले सम्पूर्ण तत्व एकरूप मे सिमिट के रह ही कैसे सकते है? प्रत्यक्ष ही देख लो! सूर्य मण्डल अलग, समुद्र अलग, पृथ्वी और वायु अलग-अलग है। यद्यपि न्यून अन्श से एक दूसरे मे मिश्रित है फिर भी विशेप-विशेप अन्श पृथ्वी आदि तत्व कारणरूप से तो वे प्रत्यक्ष अलग ही अलग तीन काल में सवको अनुभव हो रहे है, फिर कैसे कहा जा सकता है कि सूर्य या अन्य किसी एक मूल प्रकृति शक्ति मे सव ससार विराट-लीन था? क्योंकि ॥ ६ ॥

एक न दूसर तत्त्व को, तिन शक्ती को दाबि।
कारज तिनके जो रहे, तिनहिं लेय भल चाबि ॥ ७ ॥

टीका—एक तत्व की शक्ति दूसरे तत्वो की शक्ति को कदापि निरा लोप नही कर सकती। देखो! सूर्य अपनी जगह से किरणयुक्त प्रकाशवान है, समुद्र अपनी जगह से तरंगवान है, पृथ्वी अपनी जगह में ठोसयुक्त है,तैसे ही वायु अपनी जगह में वेगसंयुक्त है इनमे मजाल नही कि कोई भी एक तत्व दूसरे तत्वके गुण-धर्म को शून्य कर सके। यदि ऐसा होता तो आज तक एक ही तत्त्व की शक्ति रहती, दूसरे

सब तत्व लोप ही हो जाते। अपनी-अपनी जगह सब तत्व गुण धर्मो से शक्तिमान सबको प्रत्यक्ष हो रहे है। इसके साथ यह भी अनुभव है कि कार्य की न्यून शक्ति को विशेष शक्ति ग्रास लेती है तिस पर भी बिल्कुल लोप नही कर सकती। अत्यंत धूप मे उष्ण प्रधान रहता ठण्ढी दबी रहती, फिर भी गर्मीकि समय सूक्ष्म ठण्ढी और वर्षा बनी ही रहती। एवं जब न्यून कार्य ही को विशेष अत्यत लोप नही कर सकते तो विस्तार रूप कारण तत्त्व की शक्ति को लोप करना बने ही कैसे ? ॥ ७ ॥

बिन प्रत्यक्ष यहि बात को, कहै जो पकड़े बैठ।
तेहि निश्चय कैसे भई, जन्म अभोजी ऐंठ ॥८॥

टीका—बिना प्रत्यक्ष अनुभव किये ही इस बात का कोई हठ करे कि एक तत्त्व अन्य तत्त्वो को अपने मे सम्पूर्ण रूप से अवश्य पकडे बैठा है, तो पूछा जाता है कि इस बात को वर्तमान मे अनुभव किये बिना किस प्रमाण से तुम निश्चय कर लिये ? तीनो काल मे तो सब तत्व कारण समूह रूप गुण धर्म युक्त-न्यारे न्यारे ही सबको अनुभव हो रहे है, फिर बिना प्रत्यक्ष के तुम्हारा यह कहना ऐसे ही झूठा है जैसे कोई कहे कि अमुक मनुष्य जिस दिनसे उत्पन्न हुआ उसी दिनसे दूध,अन्न,फलादि कोई भी पदार्थ का आहार नही किया, फिर भी अपने बलवान शत्रु से क्रोध करके उसको पछाड रहा है। तो सोचिये! यह बात कहाँ तक सच हो सकती है ? प्रथम तो कभी कुछ आहार किये बिना शरीर ही रहना सच नही। दूसरे जन्म अभोजी मनुष्य ने अपने बलवान शत्रु को क्रोध पूर्वक मारा, यह तो और भी अघटित है। तैसे ही कारण समूह रूप सर्वांग सब तत्व एक तत्व में रहना अघटित है। दूसरे तिसकी शक्ति सामर्थ्य को मिटाना यह तो सर्वथा असम्भव ही है ॥ ८ ॥

जो पृथ्वी तिसमें रही, जल वायू संघात।
तब अगिनी से क्या प्रगट, कल्पित जीवहिं भात॥ ९॥

टीका—जो तिस एक सूर्य या एक किसी भी शक्ति मे सर्वाग पृथ्वी रही तथा जल वायु भी सब तत्व सम्पूर्ण रूप से तिसमे लीन रहे। यदि ऐसा हठ ही करो तब फिर बताओ अग्नि से क्या उत्पन्न हुआ? जिस पृथ्वी आदि की उत्पत्ति सूर्य से कहते हो। सगा भाई परस्पर एक का पिता नही हो सकता। तद्वत सूर्य में पृथ्वी मानने से सूर्य से पृथ्वी की उत्पत्ति होना ही असम्भव है। यदि उत्पत्ति मानो तो सूर्य मे सब तत्व लीन रहे यह बात झूठी हो जायगी। यद्यपि इस पूर्वापर विरोध से स्पष्ट होता है कि यह सम्पूर्ण जगत भिन्न-भिन्न अनादि ही है तथापि इस जीव को पंच विषय के नशे मे भ्रम वश मिथ्या कल्पना के लड्डू ही अच्छे लगते है। कहा भी है—चौपाई—
"कपट बनौरी बहु विधि किन्हा। अरुझि अरुझि जिव मिथ्या दीन्हा॥
कपट स्वाँग विद्या बहु भाँती। दिन दिन सशय सोग उत्पाती"॥प०८॥

सबहिं रहे स्वतंत्र जो, प्रगट न एक से एक।
तब उत्पति किसकी भई, वृथा भरम की टेक॥१०॥

टीका— उपरोक्त कथन से जब सब तत्व एक दूसरे से भिन्न धर्मी अनादि स्वतंत्र रहे और वे सब एक-एक से उत्पन्न नही हुये तो फिर उत्पत्ति किसकी कहते हो? क्योकि उत्पन्न वाली चीजें उत्पन्न के पहिले जब नही होती तब तो उत्पत्ति कहना बन सकता है और जब सनातन से ऐसे ही सब तत्व-स्वतत्र है तो प्रगट होने की कल्पना ही व्यर्थ है। बिना विचार मनुष्य कार्य वस्तुओं की उत्पत्ति देखकर भ्रम वश कारण की भी उत्पत्ति अनुमान करके उसी का मजबूत पक्ष ले रहे है सो सब अयुक्त परिश्रम मात्र है, क्योकि— कारण क कारण न कर्ता क कर्ता। नहीं हो सकेगा त्रिकालो मे भर्ता"॥ १०॥

मानव रहा स्वतंत्र जो, सब तत्वन को भेद।
प्रत्यक्ष छोड़ि तब किमि करै, विविधि भरम के खेद ॥११॥

टीका—भेद कहिये पृथक-पृथक सब तत्व अपने-अपने गुण-धर्म युक्त स्वतत्र है। यह निर्णय यदि मानने— निश्चय मे आ गया और देह व्यवहार मे भी पृथक-पृथक ठण्ढी, गर्मी, वायु, पृथ्वी सब तत्वो की बराबर आवश्यकता लगने से बर्ताव द्वारा सब तत्वो को स्वतत्र मानने का परिचय मिल रहा है। तब फिर वर्तमान मे जैसे सब तत्व स्वतत्र रूप पृथक-पृथक उत्पत्ति रहित देखे जा रहे है तैसे तीनों काल मे अनादि से मानने मे क्या आक्षेप ? आक्षेप नही बल्कि नि.सदेह जगत प्रत्यक्ष अनादि ही है फिर वतमानिक यथार्थ प्रत्यक्ष को छोड़कर कल्पित कर्त्ता कारण की अनेक कल्पनाओ की चिता से क्यो दुखी होवे ? ॥ ११ ॥

छन्द—"सब ने अनादि है कहा इस जग्त मूला धार को।
कोई तत्व जड कोई ईश कोई ब्रह्म बीचि बिचार को ॥
कोई खुदा कोई शक्ति कोई सूर्य मे सर्वाधार को।
एक मूल सो कि बने जो बिबिधि गुण ससार को ॥१॥
चैतन्य जड दोउ छोड़कर कर्तादि शक्ति है कहाँ ?
सर्व शक्ति के रहत मे पाप नाना हो रहा ॥
जीव होते है नये तो नित्य क्यो खण्डित हुये।
एक से नाना हुआ तो कार्य कारण जड हुये ॥२॥
हेतु क्या उत्पत्ति का जब गुण गुणी सब नित्य है।
चैतन्य जड़ दोउ भिन्न धर्मी सो. अनादि प्रत्यक्ष है ॥
चव तत्व ही कारण लखो कर्त्ता ये जीव अनन्त है।
इनके परे अनुमान क्यो भ्रम बारि डूबि मरन्त है ॥३॥

कारज तेज में टुकड़ा बनै, सो तौ सबहिं देखात।
सूरज में देखा कवन, जेहिसे जानी बात ॥ १२ ॥

टीका— दीप अगार आदि कार्य रूप अग्नि मे टुकड़े होना, बुझ जाना यह सब व्यवस्था सबको प्रगट आँखो के सामने है। परन्तु नित्य कारण रूप सूर्य से टुकडा होते किसने कब देखा है कि जिस गवाही को लेकर तुम सूर्य का टुकड़ा होना या बुझना निश्चय कर बैठे ? क्योकि अनादि काल से आज तक सूर्य का डुकडा होते तो किसी ने नही देखा ॥ १२ ॥

उपमा औ उपमेय विन, सनमुख लाये कोय।
उपमै उपमा जो कहै, झूंठै तौलत सोय ॥ १३ ॥

टीका—उपमा का अर्थ सिद्धात की सिद्धि के लिये दिया हुआ दृष्टात अथवा मिसाल जानो, उपमेय का अर्थ पदार्थ, कि जिसके सिद्धि अर्थ उपमा दी जाती है सो जो सबूत पर सबूत देते रहते हैं और जिसके लिये दृष्टात—सबूत पेश करते है उसको सामने नही करते तो विना सिद्धात सामने किये मात्र गवाहियो की झड़ी लगाने से वे दृष्टातें–मिसालें वैसे ही झूठी और त्याज्य हो जाती है, जैसे बिना वादी प्रतिवादी के गवाही तथा बिना रकम अन्नादि वस्तु के केवल बाँट धर-धर तराजू हलाते रहना। देखो ! यदि तराजूमे बाँट ही बाँट रक्खा हो अन्नादि रकम का पता न हो तो तौलने वाला क्या लेगा ? साथ ही तौल देने वाला चालाक झूठा कहा जायगा, तैसे अगारवत सूर्य बुझना कहाँ दृश्य है। अत तुम्हारी सब उपमा झूठी है ॥ १३ ॥

केहि कारण टुकड़ा भये, सूरज से गिरि जात।
जल बायू स्पर्श बिन, कैसे सोई बुझात ॥ १४ ॥

टीका—सूरज के टुकडा होकर गिरने मे क्या हेतु है ? तुम्हारे कहने से ही पूर्व मे जल वायु तो थे ही नही, फिर जल वायु के स्पर्श विना वह उत्ताप कैसे बुझ गया ? वर्तमान मे सबको अनुभव

है कि बरसात या ठण्ढी समय में अग्नि जल्दी उत्तेजित नही होती और बुझ जल्दी जाती है। गर्मी समय में अग्नि बहुत जल्दी उत्तेजित हो जाती है, और देर से बुझती है। इससे सिद्ध हुआ कि कोई भी वस्तु अन्य का सम्बन्ध लिये बिना कम-विशेष या रूपान्तर नही हो सकती। अब बताओ ! जल-वायु के बिना सूर्य की अग्नि कैसे निर्बल होकर टूट के फिर बुझ गई ? अव आगे विचार करो ॥ १४ ॥

लक्कड़ कण्डे कोयला, और जो कारज माहिं।
मिलत अनल अंगार ह्वै, टूटत गिरत बुझाहिं ॥१५॥

टीका—प्रथम पृथ्वी तत्व के कार्य लक्कड़, कण्डा, कोयला आदि पदार्थ देखो ! कितने कठोरमय होते है ? पुनः उनमें अग्नि लगा देने से वे कार्य अग्निमय दीखते हैं, अग्नि स्वभाव से लक्कड़ में के जल वायु के परमाणुओं को उड़ा देती, इस हेतु वे लक्कड़, कण्डा, कोयला निर्बल होकर टूटते-गिरते धीरे-धीरे स्वयं अग्नि भी निकल कर वे अंगार बुझ जाते है ॥ १५ ॥

कारज में अंगार ह्वै, राख परत तहँ देखि।
तेहिं भीतर अगिनी रहै, क्रमशः कारण तेखि ॥ १६ ॥

टीका—पूर्वोक्त कार्य रूप लक्कड़-कण्डे आदि पदार्थो में ही अग्नि लगने से वे अंगार रूप हो जाते, पुनः वही अंगार धीरे-धीरे खाक होकर तिसके ऊपर- ऊपर राख होती जाती और भीतर अग्नि बनी रहती, ऐसा प्रत्यक्ष देखते हैं। धीरे-धीरे जल वायु द्वारा शेष अग्नि भी निकलती हुई पुनः अपने तेजोमय कारण में लीन हो जाती है और पृथ्वी का भाग राख शेष रह जाती। इसी प्रकार सूर्य में किसने प्रत्यक्ष अनुभव किया है ? पुनः ॥ १६ ॥

विन पृथ्वी के राख कहँ, समुझि विचारौ वाहि।
अनलै अनल समूह जो, ये सब बनै न ताहि ॥ १७ ॥

टीका—पृथ्वी तत्व बिल्कुल न हो और राख बन जाय ऐसा कहाँ प्रत्यक्ष है ? इस बात को ठहर के समझो-विचारो, देखो ! यदि अग्नि ही अग्नि हो, अग्नि से पृथक पृथ्वी आदि दूसरे तत्व न हों तो राख या अन्य कार्य रूप वस्तुये बन ही नही सकती। जब सृष्टि विकास के आरम्भ मे सूर्य ही सूर्य या उत्ताप ही उत्ताप था अन्य तत्वो का नामोनिशान न था तो अङ्गार होने, पुन. बुझने का दृष्टात सूर्य मे लागू कभी हो ही नही सकता ? क्योकि उत्ताप—गर्मी पदाथ के साधक-बाधक अन्य तत्व तो थे ही नही ॥ १७ ॥

दृष्टान्त सबहिं जो जस बनै, देखत सबही आज।
घटना जहाँ घटावते, तहाँ न वैसहि काज ॥ १८ ॥

टीका—जितने दृष्टान्त जगत उत्पत्ति के लिये दिये जाते है वे सब चारो तत्त्व युक्त ससार के मध्य मे सब चेतन प्राणियो को वर्तमान मे प्रत्यक्ष हो रहे हैं। परन्तु जहाँ पर दृष्टात लागू करके समझाते है, वहाँ वैसा होते दिखाई नही देता, इससे वह दृष्टात घटने के बदले अघटित ही रह जाता है। क्योकि अङ्गार आदि का बुझना, ककड़ पत्थरो का बनना-बिगडना जल,थल, बीज, वृक्ष का इधर उधर प्रवाह रहना आदि तो प्रत्यक्ष है; परन्तु सूर्य का बुझना और पृथ्वी, जल, वायु तथा मनुष्यादि सृष्टि को अनादि सृष्टि क्रम विरुद्ध विकास होना ये सब बाते कहाँ प्रत्यक्ष है ?॥ १८ ॥

सूरज से उतपति विषम, पृथ्वि से पृथ्वी नाहिं।
नीर से उतपति नीर नहिं, अभाव न भाव बनाहिं॥ १९॥

टिप्पणी— जब यथार्थ अनुभव किये बिना ही दृष्टान्त से किसी कल्पना को सत्य मान लेना है तो अन्य कल्पित मत कैसे असत्य माने जा सकते है ? ये लोग ईश्वरवाद से भूले है, नहीं तो इन्हे इतनी कल्पना न करनी पडती। ये एक दृष्टिगोचर सूर्य को या विद्युत शक्ति को सबसे बडा करके मानते है। परन्तु यहाँ कोटि-कोटि सूर्य सहित (ब्रह्माड) विराट भगवान के एक-एक रोम

टीका—कार्यवत सूर्य का टुकड़ा प्रत्यक्ष असम्भव होने से सूर्य से पृथ्वी आदि की उत्पत्ति मानना अयोग्य कथन है। यदि सूर्य में थोड़े अंश से रही हुई पृथ्वी ही विस्ताररूप से हो गई तो थोड़े से विशेष होना भी असम्भव है। यदि कहो विस्ताररूप सम्पूर्ण पृथ्वी सूर्य में थी तो जब वर्तमान में सब पृथ्वी सूर्य मे नही रहते दीखती तो तब पूर्व में कैसे सूर्य में थी ? सम्पूर्ण पृथ्वी का सूर्य में रहना ही अयुक्त है। इससे विस्तार रूप पृथ्वी अनादि काल से वर्तमान जैसे सदा विद्यमान ही है। इसके अलावा अन्य पृथ्वी कही प्रत्यक्ष नही। ताते इस पृथ्वी की उत्पत्ति की अन्य पृथ्वी मानना कल्पना ही है। ऐसे ही अल्प जल से विशेष जलकी भी उत्पत्ति नही बन सकती, क्योंकि अभाव—अवस्तु से भाव रूप वस्तु बन सकती ही नही। यदि अभाव से भाव उत्पत्ति कहा जाय तो बंध्या के पुत्र का अभाव है, तिससे सत्पुत्र होना चाहिये तथा आकाश शून्य मे घर घड़ा वस्त्र का अभाव है तो केवल शून्य आकाश मे सब चीजें होनी चाहिये। होती तो नही। याते न्यून मे विशेष का अभाव होने से तब तक न्यून विशेष नही हो सकता जब तक कि उस न्यून मे अन्य स्वजाति कारण से विशेष का मिश्रण न हो ॥ १९ ॥

मे लटके पडे है, तहाँ गुलर वृक्ष का दृष्टात है, रामायण मे अगस्त मुनि ने रामचन्द्र जी से कहा है—

चौपाई—ऊमरि तरु विशाल तव माया। फल ब्रह्माड अनेक निकाया ॥
जीव चराचर जन्तु समाना। भीतर बसहि न जानहि आना ॥

शंकर बरात का हाल सुनिये—

चौपाई—कोउ मुख हीन विपुल मुख काहू। बिन पद कर कोउ बहु पद बाहू
बिपुल नयन कोउ नयन विहीना। रिष्ट पुष्ट कोउ अति तन खीना
नाना वाहन नाना वेषा। विहँसे शिव समाज निज देखा
(बालकांड रा०)

"अगर इसको झूठी कहानी बताओ। कहो सच तुम्हारी है कैसे बताओ ॥"

यहिते सब ऐसहिं रहे, उत्पति अन्त न होत।
कारज जब बदलें नहीं, कारण कस बदलि बनोत॥ २०॥

टीका—उपरोक्त बातो से सूर्य से पृथ्वी की उत्पति सिद्धि नही हुई। थोडी पृथ्वी और जल से विस्ताररूप पृथ्वी, जल की भी उत्पत्ति सिद्धि नहीं हुई तथा अभाव से भाव नही होता, मूल कारण की उत्पत्ति नही होती। थोडे से वहुत होने मे अन्य विशेष सामग्री की आवश्कता है। इन वातो से सव यथावत दृश्यवान ससार जैसा कि अव वर्तमान मे है तैसे ही पहिले भी रहा, अव प्रत्यक्ष है, आगे भी रहेगा। इसकी न तो नये रूप मे उत्पत्ति होती और न तो सम्पूर्ण ससार का नाश ही होता। देखिये! अग्नि के कार्य—अगार, दीप मसालादि, जल के कार्य—पाला, वुदवुदा आदि जो वनते विगडते रहते है वे ही जव अपने उष्ण—शीतादि मूल कारणो के धर्म को छोड़कर कुछ अन्य धर्मयुक्त नही होते तो अन्य कारण से अन्य कारणो की उत्पत्ति मानना और उनके गुण— धर्म कारणों से वदलकर अन्य विरोधी हो जाना यह वात तो हो ही कैसे सकती है? जैसे मनुप्य घट से पशु पक्षी की देहे नही वन सकती तो वृक्षादि से नर-नारि रूप सतान हो कैसे सकते है? एव सूर्य से पृथ्वी-जलादि की सृष्टि असभव है॥ २०॥

कब देखा उतपति जगत, एक तत्व से होत।
सब भूतन बिन बस्तु नहि, छूँछहि छूँछ भरोत॥ २१॥

टीका—यह बात वर्तमान मे तुमने कव देखी है कि जगतकी उपयोगी समग्र वस्तुये एकी तत्व से वन जाती है? क्योकि यहाँ तो वर्तमान मे कोई भी कार्य चारो तत्वो के मिले विना नही वनता। फिर वर्तमान में जव ऐसा एक तत्व से कोई कार्य नही वनता, तो पहिले कैसे एक से सव जगत हो गया। अतः तुम्हारी बात मिथ्या से परिपूर्ण है॥ २१॥

विवेचन

पूर्वपक्षी—पृथ्वी पर सहस्रों परिवर्तन होते रहे है, यह सोचना कि पृथ्वी जैसी आज है, वैसी लाखों वर्ष पूर्व भी थी, यह बात भ्रमपूर्ण है।

उत्तरपक्षी—यह बात थोड़ी बुद्धिवाला भी जान सकता है कि जब पृथ्वी पर सहस्रों परिवर्तन होते रहे है तो पृथ्वी के रहे बिना किस पर परिवर्तन होते थे और अब हो रहे है? क्या अब पृथ्वी नही हैं? तो फिर ऐसे ही लाखों वर्ष पहिले समझ लो। बहुत दिन का परिवर्तन और जल्दी का परिवर्तन ये दोनों प्रकार के परिवर्तन (बदलाव) को मनुष्य ही पृथ्वी पर रहकर अनुभव करते है, प्रत्यक्ष पदार्थो का बनना बिगड़ना चालू है इससे पृथ्वी का अस्तित्व नही क्षीन होता, बल्कि घट-बढ ज्यों का त्यों है। बस यही बात लाखो वर्ष पहिले क्यो नही समझ लेते? सब प्रकार एकदेशी उत्पत्ति पालन प्रलय पृथ्वी पर होते हुये भी पृथ्वी का पूर्ण अस्तित्व दे खकर सहज ही समझदार जान लेते है कि ऐसे ही सदा से पृथ्वी थी; पृथ्वी नही थी इस अयुक्त कल्पना में नही पड़ते। क्या पहाड़ों मे शख मछलियो के ढाँचे मिलने तथा समुद्र की गहराई और पृथ्वी के नीचे शहरो के खंडहर गिरे पड़े मकान देखने से कोई यह अनुभव कर सकता है कि पृथ्वी का अस्तित्व रहे बिना ही ये सब परिवर्तन हो गये? कभी नही। पृथ्वी के रहते ही रहते सब परिवर्तन प्रत्यक्ष है; इसी हेतु पृथ्वी सदा से है।

पूर्वपक्षी—एक समय था जब कि पृथ्वी का अस्तित्व ही न था।

उत्तरपक्षी—इस बात कोकैसे जाना जाय कि किसी समय पृथ्वी नही थी? तमाम चीजों का परिवर्तन देखकर तो क्या अब सब चीजों का परिवर्तन नहीं देखते, तो अब पृथ्वी नही है? जितने प्रमाण जो कुछ दृष्टांत-सबूत दोगे वह सब सम्पूर्ण जगत के मध्य का ही है। फिर पृथ्वी नही थी इस कल्पना के लड्डू उड़ाने से क्या फल? पृथ्वी तो

है ही, करोडो वर्ष पहिले भी इसी तरह थी। जैसे अव कही कुछ-कुछ परिवर्तन होने पर भी सर्व पृथ्वी निरवीज नही होती, तैसे तब भी ? पृथ्वी होने का तो प्रत्यक्ष सही सवूत है, न होने में सिवा मिथ्या कल्पना के और क्या आधार है ?

पूर्वपक्षी—(१) हमारी पृथ्वी और अन्य ग्रहोंका पूर्वज सूर्य है। (२)यदि यह सम्भव होता कि हम पृथ्वीकी उत्पत्तिके दृश्य देख सकते तो शायद एक वडा भारी आग का गोला सूर्य से अलग होते देखते। (३) तात्पर्य यह है कि हमारी पृथ्वी आरम्भ में गैस की पुज थी। धीरे-धीरे उस ज्वाला की गर्मी विकीरण (परिवर्तन) द्वारा नष्ट होने लगी और पृथ्वी पिघले द्रव पिण्ड के रूप मे आगई, जिसके चारो ओर एक तह गैस की थी, यह गैस की तह एक वायुमण्डल वन गई। पृथ्वी को द्रवितरूप मे आने मे लगभग पॉच करोड़ वर्प लगे होगे। इस वीच मे एक और घटना हुई, जब पृथ्वी गैस के रूप मे सूर्य की परिक्रमा कर रही थी तव सूर्य के आकर्पण ने पृथ्वी के तल पर से थोडी सी गैस अपनी ओर खीच ली, यह गैस पृथ्वी की परिक्रमा करने लगी और अधिक समय व्यतीत होने पर जम कर ठोस अवस्था मे आ गई इस प्रकार पृथ्वी से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई।

उत्तरपक्षी— सवका पूर्वज अधिष्ठान सूर्य है तो अन्य तत्व के गुण-धर्म भिन्न-भिन्न क्यो है ? क्या आग ही आग संसार मे है ? पृथ्वी की उत्पत्ति के दृश्य को किसने ठीक-ठीक देखा है ? यदि नही देखा है तो यह सव वातें विना देखे अनुभव किये केवल मन गढन्त से लिखी गई। यदि देखा है तो किस ठौर रह के कैसे-कौन देखा है? क्या अन्य तत्वो मे सत्र तत्व नही है। वादी का कथन ऐसा है जैसे कोई प्रमाद वश होकर कहने लगे कि मनुष्य के पलक मारते ही एक चीटी हो गई, उस चीटी के पग से सहस्रो हाथी हुये, उन हाथियो ने मिलकर पचायत किया, एक हाथी सवका प्रधान हुआ, फिर उसने दूव वनाया,

उस द्रव में इतनी आकर्षण और गैस उत्पन्न हुई कि उससे परिवर्तन होते-होते पृथ्वी मण्डल हो गया,फिर समुद्र, बाद चन्द्रमा, फिर तारा सबके पश्चात सूर्य हुआ, फिर अन्य जन्तु हुये। इस पर दूसरा पूछता है कि इन सब बातों का क्या प्रमाण है ? तब वह कहता है कि प्रत्यक्ष मनुष्य की पलको मे बाल जमे लगे होते है और पलके ढकती मुँदती है, रोने पर कितने-कितने अश्रुबुन्दो का विकास निर्माण धड़ा-धड़ हो जाता है। बस यही सब प्रमाण हमारे पुराण विज्ञान का है। अस्तु सबका पूर्वज मनुष्यकी पलक ही है। दूसरा प्रमाण विकासवाद भी हमारे ही पक्ष के समान समर्थक है, क्योकि प्रत्यक्ष न तो कभी सूर्य टूटता है, न पृथ्वी गैसरूप होती है, न इससे चन्द्र होता है; फिर भी अपनी कल्पनाको वे सच समझते है। फिर विवेकी ने कहा—तुम्ही लोग आकाश फूलों की सुगंध लिया करो। वादीने कहा—अच्छा हम अपने कथनमे 'शायद शब्द जोडते हैं—शायद ऐसा हो तो हो। सम्भव है कोई देखनेवाला होता तो वैसा देख सकता था कि जैसा विकास-वाद औ पलकपुराण हम कह आये है। विवेकी ने कहा—शायद ऐसा होगा, या होगे या तो होगा, या हुआ होगा। तो भला ऐसे कथन से नि'सदेह सच-सच कथन कैसे प्रमाणित हो सकता है ? अमुक मनुष्य ने अपने शिर के सीग से चीटी मारा होगा, बाघ के बच्चे उससे निकले होगे ? बाघ से कबूतर हुये होगे ? क्या यह कभी सच है ? कभी नही। इन कल्पित बातों मे वह भूले जिसे सद्गुरु सत्सग का सौभाग्य न प्राप्त हो।

पूर्वपक्षी—जब पृथ्वी द्रव रूप मे थी तब यह खौलती हुई धातुओ और चट्टानोके एक बडे भारी समुद्र की तह थी, धीरे-धीरे इस द्रवकी गर्मी नष्ट होती गई। बहुत समय बीतने पर इसके चारो ओर एक कड़ी तह या पपड़ी इस प्रकार जम गई जिस प्रकार गर्म दूध के ठडे होने पर मलाई जम जाती है। धीरे-धीरे यह पर्त और ठडा पड़ता

गया, कडा होता गया तथा साथ-साथ पृथ्वी सिकुड़ती गई। विद्वानोंका अनुमान है कि पृथ्वी के तल पर पर्त जमने मे दस करोड़ वर्ष लगे होगे। १— जब यह पर्त और मोटा हुआ तो वायु मण्डल के पानी की भाप ठढी होकर पानी बन गई और उसने पृथ्वी तह के उन भागो को पानी से भर दिया जहाँ पर्त जमते समय पृथ्वी खोखली हो गई थी। पृथ्वी के ऊँचे भाग स्थल बन गये, गहरे भाग समुद्र। विद्वानो का अनुमान है कि इस समय पृथ्वी की आयु २५० करोड वर्ष है।

उत्तरपक्षी—जबकि सूर्य का टुकड़ा पृथ्वी को मानोगे तो उसे क्रमश: ठढाने पर ठोस रहना चाहिये या द्रव—पिघले हुये घी के समान ? यह तुमने कैसे जाना कि सूर्य से टूटते ही पृथ्वी द्रवरूप हो गई ? या तो सूर्य को भी पिघला हुआ द्रवरूप मानो। हम कहते है बिल्कुल ठोस थी तो क्या कह सकोगे ? क्योंकि कारण के गुण कार्य मे आते ही है, पर्त जमने मे क्या दस करोड के बदले सौ करोड कहा जाय तो ! ईसाइयो के मत से विकासवादी भूले होगे। खुदा सर्वशक्तिमान जो कि छ: ही दिन मे जमी आसमा बना दिया। ईसाइयो के मत से पृथ्वी बेडौल थी, गहिराव पर अँधियारा था उसे डौलदार बनाया, ईश्वर की आत्मा जल पर, डोलती थी इत्यादि तथा पौराणिक मतो से भी ये अज्ञात है क्योंकि "चार सहस जुग बीतत जोई। तब ब्रह्मा का यक दिन होई॥" ऐसे ३६० दिन के एक वर्ष, ऐसे १०० वर्षो की ब्रह्मा की आयु मे सम्पूर्ण जगत उत्पत्ति ओर प्रलय होता है। उत्पत्ति ओर प्रलय का वर्णन बहुत-बहुत भेद १८ पुराणो मे १८ प्रकार से कहा गया है जो बिल्कुल एक दूसरे से विरुद्ध प्रत्यक्ष प्रमाण रहित अनुमान से ठहराये हुये हैं। जिसके आगे विकासवादियों की गाथा १९ वाँ पुराण हो गया है जिसका आज बोलबाला है। ये लोग यह भी नही देखते कि

जब अन्दाजन, शायदन अनुमानन, होगा, होगे, कहते है ऐसे विकास की अदृश्य कल्पना सच करके मान लेना है तो पौराणिक मत जो कि सनातन से चला आता है, धर्म सयुक्त है उसके मानने से क्या हानि थी । क्या पृथ्वी मे कही-कही गर्मी विशेष है तो जल भी कही पर नही विशेष है क्या ? ज्वालामुखी पहाड़ पृथ्वी पर है तो हिमालय पहाड़ नही है ? फिर पृथ्वी जल से हो गई, ऐसा क्यों नही मान लेते ? अगर कोई यह पक्ष लेवे कि सम्पूर्ण पृथ्वी पहिले जल रूप में ही थी,क्योंकि दूध में भी जल भाग विशेष है, फिर उससे सूर्य धीरे-धीरे मलाई के समान जम गया, क्योकि प्रत्यक्ष जल मे बड़वानल है । फिर उसी जलसे सब संसार हो गया । जल मे भी सब तत्त्व विराजमान है । इससे ये जलही सबका अधिष्ठान क्यो नही मानलेते ? बताओ इसका क्या उत्तर दे सकोगे । आप लोगो को सूर्य कुछ घूस दिया या कुछ नातेदारी कर रक्खा है ? जो सूर्य ही को सबका अधिष्ठान बना दिये । अन्य जल, पृथ्वी, वायु से क्यो इतना विरोध ? आश्चर्य तो यह है कि ऐसे ही मिथ्या कल्पना करने वालों को लोगो ने विद्वान एवं बुद्धिमान मान लिये है । सच है "कबीर लोभी के गॉवमे, ठग नहि परे उपास । जो जेहि मत को लोभिया, तेहि घर ठग का वास ।।" याते सर्व कल्पनाओं को परख के छोड़ो, जड़ चेतन अनादि समझो । जब जगत अनादि है तो पृथ्वी की आयु का प्रमाण वॉधना कल्पना ही कल्पना है । जब पृथ्वी की उत्पत्ति होते किसी समय किसी ने देखा हो तो पृथ्वी की जन्मपत्री बन सकती है, नही तो मिथ्या आकाश नापना है ।

पूर्वपक्षी—हवाये पृथ्वी से टकराती है और उनको रगड़ती तथा घिसती रहती है और नई भूमि बनाती रहती है । इसी प्रकार बहता हुआ जल समुद्र की लहरे तथा दूसरी शक्ति भाग भी पृथ्वी को कभी मिटाती भी रहती है ।

उत्तरपक्षी—ये वाते तो प्रत्यक्ष पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, चारों तत्व के रहते ही रहते होती रहती है। जब चार तत्वो का परस्पर अनादि सयोग सम्बन्ध है तभी ये सब वाते पृथ्वी के रहते-रहते सभव होती है। फिर इन बातोसे यह कैसे अनुमान कर लिया कि एक दिन सम्पूर्ण पृथ्वी ही न थी। क्योकि सब प्रकार के परिवर्तन तो प्रवाह-रूप बनते बिगड़ते पृथ्वी पर ही प्रत्यक्ष अनुभव हो रहे है। एक तरफ कोई चीज बन रही है तो दूसरी तरफ बिगड़ भी रही है। ये बाते पृथ्वी के रहते ही रहते होती है। बगैर पृथ्वी के क्या प्रमाण ? यह बात ऐसी है कि जैसे कोई कहे कि समुद्र मे बार-बार फेन उठते है इससे पहिले समुद्र न था और फेन ही मात्र थे फिर बाद मे समुद्र हुआ। क्या यह बात सच है। कभी नही। भला सिन्धुके बिना फेनया तरग रहेगे ही कहाँ ? तद्वत फेन तरगके समान पृथ्वी पर करोडो कार्य पदार्थ बनते और बिगडते ही रहते है इससे कार्यो से सम्पूर्ण पृथ्वी की उत्पत्ति कैसे कही जा सकती है ? नहीं कही जा सकती। क्योकि चारो तत्व कारण के विना किसी भी कार्यो का बनना ही असंभव है।

पूर्वपक्षी—अन्य ग्रह अर्थात पृथ्वी, समुद्र, चन्द्र व मुख्य तारा-गणो मे वही मूल तत्व पाये जाते है। जो कि सूर्य मे है। क्या यह समानता की वाते केवल सयोग वश हो सकती है ? नहीं कदापि नही। अत विद्वनो ने यह निष्कर्ष निकाला है कि हमारी पृथ्वी और अन्य ग्रहो का पूर्वज सूर्य है।

उत्तरपक्षी—जब सब ग्रहो मे वही मूलतत्व है जो कि सूर्य मे है तो अन्य ग्रह भी सूर्य वत उष्ण और प्रकाशवान क्यो नही ? फिर सूर्य ही क्यो सब का पूर्वज है क्या अन्य ग्रह सूर्य के पूर्वज नही ? क्यो कि अन्य ग्रहो मे भी सभी मूल तत्व है, जो सूर्य को बड़ा कहो तो संसार मे अकेले सूर्य की ही शक्ति दिखानी चाहिये ? पृथ्वी मडल, समुद्र मंडल, वायु मंडल की भिन्न-भिन्न अगणित शक्तियाँ क्यो

विराजमान है ? शीतकाल क्यो होता है ? बहुत जोर से वायु क्यो चलती है ? इससे सब तत्त्व पृथक-पृथक अनादि ही है। यदि समानता की बाते केवल सयोग वश नही हो सकती यह बात सच है तो सृष्टि क्रम विरुद्ध नर-नारियो की उत्पत्ति उष्मज खानिवत आदि मे विकास मानना तथा केवल सूर्य से ही पृथ्वी की उत्पत्ति और चन्द्र-तारादि की उत्पत्ति मानना सहज ही कल्पित है क्योकि केवल संयोग से कोई समानता की चीजे नही होती, समानता युक्त विरोधी धर्म-गुण सब तत्व बराबर ठहरने से एक दूसरे से उत्पत्ति कहना सर्वथा असभव है। क्या काले काले भँवरा या काले कौवा से काला काला हाथी हो जायेगा ? फिर एक अग समानता से सर्वाङ्ग विरोधी धर्मी वस्तु की उत्पत्ति कभी नही हो सकती। भू भाग सूर्य का बच्चा है तो क्यो नही के सूर्य समान जलजली दृश्य होती है ? सूर्य का बुझना आदि कहना इस शतक से सर्वथा कल्पना कहा गया है। सूर्य को पूर्वज कहना यह बात ऐसी है कि जैसे कोई कहे हम तुम सब गॉव के मनुष्य साथ ही उत्पन्न हुये और सबमें बराबर शक्ति है फिर भी मै ही सबका उत्पन्न करने वाला सबका पूर्वज बाप-दादा हूँ। क्या ऐसे ही पूर्वोक्त कल्पना नही है ? जग जीवों की विचित्रता तो यह है कि सरासर अयुक्त मिथ्या बातो को सब पढ़ते, सुनते, मानते चले जा रहे है। सच है—

साखी— कैसी गति ससार की, ज्यो गाडर की ठाट।
एक परा जो गाड़ मे, सबै गाड मे जात ॥ बीजक ॥

इन बातो से अदृश्य अयुक्त कल्पनाओ को परख के छोड़कर प्रत्यक्ष सम्यक अनादि चार जड़ तत्व और चेतन का विवेक करना चाहिये।

सवैया

बॉझ क पूत शशा के हि सीग से ठूँठ के चोर को मारि भगायो।

जैसहि जाड़ लगै अति कच्छप पीठ के बार से जाड़ गवाँयो ॥
जैसहि प्यास लगी अति काहु को सो मृग नीर से प्यास बुझायो ॥
तैसे विकास रु ह्रास कहै जग शून्य मे शून्य हुँ झूठहि गायो ॥

छंद

लैमार्क डारविन मत विकास जु यो हि कल्पित जान लो ।
भ्रम लीक क्यो हो पीटते कुछ परखदृष्टि से छान लो ॥
अँगरेजि विद्या मे लिखे कोइ चेंटियाँ हस्ती जने ।
क्या भला तुम मान लोगे क्यो न निज पारख ठने ॥

[प्रसंग २—जगत अनादि न मानने से मिथ्या
कल्पित असम्भवादि दोषो का वर्णन ।]

सुक्षम सब सबमें मिले, एक माहिं सब भूत ।
अधिक लखत तिन एक को, तेहि तजि अन्य कथूत ॥ २२ ॥

टीका—थोडे-थोडे अश से जब तत्वो की कड़ियाँ (परमाणु) सब तत्वो मे मिली हुई है, अपना-अपना भाग विशेष है। इस हेतु दृश्यवान अपने-अपने विशेष भाग का ही होता है । इस प्रत्यक्ष अनुभव को छोडकर ये नर जीव यथार्थ सत्सग विना किसी अदृश्य-अयोग्य कर्ता-कारण का आरोपण कर रहे है ॥ २२ ॥

अनुमित को आधार यह, भास भई सब काहि ।
चूकि लखत नहिं आप तेहि, दौरा अन्ते जाहि ॥ २३ ॥

टीका—अदृश्य कल्पना-अनुमान का अवलम्ब यह चतुर्थीकिरण रूप अनादि जड तत्व ही है। यही प्रत्यक्षाधार लेकर ही भ्रम से नर जीवो को अन्य कल्पित विकासादि और कर्ता का भास निश्चय होता है। किन्तु अनादि सब तत्व रहे हुये सब-सब मे मिलकर नाना

१ टिप्पणी—स्थूल सूक्ष्म तत्व कारण नित्या । ह सब कार्य पदार्थ अनित्या ॥
वारम्बार पदार्थ सब उपजै । पुनि कारण मे लय ह्वै निपजै ॥

जड़ कार्य वनते रहते है और इसके अलावा कोई कारण नही। ऐसा प्रत्यक्ष उलट कर आप स्वय नर जीवन ही विचार करते, इसीलिये अन्य-अन्य प्रकार सूर्यादि से उत्पति की कल्पना मे दोड़ रहे है ॥२३॥

थोड़े से जहॅ वहुत हो, कई किसिम की चीज।
सनमुख भूत समूह से, निकसै सोई लखीज ॥ २४ ॥

टीका—थोडे से बहुत अर्थात बीज से वृक्ष वड़ा हो जाना, एक बीज बो देने से तमाम बीज पैदा हो जाना, किसी भी चीज का बढ जाना, मोटा हो जाना, फल लगना, थोडे वादल से विस्तरित बादल बन जाना और भॉति-भॉति रंग रूप के असंख्य अकुर पदार्थ अष्ट धातु आदि जहॉ भी थोडी वस्तु से बहुत या बडी अनेक तरह की होती दिखाई दे रही है तहॉ विस्तार रूप पृथ्वी, विस्तार जल राशि समुद्र नदियॉ, प्रकाश रूप अग्नि राशि सूर्य, वातावरण मे का वायु पुनः सबमें सबका मिलान और अन्य तत्व परमाणुओ का वायु मे सूक्ष्मरूप से गमनागमन ये सब स्थूल-सूक्ष्म समूह विस्ताररूप तत्व प्रत्यक्ष अनादि स्थित है। तिन्ही मे से सर्व कार्यरूप अनन्त पदार्थ प्रवाहरूप वनते हुये सबके सनमुख सरासर दिखाई दे रहे है ॥ २४ ॥

चतुर्भूत विन कौन सी, होत लखै कोइ वस्तु।
एके से जो लखि मिलैं, सृष्टी भई समस्तु ॥ २५ ॥

टीका—चारों तत्व के बिना अग्नि ही अग्नि या जल ही जल

ऐसो प्रवाह रूप ससारा। अनादि काल से चली यह धारा ॥
सूर्य चन्द्र नक्षत्र तारादिक। अनादि ये भी पदार्थ स्वभाविक ॥
प्रमाणु देश नित्य तत्वो का। ज्ञान देश अगणित जीवो का ॥
(श्री काशी साहेव)

प्रत्यक्ष कारण व कारज व कर्ता। प्रत्यक्ष ही का तु अनुमान धर्ता ॥
(न्यायनामा)

या कोई भी एक ही तत्व से कौन सी वस्तु होते किसको दिखाई दे रही है ? क्या कोई केवल अग्नि से ही वीज वृक्ष अथवा किसी की देह बना सकता है ? कभी नही । केवल आग ही आग से वृक्षादि वन जॉय या किसी एक ही तत्व से कोई पदार्थ बनते दिख जॉय तव एक शक्ति से सम्पूर्ण जगत उत्पन्न हो गया ऐसा माना जा सकता है, यदि ऐसा नही है तो एक सूर्य या विद्युत अथवा किसी भी एक प्रकृति से जगत होना असम्भव है ।। २५ ।।

एक माहिं सवही रहे, सुच्छम भये विशेष ।
वृद्धि भई तेहि काहि से, विना पदारथ शेष ।। २६ ।।

टीका—एक मूल तत्व मे सव अन्य और तत्व सूक्ष्मरूप मिले थे, समय पाकर विशेषरूप मे फैल गये, ऐसा कहो तो बताओ उन सूक्ष्म द्रव्यो के बढने के लिये अन्य विस्तार रूप जगत या कोई पदार्थ तो था ही नही, तो अन्य विस्ताररूप वस्तु पूर्व से ही सत्य रह बिना किस सामग्री से वे थोड़े रूप से वहुत विस्ताररूप मे हो गये ? ।। २६ ।।

स्पष्ट—क्या कोई ऐसी गवाही दे सकता है कि किसी भी वस्तु के फैलाव होने मे विल्कुल अन्य बाह्य सामग्री की आवश्यकता न लगे ? वीज-वृक्ष या कोई भी मशीन वस्तुये अन्य पृथ्वी-जलादि योग्य सामग्री लिये विना वन सकती है ? कभी नही । अत विस्ताररूप जगत का पहिले अभाव मानकर थोडी वस्तु से वहुत विकास कहना विल्कुल कल्पना ही है ।

अंकुरज में जो होय नहिं, विना वीज के वीज ।
उतपति तेहि की ना वनै, सृष्टी भये नवीज ।। २७ ।।

टीका—अखुवायुक्त होनेवाले जो वृक्ष बीजो से होते है—जैसे आम, नीम, कटहल ओर धान गेहूँ उर्द आदि के यदि बीज न हो तो तिन के वृक्ष कभी नही होते, तैसे वृक्ष के बिना वीज नही होते ।

ऐसे ही देहधारियों की देहे जितनी योग्यता से बनती है, यदि उतनी योग्यता न रहे तो देह बनना नही हो सकता। इस प्रमाण से सृष्टि के आरम्भ (क्रमिक विकास) और प्रलय मानने मे यह प्रबल दोष आता है कि जब पहिले सम्पूर्ण ससार न था या आगे किसी समय न रहेगा तो 'सृष्टी भये नबीज' अर्थात प्रलय बाद सम्पूर्ण बीज और तीन खानि के माँ-बाप आदि न रह जाने से पुनः दूसरी बार तिन सबो की उत्पत्ति बन ही नही सकती, क्योकि वर्तमान में देखा जाता है कि बीज से होने वाले अंकूर्य पदार्थो की उत्पत्ति बिना बीज के होती नही तथा माँ-बाप से होने वाले की देहे बिना माँ-बाप के नहीं बनती। ऐसा किसी में सामर्थ्य भी नही कि कारण बीज के रहे बिना तिन्हो को कोई बना लेवे? याते सम्पूर्ण जगत की उत्पत्ति-प्रलय मानना मिथ्या ही है ॥ २७ ॥

सबै भूत परत्यच्छ हैं, कारज बनत नशात।
कारण की उतपति विषम, नाशत नहीं देखात ॥ २८ ॥

टीका—सब तत्व पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये गुण-धर्म युक्त नर जीवो के सामने हमेशा अनुभव हो रहे है। बीज-वृक्षादि घर-घड़ा, वस्त्रादि असख्य कार्यो को तिनसे बनते और बिगड़कर तिन कारणों मे लीन होते ये भी सबको प्रत्यक्ष है। याते कारणरूप पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु का किसी से उत्पन्न होना अयोग्य है। क्योकि परम्परा से शोध करने पर हमेशा रहनहार वे कभी नाश होते देखे जाते नही। यह नियम है कि जिसका नाश होता है उसी की उत्पत्ति होती है और जिसका नाश नही उसकी उत्पत्ति भी नही। इस प्रकार कारण तत्वों का विनाश न अनुभव होने से उनकी उत्पति भी नही कह सकते ॥ २८ ॥

कारण की उतपति कहै, केहिसे उतपति सोय।
जेहिसे उतपति तेहि कहै, यही हाल तहँ होय ॥ २९ ॥

टीका—यदि कहा जाय कि बिना उत्पन्न हुये कोई चीज होती ही नही, ताते कारणरूप चार तत्व भी किसी से बने होंगे ? तो फिर यही प्रश्न वहाँ भी लागू होगा कि जिनसे इनकी उत्पत्ति हुई वे सूर्य या प्रकृति माया या कर्तादि को किसने बनाया ? या वे कहाँ से हो गये ? जो वे अपने कर्ता से हुये तो वे कर्ता-कारण कहाँ से हो गये ? यह उत्पन्न वाला रोग सब कर्ता-कारण पर लागू हो जायगा । अत फिर इस पर प्रश्न होता है ॥ २९ ॥

जिनसे उतपति कारज लखै, तिनको मानत तैस ।
परम्परा कहँ अन्त है, सोचहु ताहि हितैष ॥ ३० ॥

टीका—जिन कारण तत्वों से घर-घड़ा, वस्त्र, वीज-वृक्ष, वुदबुदा विद्युत-अगारादि सम्पूर्ण कार्यो की उत्पत्ति देखते है, उन कारणरूप पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु को भी कार्यवत उत्पत्ति मान लिए तो हे भ्रात ! यदि कारण की उत्पत्ति मानोगे तो इसका कहाँ हद्द लगेगा ? फिर तुम मुख्य एक सद्वस्तु कहाँ ठहराओगे ? जिसे मुख्य वस्तु ठहराओगे वहाँ यही प्रश्न होगा कि फिर वह कहाँ से, क्यो और किस हेतु से हो गया ? उसको किसने वताया ? पुन जिससे सब बना वह कहाँ से वना ! किसने बनाया ? इस प्रकार उत्पत्ति की धारा का अन्त न होने से कही मुख्य कारण-कर्ता भी नहीं ठहर सकेंगे । इस कल्याणकारी वात का कुछ विचार तो करो—

कारण का कारण यदि मानौ ।
कर्त्ता का कर्त्ता तब ठानौ ॥
कर्त्ता का कर्त्ता कारण का कारण ।
उभय प्रकार कहाँ क्या धारण ॥
पृथ्वी का पूर्वज यदी सूर्य कल्पो ।
तो सूरज का पूर्वज किसे तुम ये थल्पो ॥ ३० ॥

वहुत काल से जो प्रगट, ताहि मनुष कोइ देख।
जल पृथ्वी स्थान विन, तहाँ कहौ कस लेख ॥ ३१ ॥

टीका—वुदवुदा, अंगार, दीपकादि नित-नित जो वस्तुये उत्पन्न और नाश होती तो उन्हे सब देखते ही है। परन्तु जो पचास-सौ वर्ष पहिले प्रगट हुए प्राचीन मन्दिर-वृक्षादि का भी कोई न कोई मनुष्य परम्परा से साक्षी रहता ही है और वह घटधारी साक्षी पुरुष पृथ्वी पर वास करता, उसके निर्वाहिक अन्न, जलादि सर्व सामग्रियाँ रहती ही है। इस प्रमाण से यदि पृथ्वी, जलादि किसी समय नहीं रहे तो तिनको विद्युत कण या सूर्य से प्रगट काल मे किसने देखा? जिसने देखा उसका शरीर पृथ्वी भूमिका[1] और जलादि के आश्रय बिना कैसे स्थित रहा? शरीर इन्द्रिय विना यह कैसे किसने किस अनुभव से जाना कि लाखो वर्ष प्रथम से सरासर अनायास अकारण भराभर उत्ताप से सृष्टि का विकास हो गया ॥ ३१ ॥

जो नाशै उतपति सोइ, देखि रह्यो सब काल।
कबहुँ न देख्यो नाशि जेहि, उतपति कौन सवाल ॥ ३२ ॥

टीका—पूर्वोक्त जिस घट-पट, देह-गेहादि कार्य पदार्थो का नाश होते देखा जाता है उसी की उत्पत्ति भी सबको तीनो काल मे स्पष्ट है और पृथ्वी, जल, सिन्धु, सूर्य, वायु कारण रूप तत्वों का कभी कोई भी नाश होते देखा ही नही तो उनके उत्पन्न होने का प्रश्न ही कैसे हो सकता है? जो वस्तुयें सदा से वैसे ही सबको अनुभव है वे अनादि और नित्य है ही, फिर सृष्टि का विकास या उत्पत्ति कहना सर्वथा कल्पित नही तो क्या है? ॥ ३२ ॥

---

१ टिप्पणी—यह तो कल्पना ऐसी हुई जैसे कहा है—
कबीर जब यह जगत नहि, तब था एक खोदाय।
जिन यह देखा नजर भरि, सो केहि ठौर रहाय ॥ ३१ ॥
(कबीर परिचय)

कारण कार्य प्रत्यक्ष ही, लै भूतन से काज ।
ताहि छोड़ि भटकत फिरे, विविधि कल्पना राज ॥ ३३ ॥

टीका—कारण रूप विस्तार से फैले हुये पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु स्वत: अनादि तथा तिन्हो से बनते व बनाये जाते हुये घडा, घर, वस्त्र, वीज, वृक्ष, सोना, कोयलादि की खानि इत्यादि असख्य पदार्थ सब वनते-बिगड़ते हुये प्रवाह रूप अनादि है, सो सब प्रत्यक्ष है। जड़ तत्वो के द्रष्टा नर जीव अपने-अपने अनुभव ज्ञान से इन अनादि तत्वो सामग्री ले लेकर विद्युत, इंजन, हवाई जहाज, रेल, तार, रेडियो, घड़ी आदि एक तत्व से नही वल्कि चारों को मिल-मिलाकर अपने चेतन सत्ता सयोग से ही बना-वनाकर के अपने काम मे लाते रहते है। अनादि चार जड़ तत्व और अविनाशी अनन्त चेतन जीवो को छोड़ भ्रम रूप अनेक प्रकार के अनुमान कल्पना गढ-गढ के मिथ्या कल्पना के ही राज्य मे भटक-भटक कर अज्ञ जीव दुखी हो रहे है, विना गुरु पारख ॥ ३३ ॥

दृष्टात—आठ दस मनुष्य एक शहर से अपने ग्राम को लौट रहे थे। सध्या समय कुछ अँधेरा हो रहा था। एक जगह आगे कुछ लम्बाकार देख पड़ा। एक ने कहा—अजी देखो सर्प! किसी ने कहा—सर्प क्या माला है। किसी ने कहा—धर्ती फटी है। किसी ने कहा—तुम लोग क्या बकते हो। ऊख की पत्ती पड़ी है! किसी ने कहा—सुनो जी यह दण्डा है। किसी ने कहा—तुम सब झूठे हो ये तो जल की धारा है। इत्यादि परस्पर विवाद कर रहे थे। इतने में एक पथिक मनुष्य लालटेन लिये हुये आ रहा था। उसके उजाला मे देखा गया तो मालूम हुआ कि सबकी मन कल्पित वस्तुये नही, वल्कि मूँज की रस्सी पड़ी थी। एवं प्रकाश द्वारा रस्सी के यथार्थ ज्ञान से ही सबका भ्रम निवारण हुआ। तैसे जब तक यथार्थ पारख

द्वारा जड़ तत्वों से पृथक नित्य स्वरूप का ज्ञान नहीं हो जाता, जब तक जड़ और चेतन दोनों अनादि नही जाने जाते। तब तक देवी-देव, भूत-प्रेत, ईश-ब्रह्म, स्वर्ग-नर्क और प्रकृति विकास गोचर वाद आदि की कल्पना ठोकरे खाता है। जगत रूप रस्सी को देखकर नाना भ्रान्ति होती है। जब गुरु कृपा से पूर्णबोध प्राप्त कर लिया जाता है, तब दृश्यादृश्य सब सदेहों का शमन हो जाता है। अत. गुरु की शरण में जाकर सब सदेहो को नष्ट करो।

अभिमान भरैं परत्यच्छ को, सुखाध्यास के काज।
निर्मित कहैं अखोज सब, सृष्टी सकल बिराज ॥ ३४ ॥

टीका—पुनर्जन्म, आवागमन, कर्मफल को मानना, अहिंसा धर्म पालन करना आदि यथार्थ प्रसंग में तो इन्द्रियो के सुख सिद्धि अर्थ लोभ-आसक्ति, ममता-प्रतिष्ठा वश कहते है कि हम ऑखिन देखी मानते, अनदेखी बात नही मानते। ऐसा प्रत्यक्ष का तो अभिमान लेते, किन्तु जगत उत्पत्ति-विकास के बारे मे बिल्कुल सब अदृश्य-अयुक्त अनुमान कल्पना ही कल्पना करते रहते। अदृश्य घन मूल शक्ति का सूर्यरूप मे ठोसवान मानना, कारणरूप तेजोमय सूर्य का टूटना, निस्तेज पृथ्वी का होना और भी बिल्कुल सृष्टि क्रम विरुद्ध बन्दरादि से नर जीवादि का विकास मानना, भोगो से मन की तृप्ति मानना यह क्या महा अखोज-अदेख अप्रत्यक्ष असम्भव बात नही है। क्योंकि समग्र जड़-चेतन सृष्टि तो अनादि काल से ज्यो का त्यो स्थित ही है ॥ ३४ ॥

आदि अन्त नहिं जगत का, समुझि यथारथ बात।
संस्कार बशि जीव लखि, होवै तब कुशलात ॥ ३५ ॥

टीका—उत्पत्ति और प्रलय जगत का नही। जैसे सूर्य का कारण अन्य सूर्य नही तैसे पृथ्वी, समुद्र, वायु का अन्य कारण पृथ्वी,

समुद्र, वायु नही। इसी प्रकार अविनाशी द्रष्टा जीवो का अन्य कारण द्रष्टा कोई कर्त्ता नही, एव चार तत्व जड़ दृश्य तथा असख्य देहधारी नित्य जीवो का समुदायरूप जगत के कभी उत्पत्ति-प्रलय नही होते। कर्मो का फल पुनर्जन्म धारण करके सब जीव भिन्न-भिन्न प्रत्यक्ष भोग ही रहे है, आगे भी पाप-पुण्य सस्कार रखने से भोगा करेंगे। सस्कार वश जीव को कर्म फल का भागी जब समझे तभी जीव का कल्याण होगा। तभी सब पापो से मन हटेगा, शुभाचरण मे मन प्रवृत्त होगा, शुभाचरण करते-करते अंत करण शुद्ध हो स्वरूपज्ञान द्वारा वासनाये दग्ध करके सदा के लिये मुक्ति की प्राप्ति करना भी सम्भव हो जायगा। याते यही यथार्थ निर्णय सत्य होने से कर्म सस्कार वश कर्म फल का और वासना दग्ध द्वारा मुक्ति का निश्चय होना ही मनुष्य के सुधार निस्तार की दृढ नीव है॥ ३५॥

स्पष्ट—सच्चेरूप से जगत विज्ञान विशेष ज्ञान का विवेचन—

जगत अनादि होने में मुख्य हेतु

१—बीज कहाँ से हुआ? वृक्ष से। वृक्ष कहाँ से हुआ? बीज से। बीज कहाँ से हुआ? वृक्ष से। इस परम्परा का कही अन्त न होना। ऐसे ही कर्म-देह, प्रारब्ध-पुरुपार्थ, स्त्री-पुरुष, दिन-रात ये सब प्रवाह गति परम्परा से होती ही आयी है। जैसे वर्तमान मे प्रत्यक्ष इनकी उत्पत्ति, पालन तथा सहार देख रहे है, तैसे सदा से संसार चक्र अनादि अनन्त है।

२—बौड़ि, बेलि, घास, वडे-वडे वृक्ष छोटे-छोटे अकुर आदि जहाँ जिस तरह वर्तमान मे बनते रहते है और उनके फल फूल बनते वे वैसे ही होते रहते है। अर्थात नीम में कटहल-केला नही लगते और केला मे आम-अमरूद नही लगते। तैसे चार खानियो मे मक्खी से मनुष्य नही बनते, चीटी से हाथी, ऊँट नही होते। स्त्री-स्त्री के सयोग से पुरुष नही होते। पुरुषो के गर्भ नही ठहरते

मनुष्य को सीग नही होते। स्त्रियो मे पुरुषो के समान शिश्नेन्द्रिय नही होती। शीत का उष्ण नही होता। उष्ण का शीत नही होता और जड़ का चेतन नही होता, चेतन का जड नही होता। समग्र ससार अनादि नियमित गुण धर्म को उल्लघन न करते देखकर स्पष्ट ज्ञान हो जाता है कि सारा ससार ऐसे ही प्रवाह रूप चला आया है, एवं आगे भी चलता रहेगा।

३— आकार, गुण, धर्म, तत्वो का परस्पर सयोग, क्रिया और शक्ति ये षट भेद युक्त चार तत्व कारण-कार्यरूप तथा तिनके द्रष्टा देहधारी चैतन्य जीव जान-मानकर क्रिया करने वाले ऐसे दो पदार्थ भावरूप प्रत्यक्ष भिन्न धर्मी होने से अनादि ही स्थित है। अत. कभी उत्पन्न और अब तथा आगे नाश नही होगे, क्योकि वे अपने-अपने गुण-धर्मो से भावरूप सदा विद्यमान है।

४—जैसे हमारी देह हमारे माता-पिता से, तैसे माता-पिता की देहै उनके माता-पिता से एवं परम्परा से सबकी देहै अपने-अपने माता-पिता से होने के कारण इसका अन्त न होने से आज सरीखे माता-पिता पुत्रादि सदा भूतकाल से रहते आये है तथा आगे भी रहेगे। साथ ही देहधारियो की देहों के उदर निर्वाहादि कार्य सर्व जगत का विस्तार रहे बिना हो ही नही सकता, अत· सम्पूर्ण सृष्टि अनादि प्रवाह सिद्ध है। ऐसे ही मनुष्य देह में रहन-सहन, कारीगरी-हुनर, चतुराई आदि और कम-विशेष विद्या कला-कौशल, समय-समय पर कम विशेष रूप मे और नाना मत-पथ धर्म-सम्प्रदाय, शासन-पचायत विधानादि सदैव कई बार कम-विशेप, गुप्त प्रगट, उदलबदल होते ही आये है। ऐसा नही कि जैसा आज जगत में रहनसहन, हुनर-चतुराई है वैसा कभी न हुआ हो। जब जगत प्रवाहरूप अनादि काल से है तो कितनेक बार आज के सरीखे मनुष्यो का वर्तमान रहा, कइयो बार कल के सरीखे। ससार मे कोई

चीज नवीन नही, सब बीज- वृक्षरूप से सदा से ही है । देखो ! पशु-पक्षी करोडो वर्षो के पश्चात भी परम्परा से तरह-तरह के कला-कौशल, मशीनादि रचने की विज्ञानशक्ति नही प्राप्तकर सके, न भविष्य मे कभी कर सकने की सम्भावना ही है । इससे स्पष्ट है कि यह नर जीव ही अनादि काल से विशेष ज्ञान शोध करने के साधन सम्पन्न होने से भाँति-भाँति से सोच समझ कर तरह-तरह के सुख-भोग हेतु चतुराई-कारीगरी, कलाये प्रगट करते ही आया है। तथापि कोई बात निरा नवीन नही, हद्द के बाहर कोई कुछ कर ही नही सकता अर्थात हद्द के अन्दर ही घट-बढ सदा से ही कुछ न कुछ कारीगरी कला, कौशलादि मनुष्य प्रगट करते रहते, कुछ पुरानी कुछ नवीन, पर हद्द के अन्दर ही । हाँ ! समय पाकर वे कुछ अश लोप और पुन विस्तार होते रहते है क्योकि वर्तमान मे भी घट-बढ, दबाव प्रगटाव लगा हुआ है, इसी से ससार अनादि है ।

५—मात्र सयोग से कोई चीज उत्पन्न नही होती । जैसे हाथ से दीवार को स्पर्श करके बाल-बच्चे, वातावरण मे वायुसघर्ष से मनुष्य, हाथी, घोडे नही पैदा किये जा सकते । खैर-सुपारी एकत्र कर पत्थर-ईट नही हो जाते, बल्कि पूर्वसे ही उसमे भावरूप या बीजरूप जब वह गुण-धर्म रहता है, तभी होने योग्य वस्तुयें बनती रहती है। अत ससार मे अनादि से रहे हुये जड के गुण-धर्मो से अमित वस्तुये बनती रहती है, सो सब भिन्न जड़ ही है। उनसे भिन्न अनादि से देह-धारी चेतन जीव ज्ञान-मानन्दी युक्त इन्द्रिय साधन सहित विविध ज्ञान कलायुक्त मन-मानन्दी कल्पनाओ का विस्तार करते रहते है, अत भावरूप प्रत्यक्ष जड़-चेतनमय ससार सदैव स्थित है ।

६—चैतन्य इन्द्रियो द्वारा सर्व दृश्य का ज्ञान करता, इन्द्रिय और अपने मन-वासनाओ को जानता, यहाँ तक कि बुद्धि की भावा-भाव सम्पूर्ण वृत्तियो का ज्ञाता एकरस रहता है । जागृत, स्वप्न,

सुषुप्ति ये तीनि अवस्थाये गर्भ, बाल, जन्म, मृत्यु तथा नरनारियो की देहै सर्वको मन द्वारा जागृत अवस्था मे मनन करके अनुभव करता और उन सर्व वासनाओंको शात करके स्वतंत्र होकर ठहर रहता, इससे स्पष्ट हुआ कि सर्व दृश्य से पृथक चेतन जीव अनादि नित्य सत्य है। परन्तु अपने को भूलते हुये अनादि काल से स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्म से स्थूल देह धरते ही आये है। जब स्वय चेतन जीव अनादि अखंड नित्य है, तब वे जिसमे सदा काल से भूलते आये, वह दृश्य जड़ प्रकृति भी प्रवाहरूप अनादि नित्य। यही कारण है कि जड़-चेतन दोनो अनादि नित्य है।

७—देहधारी जीवो मे देखिये एक ही समय मे सबका न जन्म होता, न मृत्यु। एक ही समयमे सबको एकही वासना, एकही क्रिया तथा एक ही भोग नही होता। प्रारब्ध पुरुषार्थ युक्त देह के भोगो मे कम विशेष लगा ही रहता है। प्रकृति शक्ति को देखिये! एक समय मे सम्पूर्ण बीज-वृक्ष बराबर न उत्पन्न होते, न मोटाते न नाश होते, पृथक-पृथक कार्य प्रवाह चालू रहता है। एकी समय मे शीत, उष्ण, बरसात नही होते और न तत्वो की सम्पूर्ण क्रियाये बराबर समान ही होती सर्व चेतन और जड़ सृष्टि के भिन्न-भिन्न गुण-धर्म किसी काल में एक नही अनुभव होते। इन बातो से सिद्ध हुआ कि सम्पूर्ण ससार किसी समय मे न उत्पन्न हुआ और न किसी काल मे प्रलय ही होगा। हाँ! विशेष बाढ से, अति गर्मी से, भूकम्प से, यत्र-तत्र एक देशी उत्पत्ति नाश लगा ही रहता है, किन्तु सर्व जगत का नाश होना किसीको अनुभव नही, याते सम्पूर्ण जगत प्रवाहरूप अनादि है।

८—आम-नीम के बीज या वृक्ष को वैसे गुण-धर्म युक्त कोई भी किसी प्रकार सर्वा ग अलग से नही बना सकता। ऐसे ही कोई भी देहधारी जीवो की देहे केवल माटी पानी एकत्र करके नही रच सकता तथा पाँच ज्ञान इन्द्रिय के अलावा छ या आठ इन्द्रिय नही कर

सकता। जितने तत्व और जितने जीव है इनके अलावा कुछ नही हुआ न हो सकता है। अतः ससार नवीन विकास नही, वल्कि अनादि पुरातन ही है और ऐसा ही रहेगा।

६—सूर्य का अन्य सूर्य, पृथ्वी की अन्य पृथ्वी, समुद्र का अन्य समुद्र, तथा वायुमण्डल का अन्य वायुमण्डल अनुभव न होने से और चैतन्य जीवो का अन्य चैतन्य न होने से जगत अनादि है। कारण-रूप चार तत्व तथा सर्व मनोमय का कर्त्ता रूप चैतन्य ये दोनो स्वत. अनादि नित्य है और कार्य सब प्रवाह रूप अनादि है।

१०— वन्ध्यापुत्र, शशाश्रृग तथा पुरुप के गर्भ इत्यादि जो अभाव है उनका तीन काल मे भाव नही हो सकता और जड चेतन जो सत्य रूप है तिनका कभी अभाव नही अत सर्व जगत अनादि सदा से स्थित है और ऐसा ही रहेगा। हॉ यदि जीव इस दुख रूप जगत मे मुख न माने, जड़ाध्यासो का त्याग करे तो आने जाने से रहित होकर सदा स्वरूपस्थ हो जावेगा, ऐसा विवेक से जानना चाहिये।

११—आकार दो—झीना और मोटा। धर्म चार—शीत, प्रकाश, कोमल, कठिन। गुण पॉच—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध। चारो मे चार क्रिया। सव तत्वों मे जड़ता एक। शक्ति चार—धारणा, स्नेहा, रसायना, गुरुत्वा। परस्पर मेल एक। वियोग एक। सव मिलाकर इन वाइस लक्षणोयुक्त जड़ तत्व भावरूप इन्द्रिय गोचर प्रत्यक्ष अनादि प्रवाहित हैं। देहधारी जीवो के लक्षण—काम अथवा स्पर्श का ज्ञान, क्रोध, लोभ, मोह भय, शोक, प्रयत्न, दुख, सुख, चाह, राग, द्वेप, ग्रहण, त्याग, जागृत, स्वप्न, सुपुप्ति, मानन्दी, आशा, तृष्णा,अहकार, नाना युक्ति, हानि-लाभ, प्राण, इन्द्रिय, मन, मानन्दी युक्त त्रिगुण देहोपाधि सहित इन लक्षणयुक्त अपने-अपने स्मरण वेगो

के द्रष्टा सर्व साक्षी चैतन्य किसी के कारण-कार्य रहित प्रत्यक्ष कर्म करते-भोगते हुये भिन्न-भिन्न अनादि काल से चले ही आ रहे है और जड़ तत्त्वों मे सुखाशा से भ्रमते चले ही जावेगे तथा सुखाशा त्यागकर सदा के लिये जीव निराधार अचल स्वरूप ठहर रहेगा। इस प्रकार जड-चेतन दोनों पदार्थ अनादि स्वतः है। यदि पहिले जगत नही था तो जड लक्षणोंयुक्त कारणरूप पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुमण्डल और तिनके असंख्य कार्य कहाँ लोप थे? तिनके जनैया देहोपाधि-युक्त सर्व खानियों के देहधारी असख्य जीव कहाँ पर थे? कहाँ से? क्यो? किस लिये? किसने उत्पन्न कर दिया? या अहेतुक धीरे-धीरे नवीनरूप से इनका कैसे विकास हो गया? इसका साक्षी कौन था? इत्यादि प्रश्नों का उत्तर न होने से और अपने गुण धर्मो से ठोसवान जड़-चेतन का विवेकयुक्त प्रत्यक्ष होते रहने से सम्पूर्ण जगत अनादि ही है। इसकी उत्पत्ति प्रलय किसी काल मे न भई, और न होगी, सो सब प्रत्यक्ष देखते ही है। जब एक वृक्ष, एक घट, एक घर गिर गया—चूर्ण हो गया, तो साथ ही तमाम अकुरादि पदार्थ बनते रहे। अतः जब कार्यो का प्रवाह ही एकदम से सब नाश नही होता तो कारण का पूछना ही क्या है? उसका नाश तो किसी को प्रत्यक्ष ही नही। जब तत्त्वों का नाश नही तो जीव स्वय अस्ति को क्या पूछना? वह तो स्वय परम अपरोक्षरूप सत्य परमपद ही है। अत जगत की एक बारगी या धीरे-धीरे परिवर्तन मानकर नवीन उत्पत्ति या विकास मानना और बहुत दिनो के बाद फिर इसका लोप होना मानना अयुक्त एव महा असम्भव है।

१२—सब मतवादी कुछ न कुछ अदृश्य अनुमान करके एक सद्वस्तु ठहराते है, अत यह भावरूप ससार ही अनादि है। कार्यरूप जगत की उत्पत्ति-प्रलय, आरम्भ—विकास सदा वर्तमान वत चालू रहते हुये सबका अत्यत अभाव न होने से जगत नित्य है एवं यथार्थ

पारख ज्ञान समझ-वुझ के अन्य सर्व मिथ्या कल्पनाओ का त्याग कर देना चाहिये । साथ ही जीवों को कर्म-सस्काराधीन वासना वश कर्म फल चार खानियों मे अनेक दुख-सुख प्रत्यक्ष अनुभव करके सर्व प्रमाद छोड़कर सदाचरणो मे लीन हो रहना चाहिये, तभी जीव को शाति स्थिति मिलेगी । जब तक जीव अपने आपको संस्काराधीन भ्रमण करने वाला कर्मोका कर्त्ता-भोगता नही समझता, तब तक इसे तीन काल मे विश्राम नही मिल सकता । उल्टे आगे जन्मो के दुखो को भुलाकर अत्यंत विषयासक्तिरूप मदिरा पान करके देहवाद या प्रकृतिवाद निश्चय कर घोर हिसादि करके स्वयं नित्य दुखी होकर अन्य के निमित्त भी दुख-दीनता बढाता रहेगा । सस्कारवश जीवका भ्रमण, कवित्त—

"मानना अध्यास संस्कार सुख दुख ज्ञान,
भूतन में कहूँ नहि जड़ सो रहतु है ।
जड देह मेल माहि जहाँ जहाँ जीव रहे,
तहाँ तहाँ मानि मानि ज्ञान सो करतु है ॥
भूत जड़ आश वश चेतन स्वरूप भूलि,
त्रिविधि अवस्था सुख दुख सो लहतु है ।
देखे भोगे सस्कार जागृत स्वपन भोग,
सुषुपति फेरि जाग क्रिया ही गहतु है ॥ १ ॥

जड सृष्टि माहि जिमि वीज वृक्ष शक्ति भूरि,
और हूँ अनेक क्रिया होत ही रहतु है ।
जड अरु जीव मिलि तिमि मनोमय सृष्टि,
शक्ति सस्कार वीज देह को गहतु है ॥
वाल युवा वृद्ध पुनि मरण गरभ जन्म,
पट ये विकार वीज वृक्ष सो लहतु है ।

जैसे जैसे कर्म लिये मृत्यु होत तैसे जन्म,
त्रिगुण के भोग प्रेम देखि के कहतु है" ॥ २ ॥

जसका तसहिं न जानि कै, करै कल्पना जीव।
कल्पित लड्डू खाय कै, चाहै तृप्ति सदीव ॥ ३६ ॥

टीका—जैसा है वैसा न जान कर जीव व्यर्थ कल्पना करता है। जड़-चेतन उभय अनादि नित्य है, वासना वश उभय ग्रन्थि है, वासना त्याग से मुक्ति है। ऐसा यथार्थ भेद न जान कर सर्व नर जीव सोनार-बढई, दर्जी-कुम्हार न्याय मन से अदृश्य अनन्त कल्पनाये गढते रहते है। अहो! नर जीव मनःकल्पित लड्डू से पेट भरकर क्षुधा बुझाना चाहते है कैसे होगा? अतः निज स्वरूप के बाद की सर्व कल्पनाये त्यागकर स्वरूपस्थ होवे ॥ ३६ ॥

[३—अग्नि या सूर्य का स्वतत्र स्वरूप होने से अन्य के सम्बन्ध रहे विना केवल अग्नि या सूर्य का बुझना असम्भव कथन।]

जहाँ बुझाती आगि लखि, जला पाथ जहँ होउ।
दोनों निकरे या रहे, समुझि बिचारौ ओउ ॥ ३७ ॥

टीका—पूर्व प्रसगो से प्रथम तो कारणरूप सूर्य का टुकड़ा कहना मनुष्य के माथे मे सीग जमाना है। दूसरी बात जो सूर्य का कुछ अंश बुझ के ठण्ढ पड जाने में कार्यरूप अग्नि के बुझने का प्रमाण देते हैं, वह भी सर्वथा कल्पित है। देखो! जहाँ अगारादि को बुझ जाना देखते है, वहाँ बुझी कौन सी चीज? इसे बिचारो। पानी किसी पात्र मे धर के नीचे से आंच देकर उसे जला दिया जाय तो कहा जायगा कि पानी पात्र मे नही रह गया यही हाल अग्नि का भी है। तो यह प्रश्न है कि जब अग्नि ठण्ढी पड़ गई या बुझ गई, पानी जला दिया गया तो दोनो अग्नि और जल वही ज्यों के त्यो बने रहे या निकल गये? इसको समझो और गहराई से विचार करो ॥ ३७ ॥

जो छोड़े दोनौं जगह, अपनी अपनी भूमि।
तब तहवाँ फिर क्या रहा, खाली खालि लखूमि ॥ ३८ ॥

टीका—जो अग्नि बुझने पर तथा जल को खौलाकर जलाने पर अपनी-अपनी भूमिका छोड़ दिए तो फिर वहाँ अग्नि तथा जल कहाँ रहे ? तब तो अग्नि और जल से वह ठौर खाली ही दिखाई दे रहा है। अर्थात पात्र मे जल को जलाने से वहाँ जल नही रह गया और लक्कड़ मे की अग्नि बुझने पर वहाँ अग्नि नही रह गई। मात्र पृथ्वी का अश राख और जल का वर्तन देखने में आते हैं। अग्नि-जल से वह जगह शून्य ही दिखाई देती है ॥ ३८ ॥

निकसि गये परमाणु जब, जल अगिनी जो सिद्धि।
ताहि छोड़ि दोनौं नहीं, तिनका रूप असिद्धि ॥ ३९ ॥

टीका—यदि जल को जलाने पर, अग्नि बुझने पर दोनो के परमाणु बुझ गए तो वहाँ अग्नि-जल रहना कैसे कहा जा सकता है ? क्योकि जल शीतलता युक्त और अग्नि उष्णता युक्त असख्य परमाणु के समूह है, सो तिन अणु-परमाणुओ को छोड़कर अग्नि-जल कोई अन्य वस्तु सिद्धि नही है ॥ ३९ ॥

अपनी अपनी जो जगह, दोनौं रहे लखात।
तब न बुझानी नहिं जला, ज्यों का तेवहिं रहात ॥ ४० ॥

टीका—यदि अग्नि अगार मे और पानी पात्र मे दिखाई दे रहे हैं, तो किसी हालत से अग्नि का बुझना और जल का खौल कर जल जाना, यह वात कहते नही वन सकती। फिर तो अगार और पात्र का जल ज्यों के त्यो ही वने रहे ॥ ४० ॥

टुकड़ा बुझै अगिनि उड़ी, भई मही केहि केरि।
यह प्रसंग से न्याय लखि, तबही भर्म निवेरि ॥ ४१ ॥

टीका—पूर्व प्रमाण लेकर कहा जाता है कि यदि सूर्य का टुकडा

बुझकर ठण्ढा पड़ गया तो इससे स्पष्ट हुआ कि अग्नि के परमाणु सब इसमे से उड़ गये। अब बताओ पृथ्वी किस चीज की बन गई? इस प्रसंग को पक्षपात रहित विचार करो तब ही सूर्य से पृथ्वी होने का भ्रम सर्वथा चूर्ण हो जायगा ॥ ४१ ॥

मही भई तब नहिं बुझी, बिना बुझे कस भंग।
कस न जलै जो भंग नहिं, सब प्राणिन को अंग ॥ ४२ ॥

टीका—यदि सूर्य से पृथ्वी बन गई, यह मानो तो फिर पूर्वोक्त ठण्ढा कहना तुम्हारा व्यर्थ हो जायगा। यदि अग्नि बुझी नही तो अग्नि के धर्म उष्णता और प्रकाशादि कहाँ लुप्त हो गए? यदि उष्ण ताप लुप्त नही हुये, तो सब देहधारियों के शरीर, इन्द्रिय और असख्य पदार्थ जलकर भस्म क्यो नही हो जाते ॥ ४२ ॥

निकसि गई अगिनी सबै, तबै बुझानी आगि।
काहे की पृथ्वी भई, जहाँ घटी सब लागि ॥ ४३ ॥

टीका—देखो उष्ण तेज सर्वांश जब निकल जाता है, तबही अग्नि का बुझना या ठण्ढा होना कहा जाता है, यदि यही वात ठीक है तो पृथ्वी किस चीज की बन गई? इसका उत्तर क्यो नहीं कहते? जो अग्निमय सूर्य से कहो तो यह भी तो तुम कहते हो कि यह पृथ्वी बहुत दिनो मे ठण्ढी पड़ गई है। तब अग्नि उडे विना ठण्ढी कहना कैसे बन सकता है? जितने अग्नि के परमाणु थे वे तो सब उड़ गये, फिर अग्नि से पृथ्वी की रचना कैसे सिद्ध हुई? जिस टूटे हुए अग्नि समूह मे से सर्वान्श अग्नि निकल जाने से अग्नि का वहाँ अभाव हो गया, फिर अभाव से भावरूप पृथ्वी कैसे हो सकेगी? जो कहो पृथ्वी मे से अग्नि का अभाव नही हुआ तो आगे सुनो ॥ ४३ ॥

जाकी ताप न सहि सकैं, प्राणी और पदार्थ।
शोभत सृष्टी तहँ हरो, समुझौ बात अनार्थ ॥ ४४ ॥

टीका—सूर्य के प्रवल उत्ताप को कोई भी देहधारी सह नही सकता और सव वस्तुये उससे दूर रहते हुए भी तप जाती है। इससे जाना जाता है कि कोई देहधारी या कोई भी पदार्थ सूर्य के समीप या सूर्य मे घुस जावे तो सिवा भस्म हो जाने के और कुछ नही हो सकता। इस प्रकार तो अग्नि का समूह सूर्य प्रत्यक्ष है, वडे आश्चर्य की वात है कि सूर्य का अश पृथ्वी होते हुए भी इस पृथ्वी मण्डल मे न कुछ प्रकाश ही है, न तो अगार के समान सर्वत्र उष्णता ही है। उल्टे इस पृथ्वी पर सर्व देहधारी जीव और समग्र अंकुरज पदार्थ हरे-भरे हो रहे है। अस्तु सूर्य से पृथ्वी की उत्पत्ति कहना सर्वथा निरर्थक है। इस पर ध्यान देकर ठीक-ठीक समझ लेना चाहिये ॥४४॥

प्रकाश ताप सूरज रहा, तेहि टुकड़ा वनि भूमि।
प्रकाश ताप का नाश जव, केहिकी महि लखि घूमि ॥ ४५ ॥

टीका—सूर्योदय होने पर सर्वत्र प्रकाश और गर्मी पहुँचने से स्पष्ट होता है कि सूर्य प्रकाश और ताप की राशि है अर्थात प्रकाश-ताप का स्वरूप ही है। यदि इसीका टुकडा होकर पृथ्वी निर्माण हो गई, तो अव सोचना चाहिये कि यह धरती प्रकाश-तापमय क्यों नही है? जो कहते है बहुत काल मे ठण्ढी पड़ गई, तो इससे जाना गया कि प्रकाश-ताप इसमे नही रह गये। फिर प्रकाश-ताप जव वहाँ रह ही नही गये तो पृथ्वी किस चीज की वनी? इसे उलटकर विचार से देखो तो सही ॥ ४५ ॥

जाहे की जो वस्तु है, तेहिको लेय निकार।
काहे की सव वस्तु भै, सृष्टी को विस्तार ॥ ४६ ॥

टीका—भला जिस सामग्री से जो वस्तु वनती है वह सामग्री सम्पूर्ण ही वहाँ से कोई हटा लेवे या किसी तरह लोप कर देवे तो वह कार्य विना सामग्री कैसे बन सकेगा? बस इसी प्रकार पृथ्वी मे

से ताप और प्रकाश तो निकल गये तथा सृष्टि आरम्भ मे ताप के अलावा और कुछ था ही नही। फिर सोचना चाहिये कि जल, वायु, पृथ्वी और तिनके क़ार्य वस्तुये तथा असंख्यँ अविनाशी जीवो के शरीरों का विस्तार ये सब किस सामग्री से हो गये ? और भी आगे दृष्टांत से विचारिये ॥ ४६ ॥

चॉदी का रुपिया बना, चाँदी लेय निकास।
काहे की वस्तू मिलै, जाय वणिक के पास ॥ ४७ ॥

टीका—जैसे चॉदी का रुपया चॉदी का सरूप ही है, यदि उस चॉदी को कोई ले लेवै और किसी से कहे जाओ चॉदी रहित नाम मात्र का रुपया देकर बनिया से सौदा ले आओ, तो वह बनिया क्या लेगा ? तथा उसके बदले मे वस्तु भी क्या देगा ? तद्वत आगे का भी उदाहरण देखो ॥ ४७ ॥

मीठा का शक्कर रहा, तेहिकौ करै बिनाश।
काहे का शरबत बनै, करै तृषा को नाश ॥ ४८ ॥

टीका—कोई कहे मीठा लाओ शक्कर न लाओ या शक्कर लाओ परन्तु मिठास अलग रख आओ, यह बात नही हो सकती, क्योकि मिठास का स्वरूप ही शक्कर है। तिस शक्कर को यदि कोई हटा लेवे या किसी तरह उसका विनाश कर देवे, तो विचारो शर्बत किस चीज का बनेगा ? और प्यासा मनुष्य तिस शर्बत के भरोसे अपनी प्यास को नाश करना चाहे तो कैसे कर सकेगा ? इन उपमाओं से ताप और प्रकाश का स्वरूप जब सूर्य रहा तथा वह सृष्टी के आरम्भ मे टूट जाने से थोड़ा अंश यहॉ गिर गया। कुछ दिनो मे ठण्ढा होने से इसमे का ताप और प्रकाश क्षीण होते गया। तो इस बात को थोड़ी बुद्धिवाला भी जान सकता है कि जब ताप और प्रकाश इसमे से निकल गये तो पृथ्वी किस सामग्री से बनी ?

जल-वायु आदि समग्र ससार कहाँ से गिर पड़ा ? वड़ा आश्चर्य ! आज इसी भ्रमजाल का विस्तार देखने मे आ रहा है ॥ ४८ ॥

पल्टू साहेव ने कहा है–"पल्टू मै कासो कहौ, कुआँ पड़ी है भंग। झूठे मे सव जग चला, छिल छिल जाता अग ॥" कवीर साहेव कहते है—"कहै कवीर कासो कहौ, सकलौ जग अन्धा। साँचे से भागा फिरै, झूठे का बन्दा" ॥

मन फन्दा फेंकत फिरै, लागी विषय वजार।
निरखि परखि वचि वचि चलौ, भरम जाल वरियार ॥ ४६ ॥

टीका—भीतर मन सुखाध्यास रूप फन्दा चौतरफ से जीव के ऊपर डाल रहा है, वाहर फैसनवाजी, इन्द्रिय मौज-शौक, विहार सामग्री की अधिकता रूप भीड़ लगी हुई है। उसी मे समाज उपकार, विज्ञान, विकास, सभ्यता नामों से किसमे वदल-वदल के विषय विप को छकने-छकाने मे ये नर जीव सुख मान रहे है। जिन पच विपय-रूप राजस पदार्थो के नशे मे सरावोर होकर सम्पूर्ण अयोग्य क्रिया युक्त उल्टी वाते कहते रहते है, कल्याण इच्छुक को चाहिये कि भली प्रकार पारख गुरु के सत्सग सद्ग्रथ द्वारा सत्य-असत्य को परख के असत्य मार्ग से हटकर सत्य मार्ग पर चलते रहे। क्योंकि मनासक्त वाचाज्ञो की और इन्द्रिय सुख स्वार्थ रूप भ्रम का जाल (गॉस-फॉस) वड़ा वलिष्ट है। उससे वचावा वहुत सजगता से ही हो सकता है ॥ ४६ ॥

छन्द—भूलने के कोटि मारग समुझ का मग एक है।
फॉसने के कोटि साधन वन्दिमोचन एक है॥
अस जानि गाफिल हो नही नर पाय सतसंगत भले।
मुक्ति की दृढ लालसा युत कर प्रयत्न भले अले॥"

जल वायू पृथ्वी नहीं, ऐसी पावक कोउ।
ताहि बुझाये राख जो, सवहीं देखैं सोउ ॥ ५० ॥

टीका—यदि ऐसी कोई अग्नि हो कि जिसमे जल, वायु, पृथ्वी आदि परमाणुओ का बिल्कुल सम्बन्ध न हो, मात्र अग्नि ही अग्नि अगाररूप मे दीखै और फिर बुझकर राख रह जावे। इस बात को सब देखै तब कदाचित तुम्हारी यह बात सच निकले कि अगार न्याय सूर्य टुकड़ा होकर बूझ गया, तिससे पृथ्वी हो गई ॥ ५० ॥

जब ऐसा होवै नहीं, तब कैसे वह साँच।
साँच झूँठ जाँचे विना, परन चहीं नहिं खाँच ॥ ५१ ॥

टीका—जब कि अन्य तत्व रहे बिना अगार बनना-बुझना दोनो नही देखा जाता है, तब फिर यह कल्पित दृष्टात सूर्य मे घट ही कैसे सके ? समझदार को योग्य है कि साँच और झूठ को तौल कर ही किसी बात को अगीकार करे, न कि अंधाधुन्ध वानी सुनकर किसी कल्पना के गड्ढे मे पड़ कर भटके ॥ ५१ ॥

"पैसे की हण्डी जब लेओ। ठोकि बजाय दाम तब देओ ॥
बहुत दाम का हीरा भाई। क्यों न परीक्षा करके लाई ॥
घन प्रहार करि साँचे हीरा। फूटि जाय तब काँचे खीरा ॥
तैसे जो काटे कटि जावै। सो सिद्धान्त ठीक नहि भावै ॥

छितराय गये परमाणु सब, रहे न एक मुकाम।
आगि बुझाये बाद जम, लखौ न तिनको ठाम ॥ ५२ ॥

टीका—अगार ठण्ढ होते ही अग्नि के परमाणु वातावरण मे जहाँ-तहाँ छिन्न-भिन्न होकर उड जाते है। जैसे अग्नि बुझने पर अग्नि के परमाणुसमूह एक ठौर एकत्र नही दृश्य होते, तैसे सूर्य का टुकडा गिर के जब बुझ गया, तो इसमे के अग्नि के परमाणु जहाँ-तहाँ उड गये। फिर शेष क्या रहा ? ॥ ५२ ॥

जस पृथ्वी को दश्य लखि, तस न लखौं तिन खोज।
अदश्य भये वह दृश्य नहि, दृश्य जलाग्नत ओज ॥ ५३ ॥

महि में जो गर्मी रही, ताहि पृथक जो और।
सो वह कौनि पदार्थ है, जहँ गर्मी की ठौर॥ ५६॥

टीका—जो कहो पृथ्वी मे गर्मी है तो फिर गर्मी से पृथक वह कोई चीज है तुम्हारे कहने से ही स्पष्ट हो रही है, तब कहो वह कौनसी चीज है जिसमे गर्मी रहती है ? जैसे कोई कहे कि घर के अन्दर मनुष्य रहता है ऐसा सुनकर घर और मनुष्य एक नही समझा जा सकता। यथा—'यदि गर्म पृथ्वी ये अन्दर कहोगे। तो पृथ्वी औ अग्नी अलग ही लहोगे॥ ५६॥

कहौ अग्नि तब कुछ कहब, बनै न तिसमें उष्ण।
अधिक लखी कुछ और जब, सो न अनल लखि पुष्ण॥ ५७॥

टीका—पृथ्वी भी अग्नि है ऐसा कहो तो फिर तुम्हारा यह कहना अयुक्त हो जायगा कि "पृथ्वी में अभी कुछ गर्मी भरी होने से यह सूर्य का टुकड़ा है।" जैसे कोई कहै कि अरहर मे सरसों मिली है, फिर कहै कि अरहर और सरसो एक ही है, तो मिली कहना व्यर्थ हो जायेगा। जब कि अग्नि के अलावा दूसरी वस्तु पृथ्वी प्रत्यक्ष तुम्हारे जानने मे आ रही है, तो कैसे कहा जा सकता है कि वह पृथ्वी उष्ण प्रकाश से पूर्ण अग्नि है॥ ५७॥

कुछ कुछ सब सब में मिले, चारौ भूत स्वतंत्र।
तेहि जाने बिन भेद को, भला रचे षडयंत्र॥ ५८॥

टीका—जैसे पृथ्वी मे कुछ अश गर्मी है, तैसे जल और वायु का भी अश है। क्योकि पृथ्वी के सर्व कार्य सब तत्वो के मिश्रण से ही प्रत्यक्ष बनते-बिगड़ते दृश्यवान है। ऐसे समुद्ररूप जल मे तथा वायु और अग्निरूप सूर्य मे अपना-अपना भाग विशेष और अन्य तत्व सामान्यरूप अनादि से मिश्रित प्रत्यक्ष पृथक-पृथक चारो स्वतंत्र अनादि सबको इन्द्रिय गोचर हो रहे है। ऐसा सत्य निर्णय न जानकर मनुष्य जाल रचा रखा है॥ ५८॥

टीका—जिस प्रकार वृहदरूप यह पृथ्वी मण्डल दिखाई दे रहा है, तिस पृथ्वी के सदृश्य अग्नि के परमाणु (अंगार न्याय) वुझने के बाद वे दृष्टिगोचर होते नही, वल्कि खोजने पर भी वे पकड में नही आते। क्योकि वे परमाणु रूप अदृश्य होकर वातावरण मे जहाँ-तहाँ फैल जाते है। इसीलिये वे अदृश्य हो जाते, समूहरूप से दिखाई नही देते और जहाँ तेजयुक्त वह अग्नि एकत्र दृश्य होती है, वहाँ जलाने लगती ॥ ५३ ॥

जौनि देखावत दृष्टि से, और जलावत नाहिं।
तैसी यहाँ न देखिये, जौन वुझाई जाहि ॥ ५४ ॥

टीका—जो चन्द्रादि आँखो द्वारा प्रकाशरूप से दिखाई देता और जलाता नही, वैसी वात यहाँ अगार आदि बुझाने वाली अग्नि मे है नही, जिसे बुझाई अग्नि ऐसा कहा जाता है। वह वुझने के पहले अवश्य जलाती है, यह सबको प्रत्यक्ष अनुभव है ॥ ५४ ॥

नेत्र बिपय जो होय नहिं, नहिं पृथ्वी सम ठोस।
तव तौ कहूँ न वह भई, महि अकार को कोप ॥ ५५ ॥

टीका—वुझने के वाद जो अग्नि नेत्र गोचर नही होती और पृथ्वी के समान ठोस-घनाकार भी नही है,तो वे अग्नि के अदृश्य परमाणु समूह कही भी पृथ्वी का खजाना नही हो सकते, क्यो कि जिस चीज से जिसका स्वरूप वना होता है उसके अन्दर वही चीज रहती है, इस रीति से यह पृथ्वी सूर्य का टुकड़ा हो तो सूर्य के समान प्रकाश-तापयुक्त रहना चाहिये, बुझना न चाहिये। यदि बुझ जाती है तो अग्नि वुझने पर अदृश्य परमाणु वत पृथ्वी अदृश्य होना चाहिये। पृथ्वी तो आँखो के सामने दृश्य है। अत पृथ्वी का खजाना किसी तरह सूर्य का अग्नि के परमाणु या विद्युत कण नही हो सकते ॥ ५५ ॥

बादशाह ने कहा—जो तू सती का ठीक-ठीक स्वांग बनावेगा तो एक वर्ष के लिये दिवान बनाया जावेगा। और जो अपनी युक्ति में सफल न हुआ तो तुझे प्राण दण्ड दिया जावेगा। दूसरे दिन सती स्त्री का रूप बनाकर बहुरूपिया दरबार में आया। बीरबल ने पहिले ही से दहकते हुए अग्नि का एक कुण्ड तैयार कर रक्खा था। देखते ही बहुरूपिये के होश उड़ गये, उसने जान लिया कि बीरबल ने कल की बात का बदला लेने के लिये यह काम किया है। आज प्राण गये बिना छुटकारा नहीं है। क्योंकि अग्नि में पड़े बिना तो इस स्वांग की पूर्ति नहीं हो सकती और अग्नि में पड़ते ही निश्चय मृत्यु है। थोड़ी देर उसने अपना भेद बादशाह से कह देने का मनसूबा किया, परन्तु ऐसा करने में अपनी फजीहती समझकर अन्त में लाचारी से सती का दृश्य पूर्ण करनेके समय अग्नि में कूद पड़ा, थोड़ी देर में जलकर भस्म हो गया। यह देखकर सब लोग दुखी हो गये। परन्तु बीरबल ने किसी तरह इसका पूर्व वृत्तांत जान लिया था, इसलिये सब लोगों के सामने उसका सच्चा-सच्चा वृत्तांत कह सुनाया और साक्षियों को बादशाह के समक्ष पेश करके अपने कथन को प्रमाणित कर दिया। बादशाह को बड़ा आश्चर्य हुआ और अपने कौशल से शत्रु को मारने में सफल होने पर बादशाह उससे प्रसन्न हुआ तथा उसकी बड़ी प्रशंसा की।

सिद्धान्त—वास्तविक काजी सिंह न था, परन्तु बीरबल को मारने के ध्येय से उसने सिंह का षड्यन्त्र रचके सबको भुला दिया था। बीरबल ने भेदियों द्वारा उसके जाल को समझ लिया, जिससे युक्ति पूर्वक वह अपने को बचा लिया। इसी प्रकार यथार्थ अनादि जगत का पारख न होने से भ्रम वश मनुष्य सूर्य का टुकड़ा पृथ्वी, तिससे सर्व सृष्टि का विकास कल्पना करके अथवा जड़ अणु, त्रसरेणु तत्वों की कड़ियों को यन्त्रों द्वारा विपरीत भास निश्चय कर जड़ कण को ही जीव मान के हिंसावाद प्रचार कर अपने वाक्य बरबरता से सबकी बुद्धि पर आवरण छोड़ दिया। परन्तु धन्य है सर्व परीक्षक सद्गुरु को जो कि यथार्थ जड़-चेतन अनादि जगत का परिचय देकर विकासादि कर्त्ता-धर्त्ता की कल्पना हर लिये।

प्रसंग ४—अंगार आदि कार्य के समान सूर्य को मानने से सूर्य बुझने व नाश होने का दोषारोपण तथा चारों तत्व स्वतन्त्र होने से किसी से उत्पत्ति मानना और किसी से न मानना अज्ञान युक्त पक्षपात दोषों का कथन।

रहे रहे जहँ अग्नि नहिं, देवैं कछू जलाय।
तहाँ आवरण अन्य को, परै ताहि पर जाय॥ ५६॥

षडयंत्र की भली प्रकार परीक्षा करना चाहिए

षडयंत्र-बनावटी पर दृष्टांत

एक दिन धर्म सम्बन्ध मे बीरबल का काजी से बहुत विवाद हुआ। काजी विवाद मे हार गया। तब उसने हर तरह से बीरबल के प्राण लेने का सकल्प किया और अपने सकल्प को सिद्ध करने के लिए बादशाह से एक वर्ष की छुट्टी लेकर परदेश को चला गया। थोडे दिनो का भुलावा देकर पीछे दिल्ली मे बहुरूपिया बनकर आया। वहाँ आकर उसने अपने तमाशो से नगर वासियो को मोहित कर लिया। धीरे-धीरे यह बात बादशाह के कानो तक पहुँची। बादशाह ने उसको अपने महल मे बुलाकर पूछा—तुझको कौन-सा स्वाग अच्छा याद है? बहुरूपिया ने उत्तर दिया—पृथ्वी नाथ! मै सिह का स्वाग अच्छा करना जानता हूँ, यदि मेरा एक खून (एक मनुष्य-वध का अपराध) क्षमा किया जावे तो मै सिह का स्वाग ऐसा आपको दिखला सकता हूँ जिसे देखकर आपको सिह का भ्रम हो जाय, परन्तु उस समय बीरबल को उपस्थित रहना चाहिये। बादशाह ने उसके निवेदन को स्वीकार किया। दूसरे दिन बादशाह से बहुरूपिये का कहना बीरबल को विदित किया, बीरबल ने समझ लिया कि इसमे कुछ न कुछ धोखा है। परन्तु वह बादशाह के आज्ञानुसार तमाशा देखने के लिए उस जगह हाजिर रहा। थोड़ी देर मे सिह की गर्जना सब लोगो के कानो मे पहुँची, परदा दूरकर बहुरूपिया सिह बन के आया। अपने स्वभाव के अनुसार उस सिह ने अनेक तरह की चेष्टा करके बादशाह को मोहित कर दिया सब लोग उसकी प्रशंसा कर रहे थे। इतने मे वह बनावटी सिह बीरबल पर झपटा। देखते ही सबको बीरबल के मारे जाने का पक्का निश्चय हो गया। बहुरूपिये ने बीरबल को मारने के अनेक यत्न किये, परन्तु किसी मे सफल न हुआ। बीरबल के शरीर से रक्त की एक बूँद भी न गिरने पाई। सब लोगो को इस बात से आश्चर्य हुआ, बीरबल को पहिले ही इस मनुष्य के कपट का सदेह हो गया था। इसलिये वह अपने घर से इस तरह का कवच पहन कर आया था कि जिससे किसी शस्त्र का उस पर असर न हो सके। बादशाह बीरबल के प्राण बचने से बहुत प्रसन्न हुआ। बीरबल बहुरूपिये की बड़ी प्रशसा की। बादशाह ने पूछा बीरबल! इसे इनाम मे क्या देना चाहिये? बीरबल बोला—एक वर्ष के लिये दीवान पद पर नियत किया जावे। बहुरूपिया बहुत प्रसन्न हुआ। बीरबल बोला—केवल यह शर्त होनी चाहिये कि जो यह सती का स्वाग जैसा का तैसा करके दिखा दे तो इसको यह पद दिया जावे। बहुरूपिये ने इस बात को स्वीकार किया।

ठण्ढ लगते है कि थोड़ी देर भी पकडना कठिन हो जाता है, मानो हाथ पर सहन ही नही होता ॥ ६२ ॥

साधक योग्यायोग्य से, कहूँ प्रगट कहुँ दाबि ।
और और जब सब रहे, तब यह ऐसी धाबि ॥ ६३ ॥

टीका—इस प्रकार साधक और बाधक अन्य तत्वो के सम-विषम परमाणु सयोग द्वारा कही तो उस वस्तु का गुण प्रगट हो जाता और कही दब जाता। अनन्त कार्य वस्तुओं के बनने-बिगड़ने तथा गुण-शक्ति के दबाव और फैलाव में सब तत्वो की आवश्यकता रहती है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न जब चारों तत्व अनादि स्वतन्त्र रहे है, साथ ही परस्पर संयोगवान होकर एक-एक को दबाते तथा कहीं योग्यता अनुसार एक-दूसरे के गुण को शक्तिमान करते रहते है ॥ ६३ ॥

यहाँ न ऐसी सम्भवै, पावक खास समूह ।
करै आवरण काहि को, जहाँ न अन्य कयूह ॥ ६४ ॥

टीका—सृष्टि आरम्भ मे एक उत्तापमय सूर्य ही सूर्य रूप अग्नि का विस्तार मानने से वहाँ पर न तो बुझना ही बन सकेगा, न टूट कर गिरना ही सम्भव हो सकेगा तथा न उससे अन्य चीजों का उत्पन्न होना ही बनेगा, क्योकि बुझनादि कहने से कौन सा अन्य पदार्थ सूर्य-ताप शक्ति को दबावेगा ? जब वहाँ पर दूसरा कोई अन्य पदार्थ ही नही कहते तो बडे आश्चर्य की बात है कि बुझना-टूटना या एक से अनेक होना यह सब बात कैसे कह रहे है ? फिर आगे के उदाहरण से खुलासा समझिये ॥ ६४ ॥

लोह तपै अंगार सम, तप्त लाल ह्वै जात ।
निकसि गई अगिनी सबै, तब लोहे दिखलात ॥ ६५ ॥

टीका—अग्नि में लोह तपाने पर लोहा अग्निमय लाल-लाल अंगारवत अति उष्ण हो जाता है, परन्तु कुछ देर मे अन्य तत्वो के

टीका—जहाँ अन्य तत्वो में अग्नि मिश्रित होते हुये भी किसी पदार्थ को भस्म नही करती है वहाँ अन्य तत्व पृथ्वी, जल, वायु का विशेप आवरण जानना चाहिये। इस वात को आगे दृष्टात से समझिये ॥ ५९ ॥

जैसे जल के मध्य में, है कछु अनल निवास।
नहीं जलावत वस्तु जहँ, अन्य तत्व योग्यास ॥ ६० ॥

टीका—जैसे जल मे सामान्य उष्णता होने से सामान्यरूप अग्नि है, परन्तु वह किसीको किंचित भी जला नही सकती। हेतु इसका यही है कि अग्नि मे जलानेवाली शक्ति को अन्य विरोधी तत्वो के परमाणुओ का सयोग होने से वे अग्नि की शक्ति को दवा देते हैं। एक तत्व की शक्ति का दवाना और फैलाव होना अन्य तत्वो के योग्य सम्वन्ध होने से वनता है। एक ही तत्व हो तो कभी कम-ज्यादा वह नही हो सकता ॥ ६० ॥

जहाँ न महि के मध्य में, पावक वस्तु जरास।
महि मिलि न्यारा तत्व जो, तेहिका वहि पर गाँस ॥ ६१ ॥

टीका—पूर्वोक्त जहाँ पृथ्वी के वीच मे रही हुई अग्नि है उसमे गर्मी के सिवा जलाने का गुण नही दीखता। इसमे यही हेतु है कि अग्नि की गर्मी से पृथक रही हुई अनादि पृथ्वी और पृथ्वी से पृथक जल-वायु है, इन सब तत्वो के सूक्ष्म परमाणुओ का उन अग्नि के परमाणुओ पर दवाव है जिससे अग्नि की शक्ति पूरी तौर से प्रगट नही होती। और भी ॥ ६१ ॥

पाला ओला वर्फ में, है भी उष्ण निवास।
ऊपर से शीतल अधिक, पकड़त सहत न जास ॥ ६२ ॥

टीका—जल के कार्य—पाला, ओला और वर्फ आदि मे भी उष्णता रूप अग्नि का मेल है, परन्तु ऊपर से वे पाला आदि इतने

तो सदा बने ही रहते है, परन्तु साधक योग्यता पाये बिना बीज-वृक्षादि या पाला-ओलादि कार्य वस्तुओं की उत्पत्ति नही दिखाई देती। असिलात का अर्थ वस्तु बनने की योग्यता, सो योग्य साधक पाये बिना कार्यो की उत्पत्ति नही हो सकती। जैसे जल वायु होते हुये भी बरसात मे पाला-ओलादि बनने की योग्यता न होने से नही बनते और अन्य समयों मे पाला ओलादि बनते-गिरते है। तैसे कार्यो की उत्पत्ति नाश तथा अनेक विभेदयुक्त और कम-विशेष शक्तिमान होने मे सामग्री सहित साधक बाधक योग्यता ही हेतु समझिये। यद्यपि सर्व कार्य-कारण रूप ही है, परन्तु चारो के घट-बढ परमाणुओ के यथायोग्य मिलने ही से भिन्न-भिन्न कार्य असख्य विभेदयुक्त बनते-बिगड़ते हुये सबको प्रत्यक्ष है॥ ६८॥

सूरज अग्नि वैसी नहीं, कारज कोई दिखात।
कारज सम तेहिको लखैं, तब सोऊ बिनशात॥ ६९॥

टीका—जैसे अन्य तत्त्व के योग्यता सहित चार तत्त्वों से असख्य कार्य बनते और नाश होते, तैसेसूर्यका जो स्वरूप है, वह अन्य तत्त्व मिल के नवीन बनता नही, न बिगड़ता ही है, सो प्रत्यक्ष है। बल्कि वह कारणरूप स्वतत्र है, यदि हठ करके कार्यरूप मानो तो उस सूर्य को भी नाश मानना पड़ेगा, सो अनादि काल से आज तक सूर्य का क्यो नही विनाश भया ?॥ ६९॥

सूरज होय बिनाश जब, तब उतपति कारण कौन।
जेहि से उतपति तेहि कहौ, यही हाल लखि तौन॥ ७०॥

टीका—सूर्य को कार्यरूप मानने से उसका किसी दिन नाश अवश्य मानना पडेगा। जब सूर्य नाशवान हो गया तो फिर पृथ्वी का कारण मुख्य कौन ठहरेगा ? दूसरी बात कार्य-रूप सूर्य भी किसी कारण से होना चाहिये। जिस कारण से सूर्य हुआ वह तीसरा

परमाणुओ द्वारा साधक-बाधक होकर जब लोहा से अग्नि निकल जाती है, तब फिर पूर्व सदृश लोहा दिखाई देने लगता है ॥ ६५ ॥

तैसे अगिनी के बुझे, राख बादि रहि जात ।
वह सब महि के कार्य हैं, जिनहिं जलाय परात ॥ ६६ ॥

टीका—पूर्वोक्त प्रमाण से जब अंगार मे से अग्नि निकल जाती है तब लोहावत पृथ्वी का अंश राख शेष रह जाती है। क्यो कि लक्कड कण्डे कोयलादि पृथ्वी के कार्य हैं, उन कार्यो को अग्नि अपनी शक्ति से जला-तपा देती है। पुन अन्य तत्त्वो की बाधक योग्यता से निकलकर ब्रह्माण्डमे इधर-उधर हो जाती है। ये सब बाते अनादि स्वतत्र सब पदार्थो के रहते-रहते ही बनती रहती है ॥६६॥

कारज हेतु अधीन है, जेहि मिलि बनते देखि ।
बिन तेहिके नहिं बनि सकै, कारण रहते लेखि ॥ ६७ ॥

टीका-—सब कार्यो के बनने मे जैसी सामग्री की आवश्यकता लगती है उसी प्रकार साधक योग्यता की आवश्यकता है। साधक योग्यता अनुसार ही तत्त्वो के परमाणुओ का मेल होकर सब कार्य उत्पन्न होते दिखाई देते है। विना साधक योग्यता पाये कारणरूप सामग्री रहते हुये भी वे कार्य नही बनते। जैसे गेहूँ के खेत मे होने वाले अकरा, मुनमुन, बथुई आदि के बीज खेत में पडे रहते जब उनका साधक समय सयोग आ जाता है तब वे अकुरित होते है, अन्यथा नही। एवं ककड़-पत्थर, सोना-चाँदी आदि का बनना कही जल का थल, कही थल का जलादि होना ये सब बाते चारों तत्त्व युक्त तिनकी साधक योग्यता का परस्पर मिलना ही हेतु है ॥६७॥

कार्य बनत जेहि तत्त्व से सो तौ सदा रहात ।
सदा बनै नहिं कार्य वह, बिन पाये असिलात ॥ ६८ ॥

टीका—जिन तत्त्वो से विविध वस्तुये बनती है, वे तत्व समूह

है। ऐसे ही आगे भी चलता रहेगा, याते मर्कट वत जो कल्पना की मूठ बाँध रक्खी है वह यथार्थ पारख से छूट जायगी और जीव निर्बन्ध होकर सुखी हो रहेगा। अत सत्यासत्य पारख करने मे चित्त देना परम कर्तव्य है॥ ७२ ॥

सूरज बुझै न राख लखि, बुझत होत तब भंग।
अघटित उपमा कार्य की, अन्य तत्त्व जेहि अंग॥ ७३ ॥

टीका—उपरोक्त कथन से केवल अग्निरूप सूर्य का बुझना फिर राख होना या खौलकर फिर जमना यह तीन काल मे किसी को प्रत्यक्ष न था, न है, न होगा। यदि सूर्य टुकड़ा होकर बुझता होता तो आज तक सूर्य का विनाश ही हो जाता। देखो! पिघले हुये धातु या अगारादि कार्य की उपमा सूर्य मे कभी नही घट सकती, क्योकि कार्य तो अन्य तत्त्वो के कम-विशेष अंगो के मिश्रण से बनते और विनाश होते रहते। इसीलिये तप्त लोहा या अगारादि कार्य बन-बन के बुझ जाते और कारणरूप सूर्य तो स्वतंत्र है, वह बनता-बिगड़ता है नही अतः कार्य की उपमा कारण मे अघटित[1] है॥ ७ ॥

१ टिप्पणी—इसमे क्या प्रमाग कि र हिले सूर्य ही सूर्य था। इसका साक्षी कौन, कहाँ पर ठहरा? अग्नि से विजाति धर्म वाले तत्त्व कैसे हो गये? सूर्य मे अभी इतनी गर्मी क्यो है? पहिले ही सर्वा श क्यो न ठण्डा हो गया? धीरे-धीरे कहो तो उसमे निमित्त क्या है? सूर्य किससे हुआ? सूक्ष्म किसी शक्ति या द्रव्य से कहो तो वह किससे हुआ? मूल शक्ति को स्वत. कहो तो ऐसे हो सब तत्त्व स्वतः हो तो क्या दोप? इत्यादि प्रश्नो का उत्तर है ही नही। अत विकासवाद मे क्यो, कैसे का यथार्थ उत्तर है ही नही। विचार-युक्त देखने से विकासवाद की कल्पना से प्राचीन ऋषि-मुनियो का परमात्म-वाद कोटि-कोटि हितकारक एव ससार-समाज के लिये सर्वोत्तम कल्याणकारी है, क्योकि प्रकृति पार कुछ जानने-मानने से ही नम्र शुद्ध अन्त करण बन के पारखी सन्तो के सतसग से स्वरूपबोध के अधिकारी बन सकते है। साथ ही शुभाचरग वढ के देश-समाज नर-नारी सबका हित होना निश्चय है और भौतिकवाद के परिणाम मे देह ही निश्चय होकर राजस की अधिकता से

कहाँ से हुआ ? तीसरा जहाँ से हुआ, फिर वह चौथा कहाँ से हुआ ? यही प्रश्न सब पर लागू होता जायगा ॥ ७० ॥

कहँ तक करिये कल्पना, अंत कहूँ नहिं होत ।
थारी व्यञ्जन छोड़ि कै, बातन उदर भरोत ॥ ७१ ॥

टीका—फिर इस कल्पना का कही अन्त भी न होगा, कारण का कारण कर्त्ता का कर्त्ता इस प्रकार कहाँ तक कल्पना करोगे ? इस कल्पना से मुख्य वस्तु का कही ठहराव ही न रहेगा। अत' प्रत्यक्ष थारी मे उत्तम-उत्तम पकवान छोड़कर बात मात्र के लड्डू-पेडा की आशा से क्यो भूखो मरते हो ? तात्पर्य यह हे कि प्रत्यक्ष चारो तत्त्व कारणरूप सदा वर्तमान हे, तिनसे अनेक कार्य होते ही रहते है तथा तिन्हो के द्रष्टा चेतन जीव कर्त्ता जड तत्त्वो से पृथक अनादि-नित्य रहे ही है। फिर ऐसे कारण-कार्य-कर्त्ता आदि के सत्य निर्णय को छोड़कर वृथा कल्पना मे क्यो भटकते फिरते हो ? स्मरण रहे। "जड-चेतन सम्बन्ध अनादी, बीच भरम यह माया है। प्रवाह रूप वह रचै बिनाशै, और न कोई नचाया है ॥" ॥ ७१ ॥

असल तेज जो वह रहा, जग उतपति तब झूँठ ।
जस देखो तैसे रहा, कल्पित छूटै मूँठ ॥ ७२ ॥

टीका—जिसमे दूसरा अन्य तत्त्व कोई नही केवल उत्ताप ही उत्ताप हो, यदि ऐसा मूल तत्त्व सूर्य को मानते हो, तो तिससे पृथ्वी आदि जगत का विकास कहना झूठ हो जायगा, क्योकि अन्य तत्त्व के रहे बिना किसी कार्य की सिद्धि होती ही नहीं। भिन्न-भिन्न कारण तत्त्व नित्य अनादि तथा तिन्हो से कार्य बनते-बिगड़ते प्रवाह-रूप अनादि और तिन कार्य-कारणो के जाननहार चेतन जीव अखण्ड-अनादि हैं। एवं जैसा जड चेतनमय ससार वर्तमान मे विवेक युक्त अनुभव हो रहा है तैसे ही अनादि काल से चला आया

टीका—कहते है सूर्य से पृथ्वी उत्पन्न हुई, तो दूसरे तत्त्व क्या हानि किये थे, जो उन्हे जगत का उत्पादक नही माना गया ! जब कि सब तत्त्व अपने-अपने गुण-धर्म युक्त अलग-अलग स्वतन्त्र अनादि दृश्यवान है। इसलिये वे प्रत्यक्ष निज-निज गुण-धर्म युक्त पृथक-पृथक क्रियाशील दृश्य हो रहे है। यथा—"लखो सिन्धु भारी ये भूमी सदा से। सदा वायु चलती लखौ रवि प्रकाशे ॥" अत सब तत्त्व अनादि है ॥ ७६ ॥

बड़ा छोट केहिको कहैं, जब नहिं काहु से काहु ।
अधिष्ठान करि एक को, पूर्व दोष तब आहु ॥ ७७ ॥

टीका—देखो ! जब पूर्व युक्तियो से एक तत्त्व से अन्य तत्त्वो की उत्पत्ति नही हो सकती तो उनमें कौन किससे बड़ा माना जाय और कौन किससे छोटा ? विवेकयुक्त देखने से सब अपने-अपने गुण-धर्मो मे बलवान होने से समान ही है। यदि मिथ्या हठता सहित उनमे से किसी एक को सबका अधिष्ठान कारण या सबसे बडा मानो तो फिर पूर्व कथित समग्र दोष-प्रश्न उपस्थित हो जायँगे, जिनका समाधान न होने से दूषण-रूप कल्पित सिद्धात त्याज्य है ॥ ७७ ॥

एक से उतपति अन्य की, जब नहिं लखिये खोज ।
तब तौ ज्यों का तेवहिं सब, जैसा लखते रोज ॥ ७८ ॥

टीका—एक तत्त्व से दूसरे तत्त्व की उत्पत्ति नही होती, यह बात जब तलाश करके भली प्रकार देखा जाना गया है, अब वर्तमान तथा परम्परा से भूतकाल और भविष्य मे भी विरोधी धर्म से अन्य विरोधी धर्म होना असम्भव है तथा अभाव से भाव नही होता। जब यह बात तीन काल मे अकाट्य और अबाध्य है, तो फिर इससे स्पष्ट होता है कि जैसा इस वर्तमान मे भिन्न गुण-

अहै चतुर्थीकरण जो, सूरज केर सरूप।
तैसहि पृथ्वी को लखो, उतपति काहि कभूप ॥ ७४ ॥

टीका—यदि सूर्य मे भी अन्य तत्त्व चतुर्थीकरण से मिश्रित है तिससे जगत की उत्पत्ति भई, ऐसा कहो तो सूर्य के समान ही पृथ्वी भी चतुर्थीकरणरूप से स्थित है फिर तुम उत्पत्ति किसकी कहते हो? यह बात ऐसी ही है कि जैसे कोई कहे कि हम तुम दोनो साथ ही बराबर सम अवस्था के है पर तुम्हारा पिता मै हूं अर्थात हमारे ही से तुम उत्पन्न हुये हो तद्वत ॥ ७४ ॥

जल वायू तैसहिं लखो, सबका सब में मेल।
उतपति कहना व्यर्थ है, बातन केर अमेल ॥ ७५ ॥

टीका—सूर्य और पृथ्वी के समान ही समुद्ररूप जल तथा वायु-मडल पूर्वोक्त एक दूसरे मे सूक्ष्माश से सयोवान और अपना-अपना भाग विशेष रूप अनादि से सबके सनमुख ही है। इनसे कारणरूप चारो भूतो को उत्पन्न मानना कल्पना ही कल्पना करना है तथा बात मात्र का झकाझोर करके व्यर्थ प्रलाप करना है ॥ ७५ ॥

सूरज से उतपति कहैं, अन्य बिगारे काह।
सबही तत्त्व स्वतंत्र जब, अपनी अपनी राह ॥ ७६ ॥

यद्यपि नाना यत्र-नवीन विलासी कारोबार मे बढे, तथापि साथ ही उद्दण्डता असयमिक व्यवहार बढकर आगे स्त्री-पुरुषो मे जो नास्तिकता फैल के लम्पटता बढ रही है, उसकी कोई हद्द नही 'मुख मे मिश्री कण्ठ कुठार न्याय' उनके दु.ख-चिन्ता का भी पार नही। अत प्रत्येक स्त्री-पुरुषो, पाठको विद्वानो को चाहिये कि पूर्वोक्त कल्पना को ही जीवन फल न समझे। इस सद्ग्रन्थ और सत्सग से मिथ्या कल्पना अनुमान को हृदय से निकाल के फेके और धर्माचार्यो की कही हित प्रिय धर्म की बाते सादर स्वीकार करके क्रमश प्रकृति भिन्न नित्य चैतन्य राम को शोधै। पारखी गुरु ही के सत्सग से यथार्थ जाने और ठहरे तथा जन कल्प तदुच्छिद्रुल मत कभी स्वीकार न करे।

होकर वढना, मोटाना तथा अत मे नाश होना ये तीनो बाते नही बन सकती। यह बात युक्ति युक्त सवकी आँखो के सामने है, इसे जरा समझो, ठहर के देखो ॥ ८० ॥

तैसहि धरणी के विषे, समुझि लेहु सब हाल।
उतपति थिति सिमिटब नहीं, नाशिन बिन तिन चाल ॥ ८१ ॥

टीका—भाँटावत पृथ्वी को मानने से पूर्वोक्त पृथ्वी के आदि, मध्य, अन्त मे पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु का भी रहना आवश्यक है, इसे भली प्रकार समझ के देखो! किसी भी चीज की उत्पत्ति वृद्धि और सिकुड़न मे चारो तत्वो की क्रियाये ही मुख्य हेतु है। तैसे ही किसी कार्य का नाश होना भी सब तत्वो की क्रिया चाल विना नही हो सकता ॥ ८१ ॥

सब भूतन बिन होत नहिं, उतपति थिति संहार।
उतपति थिति नाशब जहाँ, तहँ सवही संसार ॥ ८२ ॥

टीका—विस्तार रूप और सूक्ष्म पृथ्वी, जल, अग्नि वायु की साधक-बाधक क्रियाओ के विना न तो बीज-वृक्षादि किसी कार्य वस्तु की उत्पत्ति होती है, न उसका फैलावा ही होता है तथा न उसका नाश होता है, ऐसा प्रत्यक्ष देखा जाता है। जहाँ उत्पत्ति, स्थिति और विनाश का प्रवाह हरदम चालू है उसीका नाम ससार या जगत

पुन खूब पानी बरसने के पश्चात पानी सूख कर भुने भाँटा वत धरती सिकुड के जहाँ-तहाँ फट गई। वस वही धीरे-धीरे विस्तारित दरार-रेखा का विकास के होकर समुद्र बन गया। कितनी कल्पना करते है? यहाँ इस कल्पना का सहार किया जाता है। देखो! एक तो भाँटा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुयुक्त बीज शक्ति से समयानुसार होता है, वढता-मोटाता है, पुन. अग्नि मे सेकने से उसमे का विशेप जल भाग उड़कर पृथ्वी का भाग सिमिटन रूप मे दिखाई देता है। इस प्रकार भाँटा या अन्य फल-फूलो को उत्पत्ति ठहराव तथा तिन्हो के विनाश होने मे साधक और बाधकरूप चार तत्वो का रहना अनिवार्य और प्रत्यक्ष है।

धर्मयुक्त ससार दिखाई देता है, तैसे ही अनन्त काल से ससार रहते चला आया है और चला जायगा। "ऐसो प्रवाह रूप संसारा। अनादि काल से चली यह धारा॥" [जड चेतन भे०] ॥ ७८ ॥

महि उतपति रवि से कही, सो सब ठहरा झूँठ।
सृष्टी क्रम तेहि बिन नहीं, तजौ कल्पना मूँठ॥ ७९ ॥

टीका—पूर्वोक्त जो सूर्य से पृथ्वी का होना कहते है सो सब प्रत्यक्ष युक्ति प्रमाण से मिथ्या ठहरा। मूल ही नही तो शाखा-पल्लव कहाँ? इस न्याय से सृष्टिक्रम जैसा कि वे सूर्य से पृथ्वी, पृथ्वी से सबका विकास होना मानते, वैसा उनकी सब कल्पना झूठी ठहरी। सूर्य से जब पृथ्वी नही ओर उस पृथ्वी विना सृष्टि सिल्सिला का विकास भी नही तथा प्रवाहरूप ससार तो प्रत्यक्ष है। इससे स्पष्ट हुआ कि सूर्य, पृथ्वी, जल, वायु ये कारण तत्त्व तथा असंख्य देहधारी जीव व समग्र ससार अनादि ज्यो का त्यो है, ऐसा समझ के विकासवाद सयोगवाद की मोह मुट्ठी परख के छोड देना चाहिये॥ ७९ ॥

प्रसग ५—दृष्टात और दृष्टात की सारी घटनाओ के चिन्ह उत्पति की सिद्धि मे दिये हुए जगत उत्पत्ति के पूर्व ही सर्व भूतादि ससार का अस्तित्व रहना कथन

चार तत्व बिना ना कहूँ, सिकुरत भाँटा देखि।
उपजब बिंते बिनशब नहीं, समुझहु बात सलेखि॥ ८० ॥

टीका—पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि ये चारों तत्व यदि न हों तो भाँटा[1] का सिकुड़ना तो दूर रहा वल्कि भाँटा का अकुरयुक्त उत्पन्न

[1] टिप्पणी—जैसे भाँटा पहिले सुडौल रहता, पुन. अग्नि मे भूनके ठण्डा कर देने से उसमे जहाँ-तहाँ सिकुडन पड जाती है। तैसे पृथ्वी के आदि विकास पृथ्वी पर समुद्र न था। जव सूर्यांश पृथ्वी वहुत काल से ठढी होती गई,

टीका—अनादि क्रियाशील सब तत्व एक दूसरे को उत्तेजित करते रहते है। जैसे विशेष गर्मी वायु को उत्तेजित करती, तो वायु जल अग्नि को उत्तेजित करती, तभी समूह द्रव्यो में से छोटे-बड़े विभागअंश बन जाते। "अग्नि जला के प्रमाणू बनाता। वायू प्रमाणू को लैकै उड़ाता" ॥ एव अन्य तत्वयुक्त प्रेरक वायु द्वारा वातावरण में बादल घनाकार होकर पुनः परस्पर वायुघर्षण द्वारा विद्युत उत्पन्न होता तथा उचित संयोग से बादल द्वारा पानी वर्षने लगता। इस प्रकार सर्व कार्यो के आदि, अन्त, मध्य मे चारो तत्व स्थित रहते है, कोई चीज नवीन नहीं हो जाती ॥ ८५ ॥

यहि अन्दर दृष्टांत सब, इन उतपति में जौन।
जेहि उतपति हित कल्पना, तेहि पूरब सिधि तौन ॥ ८६ ॥

टीका—जिन तत्वो की उत्पत्ति सिद्धि करने के लिये आरम्भ-वादी अनेक दृष्टात देते है, वे सब दृष्टात इन्ही चारों तत्व कारण-कार्य के भीतर ही आ जाते है, वे कहते है कि जैसे दो वायु सघर्षण से जल हो जाता या विजली हो जाती तैसे दो के योग से तीसरी नवीन चीज हो जाती है, पर यह बात बिल्कुल मिथ्या है, क्योकि जहाँ एक तत्व समझा जाता है वहाँ विवेक से चारो तत्व सूक्ष्माश मिले होते है। तब फिर एक का संयोग ही कहना अघटित है। पुन अलग-अलग भी कारण चारों तत्व विराजमान है। अत जिन तत्वो की उत्पत्ति के लिये सारे दृष्टान्तरूप विविध कल्पना गढते रहते है वे सब तत्व दृष्टातरूप बिजली-बादल आदि कार्य के पहले ही कारण रूप अनादि स्वत इसी तरह प्रसिद्ध हो रहे है। फिर तो—"जगत आदि अवतार मध्य मे, किर्तम कर्त्ता मानी। कर्त्ता आदि की मध्य चाहियें, पुत्रहि पिता बखानी ॥" वाली कथा हो गई पुन आगे विचारिये ॥ ८६ ॥

है। सो यह जगत इसी प्रकार कारण-कार्यरूप अनादि से चला ही आया है तथा चला जायगा। फिर सम्पूर्ण ससार कब नहीं था ? और अब इसका नवीन रूप से क्रमश विकास की कल्पना या यकबारगी उत्पत्ति तथा प्रलय की कल्पना क्यो किया जाय ॥ ८२ ॥

सिन्धु कूप सुरसरि मही, तन धारिन निर्वाह।
मिला तेज जल इन जगह, क्रियाशील दर्शाह ॥ ८३ ॥

टीका—समुद्र, गंगादिक नदियाँ और कूप-तड़ागादि मे रहा हुआ जल तत्व इस पृथ्वी पर अनादि काल से वर्तमान है। जिससे अनादि शरीरधारियो के पानी पीने स्नानादि के कार्यो मे जल तत्व उपयोगी होता रहता है ओर उस जल तत्व में सूक्ष्माश अग्नि का भी मिश्रण है। वायु तथा उष्णता की ही वजह से जल तत्व भाप बनकर ऊपर नीचे आया जाया करता है। जल मे जो गर्मपना है, वह अग्नि का ही अश है। एव अन्य तत्व सहित जल तत्व क्रियावान प्रत्यक्ष देखा जाता है ॥ ८३ ॥

तिन संधिन के बीच में, पौन गती लखि लेव।
संयोगिक सम्बन्ध तिन, चारौ रहत सदेव ॥ ८४ ॥

टीका—अनन्त अणुओ के समूह रूप जल तत्व की सन्धियो मे वायु क्रियाशील स्थित है। तैसे ही सूक्ष्म सूक्ष्म पृथ्वी के असख्य कण भी जल मे मिले होते है। इस प्रकार जल तत्व मे अन्य तीनों तत्व सूक्ष्माश रूप अनादि से सयोगवान मिले जुले रहते है। ऐसे कारण-रूप चारो तत्वों मे अपना-अपना भाग विशेष व अन्य तत्व सूक्ष्माश अनादि से सयोगवान है। इस प्रकार चारो तत्व सदा से रहे हुये अनादि है ॥ ८४ ॥

उद्वेगन सब सब में करैं, तबही होत विभाग।
घर्षण बिजुली वायु से, बारिद वर्षा लाग ॥ ८५ ॥

फटी मही तब सिन्धु भा, अहै असम्भव बात।
बिन तेहि के नहिं बनि सकै, बातन से कुशलात॥ ६०॥

टीका—पूर्वोक्त पृथ्वी सिकुड़ने या फटने के पश्चात समुद्र का विकास हुआ कहना बिल्कुल अनहोनी बात है। क्योकि समुद्ररूप जल प्रथम रहे बिना वर्षा न होने से पृथ्वी मे गीलापन ही नही बन सकता। जब किसी प्रकार गीलापन न हो तो पश्चात रुक्ष होकर सिमिटना या फटना बने ही कैसे ? अरे ये जीव महा मिथ्या बातो से अपना कल्याण चाहते है, सो कैसे होगा ? ठीक-ठीक जब तक यथार्थ ज्ञान न हो तब तक जीव का कहाँ कुशल-मगल ?

सच है साखी—"कबीर काहू अस कहो, कान काग लिये जाय।
　　　　कान न टोवै बावरा, खोजै दहुँ दिशि धाय॥"
　　　　　　　　　　(श्री गुरु दयाल साहेब)

विवेचन

पूर्वपक्षी—हर एक महाद्वीप विवेचन किनारोंको ध्यान से देखो तो तुम्हे बहुत खाडियाँ और कटाने मिलेगी। इनमे कुछ बड़ी खाड़ियाँ धरती के धंस जाने से बन गई है। जैसे उत्तरी अमेरिका मे हड़सन खाड़ी आदि यूरोप मे वाल्टिक समुद्रादि ये झीले भी भूभाग धसने से बन गई है। कुछ छोटी झीले ज्वालामुखी पर्वतो के मुख मे पानी इकट्ठा होने से बन गयी है। हर एक महाद्वीप के कटे हुए किनारे पृथ्वी के फटने, धसने या नदियों के कटान से अथवा समुद्र की लहरों से बन गये है। तुम पढ चुके हो कि गर्मी, सर्दी, हवा, बर्फ, वर्षा, समुद्र की लहरे भू भागो की प्राकृतिक दशा को धीरे-धीरे बदलती रहती है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो भूमि और इन साधनो मे निरन्तर सग्राम होता रहता है। ऊँची भूमि को ये तोड-फोडकर समतल करते है और गड्ढो को भरते है। पृथ्वी के अनेक भाग भूचाल के कारण धसते, फटते तथा उठते रहते है। इस प्रकार पृथ्वी का धरातल

पहिले रहा समुद्र जब, हेमालय को बर्फ।
भाप उठै बर्षा बनै, पाय योग्यता तर्फ ॥ ८७ ॥

टीका—देखो ! पानी बर्वने के पहिले जब समुद्र और हिमालय रहा है, तब तो सूर्य की किरणो द्वारा भाप उडकर बादल बन के पुन. गर्मी-वायु आदि का मिलान होकर वर्षा होती है। यदि समुद्र और हिमालय आदि पहले न होवे तो मूर्य की किरणो द्वारा क्या भाप बने ? और ऊपर उडकर बादल बन के वायु के वेगो से फिर जल की वर्षा भी कैसे होवे ? अत बादल आदि कार्य बनने की सामग्री चारो तत्व प्रथम से विद्यमान रहते है। विवेक से यह बात सबको विदित हो जाती है ॥ ८७ ॥

बरसे से जहँ महि भरै, कूप नदी जल लाय।
सूखि गये के बाद तब, जहाँ तहाँ फटि जाय ॥ ८८ ॥

टीका—अब पृथ्वी फटने की कथा सुनिये—जहाँ खूब पानी वर्ष कर खेतो मे भर जाता है या कुआँ, नदी, नहर आदि के जल से जो भूमिका भर दी जाती है, पुन· कुछ दिन के बाद उष्णता द्वारा जल सूख जाने से जहाँ-तहाँ उसी पृथ्वी मे दरारें बन जाती है। अस्तु करार या पृथ्वी फटने के हेतु जलादि अन्य तत्व ही है क्योंकि ॥८८॥

बिन पृथ्वी जल पवन के, अरु मिलि उष्ण लहान।
महि चिटकब कबहूँ नहीं, पहिले वही रहान ॥ ८९ ॥

टीका—पूर्वोक्त पृथ्वी, जल, वायु तथा अग्निरूप उष्णता तहाँ मिले बिना पृथ्वी का चिटकना, सिकुड़ना, फटना या दरार होना कभी नही बन सकता। चाहे कही भी पृथ्वी फटेगी या धसेगी वहाँ अन्य तत्वों की अनेक क्रिया होना ही हेतु समझिये। याते पृथ्वी के साथ ही अन्य तत्व अर्थात समुद्ररूप जल, सूर्य तथा वायु मण्डल पहिले ही क्रियाशील रहते आये जिससे फटना, धसना, चिटकना ये सब कार्य सम्भव होते आये है ॥ ८९ ॥

रहा। फिर सूर्य से नवीन उत्पत्ति मानने की आवश्यकता ही कौन है ? जब पृथ्वी अनादि तथा उत्पत्ति रहित है तो पर्त जमने की नवीनरूप मे हेतु ही क्या रहेगा ? पृत्वी मे कार्यो का बनना-विगडना तो निरन्तर स्वाभाविक चालू ही रहता है फिर दस करोड़ की कल्पना ही व्यर्थ है। इधर-उधर परिवर्तन होना चारो तत्वो का स्वाभाविक धर्म ही है। किन्तु अपने-अपने गुण शक्ति के अन्दर ही। देखो ! भिन्न-भिन्न स्थूल मण्डल और सूक्ष्मरूप से मिले हुये अनादि काल से प्रत्यक्ष क्रियाशील सर्व तत्व अनुभव हो रहे है। तुम गैस कहते हो दूसरे भूत या तत्व कहते है, सो तो वायु मे अन्य तत्व सूक्ष्म-रूप से मिश्रित ही कहा जाता है, इसमे नवीनता क्या है ?

कोइ अवला अज्ञात यक, दै विधवा पर राज।
कह्यो अचल अहिवात तव, पतिव्रता के काज ॥ ६१ ॥

टीका—जैसे विधवा स्त्री हो और वह पतिव्रता हो। ऐसी स्त्री पर कोई दूसरी अनभिज्ञ स्त्री प्रसन्न होकर आशीर्वाद देवे कि "तेरा अहिवात (पुरुप सहित का वास) सदा कायम रहे।" तो यह वात कैसे हो सकती है ? क्योकि एक-व्रत रखने वाली सती स्त्री पुरुप के मरने पर दूसरा पुरुष तो कर नही सकती ओर पुरुप के विना सदा अहिबात रहना भी कैसे कहा जा सकता है ? पर यह अनभिज्ञ स्त्री इस भेद को जान सकी नही, जिससे विधवा सती स्त्री की प्रसन्नता निमित्त सदा अहिवात की बात उसके प्रति कही, यह वात उल्टे उसके दु ख का कारण है। सती स्त्री सोचती है—मै एक पुरुप व्रती हूं, अब मेरा पुरुष मर गया है तो यह स्त्री विना भेद जाने ऐसा क्यो कह रही है कि तू सदा अहिवाती बनी रहो ? अहो ! यह वचन मेरे धर्मभ्रष्ट हेतुक है। तद्वत जगत आरम्भ—विकास मानने वाले जगत की उत्पत्ति मे जितने दृष्टात देते हैं, वे सव वर्तमान सत्र तत्वो के सहित ही है और जहाँ घटाते है वहाँ एक ही चीज मानते है। यदि

कभी भी सपाट ओर चौरस नही होने पाता कहीं घाटी है तो कहीं ऊँचे पहाड़ इत्यादि।

उत्तरपक्षी—इस प्रमाण से पृथ्वी पर ये सब बाते होते हुये भी सम्पूर्ण पृथ्वी समुद्र वायु सूर्यमण्डल का भी सर्वथा नाश नहीं देखा जाता और जब एक तरफ कुछ प्राकृतिक दशा बिगडती तो दूसरी तरफ बनती ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव है। इसलिये पृथ्वी की किसी काल मेउत्पत्ति भी नही, क्योकि कार्यो का बनना, बिगड़ना, बिगडकर पुन बनना यह रफ्तार बन्द नहीं होता।

पूर्वपक्षी—विद्वानों का अनुमान है कि आरम्भ मे पृथ्वी गैस की पुज थी उसकी गर्मी विकीर्ण द्वारा नष्ट होकर द्रवरूप होने मे लगभग पॉच करोड वर्ष लगे होगे। उस द्रवरूप पृथ्वी के तलपर पर्त जमने मे दस करोड़ वर्ष लगे होगे। इस प्रकार उत्पत्ति के पन्द्रह करोड़ वर्ष बाद पृथ्वी के तल पर चट्टानो की पपड़ी जम सकी। जब यह पर्त और मोटी हुई तो वायुमण्डल के पानी भाप ठण्डी होकर पानी बन गया और उसने पृथ्वी के तल के उन भागो को पानी से भर दिया, जहाँ पर्त जमते समय पृथ्वी खोखली हो गई थी। पृथ्वी के ऊँचे भाग स्थल बन गये और गहरे भाग समुद्र।" यहाँ पृथ्वी-समुद्र दोनो की उत्पत्ति मानी गई। पुनः "यह वायु का खोल ठण्डी समय ससार की रचना मे आया, जब पृथ्वी ठण्ढी हो रही थी। वायु मे कई गैसो का मिश्रण है।"

उत्तरपक्षी—पृथ्वी तो सूर्य से टूट पड़ी और वायु कहाँ से आ गई? तथा तिसमे जल कहाँ से आ गया? पहिले समुद्र तो था नही तो वायु मे भाप कहाँ से आकर्पित हुई? वायुमण्डल मे पानी मानने से वायुमण्डल और पानी दोनो का अस्तित्व पहिले ही रहा तथा सूर्य से पृथ्वी मानने से सूर्य और पृथ्वी का अस्तित्व भी पहिले ही से

होके मलाई वत जमने क्रमश· शीतल होकर पृथ्वी ठोस रूप मे जम गई, यह बात कल्पना मात्र ही है, क्योंकि दूध की उत्पत्ति, पुनः गर्माने, ठण्ढाने, मलाई जम जाने आदि मे पहिले ही धरती, तृण, बीज, वृक्ष, भैंस, गऊ, मनुष्य, प्रकाश, वायु आदि सब ससार है। अग्नि, पृथ्वी, जल, वायु और देहधारी जीव जब पूर्व मे रहते आये है, तब उत्तर में उन्ही से दूध और मलाई बन जाती है। दूध या कोई भी कार्य वस्तुओं के ऐसे दृष्टांत नही देखे गये है जो जगत पदार्थ के बाहर के हो। अर्थात पृथ्वी आदि जगत स्थित रहे बिना कोई उत्पत्तिवाला दृष्टात बनते नही देखा जाता ॥ ९४ ॥

जस उतपति दृष्टांत की, तस उतपति सिद्धांत।
जगत बिना सो न बनै, तेहिते उतपति भ्रांत ॥ ९५ ॥

टीका—दृष्टांत तभी घट सकता है, जब सिद्धात की तुलना हो। जैसे दुग्ध मलाई आदि की उत्पत्ति मे जड और देहधारी चेतन पिण्ड-ब्रह्माण्ड सब सामग्री स्थित रहती है। इसी प्रकार मलाई के दृष्टांत के समान सिद्धात रूप पृथ्वी की उत्पत्ति के पूर्व ही पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि सब तत्वो की सिद्धि होती है। इस रीति से सम्पूर्ण जगत के रहे बिना न दृष्टात की सिद्धि, न सिद्धात की स्थिति इस श्रेष्ठ अनुभव से पृथ्वी, जल आदि जगत की उत्पत्ति या विकास का कहना भ्रान्ति मात्र है ॥ ९५ ॥

[प्रसंग ६—चैतन्य और जड उत्पत्ति रहित सदा से सिद्ध]

सवैया

गैस के लोप मे कारण कौन बिना सब तत्व रहे पहिले।
खौलत शीतल ठोस बनै नहिं खोखलि पर्त कहाँ कहिले ॥
भाप उठै अरु वायु रहे तहँ वर्षं क योग मिला चहिले।
ये वर्तमानहि को सब दृश्य है भर्मत जीव सदा दहिले ॥ १ ॥

सब सृष्टि माने तो तहाँ सब सामग्री, जहाँ सब सामग्री तहाँ सब सृष्टि। फिर एक से सर्व सृष्टि होना असम्भव। यदि सब सामग्री न माने और एक से सब सृष्टि उत्पत्ति माने तो अयोग्य है, ये दोनो बातें विरोधी, तीन काल मे असम्भव है॥ ९१॥

कूप तड़ाग वर्षा जहाँ, सरिता में बहि जाय।
बिना सिन्धु सो जाय कहँ, जो तेहिमें ठहराय॥ ९२॥

टीका—अनादि समुद्र यदि न हो तो तमाम कुआँ-तालावों का जल ऊपर आकर्षित हो पुन: वर्षकर नदियों मे मिल के बहा हुआ विपुल जल प्रवाह कहाँ जाकर ठहरे? और यदि वृहद कारण रूप सिन्धु जहाँ न हो तो भाप बनकर वर्षे ही क्या? तथा कुआँ-तालाब की भी परम्परा धारा कैसे रहे?॥ ९२॥

जल मिलि महि त्रसरेणु सब, लसे अधिक ठसि जाय।
टूटि फाटि तबही सकै, जब सबही मिलि जाय॥ ९३॥

टीका—पृथ्वी फटने या गड्ढा होने से जो समुद्र की उत्पत्ति मानते है सो भी महा असम्भव है। देखो! जब जल और पृथ्वी दोनो रहे है तब ही जल वर्षने से या किसी भी प्रकार से जल अणुओ से पृथ्वी के त्रसरेणु समूह गीले होकर परस्पर एक-एक मे अधिक ठस-लस मिश्रित हो जाते। फिर उनमे घाम वायु से सूखा-पन आ जाता है, तबही मिट्टी मे जहाँ-तहाँ सिकुड़न या फटकर दरारे बन के गहिरी हो जाती है। सो यह बात जब चारो तत्व है तबही बनती है। नही तो अकेली पृथ्वी मे संकोच-विकास कदापि नही हो सकता॥ ९३॥

अनल मही जल पवन से, भई मलाई चीज।
बिन उनके नहिं बनि सकै, कोइ उपमा लखि लीज॥ ९४॥

टीका—प्रथम सूर्य से टूटकर धातु वत खौलने, गर्म दूध ठण्डा

तैसे पहिले भी थी, क्योकि ये बाते वर्तमान मे सब तत्वों के यथावत रहते-रहते ही देखी जाती है। किन्तु वर्तमान वत अनादि सृष्टि जाने बिना जगत उत्पत्ति की मिथ्या कल्पना मे यह जीव पीडित हो रहा है।

लावनी

सूरज गोल से गोला निकसत कबहुँ न देखा कोई कहीं।
तब भी तिसकी करैं कल्पना नियम अनादी टलै नहीं॥
धरति क बच्चा मानि चन्द्रमा गेहुँ से होते धान नहीं।
कोदौ से नहिं ईख कि उतपति बजड़ासे नहिं आम गही॥ १॥

टीका—सूर्य का कुछ हिस्सा टूटकर सूर्य के समान दूसरा सूर्य मे से निकलते हुए किसी ने किसी काल मे नही देखा, फिर भी पृथ्वी गोला को सूर्य गोला से निकला हुआ कल्पना से सिद्ध करते है। सिद्ध करने पर भी सूर्य उष्ण रूप, पृथ्वी कठोर रूप, जल शीतल रूप, वायु कोमल रूप भिन्न ही भिन्न जो अनादि काल से गुण-धर्म युक्त रहे है वे एक होते नही। दिन रात कभी एक होते नही, देखो! कल्पना करने वाले नर जीवों ने कैसी-कैसी बिना जड पेड़ की कल्पना कर ली है? एक कल्पना करते है कि "यदि सम्भव होता कि हम पृथ्वी की उत्पत्ति के दृश्य को देख सकते तो शायद एक बडा भारी आग का गोला सूर्य से अलग होते देखते। तात्पर्य यह है कि हमारी पृथ्वी आरम्भ मे प्रज्वलित गैस की पुञ्ज थी। धीरे-धीरे उस ज्वाला की गर्मी परिवर्तन द्वारा नष्ट होने लगी और पृथ्वी पिघले (द्रव) पिण्ड के रूप मे आ गई। जिसके चारों ओर एक तह गैस की थी। वह गैस की तह एक वायु मण्डल बन गई। इसी बीच मे एक और घटना हुई। जब पृथ्वी गैस के रूप सूर्य की परिक्रमा कर रही थी तब सूर्य के आकर्पण ने पृथ्वी के तल पर से थोड़ी सी गैस अपनी ओर खीच ली। यह गैस पृथ्वी की परिक्रमा करने लगी

टीका—जो कहते हे कि पहले पृथ्वी प्रज्वलित गैस की पुज थी। सूरज से टूटते ही पृथ्वी धातु के समान खौल रही थी। जिसके चारो ओर तेजवान गैस थी। क्रमश ठण्ढाते, पर्त जमते जो भाग खोखले रह गये वे ही ममुद्र हुए, वाकी थल ऊँचे भाग पहाड़ इत्यादि। इस पर विचारना चाहिये कि जब सब तत्व पृथ्वी, जल, वायु पहिले नही थे, केवल अग्नि रूप प्रज्वलित गैस ही थी तो उस गैस के न रह जाने मे क्या कारण हुआ? कोई भी गर्म चीज जल, वायु, के विना ठण्डी नही हो सकती। याते साधक वाधक जल, वायु पृथ्वी तत्व के उपस्थित विना केवल प्रज्वलित ताप या गैस के ठढाने का हेतु नही है। खौलना, क्रमश शीतल होना, ठोस हो जाना, कही खोखली गड्ढेदार वन जाना, पर्त जम जाना ये सव वाते कहाँ किसमे थी? विना पृथ्वी, विना जल, विना वायु के केवल अग्नि मे पूर्वोक्त वाते होना किसीने नही देखा, न विवेक से सिद्ध ही होता है! देखो! जहाँ पृथ्वी के कार्य लोहा सोना चादी आदि अग्नि द्वारा पिघला के ढाले जाते हे, वहाँ चारो तत्वो से मिलकर लोहादि कार्य वने हुये है तभी अग्नि उन्हे पिघला कर पुन ठण्ढाने से ठोसवान वन जाते। विना चार तत्व के केवल अग्नि मे पूर्व वाते नही देखी जाती। इससे सिद्ध हुआ कि जहाँ खौलना, ठण्ढाना, ठोसवान वनना कहा जाता है, वहाँ चारो तत्व ज्यो के त्यों सिद्ध होते ह। जो सृष्टि उत्पत्ति के वारे मे कहते है कि पृथ्वी ठण्ढ होने के पश्चात भाप उठकर वादल वन के खूव पानी वरसने से गहरे भाग समुद्र वन गये तथा पृथ्वी कडी होने के साथ ही पृथ्वी के चारों ओर वायु भी थी तो भाप उठना जल तत्व रहे विना वन ही नही सकता। वायु तत्व था ही। वर्षने के योग्य ठढी गर्मी वायु सव तत्व मिले विना पानी वर्ष ही कैसे सकता है? यदि भाप उठी, वायु रही, पानी वर्षा तो फिर यह कहो कि वर्तमान मे जैसे आज सव सम्यक सृष्टि है

शक्ति रहे बिना उत्तर में अनेक शक्ति आयेगी कहाँ से ? क्योंकि अभाव से तो भाव होता नही। इस यथार्थ अनुभव से यदि जगत उत्पत्ति की पूर्ण सामग्री पूर्व में थी तब फिर उत्पत्ति क्या किसकी हुई ? फिर नवीन उत्पत्ति कहने की आवश्यकता ही क्या है ? जब उत्पत्ति की यथावत सब सामग्री अनादि काल से थी ही तब तो प्रत्यक्ष पृथ्वी कठोरयुक्त, जल शीतलतायुक्त, अग्नि उष्णतायुक्त, वायु अदृश्य कोमलतायुक्त एव पृथक-पृथक जड़ तत्त्व अपने-अपने लक्षणों से सयुक्त अनादि से वर्तमान रहते ही आये है। तैसे जड़ तत्वों के जाननहार जड कारण-कार्य से पृथक प्रत्येक देहों मे अध्यास ग्रन्थि वश टिके हुए जड़ देहों के प्रेरक प्रत्येक अविनाशी चेतन जीव भी अनादि काल से रहते हुए वे वर्तमान मे आप ज्ञान स्वरूप स्वयं प्रत्यक्ष है, आगे भी ऐसे ही रहेगे। इस प्रकार जड़ और चेतन दोनों पृथक-पृथक चिन्ह लक्षण से युक्त उत्पत्तिनाश रहित अनादि स्पष्ट अनुभव हो रहे है। इसलिये पृथक-पृथक जड़-चेतन के गुण-लक्षणो का पारख करके इसके अलावा और सब कारण-कर्त्ता की कल्पना-रूप धोखा को त्याग कर दो और पारखयुक्त सच्चा-निर्णय धारण करो। सत्य सिद्धात से ही जीव का कार्य पूर्ण होगा ॥ २ ॥

अर्ध तिहाई औ चौथाई रहै न कोई तत्त्व तभी।
पूरे पूरे जो सब रहते सो तो वैसहिं रहे अभी ॥
व्यष्टि समिष्टी बनै न कबहूँ एकै का नहिं जोर कभी।
सृष्टि अनादी घट बढ़ रहती कबहूँ नाशै नहीं सभी ॥ ३ ॥

टीका—जगत-उत्पत्ति के आरम्भ मे पृथ्वीमण्डल, जल मण्डल, अग्नि और वायु मण्डल स्थूल-सूक्ष्मरूप कि जितना अब है इन सम्पूर्ण तत्त्वो का आधा भाग अथवा तीसरा भाग या चौथाई भाग ही सृष्टि के आदि मे था ऐसा कल्पना किया जाय तो इस कल्पना की सत्यता मे कोई आधार नही, क्योकि अब वर्तमान काल मे शोध करने पर

और अधिक समय व्यतीत होने पर जमकर ठोस अवस्था मे आ गई। इस प्रकार पृथ्वी से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई इत्यादि अव यह बात कैसे सिद्ध होवे ? प्रथम तो सूर्य गोला से पृथ्वी गोला उत्पन्न होते किसी को दृश्य ही नही हुआ, न है, न होगा। इसी प्रकार धरती से भी चन्द्र की उत्पत्ति होते तीनो काल मे किसी को प्रत्यक्ष अनुभव नही, फिर भी मन कल्पना से धरती का वच्चा चन्द्रमा को मानते है, सो यह वात युक्ति शून्य मिथ्या है। छोटी-छोटी वस्तुओ मे भी जो अनादि से जैसा होते आया है वैसा ही होता है। देखो ! गेहूँ के वीज से धान नही होते, कोदौ के वीज से किसी ने भी गन्ने की उत्पत्ति नही देखी। वजडा से आम की सृष्टि नही होती, इसी प्रकार प्रत्येक वीज-वृक्षो से विरोधी वीज-वृक्ष नही होते। इसी प्रकार के नर पशु अण्डज उष्मज जिस खानि की जिस प्रकार अनादि नियम बद्ध शरीर रचना होती आयी है उसमें कभी घटाव वढाव नही। मेढक से मनुष्य नही होते, भँवरा से सर्प की उत्पत्ति नही, एव देहों की उत्पत्ति भी अनादि नियमित है।

जिससे उतपति सवकी मानैं तिसकी उतपति कहाँ रही।
उतपति की विन सव सामग्री कैसे उतपति होय मही॥
तव तो अनादी जड़ औ चेतन पृथक पृथक सव चिन्ह लही।
परखि परखि सव धोखा त्यागो सच्चा निर्णय गहौ सही॥ २॥

टीका—जो कहो विना उत्पत्ति कोई चीज नही वनती, तो सुनो ! जिस मूल कारण से सर्व जगत की उत्पत्ति मानोगे तिसकी उत्पत्ति कैसे सिद्धि हो सकती है ? उस मूल द्रव्य को तो अनुत्पत्ति अनादि ही मानना पडेगा, क्योकि जगत उत्पत्ति के पूर्व विना सव सामग्री भये पृथ्वी आदि जगत कैसे हो सकेगा ? थोड़ी सामग्री से वहुत सामग्री भी नही हो सकती। क्योकि विना पूर्व मे वहुत सामग्री भये वहुत सामग्री आयगी कहाँ से ? एवं पूर्व मे अनेक प्रकार की

का त्यो है। कही कोई पदार्थ बनते, कही नाश होते, कही ठण्डी, कही गर्मी, कही दिन, कही रात, कही वर्षा, कही प्रकाश, कही अंधकार, कही बहुतों का नाश, तो कही बहुतो की उत्पत्ति। इस प्रकार हम घट-बढ हमेशा सब देखते ही है। इसीसे सम्पूर्ण ससार की स्थिति वर्तमान काल मे ही घट-बढ जब लगा है, तो मूल कारण रूप चार तत्व और तिनके असख्य कार्य तथा षट ऋतु और चारो खानियो के असख्य देहधारी जीव सर्व अनादि है। कभी सम्पूर्ण ससार का सर्वथा विनाश और उत्पाद नही होता ॥ ३ ॥

दाह प्रकाश सरूप अनल को तेहि खौलब ठंढाब नहीं।
दाह पाय जल खौलन लागै कोइ खौलै महि कार्य दही ॥
शीतल परते सोई दरशे पुनः कठिन बनि कार्य वही।
उपमा अघटित अनल को खौलब बिन महि जल कहुँ खौल नहीं ॥४॥

टीका—उष्ण रूप और प्रकाश युक्त रहना अग्नि का स्वरूप है। तिस मे खौलना और ठढाना ये दोनो वात नही बन सकती। बल्कि दाहरूप अग्नि का जोश पाकर जल खौलने लगता है अथवा अन्य तत्व युक्त पृथ्वी के कार्य लोहा, सोनादि धातुये अग्नि आँच देने से पिघल के खौलने लगते, क्योकि उन कार्यो में जल तत्व भी मिला हुआ है। पुनः वे कार्य आँच से अलग करने पर धीरे-धीरे शीतल पड़ के फिर वही पृथ्वी के कार्य कठोर रूप मे प्रत्यक्ष दिखाई देने लगते है। इसलिये चारों तत्व युक्त लोहा-सोना, काँसा-ताँबादि तथा दुग्धादि कार्य पदार्थो के खौलने वत केवल अग्नि रूप सूर्य का टुकड़ा पृथ्वी के आदि काल मे खौलती थी ऐसा कहना अयुक्त है। कोई भी दृष्टांत केवल अग्नि के खौलने मे नही घटता। पृथ्वी तत्व और जल तत्व मिले बिना केवल अग्नि का जलवत खौलना कभी किसीने नही देखा है, न युक्ति युक्त सम्भव होता है। अतः केवल अग्नि समूह को खौलना और ठढाना कहना कल्पना मात्र है ॥ ४ ॥

ये सब तत्व ज्यों के त्यों ही अनुभव हो रहे हैं। पृथ्वी या समुद्र सूर्यादि का आधी तिहाई चौथाई किसी काल मे किसी ने प्रत्यक्ष किया नही। दूसरी वात—यदि आदि काल मे आधी तिहाई चौथाई मूल भूत थे या उनके मूल सूक्ष्म द्रव्य थे तो फिर उनकी पूर्ति किस द्रव्य से हुई ? जिस द्रव्य से पूर्त्ति हुई वह द्रव्य भी पहिले ठहरने से फिर आधी-तिहाई कहने का कोई प्रयोजन ही नही रहा। जैसे अव पृथ्वी समुद्र आदि दृश्य हो रहे है, ऐसे पूरे-पूरे पहिले भी थे तो वैसे ही पूर्णरूप अव भी है तो फिर विकासवाद की सारी कल्पनाओ की कोई आवश्यकता नही है। समष्टि कहिये सवका समवेत रूप एक मूल द्रव्य शक्ति या सूक्ष्मातिसूक्ष्म अपार शक्तिमान घनी भूत इथर अर्थात आकाश प्रकृति मूल से व्यष्टि कहिये पृथक-पृथक सूर्य पृथ्वी आदि सारा ससार हो गया तथा यह समष्टि कहिये सारा ससार धीरे-धीरे क्षीण होते-होते किसी काल मे मूल द्रव्यरूप या कर्त्तारूप हो जायगा, एव एक से अनेक होना अनेक से एक हो जाना यह वात तीन काल मे मिथ्या है। क्योकि वर्तमान के आधार से ही भूत-भविष्य की कल्पना की जाती है। वर्तमान मे प्रत्यक्ष पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु सवका प्रभाव घट वढ वरावर ही है। वे भिन्न गुण धर्मो युक्त अपनी-अपनी जगह मे शक्तिमान और क्रियाशील दिखाई दे रहे है। अत जव कि इन प्रकृति मूल भूतो का कभी साम्यावस्था अर्थात सवके गुण धर्म का प्रभाव लुप्त होकर एक रूपता देखा नही गया है तो इसी वर्तमान के समान ही पहिले अनादि काल से और आगे भी सृष्टि व्यवस्था चली आ रही है और चलती रहेगी। प्रत्यक्ष देखिये ! जगत मे केवल जल का जोर नही। मात्र अग्नि ही अग्नि हो यह वात भी नही। वायु से सृष्टि व्यवस्था वर्तमान मे चलती हो यह वात भी प्रत्यक्ष अनुभव नही। इस रीति से एक ही का जोर न होने से सारा सृष्टि चक्र अनादि है, उत्पत्तिविकास रहित ज्यो

तत्व युक्त पृथ्वी कारण के कार्य पृथ्वी से अभेद रूप है। मात्र अन्य तत्व के परमाणुओ के साधक-बाधक होने से वे असख्य प्रकार बन-बन के पृथ्वी मे लीन होते रहते तथा पृथ्वी से भिन्न दूसरा मूल द्रव्य जल तत्व तिसके कार्य बुदबुदा, तरग, बादल, पाला, ओला आदि जल से अभेद और अन्य तत्वो के कार्यो से भेद रूप है। इसी प्रकार अग्नि-वायु के कार्य अग्नि-वायु से अभेद रूप तथा दूसरे तत्व से भेद रूप है। सब तत्व सबमे मिले हुए है तहाँ अपना-अपना हिस्सा अधिक होने से जिस कार्य मे जिसका हिस्सा अधिक है उसीका वह कार्य कहा जाता है। तिसमे अपने-अपने तत्व के परमाणु अपने-अपने तत्वो से अभेदरूप है। अन्य तत्व से भेद रूप है। चाहे विद्युत हो या बादल, चूना हो या नमक, खटाई हो या मिठाई सब कार्य पदार्थो मे पच विषय और शीत, उष्ण, कठिन, कोमल चार तत्वो के लक्षण ही पाये जाते हैं। अस्तु सर्व कार्यो के मूल चार तत्व ही है। तिनमें असंख्य बीज-वृक्षादि तत्वो के कार्य होते हुए भी प्रवाह रूप बीज से वृक्ष,वृक्ष से बीज एव परम्परा अनादि से उपजते-विनशते चले आये हैं। कोई भी बीज वृक्ष नवीन नही। इस प्रकार कारण-कारज के लक्षण सहित विलक्षण और विलक्षण सहित चारो के गुण लक्षण धर्मो के अन्तरगत है और समस्त कारण-कार्य जड़रूप में समान है। जड़ता धर्म सबमे बराबर है। अर्थात चेतनता रहित ही सब तत्व हैं। इसीलिये ये चारो तत्व असख्य जड कार्यो के ही मूल कारण द्रव्य हैं, चेतन के नही। चेतन-चेतन के गुण-लक्षण सयुक्त जड़ तत्वो से पृथक स्वतत्र द्रव्य है। वे पृथक-पृथक कर्म करते स्थूल-सूक्ष्म जड देहो के मानन्दी सयुक्त प्रेरक देहो को धरते-छोड़ते हुये आप अजर, अमर, अखण्ड, असख्य सदा से रहने वाले स्वय प्रत्यक्ष है। वे सव अनादि चेतन जीव ज्ञानधर्म सयुक्त शुद्ध ज्ञानरूप जड कारण-कार्यो से पृथक है। वे जड़देह नख-शिख मस्तकादि को जानने-माननेवाले जड लक्षणो

महिते उतपति जल पवन न होते पृथक पृथक गुण धर्म गहा।
कारण कारज भेद जो होते गुण धर्मन यकताइ तहाँ॥
पृथक पृथक चैतन्य सदा से ज्ञान धरम जड़ पार लहा।
पोल शुन्य अवकाश अवस्तुहिं गुण धर्मन से हीन रहा॥ ५॥

टीका—ऊपर कथन से समझो कि अग्नि से पृथ्वी की उत्पत्ति नहीं हुई न तो पृथ्वी तत्व से जल, वायु, अग्नि तत्व ही हुए। कोई तत्व कोई तत्व से नही होता। इसमे मुख्य हेतु यह है कि सब एक दूसरे से विरोधी धर्म वाले है। पृथ्वी तत्व मे कठोरता है, गंध गुण युक्त द्रव रहित किसी को न धँसने देने वाला प्रत्यक्ष अनन्त त्रसरेणुओ का समूह भूगोल पिण्ड रूप स्थूल है। जल वहने वाला शीतलता युक्त, रससे पूर्ण अनन्त अणुओ का समूह सिन्धु रूप स्थित है, नदियाँ-कूप-तडागादि मे दृश्य है। अग्नि-उष्ण-प्रकाश स्वरूप जलाने तपाने गर्माने वाला अनन्त परमाणुओं का समूह अन्य तत्व युक्त सूर्य रूप से दृश्यवान तथा अदृश्य रूप पोल मे जहाँ तहाँ परमाणु रूप क्रियाशील है। जिसे विद्युत कण कहते है वह भी अग्नि लक्षणों मे होने से अग्नि परमाणु ही है और ऐसे ही वायु तत्व किसी भी प्रकार नेत्र गोचर न होने वाला निरन्तर वहनशील अनन्त परमाणुओ का समूह वातावरण रूप स्थित है। अगर चारो तत्व एक दूसरे से उत्पन्न होते तो सबके लक्षण सबमे होते और विरोधी धर्म वाले न होते परस्पर विपरीत धर्म वाले होने ही से वे एक दूसरे से उत्पन्न नही हुए। इन चारो मूल जड द्रव्यो से जो असख्य प्रकार के कार्य वनते आते है, वे चारो के गुण धर्म के अन्दर आ जाने से चारो से पृथक नही, क्यों कि पच विषय और शीत उष्ण कठिन कोमल धर्मो से तिनकी समानता और एकता है। अपने-अपने कारणो के जो मुख्य कार्य जैसे—पृथ्वी के कार्य असख्य वीज, वृक्ष, पत्थर, लोहा, सोना, काँसा, ताँवा, अलमूनियम आदि पृथ्वी के ही गुण लक्षणो के अन्तर्गत होने से वे अन्य

टीका—इस हेतु सो माने हुये नब्बे तत्व आदि सर्व यौगिक कार्यो के मूल उपादान कारण (मुख्य सामग्री) चार तत्व है। ये चारों तत्व स्थूल रूप असख्य परमाणु समूह रूप फैले हुये भिन्न-भिन्न गुण-लक्षण सामर्थ्य के सहित अनादि काल से भेद (विभिन्न रूप) प्रत्यक्ष स्थित है। पृथ्वी मण्डल कठोर धर्म सहित, जल मण्डल शीत धर्म सहित, अग्नि मण्डल उष्णता युक्त, वायु मण्डल कोमल स्पर्श युक्त इन्ही के समिश्रण से वे माने हुये नब्बे आदि अनेकों कार्य विस्तार रूप वन-बन के इन्ही मे लय होते रहते है ॥ ६७ ॥

विवेचन

भौतिक विज्ञान में जो कुछ धातुये सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, शीशा, राँगा, पारा, निकल (कलई), जस्ता, अलमूनियम कुछ और खनिज है जैसे—गधक, संखिया, सुरमा, मगनेशिया तथा कुछ वायव्य द्रव्य है जैसे—आक्सीजन-हाइड्रोजन, नाइट्रोजन इत्यादि नब्बे द्रव्य तक को मूल उपादान माना है। इनमे भी कुछ स्वतत्ररूप से जो प्रयोग द्वारा निर्माण न किया जा सके जैसे—सोना, चाँदी आदि। दूसरे यौगिक पदार्थ कई चीज मेल करके जो रासायनिक प्रयोग द्वारा घटाया बढाया बनाया जा सके, जैसे—नमक, चूना, नौसादर, सोडा आदि अथवा कई गैस आदि। प्रयोगशाला मे कई पदार्थो के योग से निर्माण शक्तियो कार्यो को भी तत्वरूप या द्रव्यरूप माना है। कुल मिलाकर नब्बे या बानबे तक पता लगा है, अभी ठीक-ठीक पता नही कि कितने और मूल द्रव्य हों। तिन सब तत्व और यौगिक पदार्थो की तीन अवस्था मानी गई। ठोस तरह वायव्य, अर्थात क्रमशः पृथ्वी जल वायु और वायु मे मिले हुये सूक्ष्म पदार्थ। टामसन ने तो सब वस्तु और शक्ति कारण मूल एक विद्युत शक्ति को ही माना है। कोई अपार शक्तियो की घनी भवन आकाश मे पूर्ण मानते है। जन्तु विकास विज्ञान मे भी नाना कल्पनाये की गई है, सौर जगत का

से पृथक चेतनरूप है। वे अनादि काल से देहोपाधियुक्त रहे हुए नर देह में कर्म संस्कार टिकाय सूक्ष्म संस्कार वश पशु-पक्षी आदि चारो खानियों मे भ्रमण करते रहते है। सो प्रत्यक्ष ही सर्व देहधारी चेतन-जीव इन्द्रिय-मन संयुक्त अपनी-अपनी चेतनता ये लक्षण जड़ तत्वो से भिन्न प्रगट कर रहे है। इस प्रकार जड और असंख्य देहधारी चेतन जीव दोनो भिन्न-भिन्न गुण धर्मवाले अनादि से स्थित है तथा सदा स्थित रहेगे। इनका नवीन रूप से विकास कभी नही होता है, न होगा और आकाश जो द्रव्य माना-गया वह गुण धर्म रहित शून्य है। जो वस्तु होती है उसमे गुण-धर्म होता है। आकाश में कोई गुण-धर्म-शक्ति नही। वस्तु ठोस की अपेक्षा से पोल शून्य अवकाश नाम कहा जाता है। वास्तविक वह कोई तत्व नही, अगर वह कोई द्रव्य ठोस रूप हो तो उसके रहने के लिये अन्य खाली जगह होनी चाहिये, किंतु खाली जगह शून्य का नाम ही अवकाश है ॥ ५ ॥

[प्रसंग ७—कारण-कार्य जड तत्वो का संक्षेप निर्णय तथा जगत उत्पत्ति का हेतु एक शक्ति मानना असम्भव]

नब्बे आदिक तत्व हैं, कहत रहत जो कोय।
चारो तत्व से पृथक नहि, लक्षण तिनके होय ॥ ९६ ॥

टीका—नब्बे या बानवे आदि (जितना-जितना उनके प्रयोग मे आ सके) उतने प्रकार से जो कम-विशेष तत्व होने की व्याख्या करते है, तिसे निर्णय युक्त विवेक से देखिये ! मुख्य चारो तत्व के गुण धर्म शक्ति सामर्थ्य से पृथक अन्य माने हुये नब्बे या बानबे तत्वो के लक्षण नही हो सकते। शीत-उष्ण कठिन-कोमल तथा पच विषय और स्थूल-सूक्ष्म गोचर आकार ये मूल चार तत्वो के गुण-धर्म है, इन्ही लक्षणान्तर्गत उपरोक्त माने हुये सब सत्य पदार्थ है ॥ ९६ ॥

यहिते कार्य सरुप सो, कारण तिनके चार।
मुख्य अनादी भेद सो, वै इनको विस्तार ॥ ९७ ॥

है तो ये सब क्या चीज है ? इसके बारे मे उनका अनुमान है कि आकाश से भी अत्यंत झीना-सूक्ष्म वह मूल भूत है जिसका ठीकरूप सर्वाङ्ग निर्णय नही कर पाते अब विचारने की बात है कि आकाश स्वय ही नाचीज शून्य है । आकाश ही जब कोई वस्तु नही तो आकाश से भी झीना जिसे माना जायगा वह वस्तुत· किस प्रकार हो सकता है ? भला उस महा शून्य को वे लोग मूल भूत कैसे मान लिये ? बडे आश्चर्य की बात है । "जहाँ नही तहँ सब कुछ जानी" बी० ॥ ९९ ॥

प्रत्यक्ष न लक्षण कबहुँ कोइ, तेहिके देखा आज ।
सनमुख जगत को छोड़िकै, उतपति कहत न लाज ॥१००॥

टीका—इस जगत से भिन्न उस कल्पित माने हुये मूल भूतादि का प्रत्यक्ष गुण धर्म शक्ति सामर्थ्य को भी कोई आज वर्तमान मे किसी प्रकार नही देखा, न पूर्व से देख सका है। इधर सामने सर-वसर जगत ज्यो का त्यों अनादिकाल से कारणों से कार्य की उत्पत्ति पालन-स्थिति-लय जगत के रहते रहते ही सब देख रहे है फिर भी अनादि काल के जगत को नवीनरूप से विकास मान के अदृश्य से दृश्य जगत की उत्पत्ति कहते हुये उन्हे सकोच भी नही होता। "विश्व मे जितने द्रव्य है उतने सदा से ही है और सदा रहेगे, उतने से न घट सकते न बढ सकते। इसी प्रकार शक्ति को भी समझिये। जो द्रव्य मे समवेत—तद्रूप है यह बात परीक्षा सिद्ध सत्य है।" ऐसा विज्ञान भी कहता है ॥ १०० ॥

इथर क्रिया के होन में, कहि न सके कुछ टोय ।
मनमानी सो कहि गये, निर्णय किये न कोय ॥१०१॥

टीका—जगत आरम्भ मे सूक्ष्मातिसूक्ष्म (ईथर—मूल प्रकृति) का एक तो स्वरूप का ही पता नही। दूसरे वह शक्ति किस प्रकार

विकास क्यो कैसे ? इसका ठीक-ठीक पता नही लगा सके । इसमे ऐसा होगा, हो सकना सम्भव है एव विविध विरोधी कल्पनायें सदेहो से पूर्ण प्रतिपादन की गई है। कितने तो जगत समस्या समाधान के अयोग्य है, ऐसा मानकर केवल अज्ञानरूप स्वय मान के मात्र इन्द्रिय भोग परायण होना ही सिद्धात रक्खा है । कोई ज्ञानाज्ञान मिश्रित कल्पना करके प्रकृति जड को ही चेतनरूप मान लिये हैं। इस प्रकार भौतिक विज्ञान के कथन मे परस्पर भिन्नता है। भौतिकी तथा रासायनिक विश्लेपण द्वारा वैज्ञानिको ने अव तक सौ से अधिक तत्त्वो का निरधारण कर लिया है। अध्यात्मिक क्षेत्र वालों के लिये उस प्रकार अध्ययन की कोई आवश्यकता नही। मोटे रूप मे अनुभव मे आने वाले पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु और अनेक गुण धर्मो से जगत की अनादि स्थिति समझ कर उससे पृथक अपने चेतन स्वरूप का ध्यान प्राप्त करना मुख्य कर्तव्य है। इतना निर्विवाद है कि विज्ञान द्वारा माने गये शताधिक तत्त्व पृथ्वी आदि चार तत्त्वो मे अतर्भुक्त है । अर्थात सभी तत्त्व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु के भीतर है।

अन्य भेद को थाह नहिं, कार्यो के जो चिन्ह ।
पंच विषय के रूप जड़, चार धरम जड़ लिन्ह ॥ ९८ ॥

टीका—मुख्य कारणो के भेद छोड़कर जो कार्यो मे अनेक भेद है उनकी तो थाह ही नही है। वे सव पच विपय के रूप जडता सयुक्त और शीतादिक चार धर्मो मे पूर्ण है ॥ ९८ ॥

इथर आदि कारण कहै, अवकाशौ से झीन।
कैसे तेहिको वस्तु कोइ, मानि ताहिको लीन ॥ ९९ ॥

टीका—ईथर अर्थात सूक्ष्मातिसूक्ष्म मूल प्रकृति कहीं उसी को निहारिका मण्डल, कहीं भूत नाम से, कहीं नेचर (प्रकृति शक्ति) कही प्रकृति की साम्यावस्था आदि को जगत उत्पत्ति का कारण बताते

जाय तब भी तो इनकी उत्पत्ति मानना असम्भव होगा, क्योकि ये जगत अनादि से ही चला आ रहा है और इस जगत से भिन्न कारण शक्ति मानो तो उसका कही प्रत्यक्ष होता नही। मूल कारण के प्रत्यक्ष ठहरे, देखे, जाने बिना ऐसे ही मन अनरूपित अनुमान के लड्डू उडाने लगे॥ १०२ ॥

घनाकार जो कुछ कहत, चव जड़ तत्वहिं सोय।
तेहिके पार न प्रकृति कहुँ, मिथ्या भरमत लोय ॥१०३॥

टीका—वातावरण मे जो कुछ घनाकार शक्ति या वस्तु कही जाती है वह वायु और वायु मे मिले हुए जल पृथ्वी अग्नि के अनन्त अणु त्रसरेणु परमाणु है। चार तत्वो के परमाणु ही ब्रह्माण्ड मे फैले हुए क्रियाशील हैं। इनसे पृथक अन्य सूक्ष्म मूल द्रव्य प्रकृति या विद्युत अणु कही कुछ नही। परमाणु का अर्थ ही अत्यन्त लघु है, जिसका किसी प्रकार से फिर टुकड़ा न किया जा सके। फिर भी इनसे पृथक अन्य मूल द्रव्य मानकर मिथ्या कल्पना मे ही गोते लगा रहे है॥ १०३ ॥

विवेचन

पूर्वपक्षी—विज्ञान का एक पक्ष कहता है कि वस्तु मात्र आकाश तत्व के बडे वेग से स्फूर्ण करने से आविर्भूत (प्रकट) होती है। दूसरा पक्ष कहता है कि विश्व की वास्तविक सत्ता ऐसी ठोस वस्तु की है जो शीशे से चार अरब गुणा अधिक घनी है। इस घनत्व के भीतर सूक्ष्म पोल है जिन्हे हम परमाणु कहते है और यह कल्पनातीत घन पदार्थ ऐसी तरल दशा मे है कि सरलता (पिघलपना) के कारण ही इन पोलो का स्फूर्ण निरन्तर होता रहता है। तीसरा पक्ष कहता है कि—यह विश्व शक्ति का अपार सागर है जिसमे शक्ति ही अपने गुणों से विविध वेगो के स्फूर्ण और गति दशाये वा भँवर बनाती है। यह भँवर ही सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणु है। इन परमाणुओ

भँवर मे पड़ती है और अणु सृष्टि संचालन होती है ? किस प्रकार एक निर्विशेष निष्क्रिय महाभूत विशेषत्व जगत रचना की ओर प्रवृत होता है ? किस प्रकार प्रकृति की साम्यावस्था भंग होती है ? यह ठीक-ठीक नही कहा जा सकता, यह एक समस्या (शका) रह सी जाती है। इस प्रकार ईथर (मूल द्रव्य) की क्रिया के होने मे वे कुछ भी शोधन करके निर्णय नही कर सके। तव वे इन प्रश्नों की उपेक्षा करके कहने लगे—"रहने दीजिये ! यह औरो के काम की वात है। जब वह औरो के काम की वात है, तो यह समस्या निर्णय न होने से सारे विकासवाद की कथा मिथ्या कल्पित ही सिद्ध हुई ॥ १०१ ॥

सूरज उतपति होन को, इथर नहीं प्रत्यत्त।
कारण के प्रत्यत्त विन, त्रिविधि कल्पना पत्त ॥१०२॥

टीका—सूर्य उत्पत्ति की कल्पना पूर्वपक्षी इस प्रकार करते है—ईथर जो आकाश मे शक्तियो की घनी भवन रूप है उसी को नेचर, निहारिका मण्डल, मूलभूत, विद्युतशक्ति, प्रकृति आदि अनेको नामो से कहा जाता है वह अत्यन्त सूक्ष्मरूप से घनाकार कोहिरा वत तिससे भी घन अत्यन्त सूक्ष्म रहा हुआ वड़े वेग से नाचने लगा। वहुत काल अत्यन्त वेग से नाचते-नाचते उसमे मथन होकर छल्ले रूप वनते हुए गोलाकार प्रथम सूर्य की नीव पड़ गई। फिर वाद मे सारा संसार हो गया। किन्तु प्रथम सूर्य उत्पन्न होने का नूल-भूत ईथर आदि किसी को प्रत्यक्ष नही। जव बिल्कुल यह जड़ चेतन मय जगत न हो और उस ईथर शक्ति को भरा हुआ तथा नाचते हुये ईथर से सूर्य को जमते देखा जाय तव तो ईथर आदि से सूर्य उत्पत्ति माना जा सकता है, नही तो ईथर आदि की कल्पना ही कल्पना मात्र है। यदि वातावरण मे सूक्ष्म चार तत्व के अनन्त अणु परमाणु और स्थूल समूह पृथ्वी, सिन्धु सूर्य-मण्डल इन्ही मे से ईथर शक्ति मानी

है तो उत्पत्ति की कल्पना ही व्यर्थ है, क्योकि मूल शक्तियाँ अनादि से ही है। आगे और भी साखियों मे विवेचन देखिये।

शुन्य से हो स्फूर्ति नहिं, सो तो शुन्यहिं शून।
बानी की सब धूम है, विविधि कल्पना गून ॥ १०४ ॥

टीका—आकाश का दूसरा नाम शून्य है। शून्य कुछ है ही नही फिर किस मे स्फूर्ति-क्रिया-सचालन गति होगी? अत शून्य (अभाव) से स्फूर्ति (चलनगति) हो नही सकती, वो तो स्वय शून्य वन्ध्यापुत्र है। फिर शून्य मे दूसरे शून्य की कल्पना करके उसमे अनन्त शक्ति स्थापन करना यह तो और भी महा कल्पना है। देखो ! ये सब बात ही बात की फैलावा है। इसी सत्य जगत के आधार से नाना कल्पनाओ का गुनावन करके भूत प्रेत भास के समान स्वप्न वत झूठे को भी सत्य मानते जा रहे है ॥ १०४ ॥

मानन्दी के बशि परा, चेतन जीव स्वतन्त्र।
यथार्थ परीक्षा होय नहिं, बिनु गुरु पारख मन्त्र ॥१०५॥

टीका—अनुमान से कर्त्ता तथा अनेक कारण कल्पना करके नाना कल्पित मानन्दी के वश मे जीव बेहोश परतत्र हो रहे है। उन्हे यह नही पता है कि "प्रत्यक्ष कारण व कारज व कर्त्ता, प्रत्यक्ष ही का तो अनुमान धर्त्ता।" न्या०। यद्यपि चेतन जीव स्वरूप से स्व-तंत्र अनादि सत्य अखण्ड अनेक है और वे जिसमे वासना वश अनन्त काल से निज स्वरूप को विस्मृत होते आ रहे है, वे जड तत्व भी कारण-कार्य प्रवाह रूप अनादि है। इसलिये इस जड़-चेतन मय जगत से पृथक कर्त्ता कारण की कल्पना करने की जरूरत नही है। तो भी सुखाध्यास से उल्टी बुद्धि के कारण ठीक-ठीक पारख नही प्राप्त होता। जब तक पारखी गुरु का निर्णय न सुना गुना जाय तब तक भ्रान्तियो का ध्वस होना अशक्य है ॥ १०५ ॥

की उत्तरोत्तर स्थूलता और घनत्व से हमें विश्व का अनुभव है। टामसन नामक भौतिक विज्ञान के प्रसिद्ध आचार्य का मत है कि जिसे हम जड पदार्थ कहते हैं वस्तुत विद्युत का ही एक तरह से घनी भवन है। सो निष्कर्ष (फल) यह निकला कि अचित व जड पदार्थ की जो शक्ति ओ वस्तु के मेल से बना माना जाता था, वस्तुत विद्युत के दो रूप है। विद्युत ही जड़ पदार्थ है और विद्युत ही उसको धारण करने वाली शक्ति है और विद्युत स्वय क्या है? यह वह गुत्थी है जो अब तक विज्ञान सुलझा नहीं सका है। बहुत विज्ञानियो का अनुमान है कि आकाश नामक अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ के भीतर शक्ति का घनी भवन है, जिसे विद्यु त कहते हैं। यह और बखेडे की बात हुई, क्या सूक्ष्म आकाश ओर विद्यु त के भिन्न-भिन्न रूपो या घनी भवनो को अकाश का उपादान ठहराता और विद्यु त को ही एकान्तत (मुख्य) सबका मूल बताता है। फलत. जगत विद्यु त वा शक्ति के ही विविधरूप और अवस्थाओ का नाम है।

उत्तरपक्षी—जब हम अब से परम्परा द्वारा शोध करके देखते हैं कि अनन्त परमाणुओ से सयोगवान चतुर्थीकरण रूप चारो तत्व पृथ्वी समुद्र सूर्यादि स्थूल रूप और वातावरण तथा वातावरण मे बिखरे हुये अन्य तत्वों के सूक्ष्म परमाणु एव स्थूल, सूक्ष्म तत्व नित्य-अनादि है तो अन्य तमाम अदृश्य कल्पना की आवश्यकता ही क्या है? किन्तु झूठा भी मुकदमा चलाकर झूठी गवाही साखी सबूत देते-देते जब एक झूठे का मण्डान खडा कर लिया जाता है, तो उस झूठे को झूठ बताकर हटाने के लिये सत्यवादी न्यायक को भी बहुत परिश्रम पडता है। जब आकाश शून्य है तो उसमे स्फूर्ण आदि होना सहज ही असिद्ध है। भला! शीशे से भी चार अरब गुना जो घन होगा उसमे दूसरी वस्तु कहाँ रहेगी? दूसरी वस्तु के बिना एकी से अनेक धर्मी जगत होना असम्भव है। एवं शक्तिरूप ही जब जगत

वह मोटा पदार्थ हो या सूक्ष्मतर, शक्तिमान के आकार रहे बिना कोई भी शक्ति रह ही नही सकती। इससे शक्तिमान और शक्ति का समवाय सम्बन्ध है। जैसे शक्कर मिठास, सूर्य और उसका तेज। एव शक्तिमान को छोड़कर शक्ति भिन्न तीनो काल में नही रह सकती ॥ १०८ ॥

एक एक से भिन्न नहिं, दोनौं एकै मद्धि।
एकै से नहिं ह्वै सकै, जग की लखि उपलब्धि ॥ १०९ ॥

टीका—शक्तिमान (आकारत्व) और उसकी शक्ति (मुख्य गुण-धर्म) दोनो एक दूसरे से पृथक नही। दोनो एक ही के बीच एक ही रूप है और एक ही उष्ण शक्ति या शीत शक्ति से सम्पूर्ण जगत की उपलब्धि होते किसी को दिखाई नही देता। क्योकि सम्पूर्ण जगत भिन्न-भिन्न शक्ति युक्त प्रत्यक्ष अनादि काल से प्रवाहित होते ही आ रहा है। इसमे स्पष्ट हुआ कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु स्थूल-सूक्ष्म सम्पूर्ण जड जगत भी उत्पत्ति रहित अनादि प्रत्यक्ष है और देहधारी चेतन जीव भी कर्म करते-भोगते जड़-चेतन की अनादि ग्रन्थि युत सब उत्पत्ति रहित अनादि अखण्ड है। इन्ही जड़ और देहधारी चेतन जीवो से पिण्ड ब्रह्माण्ड सुशोभित है। दोनों को निकाल कर कहीं कुछ नही। यही विज्ञान परीक्षा सिद्ध सत्य सिद्धात है ॥ १०९ ॥

[चेतन पक्ष स्वीकार न किया गया तो भ्रान्ति मात्र जडवाद से भयंकर पतन]

विवेचन

भौतिकवाद ने विकासवाद के सारे निरूपण जड़ और चेतन के पृथक-पृथक गुण-धर्म बिल्कुल नही समझा सके हैं। वे अपने सिद्धात अनुकूल ही निश्चित रूप यह नही बता सकते कि किस यथार्थ क्रम से जीवित प्राणी का जगत मे वासा रहा है। किस प्रकार देहधारियो

विद्युत से उतपति कहैं, विद्युत रहा अखोज।
जब वह शुन्य को मूल है, तब तो भर्म हि भोज ॥१०६॥

टीका—जगत का मूल क्या है ? उसके उत्तर में कोई विद्युत शक्ति मुख्य बताकर उसी से उत्पत्ति कहते है, किन्तु इस प्रत्यक्ष वातावरण मे बिखरे हुये सूक्ष्म तत्वो के परमाणुओं को छोड़कर विद्युत का स्वरूप ठेकाना कहाँ है ? इसका पता कोई पा नहीं सका। केवल एक कल्पना की धुन बाँध लिये। भला ! जब वह शून्याकाश का भी मूल है अर्थात अवकाश से भी सूक्ष्म शून्य है तो भर्म का ही वह व्यञ्जन है। अर्थात वह मिथ्या सिद्धात ग्रहण करना है। जब आकाश ही शून्य है कोई गुण शक्ति युत द्रव्य नही, तो आकाश से भी सूक्ष्म शून्य मूल महा शून्य—महा मिथ्या ही हो गया। फिर उस भ्राति मात्र विद्युत से जगत की उत्पत्ति करना ही वन्ध्या पुत्र से महल बनवाना है ॥ १०६ ॥

शक्ती के कछु चिन्ह नहिं, वस्तु कहाँ से होय।
बिना वस्तु के जगत नहिं, विविध कल्पना पोय ॥१०७॥

टीका—शक्ती का जब कुछ आकार, गुण, धर्म, लक्षण न होगा तो नाना प्रकार की जगत वस्तुये साकार रूप कहाँ से हो जायँगी ? क्योंकि गुण-धर्म युक्त वस्तु रूप ही जगत प्रत्यक्ष है। गुण-धर्म आकार युक्त वस्तु के बिना जगत का अस्तित्व ही मिट जायगा। अत भिन्न-भिन्न गुण-धर्म युक्त जड-चेतन वस्तुरूप ही जगत अनादि है। इसे ठीक-ठीक जाने बिना विविध भाँति सृष्टि उत्पत्ति की कल्पना से मनुष्य नथे हुये दिखाई दे रहे है ॥ १०७ ॥

शक्तिमान बिन शक्ति कहुँ, देखि परै कहु काहि।
शक्तिमान बिन शक्ति के, कबहूँ नहीं रहाहि ॥ १०८ ॥

टीका—भला शक्तिमान वस्तुतः आकार को छोड़कर भिन्न शक्ति कही पर किसी को दिखाई दे सकती है ? कदापि नहीं। चाहे

चेतन जीव की मुख्य परिभाषा जहाँ मन सयुक्त सुख-दुखादि का ज्ञान धर्म हो सो वृक्षादिको और अन्नादिको में न होने से अहिंसक पुरुषो को अकुर मात्र ग्रहण योग्य है। अनादि नियम छोडकर सम्पूर्ण नवीन विकास होना तो मिथ्या ही है। बल्कि एक छोटा सा बीज या वृक्ष कोई भी नवीन चीज या नवीन इन्द्रिय या नवीन सूर्य-चद्रादि बना देने मे विज्ञान समर्थ नही है। आज कल कुछ कल पुर्जा आदि बनाकर या देखकर मनुष्य विल्कुल असम्भव, युक्तिहीन बाते उडाया करते है। एक कहता है—अब मनुष्य तारागण या चद्रलोक मे बास करेगे। दूसरा कहता है—अब बाल बच्चे पुरुष के पेट से पैदा किये जायेंगे अथवा ऐसी मशीने बनेगी जिससे स्त्री-पुरुष धडाधड बादल बुन्दवत वर्षने लगेगे। कोई यहाँ तक लिख मारे है कि अब कुछ दिन मे वह कार्रवाई होगी कि मनुष्य कभी मरने ही न पायेगा। भला ! जिसका जन्म है उसकी मृत्यु क्यो नही ? इसका उत्तर और तो क्या है यहाँ नही तो चीन, जापान, अमेरिका मे ऐसा होगा ? या वे लोग उपाय कर रहे है। ठीक है, इसपर भी तो विवेक है—क्या अन्य देशों मे यत्र बल से किसी को कोई मरने नही देते ? या रोग व्याधि नही होती ? या दवा पानी नही करना पडता ? अथवा क्रोधादि मानसिक विकार तथा शरीर के धर्म—बाल, युवा, वृद्धादि नही होते ? या दस इन्द्री के बदले पॉच सौ इन्द्रियाँ उन लोगो के होती हैं ? या वे देहों की वृद्धि करते-करते सूर्य चन्द्रमा मे लग गये है ? या वे पॉच लाख वर्षो की आयु वढा लिये है ? अथवा वृक्षो की जड ऊपर अधर मे ओर शाखा पल्लव जमीन के अन्दर लगाते है ? भला ! जब अनादि सृष्टि क्रम के अनुसार ही सब जगह सब होता है, विरुद्ध नही तो फिर किसी चीज का क्या अभिमान ? यदि माना जाय कि हर बात मे मनुष्य आगे वढने की कोशिश करता है कुछ सफल भी होता है किन्तु

मे अखण्ड ज्ञान की सत्ता मौजूद रहती है। किस प्रकार चार खानियो की देहे वनती आई। मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु मे ज्ञान धर्म है ही नही, फिर उनके संयोग से वनी हुई देह के नख शिख मस्तकादि मे प्रतिविम्व क्रिया द्वारा जड़ रक्त मॉस पिण्ड को कैसे सर्व सस्कारो का ज्ञान हो सकता है। भला सयोगिक भूरा, मज्जा, पटल आदि जड़ पदार्थ यह वोध कैसे कर सकते है कि मुझ पर मनोमय प्रतिविम्व पड रहा है, या मनोमय प्रतिविंव इस प्रकार का है। इन सव वातो का ज्ञान करना जड़ कारण कार्य मे कही है ही नही। फिर कोई भी विवेकी कैसे मान सक़ता है कि जड़ तत्त्व ही से सजीव द्रव्य होता है ? सच पूछिये तो विकासवाद-जड़वाद सृष्टि उत्पत्ति की कल्पना कुभकर्ण की देह या शशा शृङ्ग की कल्पना के समान असम्भव और युक्तिहीन वाणी मात्र का मण्डान है और कुछ नही। कोई भी रासायनिक अपनी योजना (भाँति-भाँति के यत्रादि प्रयोग द्वारा) इस जीव द्रव्य को निर्जीव से उत्पन्न करने मे समर्थ नही है न किसी मृतप्राणी को जीवित करने मे शक्तिमान है। निर्जीव द्रव्यो से सजीव द्रव्य कही नही पाया जाता। यह वात स्वय भौतिक पक्षी मानते है की निर्जीव के सयोग से सजीव नही होता। लेकिन उनका जीव मानना कुछ और ही है केवल वे गति-चलन क्रिया को ही जीव मानते है, किन्तु विवेकियो के अनुभव से वह भूत जड़ तत्वो की सूक्ष्म कणियाँ हैं वे इन्द्रिय गोचर-ज्ञान धर्म रहित है। चलन क्रिया पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु के सूक्ष्म अनत कणियो मे स्वाभाविक है। यह वात न समझकर ही कितने ताजे दूध दही फल मूल सव मे जीव निरूपण करते है। विवेकियो की दृष्टि से वह ठीक नही। मासाहार वढाने के लिये विपय और भूतवाद पुष्ट करने के लिये वृक्षादिको मे चेतन जीव होने की मिथ्या कल्पना वढायी गयी है। चेतन जीव और जड का भेद प्रत्यक्ष है।

कर्तव्य होता है कि मात्र भौतिक या विकासवाद का पक्ष न लेकर सदाचार सहित चैतन्य सत्पथ की ओर लगे और सद्स्वरूप स्थित होने से ही लक्ष से सारी शिक्षापद्धति ज्ञान-विज्ञान का क्रम धर्माचरण युक्त रक्खे और इसी धर्म पक्ष का विस्तार करे ।

[प्रसंग ८—अनादि सर्व तत्वो पे स्वाभादिक क्रिया-चाल है, तिस क्रिया द्वारा ही कार्य बनने-विगडने का प्रवाह हमेशा बने रहने से सम्पूर्ण जगत उत्पत्ति रहित अनादि निरूपण]

धरणी में कारज विविधि, बनत रहत दिन रैन।
बीज वृक्ष अंकूर्य तृण, कंकड़ पत्थर ठैन ॥११०॥

टीका—देखो ! दिन-रात पृथ्वी मे असख्य किसिम के कार्य बनते रहते है। असंख्य प्रकार के बेलि-बौड़ी, घास, वीज-वृक्ष, तमाम खाद्य अंकुरज पदार्थ तथा ककड, पत्थर, कॉसा, तॉवादि धातुये नित्य-नित्य वनने का प्रवाह चालू रहता है । इससे स्पष्ट होता है कि अन्य तत्वयुक्त पृथ्वी के त्रसरेणुओ से हमेशा क्रिया है ॥ ११० ॥

पौन नीर क्रियवान है, सूरज के परमानु।
तप्त मही अरु वस्तु बहु, शीत पाय विलगानु ॥१११॥

टीका—वायु सदा चचल अनुभव होती है । समुद्र-नदियॉ आदि का जल सदा गतिशील ही है । सूर्य की अमित परमाणु किरणे नित्य निकलती पुन तिसमें उलट के प्रविष्ट होती ही रहती हैं। देखिये ! सूर्य की प्रवल धूप पृथ्वी तथा पृथ्वी के कार्य पदार्थो मे समाकर तिन्हो को तप्त कर देती । पुनः सूर्यास्त होकर रात्रि समय सूर्य की किरणे इधर न पड़ने से शीत का प्रभाव बढ के पृथ्वी मे के गर्म परमाणु विलग होकर अपने कारण मे खीचते रहते हैं । यही कारण है कि रात्रि के समय पृथ्वी ठण्ढी हो जाती है ॥ १११ ॥

नदी नीर झरना जहाँ, चलत रहत दिन रात।
कहूँ मंद कहुँ जोर हूँ, कबहुँ न थायु निरांत ॥ ११२ ॥

सम्भव सीमा के अन्दर रह जाता है। सम्भव बातें वे तो होती ही रहती है, लोग करते ही रहते है। इससे यह थोड़े कि अयोग्य बातें भी हो जायँ! सीमा के अन्दर ही एक से एक कलायें दृश्यमान होती है सो उन मनुष्यो का सहजिक खेल है जो उसमें प्रवृत्त है। रचनाओ का आधार है चेतन प्राणी और सामग्री जड़ तत्व ये दोनो अपने-अपने गुण धर्मो से पूर्ण है। सो प्रत्यक्ष जगत अनादि स्थित है यही सत्य विज्ञान विवेक है। भले ही मनुष्य केवल इन्द्रियसुख स्वार्थ के लक्ष्य से थोडी देर के लिये मौज-शौक, राग रग, वाहन, सिनेमादि मे उछले, किन्तु पास ही मे "वलि पशु न्याय" अथवा "शूल रोगी को सेज पर लेटाने न्याय" या "दीप-पाँखी न्याय" विलासी पदार्थो के नशे मे अधिक कामी-हिंसकी-नशेवाज विषयी स्वार्थ परायण क्रूर कर्मी वन के स्त्री-पुरुष परस्पर विद्रोह असहन आपास्वार्थी कठोर हृदय बनाकर आज वन्दर का खून चूसने मे तत्पर तो कल मनुष्य-मनुष्य ही का रक्त शोषण करने मे कटिवद्ध। एव स्त्रियाँ पुरुषो पर उच्छृङ्खल तैसे ही पुरुष स्त्रियो पर वेपीर। इस रीति से देश-गॉत्र-समाज मे घोर उत्पात विश्व अशाति बढ रही है। इसका मूल हेतु भौतिकवाद का बढ जाना ही है। जहाँ पूर्ण भौतिकवाद है वहाँ मानसिक तृष्णा द्वारा नित नये उपद्रव खडे होते रहते है। सोचिये! हितैषी कल्याणकारी व्यवहार तहाँ कैसे हो सकता है? जहाँ क्षणिक मनोवेग पूर्ति के अलावा प्रकृति भिन्न सत्य चिरञ्जीव सद्रूप चैतन्य कर्म कर्त्ता तथा पुनर्जन्म, भोक्ता होने का निश्चय ही नही, तो किस आधार से सत्य सयम इन्द्रिय मन के विकारो को शान्त रख के समाज को सद्गुणो द्वारा रक्षा की जा सकती है? यही हेतु है कि जब तक परलोक-पुनर्जन्म कर्मफल प्रकृति से भिन्न चैतन्य जीव का यथार्थ निश्चय न होगा तब तक सुख शाति की प्राप्ति नही हो सकती। इन बातो को सोच-समझकर अब हमारा

जल का कोहिरा बन जाना, ऊपर वातावरण मे जल राशि भाप घनीभूत होकर बादल बन के पुनः परस्पर क्रिया द्वारा जोर से शब्द गती अर्थात कड़कना-तड़तडाना, पुन. पत्थर और पाला बनना तथा सम विषम क्रिया द्वारा ही उसी बादल रूप जल मे विजली पैदा होकर कौधा का जहाँ-तहाँ लपलपाना, प्रकाशित होना, ये सब पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि के परमाणुओ के सम विषम क्रिया द्वारा ही होते हुये सबको प्रगट है ॥ ११५ ॥

चन्द्र सूर्य तारागण, सबही हैं क्रियवान।
बर्फ बनै अरु जो गलै, क्रियावान ये ठान ॥ ११६ ॥

टीका—चन्द्रमा, सूर्य, तारागणो का उदय होना तथा छिप जाना या तिन्हो के प्रकाश रूप किरणों का पृथ्वो पर फैलना पुन लीन होना एवं सव तत्त्व क्रियावान देखे जाते है और जल का कार्यरूप वर्फ बनना पुन गल जाना ये सब तत्त्वों की क्रियाओ से ही होते रहते है ॥ ११६ ॥

उतपति अंत न भूत सब, नहीं क्रिया तिन नाश।
यहिते जगत अनादि हैं, नितप्रति उपजि विनाश ॥ ११७ ॥

टीका—पूर्वोक्त कारणरूप मुख्य चार जड़ तत्त्वो की न तो उत्पत्ति होती, न तो नाश ही। यही कारण है कि तत्त्वो की क्रियाओ का कभी भी अभाव नही होता। क्योकि वर्तमान मे कार्यो की उत्पत्ति-पालन-विनाश की धारा साथ ही देखी जा रही है। कारणरूप चार तत्त्वो मे एक तरफ असख्य चीजें बिगड़ रही है, तो दूसरी तरफ उत्पन्न हो रही है। इसी तरह शोध करने पर पूर्व व्यतीत अनादि काल से आज तक सृष्टि प्रवाहित बहती हुई चली आ रही है और ऐसे ही भविष्य काल मे भी यही धारा चली जायगी। कार्यो का उपजना-विनशना जगत मे प्रवाहरूप नित्य है। इसी से यह जाना गया कि तत्त्वो मे स्वाभाविक क्रिया होने से और जड सृष्टि का कभी

टीका—देखिये ! नदियो की धारायें, झरना तथा अन्य जल तत्व चल-विचल, क्रियाशील ही दिन-रात दृश्यवान हो रहे है । वायु भी कभी धीरे से चलती तो कभी ऑधी-वौडर-रूप जोर से चलती । वायु कभी भी स्थिर, अक्रिय नही रहती ॥ ११२ ॥

अंकूर्य बढ़त अरु पुष्ट फल, अन्नादिक अरु घास ।
हरे भरे बनि मिटत वह, क्रियाशील लखि जास ॥ ११३ ॥

टीका—पुन· तत्वो की क्रियाओ का विचार कीजिये ! चारो तत्व-युक्त इस पृथ्वी पर साधक क्रियाओ द्वारा अन्न, घास, तमाम वूटियॉ तथा अगणित अकुरज वडते वनते, पुष्ट होते, हरे भरे रहते पुन तत्वो की वाधक क्रियाओ द्वारा नाश भी होते रहते, इस प्रकार पृथ्वी युक्त सव तत्व क्रियावान देखे जाते है । यदि चारो तत्व क्रियावान न हो तो असख्य कार्यो का वनना-मिटना वन ही नही सकता । इससे यह अनुभव होता है कि चारो तत्त्व क्रियावान हमेशा वर्तमान है ॥ ११३ ॥

चतुर्भूत क्रियवान हैं, भूत भविष्य वर्तमान ।
क्रिया सरूपहि तत्त्व जड़, कबहुँ न सो ठहरान ॥ ११४ ॥

टीका—उपरोक्त कथन से चारो तत्त्व जैसे वर्तमान मे क्रियाशील है, तैसे पहिले भी थे, आगे भी रहेगे । क्योकि भाव रूप तत्वो के स्वरूप ही मे क्रिया होना वर्तमान मे सवको अनुभव है । एव तत्त्वो के स्वरूप मे क्रिया होने से वे तत्त्व किसी समय मे भी अचल नही रहते । वल्कि हमेशा तत्त्वो की क्रियाशीलता ही मे सव सृष्टि की व्यवस्था चल रही है ॥ ११४ ॥

भाप ओस कोहिरा जलद, शब्द गति जो होत ।
ओला और तुषार जो, बिजुली कौंधा जोत ॥ ११५ ॥

टीका—देखो ! तत्त्वो के परस्पर क्रिया द्वारा ही जल में भाप उठना, ओस वनना, पुन कम-विशेप परमाणुओ के सयोग से उसी

वदन मे बहुत से ऐसे चिन्ह है, जिनसे उसकी वंशावली का पता चलता है। 'लै मार्क' ने १८०९ मे सर्व प्रथम यह मत स्थापित किया कि नई परिस्थितियो, नये वातावरण मे प्राणी अपने आपको उनके अनुकूल बनाने की चेष्टा करता है, ऐसा करने मे उसके जो अंग बहुत काम मे आते है, उनका विकास होता है और जो अग काम मे नही आते, उनका धीरे-धीरे कई पीढियो मे क्षय हो जाता है। 'डारबिन साहब' ने १८५० मे जीवों के विकास का कारण प्राकृतिक निर्वाचन और जीवन संग्राम बतलाया है।

साराश—जब पृथ्वी आग की पिण्ड थी। इस पर जीवन नही थे। शीतल होने पर जीवनरस की उत्पत्ति हुई और एक कोशीय जीवधारी वने। उस समय पृथ्वी जल मग्न थी। इसलिये आदि जीव जल निवासी थे। धीरे-धीरे उनमे विकास हुआ और वनस्पति तथा प्राणियों की नई जातियाँ उत्पन्न होने लगी। पहिले अपृष्ठ वंशी (रीढ रहित) जीवो का जन्म हुआ, जैसे त्रिखण्डी और सीप समुदाय के प्राणी। तदुपरान्त मछलियों, मेढको उरगमो. पक्षियो और स्तनपोषियो की क्रमश: उत्पत्ति हुई, ऐसे ही पेड-पोधो का विकास हुआ। यह विकास किस प्रकार हुआ ? इसमे बहुत मत भेद है, किन्तु इसका कारण जीवनरस की परिवर्तनशीलता ही है।

उत्तरपक्षी—(१) पहिले तो पृथ्वी अग्नि गोला रूप मे थी, यह बात ही युक्तिहीन, असम्भव कल्पना पूर्ण है। क्योकि वैसा किसी को भी प्रत्यक्ष नही। प्रत्यक्ष के बिना अनुमान भी नही बन सकता। जैसे हम किसी पुरुप के गर्भ रहना नही देखते तो कोटि वर्ष पहिले पुरुषो के गर्भ रहा होगा, यह कल्पना मिथ्या है। दूसरी बात टाम्सन, लैमार्क, डारबिन के कथन भी कसौटी पर यथार्थ ठीक नही जचते। उन्होने कहा—जिन चिड़ियो को जल से भोजन प्राप्त करना पड़ा उनने तैरने मे सहायक परिवर्तन जैसे झिल्ली दार पतवार के समान

अभाव न होने से जगत उत्पत्ति प्रलय नवीन विकास रहित अनादि है। कारण तत्त्व स्वत. अनादि नित्य है, तिन्हो के कार्य प्रवाहरूप अनादि है। विविध कार्य वनते-विगड़ते चले आये है, ऐसा निर्णययुक्त पक्का वोध दृढ करना चाहिये ॥ ११७ ॥

[प्रसग ६—चारो खानि के देहधारी जीवो की सृष्टिधारा की अयोग्य उत्पत्ति मे दोप निरूपण तथा यथार्थ उत्पत्ति प्रवाह का वोध कथन]

जैसी उतपति तव भई, अव कस होत न तैस।
वै तौ सव वैसहिं प्रगट, जेहि उपमा कहि लैस ॥ ११८ ॥

टीका—जिस प्रकार से सृष्टि के आदि मे जीवन विकास-उत्पत्ति की सिलसिला कल्पना करते है, जैसे पहिले नर-नारी कोई भी न थे, फिर धीरे-धीरे एक कोशीय जन्तुओ से वडे-वडे जन्तु होते-होते क्रमश जलचर से थलचर-गिल्हरी, बन्दर आदि फिर वन्दर से पूँछ झड़कर मनुष्य रूप मे हो गये इस प्रकार विकास की कल्पना करते है। तो भला जिस मेढक आदि का दृष्टात देते है, वे तो अपनी-अपनी खानि के अनुसार जैसे तव उत्पन्न होते थे, तैसे अव भी उत्पन्न हो रहे हैं। सो तो दृष्टात प्रत्यक्ष है। परन्तु सिद्धात मे वैसा कहाँ देखा जाता है कि अब वर्तमान मे वन्दर की पूँछ झडके मनुष्य होते हो। जव वर्तमान मे किसी अन्य खानि की देह से अन्य खानि की देह अनादि नियम विरुद्ध नही होती, तव तो पहिले भी नही हुई, न आगे होगी ॥ ११८ ॥

स्पष्ट—पूर्वपक्षी—[जीवधारियो का विकास]

हमारे शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों से विदित होता है कि हम वानर वश के वशज है। विलायत के नामी प्राकृतिक विज्ञान के आचार्य सर जे० ए० 'टाम्सन' साहव का कहना है कि मनुष्य का शरीर स्मारक चिन्ह का चलता-फिरता अजायव घर है अर्थात उसके

और भैंस हो गया है। तो इस हिसाब से कौवा चीटी खानि रह ही न जाना चाहिये ! फिर ऐसा क्यो नही प्रत्यक्ष होता ? (३) सृष्टि-क्रम के यथार्थ अनादि नियम अटल रहे बिना, नवीन विकास मान लेने पर सृष्टि की कोई भी ठीक व्यवस्था न चलनी चाहिये, किन्तु आप-हम नित्य देखते है—जो लाखो करोड़ो वर्षो की परम्परा को तलाशते हैं तो मनुष्य से मनुष्य होते आये न कि मनुष्य से हाथी, बाघ, सर्प की देहै बन जायँ। आम, कटहल, निम्बू, मकाई, धान इत्यादि बीज परम्परा भी नियमित ही होते आये प्रत्यक्ष है। एक दूसरे मे मिलते-जुलते हुये भी कटहल के बीज से कुम्हड़ा तथा कुम्हडा के बीज से धान नही हो सकता। (४) कोई भी देह धारियो मे पता लगाइये सैकडो वर्षो से खानि के विरुद्ध उत्पत्ति, इन्द्रिय देह आदि नही देखी जाती। जैसे मनुष्य के दो हाथ, दो कान, दो आख के बजाय दस कान, दस आख होना तथा गोड़ शिर मे होना, सर्प से हाथी आदि पैदा होना इत्यादि बाते न होने से विकास वाद अत्यन्त अप्रमाणित हो जाता है। छन्द—"एक गप्पी ने कहा मुझ सामने कौतुक भया। लघु कीट इक आया पुन' सब वृक्ष को वह खा गया॥ फिर सकल पृथ्वी व सिन्धू सूर्य बायू को गटक। फिर उगिल दीन्हा वही ही इस भाँति से सृष्टी चटक कोटि वर्षो पूर्व की लीला इसी बिधि सब जना। कुछ भी असम्भव हो कहीं जु बिकास सृष्टी क्रम बिना॥" (५) हाथ-पॉव चलाने-दौड़ाने के समान नाक-कान से परिश्रम नही लिया जाता, तो क्या नाक या कान मनुष्यो के नही होते ? या आगे न होगे ? बाल नख निरर्थक क्यो जमते है ? कुत्तो की पूँछ क्यो होती है ? बैलो के सीग क्यो जमते है ? इत्यादि। फिर इसका नियम कहाँ है कि जिन अंगो से क्रिया न की जाय वे आगे पीढी-दरपीढी मे परिवर्तन हो जायँ। एक तो यह बात ही असम्भव है कि जो अंग हो, उस पर कुछ न कुछ क्रियाशीलता का

पैर और लम्बी गर्दन हो गयी इत्यादि। इससे यह बात सिद्ध हुई कि पहिले चिड़ियाँ और किस्म की होगी, जल से भोजन न करती होगी। पीछे से जल से भोजन प्राप्त करते-करते फिर ये लम्बी गर्दन-वाली बन गयी। फिर धीरे-धीरे ऊँट। यह बात बिल्कुल गलत है, क्योकि कहते है कि जिन चिडियों को जल से भोजन प्राप्त करना पड़ा, तो इससे साबित है कि पहिले ही से आज की सरीखी चिड़ियाँ थी। क्यों कि अब भी बहुत सी चिड़ियाँ है, जो जल से भोजन प्राप्त करती है। किन्तु उनकी जो परम्परा गति पूर्व-पूर्व ही प्रकार से चली आ रही है। पूर्व प्रकार से वह खानि परिवर्तन होती हो तो वह पूर्व खानि ही न रह जानी चाहिये, किन्तु बतख, पनडुब्बी, बगुले, बगुल-टोटे, सुनहरी चिडियाँ सबकी खानियाँ पूर्व-पूर्व जैसी ही है। परि-वर्तन होकर वे मछली रूप मे या ऊँटरूप मे नही हो गयी। इससे विकासवाद बिल्कुल गप्प ही मारना है। विकासवाद मानने मे कई दोष आते है—एक तो यह विकास किस प्रकार हुआ ? ठीक-ठीक उन्ही को नही मालूम जो कथन करते है, शायदन अनुमान से होगा, हुआ होगा, ऐसी बात पर विवेकवान इसको सत्य नही मान सकते। चीटी से मच्छर हुये होगे, मच्छर से गीदड़, गीदड़ से हाथी, हाथी से ऊँट हुये होगे। ऊँट से बन्दर, बन्दर से मनुष्य हुये होंगे। जैसे ये बाते कल्पित है, तैसे उनकी बाते भी सब कल्पित है। (२) यो तो देह माँस, खून, नाडियाँ, नख-शिख सब देहधारी जीवो की देहों से कुछ न कुछ मिलान हो ही जायगा। कुछ अग मिलान देखकर उनको उन्ही का रूपान्तर मान लेना ऐसा ही है जैसे स्त्री-पुरुष का कई अग मिलान देखकर उनको मान लेना कि किसी समय पुरुषो के गर्भ रहता होगा, चीटी और बाघ दोनो मे टाँग देखकर कह देना कि चीटी का रूपान्तर कालान्तर मे बाघ हो गया है। कौवा, हाथी, भैंस का काला रग समान देखकर कह देना कि कौवा करोड़ो वर्ष पूर्व हाथी

विकास से क्यो नही होते ? इसमे दो ही बात होनी चाहिये, या तो वर्तमान मे भुनगा, जुवॉ, खटमल आदि उष्मजी जन्तु मनुष्यवत मॉ-बाप से होने लगे या तो मनुष्यादि ही अनादि नियम मॉ-बाप से होना छोड कर अब उष्मजी के समान विना मॉ-बाप के होने लगे। अर्थात छोटे-छोटे कीडे बड़े रूप मे, तिनसे फिर वन्दर, तिन्हो की पूँछे झड़कर वे मनुष्य रूप मे होने लगे। दोनों की उत्पत्ति पूर्व से जैसी होती आयी है तैसी उलटा-पल्टा वर्तमान मे भी होने लगे, तब तो जाना जाय कि इसी तरह पहिले भी सृष्टिक्रम विरुद्ध विकास हो गया था ॥ ११९ ॥

ये जब दोनौं होत नहि, एक तरह से देखि।
तब तौ तबहूँ भिन्न है, उतपति दोउन लेखि ॥१२०॥

टीका—जब पूर्व की दोनो वर्तमान मे किसी को बदलती नही दिखाई देती। अर्थात मनुष्यो की उत्पत्ति वर्तमान मे बिना मॉ बाप के उष्मजी जैसे नही होती और मेढक-गिजाइया आदि की उत्पत्ति मनुष्यवत नही होती, तो जल अग्नि के समान दोनो की उत्पत्ति क्रम भिन्न-भिन्न होने से दोनो का उत्पत्तिक्रम कैसे एक प्रकार से मान लिया जाय ? इससे स्पष्ट हुआ कि जैसे वर्तमान में दोनों की उत्पत्ति क्रम भिन्न ही भिन्न है, तैसे पूर्व मे भी था। जो पहिले एक तरह से उत्पत्ति होती तो अब भी अवश्य एक तरह से दोनो की उत्पत्ति होती। ऐसा न होने से भिन्न ही भिन्न वर्तमान जैसा ही उत्पत्ति क्रम अनादि काल से चला आ रहा है, क्योकि जगत अनादि प्रत्यक्ष सबको सनमुख अनुभव है ॥ १२० ॥

जस उतपति अब देखियत, तस माने नहिं चैन।
बसन यथार्थ गवॉय कै, धूम बसन नृप लैन ॥१२१॥

टीका—जिस प्रकार भिन्न-भिन्न उष्मज और मनुष्यो का उत्पत्तिक्रम वर्तमान मे देखते है, तैसे अनादि काल से होते चला

भार न पड़े। इस प्रमाण से वन्दरों की पूँछ निरर्थक-अक्रिय न होने से उनकी पूँछे झड़ से परिवर्तन कहना निरा कपोल कल्पित है। जिनकी वडी पूँछ होती तथा जिनकी छोटी पूँछ होती, ये दोनो अभी तक परिवर्तित नही हुये। दोनो की जाती भिन्न-भिन्न बनी है। यदि वन्दर ही मनुष्य होते तो कव से वन्दर खानि रह ही न जाती। सव मनुष्य हो जाते। इसलिये प्रत्यक्ष ही जो जैसी खानि की उत्पत्ति है उसमे वदलाव नही होता इत्यादि। इस रीति से विकासवाद निर्मूल एव कल्पित है। (६) भू गर्भ के अन्दर प्राचीन मृत ठठरियाँ देख कर अनुमान करने की आवश्यकता ही क्या है? जव प्रत्यक्ष अनादि सृष्टि क्रम अनुकूल जो जैसी खानि की उत्पत्ति पालन है वह करोड़ो वर्ष परम्परा से आज तक वैसे ही चली आ रही है। फिर अव जैसी सृष्टि नियम अनुकूल सब खानियो की उत्पत्ति प्रत्यक्ष हो रही है वैसा ही सदा से मान लेने मे क्या आपत्ति है? आपत्ति नही वल्कि सही-सही सबको प्रत्यक्ष अनुभव है। फिर सडी-गली ठठरी आदि ढूँढ़ने का क्या काम? सच कहा है-"वस्तू अन्ते खोजे अन्ते, क्यो कर आवै हाथ। सज्जन सोई सराहिये, जो पारख राखै साथ॥" वीजक॥

लै मार्क डारविन टामसन के है कथन सच सच नही।
पर विचार किये बिना जो कुछ सुनो सोई सही॥
तुम सत्य वोध के पुण्य स्थल मे भला रहकर सही।
क्यो भला सिद्धात अपना छोड़ हा भ्रम! मत लही॥

कारण कौन न बदलि वह, यह बदल्यो तजि तोर।
या तौ ये वैसहि वनैं, या वै तजैं लकीर॥११६॥

टीका—क्या कारण है कि मेढकादि उष्मजी सृष्टि पूर्व जैसी ही है और यह मानवी सृष्टि-उत्पत्ति पूर्व विकास का नियम वदल गया? अर्थात अव मनुष्य से मनुष्य होने लगे। पहिले सरीखा

लोग एक वजे रात को क्यो घूम रहे हो ? उन लोगो ने कहा—महाराज ! ये दिन है या रात्रि ? राजा यह बात सुनकर फटकार के साथ बोला—क्या तुम लोगों को खबर नही कि हमने बुद्धि-बल द्वारा दिन को रात, रात को दिन कर दिया है ? चारो चतुर समय सोचकर मौन हो गये। राजा ने उन चारों को छ:-छ महीने का कारावास दिया। वे जेल में पडे हुये सोचने लगे कि राजा बिल्कुल अन्धा और प्रमाद वश पागल हो रहा है। इसे बहका देने मे कोई वडी बात नही है। वे राजा को भुलाने का औसर देखने लगे। इतने मे राजा के मन मे हुआ कि सब सूत का कपड़ा पहिनते है, हम इन्द्रलोक के निराकार कपडे या धुआं के कपड़े पहिने, तब तो हमारी महानता है, नही तो क्या विशेषता ? राजा ऐसा सोचकर ढिंढोरा पिटवा दिया कि "इन्द्र के निराकार कपड़े या धूम वसन को कौन बीन सकता है ? वह हाजिर होवे, उसे परिश्रम का योग्य इनाम दिया जायगा। और तो कोई नही वे परदेशी घात पाकर अर्जी लिख भेजे कि हम लोग धूम वस्त्र तथा इन्द्र के निराकार वस्त्र बिन सकते है, पर शर्त यह है कि उसके बीनने मे छ महिने लगेगे। इतने दिन के लिये खर्चा हम लोगो को चार-चार हजार रुपये मिलना चाहिये। राजा गर्जी था ही। उनके कथन अनुसार सव रुपये भेजकर उन्हे जेल से मुक्त कर दिया और अच्छे महल मे मुकाम कराया। वे चारों आनन्द से दिन गुजारने लगे तथा एक बड़ी सदूक मगवा लिये। ताना-बाना भी दिखाने मात्र स्वय रक्खे थे। जब कभी राजा घूमते-घूमते आ जाय तो वे लोग कह दे हुजूर ! कपड़े तैयार हो रहे है। राजा को उत्कट अभिलाषा हो रही थी कि कब हमे धूमवसन पहनने को मिलेगे ? वे चारो छठे महिने के अन्तिम दिन मे निवेदन किये—हुजूर ! धूमबसन तैयार है। कल पूर्णिमा का दिन भी है। हम मे से एक मनुष्य आपके स्नानालय मे चलेगा, आपको

आया है। ऐसा निर्दोप सिद्धान्त स्वीकार करने मे इस मनुष्यो को भ्रम वश शांति नही आती। उल्टे अज्ञान वश वर्तमान प्रत्यक्ष धारा को लोपकर और-तौर ही कल्पना करते रहते है। यह तो ऐसा अज्ञान है जैसे कोई प्रमादी राजा प्रत्यक्ष सच्चे वस्त्र छोड़कर धुआँ के वस्त्र पहिन के तन ढाकने का यत्न करे। इस अज्ञान का फल उसे अपमानित होना, यथार्थ वस्त्र खो देना इत्यादि दुख उठाना पडेगा। तद्वत यथार्थ पारख न पाने से भौतिकवाद मे ध्वंस के धर्म कर्म सदाचार रहित होकर नाना अत्याचार करके पाप वासना द्वारा अव और आगे भी पुनर्देह धर-धर के अनन्त कष्ट पाता रहेगा ॥ १२१ ॥

दृष्टात—एकराजा अपनी वलवुद्धि की क्रिया मे मस्त था। एक समय उनके मन मे उठ पड़ा कि सव राजों के समान ही हम रहे तो हमारी क्या विशेषता ? अत· हम दिन को रात-रात को दिन कर दे तो ठीक है, और तो उपाय क्या चले ? राजा ने मत्री मण्डल तथा फौज अफसरो को वुलाकर वड़ी सख्ती से आडर दिया कि दिन भर सारी प्रजा शयन करे और पुलिस पहरा देवे। दिन को वारह वजे या एक वजे कोई मिले उसे चोर समझ के दण्ड किया जावे और रात्रि को दिन समझ के रात्रि ही को खेती-व्यापारादि सर्व कार्य किया जावे। फौज, मत्रीमण्डल, वड़े-वडे अमीर-उमरा सव इस वात पर कायम किये गये। "आँधी के आगे वेना की क्या विसात ?" धीरे-धीरे साधारण प्रजा जन भी उसी वात को मजूर कर लिये। दिन को रात, रात को दिन का काम करने लगे। एक वार चार परदेशी वारह वजे दिन को उसी नगर में होकर निकले। देखा कि नगर मे सव शूनसान है। वात क्या है, जानी नही जाती। वे चारो यही सोचते-सोचते जा रहे थे कि इतने मे वहाँ के सिपाही उनको पकड कर राजा के पास ले गये। राजा ने कहा—तुम

भय वश कह न सका कोई इतने मे लडको का मडल।
आये देखा राजा नगा कहे उछल पुनि उछल पछल॥
सुनि कै तिन्है प्राण दण्ड हित जब राजा आज्ञा देन लगा।
फिरतो सभी सयाने बोले राजन नगे सत्य ठगा॥
कही धूम के कपडे बनते या निराकार तन ढाकेगा।
जरा विचारो कुछ भी तो तुम वृथा भूल मे नाचेगा॥
और अनेकों वैन सुने फिर राजा निज तन होश किया।
लज्जित होके वस्त्र पहिन कर धूम वस्त्र का मोह गया॥
यो ही जैसी अब जो कुछ हो सहित समग्री सनमुख सव।
तैसी सत्य यथार्थ छोड़कर अदृश्य कल्पना करते तब॥
धूम वसन सम सकल कल्पना प्रकृतिवाद जो गाते है।
विन देखे विन किये विचारै कल्पित लड्डू खाते है॥
आदि विकास मे विन नर नारी अब भी होते क्यों न भला।
अयुक्त असम्भव कभी न होवै बिन प्रत्यक्ष सब झूठ बला।"

मन माने के फेर में, जीव चलै तजि सोंच।
झूठे का पक्षी बनें, तजि सनमुख की जाँच॥१२२॥

टीका—मन गढन्त नाना कल्पना के भुलावा मे पड़ा हुआ सुखाध्यास वश यह जीव अपने सत्य स्वरूप का विचार और यथार्थ अनादि सृष्टि का सत्य विवेक छोड़कर महा मिथ्या अयुक्त बातो का दृढ पक्षपाती बन के हठता धारण कर लिया। सरवसर सन्मुख वर्तमान से यथावत सृष्टि जो जिस प्रकार से उत्पन्न होती है, वह प्रवाहरूप अनादि धारा देखते हुये भी मोह वश तिसकी परीक्षा छोड के कुछ और ही विपरीत कथन करता रहता है॥ १२२॥

सकरोला की उतपत्ति लखि, मनुप न चीन्है बाप।
निज तन उतपति तैरा कहि, बहु विधि करत प्रलाप॥१२३॥

धूम बसन पहिनायेगा। सन्दूक स्नान की जगह मे सबेरे ही मँगवायी गयी। चारो मे से एक मनुष्य जाकर राजा से अर्जी किया कि स्नान की जगह मे हमी आप हों, तीसरा न हो। राजा ऐसा ही किया। राजा को स्नान करा के वह बोला—राजा साहेब! यह सूत के वस्त्र आप उतार डालिये। राजा जल्दी से सब वस्त्र उतार दिये। उसने फिर कहा—अच्छा एक बात और आप ख्याल रखिये कि यह धूमबसन या ये इन्द्र के कपड़े दोगले (वर्णसकर) को नही देख पडेगे, सिवा असल को! ऐसा कह झूठ-मूठ सदूक मे हाथ डाल और झूठे ही राजा की देह भर मे वह हाथ स्पर्श करके कहता भया अब आपको कपडा पहिना दिया। अब इसकी महिमा सुनिये—

लावनी

"ये धूमबसन अति हलके है सबको दीखेंगे भी नही।
अति सुन्दर और सुहावन है महिमा न किसी से जाय कही॥
पुनि उनकी छटा निराली है जो वेद नेति कहि गाता है।
जो कोटि-कोटि विज्ञानी भी नित इसको ही ललचाता है॥
ऐसे ही अनेको बैन सुने राजा नग्न बने हि रहे।
वे धूमबसन की महिमा कह कर बडी बडाई सने रहे॥
पुन: चतुर चाकर ने पूछा क्यों राजन! वस्त्र सुहाता है।
पुनि राजा बोला वाह खूब क्या मेरे मन को भाता है॥
फिर वह चाकर बोला राजन इसका एक जुलूस करें।
जो कोइ नंगा कहे आपको उसके शिरपर खड्ग धरें॥
फिर राजा ने जुलूस किया सबको यह भी सुनाय दिया।
असल नकल का भेद कहा औ हँसने वाला दण्ड पया॥
सुन्दर दिब्य सिंहासन पर वह नगा राजा वैठ रहा।
धूम वस्त्र की जय जय हो सब लोग सोच क्या खेल अहा॥

सत्य, प्रत्यक्ष, युक्तियुक्त, सप्रमाण, सर्वहितैषी तथा कल्याणकारी है। सत्य इससे है कि युक्तियुक्त सिद्ध है। प्रत्यक्ष इससे है कि सामने है। हितैषी इससे है कि यथार्थ ज्ञान द्वारा कल्याण हो जाता है। जीव सदा काल से सत्य है। वासना-वश पाप-पुण्य लगता, आवागवन कर्मो का फल जीव को भोगना पड़ता है और जड़-चेतन दोनो अनादि है। एव पारख द्वारा सत्य का सत्य, झूठ का झूठ यथार्थ ज्ञान होकर जड़ाध्यास—सुखाध्यास को नष्ट करके सर्व दुख से छुटकारा हो जाता है ॥ १२५ ॥

विवेचन

पूर्वपक्षी—सारा प्रसार एक कोशीय जीवो से हुआ है। यह किस प्रकार हुआ ? पृथ्वी के चिप्पड़ को खोलने पर चट्टानो की भिन्न तहे एक दूसरे के ऊपर सजी हुई मिली है। इन चट्टानो मे भिन्न-भिन्न जन्तुओ के चिन्ह भी अङ्कित मिले है'। भिन्न-भिन्न युगो मे कैसे-कैसे जीव थे इसका पता इन्ही के द्वारा चलता है''। पहिले पहल जो जीव बना होगा वह केवल एक कोशीय-जीवाणु अर्थात बुन्द रहा होगा। उसकी उत्पत्ति पानी मे ही हुई होगी। ऐसे ही जीवो से जिन्हे हम न वनस्पति कह सकते है न पशु ही, सो शाखाये निकली, एक जीव-जन्तु की और दूसरे पेड़ पौधो की' इत्यादि।

उत्तरपक्षी—वर्तमान मे जिस प्रकार नर पशु, अण्डज, उष्मज देहधारी जीव देह धरते है, तैसे पहिले भी अनादि काल से देह धरते-छोड़ते चले ही आ रहे है। फिर इसमे अन्य अनुमान करने का क्या प्रयोजन है ? प्रत्यक्ष के विरुद्ध अनुमान सच नही होता। प्रत्यक्ष मुख से खाया जाता, आँखो से देखा जाता, सूर्य से ताप और प्रकाश मिलता, पृथ्वी पर सब चलते रहते आदि। कोई कहे करोडो वर्ष के पहिले मनुष्य आँखो से खाते, मुख से देखते तथा सूर्य मे रहते, आग पीते थे आदि बाते तीनो काल मे सच नही। अबकी उत्पत्ति से

टीका—नशेबाज या वुद्धिभ्राति मनुष्य काष्ठ से मकरोला (लकडी के घुन या कीड़ा) का शरीर वनते देखकर वकने लगे कि "माँ-वाप रहित मकरोला के समान मेरी भी उत्पत्ति हो गई, अत काष्ठ ही मेरे माता-पिता है मेरी उत्पत्ति तो मकरोला के समान ही है। अव देखिये ! जैसे आप मनुष्य उष्मजवत अपनी उत्पत्ति मान के अनेक प्रकार से झूठे-झूठे विकासवाद की वातो की जो ढेरी लगाते है उन्हे भ्रात वुद्धिवाले ही समझिये ।। १२३ ।।

मात पिता से प्राप्ति तन, जिन खानिन में होत ।
कवहुँ न होवै ताहि तजि, सदा अनादी सोत ॥१२४॥

टीका—माता-पिता से जिन खानियो के शरीर की उत्पत्ति होनी आई और अव हो रही है, तिन्हो की उत्पत्ति विना मा-वाप के तीनों काल मे नही हो सकती, क्योंकि पूर्वोक्त प्रमाणो से सिद्ध हुआ है—जैसे मनुष्य, पशु और अण्डज तीनो खानियो के जीवो का शरीर परम्परा माता-पिता के ही सम्वन्ध से उत्पत्ति होना वर्तमान मे प्रत्यक्ष है, तैसे पहिले अनादि काल से था तथा आज है। और आगे भी होता रहेगा। भूत, भविष्य, वर्तमान तीनो काल मे यह नियम टल नही सकता क्योकि इस सृप्टि की नियमवद्धता अनादि काल से ऐसे ही प्रवाह धारा चली आ रही है ।। १२४ ।।

उष्मज खानी जीव जो, देह धरत अव जैस ।
तैसहिं रहा प्रवाह यह, सत्य प्रत्यक्ष हितैप ॥१२५॥

टीका—उष्मज खानियो की देहे वासना और तत्त्वयुक्त परमाणुओ से जिस तरह वर्तमान में वनते दिखाई दे रही है, उसी प्रकार अनादि काल ही से यह प्रवाह समझो और ऐसे ही आगे भी यह धारा चली जायगी। योनिज और अयोनिज दोनों प्रकार से भिन्न-भिन्न सृष्टि प्रवाह अनादि से ही चली आई है, यही सिद्धात

करके आदि सृष्टि में विचित्र ढग के जीवो की कल्पना करना, ऐसे ही है जैसे सीपी मे चाँदी की कल्पना।

छन्द—"लाखो बरष से देह की उत्पत्ति जैसे होत है।
नर पशु व कीडे काग खग मृग जौन जैसे सोत है॥
बदलाव होता आज तक तो नारि नर जाते बदल।
शिर पैर मे या और कुछ विपरीतता दिखती प्रवल॥
विपरीतता कुछ भी नही है पूर्वजो से देखिये।
इस हेतु सर्व विकासवाद जु स्वप्नकौहट लेखिये॥"

[प्रसंग १०—जगत अनादि रहने की सर्व योग्यता का कभी अभाव न होने से प्रवाहरूप जगत अनादि निरूपण]

आरम्भवाद झूँठा लखौ, बीज वृक्ष के न्याय।
एक छोड़ि कै एक की, उतपति नहीं देखाय॥ १२६॥

टीका—आरम्भवाद का अर्थ जगत को पहिले न मानकर पुन· नवीन रूप से किसी प्रकार उत्पत्ति या विकास कहना, यह आरम्भ-वाद जगत उत्पत्ति का पक्ष झूठा है। विवेक-युक्त देखो तो युक्ति सगत यही बात ठीक ठहरती है कि बीज-वृक्ष न्याय से जगत प्रवाह-रूप अनादि है। बीज छोड़ि के वृक्ष नहीं और वृक्ष छोड़ि के बीज नही। इस प्रकार एक के न रहने से दूसरे की उत्पत्ति नही होती। तैसे ही दूसरे के न रहने से एक की उत्पत्ति नही दिखाई देती। इससे स्पष्ट है कि बीज-वृक्ष की प्रवाह धारा अनादि होने से इसका नवीन-रूप से आरम्भ नही॥ १२६॥

स्पष्ट—वर्तमान में आम का बीज न हो तो आम का वृक्ष कोई नही बना सकता, एवं आम वृक्ष न हो तो आम बीज कोई नही बना सकता। ऐसे ही जो जिस प्रकार होते है, वह सब योग्यता और सामग्री न हो तो वे सब कार्य अकारण अथवा अन्य किसी कर्त्तादि से बनते हुये देखे नही जाते, यह प्रत्यक्ष अनुभव है। इससे यह सिद्ध

उल्टे प्रथम जीवों की उत्पत्ति जिस प्रकार कल्पना करते हो अव क्यो नही पूर्व जैसे जीव की उत्पत्ति होती ? जिस कारण से अव वैसी उत्पत्ति नही, तिसी हेतु से तव भी वैसी उत्पत्ति नही हुई थी।

जीव तो गोचर रहित स्वय अविनाशी है। उसकी उत्पत्ति होती ही नही। हाँ ! वासनायुक्त देहधारी जीवो का देह धरना तो अनादि काल से खानियो के धर्मानुसार होता ही रहता है, सो प्रत्यक्ष है। परन्तु जैसे कोई कहे—अमुक मनुष्य अपने कधे पर चढ के आप ही नाचता रहा होगा तथा अपने नेत्र निकाल कर अपने ही नेत्र से देखा होगा, जैसे ये बाते विरुद्ध, अघटित है, तैसे बिना माँ-बाप के योनिज खानियो की उत्पत्ति मात्र जल मे रहे हुये एक कोशीय वुन्द मात्र से वना होगा, रहा होगा, ऐसा-वैसा हुआ होगा ! पहिले तो ऐसा-ऐसा होगा कहने वाले के मुख से ही झूठी गवाही मिलती है। दूसरे सृष्टि क्रम से युक्ति विरोधी बात बिल्कुल मिथ्या है। १—पहाड़ों के सतहो तथा अन्य जमीनो के पर्तो मे विचित्र ढंगो की हड्डियो के ढाँचे देखकर सृष्टिक्रम विरुद्ध देहधारी जीवो की कल्पना की जाती है वह सब प्रत्यक्ष सृष्टिक्रम विरुद्ध होने से ठीक नही है। वर्तमान में कितने-कितने गाँव वडी नदियो के प्रवाह मे डूब जाते। वे बहकर कही के कही नदियो के वडे-वडे किनारो के करारे ढहने तथा पहाड़ो की चोटियो के खिसकने से बहुत से नर-पशु आदि के शरीर दवते या पृथ्वी मे गाडे हुये वही कुछ दिनो के बाद किसी योग्यता से जगह खुल जाने से सडी-गली हड्डियाँ वीभत्स्य, विचित्ररूप से दीखती। बहुत काल की वे हड्डियाँ नही बल्कि थोडे ही दिनों मे गाड़ा हुआ मुर्दा सड़ गल के लापता हो जाता है। भैसा, भैंस, गऊ, हिरन, वैल की सड़ी गली हड्डियाँ एक जगह रख दी जायँ तो कोई पता ही नही लगा सकता कि कौन भैंस की हड्डी कौन गाय की ? कहीं-कहीं अल्प कालीन हड्डियो को देख करोडो वर्षो की हड्डियाँ अनुमान

मारत डीला वृत्त में, फलन देखि करि होश।
वैसहिं मारै वृत्त तजि, पटतर कैसे तोष॥ १२६॥

टीका—जैसे कोई वृक्ष मे वहुत से फल लगे देखकर फल गिराने के लिये फल की तरफ ख्याल करके निशाना लगाकर सावधानता से ढेला मारता है, तो किसी न किसी समय फल को प्राप्त कर खा के तृप्त हो जाता है। कोई दूसरा मनुष्य भी उसको ढेला मारते हुये देखकर बिना वृक्ष ही के शून्य मे ढेला मारे तो उसे क्या फल प्राप्त होगा ? और क्या खा के तृप्त होगा ? वृक्ष और फल देखकर डीला मारने वाले की बराबरी शून्य मे यत्न करनेवाला कैसे कर सकता है ? क्योंकि फल तो वृक्ष में ही लगते है, शून्य मे नही। कहाँ वृक्ष मे फल देखकर ढेला फेंकना और कहाँ प्रमादवश वृक्ष-फल आदि कुछ न देखते हुये भी शून्य मे ढेला मारना। दोनो का पटतर नही हो सकता। एक पुरुषार्थ फलदाई है तो दूसरे का निष्फल। तैसे ही वर्तमान मे जिन खानियो की जिस प्रकार परम्परा से उत्पत्ति होते सनमुख है, उसी प्रकार सदा समझना, मानना, कहना तो ठीक है। इस यथार्थ समझ से सदाचरण मे मन लगकर हमेशा जीव का कल्याण होगा और वर्तमान के उल्टे सृष्टिक्रम प्रत्यक्ष के विरुद्ध करोडो वर्ष के परिवर्तन द्वारा उत्पत्ति कहना मानना शून्य में ढेला मारकर फल खाने की आशा के समान निरर्थक एव युक्तिशून्य है, क्योकि बिना प्रत्यक्ष अनुमान की सिद्धि होती नही। प्रत्यक्ष रहित धोखे का विश्वास कर अयोग्य आचरण से जीव का कभी कल्याण नही हो सकता॥ १२६॥

[दृष्टात—प्रत्यक्ष अनुभव के विरुद्ध अनुमान मिथ्या है]

एक वैद्य रोगी को देखने गये। उनके साथ एक कम बुद्धि वाला शिष्य भी गया। वैद्यजी रोगी के पास ज्यो ही पहुँचे त्यो ही वहाँ चने के छिलके इधर-उधर पडे देखकर अनुमान कर लिये कि यह

है कि भूत और वर्तमान मे भी जगत की व्यवस्था यही रहती आई है और इसी प्रकार आगे भविष्य में भी चली जायगी। यही कारण है कि जगत प्रवाहरूप अनादि है।

नारि पुरुष बिन सृष्टि कहँ, परम्परा से शोध।
प्रथम बिना पितु मातु के, अब कस परै विरोध ॥१२७॥

टीका—स्त्री और पुरुषो के बिना नर, पशु, अण्डज खानियो की देहे होती कहाँ कब किसने देखा ? इस बात को परम्परा से तलाश करके देखो ! जैसे अपना शरीर अपने माता-पिता से, तैसे माता-पिता का शरीर उनके माता-पिता से, एवं सब अपने-अपने पूर्वजो के शरीर अपने-अपने माता-पिता से होते ही आये ऐसा परम्परा से शोध करने पर स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। इसलिये जगत अनादि है। जो कहते है कि सृष्टि की आदि मे बिना माँ-बाप के ही सूक्ष्म कीटों से या किसी प्रकार धीरे-धीरे नर नारियो का विकास हुआ, तो अब वैसा होने मे क्यो विरोध हो रहा है ? काहे रुकावट पड़ती है ? अब क्यो नही माँ बाप के बिना नर-पशु आदि की उत्पत्ति होती है ॥१२७॥

जिन कारण अब होत नहिं, सोइ कारण से तव्य।
उतपति रहित अनादि जग, तीनि काल लखतव्य ॥१२८॥

टीका—जिन कारणो से वर्तमान मे माँ-बाप के बिना योनिज सृष्टि नही होती, उसी कारण से जब जगत की उत्पत्ति मानते हो तिस समय भी बिना माँ-बाप के मनुष्य, पशु, पक्षी आदि नही होते थे और आगे भी नही होंगे। इससे स्पष्ट हुआ कि यह ससार सदा से है। इसकी किसी समय पूर्व काल में नवीनरूप से उत्पत्ति नही हुई, न सम्पूर्ण सृष्टि का एक समय मे विनाश ही होगा। एव भूत, भविष्य, वर्तमान तीनो काल मे जगत अनादि विवेकयुक्त प्रत्यक्ष जाना जाता है ॥ १२८ ॥

टीका—केचुवा, गिजाई, भुनगादि सम्पूर्ण उष्मज खानियों के जीवो की देहे जिस देश काल, योग्यता, वासना से बन जाती है, उतनी सब योग्यता छोडकर उनकी देहे कदापि नही बन सकती। यदि अनादि प्रवाह विरुद्ध उत्पत्ति होती, तो उष्मज खानि की देहे योग्यता छोड़कर क्यो नही हो जाती ? अयोग्य से उत्पत्ति तो दूर रही, विरोधी अगारादि पडने से उनकी देहे भस्म होकर मिट्टी मे मिल जाती है। इससे यह अनुभव हुआ जैसे मनुष्य खानि योनिज होने से उनकी उत्पत्ति मे वासना युक्त माता-पिता के रज-वीर्य का नियम है, तैसे उष्मज खानि की देहों के बनने के लिये योग्यता भूमिका देश समय का नियम है। दोनो की देहे विषम सयोग से कभी नही बन सकती। इससे दोनों की उत्पत्ति भिन्न-भिन्न अनादि काल से वर्तमान जैसे ही है ॥ १३० ॥

बाल वृद्ध उतपति तरुण, मृत्यु न छोड़त साथ।
गर्भबास झूला नितै, चक्र हिंडोला गाथ ॥ १३१ ॥

टीका—बालपन, जवानी, बुढापा पुन: मृत्यु ये उपाधियाँ वासना वश देहोपाधियुक्त जीवो का साथ नही छोडती। जैसे कइयो पटरी-युक्त एक-दूसरे में जुडे हुये हिडोला नीचे-ऊँचे दहिने-बाँये निरन्तर घूमा करता है, तैसे देहधारी जीवो को वासना वश स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्म से स्थूल देह धरने के चक्र में अनादि काल से कर्म वासना के बडे वेग मे स्थूल-सूक्ष्म पटरी पर बार-बार गर्भवास, जन्म-मृत्यु, बाल-युवा, तरुण, वृद्धता का अनुभव होता रहता है, यही सृष्टिचक्र का हाल है ॥ १३१ ॥

शब्द गजल १-

तू चेत इस पलक मे पावै अमूल्य हीरा।
आगे क क्या ठिकाना क्षणभग है शरीरा ॥ टेक ॥

चना अवश्य चबाया है। उसकी बदपरहेजी पर नाराज होकर वैद्य उसकी नाडी पकडकर धक्का दे डाल दिये और कहा तुम बहुत असयम करते हो, तुम्हारी दवा अब हम नही करेगे, तुम्हारी नाड़ी मे चना उछल रहे है। रोगी हाथ जोड़ के बोला—भूल क्षमा कीजिये, मैने दो-चार गाल चना चबा लिये अब आगे भविष्य में ऐसा कभी न होने पायेगा। वैद्य दवा देकर यहाँ से चल दिये रास्ते मे शिष्य ने पूछा महाराज ! आप उसके चने खाने की परीक्षा कैसे कर लिये ? वैद्य ने कहा—चने के छिलके उसकी चारपाई के पास पड़े थे, इससे अनुमान हो गया। फिर दूसरे दिन वैद्यजी ने अपने शिष्य को भेजा। शिष्य ने जाते ही देखा कि एक हल उसके मस्तक की तरफ दीवार के सहारे रक्खा हुआ है। नवीन वैद्य ने कहा ये क्या है ? रोगी उठ के देखा और कहा कि ये हल है। नवीन वैद्य मन मे सोचा, हल मे तो लोहा का फार लगा होता है। वह न होने से सम्भव है इसने फार खा लिया होगा। फिर उसकी नाडी को पकड़कर वैद्य ने कहा—मालूम होता है तैने फार चबा लिया है, क्योकि तेरी नाडी में फार ही कूद रहे है। उसके पास मे बैठे हुए अन्य लोग कहने लगे क्या तुम पागल हो गये हो ? कही लोहा का फार मनुष्य चबा सकता है ? उसने कहा हम इस हल को देखकर अनुमान करते है। लोग उसको पागल समझके डाट-फटकार कर निकाल दिये। इसका मतलब यह कि अनुमान उसीका होता है जो प्रत्यक्ष के अन्दर अनुभूत हो और अनुभव रहित अनुमान मिथ्या कल्पना ही कहा जाता है। अत मनुष्य को सदा माँ-बाप के रज-वीर्य से पैदा होते देखकर यह कभी नही अनुमान हो सकता कि कभी जुवाँ लीख के समान मनुष्य पैदा हो गये।

उष्मज खानी होय जहँ, जेहि कारण से देह।
ताहि छोड़ि कस होय नहिं, परे विरोधी खेह ॥१३०॥

टीका—सब समय सब जगत का कार्य चालू है, वही समय में कोई मरता है, कोई जन्मता है, कोई वृद्ध तो कोई जवानी को प्राप्त होता है। कोई अभी इसी समय पैदा हुआ है, कोई बालक होकर खेल रहा है, इस प्रकार प्राणियों का प्रवाह हमेशा से चला आ रहा है। देहधारियो के निर्वाह के लिए दिन-रात चाहिए, सो दिन से रात, रात से दिन ये भी एकाधार से होते ही चले आए है। भूत, भविष्य, वर्तमान इनकी परीक्षा प्रत्यक्ष वर्तमान से लग जाती है। जो वर्तमान है वही एक दिन पहिले भविष्य था और भविष्य काल का दिन सन्मुख आ जाने से वर्तमान हो जाता है, तथा वर्तमान तो सन्मुख को कहते ही है। आज सन्मुख का दिन बीत जाने से वही भूत कहा जाता है 'जो आज जिस प्रकार सृष्टिक्रम चल रहा है, वही' अनादि काल से पूर्व भूत समय मे था तथा आगे भविष्य में भी चलता रहेगा। इस रीति से पिण्ड-ब्रह्माण्ड जगत को प्रवाह अनादि जानना चाहिए ॥ १३२ ॥

१—टिप्पणी—[अनादि व्यवहार का भेद]

अनादि काल से जगत है। इसको किसी न किसी प्रकार सब महात्मा-जन कहते है, परन्तु ठीक-ठीक सर्वांग पारख न होने से फिर भ्रम जाते है। रामायण मे भी कहा है -"तात मोह वश सोचिय वादी। विधि प्रपञ्च अस अचल अनादी ॥ नाम अनादि सिद्धि थल येहू। लोनेउ काल विदित नहि केहू ॥" गीता मे भी कहा है "प्रकृति पुरुषंचैव विद्धनादि उभावपि।" अर्थात प्रकृति पुरुष अनादि तू, अर्जुन दोऊ जान ॥ षट ऋतु वर्णन—अनादि काल से स्थित सूर्य, चन्द्र, तारा, पृथ्वी, जल, वायु की किया से षट ऋतु होते रहते है। दिन, वार, पक्ष, मास। दो मास की एक ऋतु, चार मास का एक काल अर्थात चैत्र-वैसाख वसंत ऋतु, ज्येष्ठ-आषाढ ग्रीष्म ऋतु, श्रावण-भाद्र वर्षा ऋतु कुवॉर-कार्तिक शरद ऋतु, अगहन-पौष, हेमत ऋतु, माघ-फाल्गुन शिशिर ऋतु। ये छह ऋतु है। फाल्गुन से ज्येष्ठ तक धूप काल, आषाढ से आश्विन (कुवॉर) तक वर्षा काल और कार्तिक से माघ तक (शीत या शिशिर) ठंढ काल कहा जाता है। अनादि काल से स्वाभाविक किया द्वारा जैसा जैसा सूर्य

सतसग तीव्र आरी, भव वृक्ष शीघ्र काटो।
जिससे न देह होवै, छूटै अनत पीरा ॥ १ ॥
कर मुख्य काम अपना, तजि भीर भार दूजा।
निज पद के रक्ष हेतू, जो होय सोइ मीरा ॥ २ ॥
अत करण ये शीशा, अभिमान मल से छादित।
तिस की करो सफाई, हाजिर हजूर तीरा ॥ ३ ॥
जन्मो अनेक परवश, तैंने वृथा गुमाया।
मन वश मे नाच नाचे, रोवै हँसै अधीरा ॥ ४ ॥
गुरुवर कवीर टेरे, तू प्रेम सुन के जागे।
पारख मे लक्ष दृढकर, सब द्वन्द्व सुख मिटीरा ॥ ५ ॥

भजन २

क्यो चित्त तू लोभाया नश्वर असार नीरा।
तू शीघ्र शात पावै जाके गुरू के तीरा ॥ टेक ॥
विद्या व बुद्धि धन वल, तव ही सफल हो तेरा।
जव की शुभाचरण सव, गहि कै स्ववोध धीरा ॥ १ ॥
विज्ञान का न मद ले, विपरीत कुछ न होगा।
दिन रात नर व नारी, शिर जन्म मृत्यु पीरा ॥ २ ॥
वड़-वड़ भे काल ग्रासा, दुनिया ये स्वप्न लासा।
पग-पग मे हो भुलावा, सुख मान ठग कि भीरा ॥ ३ ॥
मन प्राण इन्द्रि साधन, इनको विलग से देखैं।
द्रष्टा स्वय प्रकाशी, गुरु की दया गँभीरा ॥ ४ ॥
सुख की झलक निवारो, निज शीघ्र ही सम्हारो।
कर्तव्य मुख्य ये ही, यहि प्रेम पर्ख खीरा ॥ ५ ॥

सब दिन ये सबही रहे, दिनौ रात यकतार।
तीनों काल प्रत्यक्ष है, जग अनादि व्यवहार ॥ १३२ ॥

क्योकि छह-छह भेद के स्वरूप ही चारो तत्त्व है। उनमे गुण धर्म शक्ति आदि षट भेद असख्य कार्यों का बनना-बिगड़ना यही तत्त्वों का ऐश्वर्य एवं विभूति है। अर्थात-बीज वृक्षादि सम्पूर्ण कार्य प्रवाह होने ठहरने का आधार जड़तत्त्व सदा से रहते आये और आगे भी रहेगे। इससे यह अनुभव हुआ कि सम्पूर्ण जगत उत्पत्ति प्रलय रहित अनादि स्थित रहा है और रहेगा ॥ १३४ ॥

[प्रसंग ११—जड तत्वो के गुणधर्मो से पृथक कोई कुछ तिनसे नही बना सकता, न ऐसे ही तिनसे बन सकता और प्रकृति भिन्न ज्ञान स्वरूप चेतन जीवो की विशेषता]

कोयला पानी तेल मिलि, पौना अनल प्रचण्ड।
पृथ्वी को घेरा किहे, सब मिलि भये उदण्ड ॥ १३५ ॥

टीका—अब जो जड़ यन्त्र मशीनों का गर्व करके जीव अपने स्वरूपबल तथा विशेषता को भूल रहे है, तिन प्रति परखाया जाता है कि चाहे जो मशीन या यंत्र हों, सबमे कोयला, पानी तथा तेल का सम्बन्ध करके अग्नि को प्रज्वलित कर वायु मे तेजी उत्पन्न करके पृथ्वी तत्त्वयुक्त लोहा ताँबा, पीतल का घेरा लम्बा गोल त्रिकोण छोटा-बड़ा विविध ढाँचा बनाकर इंजन नाम धर के जल तत्त्वयुक्त भाप द्वारा वे सब इजन मशीन विद्युत कलायुक्त प्रचड-तेज दिखाई दे रहे है। उदण्ड कहिये बडे बलवान शक्तिमान दृश्य हो रहे है। जैसे विद्युत, रेलगाड़ी, हवाई जहाज, मोटर, रेडियो, वायरलेस आदि सबमे चारो तत्त्वो का पूर्वोक्त मिश्रण है। इसके अलावा और कुछ नही, सो चारों जड़ है इसे आगे सुनिये ॥ १३५ ॥

जेते यंत्र मशीन हैं, भूतन का बल जोउ।
स्वाधीन जीव तिनको किहे, योग्यहि कार्य रचेउ ॥ १३६ ॥

टीका—जहाँ तक विद्युत और भापयुक्त यत्र-मशीनरी का काम है, सो सब क्रियावान जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु इन तत्त्वो की ही

ऋतू न छोड़त साथ हैं, पट पट मास प्रवाह।
जब तक ये टूटैं नहीं, तब तक जग निर्वाह ॥ १३३ ॥

टीका—अनादि काल के जगत में पट ऋतुओं की सिलसिला नही छूटती। एक गया तो दूसरा आया, एव छह मास उत्तरायण छह मास दाक्षिणायन इसी प्रकार एक के वाद एक प्रवाह धारा चालू रहती। सो जब तक सूर्य का उत्तरायण-दक्षिणायन होना वन्द नही होगा, तब तक पटऋतु वने ही रहेगे और जव तक छह ऋतु रहेंगे, तव तक जाड़ा, गर्मी, वरसात ये तीन समय भी वने रहेगे। जब तीन समय वने रहेगे तव सम्पूर्ण देहधारियो के देह निर्वाह की सब सामग्री अकुरज फल-फूल, वीज-वृक्षादि प्रवाह वने ही रहेंगे। इससे यह सिद्ध हुआ कि जब सूर्य और सूर्य की अनादि क्रिया का प्रवाह वन्द नही होता, तो सम्पूर्ण ससार भी ऐसे ही अनादि प्रवाह रहते आया और रहेगा ॥ १३३ ॥

सब नाशैं उतपति नहीं, एक से जगत असिद्धि।
भूत रहे कस भेद गत, भेद रहे असमृद्धि ॥ १३४ ॥

टीका—सब ब्रह्माण्ड यदि नाश हो जाय तो उत्पत्ति किससे क्यो किस प्रकार हो सकती है? और एक किसी कर्त्ता या कारण से जगत की उत्पत्ति पूर्व मे असिद्ध हो चुकी है। भूत कहिये ये चारो तत्त्व, भेद कहिये छह-छह भेद, गत नाम रहित किस प्रकार हो सकते?

उत्तरायण आता है और चन्द्रमा जैसे जैसे दक्षिणायन जाता है तव धूप काल का जोर पडता है और सूर्य जव अत्यत उत्तरायण आता है तथा चन्द्रमा अति दक्षिगायन जाता है तव वर्षा आ जाती है। ज्यो ज्यो सूर्य दक्षिगायन आता जाता है और चन्द्रमा उत्तरायण आता जाता है त्यो-त्यो वर्षा का अभाव होता जाता है और सूर्य जव अत्यन्त दक्षिगायन आ जाता है, चन्द्रमा अत्यन्त उत्तरायण आ जाता है तव पूर्ण शीत काल हो जाता है। इस प्रकार अनादि सूर्य चन्द्र तारा और पृथ्वी जल वायु इन्ही की क्रिया से छह ऋतु का अनादि प्रवाह चलते आया है तथा ऐसे ही सदा चला जावेगा।

अन्त मे स्टेशन पर रोक देता है। ये सब बाते जनैया जीव के बिना नही होती। नर देहधारी के स्वयं जाने और दूसरे को जनाये बिना सब जड़ तत्त्व यत्र-तत्र निरर्थक क्रियाशील बने रहे तो क्या है ? कौन लाभ ? क्या हानि ? क्या सुख ? क्या दुख ? जहाँ देहधारी जीव नही है, वहाँ नदियाँ बहती, वायु चलती, झाड पहाड पडे रहते, उनसे कौन प्रयोजन हल करे ? कौन काम लेवे ? ॥ १३७ ॥

जहाँ भूत नहिं स्ववश हैं, तहाँ न मानि स्वधीन।
बेवश अपने मानि कै, रहत जीव तहँ दीन ॥१३८॥

टीका—जड़ तत्वो पर स्ववशता का प्रमाद करने वाले लोग भी सूर्य, चन्द्र, ठढी, गर्मी, बरसात, पाला-पत्थर, झूरा, अतिवृष्टि आदि तत्वो की क्रियाओ को जहाँ कब्जे मे नही कर पाते, वहाँ उनकी भी जड़ प्रकृति की स्ववशता का गर्व चूर्ण हो जाता है। वे अपनी मन-मानी ऋतु-समय, दिन-रात आदि न कर पाने से अपने स्वाधीन न मानकर प्रकृति शक्ति को अपरिमित मान के लाचार बनकर पुन दुखी होते रहते। विज्ञानी बनते हुये भी उन्हे हाथ मीज कर रह जाना पडता है ॥ १३८ ॥

महि सविता वातावरण, नदी सिन्धु सर कूप।
जानि जनाउब हीन सब, जड़ गुण धर्म को रूप ॥१३९॥

टीका—सम्पूर्ण पृथ्वी, अग्निरूप सूर्य, वातावरण रूप वायु और नदी समुद्र तालाब कुआँ आदि का जल ये जड़ चार तत्व न कुछ स्वयं ज्ञान कर सकते न दूसरे को कुछ दुख-सुख हानि-लाभ जना सकते है। काहे कि ये सब षट भेद जड़ गुण पाँच विषय और शीतोष्ण, कठोर, कोमल धर्मयुक्त जड़ के स्वरूप ही है, इनसे जहाँ तक कार्य मशीनादि बनते है, सो भी जड है, क्योंकि उनमे चेतन के गुण-धर्म कोई नही ॥ १३९ ॥

शक्ति सामर्थ्य है। क्योकि गर्म, ठण्ढ, कठिन, कोमल इन्द्रिय गोचर स्थूल-सूक्ष्म आकार ये तत्त्वों के ही स्वरूप हैं। तिन जड तत्त्वयुक्त अनेक कारण-कार्य पदार्थ को जान-मान के नर देहधारी चेतन जीव अपने वल से तिन्हे एकत्र करके यत्र मशीनादि को कब्जे मे रखता है। कुछ सामान कब्जे मे रखते हुये भी होने योग्य विविध पदार्थ रचता रहता है। अनहोनी—अयोग्य काम कोई नही वना सकता॥ १३६ ॥

जीव विना ये नहिं करैं, सवहिं हिसाव से काम।
जानि जनाउव के विना, सवही परे वेकाम॥ १३७॥

टीका—चेतन जीव यदि न हो तो ये स्वयं कोयला, पानी, अग्नि तथा लोहा, ताँवा इकट्ठा होकर यत्ररूप रेल, तार, मोटर, घड़ी वन के स्वय समय घटा, मिनट का हिसाव लगाकर आवश्यकता के अनुसार भाँति-भाँति की क्रिया क्या कर सकते थे? कभी नही। देखो प्रत्यक्ष इजीनियर-ड्राइवर घडी मे कूक देने वाले, विद्युत सचारकर यथायोग्य काम मे लगाने वाले मनुष्य जीव न हो तो प्रथम वे स्वय यंत्ररूप मे वन ही नही सकते। दूसरे उनमे क्रिया भी वैसी नहीं हो सकती कि जैसा मनुष्य अपनी कार्यसिद्धि के लिये उनमे वेग भरता रहता है। घटी वज चुकी, रेल आ रही है, ठीक टाइम रेल आ गई, लोग चढ गये। नियमानुसार रेल रोककर पुन सीटी देकर चल दी। एक प्वाइट छोडकर सिलसिला से दूसरी प्वाइट पर गाड़ी चल रही है। ये सव स्वय जड रेल मे कहाँ शक्ति है? या गाड़ी आने मे देर हो गई, फोन कर दिया गया, दूसरी ट्रेन इधर से खतरा जानकर नही छोडी जा रही है। लोग गाडी की राह देख रहे है। देर मे रेल आई, लेट हो जाने की वजह से थोडी ही देर ठहराकर ड्राइवर रेल चला देता है। पूरे पावर से रेल के पुर्जा ऐंठ कर तेजी से रेल चलाता है। स्टेशन पहुँचते-पहुँचते इञ्जन की मन्द गति करते जाता है।

अज्ञान है। जड़-जड़ के संयोग से चेतन बन गया अथवा जडरूप मस्तकादि ही चेतन है, ऐसा कथन करना नादानपन है। ऐसी नादानता का हेतु क्या है ? सो गुरुदेव बताते है, सो सुनिये ॥१४२॥

दिनहिं अँधेरा जीव के, सुखाध्यास भ्रम रैन।
बिन पारख गुरुज्ञान के, कौन हरै तम ऐन ॥१४३॥

टीका—नरदेह मे प्रबल प्रकाशरूप सत्संग, सद्ग्रन्थ एवं विवेक की सब सामग्री होते हुए भी इसे यथार्थ मार्ग नही दिखाई दे रहा है। इसका हेतु है—पच ज्ञान इन्द्रियो से पाँचो विषयों को देख, सुन, भोग के आदत बना-बना कर उसीमे सब सुख की कल्पना दृढ निश्चय कर लिया है। अब वही दृढ आसक्ति महा अँधेरी रात्रि के समान बिल्कुल अन्ध असूझ कर रही है। याते जीव को विषयासक्ति के अलावा कुछ सत्यासत्य सूझ पढता ही नही। अहो ! पारखगुरु के रविवत ज्ञान प्राप्त किये बिना इस महा भूलरूप अँधेरी रात्रि के कठिन बन्धन को कौन हरण कर सकता है ? याते जब गुरु पारख के सत्सग मे जीव की लगन लगे तब इसका काम बने ॥ १४३ ॥

यावत जड़ सब शुन्य हैं, ज्ञान प्रकाश विहीन।
ज्ञान प्रकाश है जीव का, जानि जनाय अलीन ॥१४४॥

टीका—जहाँ तक देह, मस्तक, प्राण, मन से लेकर बाहरी चार जड़ तत्व कारण-कार्य सर्व दृश्य पदार्थ और जहाँ तक कल्पना है सो सब जड़ है, प्रकाश ज्ञान कला से शून्य है। ज्ञान धर्म से रहित प्रत्यक्ष पिण्ड-ब्रह्माण्ड दृश्य हैं, याते ज्ञान धर्म स्वतत्र जीव का ही है, वह

१—टिप्पणी—श्री काशी साहेब कहते है—प्रथम जड पदार्थों को मिलाने से एक ही प्रकार की क्रिया होती है। जैसे बन्दूक, मेघ, घडी का शब्द, जल के बुलबुले। परन्तु मनुष्यादि देहधारी जीवो मे इच्छा-अनिच्छा कर्त्तव्य कर्म सोच के करना, चतुराई के गुण, किसी कार्यो, तीन समयो, ग्रहण आदिको का नियमित समय ठहराना इत्यादि भिन्न-भिन्न होते ही रहते है। दूसरा फलॉ-

संयोगिक सबही कार्य में, चव भूतन के चिन्ह।
तिनको छोड़ि न और कछु, कतहुँ भयो अलिन्ह ॥१४०॥

टीका—चारो तत्व के मेल से जितने घडा, घर, यंत्रादि असख्य कार्य पदार्थ बनते है, उन सब मे चार जड तत्वों के ही लक्षण पाये जाते है। अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी इन चारो को छोडकर न तो कोई यत्र है, न अन्य पदार्थ वे कही भी कार्य-कारण जड़ तत्व से न्यारे नही है, इसलिये ॥ १४० ॥

संयोग वाद झूठा सकल, और न तिनमें धर्म।
स्वतन्त्र जीव का धर्म है, ज्ञान पृथक ही मर्म ॥१४१॥

टीका—केवल जड़ के मेल से जो नवीन शक्ति होना मानते, वह सयोगवाद झूठा है, मिथ्या है। क्योकि जो कुछ नवीन शक्ति बनायेंगे, वह नवीन नही बल्कि वह सब चार तत्वयुक्त पाँच विषय शीत, उष्णादि चार धर्म के अन्दर होने से प्रत्यक्ष जड़ भूत के स्वरूप ही है। नाना कार्य जड गुण धर्म से अलग नही और जड़ तत्वो के जड़ धर्म रहित जड से पृथक चेतन जीव स्वतन्त्र ज्ञान धर्मवाला सत्य है। चेतन जीव जड वत कारण कार्य नही होते, क्योकि वे जड तत्वों के ज्ञाता जड़ तत्वो से सदा भिन्न है। यही जड चेतन की पृथकता का भेद है ॥ १४१ ॥

गुण धर्मन के अन्दरे, सब भूतन के कार्य।
पेट चीर पपील का, सूरज बच्चा नार्य ॥१४२॥

टीका—कारणरूप पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चारो के गुण पाँच विषय और शीत, उष्ण, कठिन, कोमल, ये चार धर्म इन्ही के अन्दर ही सब कार्य पदार्थो को जानना चाहिये। तिन जड़ तत्वों मे चेतनपना का बिल्कुल अभाव है। तिस जड को परस्पर एकत्रकर सयोग से नावरूप चेतन की उत्पत्ति कहना वैसे ही अनारीपन है जेसे चीटी का पेट फाडकर सूर्य का गोलारूप बच्चा उत्पन्न हो गया, ऐसा कहना

फल-छन्द

सद्गुरु कृपा करि जो कहे है,
वह सुधा वच पान कर।
छुटै अविद्या ग्रन्थि तव हो,
दिव्य पारख ध्यान धर।
जड देह की आसक्ति तज,
हो तृप्त शात महान वर।
इस दृश्य गोचर जाल मे,
भूले न दुक्ख पिछान नर।

चौपाई

भ्रम मत वचक के तजि ऐना।
पारख गुरु के सुने सुवैना ॥
पक्ष रहित ठहरै सुख चैना।
अभय अशक स्व पद के ठैना ॥

एक वार दर्शन किये, नाशत पाप हजार ।
ता को फिर क्या पूछिये, प्रतिदिन गुरु दरवार ॥ २ ॥
एक वार के मिलन में, अभिलापा सब पूर ।
पै अभिलापा बढ़त नव, जाहि दया दुख दूर ॥ ३ ॥

॥ सद्‌ग्रंथमुक्तिद्वार द्वितीय पाठ जगत अनादि शतक समाप्त ॥

सद्गुरवे नम

मुक्तिद्वार

तृतीय पाठ

स्वतंत्र जीव शतक

वन्दना साखी

परतंत्र कहैं सब जीव को, जो स्वतंत्र पद नित्य।
सो बुझाय गुरु मोहिं को, मेटहु भरम अनित्य॥ १ ॥

टीका—बिना विवेक ससार के अधिकाशतम लोग इस जीव को परतत्र कहते है। वे कहते है जीव वीर्य है, मस्तिष्क या श्वास है, अश, प्रतिबिंब, आभास है, सुरति, बुद या शब्द है। किंतु अपने चेतन जीव की सत्यता का कभी अभाव नही होता, इसलिए यह जीव स्वतत्रपद नित्य, सत्य, अखण्ड है। अस्तु हे यथार्थ ज्ञाता गुरुदेव! जीव की सत्यता का प्रसग भली प्रकार समझाकर उसके अनित्य होने का भ्रम मिटा दो ॥ १ ॥

सब ज्ञाता सब में फँसा, यही भूल अँधियार।
यह दुर्बुद्धि मिटाय कै, दीजै निज पद प्यार॥ २ ॥

टीका—जो देह, इन्द्रिय, मस्तक और सूक्ष्म मन-मानदी आभास या अश आदि सर्व पिण्ड-ब्रह्माण्ड पच विषय रूप जड तत्त्वों का

एक वार दर्शन किये, नाशत पाप हजार।
ता को फिर क्या पूछिये, प्रतिदिन गुरु दरबार ॥ २ ॥
एक वार के मिलन में, अभिलापा सब पूर।
पै अभिलाषा बढ़त नव, जाहि दया दुख दूर ॥ ३ ॥

॥ सद्ग्रंथमुक्तिद्वार द्वितीय पाठ जगत अनादि शतक समाप्त ॥

सब कुछ सहन परिश्रम, नहि ऊब डूब मनमग
परमार्थ प्रेम तैसे, ये देह रहते रहते ॥ ७ ॥

दोहा—गुरुपद निज पद साधु पद, जो कबीर पद जान ।
सो बिशाल पद परख पद, शीघ्र गहत कल्यान ॥ १ ॥
रहते रहते देह यह, अस विचार निरधार ।
गुरु उपकार न भूलहूँ, चरण शरण अबिकार ॥ २ ॥

[प्रसग १—जडतत्त्वो से पृथक वासना विवश अनादि नित्य जीवो के लक्षण तथा स्वरूपबोध और अयोग्य मनुष्यो को यथार्थबोध न होने का हेतु वर्णन]

निज निज समझ सुख मान्य वश, जीव देह लै साथ ।
इन्द्रिन सुख संचार हित, करत क्रिया धुनि माथ ॥ ३ ॥

टीका—देहधारी चेतन जीव अपनी-अपनी समझ के अनुसार भिन्न-भिन्न सुख मानदी के वश मानदीयुक्त ही जड देहो को कठपुतली वत साथ लिए हुये नचा रहे है । वे आँख, कान, त्वचादि इन्द्रियो के सुखार्थ उत्तम-उत्तम शब्द, रस, रूपादि की प्राप्ति के लिये कष्ट सहि-सहि के निज-निज घट के अनुसार पुरुषार्थ करते रहते है ॥ ४ ॥

तीनि अवस्था इन्द्री जहां, और होय सुख चाव ।
सुख हित क्रिया औ बुद्धि हो, त्याग ग्रहण पछिताव ॥ ४ ॥

टीका—जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति ये तीनो अवस्थाये जहाँ होती है, हाथ, पाँव, मुख, गुदा, लिग ये पच कर्मेन्द्रिय तथा आँख, कान, नाक, जीभ, खाल ये ज्ञान इन्द्रिय ऐसी कम-विशेष इन्द्रियो का जहाँ सम्बन्ध रहता है, जहाँ सुख की चाहना बनी रहती और सुख चाहना युक्त क्रिया-पुरुषार्थ जो करते रहते तथा जहाँ सुख-दुख, हानि-लाभादि निश्चय की बुद्धि रहती, पुन. जहाँ दुख जान कर

ज्ञाता-ध्याता है, वह जड तत्त्वो से सर्वथा भिन्न अपने आप चैतन्य स्वरूप है। सर्व ज्ञाता चैतन्य स्वरूप होते हुए भी निज मे सतुष्टि न होकर विजाति सब चीजो को मै-मेरी मानकर तिन्हो के अध्यास से सबमे जकड़ गया है। यही तो भयकर भूल भादो की घटा इव घोर रात्रि है। इस दृश्य अनुमान और दृश्य भोगाध्यास रूप अधकार मे जीव को हिताहित मार्ग कुछ भी सूझता नही। याते इस कुबुद्धि को जड़ से नष्ट करके जो अपना अविनाशी सत्य शुद्ध स्वरूप गुरु-पद पारख है, उसी अपने आपमे मेरी अखण्ड लगन लगा दीजिये। सर्व जड़ाध्यास छुड़ाय-स्वरूप स्थिति ही प्रिय लगे, ऐसी शिक्षा आपकी ओर से मिलै ॥ २ ॥

अभिलाषा प्रार्थना

ऐसी दया हो गुरुवर, ये देह रहते रहते।
निज पद मे वीर डटकर, ये देह रहते रहते ॥ टेक ॥

दस पाँच चोर घेरे, हरदम कुबुद्धि प्रेरे।
तेहिको पकड़ पछारूँ, ये देह रहते रहते ॥ १ ॥

भूतो के पार जस मैं, तैसे रहस्य धारूँ।
सब वासना को दग्धूँ, ये देह रहते रहते ॥ २ ॥

भक्ती विवेक पाऊँ, जड़ ग्रन्थि से बचाऊँ।
स्थिति स्वपथ अर्पण, ये देह रहते रहते ॥ ३ ॥

कामुक कटाक्ष शायक, वेधैं न हर्ष ममता।
भर्मिक से पार होऊँ, ये देह रहते रहते ॥ ४ ॥

कथनी कमी हो चाहे, रहनी मे अग्र होऊँ।
अभिमान सब गलितकर, ये देह रहते रहते ॥ ५ ॥

जो विश्व मे प्रपंची, जड़वाद मे भुलावें।
उपराम मन हो तिनसे, ये देह रहते रहते ॥ ६ ॥

कर सब खानियो के देहधारी जीव चौक जाते, हिरन, नीलगाय, चौगोड़ा, सर्प आदि तो हरदम भय वश चौकन्ने ही रहते है। ऐसी धारणा सिवा चेतन खानियों के और जड़ मे कही भी नही है ॥ ६ ॥

जानि जानि कै भ्रमण जेहि, कबहुँ कछू तकवाहि।
ठहरै ठिठुकै चलि परै, इत उत धाय रहाहि ॥ ७ ॥

टीका—हानि-लाभ, सुख-दुख समझ-समझ के देहधारी जीव चलते रहते है। कभी प्रयोजन मानि के चौकसी रखते, बकुला मछली के लिये तथा बिल्ली चूहा के लिए चौकसी रखती या किसान खेती की रक्षा मे, एवं सब प्राणी अपनी-अपनी मानन्दी अनुकूल चौकसी रखते। कभी देहधारी जीव देर तक स्थिर हो जाते, पुन थोड़ा रुक-रुक कर चलते, फिर शीघ्र-शीघ्र लगातार चलने लगते। कभी अपने वासनानुसार इधर-उधर दौडते रहते। जैसे जल जन्तु या पृथ्वी पर छोटे-छोटे जन्तुओं का चलना और ठहरना ये सब चार खानियो के छोटे-बडे देहधारी जीवो के लक्षण है ॥ ७ ॥

जीवन लच्छण चाल के, बहुत भेद मनमण्ड।
स्वस्वरूप को बोध जेहि, जानै सोई अखण्ड ॥ ८ ॥

टीका—पूर्वोक्त घटधारी चेतन जीवो के लक्षण और चाल मानन्दीयुक्त बहुत विस्तृत है। यह बात जड देह से भिन्न अपने ज्ञाता स्वरूप का जिन्हे पूर्ण ज्ञान है, वे ही विचारवान वासना वश देह धारी जीवो के लक्षण अखण्ड रूप से भली प्रकार जानते हैं। स्वरूप ज्ञानी की दृष्टि मे वासना वश जीवो के लक्षण जानने मे कसर नही रह जाती ॥ ८ ॥

ज्ञान धरम है जीव का, पारख जाहि स्वरूप।
परकाश शीत कोमल कठिन, ये जड़ धरम भनूप ॥ ९ ॥

टीका—जीव का ज्ञान धर्म है, क्योकि इन्द्रिय-मन साधन द्वारा

किसी वस्तु को छोड़ना, व सुख मानकर किसी को पकड़ने की क्रिया होती रहती तथा कोई क्रिया दुखदाई हो जाने पर जहाँ निरन्तर पछतावा होता रहता, इत्यादि ज्ञान मानन्दी करके कोई भी क्रिया जहाँ तक होवे सो सब वासना वश देहधारी जीवो के लक्षण जानना चाहिये ॥ ४ ॥

छल प्रियता हित सोचि कै, करै क्रिया मन भाव।
भय देवै भय को लहै, कहीं निसारै दाँव ॥ ५ ॥

टीका—छल करना, किसी से प्रेम करना, जिस किसी प्रकार अपना हित लाभ सोच विचार के मन को अच्छी लगने वाली क्रिया पुरुपार्थ करते रहना, किसी को डरवाना, स्वय दूसरे से भय-भीत हो जाना और कभी पहिले का दाँव वदला चुकाना ये सब वाते चेतन प्राणियो मे ही होती है, जड तत्त्व वीज-वृक्षादि मे नही होती ह, सो प्रत्यक्ष है ॥ ५ ॥

अहं भाव धारण करै, कहीं दीन बनि जाव।
लोभ वृती औ दम्भ करि, जहवाँ चाव चवाव ॥ ६ ॥

टीका—सर्व देहधारी चेतन जीव इस जड़देह और पदार्थो को मै मेरी मानकर दृढ़ अहकार गहते। जबर्दस्तों के आगे अथवा ऐसे ही कुछ सोचकर कही लाचारी भी लेते सुख सामग्री को इकट्ठा करने का लोभ भी उन मे होता है। जैसे घास के बीज अन्न कण आदि चीटी इकट्ठा करती, ऐसा लोभ रूप धन सग्रह तथा मनोरथ सिद्धि हित भीतर कुछ और ऊपर कुछ पाखण्ड देखाना रूप दम्भ। जैसे गूँजी नामक एक कीडा होता है उसे छूने पर मरने जैसा ढोग करता, पुन कुछ देर वाद चल पड़ता। इस प्रकार दम्भ दिखाना भी जीवो का प्रत्यक्ष है। जहाँ पर कोई चाहना, चौकन्ने होना, जैसे गोला, विजुली तड़पने आदि कोई भी भयकर अवसर देख या सुन-

ज्ञानै ज्ञान स्वरूप तिन, निश दिन हैता चेत।
मन्दिर सम तन में रहै, रच्छा भोग लखेत ॥ १२ ॥

टीका—कोई दूसरी चीजका लेश न हो केवल ज्ञानरग, ज्ञानरूप, ज्ञान आकार ऐसा जीवो का शुद्ध स्वरूप है। क्योकि आपही हर एक चीज को जान-जानकर पकड़ता, छोड़ता और आप जनैया जान मात्र या ज्ञान मात्र शेष रहता। अत. रात-दिन तीनों अवस्थाओ में उसे अपने अस्तित्व का भान रहता। मै अपने आप नही हूँ ऐसा कभी उसे भान नही होता। जैसे मन्दिर में रहने वाला पुरुष यह मन्दिर मेरा है, ऐसा मानकर उसकी रक्षा करता। उसके टूटने-छूटने तथा बनने-बिगड़ने मे हर्षित-शोकित हुआ करता। इतने पर भी वह मन्दिर का साक्षी पुरुष मन्दिर से पृथक ही रहता है। तैसे ही इन्द्रियरूप झरोखोयुक्त हड्डी, चमडी, प्राण, वीर्य, सूक्ष्म अन्तःकरण, मस्तक सहित इस स्थूल शरीररूप मन्दिर मे रहा हुआ साक्षी चेतन उससे पृथक ही है। पृथक होने हुए भी देह की अहता-ममता रखकर चार खानियों के देहधारी जीव शरीर निर्वाह और इन्द्रिय सुख भोग के लिये हमेशा प्रयत्नशील दिखाई दे रहे है। यही सर्व देहधारी जीवो के लक्षण है ॥ १२ ॥

षट इन्द्रिय जस खानि है, तैसहि तेहि करतव्य।
हानि लाभ दुख सुख सबै, वैसहिं तेहि मनतव्य ॥ १३ ॥

टीका—जिस खानि की जैसी देह-इन्द्रियाँ जीवो को प्राप्त है, वैसा ही वह पुरुषार्थ करता है। षट-इन्द्रियो के आधार से ही सुख निश्चय कर-करके उसी प्रकार हानि-लाभ, सुख-दुख, हर्ष-शोक सब खानियो के जीव प्राप्त करते रहते है। नर देह से किये गये पाप-पुण्य भोगासक्ति कर्म वासना अनुसार यह जीव जिस-जिस देह को प्राप्त होता है, जैसे हाथी खानि मे हाथी साधन अनुसार और बैल, गदहा, पक्षी, भुनगा, गुबरीला, जल जन्तु तथा नर देह आदि जहाँ जैसा कर्म-

पाँच विषयो को तथा इन्द्रिय मन अन्त करण मस्तिष्क आदि सम्पूर्ण साधनो को तिनसे अलग रहिके ज्ञाता स्वत. चैतन्य ही जानता-मानता रहता है। तिन्हो को प्रेरणा करके रोकता और चलाता रहता है। इससे सर्वका ज्ञाता जीव आपधर्मी और उसका ज्ञान धर्म एकी है। वासनाये त्यागकर जिसका शुद्ध स्वरूप पारख है। स्वत. स्वरूप से भिन्न दूर रहे हुए अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी ये जड तत्त्व है। तिनके प्रकाश, शीत, कोमल ओर कठिन धर्म कहे जाते है ॥ ९ ॥

शब्द रूप रस गंध है, इन्द्रिन सनमुख होत।
स्पर्श सहित जड़ पंच ये, चेतन ताहि लखोत ॥ १० ॥

टीका—शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श ये विषय पाँचों इन्द्रियो के सामने दृश्यवान होते है। वायु के शब्द और स्पर्श गुण है, अग्नि का रूप, जल का रस, पृथ्वी का गध ये जड़ पच विषय जड़ है। तिनको चेतन जीव इन्द्रिय-साधन द्वारा साक्षी रूप से न्यारा रहि के उसे ज्ञान करता है और इन्द्रिय मन को भी जान-मानकर सवको देखता हुआ पृथक रहता है ॥ १० ॥

तीनि अवस्था इन्द्री जहाँ, इच्छा करि करि चाल।
संस्कार धारण करै, खानि योग्यता ढाल ॥ ११ ॥

टीका—जहाँ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति ये तीन अवस्थायें होती रहती है, जहाँ इन्द्रियरूप औजार का सम्वन्ध है और जहाँ इच्छा सयुक्त स्वतत्रता से देह व्यापार निर्वाह आदि के लिये चलन, उठन, वैठन आदि क्रिया होती रहती है, जो इन्द्रियो से देख, सुन, भोगकर खानियो के घट-चश्मा अनुसार घट-बढ सुख संस्कारों को धारण करते तथा नर, पशु, पक्षी, उष्मज खानियो की इन्द्रिय शक्ति समझ अनुसार अपने-अपने शरीरो की ढाल नाम रक्षा करते रहते है, जहाँ ये सव वाते होती है, तहाँ जीवो का वासा समझो ॥ ११ ॥

लम्पट होकर परधन वचन और अधिक-अधिक असहनता धारण कर प्रमाद वश परवश हो नाच रहे है। ऐसे बडे-बड़े बाचाल तथा बडे-वडे कीर्तिमान कोई भी कितना चतुर क्यो न हो, ऐसो को प्रपंच से पृथक होकर स्वरूप शोधन की इच्छा ही नही जगती, तो जानना और ठहरना तो दूर ही है॥ १५ ॥

सब समरथ तेहि भूल में, निज समरथ नहिं चीन्ह।
प्रकृति खोजि बन्धन रचै, बिपति अनेकन लीन्ह॥ १६ ॥

टीका—जिससे मानसिक दुखों की निवृत्ति न हो, उल्टे दुखो की बढती होती जावे उसकी सब शक्ति निरर्थक ही है। जब तक कि मनुष्य अपने नित्य तृप्तरूप महान शक्ति को नही पिछानता तब तक इसको सुख-शान्ति नही हाथ आयेगी। कोटि उपायों से उल्टे निज स्वरूप को भूलकर ये जीव सब दुखी होते रहेगे। छोटी-छोटी वस्तुओं के देखने के लिये अणुवीक्षण यत्र, अणुबम, तोप, बन्दूक, विविध अस्त्र, अश्रुगैसादि, गाँव देश नष्ट हेतु विविध मशीने, शीघ्रता से चलने के लिये हवाई जहाजादि, अमित भापयत्र, शर्दी गर्मी मापक थर्मामीटर, विद्युत वेग शक्ति यत्र, रेडियो, ग्रामोफोन, टेलीवीजन, अनेक प्रकार के सरकस, सिनेमा, चित्र, खेल, नृत्यगृह, भोग-सामग्री, फैसनबाजी, मनोविनोद करने के लिये वैज्ञानिक अपार युक्तियाँ, विकास की विज्ञानात्मक अघटित अनेक कल्पनाये, विविध पार्टी-वादियाँ भौतिकवाद और तिसकी पैशाचिकवृत्ति, तात्पर्य यह है कि जिस कामना चाहना भूख बुझाने अर्थ नश्वर इन्द्रियों को मै-मेरी मानकर तिनके भोगो मे सुख कल्पि-कल्पि के जहाँ तक गोचर सुख के लिये जीवो ने युक्तियाँ रचे या रच रहे है, सो सब युक्तियाँ विषय सुख की बाहुल्यता करके मानसिक कामनाओ की भूख बढाकर छल-कपट, हिंसा-द्रोह, चालाकी, मार-काट लोलुपता-उन्माद, आसक्ति-व्यसन, नशा-अभक्ष सेवनादि असख्य दुराचरण द्वारा अगणित बन्धन

सस्कार के आधीन घट-वढ इन्द्रियरूप चश्मा जीव को प्राप्त होता है, वहाँ वैसा विपयों का भोक्ता वन के अन्त करण मे मन-मानन्दी निश्चय करता है। साराश यह है कि देह और देहोपाधियो का साक्षी चेतन स्वरूप अखण्ड है।। १३ ॥

पाँचों चिन्ह न तहँ अँटैं, सकल विभूती लीन।
प्रकृति पार यह जीव है, जग उपमा से हीन॥ १४ ॥

टीका—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, तथा गध, और जहाँ तक वीज, वृक्ष, मशीनादि जड तत्वों के सर्व ऐश्वर्य है, सो सव पाँच विपय के अन्दर लीन है और पाँचो विपय जड तत्वो के ही स्वरूप है। सो सम्पूर्ण कार्य ऐश्वर्य जीव की बरावरी नही कर सकते। जड़ की सामग्री पच विषययुक्त सव जड़ ही रहती है ओर जीव निर्विपय चेतन स्वरूप है। याते जड प्रकृति का जानने वाला चेतन जीव जड प्रकृति से पार है, स्वय प्रकाशी चेतन ज्ञान मात्र है। वह अपने आप सर्व का परीक्षक है। इसलिये पाँच विपय युक्त जगत के सम्पूर्ण गोचर पदार्थो की उपमा चेतन जीव मे नही घट सकती॥ १४॥

संत सदा तेहि खोज में, तन मन अर्पि स्वतंत्र।
तिन विन जानै और को, जो सव समय प्रतंत्र॥ १५॥

टीका—उपरोक्त शुद्ध स्वतन्त्र स्वरूप के शोध, वोध और स्थिति के लिये संत, जिज्ञासु, मुमुक्षुजन हमेशा प्रयत्नवान रहते है और वे उसमे तन-मन को अर्पित कर देते, शरीर के दुख-सुख, हानि-लाभ मान-अपमान की परवाह छोड़कर इन्द्रिय, मन, स्मरणों की विकारी चालो को मिटाते हुए शुद्ध सात्विकी रहनी द्वारा स्वतन्त्र स्ववश होकर स्वरूप विवेक मे तत्पर रहते है। भला ऐसे सत, जिज्ञासु, मुमुक्षु खोजीजन के विना और कौन सद् स्वरूप को जानकर एकरस टिक सकता है? जो जरा भी शान्ति पूर्वक ठहर के सतसंग निर्णय का समय नही निकालता था, जो हर समय फैसनवाजी, शिश्नोदर

भये दीन परवीन गनि, यहितें कौनि कुबुद्धि।
ज्यों ज्यों करत उपाय तहँ, त्यों त्यों दुख की सिद्धि ॥ १७॥

टीका—तुच्छ-प्रकृति-छटा मे भूले हुये विषयो के वश पशुवत अत्यन्त लाचार हुये। यथा काम वश कामी कामिनी के पद गुलामी मे। क्रोध वश हिंसा-अत्याचार करने में। लोभ वश छल-कपट चोरी-दम्भ मे। मदिरा आदिक पान करके मोह वश अनीति-अधर्म, कुसयम धारा में बहते हुये निरन्तर अतृप्ति का ही अनुभव करते है, तो भी मिथ्या अभिमान के ढक्कन से ढके हुए अपने को प्रवीण एव चतुर मानते है। सोचिये! इससे बढकर और क्या दुर्बुद्धि होगी ? अरे ! ये नर जीव प्रकृति शोध-शोध करके बुद्धि विकास द्वारा नाना भोग सुखों की सामग्री जैसे-जैसे रचते जाते है, वैसे-वैसे भोगो की अधिकता से वासना-तृष्णा, कामना वढा-बढा के दुख की पुष्टि ही कर रहे है। सर्व दुराचरण ग्रहण होके उनके दुख की खेती हरी-भरी होती जा रही है ॥ १७ ॥

जीव धर्म जड़ धरम को, जिनहि नहीं पहिचान।
मोह निशा घनघोर में, परे बिश्न अभिमान ॥ १८ ॥

टीका—जड़ प्रकृति से भिन्न ज्ञानधर्म चेतन का है, और जड़ के शीतादि जड़त्व लक्षण हैं। इन दोनों का भिन्न-भिन्न यथावत जिसे परीक्षा नही है वे देह सम्बन्धी स्त्री, पुत्र, घर, धन, बल, विद्या, यश, प्रभुता, प्रधानता और प्रकृति रचित कला-कौशल, यन्त्र-तन्त्र, चतुराई जो कि क्षण ही मे छुट जाते है, उन्ही की अचल स्थिति मानकर अज्ञानरूप घनघोर रात्रि मे सोते हुए जहाँ तक भोग पदार्थ है उन्ही की अहता से जकडे हुये है। ऐसी स्थूल दृष्टि से निज स्वरूप जानने मे नही आ सकता ॥ १८ ॥

प्रश्न—छूटने वाली चीजो के मद से क्या हानि है ?

वनाय के चारो तरफ से खैचा-खैंची मे अथाह विपत्ति, आपदायें जीव प्राप्त कर लिया या करता रहता है ॥ १६ ॥

दृष्टात—एक मनुष्य खा-पीकर बडे सुख से शैय्या पर लेट रहा था। अचानक उसे यह भावना दृढता से उदय हो गई कि हमारा प्रिय पुत्र पास के कुआँ मे गिर कर डूब रहा है। अन्य उपाय करने से देर लगेगी, अत जल्दी वाजी मे वह सेज से उठा पास के कुआँ मे स्वय धडाम से कूद पड़ा और डुबकियाँ लगाकर लड़के को ढूँडने लगा। वहाँ लडका होय तब तो मिले। तब तक अन्य लोग आये, ऊपर से पूछने लगे। भाई! आप कुआँ मे क्यो जान-बूझकर कूद पडे ? उसने हाल बताया। दूसरे मनुष्य ने कहा—आपको वासना-वश भ्रम हो गया, आपका पुत्र तो घर मे बैठा है, कुआँ मे चाहे आप जिन्दगी भर गोते लगाइये वहाँ नहीं मिल सकता। पुन सब लोगो ने रस्सी डालकर उसे निकाल लिया। जब होश ठिकाने हुआ तब उसका दुख मिटा। देखिये! पुत्र न कही कुआँ मे गिरा, न कुछ उसकी हानि ही थी, तो भी उसे विपरीत वासना द्वारा कुआँ मे गिरकर दुख ही उठाना पड़ा। इसी तरह अपने आप शुद्ध चैतन्य को भूलकर देह भोग प्रपचादि सत्य सुख समझने से इस देह रूप कूप मे जीव गिरकर अनन्त काल से अपने अचल नित्य तृप्त स्वरूप के भाव को जड़ विषयो मे ढूँढता है। यह दुख प्रकृति के गुण पाँचो विषयो से हटे विना और अपने स्वरूप की स्थिति विना तीन काल मे नही मिट सकता। उलटे नित्य तृप्त सत्य स्वरूप को भूलकर वाहर अपार सुख सामग्री से वैसे ही सुख नही होता जैसे सुख सेज पर बैठा हुआ फाँसी की चिन्ता ग्रसित मनुष्य। इससे भिन्न जो भीतर स्वरूपज्ञान द्वारा सर्व वासनाओं को शान्त कर वाहर के विलासी सामग्री रहित वैसे ही अपार सुख मे रहता है, जैसे विना दवा-पानी के आरोग्य मनुष्य अत: सत्य स्वरूप को जाने और स्थित होवे।

औषधि या चीज होते नही देखी जाती। अग्नि, वरफ और अत्यन्त निरस ठौर मे वृक्ष हरा-भरा रह ही नही सकता। देखिये! कई प्रकार की वस्तुये सोना-चाँदी, कोयला आदि की खानि, जडी बूटी आदि योग्य भूमिका मे ही होती है, अयोग्य मे नही। तैसे ही राजसी-तामसी अत.करण में राजस-तामस वाले पंच भौतिक स्थूल पदार्थो का ही ज्ञान होता है और शुद्ध सातसी अत करण मे सूक्ष्म पदार्थ का ज्ञान होता है। जो जैसी वस्तु है, उसके समझने ठहरने के लिये वैसा ही अत:करण साधन बनाना पड़ता है। जीव सब झगडे से पृथक है। इस हेतु सब प्रपंच-चंचलता छोड़े विना सत्य स्वरूपज्ञान की प्राप्ति नही होती॥ २१ ॥

छन्द—"युद्ध प्रेरक गान में ज्यो शान्तरस होता नही।
राजसी शृङ्गार मे त्यो सादगी देखा कही॥
हो अहन्ता त्याग बिन निज शोध श्रद्धा हो कहाँ।
श्रद्धा बिना कोई भला निज मार्ग पा सकता कहाँ॥"

अँगरेजी जानैं भले, संस्कृत परवीन।
भोग पदारथ ज्ञान तजि, और ज्ञान का कीन॥ २२॥

टीका—सम्पूर्ण अंग्रेजी विद्या-विज्ञान आदि पढ लिये तथा दर्शन-व्याकरण मे आचार्य हो गये, तो क्या स्वरूपस्थिति हो गई? या कुछ वासना ध्वस हो गई? केवल पढकर नाना चतुराई सीख के इन्द्रिय भोग जनित जड़ पच विषयो के ज्ञान के अलावा और विशेष ज्ञान वे क्या किये?॥ २२ ॥

छन्द—"इन्द्रियो के भोग मे पशु भी परम हुशियार है।
जिस को न निजपद बोध हो वह नर न बल्कि सियार है॥
ज्यो काग शुक पिक मोर तितर भाँति भाँति से बोलते।
अनभिज्ञ एक है दूसरे से पर परस्पर मोदते॥ १॥

उत्तर—यह मेरे स्ववश है ऐसे मद से मोह, मोह मे खलल पड़ने से क्रोध, क्रोध से चिन्ता, कलह तथा आसक्ति वश विवेक भ्रष्ट होकर मनुष्य सर्व दुखो का भागी वन जाता है भला ! शूल, जेल, धरोहर, मद्य पर स्ववश का मद करे तो उसके दुख की क्या थाह ?

सदा स्वार्थ वश दृष्टि जेहि मन इन्द्रिन के घेर ।
लखक न सत्यासत्य को, डारि प्रपंच निवेर ॥ १६ ॥

टीका—हमेशा पच विपय भोगरूप स्वार्थ सिद्धि करना ही जिनका लक्ष है, जो मन इन्द्रियों के विपय ऐन से जरा भी वाहर लक्ष नही करते । विपय भोगो मे जो सदा वन्धमान है, ऐसे वडे-वड़े चतुर विपय राग मे मस्त दिवाने वने हुये मनुष्य जगत-प्रपच की धारा मे ही वह रहे है । जगत के हानि-लाभ, सुख-दुखादि प्रपच को क्षण-मात्र भी छोड करके साँच झूठ के निर्णय पर ध्यान ही नही देते, फिर उन्हे यथार्थ ज्ञान कैसे हो ॥ १६ ॥

संत संग सद्ग्रंथ नहिं, ह्वै निर्मान मँझाय ।
विना शान्ति निर्छल भये, निज स्वरूप कस पाय ॥ २० ॥

टीका—सद्रहस्य युत विवेकवान संतो का सत्संग, उनकी कथा-वार्ता और उनके वनाये सद्ग्रथो को वाँचना इस प्रकार श्रद्धापूर्वक मान रहित होकर थहाये नही, यथार्थ परीक्षा किये नही, तो भला मन को कुछ शान्त किये विना और जगत के छल-छिद्र हठता-शठता, विवादादि छोडे विना निर्मल सत्य स्वरूप का ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है ? अत जव अभिमान छोडकर शाति पूर्वक छल रहित सत्संग-सद्ग्रथ को थहावे तव स्वरूप ज्ञान प्राप्त हो ॥ २० ॥

विना भूमिका होय नहिं, वीज वृक्ष कोइ वस्तु ।
तैसहिं सत्य विवेक निज, प्राप्ति करै किमि अस्तु ॥ २१ ॥

टीका—योग्य भूमिका रहित क्या वीज, क्या वृक्ष कोई भी

बिन विवेक न कोइ सुखी, काम अग्नि उर अन्दर ॥
सयम सदा उदार युत, प्रकृति भिन्न निज जान ।
धर्म अहिसा सत्य गहि, मिले शान्ति सुख खान ॥"

शुभ गुण साथी सबन के, स्वारथ औ परमार्थ ।
बिन तिनके सुखिया कवन, निशदिन विवश अनाथ ॥ २४ ॥

टीका—शुभगुण ही राजा-रक, विद्वान-अविद्वान सबकी रक्षा करनेवाले है । क्या स्वार्थ मे, क्या परमार्थ मे अथवा गृहस्थी-विरक्ती सर्वत्र सबको ये शुभगुण-सदाचार ही सब प्रकार से कल्याण करनेवाले है । शुभगुण का अर्थ है—जिससे अपना अन्त करण शुद्ध शात होते हुये भी दूसरे का भी परिणाम में हित हो ऐसे सद्गुणो का विस्तार सद्गुण शतक मे कर आये है । सक्षेप मे शुभगुण यही है—यथार्थ नम्रता, व्यभिचार रहित, दया, दान, अहिसा, समता, सत्य प्रिय वचन, यथार्थ प्रयत्न, जगत मे दुख दर्शन और परस्पर शीलभाव इन सद्गुणो को छाडकर चाहे जितना बड़ा विज्ञानी तथा प्रधान कोई भी क्यो न हो, वे सब रात दिन अपनी ही इन्द्रियों के सुख भोगो की चाहना करके आसक्ति वश सब दुर्गुण धारणकर वन में अनाथ-लाचार बालकवत रोते-विलपते ही उन्हो के समय बीतते, आगे बीतेगे ॥ २४ ॥

सदाचरण को छोडकर केवल बाचाली से विश्व वासियो की हानि का एक दृश्य छन्द—

जरा भी न परिणाम का ज्ञान जिन को ।
'विषय घी से तोषै ये मन भव अनल को ॥
जो ऐसा प्रकृतिवाद बढता गया है ।
तो आगे न जाने जगत क्या भया है ॥
मनुज ही मनुज को चबायेगे क्षण मे ।

छाजन व भोजन मोह निद्रा मैथुनो भय वेर मे ।
पशुकर्म पट सामान्य ये सब काम क्रोध के जेर मे ॥
विविधि भाषा पढ़ि मनुज आसक्त यदि पशु कर्म मे ।
पशु का महा पशु है वही बोली विभेद अधर्म मे" ॥ २ ॥

सो जानत पशुआं सबै, अपढ़ रटैं तिन नाम ।
अक्षर को अभिमान जेहि, शुभ गुण छोड़ि बेकाम ॥ २३ ॥

टीका—इन्द्रियो के विषयो को जानकर तिसे भोगने मे बैल, गधा, शूकर आदि पशु-पक्षी भी चतुर है तथा विना पढे भी मनुष्य अपनी-अपनी देशी भाषा मे भोग पदार्थो के नाम सज्ञा को बारम्बार कह के या इशारा देकर परस्पर सब चीजो का ज्ञान करते रहते है । जैसे देशी-भाषा मे आगि कहते, सस्कृत मे अनल, उर्दू में आतस, कही वसन्दर आदि, तद्वत हर वस्तु को अपढ़ भी कोई न कोई नाम सज्ञा से जानने-जनाते रहते है, इससे यह सिद्ध हुआ कि भोग पदार्थो का ज्ञान पढ-अपढ मे बराबर ही है बस अक्षर मात्र का अभिमान लेना यही विद्यावाद मे विशेष फल है । जिससे वे अक्षराभिमानी स्वय अपने दुर्गुणो को देख नही सकते तथा अन्य सद्गुण सम्पन्न पुरुषो से नम्र नही हो सकते । इसलिये वे सद्गुणों से कोरे ही रह जाते है । नम्रता, समता, क्षमादि सर्व सद्गुण छोड़कर उन्हों का मानव जीवन व्यर्थ हो जाता है । व्यर्थ ही नही बल्कि अपनी चतुराई से तमाम अनीति करके असख्य जन्म मे असंख्य दुख भोगने की सीधी सड़क बे बना लेते है ॥ २३ ॥

कुण्डलिया छन्द

"धर्म गहे बिन होय नहि, विश्व वासियो सुक्ख ।
भोजन भोग की एकता, पशुओ मे भी रुक्ख ॥
पशुओ मे भी रुक्ख, कोल श्वान खर बन्दर ।

यही भूत वादै दिवस मे अनारथ ॥
इसे शीघ्र त्यागो सभी धर्म बन्धो ।
प्रकृति पार अस्तित्व बूझो य सन्धो ॥

मनमानी को पूर करि, रहा सुखी कब कौन ।
तीनिकाल वर्तमान में, रहा लीन लखि तौन ॥ २५ ॥

टीका—जो कुछ मन मे चाह उठे, उसी के अनुसार भर्माधर्म हिताहित का विचार छोड़ के भोगों को भोग भोगकर कब-कौन सुखी रहा है ? कोई नही । देखो ! एक से एक बलवान धनवान बहुभोगी मनुष्य हुये और अभी है उन सबोकी यही दशा हुई व है जैसे गुरुदेव ने कहा है—"माया का रस लेइ न पाया । अन्तर यम त्रिलारि होइ धाया ॥" (वीजक) जो कहो आगे सम्पूर्ण भोग एकत्रित करके तिसे भोगकर सुखी हो जायेगे तो सुनो ! भूत, भविष्य वर्तमान तीनो काल की परीक्षा वर्तमान से ही मिल जाती है। वर्तमान ही भोगकर व्यतीत हो जाने पर वह भूत हो जाता है। वह भूत ही पहिले कभो वर्तमान था । वर्तमान के आगे का दिन ही भविष्य है । वह भी आज का दिन बीतकर कल का दिन सामने आ जाने से भविष्य भी वर्तमान मे लीन है। बचपन से वृद्धता तक भविष्य ही सनमुख वर्तमान मे आ-आकर भूत हो जाता है, अत वर्तमान मे ही भूत भविष्य मिला है । तरह-तरह के मन चाहे सुख सब भोगते ही रहते है, पर जो जितना ही मनमानी सुख लेते है, उन्हे उतना ही तृप्ति के बदले तृष्णा लत आदत बढ के कायलता बढ रही है । फिर यही दुख द्वन्द्व आगे-आगे भी मनमानी भोगों मे लगे ही रहेगे। ऐसा समझ के मन की दौड़ त्यागना चाहिये, यही कल्याण मत्र है ॥ २५ ॥

विद्या महाँ कुसंग है, जो न कसौटी कीन ।
जेते दुर्गुण सो लहे, अंधकार मद लीन ॥ २६ ॥

सबी रक्त शोपक जु पीड़क घरन मे ॥
सभी धर्म श्रेणी नशेगी टुटेगी ।
सभी नारियाँ जारिनी वन घुटेगी ॥
कौटुम्ब सामाज जीवन नरक मे ।
सभी सबके यमराज चूसे रकत मे ॥
मन रोकना पाप पापी कहेंगे ।
इसीसे सकल दु ख दुर्गुण वढेगे ॥
अहो ! एक व्रत का पता क्या रहेगा ।
असयम असाधन से पशुवत दुखेगा ॥
सभी मर्द भड्हे वने हा नचेगे ।
दया धर्म लज्जा तजेगे लुटेगे ॥
इन्द्री के भोगो मे सबही तुलेगे ।
शूकर व कूकर से लड लड मरेगे ॥
अत्यन्त कामी सहन न रहेगा ।
वातो की वातो मे शिर ही कटेगा ॥
कहाँ श्रेष्ठ गुरुजन कहाँ धर्म क्या है ।
कहाँ को हितैपी अधा धुधता है ॥
कामोप भोगो की भट्ठी जलेगी ।
पड़ै जव खलल क्रोध ज्वाला वढेगी ॥
सदा लोभ औ मोह धारा वहगी ।
करै पाप अगणित न कुछ भी सुझेगी ॥
अति तुच्छ चमड़ी के फैसन वढेगे ।
अपने व पर के बिचारौ टुटेगे ॥
लाखो चलाँकी कि बिद्या पढेगे ।
विपय मस्त त्यो-त्यो जहर शिर चढेगे ॥
अतः लोक परलोक स्वारथ प्रमारथ ।

सब को निज वश में करै, दैं विश्वासहिं घात।
तन मन धन को छीनि तिन, सहत सदा मन लात॥ २७॥

टीका—पारमार्थिक विवेक सत्सग रहित वह विद्या मे यही है कि अपनी वाचाली, चतुराई से गरीब मनुष्यो को आगे-आगे सुख का विश्वास लालच लाभ दिखा-दिखाकर पुनः उन्हे अपने वश मे करके उनके सुख शान्ति का नाश करना। इस प्रकार असहाय निर्बल जीवों के मन को चतुरता से हरण कर उनका शरीर ले लेना। अर्थात उनसे जो चाहे सो करवाना। पुन उनके सम्पूर्ण धन को हरण कर स्वयं खूब भोग विलास मे लोलुप होकर मन की लातो

है न कि वाहर के विविध फैसनवाजी से। (३) कोर्प की पुस्तकें, स्वार्थ विद्या और अन्य कारोबार तो करते ही है, पर इसके साथ ही सद्शास्त्र, सद्ग्रन्थ या किसी यथार्थ साधु सन्त महानुभावो की शरण जाकर यथार्थ ज्ञान प्राप्ति की कोशिश करना ही मनुष्य को सुख प्राप्ति का प्रधान अग निश्चय करके वे वुद्धिमान परमार्थ रक्षक अगो को पुष्ट रखते है। (४) नर नारी असयम वर्ताव युत चर्म लम्पट न वनकर दिन-दिन ब्रह्मचर्य व्रत द्वारा तन मन को उन्नतिशील वनाकर पवित्राचार धर्माचार परस्पर धर्म शास्त्रानुसार गृहनीति और आगे चलकर विरक्त रीति वर्ताव द्वारा सुखी रहते। (५) परस्पर हित की वात सादर स्वीकार करते हुये सवमे सरलता सहिष्णुता से वर्तकर राग-द्वेष रहित तथा अनाचार-भ्रष्टाचार रहित सयमपूर्वक वे वर्तते। (६) निरन्तर स्वरूप ज्ञान, वैराग्य, सद्गुरु-उपासना पूर्ण सद्ग्रन्थ का पाठन-पठन विस्तार करते रहते, अपने प्रेमियो से वही सदज्ञान की चर्चा करते। (७) अंत.करण दर्पन को शुभाचरन द्वारा शुद्ध करते हुए प्रकृति पार अक्षय अमृत स्वरूप को जानकर नित्य तृप्त सतुष्ट रहते हुये सर्व दुख द्वन्द्वो का अन्त कर देते, नवयुवक विद्यार्थीसङ्घ तथा सर्व मनुष्य का यही कर्तव्य, यही उन्नति है, यही प्रभावशाली, परम विज्ञान, यही दिव्य अलौकिक सजावट और आकर्षक श्रेष्ठ परम हित परस्पर सङ्गठन व सदाचार विचार का मार्ग तथा विश्वप्रेम यही है कि वह सर्व दुराचरण त्यागै, अपने मन इन्द्रियो को वश मे करके स्वतन्त्र सद्-स्वरूप का मार्ग पकडे और जड से भिन्न नित्य स्वरूप का विचार दृढ़ करे। यही विजय, यही लाभ, इसीसे सार्वजनिक हित जानिये।

टीका—विद्यामाया भी भारी कुसग है। यदि उसकी पूर्ण परीक्षा न की गयी, उसका अभिमान न छोडा गया तथा उससे सद्गुणो की तरफ न काम लिया गया तो जल्दी से जल्दी सर्व अनर्थकारी दुर्गुणो की प्राप्ति हो जाती है। कही कोई विरले विद्वान सदाचारी को छोड़कर प्रत्यक्ष देखिये[1] आसुरी विद्यायुक्त वाचालो मे कितनी लम्पटता-ठगाई कितनी व्यभिचारी, कितनी वेईमानी चालाकी पूर्ण है ? जिसकी कुछ हद नही। "वचन सुधा सम असन अहि" वाली गति है। इतने पर भी मै सवसे विद्वान, विज्ञानी एव चतुर हूँ, ऐसी महा अहकाररूप कालीरात्रि को ग्रहण करने से तहाँ सत्यासत्य कर्मफल, बन्ध-मोक्ष का विचार कुछ सूझता ही नही। हाँ ! विद्या के साथ सत्यन्यायी सन्तो का सत्सग यदि करे तो विद्या मद झड़ के सद वस्तु पर ध्यान जमे ॥ २६ ॥

प्रश्न—विद्या सफल कैसे हो ?

उत्तर—यथार्थ वक्ता सन्त सद्गुरु का सत्संग करे। अक्षर से कोई बड़ा नही होता, वल्कि सदाचरण से होता है। ऐसा निश्चय करके ही विद्या फलदाई हो सकती है। नही तो प्रमाद हेतु विद्या अविद्या ही है।

१ टिप्पणी—जो पढे-लिखे विद्वान सभ्य विद्यार्थी या सज्जन जन सद्-गुरु संतो के सतसगी हैं उनके ये श्रेष्ठ लक्षण है—इन्हे वे धारण करते है (१) एक तो वे जहाँ तक हो सके तहाँ तक देव नागरी मातृ भाषा का ही ससर्ग रखते, क्योकि इसीमे स्वरूप ज्ञान के सद्ग्रथ काफी प्राप्त होते है। (२) नौकरी चाकरी व्यवहार सिद्धि के लिये विवशता से परत सम्बन्ध वश या किसी खास आवश्यकता से यदि अंग्रेजी साइन्स या अन्य विद्याये पढी-पढायी जॉय तो भी खान-पान पोशाक रहन सहन सब सादगी और विचार पूर्वक तथा सयम नेम से वे रखते, सिद्धान्त भी धर्मानुकूल ग्रहण करते। इस पर कोई हँसी ठोली कम अकिली समझे तो उसकी प्रवाह नही करते। क्योकि सत्प्रिय वचन, ब्रह्मचर्य शक्ति, उदारता, सरलतादि, सद्गुण से ही मनुष्य पूजनीय होना

हो जाती है। केवल स्थिति और सुख-शान्ति पूर्वक जीवन व्यतीत करने वाले को विशेष विद्या का कोई प्रयोजन नही। किन्तु यह बात केवल मुमुक्षु के लिये है। नौकरी चाकरी मान बड़ाई या किसी हेतु से विद्या इच्छुक की बात दूसरी है। किन्तु प्रमाद उन्हे भी त्यागना चाहिये। और केवल मुक्ति इच्छुक जिज्ञासु को तो निर्णय ग्रन्थ जिस भाषा मे प्राप्त हो वही भाषा मनन योग्य है। अत वासना ध्वंस करके मुक्तिपद प्राप्त तथा धर्म कर्म सत्साधन सँभालने के रत्न समय को बहु विद्यादि वासना तृष्णा या प्रमाद मे न ठगाना न गँवाना चाहिये ॥ २९ ॥

छन्द—जेहि ठौर आश्रम सग बिद्या से न पारख बोध हो।
सत्साधना मे बल न दे नि सार जान बिरोध हो ॥
सखिया सम प्राण घातक शोध कर लो औषधी।
गुरुदेव के सतसग पुट दे शुद्ध कर ले सत्यधी ॥१॥
नेपाल औ गुजरात आदिक प्रान्त बहु-बहु बैन जू।
अनभिज्ञ एक से एक है पर सब समान स्व चैन जू ॥
है वस्तु सज्ञा शब्द वहु जो रूढि मानि प्रवाह जू।
यहि हेतु विद्या का न मद सद्बोध का धर राह जू ॥२॥

प्रसग २—उप्मज देहधारी जीवो की देहो की इन्द्रियो द्वारा यथावत परीक्षा और जीवदया प्रतिपादन

शुद्ध नीर जेहि कूप को, शुद्ध प्रकाश के ठौर।
शुद्ध अहिंसा जो गहे, शुद्ध दृष्टि करि गौर ॥ ३० ॥

टीका—शुद्ध जल जिस कूआँ का और ठीक प्रकाश के स्थान मे सत्यता पूर्वक शुद्ध अहिंसा का ध्येय रखने वाला पुरुष उस जल को लेकर शुद्ध दृष्टि से ठहर के विचार पूर्वक तिस जल मे देखता है कि इसमे देहधारी जीव है या नही ॥ ३० ॥

से खूब ठोके जाना। मन की लत आदत काम क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आशा तृष्णा वैर-विरोध झगड़ा-उत्पात विविध उल्झनों में पड़ के स्वयं भी सदा नये नये दुख द्वन्द्वों से जलते रहना तथा दूसरे को जलाना। ये सब विद्या प्रमाद का ही दुष्परिणाम है सो प्रत्यक्ष ही है ॥ २७ ॥

यहिते अधिक न और है, सब विद्या के बीच।
तेहिते तजौ गुमान को, धोय सदा दिल कीच ॥ २८ ॥

टीका—सतसंग सद्धारणा रहित ऊपर कहे हुये छल-कपट, चालाकी ही इस लौकिक सर्व विद्या का परिणाम है। इसलिये अंग्रेजी संस्कृत, फार्सी, बंगाली आदि विशेष विद्या पढा हो तो भी उसका अहंकार सर्व दुर्गुण हेतु परमार्थ में हानि समझकर छोड देना चाहिये और अपने हृदय की कुभावना प्रमादरूप कीचड़ को हमेशा धोते रहना चाहिये ॥ २८ ॥

प्रश्न—सच्चा विद्वान-विज्ञानी चतुर कौन है ?

उत्तर—जो जड देह से पृथक चेतन स्वरूप को समझे, पुनर्जन्म कर्मफल निश्चय रक्खे, सादगी जीवन पसन्द करे, वैराग्यवान गुरु संत सज्जनो के संग मे प्रेम करे, मद्य मांस मछली अण्डादि त्यागे, दया भाव रक्खे, यहाँ तक कि सर्व जड़ाध्यास त्याग स्वरूप भाव में ही रत रहने की कोशिश करे, वही सर्वोपर है। इनसे पृथक असद्-मार्ग गामी विद्वान हो तो भी दीन दुखी अज्ञ ही है ॥

जानि जनावन होय जेहि, सोइ भाषा निज हेत।
और न तेहिते काम कुछु, नहीं ठगाव सचेत ॥ २९ ॥

टीका—देह निर्वाहिक और पारमार्थिक बाते जिस प्रकार स्वयं जाना और दूसरे को जनाया जा सके वही अपने कल्याण के लिये यथार्थ विद्या है। यह प्रयोजन सर्व साधारण लोकभाषा से भी सिद्ध

देख पड़े, बल्कि शुद्ध प्रकाश में शुद्ध दृष्टि से अच्छी प्रकार देखने से जहाँ वे होते है अवश्य दिखाई देते है। इस हेतु जितने परमार्थवादी धार्मिक अहिंसक पुरुष है, वे सब चारो खानियों को दृश्यवान ही वर्णन किये हैं, अदृश्य नहीं। मनुष्य, पशु, पक्षी आदि अण्डज और नन्हे-नन्हे जन्तु उष्मज खानि ये चार खानि की देहे समूहरूप से दिखाई देती है ये अदेख नही है। इसलिए अहिंसा व्रत पालना सरल है, ये भाव ॥ ३४ ॥

जो कदापि कृमि गुप्त हू, तबहूँ हिंसा नाहिं।
शक्ति के वाहर जो रहा, मन क्रम दोष न ताहि ॥ ३५ ॥

टीका—ऊपर कथन अनुसार कोई भी छोटे-बडे देहधारी जीव देहयुक्त अदृश्य अदेख नही है, फिर भी किसी के समझ अनुसार कदाचित कोई कृमि अदृश्य माने, तो भी अहिंसा धर्म पर चलने वाले के लिये हिंसा उसमे नही होती, क्योंकि जो वात अपनी शक्ति के वाहर है, मन मे भी जीव घात की इच्छा नही और खास करके जीव को सताने निमित्त क्रिया भी नही किया जाता, इसलिये अहिंसक मनुष्य का मन और क्रिया दूषित अर्थात पाप सस्कार वाले नही होते ॥ ३५ ॥

जीव दया पालौ सवै, निज शक्ती सामर्थ।
मनसाय क्रिया को फल लहौ, विन मनसाय न अर्थ ॥ ३६ ॥

टीका—चारो खानि के छोटे-बडे जीवों पर सबको दया पालन करना चाहिये। जहाँ तक अपनी शक्ति चले तहाँ तक जीवो का घात न होने देना चाहिये। मनसाय रख के वैसी क्रिया करने से अभ्यास पुष्ट होकर तदनुसार फल का भागी होना पड़ता है। यदि जीव घात की मनसा न रक्खे और जीव घात की क्रिया भी न करे, बस इसीमे अहिंसा धर्म का पालन हो जाता है। फिर घात की मनसा और

देखि कहत नहिं कृमि कोइ, शुद्ध नीर अति आहि।
हर्षित ह्वै तन काज करि, निःसंशय मन माहिं ॥ ३१ ॥

टीका—पूर्वोक्त भली भाँति जल को देख अच्छी प्रकार परीक्षा करके कीड़ो को शुद्ध जल मे न देखकर परीक्षक दयालु कहता है कि अत्यन्त शुद्ध जल है, इसमे कीडे नही है। ऐसा वह सोच विचार कर सकोच रहित प्रसन्नता से स्नान आदिक क्रिया करता है तहाँ हिंसा होने के भय को वह मन से मिटा डालता है ॥ ३१ ॥

सरिता पावन पाथ में, अंजुलि लै जल देखि।
कहत नहीं कृमि याहिमें, बाजी लाय निरेखि ॥ ३२ ॥

टीका—नदियों के पवित्र जल को देखकर और अजुली मे तिस जल को लेके अहिंसक पुरुष जल कीड़ो को तिस शुद्ध जल मे न देखकर कहता है कि इस जल मे कीडे नही है, चाहे कोई शर्त लगाकर इस बात की परीक्षा कर लेवे ॥ ३२ ॥

सरि निर्मल झरना जहाँ, बिबिधि तरह धरि ध्यान।
जहाँ नहीं अरु हैं जहाँ, दोनों साफ लखान ॥ ३३ ॥

टीका—नदियो का शुद्धजल और तुरन्त निकाले हुये सोतों का जल या जहाँ पहाडो पर झरना गिरते हो तिन सब जलों मे अनेक प्रकार से ध्यान देकर ठहर के देखा जाय तो जहाँ कीडे है और जिस मे कीडे नही है, दोनो शुद्ध दृष्टि मे साफ-साफ दिखाई देते है। साराश-शुद्ध दृष्टि से अहिंसक पुरुष को जीव के होने और न होने का ज्ञान खुलासा हो जाता है ॥ ३३ ॥

उष्मज खानि अदृश्य नहि, शुद्ध दृष्टि से हेर।
गुप्त न जानो देह तिन, चारि खानि के ढेर ॥ ३४ ॥

टीका—पूर्वोक्त प्रमाण से छोटे-छोटे उष्मज खानि के जितने देहधारी जीव है वे ऐसा नही कि अदृश्य होवे अर्थात आँखो से न

वार्ता कर रहा था कि एक बार मै एक बी० ए० (ग्रेजुयेट) मित्र से मिलने गया। उन्होने हमारे स्वागत के लिये थाल मे पकौडियाँ कुछ शाक और उसी मे दो-चार मुर्गी के अण्डे भी रख के मेरे सामने पेश किये। मुझे देखते ही घबराहट सी हुई। धैर्य पूर्वक मैने पूछा—मित्र! ये सफेद-सफेद गोल-गोल क्या रक्खे है? उन्होने कहा—ये मुर्गी के अण्डे है। मैने कहा—मुझे तो मद्य, मास, अण्डे सेब हुत नफरत है। मै इन्हे नही खा सकता। तब मित्र बोला—वाह! आपमे आज तक सभ्यता न आई। मैने कहा सुनिये मित्र! क्या मुर्गण्डे मे ही सारी सभ्यता घुसकर बैठी है? हाड़ चचोरने—गन्दगी भक्षण का नाम ही सभ्यता हो तो कुत्ता, बाघ, बिल्ली आदि आपसे बढ कर सभ्य है। भाँग छानने वाले, तमाखू खाने वाले, वेश्या गमन करने वाले सब अपने-अपने कार्यो को सभ्यता में ही गिनते है। सभ्य का अर्थ सदाचरण है। जब दुराचरण का ही जहाँ सदाचरण नाम है तहाँ सुख-शाति कैसे? ग्रेजुयेट मित्र ने कहा—सुनिये महाशय जी! अण्डे मे जीवनी शक्ति विशेष है। मैने कहा—यह आपकी बात कल्पना मात्र है। हाथी लक्कड, भैसा घास तृण खाते है। उनके आगे आपमे कुछ ताकत नहीं। आप अभक्ष नित्य खाते है, मै नही खाता, तो मुझ मे शक्ति न होना चाहिये। आपमे बहुत होना चाहिये। ऐसा तो नही है। बल्कि आप ही कमजोर दिखते है। तमाम मास भक्षी निर्बल रोगी, दोषी अल्प काल ही मे मृत्यु वाले प्रत्यक्ष है। बकुला तो नित्य ही मछली उडाता है, कितनी उसमे ताकत है? और कितने दिन जीता है? अरे ये सब कुछ नही ये सब मास भक्षियों की लीला है। श्रीकबीर साहेब कहते है—"बकरी मुर्गी कीन्ह्योछेवा, आगल जन्म उन औसर लेवा। बकरी मुर्गी किन्ह फुर्माया, किसके कहे तुम छुरी चलाया।" अब देखिये! कितने उन्मत्त मनुष्य पशु-पक्षियो तथा मूक प्राणियो का शिकार करके अपनी वीरताई समझते है। लेकिन

जान-बूझ के घात की क्रिया त्याग देने पर सस्कार न वनने से फल-रूप दुख का भागी नही होना पड़ेगा ॥ ३६ ॥

स्पष्ट—प्रारब्ध भोग सवको भोगना पड़ता है, अतः शुद्ध जीविका के लिये आवश्यक क्रिया करते हुये जीव रक्षा का लक्ष रखते हुये अहिसाव्रत भंग नही होता । एक अपनी शक्ति के वाहर किसी जीव की हानि हो जाना, दूसरा जान-बूझ के मन, वच, कर्म द्वारा दूसरे को पीड़ा पहुँचाना इन दोनो मे, भुना वीज और रसदार वीज वोने के समान अन्तर है । एक फल देने से रहित तो दूसरा अकुरयुक्त फलदाई है । ऐसे ही अहिसक का हृदय छोटे-वडे सव जीवों पर दयालु, नरम और हितैषी रहता है । हिसक का हृदय कठोर, वेपीर, घातक होता है । अत अहिसक पुरुष सदा ऊँची गति को पाता है और हिसक सदा तामसी कर्म द्वारा अधोगति को पहुँचता है । मनुष्य को चाहिये की 'अहिसा परमोधर्म.' इस श्रेष्ठ सिद्धान्त को अपनावे । शक्ति भर सर्व जीवो पर दयाभाव रक्खे ।

नहिं घवड़ाओ मति कोइ, लखि भ्रमिक की पौरि ।
चर्म दृष्टि जेहि नरन की, विषय विवश मति बौरि ॥ ३७ ॥

टीका—जिसे चैतन्य जड का यथार्थ विवेक नही है, ऐसे भ्रमिक, वाचाल की ड्यौढी, सगति को देखकर उनके द्वारा सुनी हुई वानी या उनके ग्रन्थोको देखकर हे कल्याणार्थी ! घवराओ नही, जीव दया आदि धर्म धारणा मे साहसहीन मत वनो, उन लोगो द्वारा कही हुई वातें सत्य मत समझो । क्योकि जिन मनुष्यों की चर्मदृष्टि है, अर्थात पशुवत चर्ममई इन्द्रियो के सुख स्वार्थ मे लगन होने से विषय विलासिता रूप मदिरा पीकर उनकी वुद्धि विभ्रात है । तव फिर उस भ्रात वुद्धि से यथार्थ निर्णय कैसे होगा ? सिवा उल्टा-पल्टा कथन के और उन्हे क्या मालूम ? ॥ ३७ ॥

दृष्टान्त—एक टिकट चेक करने वाले टिकट कलेक्टर रेल मे

टीका—पत्थर कोयला या लकड़ी की कड़ी से कडी आँच देकर जल को भली प्रकार उष्ण करके तिस गर्म जल को शीघ्र थोडा सा किसी पात्र में रख देवें ॥ ३९ ॥

दोनौं जल में देखिये, अणु त्रसरेणुन चाल।
जहाँ न जल कीड़े कोई, ठहरि सकैं क्षण काल ॥ ४० ॥

टीका—इस प्रकार जो जल अभी खौल रहा है और कुछ वही खौलाया जल दूसरे पात्र मे रक्खा गया है, दोनों जल मे देखा जाय तो पृथ्वी के रज कण और जल के समूह चंचलता से वेगवान दिखेंगे। यद्यपि वहुत खौलाये जल में पृथ्वी के रज कण बैठ जाते है फिर भी कुछ सयोगवान रहते ही है। साथ ही यह अनुभवसिद्ध बात है कि खूब खौलाये जल मे क्षण मात्र भी कोई देहधारी कृमि ठहर नही सकता। फिर भी पानी मे चाल तो दिखाई ही दे रही है। इससे यह स्पष्ट हुआ कि पृथ्वी, अग्नि, वायु के परमाणु सयुक्त जल ही की क्रिया है, क्योंकि अत्यत खौलते जल मे छोटे देहधारी जीवो की देहे नष्ट ही हो जाती, याते उन देहधारी जीवों की क्रिया उस पानी से रह ही नही जाती। इससे खौलते जल मे उस पानी और रज कण की ही क्रिया जाननी चाहिये ॥ ४० ॥

शुद्ध अहिंसक जो मनुष्य, कोई काज के हेत।
औटत सो जल छानिकै, गिरे जन्तु नशि देत ॥ ४१ ॥

टीका—अच्छी प्रकार जीवदया पर लक्ष्य रखने वाले जो मनुष्य है वे कोई आवश्यक कार्य के लिये यदि जल औटाते है तो पहिले उसे भली प्रकार मोटे वस्त्र से छान लेते है। यदि औटाते समय कोई देहधारी जीव-कीड़े-मकोडे अचानक कही तिसमे गिर जावें या छानते समय कुछ कसर रह जावे, कीडा सयुक्त जल गिर जावे, तो खौलता हुआ जल कीड़ो की देहो को भस्म कर देता। इससे स्पष्ट हुआ कि खूब गर्म जल में कोई देहधारी जन्तु रह नही सकता ॥ ४१ ॥

सच्ची वीरता वहिर्मुख इन्द्रियो को उलट कर अंतरमुख करके शात होना है । राक्षसी कर्मो मे वीरता नही, किन्तु पशुता है । अंकुवा से होने वाले उद्भिज वीज-वृक्ष, गेहूँ-धानादि अकूर्य पदार्थो मे जीव का वासा नही ! जो कहो वे हरे-भरे क्यो है ? तो सुनो ! दीप-प्रकाश न्याय पृथ्वी से सत्ता पाकर जल प्रकाश वायु युक्त हरे-भरे रहते है, इसलिये कहा गया है ।

चौ०—खाय अकुरज मानुप जानो । खाय मास तेहि श्वान पिछानो ॥
जीव वधे वहि कालहि समझो । महा पाप नहि तामे अरुझो ॥

छन्द—सव भाँति से मन कर्म वाणी से सदा दाया गहौ ।
छोटे वडे पशु कीर नर सव पर रहम दिल ही रहौ ॥
सव कर्म मे होकर अहिसक पुण्यपथ ही नित लहौ ।
सत्संग साधन सन्त सेवा करके मुक्ती ही गहौ ॥

आँटा चावल दालि में, छानि पछोरि निचारि ।
निज शक्ती अनुसार सव, हर्षि अहिंसा धारि ॥ ३८ ॥

टीका—आँटा चावल दालि को चालि-पछोरि और अमनियाँ करके जीवों को हटाकर अपनी-अपनी शक्ति अनुसार प्रसन्नता से अहिसा धर्म सर्व नर-नारिवर्ग ग्रहण करो । देखो ! जहाँ इन्द्रियाँ, तीन अवस्था, स्व इच्छानुसार चलन-वलन, दुख-सुख का ज्ञान, वासना की वशिता और अपनी हैता की निरन्तर अहता ये सव लक्षण हो, तहाँ ही देहधारी जीवो का वासा जानकर हमेशा जीव दया पालन मे सवको लक्ष देना चाहिये ॥ ३८ ॥

प्रसङ्ग ३—कीटाणु अर्थात जड़-कण को ही जीव मान लेने
के भ्रम का शमन तथा जड तत्त्वो से भिन्न ज्ञान धर्म
वाले देहधारी जीवो की यथार्थ परीक्षा वर्णन

पत्रि कोयला या काठ की, करिकै आँच जोशील ।
भली भाँति जल तप्त करि, तुरतै पात्र धरील ॥ ३९ ॥

ज्ञान मानन्दीयुक्त होती है। दोनों की चालों मे दिन-रात्रि के समान अन्तर है, सो सबको अलग-अलग स्पष्ट है ॥ ४४ ॥

छोटि वड़ी काया जेती, वचै न कोई एक।
शुद्ध दृष्टि दरशैं सवै, सनमुख नेत्र जितेक ॥ ४५ ॥

टीका—पूर्वोक्त छोटे से छोटे जल-थल मे रहे हुये कीडे, मच्छर, भुनगा, माहू और बडे-वडे देहधारी हाथी, घोड़े, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि जहाँ तक चार खानियो के देहयुक्त जीव है कोई भी देखने से नही बचते, अर्थात सव देखने में आ जाते है। शुद्ध दृष्टि से जितने नेत्र के सामने पड़ेगे, वे सव छोटे-बड़े देहधारी जन्तु अवश्य देखने मे आ जायँगे ॥ ४५ ॥

कई एक परमाणु अणु, मिलि कै जीवन देह।
कई एक त्रसरेणु तहँ, यहिते दृष्टि लखेह ॥ ४६ ॥

टीका—चार तत्त्वो के कई एक परमाणु, बहुत से अणु तथा त्रसरेणु मिल के जीवो की नख से सिखा तक देह की रचना होती है। एक-एक इन्द्रिय बनने में चार तत्त्वो के तमाम अणु, त्रसरेणु, परमाणु लग जाते है, यही कारण है कि अणु-त्रसरेणुओं से कई गुना जीवों की देहे वड़ी होने से सव देहधारी की देहे विना यत्रादिक के शुद्ध नेत्र द्वारा दृष्टि गोचर हो जाती है ॥ ४६ ॥

तन धारिन के देह से, अति लघु अणु त्रसरेनु।
यहिते वै दरशैं नहीं, विना योग्यता येनु ॥ ४७ ॥

टीका—पूर्वोक्त विचार से देखा जाय तो शरीर धारी जन्तुओं की देह से चारो तत्त्वो के अणु, त्रसरेणु, परमाणु अत्यन्त छोटे है। देहधारी जीवो की एक-एक इन्द्रिय बनने मे तमाम परमाणु लग जाते है, तो सोचिये ! एक-एक परमाणु, अणु, त्रसरेणु देहधारियो से कितने छोटे है ? उनकी देह के सैकड़ो भाग मे से एक अंश भी तो एक अणु नही। यही कारण है कि अणु, त्रसरेणु, एनु नाम घेरा, सो योग्यता

उत्तापित जल क्रियवान जस, तैसहि सब क्रियवान ।
क्रिया न चाही ताहि में, जहाँ न कृमि ठहरान ॥ ४२ ॥

टीका—अत्यत खौलता जल जिस प्रकार क्रियाशील है, तैसे ही अन्य जल भी क्रियावान है । यदि क्रिया ही जीव हो तो खूब गर्म जल मे क्रिया न होना चाहिये, क्योंकि उसमे कोई देहधारी जीव ठहर सकता नही, यह अनुभव सिद्ध बात है ॥ ४२ ॥

सबही जल क्रियवान जब, तब कस कहि कृमि ताहि ।
नीर चाल से अन्य है, जीवन चाल सदाहि ॥ ४३ ॥

टीका—जब गर्म और ठंढ सर्व जल क्रियाशील दीखता है तब कैसे कहा जा सकता है कि पानी की क्रिया ही जीव है ? क्योकि खूब गर्म जल मे देहधारी जीव रहते नही और क्रिया तो होती ही है । ठढ जल मे भी क्रिया होती है, इससे यह सिद्ध हुआ कि जल के स्वाभाविक चाल से हमेशा अन्य दूसरी प्रकार से देहधारी जीवो की चाल ज्ञान-मानन्दीयुक्त रहती है ॥ ४३ ॥

नदीधार निर्मल जहाँ, तनधारी तहँजीव ।
दोनों चाल विरुद्ध हैं, भिन्न-भिन्न लखि तीव ॥ ४४ ॥

टीका—नदियो की स्वच्छ धारा जहाँ बहती है, वहाँ पर देह-धारी जीवो को देखो तो नदी के जल प्रवाह की गति और देहधारी जीवो की गति अलग-अलग स्पष्ट दिखाई देगी । नदी की धारा तो पृथ्वी कण युक्त स्वाभाविक ढालू-नीचे की तरफ ही चलेगी, तिसमे मच्छ-कच्छ, जोक, घडियाल, नक्रादि बडे जन्तु तथा छोटे-छोटे देह-धारी जो जन्तु है वे कही धारा के उल्टे, कही दाहिने, कही बाये, कही घूम-घूम, कही ठहर-ठहरकर, कही बड़ी चपलता से हठकर, कही दूर से आवाज सुनकर, भयभीत होके कही कुछ अनुकूल चीज पाकर उसको खाने-पीने लगते । एव देहधारी चैतन्य जीवो की क्रिया

के अणु, त्रसरेणु अनेको अणिके-कणिके तथा लम्ब गोल आदि तत्त्वो के कार्य है, क्योकि उनमे ज्ञान धर्म और मन-मानन्दी युक्त क्रिया नही ॥ ४८ ॥

अति तप्त जल में कृमि कोई रहते न लखिये तन धरी।
त्रसरेणु अणु क्रियवान ह्वै सम्बंध पौना लै ढ़री॥
जल दुग्ध पतले जो कछू क्रियवान हो हो जो टरीं।
जड़ चार की ये सब गती लखि रूप तिनका ये सरी॥१॥

टीका—विचार करके देखिये ! अत्यन्त तपाये अति उष्ण जल मे कोई देहधारी जीव नही रह सकता और जो उसमे कुछ सूक्ष्म पदार्थ गमनागमन करते, नीचे-ऊँचे घूमते दिखाई देते हैं, वे पृथ्वी, जल के अणु, त्रसरेणु आदि अनेक प्रकार से सयोगवान स्वभावत क्रियाशील है। पुन वायु से सम्बन्धवान होकर उन्हे विशेष वायु ही ढरी—आकर्षण करके चञ्चलतायुक्त दौडा रही है। (कुछ जान-मान के सुख-दुख सहित उनमे चाल नही होती) यही बात तुरन्त के ताजे दूध, शुद्ध जल आदि जो भी पिघलने वाले पदार्थ है, जिनमे क्रिया हो-होकर गतिमान होते रहते। उन सबो मे चारों जड़ तत्त्वो की ही स्वाभाविक गति जाननी चाहिये। क्योकि चारो तत्त्व कारण और तिनसे बने हुये असंख्य कार्य मे जहाँ तक ज्ञान धर्म रहित क्रियाचाल स्वाभाविक दृश्य हो रही है, वो सम्पूर्ण तत्त्वों का ही स्वरूप है (प्रत्यक्ष ही सुख दुखादि जानना धर्म रहित, मन-मानन्दी के घेरे रहित वे जड तत्त्व जडरूप से ही गतिशील है) ॥ १ ॥

अति बर्फ में ना देह धरि कोइ जीव तहँ बासा करै।
तत्त्व चारौ तहँ रहैं जिनके बिना नहि वह भरै॥
अति अग्नि मे परमाणु सब जहँ चारि चारौ रहि लरै।
धरि देह चेतन नहिं रहै जहँ अग्नि अति बासा करै॥२॥

टीका—जहाँ वर्फ है वहाँ कोई भी जीव देह धारण करके रह

युक्त घेरा मे आये विना नही दिखाई देते। या तो जाली-झरोखो में प्रकाश युक्त अथवा यंत्रादिको द्वारा ही दर्शते है। चारो खानि के देह-धारियो को दर्शने मे ऐसी वात नही है॥ ४७ ॥

शुद्ध दृष्टि से नहिं दिखै, बिना यंत्र के जौन।
सो तन धारी जीव नहिं, अणु त्रसरेणू तौन॥ ४८ ॥

टीका—अच्छे शुद्ध नेत्रो से ठहर के प्रकाश मे देखने पर जो नही दिखाई देते और जिनको देखने के लिये अणुवीक्षण यंत्र की आवश्यकता लगती है वे सव शरीर धारी जीव[1] नही वल्कि वे तत्त्वो

१ टिप्पणी—तुरंत के विलोये मक्खन मे, ताजे दूध मे तथा रक्तादि चालो मे सूक्ष्म दर्शी यत्र से देख कर कितने मनुष्य तिनको जीव की क्रिया कहते हैं। पर यह वात भ्रम मात्र है। क्योकि एक तो यत्र द्वार से जो वस्तु दिखाई देती। सो यथार्थ जैसी की तैसी नही दिखाई देती, वल्कि घट-वढ कम्पायमान हो फटे हुये दुग्ध न्याय विकृति रूप मे दिखाई देती। छोटी-छोटी वस्तुये छोटी न दिखाई देकर शीशा के अनुसार अत्यन्त छोटी-विकृतिरूप या वहुत वडी वस्तु चचलता युक्त दिखाई देती है। अस्तु यत्रो द्वारा ठीक-ठीक सव वस्तुओ का ज्यो का त्यो यथार्थ रूप से ज्ञान ही नही होता। यदि कही पर होता है तो पूर्व के यथार्थ ज्ञान के लक्षण से लक्षित करके ही। वहुत जगह भ्रम से रज्जू सर्प न्याय कुछ और ही और प्रतीत होना सम्भव हो जाता है। अस्तु केवल यंत्रोसे देखे गये ज्ञान धर्म रहित छोटे-छोटे अणु-त्रसरेणु की मिश्रण ग्रन्थियो को ही जल थल वर्फीले पहाडो मे जीव मान सकते है। यदि चार तत्त्वो के कणियो के अलावा उन्हो के कल्पना कृत जीवाणु ही सर्वत्र होवे तो फिर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और तिनके असख्य कार्य तथा तिनके सूक्ष्म अणु त्रसरेणु व असख्य देहधारी जीव कहाँ पर रहेगे? फिर इन्द्रियगोचर ज्ञान आनन्दी रहित जड तत्त्वो की कणियो के अलावा और कौनसी चीज को वे किटाणु कहते है। देह रहित शुद्ध चेतन इन्द्रिय गोचर हो नही सकते। क्योकि वे सर्वद्रष्टे अपरोक्ष ज्ञानमात्र अखण्ड होने से गोचररहित है और देहयुक्त जीवो मे इन्द्रिय-मन होने से वे जड कणो के समान एक ही ओर किया नही करते, किन्तु इच्छा वश होने से जिधर चाहे सुख-दुख मान-मानकर चलते, स्थूल ठहरने योग्य ठाँव मे रहते न कि सर्वत्र। इसे आगे के छन्दो से विचार कीजिये।

फिर भी उस अग्नि मे स्वाभाविक अन्य तत्व के परमाणु रह लेते, उनको अग्नि जलाकर नाश नही कर सकती । एवं अति विरोधी वस्तुओ का विनाशक द्रव्य हो या कार्य वर्धक (साधक) द्रव्य हो, कही भी एक तत्त्व दूसरे तत्व का नाश नही कर सकते । प्रज्वलित अग्नि मे अन्य तत्वो के सूक्ष्म परमाणु रहते हुए भी तिस अग्नि में देहधारी जीव धारण करके नही रह सकते, अति बर्फ मे भी नही रह सकते । ऐसे ही जहाँ कही तत्वों का अति जंग (उत्पात-प्रचंडता) हो तहाँ पर भी देहधारी जीव रह नहीं सकते । भाव—जहाँ जड़ तत्वो की क्रिया देहधारी की देहस्थिति मे अत्यन्त विरोधी हो—देह का नाशक-बाधक हो, तहाँ कभी कोई देहधारी जीव नही रह सकते । जड़ तत्वो का स्वाभाविक जड़ गुण-धर्म जड की चाल स्वाभाविक जड़रूप ही है और जड के विरुद्ध जितने देहधारी चेतन जीव है वे मन के रग अर्थात मन मानन्दी अध्यास तथा वासना सहित क्रिया करते है, स्वाभाविक नही । यही देहधारी चेतन और जड की क्रियाओ मे भेद है ।। ४८ ।।

प्रसग ४—स्पष्ट युक्तियो से देह और जीव की भिन्नता का प्रतिपादन

स्थूल भिन्न यह जीव है, जहाँ स्वप्न को जक्त ।
भोगत सबही भोग को, बिन इन्द्रिन आसक्त ।। ४९ ।।

टीका—नख-सिख स्थूलदेह से जीव पृथक है, यह बात स्वप्न से बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है । जहाँ स्वप्न मे मनोमय मात्र संसार इस

१ टिप्पणी—इस युक्तियुक्त निर्णय से यह सार ग्रहण करना चाहिये — इस जल-थल मण्डल पर ही जहाँ जीवो की देह की उत्पत्ति, रक्षा, पालन की साधकता है तहाँ ही वे देह धर-धर के अगणित जीव कर्म वासना वश भ्रमण करते रहते । नर, पशु, अण्डज, उष्मज को छोडकर सर्वत्र जड़तत्वो मे जीव भरे हुये नही । सूर्य चन्द्र तारादि लोक मे देहधारी जीव कहना अत्यन्त असम्भव, युक्तिहीन है । यन्त्रो–द्वारा दूर देश का यथार्थ ज्यो का त्यो ज्ञान न

नही सकता और चारों तत्त्व सयुक्त तो हिम है ही। जिन चारो तत्त्वो के बिना उस वर्फ का स्वरूप पूर्ण रूप बन ही नही सकता। अर्थात वर्फ मे जल का धर्म शीतलता तो है ही किंतु सूक्ष्मता से देखा जाय तो कठिन, उष्ण, कोमलरूप पृथ्वी, अग्नि, वायु के भी धर्म इसमे है। याते कम-विशेष चारो तत्त्वो से हिम खाली नही, वल्कि चारो तत्त्वयुक्त ही वर्फ का स्वरूप बन के चारो तत्वो से ठोसवान है। जहाँ अत्यत जोरदार अग्नि तथा सूर्य मे चारो तत्वो के परमाणु खास करके पृथक-पृथक अपने-अपने गुण धर्मो से युक्त ठोसवान पुन: सयोगवान रहते है। इस प्रकार सब तत्व परस्पर सयोगवान रहते हुए एक दूसरे को लोप नही कर सकते। किंतु तहाँ देहधारी जीव देह धर के रह नही सकते। अनुभव है कि जहाँ धधकती अग्नि की भट्ठी हो या कही भी प्रचण्ड अग्नि हो, वहाँ कीड़े-मकोडे पडते ही शीघ्र उनका शरीर भस्म हो जाता है ॥ २ ॥

जल वायु अगिनी नाश नहिं महि भी रहै तेहि संग में।
अति विरोधी साधकौ कबहूँ न नाशैं तंग में॥
लै देह ना रहि जीव तन जहॅ तत्व रहते जंग में।
जड़ जड़ स्वभाविक की क्रिया, मन देह चेतन रंग में॥ ३ ॥

टीका—जल, वायु, अग्नि तथा पृथ्वी के परमाणु परस्पर प्रवल अग्नि मे चतुर्थीकरण रूप से रहे है, क्योकि परस्पर सव तत्व स्वाभाविक सयोगवान है। प्रवल अग्नि, प्रबल वायु, प्रवल वर्फ कोई भी तत्व जब इतना प्रवल हो जाते कि दूसरे कार्य पदार्थो को जलाते, उड़ाते, दबाते डुबा देते, इस प्रकार अन्य कार्यो के विरोधी होते हुये भी उस विरोधी मे चारो तत्व परमाणु रह लेते है। कार्य साधक मे तो चारों तत्व रहते ही है। किन्तु जहाँ कार्य विरोधी उत्पात है वहाँ भी चारो तत्व रहते है। यहाँ तग का अर्थ बहुत कशिश—कठिन विरोध है। जैसे प्रबलाग्नि की लपट से अन्य चीजे भस्म हो जाती,

टीका—स्वप्नावस्था मे जीव का लक्ष रूप मनोमय मे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु कोई भी तत्व नही, फिर भी सब तत्व तहाँ प्रतीत होते है। स्त्री पुरुष भी नही, तो भी स्त्री पुरुष का साक्षात अनुभव होता है। अहित करने वाला कोई शत्रु और हित करने वाला मित्र तिस स्वप्न मे न होते हुए भी मानन्दी अनुसार स्वप्न अवस्था मे लड-भिड़ कर जीत-हार में दुखी-सुखी होता रहता है ॥ ५२ ॥

नर धामिन बिन परस तहँ, जरत त्वचा बिन अग्नि ।
बिबिधि प्रकार के रूप लखि, बिबिधि स्वाद मन मग्नि ॥ ५३ ॥

टीका—पुरुष और स्त्री ये दोनों स्वप्न मे नही, फिर भी वासना अनुसार स्त्री को पुरुष,पुरुष को स्त्री का स्पर्श सम्भोग भासमान होता है। स्वप्नावस्था मे खाल भी नही, अग्नि भी नही, फिर भी अग्नि से मानो चमड़ी जलती हो इस प्रकार भास होता है। तहाँ मनोमय मात्र ही दिन-रात्रि, घर मकान, नर-नारी सब प्रकार के रूपो का अवलोकन करता तथा न कुछ होते हुये भी अनेकों प्रकार के व्यजनो का स्वाद लेकर मानन्दी मात्र ही मग्न होता रहता है ॥ ५३ ॥

शब्दादिक बिन भोग है, जीव फिक्र वश तंग ।
काह राव कह रंक है, सबै जीव यहि रंग ॥ ५४ ॥

टीका—कान और कान के विषय शब्द समूह तथा पूर्व कहे हुये इन्द्रिय विषय व्यवहार न कुछ होते हुए भी जागृत के समान ही सब इन्द्रिय और विपयो का भास स्वप्न में मालूम होता है। तहाँ केदल फिक्र चितन के विवश होकर ज्ञाता जीव महा कष्ट का अनुभव करता रहता है। क्या राजा, क्या प्रजा ? क्या अमीर, क्या गरीब ? क्या पशु-पक्षी, कीट-पतग चारो खानि के जीव ? ये सब पच विषय पदार्थो की वासना टिकाकर स्वप्न मे केवल मनोमय के रग प्रवाह मे डूबते रहते है ॥ ५४ ॥

द्रष्टा जीव के आगे दृश्य होता है, वहाँ भोग पदार्थ नही है, वाह्य इन्द्री भी नही है, तो भी भोग वस्तु और इन्द्रियाँ विना ही केवल जाग्रत के भोग पदार्थो के संस्कार मानन्दी ग्रहण द्वारा ही सब भोगो को चेतन जीव जाग्रतवत स्वप्न मे अनुभव करता है और सुख-दुख भोगकर आसक्ति युक्त तद्‌गत होता है ॥ ४९ ॥

हाथ पाँव गुद लिंग विन, मुख रसना जहँ लोप ।
श्रवण नेत्र नासा नहीं, नहीं त्वचा जहँ होप ॥ ५० ॥

टीका—जिस स्वप्न काल मे देने-लेने आदि व्यवहार के लिये हाथ, चलने-फिरने आदि के लिये पाव, मल मूत्र त्याग हेतु गुदा-लिंग इन्द्रिय आदि नही है, बोलने के लिये मुख, स्वाद के वास्ते जीभ भी जहाँ नही है, पुन शब्द सुनने के लिये कान, देखने के लिये नेत्र, सूँघने के वास्ते नाक भी जहाँ नहीं और विविध स्पर्श के लिये जिस स्वप्न मे वाहरी खाल भी नही है ॥ ५० ॥

शब्द रूप रस गंध विन, विना परस सब वस्त्व ।
दुख सुख भोगत आप वह, विवश भास मन रत्व ॥ ५१ ॥

टीका—स्वप्न मे शब्द, रूप, रस, गंध ये पदार्थ भी नहीं और कोई स्पर्श छूने योग्य पदार्थ समूह भी नही, तो भी ज्ञाता जीव वासनानुसार सम्पूर्ण दुख सुख को भोगता है । मानन्दी वश अध्यास मात्र विविध भास देखकर तिसी मनोमय मे पगा रहता है ॥ ५१ ॥

सर्वं भूत जहवाँ नहीं, विना पुरुष नर नारि ।
शत्रु मित्र जहवाँ नहीं, पचै जीत औ हारि ॥ ५२ ॥

होकर प्रत्यक्षाभास द्वारा अनुमान होता है, जैसे कि जमे वादल मे अनेक पुतले भास होते या रज्जु-सर्पवत या ठूँठ चोर वत विपरीत भ्रम ज्ञान उत्पन्न होता है । उसी भ्रम ज्ञान से क्षुब्ध बने हुये वहुत कुछ उल्टा ही मानते-मनाते रहते हैं । किन्तु विचारवान को विवेकयुक्त ही यथार्थ ज्ञान प्रमाणित होता है सो सव पूर्व मे कहा गया ।

है, तो गाढ निद्रा मे भी उसी संस्कारवेग से करीब उसी समय बिना निद्रा के पूर्ण भये ही जाग जाता है। पूर्व जागृत की उत्कट लालसा वेग होने ही से वह सुषुप्ति वेग भग करके समय पर जागृत हो जाता है। यदि सुषुप्ति ही जीव होता, तो उसे अपनी जागृत निश्चयता के आधार से सुषुप्ति को कैसे भग कर सकता है ? ॥ ५७ ॥

निद्रा दोष के अंत बिन, ततपर ह्वै तेहि काम।
चलत पाँव डगमग परै, बोलत शब्द बे काम ॥ ५८ ॥

टीका--निद्रा पचने के प्रथम ही पूर्व चिन्तन वेग से जागकर पूर्व जागृत का निश्चित किया अपना कार्य आरम्भ कर देता है, परन्तु अभी निद्रा का कुछ आवरण होने से रास्ता चलने आदि मे पाँव धरता कही तो पड़ता कही, शब्द बोलने को और तो बोल कुछ और ही जाता। जिन शब्दों से कोई प्रयोजन नही ऐसे अयोग्य वचन भी बोल जाता है ॥ ५८ ॥

भयो जोश तेहि भंग जब, कहत कहे मैं काह।
पाँव धरत कहँ परत रह, लिहे फिक्र मन माह ॥ ५९ ॥

टीका—जब निद्रा का वेग बिल्कुल भंग हो जाता है, तब वह पहिले की बात याद करके कहने लगता—अहो ! मैने निद्रा वश मे कुछ न कहने लायक भी शब्द कह दिया। पाँव कही का कही पड रहा, ऐसा वह पछतावा या स्मरण करता। इस प्रकार वह पूर्व जागृत की बातों की फिक्र सहित चिन्तन लिये रहता है ॥ ५९ ॥

करत काज सह हर्ष से, प्रतिदिन सोई जागि।
असमय समय को त्याग करि, जीव सोई अनुरागि ॥ ६० ॥

टीका--वह मनुष्य फिर से रोज-रोज नियमित समय पर जाग-कर अपने निश्चित कार्य को करता रहता है। यदि उसे जिस किसी कार्य को पूर्ण करने की अधिक तीव्र भावना हो जाती है, तो स्वप्न-

चारि खानि जग जीव जे, तिन स्थूल को भोग।
रोग शोग तृष्णा लिहे, जग मानन्दी योग ॥ ५५ ॥

टीका—मनुष्य, पशु, अण्डज, उष्मज ये चारों खानियों के जेते देह धारी चेतन जीव दिखाई देते हैं, वे सब स्वप्नावस्था में स्थूल इन्द्रियों के बिना दुःख-सुखादि सर्व भोगों का अनुभव करते हैं। विविध ज्वर-जूड़ी आदि रोग-व्याधि, विविध मिलन-बिछुड़न की चिन्तादि विविध धनादि की तृष्णा सब कुछ वैसे ही अनुभव होता है जैसा खानि के अनुसार वासनायें सन्मुख उदय होती हैं ॥ ५५ ॥

सब सँसार समेटि कै, लखो सुषोपति जीव।
बिलग जीव सबसे रहा, स्ववश अकेल सदीव ॥ ५६ ॥

टीका—स्वप्न की सामग्री मनोमय सृष्टि को समेट कर जब सुषुप्ति अवस्था को जीव प्राप्त होता है, तब उस समय न तो जागृत ही रहता और न स्वप्न के विविध स्मरण मनोमय कृत व्यापार ही सन्मुख दृश्य होता है। सुषुप्ति को धारण करता, सुषुप्ति से तो स्वयं प्रत्यक्ष है ही, किन्तु वहाँ जागृत-स्वप्न का कुछ भान नहीं। जीव तीन अवस्थाओं का द्रष्टा तीन अवस्थाओं से भिन्न स्ववश अकेले अविनाशी है, यदि जीव के भीतर जागृत-स्वप्नादि का आडम्बर होता तो सुषुप्ति में भी होना चाहिये। सुषुप्ति में कुछ भी बाह्य व्यवहार न देखकर स्पष्ट हो जाता है। कि जीव तीनों अवस्थाओं का ज्ञाता सबसे अलग हमेशा रहने वाला अखण्ड अनादि है ॥ ५६ ॥

धरे फिकिरि कोइ आप वह, जागृत की जो राखि।
बिन निद्रा के पूर हीं, जागृत तेहि अभिलाखि ॥ ५७ ॥

टीका—गाढ़ निद्रा के पहले सुषुप्तस्थ जीव जागने समय से ही कोई फिक्र धारण कर लेता है, अर्थात गाड़ी से जाने या पाठ करने या रास्ता चलने कोई भी कार्य सिद्धि हेतु आधीरात या तीन-चार बजे मुझे जागना है, ऐसी निश्चयवृत्तिरूप कूक भरके जब सो जाता

रहता अर्थात निद्रा ले·लेता । कही सोने के समय को टाल देता, एवं तीनो अवस्थाओं को पुरुषार्थ से टालता रहता तथा तीनो अवस्थाओ के दुख-सुख भोग को विवशता से भोगता भी रहता है । इससे यह जाना गया कि जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति में अपनी प्रबल निश्चयता के अनुसार बर्ताव करने वाला चैतन्य जीव तीनो अवस्थाओ से विलग है । विलग न होता तो अपनी निश्चयता की हानि-लाभ को सोचकर एकरस कर्तव्य पालन कैसे कर सकता ।। ६२ ।।

प्रारब्ध भोग यह जानिये, जीव वासना वश्य ।
भरमि रहा बिन हेत के, भूलि आप मन लस्य ।। ६३ ।।

टीका—पूर्व जन्मो के सचित कर्मो से निर्माणित यह वर्तमान देह प्रारब्धरूप कही गई है सो इसमे तीन पन, तीन अवस्थादि देहोपाधियुक्त प्रारब्ध से ही जानना चाहिये और जीव पच विषयो की वासना संस्कार वश तीनो अवस्थाओं को धारण कर भरम रहा है। इन तीनो अवस्थाओ से जीव का कुछ भी लाभ नही, बिना प्रयोजन ही अपने स्वरूप को भूलकर मानन्दी से बँधा हुआ है ।।६३।।

प्रसग सार—तीन अवस्था, दस इन्द्रिय समूह देह पिण्ड और तिनके सब व्यवहारों को जाननेवाला जीव सर्व गोचर दृश्य भासमान से पृथक शुद्ध ज्ञान मात्र अखण्ड है ।

प्रसग ५—सब वस्तुये एक तरह से नही जानी जाती है तथा शुद्ध चैतन्य का बोध किस प्रकार होता है, इसका निर्णय ।

जहॅ देखन जेहि योग्य जस, तैसे तहॉ देखात ।
गंध पर्श औ शब्द रस, सब नहिं नैन लखात ।। ६४ ।।

टीका—जहॉ पर जिस पदार्थ को जिस प्रकार देखने की योग्यता है वह पदार्थ वैसे ही दिखाई देता है । जैसे नाक से गध देखते, जीभ-कान आदि से नही । इसी प्रकार जो विषय पदार्थ जिस इन्द्रिय से जानने योग्य है उसीसे जाना जा सकता है, अन्य से नही । विचारिये?

सुपुप्ति को भी दृढता से पलटाव कर देता है। असमय अर्थात सोने के समय जागके तथा जागने के समय सोने का नियम बनाकर उलट पलट कर लेता है ॥ ६० ॥

साराश यह—कि तीन अवस्थाओं के विवश होते हुए भी तीनो अवस्थाओं के वेग को स्वतन्त्रता से घट-बढ करके अपने दृढ निश्चय को ही चेतन जीव पूर्ति करता रहता है। इन बातो से यह फल निकला कि जीव तीन अवस्थाओ से सर्वथा भिन्न स्वतन्त्र है।

जो गाफिल हिचपिच रहै, तेहि पीछे अपसोच।
सावधान हो अधिक सो, जानि निजहिं मति पोच ॥ ६१ ॥

टीका—यदि समय पर विशेप गाफिली से न जाग सका, किसी के जगाने से या स्वय कुछ जागृत होकर फिर आलस्य वश ढिल-ढिलापन से सो गया और निश्चित कार्य की हानि हो गई, तो पीछे जागकर वहुत पछतावा करता है। आगे के लिये अब ऐसा न होने पावे ऐसा सोचकर अधिक से अधिक सावधानी रखता और पूर्व अपनी गाफिली का स्मरण करके अपनी बुद्धि की नीचता पर बारम्बार पछताता है ॥ ६१ ॥

तीनि अवस्था जबरन रहत, विवश जीव तेहि भोग।
हानि लाभ दुख सुख लिहे, टालत भोगत रोग ॥ ६२ ॥

टीका—ये तीनो अवस्थाये न चाहते हुये भी जबरन होती रहती है। जीव देहोपाधि के विवश तीनो अवस्थाओ का भोक्ता होता रहता है। प्रारब्ध पुरुपार्थ दोनो के मेल से हानि-लाभ सोच विचार कर सुख-दुख को प्राप्त होता रहता है। पुरुपार्थ द्वारा मानसिक सकल्प ओर हानि-लाभ कृत कर्तव्यो को समझकर त्याग ग्रहण करता रहता। अपनी दृढ निश्चयता की पूर्ति हित तीनों अवस्थाओ के वेगों को कम-विशेप उलट-पलट करता अर्थात कहीं जागृत में जान-बूझ के सो

मानन्दी उधर नही होती तो खिचाव नही होता। इस हेतु पिण्ड-ब्रह्माण्ड मे जो सुखाध्यासरूप मानन्दी है, उस मायारूप मनको चेतन जीव ने मानि-मानि एकत्र कर रक्खा है। जीव का मुख्य बन्धन मानन्दीरूप सुखाध्यास है, सो नेत्र आदि इन्द्रियो के सामने नही होता, वल्कि अन्त:करण मे मानन्दीरूप ठहरा है तथा सुखाध्यास का ग्रहण करनेवाला सत्य आप जीव भी इन्द्रियों से दृश्य नही होता, क्योंकि वह द्रष्टा साक्षी है। इस प्रकार मन मानन्दी मात्र बन्धन का रूप और तिसका द्रष्टा जीव दोनों विवेक से ही जाने जाते है, अत. वे दोनो वाह्य इन्द्रियो के विषय पदार्थ सरीखे दिखाई नही दे सकते ॥ ६६ ॥

अनुभव से अनुभविता लखत, अनुभव कर्त्ता जीव।
जगत दृष्टि से ना लखै, स्वयं दृष्टि गुरु लीव ॥ ६७ ॥

टीका—अनुभव ज्ञान, सो ज्ञान से ही अनुभविता ज्ञाता अपने आपका शोधन करता है। सर्व का अनुभव करने वाला अनुभविता ज्ञाता चेतन जीव ही है। याते वह चर्म इन्द्रियो से देखा नही जाता, वल्कि स्वय अपनी विवेक दृष्टि और सद्गुरु की पारख दृष्टि के इशारे को लेकर अपने आपको सबसे भिन्न पारखरूप सत्य हूँ, इस प्रकार अपने स्वरूप को आप ही चेतन शुद्ध बुद्धि[1] द्वारा निश्चय करता है ॥ ६७ ॥

१—टिप्पणी—प्रश्नोत्तर सम्वाद—शिष्य ने कहा मै कौन हूँ? गुरु ने कहा तुम अपने विचार से खोजो। शिष्य मेरे सामने तो नख शिख देह पडती है तो क्या मै देह हूँ। मेरे सामने तो अन्त.करण मे समग्र स्मरण पडते है तो क्या मै स्मरण हूँ? मेरे सामने राग, भूख, प्यास, हर्ष, शोक, तीन अवस्थादि सर्व पडते है तो क्या मै यही सब हूँ? यहाँ तक कि मेरे सामने संपूर्ण स्थूल सूक्ष्म पिण्ड ब्रह्माण्ड तथा शून्याभास पडते है तो क्या मै यह सब हूँ? तब गुरुदेव बोले—जैसे खेत, बाग, घडा, घर, वस्त्र अपने से भिन्न अनुभव होते हुये तिन्हे

विविध गन्ध-दुर्गन्ध किसिम-किसिम के स्पर्श और भाँति-भाँति के शब्द तथा सर्व षटरस ये चारो विषय नेत्रो द्वारा कहाँ दिखाई देते है ? मात्र एक रूप विषय ही नेत्र से दिखाई देता है ॥ ६४ ॥

स्पष्ट—जब इन्द्रिय गोचर पदार्थो को जानने के लिए भिन्न-भिन्न साधन की आवश्यकता होती है, तो प्रकृतिपार पदार्थ शोधन के लिये केवल नेत्र साधन कैसे माना जा सकता है ? केवल नेत्र की देखी बात ही सच नही बल्कि, गुण-धर्म युक्त किसी प्रकार प्रत्यक्ष हुआ विवेक युक्त पदार्थ सत्य होता है ।

अनुभव अपने आप को, यहाँ न देखन और ।
सत्य अनादी जीव है, विवश वासना पौर ॥ ६५ ॥

टीका—अपने आप शुद्ध चेतन का यहाँ बोध प्राप्त करना है, अपने से पृथक सामने अन्य विषय पदार्थो को तो देखना है नही, सो अपने आप तो स्वय सर्व का अनुभव कर्त्ता सदा एकरस नित्य अनादि जीव वासना वश रहा हुआ पौर[१] अर्थात वासना के ही द्वार से सबका अनुभव करने वाला स्वय प्रत्यक्ष है ही । "आप को प्रत्यक्ष त्रिकाल जु दृश्य प्रत्यक्ष कि कौनि बड़ाई" ॥ ६५ ॥

माया रहित स्वरूप तेहि, माया मनहिं बटोरि ।
बन्धन औ चैतन्य जिव, दोऊ न गोचर होरि ॥ ६६ ॥

टीका—पूर्वोक्त जीव का स्वरूप माया काया पच विषय अध्यास मानना रहित है । बाहरी स्थूल पदार्थो मे सुख मानना, ममता अह करना ही मुख्य माया है । बाहर पदार्थ रहते हुए भी जब सुख

टिप्पणी—पौर कहिये ड्योढी—आने जाने का मुख्य मार्ग, तैसे बाह्य ज्ञान करना आदि वासना के आधार से ही होता है । वासनाओ को जान मान कर त्याग-ग्रहण करने वाला मै वासनाओ से पृथक शुद्ध केवल ज्ञान मात्र हूँ । एव विवेक से अपना स्वरूप स्वय प्रत्यक्ष अपने आप को होता है । "जाको शंका हम है कौना । उलटि देखु जिव आपे तौना ॥

कोप चर्ममय नश्वर देह को सत्य समझ के पक्ष रखने वाले मनुष्य भला ! शुद्ध चैतन्य का मर्म कैसे समझ सकेंगे ? जब तक कि ठीक-ठीक सावधानीयुक्त यथार्थ परीक्षा न धारण करे तब तक स्वरूप का ज्ञान होना अशक्य है ॥ ६९ ॥

संस्कार ह्वै शुद्ध जब, हटै दृश्य से भाव ।
सत्य शोध तब जीव करि, प्रिये धर्म गुरुराव ॥ ७० ॥

टीका—पूर्व शुद्ध संस्कार उदय हो, साथ ही यत्न द्वारे उस शुद्ध संस्कार की रक्षा की जाय, एवं हृदय की भावनायें पवित्र व बलिष्ट बनाई जायें, तब देह आदि पंच विषय दृश्य को दुखपूर्ण समझ कर उधर से प्रेम हटने लगे और दुखरूप देह से पृथक सत्य स्वरूप का शोधन जीवकरने लगे । फिर धर्म और सद्गुरु प्रिय लगकर जीव को परमार्थ मार्ग प्राप्त हो जावे । इस प्रकार महान यथार्थ यत्न करके सत्य स्वरूप का शोध बोध प्राप्त कर सकते है, और उपाय नही ॥७०॥

एक समय सब बात नहिं, यादि होय दिल शोध ।
कैसे समझै न्याय सत, वाद विवाद विरोध ॥ ७१ ॥

टीका—एक ही समय सब बाते स्मरण नही होती, यह बात दिल मे शोध-विचारकर देखो ! मोटे काम की साधक युक्तियाँ भी जल्दी मे नही स्मरण होती, तो भला सूक्ष्म से सूक्ष्म बात का शोध लगाना अति जल्दी मे बने ही कैसे ? तब फिर सत्य न्याय अर्थात नित्य अनादि जीव वासना के वश कर्मफल भोगता तथा वासना त्याग से मुक्ति गति प्राप्त करता है । ये सब सत्य न्याय की सूक्ष्म बाते वाद-विवाद एव विरोध झगडा करके कैसे समझ मे आ सकती है ? वाद-विवाद हार-जीत का हठ ठान के चाहे कोटि कल्प रगड़ा करे, तो भी कभी सत्य बात समझ मे नही आ सकती ॥ ७१ ॥

अंतस थिर ज्वाला रहित, अभय न चिंता जब्ब ।
फिक्र रहित मन निरस जहँ, शोध यथारथ तब्ब ॥ ७२ ॥

हृदय थीर वायू रहित, मद उलझन वशि त्याग।
जानि सकै सो भेद यह, जब दुखदा सुख लाग॥ ६८॥

टीका—किस अन्त करणरूप पात्र मे स्वरूपज्ञान का भान होता है ? उसे यहाँ बताते है—जब हृदय को स्थित करे, जैसे वायु रहित गृह के अन्दर दीप-शिखा या जैसे वायु रहित जल स्थिर रहता है, तैसे विविध आसक्ति और कुतर्करूप वायु से न डिगे, अन्त करण शान्त रक्खे, अपनी श्रेष्ठता के गर्व से जो दूसरे के न्याय की बात भी सुनकर हृदय मे उल्झन क्रोध भभक पड़ता है अथवा निर्णय सुने या न सुने, ऐसे ही मदान्धता वश हरदम क्रोध व्याप्त रहता है, तिस गर्व की वशिता का त्याग करे तो वही पुरुष इस स्वरूपज्ञान का भेद जान सकता है। जिसे सर्व ससार की स्त्री आदि खेल तमाशा पच विषयो का सुख ही जब दुखपूर्ण अगार वत भयानक दिखाई देने लगे, स्वत: स्वरूप जानने की यह रीति बताई गई। अब स्वरूप स्पष्ट होते हुये भी उसका साक्षात्कार क्यो नही होता ? उसे बताते है, सुनिये॥ ६८॥

भूल हेतु बन्धन लखो, भूल में उलटी बुद्धि।
तेहि ते समझैं जीव कस, बिना यथारथ सुद्धि॥ ६९॥

टीका—निज स्वरूप के विस्मरणरूप भूल से ही पच विषयो मे सुख मानकर जड़ग्रथि मे जीव बधते चला आया है। याते भूल ही मुख्य बधन का कारण है। भूल-भ्रम मे बुद्धि उल्टी रहती ही है, ताते यथार्थ निश्चय नर जीव नही कर पाते। तो उल्टी समझ अन्नमय

अहं मानते हुये भी अनुभविना खेत गृहादि नही होता, तैसे पूर्वोक्त सर्व जिन-जिन का तूने नाम लिया वे सब तेरे से भिन्न भास होने के कारण उनसे भिन्न तू भासिक अनुभविना है, सो तू सबते न्यारा है। शिष्य ने कहा—"सर्व ज्ञाता ज्ञानमात्र अखण्ड स्थित साक्षात हूँ। ऐसा आपकी दया से समझा! जाना! आपके आधार ते मेरा अज्ञान गया, धन्य धन्य नमस्कार!"

टीका—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गध इन पॉच विषयों मे एक रूप ही विपय तो ऑखों से पेश नाम सामने दिखाई देता है। अन्य शब्द, स्पर्श, रस, गध तो नेत्र से दीखते ही नहीं। फिर उन चार विषयो को सत्य मान कर उनके गर्जवन्दा क्यों वनते हो? यदि वनते हो तो मालूम हुआ कि ऑखो से दिखते हुए रूप के अलावा अन्य वस्तुओ को भी तुम स्वीकार करते हो ॥ ७३ ॥

शब्द स्वाद स्पर्श है, गंध जानि कहि देत।
दिनौ राति तेहि फेर में, कहत सकुच नहिं लेत ॥ ७४ ॥

टीका—मैने कोमल कठोर शब्द सुना, मैने अच्छा या खराब स्वाद लिया, मैने कोमल स्पर्श किया और यह अच्छा सुचारु गंध है। इस प्रकार से जानि-जानि के स्वयं सबूत दे रहे है। इससे यह सिद्ध हुआ कि अन्य विषय भी नेत्र विषय के समान अस्तित्व रखते है। मान बड़ाईकृत तरह-तरह के राग-रागिनी आदि शब्दों के लिये, भॉति-भॉति षटरस स्वाद के लिये, कोमल सेज स्त्री आदि स्पर्श-सुख के लिये, तरह-तरह खुशबू के लिये तो रात-दिन उसी फेर-फार आशा मे दौड़ते है, फिर भी किंचित लज्जा नही लाते कि मै केवल नेत्र गोचर को ही क्यों सत्य कह रहा हूँ? अन्य विषय तथा सर्व विषयो का द्रष्टा चेतन जीव भी तो गुण धर्म युक्त सही अनुभव होते है, अस्तु वे भी सत्य है ॥ ७४ ॥

जानि जानि मानत रहै, सुख दुख वस्तु विहीन।
सत्य वोध स्वतंत्र जो, ताहि हेतु वल हीन ॥ ७५ ॥

टीका—जिस सुख-दुख को जानि-जानि मानता रहता है, वह सुख-दुख वस्तुतः कुछ नही। जिसमे जिसकी सुख मानन्दी नही उसके मिलने-बिछुड़ने मे कोई सुख-दुख नही होता। सुख माने हुए पॉचो विषयो से दुख ही प्राप्त होता रहता है। एक ही विषय भोग

टीका—(१) समझने की रीति—अन्त करण को स्थिर रक्खे। चौ०—"चंचल जल मे छाया नाही। स्थिर उर विन ज्ञान न आही ॥" (२) काम-क्रोधादि ज्वाला जलन उद्वेग को छोड़े—सोरठा—"काम क्रोध मद ज्वाल, कुटुम्व पक्ष निज जीत हठ। इनहि त्यागि तत्काल, यहि ज्वाला वश जग अबुध ॥" (३) इसके साथ निर्भयता धारण करे—सो०—"सकल कुटुम्बी यार, और विरोधी जौन जन। सतसगत से टार, बिन निर्भय नहि काजसरि ॥" (४) पुन: जगत की हानि लाभ चिंतन को छोड़े। चिंता कई प्रकार की है। चौ०—"जग औ देह कुटुम्ब की चिंता। तजौ ताहि तव सुधि होइ मिन्ता ॥" (५) पुन. व्यर्थ फिक्रो का त्याग करे, फिक्र भी नाना भाँति की होती है। चौ०—"सर्व देश निज कब्जे आवै। कोइ प्रतिकूल रहन ना पावै। सकल भोग सुख लेहौ जव मै। सव विज्ञान जानि सुख तव नै ॥ ऐपी अमित फिकिरि लहि भोगी। कवहु न चाहत निज पद शोगी ॥ राग द्वेष फिक्रहि सव तजिये। निजपद शोध लगै तब जगिये ॥" (६) पुन मन को जगत से निरस रक्खे। 'चौ०—नाच रग श्रृंगार सिनेमा। नित अखवार लगन लगि जेमा ॥ और रेडियो वहु चतुराई। भोग भ्रमर वश लोग लुगाई। विष-विष रस कुछ अपर न जानै। तेहिते सत्र उन्माद दिखानै ॥ दुर्गुण औ दुर्बुद्धि को मूला। जानि निरस दुख लखि नहि फूला ॥ करि सत्संग तबै होइ वोधा। ये सव रहनि रहै तव शोधा ॥ इन्हे यतन करि तुम अपनाओ। बोध पाय गुरु से तरि जाओ ॥" इतने रहस्यो को अपने मे लावे तव ठीक-ठीक स्वरूप ज्ञान का शोध लग जायगा ॥ ७२ ॥

प्रसग ६—केवल आँखा से ही सवका ज्ञान नही होता
तथा देह से जीव की पृथकता प्रतिपादन

पाँच विषय मे एक है, देखन योग्यहिं पेश।
अन्य चारि दरशैं नहीं, क्यों तेहि गर्ज हमेश ॥ ७३ ॥

जीव भीरु बन रहे है । "जहाँ नही तहँ सब कुछ जानी" यही महा अज्ञान है ॥ ७५ ॥

जहँ तक देखै नेत्र से, तहँ तक नेत्रन देख ।
अन्य द्वार से जो लखै, वह तो वैसहिं पेख ॥ ७६ ॥

टीका—जहाँ तक पृथ्वी पर नर-नारी पशु-पक्षी चारो खानियो की देहे तथा बीज-वृक्ष, गृह-मन्दिर असन-वसन जो कुछ प्रकाश सयुक्त नेत्र द्वार से दिखाई देता है, नेत्र द्वार से उतने ही का ज्ञान करते बन सकता है। ऐसे ही अन्य इन्द्रियो से जो विषय अनुभव किये जाते है, वे उन्ही इन्द्रियो से देखे जाने पिछाने जा सकते है, अन्य से नही ॥ ७६ ॥

बिना त्वचा स्पर्श को, लखै न नोकि जबूनि ।
बिन रसना के स्वाद कस, भोगि नहीं मन गूनि ॥ ७७ ॥

टीका—चमडी न हो तो अच्छे, खराब, कोमल, कठिन स्पर्श को जान नही सकता । ऐसे ही जिभ्या के बिना स्वाद का ज्ञान होना तथा स्वाद मे सुख को गुनावन करके स्वाद का भोग नही हो सकता, ऐसा दिल मे विचार करके देखो ॥ ७७ ॥

बिना श्रवण के शब्द को, देखा सुना न काहु ।
बिना घ्राण के गंध को, केहि विधि तेहिको लाहु ॥ ७८ ॥

टीका—कान न हो और शब्द का ज्ञान हो जाय, ऐसा तो कही देखा तथा सुना भी नही जाता । भला बिना नाक के गध को किस प्रकार ग्रहण किया जा सकता है ? नेत्रादि अन्य इन्द्रियाँ भले हो,

दोहा—बाल साजि चमडी ठटे, शीशा देखे सुक्ख ।
नश्वर छाया सुख गन्यो, वृद्ध मृत्यु रुज दुक्ख ॥
हृदय माँजि गुरु सन्त पद, देख्यो निज चैतन्य ।
कहहु तासु सम सुख कहाँ, जहाँ न मन दुख अन्य ॥"

ने कोई दुख मानता कोई सुख। इससे यह अनुभव हुआ कि चारो तत्त्व युक्त पच विपय सुखरूप नही और सुख दुख वृत्ति भास का साक्षी सुख-दुख मानन्दी भास से पृथक ही है, याते चेतन जीव भी दुख-सुख का रूप नहीं, इससे दुख-सुख मनोमय मात्र है। इस प्रकार जो सुख कल्पना मात्र वस्तु रहित है उस सुखको मद्य-स्त्री, नाच-रग आदि पाँचो विपय-विहार मे कल्पि-कल्पि के नाना लत बनाकर तिस के लिये सव जीव निछावर हो रहे है। देखो! जो अ-वस्तु है, तिसके लिये तो इतनी दृढता कि जीवन लाभ उसी मे मान वैठे है और जो वस्तुत स्वय ज्ञान गुण, ज्ञान धर्म, ज्ञान शक्तियुक्त ज्ञानाकार है, स्वयं प्रत्यक्ष अविनाशी नित्य स्वत· स्वतत्र अपने आप सर्वोपर सत्य है, तिस सत्य वोध अर्थात स्वय स्वरूप को जानने मानने ठहरने के लिये असमर्थता एवं कायरता[१] धारण कर रहे है। स्वय स्वरूप का वोध प्राप्त करके ठहरना तो दूर रहा उसे पहिचानने मे भी ये

१ टिप्पणी—आलसी का दृष्टात—दो आलसी—जोकि आलस्य मे सबके नम्बर काट वैठे थे अर्थात पूर्ण आलसी दो मनुष्य आम के वृक्ष के नीचे लेटे थे। एक की छाती पर पका हुआ आम पडा था। इतने मे घोडा पर सवार एक मनुष्य उधर से निकला। घुडसवार को देखकर उस आलसी ने कहा—भाई साहब! जरा ये आम का रस हमारे मुख मे निचोड दीजिये। सवार मनुष्य ने कहा—वाह रे आलसी! छाती का आम भी नही चूसा जाता? तब दूसरा वोल उठा—महाशय जी! कुछ पूछो मत, ये वडा आलसी है। रात्रि भर कुत्ते ने मेरा मुख चाटा किया अत मे मूत्र करके भाग गया, तब भी यह दुर तक न किया, न हाथ पॉव हिलाया। सवार को हँसी आई, कहा—वाह आप तो इसके दादा है। सच है "चौ०—आलस नर का शत्रु पिछानो। बिना किये कछु पूर्ण न मानो॥"

छन्द—हृदि गुफा के नित निवासी राम पहिचाना नही।
उस के लिये सव त्याग कर सयम महा ठाना नही॥
गहि महा आलस्य तू सत्सग प्रिय माना नही।
फिर विवेक विराग विन निज स्थिती पाना कही॥

मन,भोगो से चेतन जीव पृथक, मात्र सर्व ज्ञाता शुद्ध ज्ञान स्वरूप है ।। ८० ।।

भिन्न भिन्न इन्द्रिन बिना जानि सका नहिं भोग ।
तब कस देखै ताहि को, जो नहिं इन्द्रिन योग ।। ८१ ।।

टीका—त्वचा, चक्षु, रसनादिक अलग-अलग इन्द्रियो के विना जव यह जीव अलग-अलग दृश्य भोगो को नही जान सकता, तो अपने आप जीव को कैसे इन्द्रियो से देख सकता है ? जो इन्द्रियो के ग्रहण योग्य ही नही । अलग अलग साधन न हो तो न्यारे-न्यारे पॉच भोग प्रत्यक्ष करके जाने नही जा सकते, तो भला ! जो इन्द्रियो का द्रष्टा है, इन्द्रियतीत है, इन्द्रियो के देखने से पार है, वह सव इन्द्रियों से या केवल नेत्र से कैसे दिखाई दे सकता है ? हॉ स्वत· अतर्विवेक से स्वत का बोध होता है इस प्रकार विवेक करना चाहिये ।

क्रिया भोग को मनन करि, सुख दुख जानि औ मानि ।
सबै जनैया सब नहीं, सब तेहि सकैं न जानि ।।८२।।

टीका—क्रिया नाम जितने इन्द्रियो से देखने सुनने भोगने के त्रिगुण विवश कर्म होते तथा अन्तर प्राणादिक चलते, भोग नाम भोगने के पदार्थ पॉचो विषय सो तिन क्रिया-भोगो को चेतन जीव अन्त करण मे मनन चिंतन स्मरण करता और भीतर से तिन क्रिया भोगो में सुख जान-मान कर पकडता छोड़ता भावाभाव वनाता । इस प्रकार सब क्रिया और भोगों को जानने वाला सर्व से भिन्न है । अपना स्वरूप जो सर्वका साक्षी है, वह दृश्य साक्ष्य मे नही आता, सवका जानने वाला सर्व रूप नही होता, उसे सर्व जड़ पदार्थ मिलकर कोई भी जान-मान नही सकते, क्योकि जड़ में ज्ञान ही नही ।।८२।।

स्वतन्त्र जीव न्यारा रहा, आपहि आप लखान ।
आरण्य भुलावा छोड़िकै, जसका तसहिं पिछान ।। ८३ ।।

टीका—यह चेतन जीव जड तत्वो का कार्य तथा किसी अन्य

परतु कोटि उपाय से नाक के विना गध नही मिल सकता। इस प्रकार ॥ ७८ ॥

इन्द्रिय अन्य को काम नहिं, इन्द्रिय अन्य करेह।
द्रष्टा चेतन एक ही, सबको मानि लखेह ॥ ७९ ॥

टीका—एक इन्द्रिय का काम दूसरी इन्द्रिय से नही हो सकता। नेत्र से रूप का ग्रहण होता, स्वाद-गध नही। ऐसे ही जीभ से स्वाद ग्रहण होता रूप-गधादि नही। अपना-अपना ही कार्य इन्द्रियो से होता है, अन्य इन्द्रियो का नही। जीव तो अकेला ही पाँचों इन्द्रियाँ तथा तिनके विषयो को जान-मानकर मानन्दी द्वारा ज्ञान करता है। जीव के बिना जड़ इन्द्रियाँ अपना-पर का कुछ ज्ञान नही करती और जो इन्द्रियो से एक-एक विपय का ज्ञान होता है, वह इन्द्रिय साधन से स्वय जीव ही करता है, इसलिए इन्द्रियाँ-मन जड है, तिनसे पृथक द्रष्टा जीव स्वतन्त्र है ॥ ७९ ॥

कहुँ त्यागै कहुँ भोगता, कहूँ बाह्य को भूलि।
मनन विलासी सो बनै, देय शक्ति वह झूलि ॥ ८० ॥

टीका—कही तो दुख जानकर विषय पदार्थो को छोड़ देता, कही आसक्ति वश तिन विषयो को भोगता—ग्रहण करता, कही बाहरी विपय पदार्थ भूल करके किसी अन्य चितन मे लग जाता अथवा सो जाता, सुषुप्ति मे हो रहता। पुन. जाग कर बाह्य पदार्थो का मनन करता, एव सोते-जागते हर समय यह जीव मनन विलासी बना रहता। दुख कृत स्मरण चितन-मनन मे ही मोद—प्रसन्नता मानने वाले जीव को मनन-विलासी कहते है। सो यह जीव मनन-विलासी बन स्वय देहयुक्त स्थूल इन्द्रियों मे वेग भर के तिसके पीछे आप भी झूलता-नाचता रहता है। अथवा मनन मे आसक्त होकर इन्द्रियो को चलाता रहता है। इन बातो से स्पष्ट हुआ कि सर्व तन,

दिया, निज स्वरूप का विचार कभी नही करता और जिससे वन्धन, आवागमन, शोक, ताप की वढती होती है, तिस विजाति विषय भोग नाना राग रग प्राप्ति के लिये सव जीव सतापित कष्ठित हो रहे है, उसी के चिंतन-मनन मे लग रहे है, विना गुरु पारख ॥८४॥

प्रसङ्ग ७—मस्तिष्क हृदयस्थान, अन्त.करणादि जहाँ तक
दुर्भास होते है, वे सव जड, इन्हो से भिन्न
द्रष्टा चैतन्य जीव का विधान

मस्तक और दिमाग जो, पंच विषय के कार्य।
पंच विषय भोगत जोई, तेहि विन सवहिं अनार्य ॥ ८५ ॥

टीका—मस्तक, दिमाग या हृदय भाग को काट पीट देने से वे नेत्र गोचर होते, सड़ गल के दुर्गन्धमय हो जाते, जीव जन्तु उसे रस युक्त खा लेते, वह छूने से ठण्ड गर्म स्पर्शवान प्रतीत होता और कुछ धक्का से उसमे शब्द भी होता एव मस्तक दिमाग सर्व पच विषय-रूप जड होने से पच विपय के कार्य अश जड है। तिन पच विषयो को जान मान कर जो भोग करने वाला है, जो सुख-दुख मानकर छोड़ने पकड़ने वाला है, जिस चेतन जीव की सत्ता विना मस्तक

तेरी मती मे पाथर, कुछ भी न सोच धारै।
सत्संग से लजावै, शतरज-तास प्यारा ॥ २ ॥
आदत व लत जो नाना, फैसन से भानो आरत।
मदपी से धूल फाँके, छल वल करै अपारा ॥ ३ ॥
विद्या चलाकी तेरी, गुवरील से न ज्यादा।
मतिमद रे मलिन मन! तोहि नर्क भोग प्यारा ॥ ४ ॥
छुरधार सर्प विपवत, पाँचो विपय की कीड़ा।
धिक धिक अरे अभागी, तन स्वच्छ, मन है कीरा ॥ ५ ॥
तेरी कला समझ है, पशुभोग के लिये सव।
तू शीघ्र अव भी चेतै, तज विश्व सद असारा ॥ ६ ॥
निज आप तृप्त जानै, शुचिता स्वय पिछानै।
दुर्वुद्धि भाव तज दे, गुरु प्रेम से हो पारा ॥ ७ ॥

कर्त्ता का अंश न होने से स्वतन्त्र है। सर्व ज्ञाता होने से सब से न्यारा अपने आप है। वह जैसे इन्द्रिय-मन साधन से सर्व बाह्य वस्तुओं को जानता है, तैसे उलट कर आप-आप ही इन्द्रिय-मन का द्रष्टा होकर विवेक युक्त सबसे न्यारा शुद्ध स्वरूप का यथार्थ निश्चय करता है। उसको जानने मे दूसरा कोई समर्थ नही। इस प्रकार यह जीव सर्वोपर है। जहाँ तक नर-नारियो के रॅच-पॅच विषयासक्ति रूप जगल और नाना बानीजाल ये सब सघन वन है, तिसमे सत्यता का निश्चय तथा मुख्य भावना का पक्ष जब त्याग करे, तब जैसा अपना नित्य सत्य स्वरूप है तैसी परीक्षा मिल जायगी और जीव नि सदेह स्थित हो रहेगा ॥ ८३ ॥

जेहि पर दारमदार है, ताहि भुलाये आप।
जेहि ते होय अकाज तेहि, ताहि हेतु संताप ॥ ८४ ॥

टीका—दारमदार कहिये जिसके आधार मे सबकी सिद्धि होती है, जो मुख्य है—जिस चेतन जीव के सत्ता सयोग से सब मशीन, सब कलाये, सब कानून धाराये, सब नीति-रीति, सब विषयानन्द प्रेमानन्द, सब मत-पथ, मठ-मन्दिर, सब भेष, सब दीन और सब सुख-दुख कहाँ तक कहा जाय ? "जाहि बिना नहि होय कछू यह मानस सृष्टि सो शुन्य घरा जो" भाव—जिस चेतन जीव के रहते ही रहते सर्व स्थूल-सूक्ष्म राग चल रहे है, जिस चेतन जीव के बिना मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु की कुछ कीमत नही, जिस चेतन जीव के सुख-शाति के लिये ही ज्ञान विज्ञान आदि नाना उपाय चल रहे है, ऐसा सर्वोपर अपने आप चेतन स्वरूप को तो मदपी वत स्वय भुला[1]

गजल

१ टिप्पणी—निज रूप क्यो भुलाया, दुख से सदा तु न्यारा।
जड़ भोग मे रमाया, चचल विनाश सारा ॥टेक॥
ज्यो स्वान हाड मोहे, ज्यो पाँखि दीप जोहे।
ज्यो स्वप्न माहि कौहट, तैसे तु दुख सम्हारा ॥ १ ॥

यथायोग्य शोधन करना-धरना, पहिले ही परिणाम जान-मानकर तदनुसार यत्नशील होना इसका नाम प्रयत्न है। यहाँ तक कि पशु पक्षी चीटी आदि सर्व जीव ज्ञान-मानन्दी युक्त शरीर की रक्षा मे कम-विशेष यत्नवान है। ये सब बाते जड़ तत्त्वों और तिनके वृक्षादिक ककड पत्थरादि कार्यो ने कही नही है ॥ ८६ ॥

सुख दुख भोगै नहि तहाँ, करि भोगन एकात्र।
करि धरि भोगै भोग नहिं, जानि मानि दिन रात्र ॥ ८७ ॥

टीका—तहॉ जड पच विषयों मे सुख-दुख का भोग ग्रहण नही, जड विषय ही जड भोगों को एकत्र करके विषय-विषय को भोगे सुखी दुखी होवे यह वात ज्ञान धर्म रहित जड़ भोगो मे नही होती। हानि-लाभ सोचकर प्रयत्न करके भोग सामग्री सग्रह करना, दिन रात भोगो को जान-मान ग्रहण करना, ये सब देहधारी चेतन वत कही भी जड़ भोगों मे नही होता है ॥ ८७ ॥

अविषय चेतन जीव है, मस्तिष विषय को रूप।
अविषय विषय न एक है, दोनौं दोय सरूप ॥ ८८ ॥

टीका—पूर्वोक्त प्रमाण युक्तियो से स्पष्ट हुआ कि विषयो को जान-मानकर भोगने वाला जीव चेतन अविषय है। पॉच विषय नही। मस्तिष्क हृदयादि सब विषय के रूप सडने गलने वाले शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध के स्वरूप है। जड़ तत्वो ही से वे निर्मित है। जैसे मिठाई का गुण मिठास मिठाई का स्वरूप ही है, तैसे पॉचो विषय रूप वाह्य नख-सिख भीतर-बाहर सव स्थूल और मस्तक-दिमाग आदि सब जड़ विषय रूप है। तिन विषयो का जीव द्रष्टा-भोक्ता है। भोगो मे दुख-सुख मानकर तजता-गहता है। इस रीति से चेतन और जड गुण-धर्म युक्त दो वस्तु है, एक नही ॥ ८८ ॥

विषय विषय जानै नहीं, अपने पर को कोय।
पृथक पृथक ज्ञाता लखै, ज्ञातहिं लखै न सोय ॥ ८९ ॥

दिमाग हृदय भाग सर्व पच विषय तुच्छ जड धूल है। यह नियम है कि भोगो मे आई वस्तु और भोग करने वाला जीव ये दोनो एक नही हो सकते। जो एक हो, तो कौन भोगे ? किस को भोगे ? अपने कन्धे पर चढ के नाचते किसी को देखा नही। याते भोगने वाले जीव से भोग्य पंच विषय रूप मस्तक आदि तीनो काल मे पृथक है। जीव निकल जाने पर मस्तकादि सड-गल जाते है, याते सव तुच्छ नश्वर है तिनसे भिन्न जीव सत्य है ॥ ८५ ॥

भोग न भोगै भोग को, सुख दुख जानि प्रयत्न।
शब्द रूप रस गंध जो, सपरश माहिं न यत्न ॥ ८६ ॥

टीका—भोग नाम जड़ पच विषयों का है। सो जड़ तो स्वयं जड़ ही है। जड भोग-भोगको क्या जान-मानकर भोगेगे ? जड़ मे सुख, दुख और प्रयत्न करने का ज्ञान ही नही। रोटी दाल भातरूप नाना व्यजन व्यजन ही को खा पी स्वाद लेकर वखान नही कर सकते। तद्वत यह प्रत्यक्ष अनुभव है कि शब्द, रूप, रस, गध, स्पर्श मे कुछ भी ज्ञान युक्त उपाय सोच विचार नही है। यत्न कहिये सुख-दुख का हिसाव लगाकर हरएक भोगोको भोगने के लिये भाँति-भाँति की युक्ति सोच-सोचकर जड तत्वो के कार्यो को भाँति-भाँति उपयोग मे लाना, जैसे किसान खेती का लाभ सोचकर खेती के निमित्त हल वनाता, जहाँ फार-मुठिया आदि जो कुछ लगाने योग्य है सव सोच-सोच कर प्रयत्न द्वारा हल ठीक करके फिर हिसाब से जोतता, हिसाव ही लगाकर वोता, पुन सीचने योग्य सीचता, न सीचने योग्य नही सीचता, खाद आदिक डालता। इन सव यत्नों के परिणाम मे वह अन्न-धन की वढती सोच-समझकर इन सव यत्नो को करते हुये वह वहुत प्रसन्न होता है। इसी प्रकार सोच-सोचकर विशेप-विशेप लाभ सुख के लिए छाता, जूता, घडी आदि इस युक्ति से बनानी चाहिये, रेडियो, तार, सिनेमा आदि कार्य, तिसके वनाने की सव युक्तियाँ—विधियाँ

पदार्थो मे है, तो स्वत चेतन को नेत्रों से देखना और चित्रादि खीचना इस बात की तो गुन्जाइश ही कहाँ है ? जिस चेतन का स्वरूप ज्ञान मात्र है, जिसका स्वरूप गोचर रहित है, जिसकी स्थिति इस दृश्य जाल से सर्वथा पृथक है और जो सर्वका द्रष्टा परीक्षक स्वत ज्ञान मात्र सत्य है, उसका चित्र आदि ग्रहण करना असम्भव है ॥ ९१ ॥

साराश—मस्तक, दिमाग, हृदय, नाभी आदि सब नेत्र विषय है, स्थूल देह के अग पुर्जा है, उनका चित्र भी खीच लेते । इसलिये मस्तकादि सर्व जड है, इनके समान चेतन जीव कभी नही हो सकता । क्योकि इस शरीर रूप पात्र मे विषय रूप व्यंजन का अनुभविता चेतन जीव इन सब अनुभवो से सर्वदा भिन्न है ।

जहँ तक जो संयोग करि, होत रहै कोइ चीज ।
चारौ भूत के चिन्ह तहँ, तेहि तजि नहीं लहीज ॥ ९२ ॥

टीका—जहाँ तक लाल, पीला या भूरा भाग, मज्जा, पटल, मस्तक, तेज, श्वॉसा, हृदय, नाभि, खून, वीर्य आदि जो कोई भी चीजे तत्वो के सयोग से होती रहती हैं उन सब कार्यो मे शीत, उष्ण, कठिन, कोमल ये चार जड धर्म, शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श ये पॉच जड़ विषय, इन्द्रिय गोचर आकार और रसायनादि शक्तियॉ ये सब चार तत्वो के ही स्वाभाविक धर्म तिन्हो मे पाये जाते है । तिनमे जो उष्ण और रूप चमक भाग सो अग्नि, रस भाग सो जल, कठिनत्व स्थूल भाग सो पृथ्वी और परस्पर अन्य तत्वो के मिश्रित सधियो मे रही हुई वायु इस प्रकार चार जड़ तत्वो के लक्षण ही बीज वृक्ष ककड विद्युत यत्र आदि मे प्राप्त है । चार तत्वो को छोडकर सयोगिक कार्यो मे कुछ नही प्राप्त हो सकता है ॥ ९२ ॥

साराश—नख-शिख देह से लेकर जहाँ तक कार्य वस्तु है सो सब जड दृश्य है, जनैया जीव सर्व से न्यारा है यह आगे की साखी मे बतलाते है ।

टीका—ये सबको अनुभव है कि विषय-विषय को नही जानता, न अपने आपका ज्ञान उसमे है न पराये का। ज्ञान धर्म वाले ज्ञाता जीव ही इन्द्रिय-मन साधनयुक्त पच विषय सर्व दृश्य को देखते है और तिस सर्व ज्ञाता चेतन जीव को मन बुद्धि इन्द्रिय तथा वाहर के पच विषय जड तत्व कभी नही जान सकते ॥ ८६ ॥

भानि जानि त्यागै गहै, दुख सुख वरवस ठानि।
विन माने तेहि जीव के, जड़ गुण रहे हेरानि ॥ ९० ॥

टीका—अनेक देहधारी चेतन जीव ही पंच विषयो को जान-जान कर पाँचो विषयो मे सुख मान-मान के गहते तथा दुख समझ-कर तिन्हे छोड़ते भी रहते है। विषयो मे न सुख होते हुये भी हठपूर्वक भ्रम से सुख निश्चय करके दुखी होते रहते है। जड-चेतन अलग-अलग करके दुख-सुख न होते हुये भी भ्रम आदत वश दुखी-सुखी होते रहते है। जिस चेतन जीव के जाने-माने विना जड़ गुण तत्वो की शक्ति सामर्थ्य पच विषय की सिद्धि नही हो सकती। जीव ही जड तत्वो के गुण-धर्म शक्ति-सामर्थ्य को पहिचानकर प्रतिपादन करता। जीव के निकल जाने वाद वे विषय रहते हुये भी अपने होने न होने, भोगने न भोगने का दावा नही करते। क्योकि उनमे ज्ञान धर्म है नही। जीव ही उनका अस्तित्व सिद्धि करते है। जीव के विना ये तत्व पच विषय कुछ नही सिद्ध होते ॥ ९० ॥

रूप छोड़ि को चित्र गहि, चारि विषय जो और।
तव चेतन की वात क्या, जेहि गोचर तजि ठौर ॥ ९१ ॥

टीका—नेत्र का विषय रूप तिसे छोड़कर अन्य चार विषयो का कौन चित्र खीच सकता है ? कोई नही। अर्थात केवल नेत्र का विषय जो स्थूल रूप पदार्थ है, उसी का फोटू खीच सकता है। अन्य शब्द, रस, गन्ध, स्पर्श इन चार विषयो को न तो नेत्र से देख ही सकते, न इनका चित्र ही खीच सकते। जव ऐसी दशा प्रकृति रचित जड़

ही गुण, जान ही धर्मशक्ति, जान ही आकार, जान मात्र अखण्ड सत्य स्वतंत्र है ॥ ६४ ॥

साक्षी साक्ष्य होवै नहीं, साक्ष्य न साक्षी होत।
ज्ञाता ज्ञेय त्रिकाल नहिं, द्रष्टा दृश्य लखोत ॥ ६५ ॥

टीका—द्रष्टा साक्षी देखने-जानने वाले जीव को कहते है। साक्ष्य दृश्य का अर्थ जो सामने पडे-देखने मे आवे, वे पंच विषय जड तत्व। साक्षी साक्ष्य नही होते और साक्ष्य कभी साक्षी नही हो सकता। जो सर्व ज्ञाता है, वह ज्ञेय सन्मुख मे नही आता। तीनो काल मे द्रष्टा दृश्यरूप होकर कभी देखने मे नही आ सकता। द्रष्टा साक्षी जो दृश्य हो जाय तो देखे कौन? अत द्रष्टा दृश्य को देखने वाला दृश्य से हमेशा पृथक रहता है। इससे यह स्पष्ट हुआ कि सर्व द्रष्टा, साक्षी, सर्व ज्ञातास्वत. प्रकाशी अपने आप है। पुनः आगे वताते है ॥ ६५ ॥

स्वयं आप चैतन्य जो, पार जो जड़ के चिन्ह।
कितहूँ रहै न कहुँ मिलै, सबसे भिन्न सदिन्ह ॥ ६६ ॥

टीका—जीव स्वय अपने आप चैतन्य है। उस चैतन्य जीव का स्वरूप जड़ तत्वो के गुण धर्म शक्ति सयोग आकार क्रिया सब चिन्हों से पृथक हे। काहते कि सर्व कार्यो मे कारण जड़ के सब चिन्ह दिखाई देते हैं। जीव के ज्ञान धर्म कही भी कारण-कार्य मे नही दिखाई देते और चेतन जीव मे जडत्व धर्म कोई भी नही, याते जड़ चिन्हो से रहित जीव केवल ज्ञान स्वरूप है। वह देहोपाधि से कीट, पशु, पक्षी, नर आदि योनियो मे चाहे जहाँ रहे, सोवे या जागे, जहाँ कही भी यह जीव रहेगा न्यारे ही रहेगा। जब चारो कारण जड़ तत्व परस्पर कभी मिलकर एक रूप नही बन जाते, तो चेतन जीव जड़ तत्वो से बिल्कुल पृथक ज्ञान मात्र है, तब वह कब जड़ कारण कार्य मे तद्रूप हो सकता है? वह तो सदा सबसे पृथक है, मन-मानन्दी

ज्ञाता ध्याता जान जो, भूत छोड़ि तेहि चिन्ह।
शुद्ध स्वरूप स्वतंत्र है, जानि मानि जड़ भिन्न ॥ ६३ ॥

टीका—स्वय जीव ज्ञान करने वाला होने से सर्वका ज्ञाता है, सर्वका ध्यान मनन चिन्तन इच्छा करने वाला होने से ध्याता है, सबको जानने-मानने से जनैया है। इस रीति से ज्ञाता ध्याता यह जनैया जीव ही है। इस जनैया के लक्षण जड़ तत्वो के गुण-धर्मो से सर्वथा पृथक है। जनैया सर्वका साक्षी होने से शुद्ध स्वरूप है। कारण कार्य अश-अशी रहित होने से स्वतत्र अखण्ड अनादि नित्य है। जड स्थूल-सूक्ष्म देह बाहरी पृथ्वी जल अग्नि वायु तथा शून्य को जानने मानने तिनके गुण-धर्मो को ठहराने वाला जड़ तत्वो के लक्षणो से विलग केवल ज्ञानाकार स्वय स्वरूप अपरोक्ष है। काहेने कि ॥६३॥

माया रहित स्वरूप निज, एकरस एकै एक।
जड़ तत्त्वन के चिन्ह तजि, जानै जान जहेक ॥ ६४ ॥

टीका—जहाँ लो इन्द्रिय गोचर होता है, सो सब चल विचल होने से माया का स्वरूप है। माया बहु रूपिणी होकर जीव को ठगने वाली है, सो पच भोग रूप महामाया से सर्वथा पृथक स्वय चैतन्य जीव सत्य स्वरूप है। तीन अवस्था, तीन काल मे एकरस अखण्ड है। एकरस एकै एक का अर्थ तत्वों के मायामय पट भेद रहित केवल चैतन्य मात्र अखण्ड है। अर्थात जैसे जल मे रस गुण, शीत धर्म, पिड बाधने की शक्ति, स्थूलाकार, अन्य तत्वो से सयोग और क्रिया ये छह भेद एक ही जल मे है। तैसे अन्य तत्वो में भी अपना-अपना छह-छह भेद है। इसलिये उनमे कारण-कार्य खण्ड-नण्ड, चल-विचल स्वभाव है सो इन्ही दूषणो से पूर्ण जड पिण्ड ब्रह्माण्ड माया है और जीव इन सर्व पट भेद जड़ता धर्म से पृथक सर्वका परीक्षक अपने स्वरूप मे विभेद रहित केवल पारख अखण्ड एकरस है। चेतन जीव इन दृश्य जड तत्वो के सर्व पट भेदादि लक्षणो से अलग, जान

टीका—सितार, ग्रामोफोन तरह-तरह के वाजा, मोटर, रेल आदि जितनी मशीनरी है, सवको यंत्र कहते है, तिन्हे चलाने वाले मनुष्य का नाम यन्त्री है। सो यत्र—यत्री एक नही, दो है। जैसे घड़ा और उसमें का जल एक नही, दो हैं। जैसे मार्ग चलने वाला मार्गी और मार्ग दो है, यदि मार्ग-मार्गी एक होवे, तो चलै कौन, किसपर चले ? याते मार्ग-मार्गी भिन्न है। जैसे ग्राम मे रहने वाले ग्रामीण मनुष्य ग्राम्य रूप जगह से भिन्न है अथवा घर में रहने वाले मनुष्य घर और घर की सर्व सामग्री से पृथक ही रहते है और जैसे ग्रथ रचने वाला ग्रथ से भिन्न है, ग्रंथ और ग्रंथ कर्त्ता एक नही। तैसे ही स्थूल-सूक्ष्म देह जड़ और तिसका प्रेरक चेतन जीव दोनो त्रिकालमे एक नही, भिन्न-भिन्न है। ऐसा वारम्वार विवेक करना चाहिये ॥ ९९ ॥

प्रसङ्ग ८—मन इन्द्रियो का साक्षी चैतन्य जीव
मन इन्द्रिय देह से पृथक प्रतिपादन

नहीं गरम नहिं शीत है, नहि कोमल कठिनाय।
त्वचा विषय ये जानिये, तेहि तजि जीव कहाय ॥१००॥

टीका—गरम, ठण्ढ, कोमल और कठिन ये चेतन जीव के स्वरूप नही। ये चर्म के विषय है। त्वचा द्वारे अपने से भिन्न करके जीव उन्हे जानता है। अतः गरम, शीत, कोमल, कठिन तिनसे पृथक रहा हुआ जो ज्ञाता है उसे जीव कहा जाता है। "त्वचा पास सपरश जड़ तत्वन, जीवन निकट न जाय। शव्द स्पर्श रूप रस तैसहि, निज से नही भेटाय" ॥१००॥

नहीं गन्ध नहिं रूप रस, नहीं शब्द आवाज।
इन्द्रिय चारि को काम यह, तेहि तजि जीव विराज ॥ १०१ ॥

टीका—सव प्रकार के गन्ध, सव प्रकार के रूप, सव प्रकार के रस, सव प्रकार के शव्द ये सव जीव के स्वरूप नही है। ये तो चार

के वश रहा हुआ देह रूप नोटरूपे झाडनग्न वासा करता है ॥६६॥

सोरा से तन गोंकि कै, रुई कोऊ लपेटि।
रुई अरम से निकसि जो, तब का रुई ठेटि॥ ६७॥

टीका—जैसे कोई सीरा से तन को कुआकर पिठाई से देह भर लसफस करके धुनी हुई रुई भरे मकान मे घुस जाय तो चारो तरफ उसके अग मे रुई लिपट कर रुई ही रुई दीख पडने लगे, शरीर उसका दिखाई ही न देवे। पुन जब रुई की ढरी से वह मनुष्य निकलेगा तो क्या वह रुई ही रुई समझा जायगा? नही। जैसे मनुष्य रुई नही होता, तैसे जीव जड देह नही होता। चैतन्य जीव जड तत्वो की सूक्ष्म वासना रूप सीरा से लिपटा हुआ जड तत्वो की देह धारण करने से जड ही उसके चारो तरफ से दृश्यवान है, परतु विवेक युक्त देखने से जड़ देह का ज्ञाता-द्रष्टा देह से पृथक है ॥ ६७ ॥

इतनौ ज्ञान न जाहि को, ताहि कहै बुधिवंत।
भाँग परी जस कूप मे, पीकै बुद्धि दहन्त॥ ६८॥

टीका—पूर्वोक्त रुई की ढेरी मे बैठा हुआ मनुष्य रुई से लिपटने पर जैसे मनुष्य रुई नही होता, वैसे ही चैतन्य जीव देह मस्तक, आदि अंग नही हो सकता हाँ! मस्तक, अन्त करण आदि स्मरण उठाने के साधन भले हो पर वे चेतन जीव नही हो सकते। इतनी स्पष्ट सही-सही बात का भी जिसे बोध नही है, उन्हे ही अज्ञजन बडे बुद्धिमान मानते है। उन्हे विज्ञानी, शोधक, कलाकार आदि महत्ता देकर उनके अनुगामी होके सदाचरण से शून्य हो रहे है। यह बात ऐसी हुई जैसे कुआँ ही मे भाँग घोर देवे तो ग्रामवासी जो पीवे सो मतवाला बन के अट-सट बकने लगे, अपना हित-अनहित का कुछ न विचार करे, बुद्धि भ्रष्ट हो जाय, तद्वत ॥ ६८ ॥

यंत्री यंत्र न एक है, घट जल पंथी पंथ।
ग्राम धाम नर भिन्न है, भिन्न रचयिता ग्रंथ॥ ६९॥

आँख कान नासा त्वचा, जिह्वा नाहीं जीव।
अनवस्थान मन जाय जब, तब इन काम न कीव ॥१०३॥

टीका—नेत्र, कर्ण, नासिका, चर्म और जिभ्या ये सब चेतन जीव का स्वरूप नही है, क्योकि जब इन इन्द्रिय विषयो से मन अनवस्थान कहिये अन्य जगह में पूर्ण रूप से लग जाता है, तब ये सब इन्द्रियों के काम रुक जाते है। इससे जाना जाता है कि इन्द्रियाँ और चीज है, जीव अन्य पदार्थ है। तभी तो ये जड़ इन्द्रियाँ स्वाभाविक विषयो का ग्रहण नही कर सकती। यदि इन्द्रियाँ ही जीव होती, तो मन के अन्य जगह जाने पर भी इन्द्रियो से विषयो के ज्ञान करने का कार्य चालू रहता, सो रहता नही। जैसे मन युक्त चेतन जीव आँखो से देखता या जिभ्या से स्वाद या नाक से गध ले रहा है, इतने मे कही भारी विपत्ति जनित चिंता-सताप का मनन होने लगा, तो उस समय देखने, सूँघने आदि का लक्ष्य छूट जाता है। शोक या अन्य हर्ष आने पर वही-वही द्रष्टा चेतन को भास होने लगता है। इससे सहज ही अनुभव होता है कि इन्द्रियाँ जड़ कुठारवत है और चेतन जीव मन सम्बन्ध लेकर इन्द्रियो से कार्य करता इन्द्रियो से सर्वथा पृथक है ॥१०३॥

मन को ज्ञाता जीव है, मान न मान स्वतंत्र।
जहाँ न काहु कि वशि चलै, वै सबही परतंत्र ॥१०४॥

टीका—सर्व मनन संकल्पो का ज्ञान करने वाला ज्ञाता जीव मन से भिन्न है, चाहे विविध मत मजहब वर्णाश्रम आदि माने, चाहे न माने, मन को मानने न मानने मे जीव स्वतन्त्र है, मनन सकल्प दृश्य कल्पित है। अपनी कल्पना को जीव चाहे दृढ करे या पारख से कल्पनाओ को कल्पना मात्र समझ के खण्डन कर देवे, मन को मान लेने अथवा परख के सब मानदियों को छोड़ देने मे जीव स्ववश-स्वतत्र है। जीव के ऊपर किन्ही भी मन मानंदियो का जोर-जब-

इन्द्रियों से ग्रहण होने वाले उन्हीं के विषय हैं। नाक से गन्ध, आँख से रूप, जिभ्या से रस, कान से शब्द, का ग्रहण होता है। त्वचा विषय ऊपर कहा गया है। सो इन्द्रिय और इन्द्रियों के विषयो को छोड़कर, तिनसे भिन्न रह के जानने, मानने, परीक्षा करने वाला परीक्षक स्वरूप चेतन जीव ज्ञान मात्र सदा स्थित है ॥१०१॥

इन्द्री पाँचौ नहिं करैं, एक साथ तिन भोग।
भिन्न भिन्न ज्ञाता तिन्हैं, निज मर्जी उपयोग ॥ १०२ ॥

टीका—पाँचो इन्द्रियाँ पांचो विषयो को एक साथ नही भोगती। इन जड़ इन्द्रियों का ज्ञाता चेतन जीव ही भिन्न-भिन्न इन्द्रिय साधन से विषयो का ज्ञान कर-करके भिन्न-भिन्न समयों मे कही देखता, कही सुनता, कही सूँघता, कही हानिकारक समझ, समझ के चली इन्द्रियों को भी रोक देता, कही लाभ समझ के इन्द्रियों को उसीमे लगाता। इस रीति से अपनी मर्जी, सुख मानन्दी युक्त इच्छानुसार तिन इन्द्रिय विषयो का उपयोग करता—काम मे लाता है। जैसे कोई मनुष्य वेश्या के नृत्य में अपने इच्छानुसार पाँव से जाता, उसे आँखो से देखता, जुआ खेलता, मास-मद्य पान करता और अपने धन को उन्हीं मे खर्च करता। पुन जव कभी उसी मनुष्य को ज्ञान हो जाता है तो वह मनुष्य अपनी इन्द्रियों को नृत्य, जुआ, मद्य, मास से घुमाकर सत्सग, सद्ग्रंथ, सद्विचार मे लगाते हुये सम्पूर्ण धन परमार्थ मे खर्चकर उन्ही इन्द्रियों के विषयों में तिरस्कार का भाव दृढ कर लेता है। इस प्रकार अपनी मर्जी माफिक वन्धन व मोक्ष की तरफ इन्द्रिय विषयों से जीव काम लेता रहता है। इससे स्पष्ट हुआ कि जसे मोटर को इधर-उधर घुमाने वाला मोटर से पृथक है, जैसे धूल मे नाना खेल खेलने वाला वालक धूल नही हो जाता, तैसे इन्द्रिय विषयो से नाना खेल खेलने वाला इन्द्रिय विषयो से जीव पृथक एक देशी है, व्यापक नही ॥१०२॥

निकल जाने के बाद ये तीनो अवस्थाये होती नही। इससे स्पष्ट हुआ कि वासना युक्त जड़ चेतन ग्रथि मे त्रिविध अवस्थाये होती है। कुछ अकेले शुद्ध स्वरूप जीव मे नही ॥१०५॥

सबहो मुर्दा ठाठ है, जो कुछु जानि जनाय।
जीव भिन्न सबसे रहा, आप अकेल सदाय ॥१०६॥

टीका—जहाँ तक जीव अपने से भिन्न तन, मन, प्राण, तीन अवस्थादि तत्व विषय को जानता और जनाता है, वह सब मुर्दा जड की सामग्री है और जीव सबसे विलग, अपने आप अकेला, व्यापक-व्याप्य- वर्जित, सर्व भास से पृथक केवल पारख मात्र, ज्ञान स्वरूप सदा रहनहार अक्षय अमृत है ॥१०६॥

प्रसङ्ग ६—जड और चेतन के गुण धर्म का सक्षिप्त विवेचन

पर्श क्रिया युत शब्द गुण, वर्णात्मक ध्वन्यार्थ।
क्रिया पवन स्पर्श है, नहिं अक्रिय लह्यार्थ ॥१०७॥

टीका—प्रथम वायु का भेद कहते है—वायु तत्व अदृश्य होते हुये भी स्पर्शवान है। सामान्य विशेष गति से हरदम चलने वाली क्रिया-शील है। स्पर्श क्रियायुक्त ही वायु शब्द गुण है। शब्द में भेद दो जो नर जीव स्वर व्यंजन मिलाकर बावन (५२) वर्णयुक्त अनेक भाषा बोलते सो वर्णात्मक है और जो घर्षण से ऐसे ही वर्णरहित ध्वनि हो सो ध्वन्यार्थ है। जैसे बाँस-बाँस रगड़ से, बादलो की कड़क से, तबला-सितार आदि की आवाज सब ध्वन्यार्थ है। ये सब शब्द क्रिया स्पर्श के बिना उत्पन्न होते नही और क्रियायुक्त स्पर्श विशेष वायु मे होने से अन्य तत्वयुक्त वायु का ही शब्द गुण जानने मे आता है, क्योकि शब्द अक्रिय से नही प्राप्त होता है ॥१०७॥

शब्द रहत स्पर्श में, सपरश पवनहि होउ।
दुइ गुण वायू मे रहे, शब्द स्पर्शहिं सोउ ॥ १०८॥

दस्ती नही चलता। तमाम मानन्दियाँ जीव के आगे आती है, बहुतो का जीव खण्डन करता रहता है। देखने, खाने, पीने, का मन हुआ असमय समझ के उस मन को रोक दिया जाता है। जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह विकारो को आप ही कल्पना करके मनन करता, फिर आप ही भली प्रकार इनमे दुख देखकर छोड़ भी देता है। मन इन्द्रियो को जिस किसी तरफ अपने सुख निश्चय अनुसार दृढ करके द्रष्टा जीव चलाता है। इस प्रकार सर्व मानन्दियां रूप मन जीव के आश्रित, परतन्त्र, कल्पित है ॥१०४॥

जागृत स्वप्न सुषोपती, सबका द्रष्टा जीव।
जहाँ जीव नहिं आप है, तहाँ शक्ति हत तीव ॥१०५॥

टीका—जागृत इन्द्रिया और इन्द्रियों के विषय तथा संस्कार सबसे भिन्न रहकर ज्ञाता जीव व्यवहार करता, अस्तु जागृत अवस्था से जीव पृथक है। स्वप्न से पृथक है ओर सुषुप्ति मे भी वासना वेग के ज्ञान भाव लेते-लेते अचेत हो जाता है, जिससे जागने पर फिर पूर्व के ही सस्कारों को ग्रहण कर सुषुप्ति अवस्था का ज्ञान करता है, याते सुषुप्ति से भी जीव पृथक है। इस प्रकार तीन अवस्थाओ का जानने, मानने, सम्हारने वाला जनैया जीव तीनों अवस्थाओ से न्यारा है, काहे ते कि अपने आप चैतन्य जीव जिस अवस्था में नही रहता, उस अवस्था की शक्ति क्षीण हो जाती। वह अवस्था अपना कार्य नही करती। जैसे जब जागृत मे जीव है, तब जागृत अवस्था सचेष्ट रखता, अन्य दो अवस्थाये जीव के रहते-रहते भी जागृत मे अभाव है, इससे स्वप्न ओर सुषुप्ति जीव नही है। पुनः जब जागृत से स्वप्न, सुषुप्ति मे जाता है तो जागृत इन्द्रियों का सर्व व्यापार देखना, सुनना, भोगना, आदि क्रिया बन्द हो जाती है, जीव है तो सही। जीव के स्वप्न, सुषुप्ति मे रहते-रहते भी जागृत निश्चय ज्ञान होने से जागृत ओर जागृत इन्द्रिय व्यापार जीव का स्वरूप नही। जीव

रेणुओ का समूहरूप भूगोल दृश्यवान । इस प्रकार पृथ्वी तत्व जानना चाहिये । तिसके विशेष कार्य—बीज-वृक्ष, गड़ा-घर तथा चारो खानियों की जड़ देहे आदि है ॥११२॥

शीतल वारि रसायना, अन्य तीनि सो लीन।
क्रियाशील रस गुण तहाँ, स्थूलाकार लहीन ॥११३॥

टीका—१—जल मे शीत धर्म । २—रसायना या रसयुत रह कर पिण्ड बाधने की शक्ति । ३—अन्य पृथ्वी, अग्नि, वायु का सूक्ष्म रूप से मिलान । ४—नीचे बहना रूप क्रिया । ५—रस गुण । ६—अनन्त अणुओं का समूह रूप प्रत्यक्ष दृश्यवान समुद्र-कूप आदि में जल रूप से प्रत्यक्ष स्थूलाकार है, ये जल तत्व के भेद जानिये । उसके कार्य—बुदबुदा, तरग, पाला, ओला, बादल बुन्द तथा स्थूल देहों मे मुत्र, रक्तादि जानिये ॥ ११३ ॥

वन्हि दाह परकाश है, मेल सबों से ताहि।
क्रिया रूप आकार तेहि, है सुक्षम लखि वाहि ॥११४॥

टीका—अग्नि मे १—दाह शक्ति । २—प्रकाश धर्म । ३—अन्य तत्वो से सयोग मेल । ४—उर्ध्व गमन क्रिया । ५—रूप गुण । ६—अन्य तत्व युक्त अनन्त परमाणु समूह सूर्य रूप से दृश्य गोचर तथा सूक्ष्म बिखरे हुये परमाणु रूप से सूक्ष्माकार अग्नि अदृश्य है । तिसके कार्य-अगार, विद्युत, दीप, मसाल, गैस आदि से प्रकाश करना-तपाना आदि ॥ ११४ ॥

कोमल पवन स्नेह क्रिया, सम्बंध अन्य जड़ केर।
गुणौं शब्द स्पर्श है, सुक्षम आकार लहेर ॥११५॥

टीका—वायु का १—कोमल धर्म । २—खिचाव शक्ति, ३—तिर्छी क्रिया । ४—अन्य पृथ्वी जल अग्नि के परमाणुओ से सयोग ।

टीका—शब्द होना स्पर्श ठोकर या घर्षण के बिना नही हो सकता। सो स्पर्श विषय वायु का गुण विशेष होने से वायु मे दो गुण रहते है—शब्द और स्पर्श ॥१०८॥

भली लटी जो गंध है, वायू ताहि समेटि।
अधिक कमी जहँ होय जस, ताहि मिलावै भेटि ॥१०६॥

टीका—अच्छी-खराव, सुगध-दुर्गन्ध जहाँ तक गध है उसे वायु समेटकर पकड़ लेती है। पुन: कम-विशेष जहाँ जैसी सुगन्ध-दुर्गन्ध, उग्र-मंद है, तहाँ से उड़ाकर वायु नासिका से मिला देती है या अन्य यत्र-तत्र पदार्थों से मिलान कर देती है ॥१०६॥

जाहि किसिम की गंध जहँ, लघु दीरघ महि केरि।
अनल जलाय उड़ावती, नासा द्वारे हेरि ॥११०॥

टीका—चाहे जिस प्रकार की गन्ध हो, मंद हो या तीव्र, ये सव पृथ्वी का गुण है। कही तो इत्र, तेल, पुष्पादि की गन्ध, कही अन्न, काष्ठ, कोयलादि पदार्थो को अग्नि जलाकर तिसके गन्ध को वायु उड़ाती रहती है, तिसे नासिका द्वारा जीव जानते रहते है ॥११०॥

चतुर्थ भेद चारौ रहे, षट षट सबमें चिन्ह।
जहँ तक तत्त्वन कार्य कोइ, सबमें उनहीं लिन्ह ॥१११॥

टीका—चारों तत्वो के भिन्न-भिन्न चार भेद है। चारो चार प्रकार के है, सव मे मुख्य छ:-छ: भेद है, जिसे आगे कहेगे। उन्ही तत्वों से वने हुये जहाँ तक कार्य पदार्थ है सब मे वही चार प्रकार और षट भेद लक्षण मिले रहते है ॥१११॥

कठिन मेदिनी धारणा, सब जड़ का संयोग।
क्रियावान गुण गन्ध है, स्थूलाकार रहोग ॥११२॥

टीका—पृथ्वी में १—कठोर धर्म। २—धारणा शक्ति ३—जल अग्नि वायु तत्वो का सयोग। ४—पृथ्वी के त्रसरेणुओ मे क्रिया-चाल। ५—गन्ध गुण और ६—प्रत्यक्ष मोटा स्थूलाकार अनन्त त्रस-

जैसे थल में उष्ण है, देखि परै तहँ वारि।
नीर न जानौ अग्नि को, तैसे जीव विचारि ॥११८॥

टीका—जैसे जल मे गरम भाग अग्नि का है, परन्तु दृष्टि गोचर जल ही होता है। जल दीखते हुये भी उसमें संयोग वाली सूक्ष्म अग्नि वह कदापि जल नहीं हो सकती, वल्कि अग्नि की अग्नि ही रहती है। जैसे नेत्र द्वार से जल मे अग्नि न दीखते हुये भी त्वचा से स्पर्श करके जल से पृथक अग्नि का ज्ञान होता है। तैसे जड़ देह देख पड़ती हुई भी चैतन्य नही होती, बल्कि जड़ देह को ज्ञान मानन्दी करके चलाने वाला प्रेरक जीव जड़ देह अंग-उपाग से पृथक है। क्योंकि "कारण कारज माँहि न दरशै, ज्ञान समान विशेप। स्वय स्वरूप रहे तुम आपै, भरम ते सहत कलेश" ॥ ११८ ॥

ज्ञाता जीव न लेश लहि, जहँ तक जड़ का साज।
स्वयं आप माया परे, भूल भरम मन राज ॥११९॥

टीका—जो सर्वका ज्ञान करने वाला ज्ञाता स्वय चेतन जीव है, उसमे लेश मात्र जड सामग्री का लगाव नही। जहाँ तक जड सामग्री स्थूल-सूक्ष्म और वाहरी कारण कार्य सो सब जड़ दृश्य भोग है। वह सव भोग सामग्री भोगता चेतन जीव से पृथक है। स्वयं चेतन जीव सर्व माया-काया, स्थूल-सूक्ष्म से पृथक है। मन-माया से पृथक होते हुए भी अनादि काल से देहोपाधि युक्त पच विषयो मे सुख मान-मान के निज स्वरूप को भूलकर भ्रम से मानन्दी मात्र राज्य में आसक्त होता है ॥ ११९ ॥

पारख पद पारख करै, पारख जीव स्वरूप।
न्यारा सो न्यारा रहै, नाशि होय भव कूप ॥१२०॥

टीका—पारख स्वरूप ही रहके जीव सवकी पारख करता है। याते जीव का स्वरूप ही पारख है। अवकाश वत निराकार, निर्गुण, सर्व व्यापक तो कोई वस्तु ही नही। आकाश का दूसरा नाम ही

५—शब्द[1] स्पर्श ये दो गुण। ६—अदृश्य सूक्ष्माकार अनन्त परमाणुओ का समूह वातावरण मे वायु तत्व अनुभव होता है। तिसके कार्य—आँधी, बौडर, गध वस्तु (द्रव्य) उड़ाना आदि ॥ ११५ ॥

मस्तिष्क या अन्य कोइ, अंग देह के जोय।
सो सब जड़ के कार्य हैं, चेतन भिन्न लखोय ॥११६॥

टीका—जीवो की जड़ देह तत्वों की होने से जड़ ही हैं। मस्तक हो या हृदय, नाभि या कोई भी जहाँ तक स्थूल देह के भीतरी बाहरी अंग उपाग है, वे सब चार जड़ तत्वों के कार्य है, क्योकि वे चार तत्वो के आकार गुण धर्मादि षट भेद चार तत्त्वो के लक्षणो से पूर्ण है और तिन्हो का जनैया चैतन्य जीव तिन्हो से पृथक देखने वाला द्रष्टा है। याते वह जड़ तत्वो के जड़त्व गुण-धर्म रहित, कारण-कार्य रहित केवल ज्ञान मात्र है ॥ ११६ ॥

जड़ चेतन को भेद सब, निर्णय जड़ चैतन्य।
देखि विचारौ ताहि सब, जेहि विधि तहँ वर्णन्य ॥११७॥

टीका—यहाँ थोड़े मे जड़ चेतन के पृथक-पृथक लक्षण दर्शाये गये है। विशेष भवयान के सातवें प्रकरण मे विस्तार से जड़ चेतन का पृथक-पृथक गुण-धर्म युक्तियुक्त स्पष्ट विस्तार से वर्णन किया गया है, उसे सब विचारो। जिस प्रकार वहाँ जड़ चेतन का पृथक-विभेद कथन हुआ है वह सब मनन करने से स्पष्ट जानने मे आ जायगा। वहाँ विस्तार रूप मे कहे है, याते यहाँ सक्षेप मे बताया गया है ॥ ११७ ॥

१ टिपप्पणी—जो कहे आकाश का शब्द गुण है तो आकाश आकार रहित शून्य का नाम है और शब्द शून्य नही। क्योकि शब्द को आकर्पित करके फोनोग्राफ, रेडियो आदि यन्त्रो मे भर देते है, अस्तु-शब्द सूक्ष्माकार वायु का गुण है।

अन्यत्र सलग्न हो, सर्पवृत्ति मन मे न याद होवे, तो सर्प होते हुये भी चेतन जीव नही जान सकता। इससे अनुभव हुआ कि देख सुन भोग कर जो मानन्दी ठहरी है, उसी मानदी से ही खास चैतन्य जीव का सम्बन्ध है, बाहरी पदार्थो से नही। जब यह बात प्रत्यक्ष है, तो मन-मानन्दी रहित विदेहमुक्ति मे जीव स्थित रहते हुये भी जगत का ज्ञान कैसे कर सकेगा ? नही कर सकता। भाव—विदेह-मुक्ति में जीव शुद्ध पारख स्वरूप रह जायगा, जहाँ देहोपाधि कृत बाहरी ज्ञान नही होता ॥ १२१ ॥

ज्ञान कथा ज्ञानी कहै, तब जस रहै सुजान।
मौन भये तैसहिं रहै, ज्ञानी होय न आन ॥१२२॥

टीका—ज्ञानी हमेशा ज्ञानशक्ति सम्पन्न रहता है। जब निर्णययुक्त ज्ञान कथा करता है, तब तो उसकी शक्ति विदित ही है और जब ज्ञान कथा नही कहता, तब भी उसमे वही ज्ञानशक्ति विराजमान है। मौन अथवा कथन दोनो दशा मे ज्ञानी की ज्ञानशक्ति एकरस रहती है। उसका स्वरूप दूसरे प्रकार का नही होता। कथन या मौन मे उसके स्वरूप का अभाव नही ॥ १२२ ॥

देह बिदेहैं जीव तस, ज्ञाता ज्ञान निधान।
ज्ञेय त्यागि स्वतंत्र ह्वै, आप आपही जान ॥१२३॥

टीका—पूर्व प्रकार जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति मे ज्ञाता ज्ञान स्वरूप एकरस ही है। जीवन्मुक्ति में बोलने वत प्रारब्धिक चेष्टा युक्त ज्ञेय का कुछ भार है, परखाता-परखता है, क्योंकि प्रारब्धिक स्मरणों की उपाधि है पुन. स्वरूपज्ञान, सद्रहस्य धारणा युक्त प्रारब्ध अत कर देने से जगतवृत्ति रूप ज्ञेय से सर्वथा पृथक होकर विदेह मुक्त स्वतत्र आप आप ही ज्ञान निधान—ज्ञान से पूर्ण अखण्ड अर्थात पारख रूप सदा के लिये स्वरूप देश मे स्थिर निराधार रह जाता है ॥ १२३ ॥

पोल खाली है, या शून्य है। शून्य अभाव को परखने वाला शून्य नहीं। स्वत. जनैया मिट्टी, जल, अग्नि, वायुवत इन्द्रिय गोचर साकार भी नहीं। किन्तु दोनों का जनैया अपने ज्ञानधर्म से ही ठोस ज्ञान (साकार) अर्थात ज्ञानाकार अखण्ड स्थित है, जो सब चीजों की पारख करता है। सो उलटकर अपने को शोधन करे कि मैं कौन हूं ? जहां तक इन्द्रिय और स्मरण गोचर भास दर्शन में आवे तिसे विलग करके जो सबको विलग करने वाला अवशेष रहे वही सब परीक्षक आप अपने को निश्चय करे। काहे ते कि पारख के नित्य सत्य रहे बिन सबको परख-परख के डालेगा कौन ? याने जो जगत-ब्रह्म, व्यापक व्याप्य अद्वैत, स्थूल-सूक्ष्म, प्रकृति आदि सर्व स्मरण को परखै सो पारखी पारख ही जीव का शुद्ध स्वरूप है। पारख के अलावा सब धोखाधार। याते सर्व दृश्य से पारखी न्यारा। जैसे आप पारख स्वरूप सबसे न्यारा है तैसे ही सर्व बन्धनों को परख-परख के निज पारख बल से न्यारा ही रहे। तब ही सब बन्धनरूप विषयासक्ति, अन्य कर्त्ता आदि भास भरम जो कुछ अपने स्वरूप के अलावा मान रक्खा है, सो सर्व मानन्दी मुखासक्ति नष्ट होकर पुनः जन्म मरण-रूप कुआ में न पचना पड़ेगा ॥ १२० ॥

जो मानंदी सनमुख परै, तेहिको परखै आप।
सनमुख आये ताहि बिन, कबहुँ न तेहिको नाप ॥१२१॥

टीका—इन्द्रियोपाधि से ठहरे हुये सूक्ष्म अन्तःकरण में जो-जो मन मानन्दी स्मरण जीव के सामने उठते रहते हैं, तिनको अपने आप पारखरूप जीव परखता रहता है। जैसे दिन-रात, स्त्री-पुरुष, खान-पान, सर्व दुख-सुख आदि जो-जो वृत्ति सामने आती उसी को चैतन्य जीव ज्ञान करता, यदि उसके सामने स्मरण न पड़े तो स्मरण सम्बन्धी भी बाह्य पदार्थों को ज्ञान करके परीक्षा कभी नहीं कर सकता। जैसे सर्प पीठ पीछे या आगे पड़ा हो और अपना चित्त कहीं

वह जाग न जाय। तैसे ही यह अविनाशी जीव अपने एकरस अचल स्वरूप को भूलकर जड देह इन्द्रियों को सत्य मान के दुख-सुख, हानि-लाभ, जन्म-मरण, कम-विशेष, मिलना बिछुड़ना रूप अनन्त वासना कृत स्वप्न देख-देख तिसमे अहं-मम मान कर दैहिक, दैविक, भौतिक, जन्म मरण गर्भवास विविध तापो से कष्टित होता रहता है। परन्तु श्वान-छाया, पाँखी-दीप, मृगजल न्याय इस विषय व्यापार से न तो जीव की तृप्ति होती, न वासना कृत तन मन की अनन्त उपाधिया छूटती। ऐसी गुरु की दया और अपने प्रयत्न वल से जगत मे दुख ही दुख देखकर जव सर्व भोग-विलास, पिण्ड-ब्रह्माण्ड कृत सर्व जड़ाध्यास भली प्रकार त्याग दे, तो ऊपर का बादल वत जड़ाध्यास का ढक्कन दूर होकर ज्यो का त्यो अपना पारख स्वय प्रकाश सदा के लिये उदय हो जायगा और जीव जो पूर्व मे भ्रम से असंख्य दुख का अनुभव करता था, सो भ्रम किया त्यागकर दुख रहित आरोग्य स्वरूप मे सदा के लिए स्थिर रह जावेगा। इस हेतु भूल कृत असख्य दुख द्वन्द्वो की निवृत्ति के लिये मुक्त होने की परम आवश्यकता है ॥ १२६ ॥

१ टिप्पणी—दृष्टात—एक के यहाँ कुटुम्ब भोज था। उसमे बहुत मनुष्यो की भीड थी। अन्धेरी रात्रि के समय लालटेन जलाकर रख दिया गया था। वडी लालटेन गैस के समान प्रकाशित हो रही थी। मालिक आकर लालटेन के सामने खडा हो गया और सबसे पूछने लगा कि लालटेन कहाँ है ? अभी जलाई नहो गई। लोग आश्चर्यित हो मन मे सोचने लगे—इसकी अकल ठेकाने नही है। इसलिये देखते हुये भी अध सरीखा घबरा रहा है। एक ने कहा—भाई क्या आपको दीखता नही ? उसने कहा वाह, मै तो सब देख ही रहा हूँ। अन्य मनुष्य ने कहा अंधेरी रात्रि मे किसके द्वारा आप सब देख रहे है बिना प्रकाश ही के ? ठहर के विचारिये। शीघ्र उसे अपनी भूल की निवृत्ति हो गई। वह बोला कैसा आश्चर्य है ? सन्मुख प्रकाश रहते भी वृत्ति अन्यत्र लगने से जाना ही न गया, वृत्ति घुमाते ही सर्व भ्रान्ति छूट गई।

जस स्वरूप तैसहिं रहै, भूल अभूलहिं माहिं।
और होय कबहूँ नहीं, नित्य जान जो आहि ॥१२४॥

टीका—जैसा जीव अखण्ड ज्ञान स्वरूप है वैसा ही हमेशा रहता है। भूल भरम देह सम्बन्ध मे होवे अथवा भूलरूप देह सम्बन्ध रहित रहे, कभी उसकी सत्यता एवं अस्तित्व का अभाव नही होता। काहे ते कि जीव नित्य अखण्ड घट-बढ रहित जान मात्र है ॥ १२४ ॥

कारण कारज रहित जो, जीव आप अपरोक्ष।
बन्ध मोक्ष कतहूँ रहै, आपै आप रहोक्ष ॥१२५॥

टीका—जो अपना चेतन स्वरूप है वह किसीसे उत्पन्न न होने के नाते से किसी का कार्य नहीं तथा चेतन में से जड़ तत्व न बनने की वजह से आप चेतन जीव जड़ का कारण भी नही। अर्थात चेतन जीव से विरोधी जड सृष्टि की उत्पत्ति नही हो सकती। अतः चेतन जीव कारण कार्य रहित दोनो का जनैया आप अपना ही अपरोक्ष है। परोक्ष अनुमान, प्रत्यक्ष विषय इन सबो का ज्ञाता सबों से भिन्न स्वतन्त्र चेतन को अपरोक्ष कहते है। तो यह अपरोक्ष अपने आप जीव वासना वश सूक्ष्म देह युक्त बारम्बार स्थूल देह धारण कर-कर बधन में रहे, अथवा बधन रहित मुक्ति स्थिति प्राप्त करले, दोनों समय मे अपने आप अखण्ड रूप से यह सत्य रहता है। तात्पर्य—चेतन स्वरूप का कभी अभाव नही होता ॥ १२५ ॥

त्रिविधि बासना स्वप्न जग, देखत मानत जीव।
दुख लखि त्यागै परखि जब, आपै स्वतः सदीव ॥१२६॥

टीका—हर हालत में स्वरूप एक समान होते हुये भी उसे वासना कृत अनेक कष्ट है। जैसे मनुष्य सेज पर सोते हुये भी स्वप्न की नदी मे डूबने का या अग्नि मे जलने का बाघ, भालू, सर्प से घिर जाने का और भी विविध कष्टप्रद स्वप्न देख के कष्ट का अनुभव करने लगे, तो यह कष्ट तब तक निवारण नही होता जब तक

त्याग सर्व सुख हेतु अर्थात जन्म-मरण उपाधि रहित है। अत· दुख द्वन्द्व रूप जड़ग्रथि वासना से मुक्त होने के लिये अपना प्रधान लक्ष्य बनाना चाहिये ॥ १२८ ॥

नाशवान वह देह तजि, यह अविनाशी जीव।
तन सम्बन्ध से मुक्त ह्वै, आपै सदा रहीव ॥ १२९ ॥

टीका—दृष्टान्त मे राग वैराग्य करने वाले मनुष्य का शरीर कभी न कभी छूट ही जाता है, परतु यहाँ जीव तो सदा रहनहार अविनाशी नित्य होने से शरीर दुखो से प्रयत्न पूर्वक पृथक होकर जब अपने स्वरूप मे ठहर जाता है, तब देहोपाधि से मुक्त हो अपने आप सदा के लिये पारखरूप स्थित हो जाता है ॥ १२९ ॥

कल्पक सब अनुमान को, करै तत्त्व परत्यक्ष।
तिन दोनौं से रहित जिव, स्थित सदा सो अक्ष ॥ १३० ॥

टीका—अपने स्वरूप से पृथक कोई अन्य राम रहीम देवी देव, भूतादि अदृश्य कल्पित मानन्दी को अनुमान कहते है, तिसे आप जीव ही ठहराता है, याते जीव बिना सब अनुमान मात्र धोखा है। प्रत्यक्ष इन्द्रिय गोचर यह पृथ्वी, यह जल, यह अग्नि, यह वायु, यह शून्य इस तरह जड़ को भी जीव ही ठहराता है। जीव बिना जड़ मुर्दा है, उसमे अपन-परार का कुछ भान न होने से असार बधन रूप है। तो अनुमान परोक्ष अदृश्य बानी जाल और प्रत्यक्ष स्थूल-सूक्ष्म देह भास तथा जड तत्त्वो के पच विषय सम्पूर्ण खानि जाल जान मानकर ठहराने वाला तिन दोनो से भिन्न स्वय जनैया सदैव रहनहार अक्षय अखण्ड है ॥ १३० ॥

अमर जीव यकरस रहै, निराधार जड़ भिन्न।
संशय शमन न रमन मन, शक्ती ताहि अछिन्न ॥ १३१ ॥

टीका—चेतन जीव सदा रहनहार एकरस है, निराधार—किसी के अवलम्ब रहित अर्थात स्वय ठहरने की चेतन जीव मे शक्ति है।

जैसे मानुप भूल में, करै राग वशि व्याह।
जो दुखदाई नारि लखि, तजि वैराग्य को लाह॥१२७॥

टीका—जैसे मनुष्य वही है जो मोह वश होकर इन्द्रिय सुखार्थ विवाह करके स्त्री से लगन करता है और रचता पचता है, अनेक हानि-लाभ मे शोकित-प्रेरित होता रहता है। यदि उसे पूर्व सुकृत वश और अवके सत्संग विचार प्रयत्न से स्त्री सुख मिथ्या समझ मे आ जावे और उसके सम्बन्ध से अनेक कष्ट दृष्टि मे जच जावे तो स्त्री की ममता को त्यागकर प्रवल वैराग्य को धारण कर लेता है॥ १२७॥

दोनौं समय मनुष्य वह, रहत देखि जस मान।
वन्ध मोक्ष में रहत अस, अमर जीव को जान॥ १२८॥

टीका—जैसे राग और वैराग्य मे दोनों समय मनुष्य वर्तमान है, परन्तु एक दुखमय अवस्था तो दूसरी सुख शातिमय अवस्था। जड़ग्रथि वन्धन मे तो अध्यास आसक्ति रूप स्त्री की ममता वश अनेक शोक, मोह, विक्षेप का ही जीव अनुभव करता है, पुन तिस आसक्ति को मिथ्या दुख पूर्ण समझ लेने से तत्सम्वन्धी सर्व राग क्रिया त्यागकर जीव स्वरूप मे अचलरूप स्थित हो जाता है। इस प्रकार वन्धन और मोक्ष मे कही भी जीव के अमर स्वरूप का अभाव न होने से सदैव अखण्ड एकरस जानमात्र जानना चाहिये। इतना होते हुये भी वन्धन रूप जड़ाध्यास सर्व दु खो का कारण है और जड़ाध्यास का

इसी प्रकार सवका जानने, मानने, थापने, भास करने वाला चेतन जीव सत्य नित्य तृप्त स्वयं ज्ञान प्रकाश हाजिर हजूर है। किन्तु अपने स्वरूप की विवेक-वृत्ति न रखने से पचभोग के लिये अध्यास वश मारा-मारा घूमता है। स्वप्न नदी मे डूवने वत दुख ही दुख का अनुभव करता है। जव गुरुदेव इसकी वृत्ति घुमाते हैं, तव यह भी जग दुख जान के स्वरूप विवेक पुष्ट करता है, तव स्वत. स्वतन्त्र मुक्त रूप विराजता है।

प्रकार से भूल भरम सदेहों को लगा के मेरा दूना दुख बढा दिये। अपने यथार्थ पारख स्वरूप को कोई नही बताये। उलटे और बानी-खानि मे भटका दिये। गुरुदेव दीन-दुखियो के दुख को हरने वाले है। फिर कैसे है कि जड़ से पार शुद्ध चैतन्य पारख रूप है। ऐसे गुरुदेव खानि-बानी का सम्पूर्ण भ्रम सम्बन्धरूप सघन बन मेरे ही लिये पारख युक्तिसे काट-छाँट कर साफकर दिये, धन्य ! धन्य ! साधु गुरुदेव ! ॥४

जड़भास नश्वर बाँधि जीवहिं सुख आश ठानी तापरी।
खो रहे हैं आप अपने जबरन परोसिन गाँस री॥
पुरुषार्थ मानी भूँख मन जेहि खाद्य में सब हार री।
परिचय दिये गुरुदेव अबकी जेहि जानिना कछु भाग री॥५॥

टीका—जड़ तत्त्वो से जीव का सम्बन्ध केवल मनोमय मात्र है। जिस चीज का सस्कार न हो वह वस्तु रहते हुये भी उसके हानि-लाभ, सुख-दुख जीव को कुछ नही सताते। इस हेतु जड़ तत्त्वो को अपनैयत मानकर जड विषयों के भोगाध्यास मे फूलते-पचकते रहना, सो मनोवृत्ति जड़भास है। जहाँ तक जड भास अध्यास मानना भोग विषय प्रत्यक्ष नाशवान मिलने-बिछुड़ने वाले दुखपूर्ण है, तिसमे जीवो को आसक्त करके सुख 'मिलने का सहारा देकर सुखाशा तृष्णारूप ताप अग्नि को वे भ्रमिक मनुष्य कायम कर दिये। अर्थात उन्नति लाभ वृद्धि-विकास धनोपार्जन या सुखोपार्जन का लालच दे देकर विषय-बाहुल्य व्यापार को सचालन करके कामना ज्वाला को जड़वादी वृद्धि कर दिये। इस प्रकार वे सब जीवो को जला रहे है। ऐसे लोग अपने तो अविनाशी सत्य स्वरूप का विचार भूल ही रह है, साथ ही जबर्दस्ती सन्निकट वर्तियों को भी गाँस-फाँसकर उसी भ्रमरूप भौतिकवाद मे ही फँसाने की कोशिश करते रहते है। ये लोग मन की तृष्णा को विषयों से तृप्त करना ही सर्वस्व जीवन लाभ समझ कर यही परम पुरुषार्थ मानते है। जिस मन की कामनारूप

पिण्ड-ब्रह्माण्ड जड़ से पृथक है। विदेह मुक्ति में मिलन-विछोहादि किसी प्रकार की उपाधि नही, तहाँ सव सशयो का नाश है। दुख-सुख, हानि-लाभ शोक-मोह, अपन-परार रूप मनोमय में रमना-आसक्त होना ये सव मन सम्भव तहाँ नही, मात्र पारख गुण चेतन गुणी कहने को दो, वस्तु एक ही। एवं अछिन्न (नाश रहित) स्वरूप अचल स्थिर है॥ १३१॥

सत सार पारख स्वपद प्रिय अब आप अपने को किये।
दुशमन बने निज के सदा नहिं नेकु दाया कहुँ किये॥
साथी मिले जहँ तक कोई भ्रम खेद अपने को दिये।
गुरु दीन दुख हर पार जड़ भ्रम बंध नाश्यो शुभ्र लिये॥४॥

टीका—निज स्वरूप सत्य, त्रिकाल बाध्य रहित सदा रहनहार है। सर्व जड़ भास, अध्यास, अनुमान, कल्पना, परोक्ष प्रत्यक्ष मानना से भिन्न-श्रेष्ठ सर्व परीक्षक पारख स्वपद अपने आप है, ऐसा समझ-कर सर्व विजाति जाल से प्रियता हटा के अपने आप ही में प्रियता हम लगा लिये। अब इस समय अपने आपको हम इस प्रकार कर लिये, शुद्ध पारख रूप समझ के स्थिर हुये, यह गुरु शिक्षा सुनने का फल मैंने प्राप्त किया। गुरुदेव के मिलने के पहिले अनादि काल से हम अपने आप चैतन्य स्वरूप के दुश्मन बन रहे थे, विल्कुल अपने को विस्मरण कर जड़ विषयो के ही प्रवाह मे गोते लगा रहे थे। तनिक भी हम अपने ऊपर कृपादृष्टि नही किये। जिन कर्तव्यो से हमे सदा जड़ बन्धनों मे फँसकर कष्ट उठाना पडे, वही कार्य करते रहे। कभी भी हम जड़ मानना रूप अभिमान न छोडे, निर्मान होकर स्वरूप शोधन शुभ रहनी नही धारण किये। ऐसी मेरी पूर्व मे भूलकृत दुर्वुद्धि थी। इधर सहायता देने वाले जितने वक्ता, ज्ञानी, शिक्षक मिले सो सब जडवादी मिथ्यावादी मिले। विल्कुल गोचर तुच्छ चलित जड़ पंच विषयरूप प्रकृति को ही सत्य समझने वाले नाना

स्वरूपशोधन करके तिसकी स्थिति मे वीर के समान सद्गुरु कबीर साहेब और कबीर साहेब रूप सद् रहस्य सम्पन्न विवेक-वैराग्य युक्त संत होते आये और अब है, वे भी बन्दी मोचन कबीर है। ऐसे पारख बोध दाता सद्गुरु आप मुझ दास को जीव दान दिये। जड-तत्त्वों को मैं मानकर भोगार्थ पचते रहना, अर्थात पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु युक्त पाँचो विषय, नख-शिख, स्थूल-सूक्ष्म, शरीर के नाडी, मास, कही वीर्य, कही रक्त, कही तेज, कही मस्तक, कही नाभि, कही चाम, कही हृदय, कही प्राण तथा सर्व प्रकृति पूर्ण यत्र कला प्रकृति शोधन की विशेषता नेचर गोचर विकासवाद आदि भाव– प्रकृति कृत विश्वरूप ही अपना स्वरूप मान-मानकर अह-मम द्वारा तिसके अध्यास को ग्रहणकर अध्यासी जीव बारम्बार जडग्रन्थि मे बँध रहा है, यही भूत बंध है। सो सर्व भूत बध छोड़ाकर, जड से पृथक स्वय शुद्ध चैतन्य का निश्चय करा के अपने आप मे ठहरा दिये ॥ १३२ ॥

भूत बने जो जीव हैं, सोई बनावैं भूत।
विमल दृष्टि दै आपनी, कीन्ह्यो जीव सपूत ॥ १३३ ॥

टीका—भूत–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और इन्ही से बनी हुई जड देह को ही अपना स्वरूप मान बैठे। मै देह ही हूँ, मै प्रकृति रूप हूँ, ऐसे जड़ पक्षी जो नर जीव है वे ही अपने संग-रग से बाचाली-पना द्वारा बहका कर हम सब जीवो को भी भौतिकवादी बना रहे है और स्वरूपदेश से वे बिल्कुल अधःपतन कर रहे है। अब हे गुरुदेव! आप अपनी निर्मल पारखदृष्टि देकर भौतिक जड़ तत्त्वो की अहंता-ममता छोड़ाय मुझे सपूत कर दिये। पिण्ड-ब्रह्माण्ड जो जड़ का पसारा है तिससे मुझ जनैया को छोड़ा के सर्व दुर्गुणो को हटाने में शूर-वीर बनाकर साहसी विजयी बनाय कृतार्थ कर दिये, स्वरूपस्थिति मे तत्पर कर दिये। धन्य! धन्य श्री गुरु!! ॥ १३३ ॥

भूख को वुझाने अर्थ विषय भोगरूप भोजन देते-देते पहिले भूतकाल के राजे-महाराजे, अमीर-गरीब सब हार गये और अब वर्तमान मे अनेक वडे-वडे भोगी मनुष्य तन, मन, धन सब निछावर करके रात दिन विषय विलास करते-करते हैरान है। इतने पर भी वह मनोभूख अपार ही वढती जा रही है, शाति का स्वप्न में भी अनुभव नही होता। प्रत्यक्ष ऐसा देखते हुये भी "पतंग-ज्योति" न्याय फिर-फिर हठपूर्वक विविध प्रकृति शोधन कला बढा-वढा के विषय वाहुल्यता कर-करके शारीरिक, मानसिक, आत्मिक और परस्पर सत्यता-पवित्रता सर्व सद्भाव को नष्ट करके केवल वैर, विरोध, हिसा, छल, कपट, व्यभिचार, अनाचार असहन, वकवाद, निरंकुशता, गरूरता, फैसन, नशावृद्धिता, असयमता, वामाचरता, इन्द्रिय परायणता, हिसा आदि की वृद्धि करके सव कल्याण की सामग्री खो रहे है। हे गुरुदेव ! इस प्रकार का परिचय अवकी इस जन्म में जब कि घोर नास्तिकवाद चारो ओर छा रहा है ऐसे कठिन समय मे यथार्थ सब जड़वाद के दुखमय असत्य परिणाम को परखाकर आप ही एक गुरुदेव तिस महाजाल से छुडा लिये। जिस जड़ देह विषय प्रकृति जाल और वानी भास को मिथ्या दुखरूप समझ के उनसे हम अनादि काल से जन्म-जन्म मे कभी भागे नही, तिससे छूट नही पाये, न आगे छूटने की ही सम्भावना थी। किन्तु अब आप सद्गुरु मिलकर अपार दयादृष्टि करके हमे सव यथावत पारख देकर कृतार्थ कर दिये। अब आपका यह दास सदा के लिये आभारी, ऋणी रहेगा ॥ ५ ॥

हे गुरु मम वन्धन हर्‍यो, वन्दीछोर कवीर।
जीव दान मोको दियो, भूत वन्ध तजि तीर ॥१३२॥

टीका—गुरुदेव हमारी जड़ासक्ति दृढ मानना सुखाध्यास रूप वधनो को मिथ्या तथा दुख रूप परखा के छुड़ा दिये। इसी से आपका नाम बन्दीछोर है और काया के दुर्गुण आसक्ति जीतकर

टीका—हे बोध दायक, रक्षक, सद्गुरो! श्रेष्ठ पूज्य मान्य जो कुछ सर्वोपरि हो सो आपही हो, आपसे पृथक कोई हमारे इष्ट देव माननीय नहीं है। दया करके आप ही बदीछोर सत्य स्वरूप को समझाय बोध रहस्य देकर मुझे अपने पारख अचल भूमिका मे स्थिर कर दिये हो, अनिष्ट—धोखा-बंधन दुखप्रद सर्व मानन्दा परखाकर नष्ट कर दिये। धन्य! धन्य!! श्री गुरु!!! ॥ १३५ ॥

सवैया—

जो त्रिभु व्यापक सर्व महै तब क्यो नहि एक समान बिचारो।
बंध रु मोक्ष कहो किमि भिन्न जुताहि से भिन्नहि भिन्न सम्हारो॥
हानि रु लाभ जु सोचि के प्रेरक साक्षी मे साक्षी न अन्य रहारो।
ताहि ते जीव परे नहि अन्य जु आप हि पारख है निरधारो॥

छन्द—जेहि को बिलग थे ढूँढते बेचैन बिरहानल जले।
जो अनाशी एकरस अक्षय अमर पद कहँ मिले॥
गुरुदेव से भइ भेंट अब तो करि दया दीन्हा भले।
आप अपना सत्य चिद दे सर्ब धोखा अब टले॥

[चौपाई]

अब स्वतन्त्र पद जान्यो आपन। धन्य दयामय कियेउ कृपाघन॥
कोटि कोटि अवतार बखाने। कोटि कोटि सिद्धान्त लखाने॥
जीव रहित कहु कौन है साँचो। गुरु बिन बृथा भरम बश नाचो॥
सो सब दौड कुमड्कट मेटे। आपन आप स्वत पद भेंटे॥
भास लक्ष अनुभव जो दौरे। तेहि देखत सो पारख ठौरे॥
सोइ पारख लहि परम विरागी। शम दम करत साधना जागी॥
तन मन कसि वसि गुरु के ऐना। करत रहत निर्णय नित चैना॥
रमनि खिचाव वचन समत्यागी। मन त्रिकल्प तजि रहत अदागी॥
भूमि अग्नि जल वायू जेते। रबि शशि बीज बृक्ष जड़ तेते॥

कादर कादर सब बने, जहँ तक मन के देश।
ताहि नाशि न्यारा कियो, दै पारख उपदेश॥ १३४॥

टीका—जहाँ तक मनोमय मिथ्या कल्पना के देश-पक्ष मे पड़े हुये नर जीव है, वे सब कल्याण मार्ग से साहसहीन बन के कायरता धारण कर रहे है। आसक्ति और ममता वश वे हिम्मतपछर बन के, कही देह को ही जीव मान बैठे है, कही "भोगहु विषय कि त्यागहु इन्द्रिय, मोको लगै न रंचक रंग" एवं अलिप्त बन के जड़ाभ्यासी होकर वैराग्य स्थिति से ढीले पड़ रहे है। कही भगवान की माया बडी दुस्तर कह के, कही प्रकृति अनंत शक्तिमान भास करके ब्रह्माण्ड व गिरि समुद्र सूर्यादि की क्रिया से चकित होकर विश्व हम है, एव विश्वाभिमान तथा विविध यंत्र कलादि मे फूलना अनंत फैसन बाजी देश-देश के अनमिल भ्रामक समाचार देख-सुनकर भौतिकवाद की अनेक कल्पित गाथायें पढ-पढ के विषयासक्ति या धर्मभ्रष्ट हो जाना या सद् सिद्धान्त से पृथक अन्य कल्पित मत, पंथ, सिद्धान्त, ग्रन्थादि, जिस करके जीव का बन्धन दृढ हो सो सब मन का देश है। इसी में हम चक्कर काट रहे थे। सो मनःकल्पित जालों को ठहराने वाला जीव सत्य है और सर्व मनःकल्पित जाल कृत्रिम बंधनप्रद झूठा है। इस प्रकार आप श्री सद्गुरुदेव पारख सिद्धान्त की शिक्षा देकर सब मन का धोखा परखाये, साहस हीनता को नष्ट करके स्वरूपस्थिति हेतु सदाचरणों की प्राप्ति हित नवीन-नवीन बल बुद्धि साहस हिम्मत आप गुरुदेव भर दिये और कादरो की गति मति सग से न्यारा करा दिये। अब यह दृढ निश्चय है—"अजर अमर अविकार मैं, आदि अंत नहि मोर। करौ अचल संग्राम अब, कस न विजय रण होर।" ॥ १३४॥

जो कुछ हौ सो आप गुरु, और न कोई इष्ट।
राखि ठेकाने मोहिं को, कीन्ह्यो दूरि अनिष्ट॥ १३५॥

फल-छन्द

व्याप्य व्यापक अंश अंशी
कार्य कारण क्यों वनै।
जड दृश्य मे है ज्ञान नहिं
फिर क्यो जड़ो में तू सनै॥
हे सर्व ज्ञाता ज्ञाननिधि
सवसे पृथक आपै ठनै।
ये जीव शतक चिन्तन मनन
से शीघ्र सव सशय हनै॥

चौपाई

स्वतन्त्र जीव शतक जो ध्यावे।
निश्चय अमर स्थिती पावै॥
करतल दर्पण मुखहि देखावै।
परख रहस्य लहि योनि न आवै॥

सर्व प्रकृति तम करि इक ठौरी । ज्ञान प्रकाश न लेश दिखौरी ॥
तेहिते प्रकृति भिन्न यह चेतन । स्वतः आप जो देखत तन मन ॥
बृत्ति पार किमि मति ठहरावै । वृत्ति देखि सोइ स्वत' रहावै ॥
त्रिविधि बन्दना मन बच कर्मा । सकल वड़ाई देकर पर्मा ॥
पारख युक्त विवेक विरागी । तिनके चरण कमल लौ लागी ॥
इष्ट मूल निज रूप वखाने । जेहि के वल गुरु शिष्य प्रमाने ॥
गुरुदृष्टी बल निज को जाने । ठहरि रहे निज ही निज ठाने ॥
ताते गुरुपद से नहि कोऊ । वड़ो इष्ट कोउ कैसेहु होऊ ॥
साधन वोध परख सत्सगा । तेइ गुरु पूज्य जो स्थिति रगा ॥
जे सम संत परख युत रहनी । ते सब इष्टदेव भ्रम हरनी ॥

दोहा—गुरु से परे न दानिया, सवको दे गुरु बोध ।
गुरु समीप लहि गुरुपदौ, आगे कुछ नहि शोध ॥

॥ सद्ग्रथ मुक्तिद्वार का तृतीय पाठ स्वतत्र जीव शतक समाप्त ॥

सद्गुरवे नम

मुक्तिद्वार

चतुर्थ पाठ

बन्ध मोक्ष शतक

वन्दना साखी

जन्म मरण दुख हरण हित, धर्म दृढ़ावन हेत।
देह धरन फल भोग कहि, कीजै साधु सचेत ॥ १ ॥

टीका—जन्म-मरण दुख हरने के लिये और मनुष्य के धर्म—दया, दान, अहिंसा आदि पुष्ट करने के लिये, हे सद्गुरो ! हम अविनाशी जीव जिस प्रकार पुनर्जन्म ले-ले कर कर्मो के फल भोगते रहते है, वह सब हाल स्पष्ट समझाकर इस भूले-भटके जीव को जागृत कर दीजिये ॥ १ ॥

छन्द—"कर्म फल समझे बिना नहि धर्म मे कुछ प्रेम हो।
निज नित्यता जाने बिना नहि मुक्तिपथ का नेम हो ॥
परमार्थ पथ का नीव यहि है इष्ट पुष्ट कराइये।
हम सोवते भ्रम नीद मे बोधेश सन्त जगाइये ॥"

परख प्रकाश कबीर गुरु, सिद्धि करौ मम काज।
शरण शरण पद वन्दि तव, आपै मम शिर ताज ॥ २ ॥

हेतु-छन्द

जड दृश्य में सुख मानि के
हम नित्य जीव भ्रमन्त हू।
करि कर्म भोगत ताप त्रय
चवराशि योनि दुरन्त हू॥
नरदेह गुरुपद योग्य लहि
सब आश बीज दहन्त हू।
यह बन्ध मोक्ष विचार गहि
भव कूप सों न पड़न्त हू॥

साखी

जन्म घने दुख भोग वश,
पचत न मान्यो हार।
अजहूँ हित वच कान करु,
सहज होय निस्तार॥

टीका—अध्यास ही जीव के निरन्तर सामने वनी रहती है। कुछ न कुछ याद होता ही रहता है। उस अध्यास की उत्पत्ति इन्द्रियों से देख, भोग, अनुभव कर पच विषयों मे सुखासक्ति ही करके होती है। प्रत्यक्ष अंतःकरण लिये हुये मन-मानन्दियो से लसा हुआ मानन्दी द्वारा ही नख-शिख स्थूल देह को स्वतन्त्रता से चेतन जीव प्रेरणा करता (चलाता) रहता है॥ ३ ॥

एकात्र वासना जीव करि, बीज वासना केर।
देह बीज तन बीज है, बीज भूमिका हेर॥ ४॥

टीका—भोग सुख हेतु शुभाशुभ नाना क्रिया कर-कर के जीव वासना बीज को एकत्र कर लेता है। पुनः अन्य देह धारण करने मे वही वासना ही बीजरूप वन जाती है। तो एक वासनारूप बीज है, दूसरा देह बीज कहिये तीन खानियो के अनुसार स्थूल बनने का वीज। तीन खानियों मे माता-पिता के तन (देह) के रज-वीर्य को वीज जानना चाहिये। जिसमें वासना वश जाकर तीन खानियो मे देह धरता और जहाँ पर वासना वश आकर उष्मज देह जीव धारण करते है सो जल-थलादि योग्य भूमिका ही बीज है, ऐसा विवेक[1] से जाना जाता है॥ ४ ॥

१ टिप्पणी—जव तक कि जीव वासना वीज लेकर न आवै, तव तक वार-वार नर-नारी का संयोग होते हुये भी सन्तान नही होते। उष्मज खानि मे भी वासना युक्त जीव आये विना सव भूमिका रहते हुये भी हर समय तहाँ देहधारी कृमि नही होते। इससे स्पष्ट अनुभव हुआ कि जैसे आम की अँठुली मे जव तक जाली न पडे तव तक पूरा बीज तैयार नही होता, जाली और भीतरी सार भाग पुष्ट होकर पूरा वृक्ष वनने का हेतु वीज वनता है। तैसे योनिज मे वासना वीज और रज वीर्य ये दोनो मिलकर देह वनने का पूर्ण वीज अनुभव होता है तथा अयोनिज खानियो मे जीव वासना वश और योग्य जल, थल, भूमिका वीज ये दोनो मिलकर पूर्ण वीज पुष्ट होके तव तिनके देहो की रचना होती है, परन्तु आवागमन मे मुख्य हेतु नैमित्य वासना वीज ही है। उस वासना वीज को ज्ञानाग्नि द्वारा भुन देने से पुनर्देह नही होती।

टीका—पारख प्रकाशी, यथार्थ ज्ञान देने वाले कबीर साहेब का स्मरण करते हुए कबीर साहेब रूप दृढ विवेक वैराग्य निष्ठ पारखी संतो से निवेदन करता हूँ कि आप मेरे कार्य को पूर्ण कर दीजिये। पहिले जन्म-मरण कर्मफल रोग का ज्ञान कराकर पुनः उसकी निवृत्ति हेतु स्वरूपज्ञान सदाचरण मे दृढ प्रेम करा के अचल पारख स्वरूप मे स्थिर करा दीजिये, यही मेरा काज पूर्ण कराना है, सो आप की दया पर ही निर्भर है। आपके चरण कमलो की वदना करके वारम्वार आपकी शरणों के आधार हूँ। एक आप ही चैतन्य स्वरूप पारखी गुरु हमारे शिरमौर पूज्यपाद है, याते आपही से अर्जी है ॥ २ ॥

प्रार्थना

करूँ निवेदन विनय सहित गुरु, हाथ जोर शिर झुका-झुका के।
तुम्ही हो बोधक तुम्ही हो पालक, ध्यान धरूँ चित लगा लगा के॥टेक॥
कुछ ऐसे असमजस जिस से, जीव काज मम पछड़ रहा।
धीरवीर असमजस दलिमलि, सब विघ्नों को भगा भगा के ॥१॥
वन्ध मोक्ष का भेद कहौ औ, मुक्ति के साधक वेग भरौ।
डिगूँन किंचित इधर उधर भ्रम, खानि वानि तम नशा नशा के ॥२॥
शिष्य तो वनता आप क गुरुवर, पर मन मान विकाता हूँ।
अवतो शिष्य वनाओ दयानिधि, मान रोप मम हटा हटा के ॥३॥
श्री कवीर गुरु संत नाम त्रय, वस्तु समत्व परखपद है।
प्रेमदास बस मुक्ति लहै अव, शरण आप के रहा रहा के ॥४॥

प्रसग १—प्रत्यक्ष युक्ति युक्त आवागमन कर्मफल प्रतिपादन

अध्यास सामने जीव के, इन्द्रिन की आसक्ति।
अंतःकरण संयुक्त जिव, प्रेरक मन लासक्ति ॥ ३ ॥

वशिना ही है। किसी भी कार्य करने के पहिले सूक्ष्म अध्यास वेग वश अत करण मे इच्छा-वासना ही प्रथम उठाती है। फिर उस इच्छा-वासना के वश हानि-लाभ सोचकर अतःकरण मे सत्ता देता है और वासना के वश ही अदृश्य सूक्ष्म देह युक्त पुन स्थूल धारण करता है ॥ ६ ॥

छन्द—"इन सर्व इन्द्री के गुणो को जानता औ मानता।
पुनि सर्व विषयाध्यास को अन्त'करण मे ग्रासता ॥
ज्यों काष्ठ को घोडा बना बालक उसे गहि ठेलता।
त्यो आप चेतन जीव यह झूला झुलै निज खेलता ॥"

अरस परश सम्बन्ध तेहि, कर्त्ता जीव अनादि।
स्थूल लिहे भरमत फिरै, परख भये सब वादि ॥ ७ ॥

टीका—अरस परश कहिये परस्पर बीज वृक्षवत एक के बिना दूसरा न बन सके। इसी प्रकार स्थूल-सूक्ष्म का बीज-वृक्षवत अरस परश सम्बन्ध है। एक छोड़कर दूसरा नही। माली के समान स्थूल-सूक्ष्म फुलवारी को सीचने वाला निमित्त होने से कर्त्ता जीव अनादि चैतन्य पुराण पुरुष है। यह स्वय प्रत्यक्ष सबसे भिन्न रहते हुए भी अध्यास द्वारा अनादि काल से आज तक चार खानियो मे देह धर-धर के भ्रमते रहा है। यदि आज इस मनुष्य देह मे इसे ठीक-ठीक अपने स्वरूप की परख हो जाय और सब जगत के वासना बीज को ज्ञानाग्नि से भून डाले, तो पुन' स्थूल-सूक्ष्म के सम्बन्ध से अर्थात आवागमन से रहित हो जावे। ७ ॥

बीज से होवै वृक्ष जस, वृक्ष बीज बनि छोट।
देश काल जस योग्यता, उगत जाय तेहि ओट ॥ ८ ॥

टीका—जैसे केवल जड़ परमाणु सृष्टि में उनकी शक्ति समय सयोग द्वारा असख्य बीज वृक्ष होते ही रहते है। प्रत्यक्ष देखिये।

योनिज और अयोनि जो, दोनों विधि से देख।
स्वयं प्रत्यक्ष चैतन्य है, विवश वासना लेख ॥ ५ ॥

टीका—जो जो देह धारियो की देहे माता-पिता के सम्बन्ध से होती है, उन्हे योनिज कहते है, जैसे मनुष्य, पशु, पक्षी आदि खानियां। पिता-माता के बिना वासना अनुसार भूमिका समय सम्बन्ध से जिनकी देह बनती, वे अयोनिज कही जाती है। जैसे वर्षाती कृमि, फल-अन्न सड़ी-गली चीजो मे कृमि और देह मे गुर्वा-लिखादि। ये दोनो प्रकार से सूक्ष्म देह युक्त जीवों का स्थूल शरीर बनते दिखाई देता है। तहां अपनी-अपनी जड़ देहो के प्रेरक अविनाशी चैतन्य जीवो को अपने-अपने सदा रहने का भाव सबको स्वय प्रत्यक्ष है। प्रत्येक जीव अपना अभाव कभी नही देखते। अपना रहते-रहते सर्व कार्य करते है। पुन: वासना के वश रहे हुए प्रत्यक्ष देह धरते-छोड़ते जड़ देहो से भिन्न स्वय सत्य त्रिकाल अनुभव हो रहे हैं ॥ ५ ॥

भाव—देह से भिन्न स्वय सत्य चैतन्य, जीवों के अविनाशी रहने तथा कर्म करने, वासना टिकाकर पुनर्देह धरने मे कोई कल्पना अनुमान नही, बल्कि विवेक युक्त परीक्षा सिद्ध, प्रत्यक्ष एवं यथार्थ है।

द्रष्टा चेतन जीव यह, इन्द्रिन करत सचेत।
सुक्षम देह अदृश्य लै, विवश वासना हेत ॥ ६ ॥

टीका—स्वय चेतन जीव सबको देखने-जानने वाला होने से द्रष्टा स्वरूप है। यही स्वयं सबका जनैया जड़ इन्द्रियो को जान-मानकर चालू करता है। कैसे चालू करता ? कि चारो जडतत्व युक्त इन्द्रिय नख-शिख पच भोग सहित स्थूल देह है, तिसका मुखाध्यास रूप मुख्य अदृश्य वायु कला अन्य तत्वो के सूक्ष्म अश युक्त सूक्ष्म अत करण को साथ लिये रहता। अदृश्य (आँखों से न दीखने वाला) ज्ञान से ही दृश्य जैसे मनन संकल्पादि एव सूक्ष्म देह को साथ क्यो लिये रहता ? विचारने से इसमे प्रधान कारण—वासनाओ की

का सम्बन्ध किये हुये है। इस स्थूल के साथ ही में आगामी देह धरने के बीज—संस्कारों को अंतःकरण मे ग्रहण कर लेता है। कैसे ग्रहण करता है कि विषय सुखों के वश होकर इच्छापूर्त्ति हित पाप-पुण्य त्रिगुणात्मक जो क्रियाये करता रहता है, सो उन्ही शुभाशुभ कर्मो का संस्कार विषय सुखों के वश समग्र सूक्ष्म अदृश्य संस्कारों को अत करण में लिये रहता है ॥ १० ॥

लक्ष परख पारख बिना, जब तक नहीं अभाव।
दुःख न आवै देख में, तब तक कस ठहराव ॥ ११ ॥

टीका—नर-नारी, पशु-पक्षी आदि प्राणियों मे तथा धन-मान, असन-वसन स्थान आदि पंच भोग पदार्थ और मान-प्रेम आदि जगहों मे जहाँ-जहाँ सुख आनन्द मानकर लक्ष्य फँसने लगता है, तहाँ-तहाँ तिन पच विषयों मे अन्दर-बाहर चले हुए लक्ष्य को असत भ्रम दुख-रूप परख-परख के पारख बल से तिन अध्यासों का सर्पवत त्याग न किया गया और तिस चञ्चल सुख लक्ष्य में पूर्ण दुख देखने में न आया, तव तक स्वरूप मे स्थिति कैसे मिल सकती है ? तात्पर्य—यदि ऐसा न किया गया तो सस्कारों का नाश होकर अचल स्वरूपस्थिति नही प्राप्त हो सकती ॥ ११ ॥

कहब सुनब समुझब भले, संस्कार नहिं जार।
प्रेम मान के मोह वश, गहे अहं को भार ॥ १२ ॥

टीका—पारख ज्ञान रात दिन भले कथन करे, खूब खण्डन-मण्डन करे तथा श्रवण भी करे, समझे, शिक्षा भी करे, परन्तु बन्धन-रूप सुख सस्कारो को तब तक भस्म नही किया जा सकता जब तक कि वह जो औषध रूप ज्ञान को कथ-सुन के भली प्रकार समझ के सुख सस्कारो को सर्वथा नष्ट करने की दृढ फिक्र और सयम न रक्खे। इसका क्या हेतु है कि वह सुनते-समझते भी मनोनाश की दृढ फिक्र नही करता ? तो इसका यह भेद-मोह के वश वह यही कामना

छोटे वीज से वड़ा वृक्ष हो जाता है और वड़े वृक्ष का सारभूत छोटे से वीज मे सिमिट आता है। फिर वही वीज आँधी वायु वेग मे या जल प्रवाह के वेग मे अथवा किसी मनुष्य के सहारे या पक्षियो की वीट द्वारा अपनी योग्य भूमिका—क्षेत्र मे पहुँच के फिर ठण्ढी, गर्मी, वर्षा यथायोग्य समय के आधार से जाम जाता है। असंख्य वनस्पतियों का होना यह तो केवल जड़ की शक्ति है। ऐसे ही जड़ चेतन सम्वन्धी सृष्टि अर्थात देहोपाधि युक्त चेतन जीव अनादि काल से वासना वश रहे हुए स्थूल देह से कर्म वासना अंतःकरण क्षेत्र मे टिकाय स्थूल से सूक्ष्म तथा सूक्ष्म से स्थूल देह धारण करते रहते है ॥ ८ ॥

प्रसंग २—जीव का स्वरूप और वासना की उत्पत्ति-वृद्धि-संहार

वोध स्वरूप चैतन्य है, सवका जिसमें वोध।
अनुमान प्रमाण प्रत्यक्ष जो, सवका भासक शोध ॥ ९ ॥

टीका—जीव स्वयं वोध रूप चैतन्य है। सव पदार्थो का जिसमे वोध (ज्ञान) होता है, वही चैतन्य सवका जानने वाला है। वह आप ही सर्व पिण्ड-ब्रह्माण्ड का वोधक परीक्षक है। यह चेतन जीव ही तन-मन को जान-मान के सत्ता देकर प्रथम चालू करता, फिर इन्द्रिय-मन रूप साधन द्वारा प्रत्यक्ष पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु के पंच विषय गुण लक्षणो को ठहराता है। तत्पश्चात प्रत्यक्ष पंच विषयो के अन्दर ही नाना अनुमान, उपमानादि कल्पना खड़ी करके थापता, आप ही सवका भासक (प्रतीत कर्त्ता) तथा शोधन करने वाला स्वयं अपरोक्ष है ॥ ९ ॥

संस्कार तन साथ में, गहे देह को वीज।
कर्म शुभाशुभ जो करै, विषय सुखौं वशि लीज ॥ १० ॥

टीका—अनादि काल से यह वोध स्वरूप चैतन्य जीव देहोपाधि

कटै दबै नहिं नाश ह्वै, चक्रित लखि तेहि शक्ति।
कहाँ कहाँ भटकाय यह, करि जीवन आसक्ति ॥ १४ ॥

टीका—सो वासना न तो तीर-तलवार से कटती, न किसी पत्थर आदि से दाबे दबती, न अन्य उपायों से नाश ही होती। जन्म-मरण, बाल-युवा, वृद्ध-मृत्यु, सुख-दुख, हानि-लाभ, विद्या-अविद्या, स्त्री-पुरुष चार खानियों के विचित्र-विचित्र शरीरो की रचना ऐसी सकल सृष्टि का कोलाहल होने मे वासना इच्छा ही मुख्य हेतु देखी जाती है। इसकी शक्ति को देखकर बड़ों-बड़ो की बुद्धि चकित हो जाती है। यह जीव की कल्पना मात्र से उत्पन्न हुई जड-चेतन के सम्बन्ध मे मानन्दी मात्र है। ऐसा भेद न जानकर कोई इसे अनिर्वाच्य-अद्भुत रूपिणी दुरत्यया (न तरने योग्य) कठिन-प्रबल मानकर इसी के हाथ बिल्कुल बिक रहे है। अहो ! ऐसी कल्पित वासना जीव को लोक-वेद की आसक्ति रूप लगाम चढाकर कहाँ-कहाँ भटकाती ? अर्थात सर्व ऊँचे-नीचे मिथ्या जालो की ममता मे देह रहे तक बन्ध कराकर पुन: चारो खानियो के झूला मे झुलाया ही करती है और प्रत्यक्ष सरासर झूठी बातो को सत्य भास कराना भी इसी की शक्ति है ॥ १४ ॥

ब्रह्मवाद कहुँ तत्त्व जड़, कहुँ सविता उत्ताप।
लोकालोक अखोज मे, ईश भूत देवाप ॥ १५ ॥

टीका—इस सुखाध्यासरूप प्रबल वासना के कारण ही "सर्व खल्विदं ब्रह्म"[१] अर्थात यह सम्पूर्ण जगत ब्रह्म ही है, एव अद्वैतवाद।

अद्वैतवाद किसे कहते है सुनिये—

दोहा—"ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय नहि, ध्याता ध्येय नहि ध्यान।
कहनहार सुन्दर नहिं, यह अद्वैत वखान ॥ १ ॥
ब्रह्म एक कारण जगत, कारज है बहु भाँति।
चतुर खानि जग विस्तर्यो, लख चौरासी जाति ॥ २ ॥ (ज्ञान स०)

रखता है—कि हमसे सब प्रेम करे, मान बड़ाई का सुख देवे। इन दोनो के मोह रूप अन्धकार मे पड़कर तिसी प्रेम सुख और मान सुख ही के लिये सारा पुरुषार्थ करता है। संस्कार भस्म करने पर उसका ध्यान ही नही, यही हेतु सुखासक्ति निर्मूल नही होती। केवल वह कहने-सुनने-समझने का अहकार तो लादे है कि हमारे समान कोई वक्ता ज्ञानी नही, पर सब निरर्थक है ॥ १२ ॥

प्रश्न—कहना सुनना समझना कैसे फलदाई हो ?

उत्तर—हरदम भयकर जगत परवशता का दुख याद रक्खे, तिसकी निवृत्ति मे ही विश्राम जपै।

प्रसग ३—वासना की शक्ति आवागमन कराने मे हेतु

जब तक नाश न होय ये, तब तक रचना देह।
सरै गलै नहिं कहुँ बहै, जरै उड़ै नहिं नेह ॥ १३ ॥

टीका—जब तक पूर्व एकत्रित वासना बीजरूप आगामी सुख क्रिया को सद्बोधाग्नि से दग्ध करके नाश नही किया जाता, तब तक अनादि काल से आज तक जैसे देह धरते आये है, तैसे ही आगे भी यह जीव देह धरता-छोड़ता रहेगा। संचित वासनाये पारख रहस्य-रूप प्रबल अग्नि बिना न तो पृथ्वी मे सड़ गल सकती, न जल प्रवाह मे बह सकती तथा न अग्नि मे भस्म हो सकती, न वायु से उड़ सकती है। क्योकि रागरूप अदृश्य वासनाये जीव के भ्रम से तैयार है। वे जीव के साथ ही रहती हैं। उन्हे छोडे बिना उनका विनाश भी अन्य उपायों से हो नही सकता ॥ १३ ॥—यथा

छन्द—"तम के भगाने के लिये परकाश बिन सब युक्तियाँ।
काटै व ठेलै कोटि करि सब व्यर्थ होती उक्तियाँ ॥
निजरूप भूल से भर्म तम सो अन्य युक्ति न नाश हो।
जानि के निजरूप थिर हो ध्वंस शीघ्र जु भास हो ॥"

ग्रन्थ, विचित्र भेष समुदाय सब भ्रम कृत सुख की आशा से चैतन्य जीवो ने कल्पना कर लिये है ॥ १५ ॥

जानि सका नहिं आजु तक, कोई जीव यह भेद ।
पारख विना स्वरूप के, कैसे होय अखेद ॥ १६ ॥

टीका—अनन्त काल से आज तक कोई भी नर जीव खानि-वानी की धारा मे वहते हुये कल्पित धोखे का मर्म पारख विना नही जान सके, सर्व कल्पना कर्त्ता जीव अस्ति और सर्व कल्पना नास्ति एवं मिथ्या है स्वरूप ज्ञान की पारख प्राप्ति किये बिना दुख रहित जीव कैसे हो सकता है ? नही हो सकता ॥ १६ ॥

ब्रह्माण्ड से पृथक तीनो काल मे प्रत्यक्ष नही, तिसकी वासना मे विविध प्रकार पचता रहता है। कही साकार-निराकार रूप से विविध विधि ईश्वर को थापता रहता है। यथा - "परबश जीव स्ववश भगवंता। जीव अनेक एक श्री कन्ता।" पुन.—"जो गुण रहित सगुण सो कैसे। जिमि हिम उपल बिलग नहि जैसे ॥" किन्तु—चौपाई—जो अखण्ड नित सत्य अनादी। ताकर अश बनै किमि वादी ॥ निज निज मत पथ ग्रन्थ जो धारा। कर्त्ता शक्ति एक किमि प्यारा ॥ हिम ओला जड़ कारण कारज। तस चेतन नहि वनत बिचारज ॥" आदि विचार से कर्त्ता भी नही। अगर ब्रह्म को बडा माना जाय तो जीव को निकाल के ब्रह्म ईश पद निर्जीव जड ठहरेगे, याते जीव ही सर्वोपर सर्व व्यापक श्रेष्ठ है। जिसे वेदात भी कहता है "जीवो ब्रह्मैव ना पर" किंतु वह व्यापक नही ऐश्वर्य सयुक्त सोई ईश्वर, मनोमय सम्बन्धी सब प्रभुता जीव की। विधि हरि हरादि सव जीव ही के नाम होते है। वही प्रेत भूत देवी देवादि की कल्पना करते रहता है। इस पर गुरु ने कहा है—"माटी के करि देवी देवा, काटि काटि जिव देइया जी। जो तोहरा है साँचा देवा, खेत चरत क्यो न लेइया जी ॥" इत्यादि पारख की बाते न जानकर विषयो के वश पराधीन होकर ईश्वर, भूत-प्रेत, देवी-देवादि की अनेक प्रकार वढई-सोनार कुम्हार-दर्जी के सामान मन.कल्पित सूक्ष्म वासना गढ़-गढ़ के स्वप्न वत सबकी सत्यता का भास आप ही चैतन्य करता रहता है। ये सव बाते सुखाध्यास वासना की प्रवलता से प्रत्यक्ष नर जीव धारण कर रहे है।

कहीं पच तत्त्व के अलावा कुछ नहीं, एव जडवाद । कहीं सूर्य से जगत का निर्माग कहीं इस ब्रह्माण्ड से पृथक स्वर्ग, वैकुण्ठ, विहिस्तादि लोक जो कि अखोज—निसा-पता रहित है, कहीं अलोक कई शून्य से परे शून्याकाश, परमधाम, सत्यलोक, कहीं सर्वत्र व्यापक ईश्वर निराकर, कहीं अवतारवाद । कहीं भूत-प्रेत, चण्डी-चुड़ैल, डाकिनी आदि । कहीं विधि-हरि-हर, गणेशादि, इस प्रकार असख्य मत, पथ,

'ना कछु भयो न ह्वै न ह्वै है, जगत मनोरथ मात्र विलास ।
ता की प्राप्ति निवृत्ति न चाहत, ज्यों ज्ञानी के कोऊ न आश" ॥
(विचार सागर)

जल-तरग न्याय, सुवरग-भूपण न्याय सर्व जगत ही ब्रह्म है । ऐसी दशा मे बँधा कौन ? छूटा कौन ? वेदांत की अधिकाई क्या हुई ? श्री पूरण साहिब बीजक त्रिजा मे कहते हे—"अद्वैतज्ञान तो सबने कहा परन्तु द्वैत सबन को भासा । जो द्वैत भासा नहीं तो अद्वैत कहा का से ?" पुन. "पूर्वल जन्म भूमि" कहिये ब्रह्म निर्विकल्प अधिष्ठान सोई तो सब संकल्प-विकल्प जगत का कारग है । "बीज काहे क बोयो" जा बीज से नानात्व विकार को प्राप्त भया सो ब्रह्म और आत्मा क्यो बनता है ? "कहैं कबीर सुनो हो अवधू, आगे करहु विचारा । पूरग ब्रह्म कहाँ ते प्रगटे, कृतम कीन्ह उपराजा ।।" इसकी टीका मे कहा हे कि—गुरु कहते है कि हे अवधू ! आगे विचार करो, जो पूरग ब्रह्म-सच्चिदानन्द कहने सो कहाँ से प्रगटे ? सो अनुमान किया कौन ? कौन को आनन्द हुआ ? और ये वानी वेद-कितेब आदि कर्तव्य किसने किया ? कहाँ रहिके किया ? सब मनुष्य जीवो की कल्पना है इत्यादि । पूर्वोक्त प्रमाग ते प्रत्यक्ष भिन्न-भिन्न गुग धर्मयुक्त जड-चेतन कभी एक नहीं होते । जब पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ऐसे जड तत्त्व भी मिलकर एक नहीं हो जाते तो भला जड तत्त्वों के द्रष्टा अनन्त चैतन्य जीव कभी जड मे मिलकर जडरूप क्यो कर हो सकेंगे ? अर्थात तीनो काल मे जड-चेतन पृथक-पृथक होने से अद्वैतवाद कल्पना मात्र ही है । तो भी इस कल्पित ब्रह्म वासना की ऐसी प्रबलता हे कि सरासर मिथ्या बात भी जीव को परखने मे नहीं आती, बिना गुरु पारख । सूर्य मय उत्ताप से जगत उत्पत्ति की कल्पना मे पचता रहता । इसका यथार्थ निर्गय से खण्डन जगत अनादि शतक मे भली प्रकार देखिये । फिर कहीं ब्रह्म, स्वर्ग, वैकुण्ठ, कैलाश, गोलोक, बिहिस्तादि जो कि इस विश्व

योग्यता मिलते रहने को साधकता कहते है इससे यह अनुभव हुआ कि जब तक अयोग्य (बाधक) वस्तुओ का बीज मे सम्बंध न होवे तब तक उस बीज-वृक्ष के प्रवाह का विनाश नहीं होता । बल्कि सर्व साधक संयोग पड़ते रहने से बारम्बार बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज की प्रवाहिक धारा अनादि से आज तक तथा आगे भी चलती रहेगी, ऐसा प्रत्यक्ष सबोको दीख रहा है । इसी प्रकार स्थूल-सूक्ष्म दोनो जड़ देहों का प्रेरक—मालिक जीव सुख मानकर स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्म से स्थूल देह धरते रहता है । तो भूल-भ्रम-सुख आशायुक्त पाप-पुण्य विषयासक्ति क्रिया ही जीव के देह धरने छोडने मे साधक है । यह जब तक जीव न मिटावे तव तक उसके आवागमन का प्रवाह चलता ही रहेगा । जब जड़ अकूर्य मे साधक योग्यता पाते रहने से जड अंकूर्य का प्रवाह बद नही होता, तो जहाँ अविनाशी चेतन जीव और वासना से जड़ का सम्बध प्रवाह है, वहाँ विवेक वैराग्य युक्त जीव जब तक वासनाओ को ध्वस नही करेगा, तब तक देह धरना छूटना बन्द कैसे होगा ? ॥ १६ ॥

प्रसङ्ग ४ —कर्म होने भोगने का मुख्य हेतु

प्रकृति पार के कारणे, मन भ्रम देह अनादि ।
सुखाध्यास वश जीव है, करि करि ज्ञान तिसादि ॥ २० ॥

टीका—प्रकृतिरूप चार तत्व युक्त पच विषय कारणकार्य देह सहित सर्व इन्द्रिय गोचर पदार्थो को जानने वाला ज्ञाता चैतन्य सर्व प्रकृति से पृथक है । प्रकृति-पृथक चेतन होने ही से देहोपाधि युक्त निज स्वरूप को भूलकर जड़ भोगो मे सुख मानना रूप विपरीत निश्चय द्वारा भ्रमरूप मनोमय गढ लिया है । सो भूल से देह, देह से भूलरूप मानन्दी का सम्बन्ध प्रवाहरूप अनादि काल चला ही आ रहा है । सब देहधारी जीव प्रत्यक्ष सुख इच्छा के वश रहे हुये दीख ही रहे है । सो इच्छा संयुक्त बाहरी प्रकृति और सुख मानन्दी का

अछय साथ मिलि अछय यह, बिन साथी परकोप ।
वशि में जब तक जीव यहि, तब तक तन को रोप ॥ १७ ॥

टीका—सर्व कल्पना कर्त्ता चैतन्य जीव अविनाशी है। सो अपनी सत्यता-अक्षयता के साथ से यह भूल भ्रम अविद्या कृत सम्पूर्ण अध्यास भी अक्षय के समान हो रहा है। क्योंकि जिसके साथ से जो कल्पना तैयार है उस साथी के क्रोध युक्त दोष दर्शन करके हटाये विना उन वासनाओं का विनाश तीनो काल मे नही हो सकता। वल्कि जव तक अविनाशी जीव इस वासना के वश मे रहेगा तव तक इसका शरीर निर्माण होता रहेगा ॥ १७ ॥

सुखाध्यास को मित्र लखि, तन उतपति संहार ।
जब दुख देखा ताहि में, मेटि सोई बैपार ॥ १८ ॥

टीका—जितना पाँचों विषयो का सुखाध्यास टिका है, उन सव अध्यासो को जीव मित्र रूप सुखकारी देखता है। इस हेतु शुभाशुभ कर्मो द्वारा सुखाध्यास पुष्ट कर-कर वारम्वार देह धरता और छोडता रहता है। देह का वनना, तथा उसका नाश होना सुखाध्यास के कारण से ही होता है। जब कोई जिज्ञासु पारखी गुरु के सत्संग और स्वय विवेक वल से तिस सुख इच्छा मे दुख ही दुख पारख कर लेवे, तब वे सव इच्छा-कल्पना त्यागकर देह धरना और छोड़ना ये दोनो व्यापार मिटा देवेगे। क्योंकि यह नियम है-सुख लाभ की ओर दौड़ होती है, सुख की गुजाइश न दिखे तो वहाँ कौन ठहरेगा ? ॥ १८ ॥

बिन अयोग्य जड़ औग्यता, नहिं जड़ वीज विनाश ।
फिरि फिरि उगि संजोग मिलि, बीजहिं वृक्ष लखाश ॥ १९ ॥

टीका—अयोग्यता का अर्थ वाधकता। विशेप वाधक अंगार मे वीज डाल देने से भस्म हो जाता या किसी भी बाधक अश को पाकर सड-गल जाता। जितना-जितना सम शीतोष्ण समय योग्य भूमिका से वीज वृक्ष का प्रवाह चालू रहता, वह सव वीज की यथार्थ

टीका—ऊपर कहे हुए सब हेतुओ के होने से अविनाशी जीव देहोपाधि युक्त अनादि काल से कर्म करते और देह धर-धर के भोगते रहते है। सो प्रत्यक्ष तीन अवस्था युक्त मन मानन्दी सहित नर, पशु, अण्डज, उष्मज चार खानियो के देहधारी जीव कर्म फल ग्रसित दिखाई दे रहे है। कर्म करना-भोगनादि जड़ रूप पृथ्वी जल, अग्नि, वायु तथा इनसे बने असंख्य बीज-वृक्ष, घर-पहाड़ आदि में कही कुछ नही दृश्यवान है ॥ २२ ॥

जड़ कारण कारज सदा, चेतन चेतन ठान।
दोनौं पच्छ विरुद्ध हैं, विन पारख जहँड़ान ॥ २३ ॥

टीका—जड कारण से कार्य होते रहते है, कार्य मिटकर कारण मे लीन होते रहते, अत: चार तत्त्व कारण और तिनसे बने हुए बीज-वृक्षादि असख्य कार्य पदार्थ अनादि काल से प्रत्येक हालत मे जड के चिन्ह युक्त जड ही रहते और चार खानियो के देहधारी चेतन जीव ज्ञान मानंदी सयुक्त कही भी रहे हमेशा चैतन्य ही रहते। दोनो पदार्थ रात-दिन के समान बिरोधी धर्म वाले अनादि से स्थित है, परन्तु यथार्थ पारख पाये बिना ये जीव अन्य कर्त्ता तथा गोचर प्रकृतिवाद आदि की मिथ्या कल्पना कर-करके विवेक वैराग्य सदाचरण स्वरूप बोध आदि कल्याण की सब सामग्री खोकर जड वस्तुओ मे आसक्त हो रहे है ॥ २३ ॥

चौपाई

रवि शशि वायु नदी की धारा। महि मण्डल गिरि शिखर अपारा ॥
बीज वृक्ष सत्र शिशिर बसता। यंत्र मशीन सकल घट हंता ॥
द्रव्य रूप सोना तिय भोगी। वर्ण नाम बहु बिद्या रोगी ॥
गो मन गोचर जहँ लगि देखै। पुलकि पुलकि तेहि गहत बिशेषै ॥
निज स्वरूप तहँ अतिशय भूले। तन चमडी को सेवत फूले ॥

ज्ञान कर-करके नाना क्रियाओ को भी वे कर रहे हैं। तिस सकाम क्रिया के आधार तिनके अन्तःकरण मे सूक्ष्माध्यास भी पुष्ट होते रहते हैं ।। २० ।।

तन रचिता यहि हेतु से, जीवहि मुख्य रहाय।
क्रिया लोभ जड़ में सदा, सब कुछ करत बँधाय ॥ २१ ॥

टीका—उपरोक्त जड़ चेतन दोनो भिन्न वस्तु होने से, दोनो का भूलयुक्त मन भ्रम सम्बन्ध अनादि होने से, सुखाध्यास वश जीव रहने से तथा जीवो मे सर्व ज्ञान करने की शक्ति होने से अध्यासरूप वीज लेकर जीव स्थूल देह धारण करते रहते है। तिसमे जीव ही शरीर धरने मे कुम्हार वत प्रधान निमित्त है। इन्द्रियो से जो जड विषयों को देखने, सुनने, भोगने, चेष्टा उठाने मे आनन्द मान-मान के पदार्थों को प्राप्तकर तिसके भोगने मे सब प्रकार का प्रयत्न करना ये क्रिया है, सुख सम्बन्धी भोग पदार्थो का संग्रह करना लोभ है। तो जड़ पदार्थो की प्राप्ति और भोगों में सदा से वन्धमान होकर ये नर जीव सब प्रकार के पाप-पुण्य करते और तिसके परिणाम मे देहोपाधि के सर्व वन्धनों मे पड़ते रहते है ।। २१ ।। जैसे—

कवित्त—तुर्की अंग्रेजी पढे पर तावेदारी करे,
तीर तलवार सहे लोभ के तरंग मे।
चोरी बरवारी करे हिंसा नर नारि धरे,
लूट फूक ख्वारी करे सुख के प्रसंग मे।।
का-का न अनर्थ करे भोग क्रिया लत वश,
देखो छल पेंच जु विज्ञान के कुढंग मे।
ऐसे संस्कार वश वेर-वेर चार खानि,
देह धरि धरि के भ्रमत दुख जग में।।

करम करत भोगत रहत, जीव सदा यहि लाय।
यह सब जड़ कारज विषे, नाम मात्र नहि आय ॥ २२ ॥

भस्म कर देता है, परन्तु अगार पर डालने से अगार को बुझा ही देता है। इन बातो से सिद्ध हुआ कि प्रत्यक्ष इन्द्रिय गोचर भिन्न गुण धर्म युक्त पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चार तत्त्वो का भूगोल पिंड तथा सूर्य चन्द्र तारागण ये खगोल पिण्ड, ऐसे नाश रहित पदार्थ क्रियावान स्वरूप से अनादि है। क्योकि विवेक युक्त देखने से वे ज्यो के त्यो ऐसे ही सदा से रहे है। कार्यो की उत्पत्ति देख कारण तत्त्वो की उत्पत्ति का अनुमान करना भ्रम पूर्ण है। क्योकि कार्यो की उत्पत्ति को कोई न कोई देखता ही है। परन्तु कारण रूप चार तत्त्वो की उत्पत्ति तथा सर्वथा विनाश हम या कोई भी तीन काल मे देखे नही। इसलिये कारण तत्त्वो की उत्पत्ति या विकास मानना निर्मूल या कल्पित ही है। नदी मे बुदबुदा वत प्रवाही पदार्थो और अग्नि युक्त भाप से बने हुये अनेक तारे रोज ही रात्रि मे टूट के गिरते तथा वनते-विगड़ते दिखाई देते है, वे अग्नि आदि तत्त्वों के प्रवाही कार्य ही है। तैसे ही वृक्ष अन्नादि सर्व अंकुरज, शहर, गाँव, बगीचे, नदियाँ, शरीर आदि जड़ तत्त्वो के सयोग से बने हुए और जीवो की सत्ता से तत्त्वो की सहायता लेकर बनाये जाते हुये कार्य रूप अनेक पदार्थ प्रवाह रूप अनादि है। अर्थात कारण रूप जड़ तत्त्वों मे बारम्बार मिलकर उपजते-बिनसते चले आते है। ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव है। जब पृथ्वी तत्त्व के सम्पूर्ण अनन्त, अखण्ड त्रसरेणु मिलकर एकी त्रसरेणु होते कभी दीखते नही और एक त्रसरेणु से अनन्त रज होते नही दीखते, तो भला पृथ्वी से भिन्न जल राशि पृथ्वी से कैसे उत्पन्न हो सकता है ? इससे यह सिद्ध हुआ कि भिन्न धर्मी अनादि पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु एक दूसरे से नही हुये। न एक मे मिलकर कभी ये एक रूप ही हो सकते है। जब एक जड़ तत्त्व से दूसरा जड़ तत्त्व नही हो सकता, तो जड तत्त्वो के जड़ गुण-धर्मो से सर्वथा पृथक जड़ स्थूल-सूक्ष्म देहो के प्रेरक असख्य चेतन जीव सदा से रहे हुये

हड्डी मास मानि निज रूपा । यहि विधि जहँड़ि गयो दुख कूपा ॥
नर्क भोग करि वनत महाना । कहो याहि सम को अज्ञाना ॥
दोहा—क्षण वर्त्ती चचल दुरै, हृदय जनावत मोह ।
खर पाँखी सम विवश लत, सतन वाक्य न जोह ॥ १ ॥
जीव देह नहि पृथक लखि, सदाचार नहि ध्यान ।
दया धरम सत्सग नहि, कैसे होइ दुख हान ॥ २ ॥

जड़ और चेतन सदा से हैं

किसी भी कार्य को लीजिये, ककड, कोयला, कागज आदि को जलाइये काटिये पीटिये सुखाइये । देखने मे ये सब जल के भस्म हो गये । किन्तु उन्ही की सर्व सामग्री (चार तत्त्व के परमाणु) विवेक द्वारा देखने से ज्यो का त्यो बने रहते हैं । मात्र उनमे परस्पर विछोह हो जाना ही कार्य का नाश कहा जाता है । कोयला मे राख अश पृथ्वी का शेप दृश्य ही है और जल वायु अग्नि के अश निकल कर वातावरण मे फैल जाते है । एक वर्तन मे जल लेकर पृथ्वी का अश थोड़ी शक्कर या नमक डाल दे । घुल जाने के वाद दोनो जल ही रूप दिखलाई पड़ते, परन्तु उसी जल को औटाने से तिस जल की सम्पूर्ण भाप वन के वह जल तेज और वायु द्वारा ऊपर वातावरण मे उड़ गये वाद फिर पूर्ववत शक्कर या नमक पृथ्वी का भाग शेप रह जाता है, यह सवको प्रत्यक्ष अनुभव है । तालाव या नदियो का पानी सूखकर हमारे देखने मे नष्ट सा हो गया, परन्तु नष्ट नही हुआ । वह ऊपर अग्नि और वायु के साथ चढकर यथायोग्य सयोग पाकर वादल वन के फिर हमारे सामने आयेगा, या पाला, ओला आदि किसी न किसी प्रकार फिर नीचे आयेगा । इस प्रकार हमेशा नीचे-ऊँचे जल की क्रिया हुआ ही करती है । चाहे जहाँ जल रहे, परन्तु अपने शीत धर्म को कभी भी नही छोड़ सकता । देखो ! अग्नि से तपाया जल इतना गर्म हो जाता है कि अंगो पर पड़ने से तुरन्त

अविद्या को स्वरूपज्ञान द्वारा नष्ट करके सर्व कल्पित सुखाध्यास वीज को प्रवल ज्ञान-वैराग्यरूप अग्नि से भुन डाला जाय, तो जीव के सामने जीव को चंचल कराने वाली राग या सुख वृत्ति का अभाव होने से फिर प्राग्ब्धान्त में नित्य तृप्त जीव के चचल होने का कोई हेतु ही नही रह जायगा। क्योकि जड-चेतन का सम्वन्ध स्मरण मानन्दी द्वारा ही अनुभव है। तिस प्रारब्धिक मानन्दी सम्बन्ध त्याग होते ही सदा के लिये निरुपाधि ज्ञाता ज्ञान मात्र अचल हो रहेगा। वाकी सब जीव अपने-अपने कर्म वासनानुसार चार खानियो मे भ्रमण करते ही रहेगे। सम्पूर्ण जीवों के एक सरीखे कर्म, एक सरीखे भोग न होने से सम्पूर्ण जगत का एक समय मे प्रलय मानना निरा कल्पित है। इस प्रकार जड़ और चेतन अनादि भिन्न-भिन्न धर्म-गुण वाले नित्य रहे है और सदा आगे भी रहेगे। यही सर्वोपर न्याय संगत सिद्धात है।

छन्द—"कल्याण अर्थी शीघ्र इस सिद्धात को धारण करे।
सत्संग साधन हर्प युत मन वेग को मारन करे॥
नास्ति तन सुख स्वार्थ हित क्यो रत्न वय टारन करे।
ठीक निश्चय गहत ही सब विघ्न को जारन करे" ॥२॥

जो जानै यहि भेद को, भरम हानि पद प्राप्ति।
सफल तबै पुरुपार्थ सव, उलटा मार्ग तजाप्ति ॥ २४ ॥

टीका—पूर्वोक्त जड़ चेतन की यथार्थ भिन्नता, तत्वो मे परस्पर सम्बन्ध, पाप-पुण्य की कर्मवासना टिकने से परिणाम मे विविध देह धारण कर कर्मो के फल दुख-सुखादि का अनुभव करना तथा वासना त्याग से मुक्त हो जाने का दृढ़ निश्चय हो जाना ये सव बातें भली प्रकार जो समझ लेवे, तो उसके सम्पूर्ण सदेहो की निवृत्ति हो जाती। चौ०—"जड़ चेतन ये सतत अनादी। सुखाध्यास वश ग्रथि वतादी॥ ताहि परखि छोड़ै होइ थीरा। नि.सशय सिद्धात कवीरा॥" द्वितीय

है। वे तत्त्वो से हो ही कैसे सकते है ? जड कारण कार्यो मे प्रत्यक्ष ज्ञान धर्म का अत्यन्त अभाव है, अभाव के योग से भाव नही होता। अत: स्थूल-सूक्ष्म देहों के ज्ञाता तथा देह, मन साधन द्वारा पिण्ड-ब्रह्माण्ड के ज्ञान करने वाले हम सब स्वय प्रत्यक्ष ज्ञान स्वरूप चैतन्य जीव कही भी रहे हमेशा चैतन्य स्वरूप ही रहते है। हम सब चैतन्य देहधारी सोवे, जागें या घोर निद्रा, मुर्छा, आवागमन कर्म वश मनुष्य या चौरासी खानि, बन्ध या मोक्ष मे कही भी रहे कभी भी अपने अभाव का अनुभव नही करेगे । क्योकि भावाभाव वृत्ति का अनुभव कर्त्ता के सत्य रहे विना अनुभव कौन करेगा ? प्रत्यक्ष अपना साक्षी रहते-रहते ही तो सब स्मरणो के भावाभाव का ज्ञान होता है। मै नही रहूँगा, मै मरता हूँ ऐसा स्मरणो का ज्ञान तो वना ही है। कभी-कभी अपने मरने का भाव स्वप्न अवस्था मे होता रहता है। परन्तु स्वप्न मे मृत्यु का अनुभव कर्त्ता चैतन्य तो हमेशा वना ही है। मुर्छा या सुपुप्ति से जागकर कहता है कि मै बहुत सुख से सो गया। यहाँ तक कि अचेत हो गया। इस प्रकार अचेतवृत्ति का ज्ञाता तो तहाँ रहा ही है। मृत्यु अर्थात देह से विछोह होकर पुनर्जन्म मे जन्मे हुये बालको मे पूर्व जन्म के संस्कार वेग से ही हर्ष शोक, स्थनपान, भय, मन युक्त सुख-दुखादि भी प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है और भी पूर्व वर्णित सर्व कारणो से स्पष्ट हुआ कि हम सव चैतन्य जीव अजर, अमर, अविनाशी नित्य एकरमज्ञान मात्र अखण्ड जड़ तत्त्वो के द्रष्टा जड कारण कार्य से सर्वथा भिन्न सत्य स्वरूप है। किन्तु अनादि काल से अनादि जड़ तत्त्वो के पाँचों विषयो को पाँच ज्ञानेन्द्रियो द्वारा देख सुन भोग के सुख-मानकर तिनके सूक्ष्म जडाध्यास को सचित अदृश्य गुप्त रूप रख लेते है। जिससे फिर सूक्ष्म ह युक्त चार खानियो मे स्थूल देह धर-धर के त्रिविध दुखो को त्यक्ष भोगते ही रहते है। हाँ ! यदि निज स्वरूप की भूल रूप

वनते दिखाई देते है। परन्तु वहाँ सुख दुख होना हानि-लाभ मानना ये कुछ भी चैतन्य के लक्षण नही। किसी भी पदार्थ के जानने, मानने ज्ञानरहित होने से कारण कार्य बीज वृक्षादि प्रत्यक्ष जड़ है ॥२५॥

दुख छूटन के हेतु सब, करत काम तहँ जीव।
बिना प्रयोजन सोचि कै, नहिं परयत्न लखीव ॥ २६ ॥

टीका—जहाँ-जहाँ जीवो का वासा होता है, वहाँ शारीरिक तथा मानसिक किसी न किसी दुख छूटने अर्थ हमेशा सव प्रकार का वे चेतन प्राणी पुरुषार्थ करते ही रहते है और जिसमे वे दुख की निवृत्ति नही देखते, वह कार्य निरर्थक समझ के उधर का प्रयत्न कभी नही करते। ऐसा प्रत्यक्ष देखा जाता है॥ २६ ॥

दुख छूटन सुख चाह धरि, जहँ मानन्दी भौंर।
तहँ करम को भोग है, जहाँ करम करि गौर ॥ २७ ॥

टीका—दुख छूटने की तथा सुख प्राप्ति की जहाँ चाहना रखते, जहाँ ज्ञान हो-होकर सम्पूर्ण मनोमय कोष का घेरा—स्थान हो, जहाँ मनोमय अन्त.करण मे एक न एक स्मरण उठता रहे नदी भौर न्याय, इसे मानन्दी भौर कहते है। इस प्रकार कर्म करना और भोगना तहाँ ही है जहाँ कर्मो का ज्ञान हो-होकर वारम्बार अंत'करण मे गौर (चिंतन) होता है। भाव यह है कि पूर्वोक्त लक्षणयुक्त मानदी करने वाले चैतन्य जीव ही कर्म करते-भोगते है, जड़ तत्व अकूर्यादि पदार्थ नही ॥ २७ ॥

यहिते होवै करम तहाँ, मानि मानि दिन राति।
बिन माने नहिं कर्म कोइ, यहिते भोग लहाति ॥ २८ ॥

टीका—इसलिए कर्म करना वहाँ ही होता है जहाँ दिन-रात,

१ टिप्पणी—"बीजवृक्ष अंकुरज पापाना। तत्वन सयोग सु उत्पाना ॥ ज्ञान क्रिया न अवस्था ताही। याते सव निर्जीव रहाही ॥ वीज वृक्ष सह सड़ि गलि जावैं। अकुरज जड़ न चेतन गावैं ॥ (श्री काशी साहेब)

'पद प्राप्ति—' अमृत पारख स्वरूप स्थिति मिल जाती । चौ०—मिलन विछोह रहित सम सुख में । आपै आप रहत निज पद मे ।।" तृतीय "सफल तवै पुरुपार्थ सव—" चौ०—"जनम जनम को यत्न सफल सव । सदाचरण युत निज मे थिर अव ।।" चतुर्थ 'उलटा मार्ग तजाप्ति—' चौ०—"दुरे सकल विपरीत कुमारग । स्ववश स्वतन्त्र सहज शुभ धारग ।। सकल पाप हिंसा अनरीती । छोड़ि सहज निर्भार अभीती ।। यहि ते वोध प्राप्ति करि लीजै । निश दिन वोध रसायन पीजै ।। इस प्रकार जीवन फल वोध प्राप्ति ही है, तिसे महान यत्न से ग्रहण कीजिये ।। २४ ।।

शब्द

गुरुजी को ज्ञान सदा सुखकारी ।। टेक ।।
ज्यो केहरि निज रूप भुलायो, भेड़िन संग दुख पारी ।
दूसर केहरि रूप लखायो, करि निरवंध सदा री ।। १ ।।
तरु वट शाख वीच मणि जैसे, छाया जलहि लखारी ।
इक दरिद्र डुवकी कितनो दिन, हाथ न आय दुखारी ।। २ ।।
कोऊ साधु मिलि लक्ष घुमायो, मणि लहि मोद अपारी ।
जड तत्वन से भिन्न कियो गुरु, पारख पद अविकारी ।। ३ ।।
माता ढिग वालक ज्यो खेलत, अते नयन नचारी ।
दौडि दौड़ि वह ढूडि न पावत, सँभरत लक्ष मिलारी ।। ४ ।।
मोह दत भ्रम गज मर्दन करि, चरण शरण ले तारी ।
प्रेम सहित गुण ध्यावत निश दिन, गुरु गुरु जय वलिहारी ।। ५ ।।

जड़ कारण सम्मेल से, वनत गुणन ते देखि ।
सुख दुख हानि लाभ नहिं, जानि मानि त्रिन लेखि ।। २५ ।।

टीका—जड़ कारण—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये भिन्न-भिन्न चार तत्व है, तिन्हो के परस्पर सम्मेल (सयोग सम्वन्ध) से पंच विषय-युक्त असंख्य पदार्थ वीज-वृक्ष, घड़ा-घर, वस्त्रादि जड़ कार्य पदार्थ

और तन-मन दमनरूप तप व कोई नर जीव दया-दान की रीति सम्हालते है ॥ ३० ॥

दया-दान पुनीत कर्तव्य

दृष्टात १—एक सेठ का मकान किराये पर चलता था। सेठ जी छ छ महीने के बाद किराया वसूल करने आते थे। अबकी बार सेठ जी आकर टिके हुये यात्रियो से किराया वसूल कर लिये। एक महात्मा भी उसीके एक कमरा मे कई महीना से आ टिके थे। सेठ ने उनसे भी किराया माँगा। महात्मा जी कहे मेरे पास कुछ है ही नहीं। सेठ चुप होकर घर चला गया। सेठानी के पूछने पर ज्ञात हुआ कि महात्मा किराया नही दिये। सेठानी बोली—उन साधु से भी किराया लिया जाय। ऐसा सोचकर दोनो फिर मिलके महात्मा के पास आकर किराये की याचना किये। महात्मा जी बोले—रुपये के बदले मे अन्य सामान मै तुम्हे दूँ तो मंजूर होगा या नही? दोनों बोले—क्यो नही? महात्मा बोले—अच्छा! तुम दोनों को एक-एक सुई देता हूँ, यह सुई उस मौके पर मुझे दिखाना, जब तुम दोनो मर के परलोक रूप पुनर्जन्म की तरफ चलने लगोगे तब यह सुई लेते आना और स्वर्ग द्वार पर मुझे दिखा देना, ताकि मै स्वर्ग का दरबानी बना हुआ तुम दोनो को पहिचान कर स्वर्ग मे जाने की आज्ञा दूँगा ओर तुम बहुत काल तक स्वर्ग सुख का असीम आनन्द प्राप्त करोगे। यम त्रास का भय तुम दोनो का मिट जायगा। दोनो मजूर किये। थोडी देर मे सेठानी का विचार पहुँचा कि इस सुई को अपने साथ मै कैसे ले जा सकूँगी? हाथ पाँव तो यहाँ ही छूट जायँगे। आँख, कान, त्वचादि और इन्द्रिय सम्वन्धी वस्त्र, सन्दूक, घोड़ा, हाथी तो सब यहाँ ही रह जायेंगे। सुई किस प्रकार मै ले जा सकूँगी? सेठानी ने महात्मा जी से पूर्वोक्त विचार प्रकट किया। महात्मा बोल उठे कि देखो? जब दोनो एक सुई भी परलोकरूप पुनर्जन्म में

तत्व-पदार्थ, पाँचो विषय, सुख-दुख, देह-गेहादि का ज्ञान हो-होकर मानन्दी सम्बन्ध है। प्रत्यक्ष देखिये ! देहधारी चैतन्य जीवो मे हानि-लाभ माने बिना कोई कर्म होते ही नही। इससे जाना गया कि जान-मानकर ही सब प्रकार के कर्म चैतन्य जीव करते रहते है, वे ही सस्कार पुष्ट करके सस्कारो के परिणाम अधीन दुखादि कर्मफल भी प्राप्त करते रहते है ॥ २८ ॥

विषय भोग हित काम जो, करत जहाँ तक जौन।
दुख सुख तेहिके हेतु को, लखि जीवन को ठौन ॥ २९ ॥

टीका—विषय भोगो के लिये जहाँ तक जो कुछ कार्य जीव करते है, सो इन्ही विषय पदार्थो की प्राप्ति मे जो बाधक होते, तिनको तो मन वच कर्म से वे दुख देते और जो प्राणी विषय पदार्थो की प्राप्ति मे सहायक होते, तिसे सुख देते। इस प्रकार पच विषयो के लिये ही एक दूसरे को दुख-सुख देते रहते है। इस प्रकार जान-मान के परस्पर दुख-सुख देना रूप क्रिया ठान लेते—बना लेते है ॥ २९ ॥

ये सब करम सरूप है, जीव बिना नहिं होय।
नेम धरम आचार तप, दया दान करि कोय ॥ ३० ॥

टीका—विषय सुख सिद्धि अर्थ दूसरे को सुख-दुख पहुँचानारूप पुण्य-पाप करना ये सब आगामी कर्म का स्वरूप जानिये। सो अविनाशी सर्व ज्ञाते चेतन जीवों के बिना केवल जड़ कारण-कार्य बीज वृक्षादिकों मे कही भी विषयासक्ति रूप कर्म नही है और जहाँ देह-युक्त अविनाशी चेतन जीव रहे हैं तहाँ ही विषयासक्ति रूप कर्म सस्कार धारण होते है। देखो ! चेतन प्राणी ही स्नान-ध्यान, पठन-पाठन का विविध नियम धारण करते तथा सब प्रकार दया, क्षमा, सत्य, शील, धीरता, परोपकारादि धर्म अगो को सोच समझ के नर देहधारी चेतन जीव ही धारण करते तथा पवित्रता आदि विविध

चाहूँ तो ये भी इन दान-धर्म के परिणाम मे प्राप्त होंगे। कहा भी है दोहा—"तुलसी यह तन खेत है, मन बच कर्म किसान। पाप पुण्य दो बीज है, बवै सो लवै निदान॥" यह बात सुनकर उस मनुष्य का भी दया धर्म परोपकार में मन लग गया। बुद्धिमान सोचते है कि मुझ अविनाशी जीव को वासना वश जन्म ही लेना पडेगा, तो उत्तम-उत्तम पुण्य सस्कार क्यो न बटोरे, जिससे कि मुझे दुख द्वन्द्व न हो। अधिक पुण्याचरण से फिर हृदय स्वच्छता द्वारा नित्य स्वरूप मे टिकाव हो जाय, तब तो कार्य ही पूर्ण हो जाय। अत· तन, मन, वचन से पुण्यमार्ग आचरण करना प्रधान लक्ष्य होना चाहिये।

कहुँ अनुमान यथार्थ कहुँ, कहूँ देह को पच्छ।
करत शुभाशुभ कर्म नर, बशि मानन्दी लच्छ॥ ३१॥

टीका—कोई अनुमान से कर्त्ता धर्त्ता, देवी, देवादि मान के और कोई ठीक-ठीक कर्म फल आवागमन आदि निश्चय कर उत्तम-उत्तम कर्म करते तथा वहुत इस अशुचि मल, मास पूरित रूप चर्म देह के अंग हृदय नाभी मस्तक वीर्य या शून्यादि का पक्ष लेकर जड़वादी बनके राजसी, तामसी क्रिया करते। भाव यह है कि अपने-अपने निश्चय के आधार पर सुख मानन्दी के वश हुए अपनी-अपनी सुख मानन्दी लक्ष्य की पूर्ति हित भिन्न-भिन्न जीव दया परोपकारादि रूप पुण्य कर्म तथा कितने नर-जीव हिंसादि आसक्ति रूप पाप कर्म करते रहते है। इस प्रकार अपनी-अपनी सुख मानन्दी के लक्ष्य से सर्व नर जीव कम विशेष शुभाशुभ कर्म करते। इस प्रकार सुख मानन्दी से बाह्य पाप-पुण्य रूप क्रिया और पाप-पुण्य क्रिया से मन मानन्दी की पुष्टि होती रहती है॥ ३१॥

मानन्दी केर समूह यह, स्थूल देह रचि जीव।
बिन मानन्दी नहि बनि सकै, मानव अग्र लहीव॥ ३२॥

टीका—मानन्दी का समूह यह स्थूल देह जीव ने रच रक्खा

न ले जा सकोगे, तो.इस लाख करोड़ की सम्पत्ति जो तुम लोभ वश जमा कर रक्खे हो, कैसे ले जा सकोगे ? सोचो तो सही ! फिर तुम्हारे साथ क्या जायेगा ? जैसे वायु गन्ध को उड़ाती है, जैसे पृथ्वी अनन्त घास बीज का सचय करती है, उसी प्रकार तुम्हारे सूक्ष्म अन्त.करणरूप क्षेत्र मे शुभाशुभ क्रिया के सस्कार ही साथ होकर सुख दुख भोगायेगे । ताते पुण्य क्रियाओ का सचय करो । जीव दया, सत्पात्र को दान, सन्त सद्गुरु की शरणागत, सत्सग, दीन दुखियो की रक्षा, परस्पर शील का वर्ताव आदि पुण्य क्रियाओ द्वारा अन्त करण शुद्ध करके अविनाशी स्वरूप का वोध प्राप्तकर आगामी सुख शाति का उपाय कर लो । "जो कुछ सुकृत नही वनि आई । तौ दुख मे को होय सहाई ॥" इत्यादि शिक्षा सुन कर सेठ -सेठानी महात्मा जी के चरणो मे गिरकर क्षमा माँगे, उस दिन से महात्मा को गुरु वनाया । दया, दान, धर्म, परोपकार, सतगुरु की सेवा-भक्ति मे चित्त लगाकर अल्पकाल ही मे अविनाशी स्वरूप का वोध प्राप्त करके नित्य तृप्त हो रहे ।

२—एक सेठ जी तमाम छाता, वहुत से कम्वल, वहुत सी धार्मिक पुस्तके और भी खाने पहिनने के समान कई एक गाडियो मे लदवा रहे थे । एक मनुष्य ने पूछा कि सेठजी ये समान कहाँ ले जा रहे हो ? सेठ ने कहा—इन सव सामानरूप बीजो को सत पात्र रूप क्षेत्रों मे वोने ले जा रहा हूँ, जो समय पर अनेक गुना फलरूप मे प्राप्त होगे । वह मनुष्य वोला—कही पुस्तक, छाता,, कम्वल, वस्त्रादि भी वोये जाते है ? सेठ जी वोले—हाँ ! ये भी वोये जाते है । देखो ! ये सव अमुक सन्त समाज स्थल मे ले जाता हूँ, वहाँ नाना प्रकार दान-पुण्य, सेवा जो मै करूँगा उसका संस्कार वीज मेरे हृदय मे टिककर मेरे भावानुसार वे सव पुनर्जन्म मे सुख सामग्रीयुक्त फल-दाई होवेंगे । यदि मै निष्काम भावनायुक्त स्वरूप ज्ञान मे स्थिति

छन्द—"लूट फूँक अनीति हिंसा क्रोध लोभ ये तामसम् ।
शौक स्वाद जु मान तृष्णा द्रब्य सग्रह राजसम् ॥
गहि शील कोमल धीर सुख हित पुण्य भाव ये सातसम् ।
त्रय गुण क्रिया युत जीव यह सुख दुःख भोगत पाशकम् ॥"

बहुत मानसिक रोग हैं, भोगत भोग नवीन ।
प्राप्ति अप्राप्तिहिं जलन हिय, सदा रहन मन खीन ॥ ३५ ॥

टीका—काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, आशा, तृष्णादि ये मन के रोग बहुत-बहुत है । सेज-स्वाद, नाच-रग, सुगंध, मान-ऐश्वर्य, बनितादि भोगो को भोगते रहने से मन के रोग नवीन-नवीन बढते रहते है। वे सर्व भोग सुख प्राप्ति-अप्राप्ति दोनों हालत मे हृदय को जलाते है। सब भोग सम्पत्ति जिसे प्राप्त है, तिसके हृदय मे तो यह जलन होती है, कि और कोई आगे सुख भोग होता तो उसे भोगते अथवा इन भोग सुखो से कभी मेरा बिछोह न होता । ऐसी-ऐसी अपार तृष्णाग्नि-चिताग्नि मे वे सेजों पर विषय विलासो के मध्य पड़े-पडे जला करते । बनिता, वित्त, ऐश्वर्य, रथ, मोटर बाहन आदि भोग सामग्री जिन्हे नही प्राप्त है, वे अपने को दीन दुखी अभागा मानकर त्राहि-त्राहि करते रहते है। इस प्रकार जगत सुख की प्राप्ति और अप्राप्ति दोनो में हमेशा आशा-तृष्णा करके मन को दुखी करते रहते है, सो प्रत्यक्ष ही है ॥ ३५ ॥

बिन बिबेक कोइ ना सुखी, बिना किये सतोष ।
सबको देखौ हाल यह, पढ़े अपढ़ मन कोष ॥ ३६ ॥

टीका—(१) जड़-चेतन की भिन्नता का ज्ञान और (२) जीव को वासना वश पुनर्जन्म लेकर कर्म फल का भोक्ता होना निश्चय तथा (३) वर्तमान मे विषय सुखो के त्याग द्वारा परम शाति की प्राप्ति (४) वासना ध्वस से मुक्ति का निश्चय, (५) वासना ध्वस करना ही मुख्य कार्य समझ के सत्साधन मे तत्पर होना, इस प्रकार

है। मानन्दी के विना शरीर हो सकता नहीं, काहेते कि वर्तमान मे यह प्रत्यक्ष अनुभव है। समग्र देहधारी के सनमुख मानन्दी ही हमेशा ग्रहण रहती है। इसलिये शुभाशुभ सकाम कर्म मानन्दी अनुसार ही सूक्ष्म देह पुष्ट होके स्थूल देह की रचना होती रहती है। सद्गुरु कवीर साहेव भी कहते है 'साखी—वाजीगर का वाँदरा, ऐसा जीव मन के साथ। नाना नाच नचाय के, ले राखे अपने हाथ॥" एवं झूला वेग न्याय यह जीव आपही मानन्दी दृढ करके आपही नाच रहा है। सो प्रत्यक्ष ही है॥ ३२ ॥

पक्ष छोड़ि देखौ भले, करि विवेक दिल माहिं।
तब जानौ यहि भेद को, सत्य सार दरशाहि॥ ३३॥

ठीका—पक्षपात त्यागकर जव हृदय मे इस वात का गम्भीर विवेक करो तव जड़-चेतन की भिन्नता, कर्मफल भोग, मोक्ष आदि का अमृत विचार, सत्य सार सिद्धात समझने मे आयेगा। पक्षपात त्यागकर विवेक किये विना कभी सूक्ष्म वात समझ मे नही आ सकती। पक्षपात कहिये विद्या मद, कुटुम्ब मद, देह मद, महत्ती मद, रूप मद, धन मद, वाक मद, स्त्री मद। तात्पर्य यह है कि भासमान नश्वर प्रपच वस्तुओं का मद सोई पक्ष, तिसे त्यागकर समझ मे आ जावे॥ ३३ ॥

देह भोग भोगन सवहिं, परत जहाँ तक जीव।
रजो तमो औ सातसी, बचत न कोई रहीव॥ ३४॥

टीका—जहाँ तक देहधारी चार खानियों के जीव है तहाँ तक सवो की देहे कर्म-मानन्दी युक्त वनने से सवो को पाप-पुण्य कर्म अनुसार देह धर-धर के दुख-सुख अवश्य भोगने पड़ते है। मुख्य राजसी, सातसी, तामसी तीन ही लक्षणयुक्त सव जीव दिखाई दे रहे है। तीनो मे कर्म फल भोग रहित कोई भी नही है, सवको प्रारब्ध भोगना पड़ता है॥ ३४ ॥

ऐसा उपाय ढूँढ़ता रहता हूँ, कि युवतियाँ मुझ पर बलि-बलि जायँ, मगर उपाय नही सूझता। बैठे-बैठे सफेदी पर काले रंग की कलई मढ़ता रहता हूँ, क्या करूँ हड्डी गल रही है, कमर झुक गई है, सारी इन्द्रियाँ मुर्दावत हो गई है फिर भी वाल चेष्टावत वासनाये दुख दिया करती है। जरा हँसी मजाक गप सप कर-करके जी ठडाता हूँ किन्तु चिन्ताये मुझे जलाती रहती है। वह मनुष्य बोला–यह सब आपकी आदते इस जन्म से लेकर अनेक जन्म तक इसी प्रकार कष्ट देती रहेगी, अत. समझदार को युवावस्था में ही चेत करके विपयो की आदत न डालना चाहिये और पडी लतों को छुडाने हेतु जब से चेतै तभी से ही १–सत्सग, २–सद्ग्रंथ, ३–सद्धर्म, ४—संयम, ५—सदाचार, ६—सजग, ७–सद्गुरु सेवन, ८–स्वरूप स्थिति। ये अष्ट सवर्ग द्वारा मुक्ति दशा पुष्ट करते रहे। नही तो भोगासक्ति में अनन्त कष्ट मिलेंगे। यथा—दोहा–"सदा कमी मन नहि मरे, बढ़ि है कपट अपार। पॉच छली तोहि चूसि है, कुटि है दस लगवार॥" काम क्रोध मद राग और लोभ ये पंच छली है, दस इन्द्रिय-विपय ये लगवार समझो।

प्रसङ्ग ५—अदृश्य प्रारब्ध की प्रबलता वर्णन

मित्र बिछोह औ नारि नर, चहे बिना ह्वै जात।
चलत न कोइ उपाय तहँ, सोचि सोचि पछितात॥ ३७॥

टीका—प्रेमी मित्र का साथ छूट जाना, प्राणप्रिय स्त्री तथा स्त्रियो के लिये पुरुष का विछोह हो जाना, ऐसी इच्छा न करते हुए भी ये सब विपरीतता भोगनी पडती है। तहाँ पुरुषार्थ कोई काम नही देता, अन्त मे सोचि-सोचि पछतावा ही हाथ आता है॥ ३७॥

प्रारब्धि रूप तनजानिये, पलटि सकै नहिं कोय।
रूप कुरूप औ नारि नर, और को और न होय॥ ३८॥

वोध की पच सामग्री ग्रहण करना विवेक का स्वरूप है। ऐसे विवेक विना कोई भी सुखी नहीं हो सकता। विवेक से ही विपयों को दुख पूर्ण जानकर प्राप्त भोग सुखों का तो कत्तई त्याग होता है और अप्राप्ति की इच्छा का दमन होता है, यही संतोप का स्वरूप है। ऐसे सतोप युक्त कामनाओ का त्याग किये विना विपय विलासो से पूर्व मे कोई सुखी नही हुआ, न अव है, न आगे होगा। प्रत्यक्ष देखिये तो गरीव-अमीर, पढ-अपढ, चतुर-मूढ, अज्ञानी-विज्ञानी सर्व विवेक युक्त संतोप गहे विना मन-मानन्दी के घेरे में पड़कर काम, क्रोध, मद, मत्सर द्वारा असह पीड़ा को प्राप्त हो रहे है ॥ ३६ ॥

कवित्त

"इन्द्रिन के भोग हेतु रचत शरीर ठाठ,
काम वश नारि से अभेद हो पचतु है।
क्रोध वश घात करै लोभ वश संग्रह में,
मोह वश पाप वहु हाहा से रुदतु हैं॥
छकि छकि विपय को पान करै मदमस्त,
वावला से भ्रमत न शांति को लहतु है।
गोवर के कीट सम सर्व मन सुख ताको,
विद्या वुद्धि चतुर हो दुख ही गहतु है॥

दृष्टात—एक धनवान चचलराम पढा लिखा होने पर भी सत्सग न मिलने के कारण वहुत मदमस्त था। जवानी भर वहुत-वहुत विपयासक्त रहा। अव अस्सी वर्प की उम्र में भी अलवट रखाय खिजाव करता। एक दिन एक मनुष्य ने पूछा—सेठ जी! अव "स्याही गई सफेदी आई, दिल सफेद अजहूँ न हुआ" किस हेतु आप खिजाव करते है? सेठ वोले सुनिये महाशय! देह ही तो शिथिल हो गई किन्तु "मर्नाह दिलासा दूनी हो"। क्या करूँ कोई

उल्टे बाधा करने वाले उठ खडे हो जाते हैं, यह प्रत्यक्ष संसार में देखा जाता है ॥ ४० ॥

सर्प बीछि भैंसा वृषभ, कष्ट देत बिन हेत।
सजग रहत तिनसे सबै, तदपि घात बिन चेत ॥ ४१ ॥

टीका—देखिये ! सर्प-बिच्छू, भैंसा-बैलादि से दुख पाना कौन चाहता है ? फिर भी बिना प्रयोजन, बिना प्रयत्न ही वे दुख दे देते है। यहाँ तक कि घातक जन्तुओं से सब सावधान रहते है, तो भी अति प्रबल कष्ट रूप प्रारब्ध उदय काल मे अपने को पता नही लगना और वे घात कर जाते हैं ॥ ४१ ॥

रत्ता करते हरण धन, योग्य परिश्रम उक्ति।
निर्धन धन राजा प्रजा, चलै न काहु कि युक्ति ॥ ४२ ॥

टीका—सब प्रकार रक्षा करते हुए भी राज्य, ऐश्वर्य, धन छीन जाते, यही नही वल्कि सहस्त्रों फौज शस्त्र-अस्त्र सहित रखवारे रहते हुए मजबूत किलाओं के अन्दर सावधानता युक्त रहने पर भी हानि होने का जब अदृश्य भोग उदय होता है, तब होके ही रहता है। गरीब-अमीर, राजा-प्रजा किसी की युक्त चतुराई काम नही देती ॥ ४२ ॥

कइक पुरुष वरणी सुखहिं, कुल वृद्धी हित योग्य।
करत परीश्रम अथक रहे, प्राप्ति भयो नहिं भोग्य ॥ ४३ ॥

टीका—कितने मनुष्य स्त्री सुख के लिये तथा बाल, बच्चे, परिवार बढाने के लिये कोटि-कोटि उपाय रचते रहते। निरन्तर सब प्रकार के योग्य पुरुषार्थ करते रहने पर भी भोगने योग्य इच्छित पदार्थ और प्राणी नही मिलते ॥ ४३ ॥

बहु जन्तुन की देह को, नाशि करन के हेत।
बहुतक करत उपाय सब, सबहीं अफल लखेत ॥ ४४ ॥

टीका—बहुत से देहधारी जीवों की देहों को नाश करने के लिये

टीका—देखिये ! पूर्व कर्म रचित भोग के सन्मुख यह प्रारब्ध-रूप जो देह है उसे कोई भी अज्ञानी-विज्ञानी पल्टट नहीं सकते। शरीर की गढ़न सुडौल सुन्दरता जैसी है और जो अत्यन्त नकबैठा, अंग क्षीणतादि कुरूपता है, उसे भी कोई सर्वथा हटा नहीं सकता। ऐसे ही स्त्री घट को पुरुष तथा पुरुष घट को स्त्री तो कोई भी कर ही नहीं सकता। इस प्रकार मुख्य प्रारब्ध भोग में कोई और का और उल्टा-पल्टा करने को समर्थ नहीं है ॥ ३८ ॥

भूॅख प्यास लघुशंका दिशा, जबरन देह के काम।
चहै कोई या ना चहै, चोट खटक दुख धाम ॥३९॥

टीका—नित्य भूख-प्यास लगना, लघुशंका-दिशा आदि देह का काम जबरन करना पड़ता है। भूख लगने पर नित्य भोजन करना, प्यास लगने पर जल पीना आदि सर्व कार्य इच्छा न होते भी करना पड़ता है। कोई चाहे अथवा न चाहे, प्रारब्धवेग से शरीर रक्षक बातों का प्रयोजन लगेगा ही। भला ! चोट लगने का पुरुषार्थ कौन करता है ? तो भी चोट लग ही जाती है। एकदम खुटका-चिंता हो जाना ये कौन चाहता ? जैसे एकाएकी किसी प्रिय मित्र या अति प्रिय वस्तु का बिछोह सुनकर या कोई कठिन भय-दुख स्मरण होते ही इतना खटका हो जाता है कि सैंकड़ो मृत्यु से अधिक दुख हो जाता है। इस प्रकार दुखधाम—दुख का स्थान यह प्रारब्धरूप सम्बन्ध है ॥ ३९ ॥

कोई काज जो कुछ करै, तहॉ सहायक शुद्ध।
कोई करत जो काज है, तहॉ सहायक रुद्ध ॥ ४० ॥

टीका—स्वार्थिक या पारमार्थिक चाह जो काज करे तहाँ किसी-किसी को निर्छल अच्छे सहायक मिल जाते है। किसी का ऐसा प्रारब्ध कि वह चाहे जिस कार्य मे हाथ डाले तहाँ सहायक कोन कहे

टीका—अठपहरा ज्वर, तिजरिया ज्वर, जीर्ण ज्वर, जूड़ी जाड लगना और खो-खो युक्त खाँसी से पीड़ित रहना, दमा; श्वास न बैठना, दुख से हाय-हाय करते दिन बिताना, नेत्र दर्द के मारे कहलते रहना, जन्म से कम देख पडना या मोतियाबिन्द के वश रहना, पेट शूल वश रहाइस न होना, किसी-किसी पुरुषो के परमेह—धातुक्षीणता और कितनी स्त्रियो के प्रदर व्याधि वश हताश पडे रहना, किसी को कमर मे असह्य दर्द होते रहना एवं भिन्न-भिन्न व्याधियो से भिन्न-भिन्न विषाद पूर्ण नर-नारियों के भोग देखने में आ रहे है। यहाँ तक कि प्रारब्धिक भेद से बुद्धि मे भी सब के घट-बढ दिखाई देता है। यत्न करते हुये भी किसी-किसी की बुद्धि मे धारणा शक्ति अतिशय मन्द होती है॥ ४७ ॥

यहि विधि बहुतै रोग हैं, अयुर्वेद परमान।
बहुत अथक पुरुषार्थ करि, सबही अफल देखान॥ ४८ ॥

टीका—इस प्रकार बहुत-बहुत व्याधियाँ है। तमाम रोगो के नाम और लक्षण आयुर्वेद तथा बहुत वैद्यक ग्रथो मे उपस्थित है। कितने सयम-अनोपान यथा पथ्य द्वारा विशुद्ध औषधियो को सनियम नित्य सेवन करते। वैद्य डाक्टरो के और स्वतः अनुभव के जरा भी प्रतिकूल नही करते, सब बल लगाकर अथक परिश्रम से रोग छूटने का उपाय करते रहते, पर किसी-किसी को तो कुछ फल नहीं मिलता, उलटे रोग बढ़ता ही जाता है॥ ४८ ॥

कोई निवारण होत लखि, बिन औषध परयत्न।
कोइ करै परयत्न बहु, अफल होय सब यत्न॥ ४९ ॥

टीका—यह भी देखने मे आता है कि किसी-किसी का भोग समाप्त होते ही बिना दवा-संयम किये कठिन से कठिन व्याधि की विदाई होते देर नही लगती और कोई-कोई दवा युक्त तमाम परिश्रम

अनेकानेक युक्ति कितने मनुष्य करते रहते है, परन्तु फल कुछ नही निकलता। यही प्रत्यक्ष ठौर-ठौर मे देखा जाता हे ॥ ४४ ॥

को चाहत प्रतिकूलता, रहीं सबन शिर नाचि।
तीनौं पन तन छूटते, हानि लाभ दुख राचि ॥ ४५ ॥

टीका—प्रतिकूलता कौन चाहता है ? फिर भी बुढापा, व्याधि मृत्यु हानि, अपयश सबके शिर पर नित्य नाच रहे हैं। देखो! लड़कपन, जवानी, बुढापा ये तीनोंपन मे निर्यत्न ही भिन्न-भिन्न सबके शरीर छूटते हे। बुढापा मे दुख पाकर कोई भले शरीर छूटने की इच्छा करे, परन्तु पुरुपार्थ तो दूर रहा इच्छा भी कोन करता है कि हमारा लड़कपन मे या जवानी ही मे शरीर छूट जाय ? उल्टे हजारो कोशिश करते हुए भी बहुतो के लड़को का शरीर छूट जाता। जवानी मे भी बहुतो का शरीर त्याग हो जाता है। इस प्रकार विविध हानि और अचानक लाभ तथा अनेक दुख मे ग्रसित सब जीव देखे जाते है ॥ ४५ ॥

उनमाद मृगी बौरा बधिर, नेत्र अन्ध बल हीन।
बायू पंगुल दर्द शिर श्रवण दन्त दुख दीन ॥ ४६ ॥

टीका—पागल हो जाने, मृगी रोग वश क्षण-क्षण मुर्छा होने, बौरा-गूँगे होने, बधिर, अन्ध, निर्बल गठिया बाई, चिलक बाई, सबल बाई आदि नाना बात रोग, पंगुल होना, लुञ्ज होना, कठिन शिर दर्द, कान दर्द, दन्त पीड़ा आदि रोग वश दुखो होना, भला इन सबो के लिये पुरुपार्थ कोन करता है ? पुरुपार्थ तो दूर रहा कोई व्याधि होने का सकल्प भी नही करता, फिर भी सबोको अपने-अपने पूर्व प्रारब्ध वश भिन्न-भिन्न व्याधि तथा बाधाओ से दुखी होना पड़ता है ॥ ४६ ॥

ज्वर जूड़ी खाँसी दमा, नेत्र दर्द कम सूझ।
उदर शूल परमेह दुख, कटि पीड़ा कम बूझ ॥ ४७ ॥

के रोग देखे जाते है। कोई तो राजरोग से पीड़ित है, और धीरे-धीरे उसका शरीर सूख जाता है। कोई को तो फीलपॉव होकर हाथ-पॉव आदि अग फूल आये, समय-समय पर वे बुखार से कितना हायल-कायल हो रहे है। जिन रोगों के होने के पहिले जीव को मालूम ही नही होता कि आगे हमारे शरीर में कौन सी व्याधि खडी हो जायगी ? जब आगे की उपाधि मालूम ही नही तो उसका पहिले से उपाय भी कैसे कर सकते है ? अतः इन सबोको अदृश्य भोग जानना चाहिये। किसीको तो एकाएकी कोठबद्ध अर्थात टट्टी-लघुशका दोनो बन्द होकर बिल्कुल अपानवायु भी बन्द हो जाती, ऐसी भयानक कोठबद्ध बीमारी आते ही रोगी का मन जीवन से हतास हो जाता है। अर्थात उसे निश्चय होने लगता कि मेरा शरीर अब नहीं रह सकता ॥ ५२ ॥

कौन रोग कब होय गो, कौन कबै मिटि जाय ।
होय न सनमुख जीव के, सो स्मरण लखाय ॥ ५३ ॥

टीका—कौन सी व्याधि हमको कब हो जायगी ? तथा होकर ये आगे कब एकाएकी मिट जायगी ? सो स्मरण जीव के सनमुख न लखाय अर्थात जानने मे नही आता, इसलिये इसको अदृश्य प्रारब्ध भोग कहते है ॥ ५३ ॥

जौन कुपथ जानत कोई, तौन करहिं सब त्याग ।
जो नहिं त्यागै दुख भरै, सो पुरुषारथ लाग ॥ ५४ ॥

टीका—जिन-जिन चीजो के खाने-पीने, असयम व्यवहार रूप कुपथ्य से जो रोग बढकर रोगी को दुख होने लगता, वे उन असंयमो से परहेज करते, तो रोग कुछ शात रहता। यदि रोगी कुपथ्य का त्याग नही करता, तो प्रत्यक्ष अधिक-अधिक दुख भोगता होता। अयोग्य व्यवहार एव असंयम से जो व्याधियाँ बन या बढ जाती है, उसमें पुरुषार्थ का ही दोष है। इसलिये प्रारब्धिक और असंयमिक

करते है, परन्तु उनका सब पुरुषार्थ निष्फल हो जाता है। वह रोग के वश पडा विललाया ही करता है ॥ ४६ ॥

कोई सफल औषध किहे, होवै रोग निवृत्ति।
कुपथ त्याग से शांति कहुँ, अन्य अन्य रुज नृत्ति ॥ ५० ॥

टीका—किसी-किसी को औषधि फलीभूत भी हो जाती है, औषध पहुचते ही उसका रोग का विनाश हो जाता है। यह प्रत्यक्ष देखने मे आता है। जिन-जिन कुपथ्यों से रोग बढती होकर विशेष बेचैनी होती है उन कुपथ्यो को त्याग देने से रोगियो का रोग कुछ शात तो अवश्य रहता है पर उसकी जड़मूल से निवृत्ति नही होती। कुपथ्य त्याग के रहने पर भी पूर्व वेग यदि दुख का हो तो अन्य-अन्य रोग किस्मे बदल-बदल कर जीव के देह मे नाचते हुये उत्पन्न होते रहते हैं। कुपथ्य सेवन रूप पुरुषार्थ से जितनी व्याधियाँ बढती है, वे तो कुपथ्यों को त्याग कर औषधादि सेवन से विनष्ट हो जाती, परन्तु जो पूर्व का प्रारब्ध भोग होता है, वह धीरे-धीरे भोग कर ही समाप्त होता है ॥ ५० ॥

प्रारब्धि विवश सब रूज लखौ, चहत न उनको कोय।
जन्मत ही बहु रुज घिरे, बहुत बीच बिच होय ॥ ५१ ॥

टीका—पूर्व कर्मो के फल रूप प्रारब्ध से ही विविध रोग होते रहते, क्योकि रोग होने के लिए कोई कामना करता नही। देखो! कोई-कोई लड़कपन से ही रोग के विवश देखे जाते, यहाँ तक कि गर्भ से उत्पन्न होने ही कितने अन्धे, लूले और भी अनेक व्याधियो से घिरे देखे जाते है तथा बहुतो को बीच-बीच मे समय-समय पर रोग होते रहते है ॥ ५१ ॥

विविधि रोग अंगन विषे, राज रोग पगपील।
जिनके पूर्व न खबरि कछु, कोठबद्ध मन ढील ॥ ५२ ॥

टीका—नख से शिखा तक शरीर के सब अगों मे भाँति-भाँति

पुनः राजा ने पूछा—वह कहाँ रहती है ? क्या खाती है ? ओर क्या-क्या करती है ? इसके उत्तर में लोग कुछ उलट पलट कहने लगे। तब उस बुद्धिमान ने कहा—सबसे वडी है बात। वह रहती है भले आदमियों के पास। खाती है गम (क्षमा)। करती है वह वह काम जो धन, बल, विद्या, शासन से नही हो सकता। ऐसी बात सुनकर सब प्रसन्न हो गये। राजा भी खुश होकर एक लाख रुपया पुरस्कार दिया। अतः बुद्धि सबकी घट वढ़ होती है।

"एक शब्द गुरुदेव का, ताका अनन्त विचार।
थाके मुनिजन पण्डिता, वेद न पावै पार॥" (बीजक)

मेला तीरथ हाट में, जन्म मरण औ वृद्ध।
यक यक अंग समान कहुँ, उतपति खानिन बद्ध॥ ५७॥

टीका—मेला, तीरथ, बाजार मे एक-एक अंग के मिलान वाले मनुष्य बहुत जगह से आकर एकत्र हो जाने से बहुत दिखाई देते है, पर वे बहुत नही अन्य संसार के हिसाब से वे विरले विरले गाँव के कोई-कोई मनुष्य मेला, तीरथ, बाजार मे इकट्ठे हो जाते है। इसी प्रकार कितनो के कर्मो की समानता होने से बहुतो का साथ ही जन्म, वृद्धि तथा मृत्यु की प्राप्ति होती रहती है। इसका हेतु यह है कि कितने चोर-डाकुओ की श्रेणी, कितने कसाई शिकारी मासाहारियो के कर्मो की समानता, कितने विषयी पामरो का समूह तथा कितने पुण्य कर्म करने वाले दानियो की श्रेणी, कितने सदाचार उच्च विचार वालो की श्रेणी, एवं पाप-पुण्य भिन्न-भिन्न कर्म वासना अनुसार एक एक श्रेणी के कर्मो का कही मिलान भी रहता ओर त्रिगुण कर्मो की भिन्नता भी रहती। एक-एक श्रेणी के कर्मो के मिलान सस्कार से एक ही समय खानियों मे उनके नियमबद्ध सबकी समान उत्पत्ति होती रहती। कितने संग्राम, हैजा आदि मे एक ही समय के मृत्यु वाले मनुष्यो का एक साथ संयोग पड़कर

व्याधियो से घिरने में साधारण दवा-पानी और पूर्ण सयम की आवश्यकता होती है ॥ ५४ ॥

औषध से कुछ शांत रुज, भोग विना नहिं जात ।
जो प्रारब्धि प्रकोप अति, तब उल्टा ह्वै जात ॥ ५५ ॥

टीका—संयम सहित दवा-पानी करने से कुछ रोग कमी अवश्य होते है, परन्तु पूर्व का प्रवल भोग हो तो अपने वेग भर भोगाये विना वे रोग सर्वथा निर्मूल नही होते, यह भी प्रत्यक्ष है । इसमें भी जो अत्यन्त रोग युक्त दुख की प्रारब्धि हो तो दवा से रोग घटने के वदले वढते जाता है । ऐसी जगहों में प्रारब्ध भोग की प्रवलता जानी जाती है ॥ ५५ ॥

विद्या बुद्धि पुरुपार्थ में, घट वढ़ सवहीं जन्तु ।
भोग माहिं हो एक कस, अवला पुरुप लखन्तु ॥ ५६ ॥

टीका—पढ के जो प्राप्त हो सो विद्या, तजवीज की शक्ति का नाम बुद्धि, सो दोनों मे कोई कम है कोई विशेष । चाहे परमार्थ मे हो या स्वार्थ मे, सवकी परीक्षा भिन्न-भिन्न कम विशेष रहती है । पुरुपार्थ परिश्रम आदि हर काम को कोई विशेष कर लेता है कोई विल्कुल कम कर पाता है । कोई हिंसकी है तो कोई पुण्यात्मा । पुरुषार्थ करते हुये भी पृथक ही पृथक कम-विशेष एक दूसरे से सव चीजो मे भिन्नता है । जव एक सदृश कर्म नही, तो एक सदृश सस्कार भी नही । जव एक सदृश सस्कार अभ्यास नही तो अव या आगे एक सरीखे भोग भी नही । देखो ! किसी को स्त्री घट प्राप्त तो किसी को पुरुप घट प्राप्त है ॥ ५६ ॥

दृष्टान्त—एक राजा ने आम दरवार मे सवसे प्रश्न किया कि व्यवहार मे सवसे वड़ी चीज क्या है ? उत्तर मे कोई कहे सबसे वड़ा ताड़ है, कोई कहे हाथी, कोई वट तो कोई कहे सरकार का झडा । इत्यादि वाते सुनकर एक वुद्धिमान ने कहा—सवसे वड़ी है वात ।

जब जब सनमुख होत वह, तब तब परखत जीव ।
होय न सनमुख जौनि जब, तब केहि पारख कीव ॥ ५९ ॥

टीका—जिस चीज का स्मरण—याद जव-जब जिस-जिस समय जीव के सामने होता है, तव-तव तिस वस्तु को ही जीव परीक्षा करके जानता है ओर जिस चीज का स्मरण जीव के सामने जिस समय नही उदय होता तव उस समय जीव किसकी परीक्षा करे ? नेत्र के सामने वस्तु भये विना जैसे नेत्र नही देख सकता, तैसे जीव के सनमुख स्मरण द्वारा ही सव पदार्थ पडते है । स्मरणरूप मन-मानन्दी के विना जीव के सनमुख कोई भी चीज नही है । अर्थात वाह्य पदार्थो से जीव का कोई सम्वन्ध नही है, मात्र मन, इच्छा, वासना, स्मरण द्वारा ही दुख-सुख, हानि-लाभ, देह-गेह, नर-नारी, पशु-पक्षी आदि सवका सम्वन्ध होता है : जिस चीज की इच्छा-वासना सनमुख नही है, तो स्मरण सनमुख विना जनैया जीव किसको जानै ॥ ५९ ॥

भिन्न स्मरण जीव से, जीव को जानत नाहिं ।
जीवहि जानत ताहिको, मानि मानि गहि वाहि ॥ ६० ॥

टीका—चेतन जीव से सर्व स्मरण, चिंतन अलग है, क्योकि वे सव स्मरण जीव को जानते नही, चेतन जीव ही तिन सव सनमुख स्मरणो को जानता, परीक्षा करता रहता है और मान-मानकर उस मनोमय धारा मे लाभ समझ के जिस किसी मे विशेष सुख निश्चय करता, उस स्मरण को पुष्ट करके उसी क्रिया मे तदाकार होता है ॥ ६० ॥

नये नये स्मरण कहुँ, कहूँ पुराने होत ।
कोई मिटत सनमुख नहीं, ज्ञाता काहि लखोत ॥ ६१ ॥

टीका—जो देश, वस्तु, प्राणी और जिन भोगो को नही देखा सुना भोगा गया, तिसको देखने, सुनने, भोगने का जव औसर पड़

एक ही साथ मृत्यु हो जाती। इस प्रकार समान और पूर्वोक्त भिन्न भोग देखकर यह निश्चय होना चाहिये कि हम नित्य जीव कर्मो को करते-भोगते अनादि काल से चले आ रहे है, याते सावधान होकर उत्तम कर्म करना चाहिये। जिससे चौरासी योनियो मे न भ्रमना पडे ॥ ५७ ॥

शब्द

गहै गुरु बोध जो निजपद पाय रे ॥ टेक ॥
देहधाम मे चेतन राम है, तन मन शोधि के चित ठहराय रे ॥१॥
मन बड़ चोर लिये भ्रम भाला, बोध के तीर से मारि भगाय रे ॥२॥
दयाधरमसे सजिचलु गुरुमग, शाति सोहागिनि वलिवलि जायरे ॥३॥
संत बिशाल जो टेरत निर्णय, कहत सुनत सब कलुष नशाय रे ॥४॥
सोइ कबीर गुरु सत जहाँ कोइ, प्रेमदास तेहि शरण समाय रे ॥५॥

प्रसङ्ग ६—पूर्व जन्म जन्मान्तरो में रहते हुए भी पूर्व की वातो का स्मरण न होने का विभेद

लखत स्मरण धार से, निज पर वस्तुन देह।
सो स्मरण न एक रह, उपजत सिमिटि लखेह ॥ ५८ ॥

टीका—इस प्रसग को समझ लेने से चेतन जीव के सदैव रहने का स्पष्ट ज्ञान हो जायगा। कुतर्क सब नष्ट होकर आस्तिक बुद्धि प्राप्ति होगी। कुछ न कुछ चितन याद-स्मरण उठते ही रहते है, इसी का नाम स्मरण धारा है। तिसी स्मरण द्वारा ही अपना शरीर और शरीर-उपयोगी वस्तुयें तथा पराये के शरीर, घट, वस्त्रादि सर्व पंच विषय के पदार्थो का ज्ञान जीव करते रहते है। सो स्मरण धारा मे यह नियम नही कि एक ही स्मरण उठा करे, किसिम-किसिम के उठते हुये स्मरणों मे कुछ याद होते कुछ भूलते रहते, एवं स्मरणो का सिमिटना-दवना और उद्भव होना दोनों जाग्रत मे प्रत्यक्ष अनुभव होता है ॥ ५८ ॥

बिल्कुल सम्बन्ध नहीं। केवल मन ही द्वारा जीव और जगत से सम्बन्ध है। मानन्दी त्याग से लाखो कोस जड देश दूर है। चार खानियो की असख्य देहे जीव की कर्मवासना के अनुसार नित्य जीव के सन्मुख स्मरणवत बन-बन के लोप होती रहती है। तो जैसे तमाम स्मरण आये और चले गये बिल्कुल भूल गये, तैसे असख्य देहे अनादि काल से बनी-बिगड़ी, परन्तु अब उनकी याद नही है ॥६३॥

छन्द—"आय जाय असख्य स्मृति जीव साक्षी एकरस।
त्यों असख्यो देह बनि नशि जीव सत्य अखण्ड अस ॥
स्मर्ण देह के बनन बिगड़न से सदा निज भिन्न है।
यत्री गृही साक्षी अनाशी जान शुद्ध अखिन्न है ॥"

रहत अनादी जीव लखि, यादि होत चहै भूल।
भावाभाव जो वृत्ति को, साक्षी नित्य कबूल ॥ ६४ ॥

टीका—पूर्व प्रसग लेकर कहा जाता है कि असंख्य स्मरण और देहो को छोड़ने-पकडने वाला जीव अनादि अविनाशी स्वय प्रत्यक्ष रहते आया है। पूर्व स्मरण या देहे याद रहे या भूल जायें दोनो समयो मे जीव की अपनी हैता सदा विद्यमान रहती है। क्योकि सब स्मरणवृत्तियो की जब याद होती, तब भाव समझिये और वे वृत्तियाँ बिल्कुल भूल जाती, नही स्मरण होती, तब अभाव समझिये। इन भावाभाव दोनो वृत्तियो का जीव जानने वाला दोनो वृत्तियो से पृथक नित्य अविनाशी रहि के ही अपने नित्य साक्षित्व में प्रमाण देता है कि मै इस बात को जानता हूँ तथा पूर्व की बातो का मुझे स्मरण नही, या उन्हे भूल गया हूँ। जैसे किसी को याद करना अपनी हैता बिना नही बन सकता, तैसे किसी चीज को भूल जाना यह अभाव रूप स्मरण भी अपने रहे बिना किसी को नही हो सकता। अतः भावाभाव दोनों वृत्तियो को जानने वाले सम्पूर्ण जीव अनादि अविनाशी वासनावश रहते आये अपने आप अपरोक्ष है ॥ ६४ ॥

जाता है तो उसका संस्कार टिक कर नये-नये स्मरण वन के उठने लगते । कभी-कभी पुरानी पूर्व की देखी मुनी भागी वासनायें पुन - पुन स्मरण होती रहती है । कोई-कोई स्मरण ऐसे है कि जो विल्कुन भूल ही जाते । तो जो स्मरण जीव के सामने ही नही होते, तो ज्ञाता जीव उस स्मरण को सनमुख पड़े विना तिस स्मरण तथा स्मरण सम्वन्धी पदार्थो को कैसे जान सकता है ? अर्थात ज्ञान करने वाला ज्ञाता जीव रहते हुए भी जिस किसी स्मरण के सामने उदय न होने से उसे नही जान सकता ॥ ६१ ॥

उतपति वाली देह सव, उतपति मनन लखात ।
नाशि होत दिखते दोऊ, वदलि वदलि दै जात ॥ ६२ ॥

टीका—जैसे देहों की उत्पत्ति देखी जाती है, तैसे स्मरण मनन की भी उत्पत्ति होती है । जव तन-मन का उत्पन्न होना निश्चित है तो उन दोनो का नाश भी जरूरी है, दोनों का परिवर्तन देखा भी जाता है । समूल नाश नही वल्कि नाश के साथ ही परिवर्तन हो-होकर वे दूसरे रूप मे अन्य शरीर तथा स्मरण वदल-वदल के वनते रहते । जैसे एक ही शरीर मे वाल युवा वृद्धादि अवस्थाये परिवर्तित होती रहती, तैसे प्रारब्ध-पुरुषार्थ अनुसार खानियों की देहों से अध्यास, अध्यास से देह, जैसी देह और खानि तैसे स्मरण उठते । सूक्ष्म स्मरण के सहारे दूसरे अन्य प्रकार के सूक्ष्म स्मरण वनते रहते । एक स्थूल शरीर नाश होते ही उसी के सहारे दूसरे अध्यास वश स्थूल शरीर ग्रहण करता रहता । यही वदलि-वदलि दै जात का अर्थ है ॥ ६२ ॥

यहि विधि सवही जानिये, जीव से दूरि जहान ।
अनन्त देह आई गई, जस स्मरण पुरान ॥ ६३ ॥

टीका—पूर्वोक्त कथन अनुसार देह और वासनाओ का मर्म समझिये । जनैया जीव से सम्पूर्ण पिण्ड-ब्रह्माण्ड दूर है । उनका

उन्ही देहो की अहंता-ममता मे अपने को एकमेक मानकर वैसे-वैसे ही अपनी हैता विदित करता है। इतना होते हुये भी सर्व ज्ञाते चैतन्य जीव इस दृश्य ज्ञेय रूप जड़ देह-गेह, इन्द्रिय-विषय, मन अवस्था सर्व से न्यारे है। वे स्वरूप से ही शुद्ध अजर-अमर नित्य है। इस प्रकार विवेक करके जड़ देहो को अपनारूप मानने का भ्रम उल्टी समझ का सहार कर देना चाहिये ॥ ६६ ॥

रहत बारि जेहि संग जहँ, तैसै तहाँ देखात।
छोड़ि सकै नहिं धर्म गुण, ज्यों का तेवहिं रहात ॥ ६७ ॥

टीका—जल अनेक उपाधि योग से अनेक प्रकार से दर्शता है। अग्नि के साथ से उष्ण, कभी जम के बर्फरूप मे पृथ्वीवत कठोर, कही धूम कोहिरा आदिरूप। पीली मिट्टी मे पीला जल, काली मिट्टी में काला जल अथवा जैमा रग डाले तैसा जल तथा अन्न, वीज वृक्षो मे विविध रस-रूप से एक ही जल असंख्य वस्तुओ के समान प्रतीत होता है। पर जल अपने खास गुण-धर्म को नही छोड़ता, जल के परमाणु हमेशा शीतमय ज्यों के त्यों ही रहते है। जब जड़ तत्त्व का यह हाल है तो कारण कारज जड़ तत्त्व से पार जो अखण्ड ज्ञाता जीव है वह कैसे बदल सकता है ? जीव कही भी रहे वह अपने ज्ञान धर्म को कभी नही छोड़ सकता ॥ ६७ ॥

वर्तमान में जीव जस, सनमुख सबहिं देखात।
पुनः धरत जब देह वै, तब ऐसहि विख्यात ॥ ६८ ॥

टीका—अब प्रत्यक्ष वर्तमान मे चारो खानियो के देहधारी जीव ज्ञानकला चैतन्यतायुक्त चेष्टा करते हुये सबके सामने प्रत्यक्ष अनुभव हो रहे है। इस प्रकार वासना वश स्थूल छोड़कर सूक्ष्म देहयुक्त पुनः चारो खानियो मे जब स्थूल देह धरते है, तब भी ज्ञानकला—चैतन्यता युक्त चेष्टा करते हुए स्पष्टरूप से सबको जाहिर होते हैं।

सबहिं समय सब मनुष नहिं, रवि को देखत दृष्टि ।
तब का होय विनाश वह, तैसहिं जीवन सृष्टि ॥ ६५ ॥

टीका—सव समय मे मनुष्य सूर्य को नेत्रो से नही देखते, तो क्या इससे समझ लिया जाय कि सूर्य किसी समय विनष्ट हो जाता ? नही, विनष्ट नही हो जाता । देखो ! हमेशा सूर्य रहता तो अवश्य ही है, परन्तु घर के अन्दर घुसने से, आँख मुँदने से या किसी प्रकार के ओट मे दृष्टि रुकने से अथवा व्रह्माण्डिक प्रकृति क्रिया अनुसार रात्रि समय सूर्य नही दीखता, वस इसी प्रकार जीवनसृष्टि समझिये । चार खानियो मे निवास करने वाले अविनाशी जीव देह धरते तव सनमुख होते, फिर कुछ दिन के वाद देह छोड़ देते तव नही दीखते, परन्तु वासनावश दूसरी जगह फिर शरीर धर-धर के दृश्य होते रहते है । इस प्रकार इधर जीवो का शरीर छूटना तथा उधर देह धर-धर के प्रगट होना यह कार्य हरदम प्रवाहित देखा जाता है । इससे स्पष्ट हुआ कि जो त्रिगुणात्मक वासना लेके देहधारी देह छोडते, वे ही भिन्न-भिन्न त्रिगुणात्मक स्वभाव लेकर अविनाशी जीव नट स्वाँगवत वदल-वदल के पुन देह धरते, परन्तु जीवो का स्वरूप सदा एकरस वना रहता है ॥ ६५ ॥

जाहि देह मे रहत यह, तैसी हैता आप ।
ज्ञाता ज्ञेय से भिन्न है, करि विवेक भ्रम दाप ॥ ६६ ॥

टीका—शूकर-कूकर, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि जिस देह में जीव रहता है तिसीको अह-मम दृढ मानने से वैसे ही अपनी हैता जीवों को प्रतीत होती है । अपनी-अपनी देह को दृढ अह-मम मानने से ही किसी भय से प्रत्येक जीव भाग खड़े होते तथा अनुकूल की तरफ खीच जाते । वैल-गधा, सर्प-पक्षी, कीटादि अपनी-अपनी खानि के अनुकूल चेष्टाओ से वोलते, चलते, फिरते तथा हर्षित होते रहते । इन वातो से जाना जाता है कि जो-जो देह जीव धारण करता,

भी याद नही रहती। मुझे कौन-कौन मिले ? कहाँ-कहाँ किसके साथ गया ? किस समय किसके लिये रोया या हँसा ? इत्यादि बाते लडकपन की अब जवानी में कुछ याद नही हैं। याद न होते हुए भी अभी सरीखा अपनी हैता, सत्यता लड़कपन में थी ही। जो मै अब हूँ तो लड़कपन में भी मै था ही। इसी प्रकार अन्य जीव भी थे, क्योंकि लडकपन मे हर्ष शोक के वश हम और आप सब अपनी हैता आज ही के समान विदित करते थे तथा आज भी हम और आप अपने लड़कपन के शरीर का अनुभव कर रहे है। हमारी देह की अवस्था बदल गई, परन्तु हम अवस्थाओं के अनुभविता पूर्व जैसे एकरस ही है। हमारे समान ही सर्व देहधारी गर्भ, जन्म, बाल, युवा तथा वृद्धापन में अपनी हैता सत्यता का परिचय दे रहे है। अत·—॥७०॥

यही देह की बात यह, यादि न काहुक देखि।
जीव रहा यह ही तहाँ, जान मात्र खुद लेखि॥ ७१ ॥

टीका—जब इसी जन्म मे बिल्कुल लड़कपन की बाते किसी को स्मरण नही रहती, तो क्या स्मरण न रहने से यह मान लिया जायगा कि हम जीव लड़कपन मे न थे ? थे तो अवश्य ही। जैसे आज दुख-सुख को हम जनैया जीव अनुभव करते हैं, तैसे दुख-सुख के जनैया जीव हम लडकपन मे भी विराजमान थे और दस पचास वर्ष बीतने पर आज भी हम वही ज्ञाता जनैया जीव ज्यो के त्यो है, स्वय जान मात्र ज्ञान स्वरूप है॥ ७१ ॥

तैसे जानौ देह सब, यादि होत अब नाहिं।
स्वप्न समानहिं जानि सब, भूल से रचिता जाहि॥ ७२ ॥

टीका—लडकपन की बाते भूलने के समान ही पूर्व असंख्य जन्मों की देहो का अब स्मरण नही है, फिर भी जैसे लड़कपन की घटनाये न याद होते भी लड़कपन मे हमारा जीव रहा, तैसे पूर्व अनादि काल की बाते न स्मरण होते भी जीव नित्य पूर्व समय मे रहा,

इससे यह फल निकला कि पहिले भी हम सब देहधारी नित्य जीव वासनावश थे, अब भी है, आगे भी हम नित्य जीव रहेंगे ।। ६८ ।।

छन्द—दान धर्म दयादि सात्विक कर्म करि धरि भाव से।
भोग राग जु राजसी वहि सस्कार प्रभाव से।।
हिंसादि तामस की क्रिया वहि सस्कार जमाय है।
त्रय गुण गहे सुख आश वश पुनि आय जाय भ्रमाय है ।। १ ।।
जैसा करै तैसा लहै लख क्षेत्र बीज के न्याय से।
कम विशेष जु पाप पुन्यहुं सूक्ष्म गध टिकाय से ।।
उत हर तरह के कर्म हो इत हर तरह के भोग हो।
भाँति-भाँति सुखी दुखी परत्यक्ष देखो लोग हो ।। २ ।।
वहु पाप फल वहु दुक्ख है बहु पुण्य फल वहु सुक्ख है।
पुण्य ही नित कीजिये अन्त करण तव शुद्ध है ।।
फिर संत सग मे जाय कर निज रूप सत ठहराय लो।
सुख आश बीज कोदग्ध करि निज काज आज वनाय लो ।। ३ ।।

बनत मिटत इमि देह सब, नित्य जीव तिन संग।
विवश वासना तन धरत, पृथक सो आप अभंग ।। ६९ ।।

टीका—पूर्वोक्त प्रकार अनादि काल से कर्म वासना के वश रहे हुए पाप-पुण्य युक्त त्रिगुणात्मक सूक्ष्म वासनानुसार चार खानियों की देहे बनती और बिगडती रहती, तिन स्थूल-सूक्ष्म देहो के साथ अविनाशी जीव लगा रहता है। वह कर्मो के सूक्ष्म वासना के आधार से चार राशियों में देह धरता-छोड़ता रहता है और आप जड़ स्थूल-सूक्ष्म से पृथक द्रष्टा रूप अभंग-अविनाशी नित्य रहता है ।। ६९ ।।

जीव देह उतपति जबहिं, वर्ष कइक तक जान।
यादि न तब की बात कछु, निज पर हैता ठान ।। ७० ।।

टीका—जब इस मनुष्य खानि मे जीव देह धारण करता तब कई वर्ष अर्थात दो चार वर्ष हुये लड़कपन अवस्था की बाते आगे कुछ

है, जैसे कोई मनुष्य की याद हो गयी, उसके साथ ही उसका घर गाँव मित्र सब स्मरण होने लगता है। यही रात-दिन का कार्य घट के अन्दर चालू रहता। योग्य सम्बन्ध के बिना कोई स्मरण नही उठता, यह प्रत्यक्ष है। कही इन्द्रियो के सामने पदार्थ पड़ने से, कही एकात में कुछ स्मरण होने अथवा जब भी दिन रात चलते बैठते एक स्मरण के साथ दूसरे पूर्व के भूले हुये संस्कार भी उठते रहते, बस ये दो प्रकार की योग्यता ही सस्कारो को उठाने मे हेतु अनुभव होता है॥ ७४ ॥

[मनन-मनन की योग्यता का विशेष विचार]

जैसे कोई एकान्त मे नि:सम्बन्ध होकर मन को शात किये बैठा है, तब तक उसे स्मरण हो गया कि अमुक जगह जाना है, वहाँ की भूमिका, घर व प्राणी इस-इस प्रकार के है। फिर स्मरण हो उठा कि वहाँ के प्राणी व अन्य गाँव वालों से वैर है। तब तक स्मरण हो उठा उस-उस आदमी ने विरोध के कारण अमुक का प्राण हर लिया था इत्यादि। एक मनन की योग्यता से इतने मनन की धारायें उठी, मानो सब ससार उसी मे आ गया। इसे मनोराज्य भी कहते है। एव मनन मनन की योग्यता से भी दबे सस्कार सनमुख होते रहते है।

इन्द्रिन और पदार्थ के, पाय योग्यता जेत।
संस्कार स्मर्ण तब, बिन तेहिके न बनेत॥ ७५॥

टीका—नर-नारी पशु-पक्षी सुवर्ण-खेत, बीज-वृक्ष, सूर्य-चन्द्र आदि जो वस्तु या प्राणी तथा शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श इन्द्रियों के सामने पडते है, पहिले उनका मनन होता है। फिर तिस मनन के आधार ही आधार अन्य सम-विषम सस्कार उठने लगते है। इस प्रकार इन्द्रियाँ और पदार्थो तथा शब्दादि जितनी योग्यता पाकर पूर्व सस्कार उठते रहते है, यदि उनकी योग्यता न पडे तो सस्कारो का उद्भव होना नही

अब भी है, आगे भी रहेगा। दस-बीस वर्ष की बातें तो दूर रही, तुरन्त का देखा हुआ कोई-कोई स्वप्न भी दूसरे क्षण में उसका कुछ स्मरण नही रहता। तो क्या हम जीव उस स्वप्न अवस्था मे नही थे ? थे तो अवश्य ही पर अवस्था भेद से पूर्व की बातें भूल जाते हैं। पूर्व असख्य देहो की प्राप्ति और विनाश स्वप्न के समान ही जानना चाहिये। भूल से ही सम्पूर्ण शरीर बनने के कारण द्रष्टा चेतन जीव के आगे सर्व स्थूल शरीर स्वप्न के समान ही है, क्योंकि शरीर की रचना मे मुख्य कारण भूल और मनोमय ही है! जैसे इसी देह मे पहिले की तमाम बातें भूलते हुए भी तब और अब एकरस यही नित्य जीव रहता है, तैसे भूल कृत पूर्व स्वप्न वत असख्य देहो का हाल भूलते हुए भी सब देहों का प्रकाशक जीव अनादि काल से रहते आया है। आगे भी सत्य रहेगा, ये अभिप्राय ॥ ७२ ॥

"जीवन ऐसो सपना जैसो, जीवन सपन समाना।" (बीजक)

अपने में है देह नहिं, विनश वासना होत।
सो स्मरण विनाश वपु, जेहिके साथ लखोत॥ ७३ ॥

टीका—अपने चैतन्य स्वरूप के अन्दर जड़ देह है नही, देह तो घर एव घट के समान दृश्य जड है। सुख मानन्दी करके वासना रखने से वासना द्वारा ही यह देह निर्माण होती रहती। जिस जागृत इन्द्रियो के सहारे ज्ञाता जीव सबको देखता, जानता, मानता था, वह प्रारब्ध समाप्त होने के साथ स्थूल देह और तहाँ का जागृत व्यवहार स्मरण सब परिवर्तन हो जाते। यही कारण है कि पूर्व जन्मो की बाते स्मरण नही रहती ॥ ७३ ॥

मनन मनन की योग्यता, पाय मनन दिन रात।
बिना योग्यता होत नहिं, कोई मनन दिखलात॥ ७४ ॥

टीका—एक स्मरण उठने पर तिसीके मिलान वाली बातों का संस्कार जो गुप्त रूप अतःकरण मे पूर्व से जमा है, वह भी उठ पड़ता

प्रत्यक्ष किया जा सकता है ? जन्मान्तर स्थूल के सम्बन्ध रहित पूर्व अपनी हैता का प्रत्यक्ष सदृश उसी प्रकार स्मरण नही होता जैसे किसी प्रेमी के भूल जाने से उसका प्रेम भी भूला पड़ा रहता है। इसी प्रकार तीनो समय मे सत्य रहते हुए भी पूर्व देह साधनो के छूटते रहने से पूर्व देहों की बाते तथा तिसके साथ अपने अह पना को जीव भूल जाता है ॥ ७७ ॥

किसिम किसिम के जीव जस, देखि परत अब आजु।
तैसहिं उतपति देह तिन, पुनः पुनः मन राजु ॥ ७८ ॥

टीका—बैल, गदहा, शूकर, कूकर आदि भाँति-भाँति के पशु, मोर, तितर, बाज आदि भाँति-भाँति के अण्डज, गिजाई, कैंचुवा जल-थल के कीड़े आदि भाँति-भाँति के उष्मज और भाँति-भाँति स्वभाव वाले नर-नारी मनुष्य योनि राजसी, तामसी, सातसी ऐसे अनेक प्रकार के स्वभाव वाले देहधारी जीव आज जैसे वर्तमान में दिखाई दे रहे हैं, तैसे भिन्न भिन्न नर देह मे कर्म सस्कार टिकाकर शरीरान्त मे त्रिगुण सूक्ष्म सस्कार वाले पृथक-पृथक जीव चार खानियो मे देह धारण करते हुये अनादि काल से चले ही आ रहे है, आगे भी वासना वश देह धारण करते ही रहेगे। तहाँ मनोराज्य—इन्द्रिय-विषय, हर्ष-शोक, काम क्रोध, मिलन-विछोह, षटपशु कर्म तथा विषयासक्ति वश रहना एव बार-बार मन वश भ्रम धारा मे डुबकी लगाते-उतराते हुए असख्य जीव चार खानियो मे इधर-उधर देह युक्त दृश्यमान हो रहे है ॥ ७८ ॥

मन वशि घट बढ़ काम तिन, मनुष खानि में देखि।
करम भूमिका यह रही, पुरुषारथ बहुविधि लेखि ॥ ७९ ॥

टीका—मनुष्य देह को प्राप्त हुए जीवो मे सुख मानन्दी के वश जिधर सुख-लाभ सूझता उधर विशेष प्रयत्न करते। जिधर सुख-लाभ नही देखते उधर का प्रयत्न कमी कर देते या नही करते। यह

बनता। भाव यह कि इन्द्रियो के सामने पच विषय पदार्थ तथा प्राणी पडने की योग्यता ही सस्कारो के स्मरण होने मे कारण है। प्रत्यक्ष है कि तमाम दिन के सस्कार भूले पडे रहते। जव कोई इन्द्रियो के सनमुख प्राणी-पदार्थ पड जाते, तो झट उनके संस्कार स्मरण होकर पुन· तत्सम्वन्धी सव स्मरण जागृत हो उठते है और पहिले नही उदय हुये थे। विशेप रूप से इन्द्रियो के सामने वस्तुओ की योग्यता पडने ही से स्मरण उठते रहते है ॥ ७५ ॥

भाव—मनन-मनन की योग्यता और इन्द्रिय और इन्द्रिय सन्मुख देश काल प्राणी पदार्थ पडने की योग्यता ये ही योग्यता गु'त सस्कारो को सन्मुख करते है।

संस्कार सनमुख नहीं, रहे जहाँ तक जौन।
बिना स्मरण के भये, कैसे लखिये तौन ॥ ७६ ॥

टीका—पूर्वोक्त योग्यता न पडे तो जितने संस्कार गुप्त रूप अत करण मे पड़े हो, वे स्मरण के रूप मे जीव के सामने नही आ सकते। जव दबे हुए सस्कार स्मरण रूप मे न उठें, तव तक उन गुप्त रूप सस्कारों को किस प्रकार जाना जा सकता है? अर्थात स्मरण भये बिना सस्कारो का अनुभव नही हो सकता॥ ७६ ॥

जब की हैता यादि चह, तब की यादि जो देह।
तब निज हैता भान हो, जैसे नेही नेह ॥ ७७ ॥

टीका—जब जिस समय अर्थात पूर्व जन्मो की सर्व वाते सहित अपनी हैता का स्मरण करना चाहते हो, तो यह वात तभी बन सकती है जव पूर्व जन्मो की देहो का सम्बन्ध युक्त स्मृति वनी रहे। तिन देहो के वने रहने से तत्सम्बन्धी पदार्थ सहित सबके स्मरण साथ स्मरण कर्त्ता अपने आपकी हैता का भान—स्मरण कर सकता है। जब कि पूर्व जन्मो की देह ही नही सामने है न उसका स्मरण ही है, तो किस साधन से वर्तमान के समान पूर्व जन्मो की बातो को

जन्म मरण दिन रात्रि सम, जागृत स्वप्न सुषोप्ति।
चैतन्य जीव यकरस रहत, मन वशि देह लहोप्ति ॥ ८१ ॥

टीका—बारम्बार नेत्र के सन्मुख दिन-रात चौविसो घटा आने-जाने के समान देहोपाधि से जन्म होना, मरण होना जागना-सोना, सुषुप्ति होना द्रष्टा जीव के सन्मुख बना रहता है, तहाँ चैतन्य जीव प्रत्येक अवस्थाओ मे अखण्ड एकरस विराजमान रहता है। अनादि काल से द्रष्टा चेतन भूल वश देहोपाधि युक्त अध्यास रूप मनोमय बीज पुष्ट कर-करके बारम्बार देह प्राप्त करता है॥ ८१ ॥

बचपन तरुण औ वृद्धपन, घट बढ़ बुद्धी देह।
वह तौ सदा अखण्ड है, भूल से विविधि सनेह ॥ ८२ ॥

टीका—बाल, जवानी तथा वृद्धावस्था मे जो बुद्धि कम विशेष प्रतीत होती है, वह देहरूप साधन घटने-बढ़ने के कारण वृत्ति

होना ही न चाहिये, ये सब बाते अन्त.करण के धर्म समझे जायँ तो जड अत.-करण को जान-मानकर चलाता कौन है ? ब्रह्म का प्रतिबिंब ही सर्व कर्ता है तो निरूप पोल निराकार का प्रतिविम्ब होता ही नही, फिर छाया माया जड़ असत होती है ५—व्यापक एक ही चेतन मे देहरूप अनेक उपाधियाँ क्यो हो गयी ? ६—अज्ञान-अविद्या भी बिना इन्द्रियो के सम्बन्ध क्यो कर हो सकता है ? ७—निराकार आकाश वत विभु व्यापक मे जड़-चेतन का सम्बन्ध क्यो कर हो सकता है ? ८—भ्रम मात्र कहो तो विना जड़-चेतन के सम्बन्ध एक व्यापक मे भ्रम भूल बनना ही असम्भव है। ९—एक आकाश मे दूसरा तिसीके समान सर्वत्र चेतन कहे तो एक अवकाश मे दूसरा वैसे ही कैसे बनेगा ? सम-सम एक देश मे रहना ही असम्भव है अथवा अखण्ड माने हुये सर्वत्र परिपूर्ण ठसाठस व्याप्त चेतन मे भिन्न-भिन्न कर्म करते-भोगते असख्य जीव और स्थूल-सूक्ष्म जड़ तत्व भी कहाँ रहेगे ? १०—आकाशवत सर्व देशी सर्व व्यापक सर्वत्र अभेद मानने से एक के सुख-दुख का सर्व चेतन देहधारियो को अनुभव होना चाहिये, वैसा होता तो नही। इसलिये किसी के कार्य रहित प्रत्येक देहो प्रेरक भिन्न-भिन्न स्वजातीय सर्व शुद्ध ज्ञान स्वरूप अनादि अनन्त नित्य ठहरने से अपने-अपने कर्मो का फल पृथक-पृथक सब जीव भोगेगे और मुक्तिदशा मे भी भिन्न ही स्थित रहेगे।

विशेष रूप से घटाव-बढाव प्रत्यक्ष नरदेह मे दिखाई देता है। इस हेतु नर देह ही कर्म करने-धरने की भूमिका है। क्योंकि यहाँ ही मनुष्य देह मे विशेष क्रिया करने के साधन-सामान युक्त और समझ-बूझ के परिणामदर्शी होकर पाप-पुण्य, युक्ति-उक्ति, कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान, मत-पथ, ग्रथ अनेक प्रकार से पुरुपार्थ करते। तिन कर्मो का सस्कार प्रवलता से ग्रहण करते हुए सव नर जीव प्रत्यक्ष दिखाई दे रहे है॥ ७९॥

ज्ञान मात्र एकै किसिम, घट बढ़ देह उपाधि।
पृथक पृथक सव जीव हैं, शुद्ध स्वरूप अवाधि॥ ८०॥

टीका—सब देहधारी चेतन जीवो का स्वरूप एक समान ज्ञान स्वरूप अखण्ड ओर भिन्न-भिन्न है। जो वुद्धि, कर्म, पुरुपार्थ घट उपाधि सहित ज्ञान मे घट-वढ दिखाई दे रहे हैं, वह सव नेत्र पर त्रिविध चश्मा लगाने वत खानि भेद, घट भेद देहोपाधि कृत है, परंतु प्रत्येक घटो मे वास किये हुए वे अलग-अलग सव जीव शुद्ध स्वरूप ज्ञान मात्र अविनाशी हे। क्योकि सव अजर-अमर अखण्ड चेतन जीव[1] भिन्न-भिन्न देहयुक्त कर्म करते-भोगते स्थूल-सूक्ष्म देहों के प्रेरक होते हुये देहो को उदल-वदल करते प्रत्यक्ष चले आ रहे है॥ ८०॥

१ टिप्पणी—कोई चेतन जीव का स्वरूप जीव घटो मे आकाशवत एक ही निश्चय करते, परन्तु ऐसा मानने मे निम्न लिखित दूषण आते हैं। १—जैसा हम अपने मन देह इन्द्रियो को अह-मम मानकर हानि-लाभ समझ के प्रत्येक वस्तु को छोडते और पकडते, तैसे प्रत्येक घट मे हमही होने से सव देहो के कर्ता भोक्ता हमही अर्थात एक जीव को होना चाहिये, ऐसा तो नही है। एकी समय मे भिन्न-भिन्न देहधारी जीव भिन्न-भिन्न चेष्टा-कर्म आदि करते और भोगते नजर आते हे। २—एक व्यापक चेतन मे राग तथा द्वेष न होना चाहिये। रागद्वेष वुद्धि का धर्म कहो तो वुद्धि जड है। ३—वन्ध-मोक्ष की व्यवस्था गुरु और शिष्य का सम्वाद कर्मफल आदि एक ही मे वन ही नही सकते। ४—देहधारी जीव यदि व्यापक हो तो तीन अवस्था—तीन पन आदि

ज्ञानइन्द्रिय और मनोवृत्ति संयोग से जीव ही को होता है। क्योंकि जीव ही ज्ञाता चेतन है। मनोवृत्ति को हटा देने से अपना स्वरूप शुद्ध ज्ञान मात्र निरुपाधि, निर्मूल, अखण्ड, एकरस है। विदेहमुक्ति होने पर देहोपाधिक बाह्यज्ञान न रहने से निरुपाधि नित्य स्वरूप ज्ञानधर्म, पारख रूप सर्वदा एकरस रहता है ॥ ८४ ॥

मन इन्द्रिन अध्यास रचि, हानि जानि तब त्याग।
लखता निशदिन हानि जब, तब यकरस बैराग ॥ ८५ ॥

टीका—अध्यास किस प्रकार रचता है? इसका उत्तर यह है कि इन्द्रियो द्वारा देख, सुन, सूँघ, स्वाद, स्पर्शादि क्रिया करके मन से मान-मान के चैतन्य जीव सर्व अध्यासो को रचता रहता है। देह से कर्म, कर्म से देह, भोगो से मन, मन से भोग, प्रारब्ध से पुरुषार्थ, पुरुषार्थ से प्रारब्ध एवं परम्परा न्याय और जीव माली-चित्रकार के न्याय अध्यास बीज से देह धरना रूप खेती का व्यापार कर रक्खा है। जब विषय भोग अध्यास रूप बीज बोने में हानि ही हानि जीव परख लेगा तब तिस व्यापार को छोड़ देगा। "कर्हहि कबीर ठग सो मन माना। गई ठगौरी जब ठग पहिचाना" ॥ बी० ॥ एकक्षण हानिकर जानी हुई वस्तु पुन प्रारब्ध आवरण से सुखदाई प्रतीत होने लगती, जब साधन संयम विवेक का निरन्तर पुरुपार्थ वढ़ाकर रात-दिन इन्द्रिय भोग और मन संकल्पो मे दुख ही दुख की एकरस दृष्टि पुष्ट करता रहेगा तब सदा एकरस वैराग्य धारणा बन जायगी ॥ ८५ ॥

करि पुरुषारथ आसक्ति दलि, दुख हितकारी मित्र।
जो नहिं छोड़ै काम यह, अवश्य होय पवित्र ॥ ८६ ॥

टीका—पूर्वोक्त प्रारब्ध, बाह्य कुसग, आसक्ति के कारण जब-जब सुखाध्यास सनमुख हो तब-तब विवेक-वैराग्य का पहिले ही से पुरुपार्थ रखते हुए सर्व पिण्ड-ब्रह्माण्ड, मन-प्राणी, विपयो मे पूर्ण

उपाधि से मालूम होती है। जाग्रत मे विशेष स्मरण उठने के सामान ठीक रहने से विशेष ज्ञान, स्वप्न मे कम साधन रहने से कम ज्ञान, सुषुप्ति मे बिल्कुल स्मरण सिमिट जाने से बिल्कुल कम ज्ञान। वास्तविक वृत्ति के भावाभाव कम-विशेष का ज्ञाता सदैव अखण्ड एकरस ही है। अपने अखण्ड स्वरूप को भूलकर ही इन्द्रिय सम्बन्धी वस्तुओ को स्मरण द्वारे जान-मानकर अनेक वस्तुओ मे स्नेह करता रहता है॥ ८२ ॥

सुखाध्यास कारण रहै, भूल देह सम्बन्ध।
स्वस्वरूप को बोध जब, यकरस राखि अबन्ध ॥ ८३ ॥

टीका—जड विषयो मे सुख मानना, सुखाध्यास से भूल पुष्टि, भूल पुष्टि से सुखासक्ति पुष्ट होती है। सुखाध्यास और भूल ही से स्थूल सूक्ष्म जड देहो का चैतन्य जीव से सम्बन्ध है। जब जिसे शुद्ध चैतन्य का अपरोक्ष ज्ञान उदय हो जाता है, तब अपने स्वरूप से बढकर कही भी सुख शाति न जंचने से अपने बोध भाव को दृढ वैराग्य साधन सयम सहित देह रहे तक एकरस रख के सुखाध्यास नष्ट करते हुये सर्व बन्धन रहित होकर वह मुक्त हो जाता है ॥८३॥

बाह्य ज्ञान मन इन्द्रियन, साथ बिना नहिं जान।
जब मानन्दी सनमुख नहीं, तबही वस्तु भुलान ॥ ८४ ॥

टीका—चेतन जीव को बाहरी जगत का ज्ञान मन से मनन कर और इन्द्रियो से देख सुन भोग करके ही होता रहता है। तन-मन सम्बन्ध लिये बिना बाह्य ज्ञान नही हो सकता। यथा—कारीगर के पास बसुला-रुखानी आदि न हो तो काट पीट छेद नही सकता। तद्वत जब अन्तःकरण में मानन्दीरूप स्मरण कोई सामने नही उठता, तब बाहरी वस्तुए भूल जाती है। बाह्य वस्तुये भूलते हुये भी अपना तो ज्ञाता बना ही रहता है। इससे स्पष्ट जाना गया कि किसी चीज को भूलना, किसी का स्मरण होना यह बाह्य जगत

के पश्चात प्रारब्धान्त मे तन-मन सम्बन्ध सब टूट जाने पर मुक्त जीव के सामने जगत प्रपंच का भास नही रह जाता। चेतन जीव के ठहरने के लिये अन्य जड़ तत्व या प्राणियों की कोई आवश्यकता नही, बल्कि वह निराधार है। स्वयं प्रकाश स्वत. स्थित अचल सद्वस्तु को निराधार कहते है, सो अविनाशी जीव का स्वरूप ही निराधार है। अभी देह रहते-रहते भी जीव ही की सत्ता से देह कठपुतलीवत चलती-फिरती। पुन॰ देहोपाधि रहित स्वरूपस्थिति मे ठहरते ही जड़ग्रन्थि सम्बन्धी सर्व दुख रहित हो जाता है। सोई बनाना चाहिये ॥ ८७ ॥

बाह्यज्ञान कैसे करै, बिन सामग्री जीव।
बिन सामग्री ना बनै, कोइ ब्यंजन लखि लीव ॥ ८८ ॥

टीका—जो कहो जीव विदेहमुक्ति मे स्थित है तो बाह्यज्ञान क्यो नही करता ? तो सुनो—इन्द्रिय-मनरूप साधन सामग्री सम्बन्ध पाये विना जीव बाह्यज्ञान कैसे कर सकता है ? विचारो ! यथायोग्य सामग्री पाये विना व्यजन करता कोई व्यजन बना सकता है ? कदापि नही। साधन-सामग्री रहित व्यजन बनते-बनाते कही नही देखा गया ॥ ८८ ॥

ब्यंजन कर्ता का करै, जब नहिं ब्यंजन साज।
आप रहै नहिं लोप है, वर्तमान तजि काज ॥ ८९ ॥

टीका—विविध प्रकार के भोजन पकवान को व्यजन कहते है। सो व्यजन रचने वाला कर ही क्या सकता है जब तक वह भोजन रचने के साधन बर्तन, लकडी, अग्नि, जल, अन्न, भूमि, प्रकाशादिक सामग्री न पावे ? परन्तु ऐसा भी नही कि वर्तमान मे बाह्य व्यंजन-भोजन क्रिया को छोड़कर व्यजन कर्त्ता आप न रह जाय। प्रत्यक्ष ही देखो ! वर्तमान मे आप मनुष्य रहते हुए भी सामग्री न पाने से कार्य नही करता, किंतु कर्ता मनुष्य अपना तो है ही ॥ ८९ ॥

परवशना—इच्छा का कष्ट देख-देख कर सुखासक्तियो को नष्ट करता रहे। वन्धनों के नष्ट करने मे पूर्ण सहायक हितैपी मित्र दुख ही हैं। जो सत्सग सद्ग्रथ स्व विवेक द्वारा तन-मन जगत मे दुख देखते रहने का कार्य नही ढीला करेगा, तो अवश्य वह पवित्र हो जायगा। सब विषयों की जड़ासक्ति त्यागकर शुद्ध चैतन्य पारख स्वरूप मुक्त हो रहेगा, ये निश्चय ॥ ८६ ॥

प्रश्न—श्रेष्ठ पुरुपार्थ क्या ?

उत्तर—विपयासक्तियों-खिचाओं को जीतना।

प्रश्न—आसक्ति जीतने मे सहायक कौन ?

उत्तर—निरन्तर जगत सुखो मे दुख देखना, विवेक-वैराग्य प्रधान उपाय है। बूढो की दुर्दशा पराधीनता, जवानो की उन्मत्त चेष्टा, स्त्रियों की चचलता, क्षणिक मतिता; भ्रमिक मत-पन्थो देश समाज की हलचल, दुष्टो की क्रूरता, राजसी-तामसी का धर्मविरुद्ध दुराचरण, हिसा, कलहपना, प्रत्येक प्राणी को प्रारब्ध विवश ब्रह्माण्ड की प्रतिकूलता, पशु-पक्षियो की परवशता आदि दुख-द्वन्द्वो के वीच मे अपने को देखते रहने से कल्याण का यत्न सिद्ध होता है।

भंग होय तब भूल सब, तन सम्बन्ध बिगारि।
रहै न सनमुख जक्त तब, निराधार दुख टारि ॥ ८७ ॥

टीका—ऊपर कथित साधन सयम पुरुषार्थ मे डटे रहने से सर्व इन्द्रिय-विपयो की आसक्ति कृत भूल विपरीत समझ और क्रिया विनष्ट हो जाती है, किंतु पूर्व अभ्यास वश रज-वीर्य से प्रारब्ध काया निर्माण थी वह उदासीनता से भोगते हुये आप ही नष्ट हो जाती है। जो जीव अपने सत्य स्वरूप को भूलकर तन-मन सम्वन्धी सर्व वन्धन वनाया था, वही निज स्वरूप को जानकर जगत मे दुख-दृष्टि द्वारा और नैराश्यता से भोगकर शरीर सम्वन्ध सुखाध्यास वीज को विगाड़ देता है—नष्ट कर डालता है। फिर वन्धन विगाडने

सम्बन्ध ही नही रह गया, फिर ज्ञाता जीव स्वतः विराजते हुये भी किसकी परीक्षा करे ? ।। ९१ ।।

नेत्रन सनमुख वस्तु जब, होय न सनमुख जौन ।
तब नहिं देखत ताहिको, नेत्र अभंग जहौन ॥ ९२ ॥

टीका—सबको देखने वाली नेत्रपुतली के सामने जव जो वस्तु न पड़े, तो क्या उसे नेत्रपुतली देख सकती है ? कदापि नही । जब नेत्र से विमुख पदार्थ नही देख सकते, तो क्या दृष्टि नही है, ऐसा मान लिया जायगा ? कदापि नही । पीठ पीछे पदार्थ को न देखते हुए भी नेत्र तो वरावर एकरस है ही । इस प्रकार सिद्धांत मे सर्व ज्ञाता जीव के सामने मन-मानन्दी पड़ती रही, तिसी से जगत का भान होता रहा । सो प्रारब्ध-पुरुषार्थ रूप मन-मानन्दी बोध-वैराग्य द्वारा नष्ट हो जाने से विदेहमुक्ति मे केवल सर्वज्ञाता ज्ञान मात्र निराधार रहते हुये भी बाह्य ज्ञान-नही करता ।। ९२ ।।

प्रसंग ७ -वन्धन पडने और छूटने का विभेद

प्रारब्धी पुरुषार्थ लखि, सुसंग कुसंग आसक्ति ।
मनुष समझ आधीन है, छूटब औ सासक्ति ॥ ९३ ॥

टीका—शुद्धाशुद्ध प्रारब्ध के दो भेद और पुरुषार्थ के भी दो भेद, एक जगत मार्ग का और दूसरा कल्याण मार्ग का । सग भी दो प्रकार का, अच्छा सग और खराब सग । आसक्ति भी दो प्रकार की—एक—विषयो में आसक्ति, दूसरी—गुरुपद मे प्रियता रूप आसक्ति ये सव सामग्री मनुष्य की सुबुद्धि-कुवुद्धि रूप समझ के आधार पर निर्भर होकर वन्धन छूटने और दुखप्रद बन्धन बना लेने में दोनो तरफ सहायक हो जाती है । अर्थात कल्याण की समझ हो जाने पर पूर्वोक्त सव शुभ सामग्री कल्याण मे सहायक हो जाती है और यदि विषयो ने सुख समझ रही, तो पूर्वोक्त सब अशुभ सामग्री जुट के जगत प्रपंच में मनुष्य बँधता चला जाता है । इससे यह सिद्ध हुआ

तैसहिं जानौ जीव को, यकरस पारख आप।
सनमुख नहीं पदार्थ जब, केहि परखै करि दाप ॥ ६० ॥

टीका—पूर्वोक्त दृष्टान्त अनुसार स्थूल-सूक्ष्म मन इन्द्रिय अन्त-करण यथायोग्य साधन सामग्री है। वाह्यवृत्ति ज्ञान होना व्यजन समझो, ज्ञाता जीव उसका कर्त्ता समझो। जब जीव व्यजनो मे दुख जानकर स्थूल-सूक्ष्म सर्व सामग्री का अभाव कर दिया तो प्रारब्धान्त में मन इन्द्री अत-करण चतुष्टय साधन (औजार) का सम्बन्ध टूट जाने से केवल सर्व ज्ञाता शुद्ध पारख जीव मात्र एकरस निराधार अपने आप स्थिर रह गया। विदेह मुक्ति मे जब मन इन्द्रिय शस्त्र ही नही तो ससार जीव के सामने ही नही पड़ता। क्योकि भौतिक पदार्थ रूप ससार से जीव का कोई सम्बन्ध नही है। मानन्दी द्वारा ही सासारिक पदार्थो का जीव के सामने अनुभव होता है। सो मन-इन्द्रिय विदेह मुक्ति मे न रहने से वाह्य ससार सामने ही नही, तो कैसे किसे जोर लगाकर परखे परखावे? अर्थात परीक्षा की शक्ति शक्तिमान मे रहते हुये भी मन-इन्द्रिय रहित होने से वाह्य जगत का ज्ञान न करके स्वत पारख रूप निराधार स्थित रहता है ॥ ६० ॥

अमर जीव आपै लखै, जो कछु मन उद्वेग।
सब मानन्दी नाशि जब, तब केहि परख करेग ॥ ६१ ॥

टीका—अपना अभाव कभी न देखने वाला जीव अजर-अमर अपने आप है। सामने जहाँ तक जो कुछ मनोद्वेग स्मरण सनमुख होता है उसी को स्वय अपने आप चेतन जीव जानता रहता है। मुख्य मन ही से जीव की भेट है, क्योकि मन करके ही सब वस्तुओ को जीव जानता है। मनन हुये विना बाह्य संसार का ज्ञान नही करता, यह प्रत्यक्ष अनुभव है। विदेह मोक्ष मे जब तन-मन सर्व मानन्दियो का सम्बन्ध छूट गया; तब जीव का जगत से कुछ

है। उनका नतीजा यह है कि वे अपने चैतन्य स्वरूप और यथार्थ कर्तव्य को भुला देते और देह के अभिमान को पुष्ट कर देते है। मै देह हूँ, बहुत सुन्दर एव कांतिमान हूँ, विषय मनोरथो को सिद्ध करना मात्र हमारा पुरुषार्थ है, हम दूसरे की क्यो सहै ? ऐसे अभिमान को फैसन उत्पन्न करता। फिर प्रमादी मनुष्य दूसरे की प्रतिकूलता बिल्कुल न सह पाने से क्षण-क्षण मे स्वार्थवश विविध कष्ट पाता रहता। ग्रहण योग्य—धर्म, नीति, सयम मार्ग और त्यागने योग्य—चोरी, व्यभिचारी, हिसा आदि इन दोनो का विवेक छोड़कर राजस धारा मे बहने से वह इतना बेहोस हो जाता है कि दुष्ट सग और दुर्वुद्धि जो सर्वथा दुख द्वन्द्व रूप है उसी को हर्ष से धारण कर लेता। कितना भयकर परिणाम ॥ ९५ ॥

निज पर मन को मोहि कै, तन में उपजै काम।
हर्ज खर्च तृष्णा बढ़ै, विविधि विछेप कुराम ॥ ९६ ॥

टीका—विविध फैसन—शृगार-ठाठ बाठ रच के स्वय मन में मोहना फूलना मदमस्त रहना तथा दूसरे के मन को ठाठ बनाकर तन-मन-वचन द्वारा आर्कषित कर लेना। इसका परिणाम यह होता है कि काम-शैतान का यहाँ से ही जन्म हो जाता है। तिस काम कला मे पड़ने से अमूल्य समय का नष्ट होना ये हर्ज लगता। परस्पर नर-नारियो के भाँति-भाँति के फैसनदार भूषण-वस्त्र, इत्र-तैल, फुलेल-पाउडर, राग-रंग, सिनेमा-नृत्य-महल, रत्न-सेज, मोटर-बग्घी आदि वाहन इत्यादि उत्तमोत्तम राजस सामग्री के लिये कितने रुपये पैसे चाहिये, थाह नही, ये सब खर्च बढ जाता। इतने पर भी भीतर की कामनाये दिन प्रति दिन बढती ही जाती है। इस प्रकार काम अनल अपूर्ण होने से अपार तृष्णा बढ जाती। फिर तो अपूर्ण राजसी मनसा को वह पूर्ण करना चाहता। अपूर्ण मनसा कव पूर्ण होने लगी ? इस हेतु उसकी चाह पुरौती के पथ मे कितने रगड़े-झगडे

कि मनुष्य जीवो मे स्ववशता है कि वह शुद्ध बुद्धि पुष्टि करके कल्याण कर सकता है, सोई बनाना चाहिये ॥ ९३ ॥

बँधन छुटन कारण दोऊ, जेहि दिशि होय बलिष्ट ।
उतही जाते जीव सब, सजग धार लहि इष्ट ॥ ९४ ॥

टीका—पूर्वोक्त कथन से सब मनुष्य निज-निज ध्येय निश्चय सहित बँध जाने तथा छूट जाने की सामग्री रूप कारण जिस किसी तरफ बलवान कर लेते ह, उधर ही चलते हुये उसी की सजगता—चोकसी रखते हुए वही धारणा—रहस्य रख के अपनी-अपनी अभिलाषा धारण किये हुए इच्छित बन्धन और मोक्ष फल को प्राप्त होते रहते हैं। इससे यह फल निकला कि गुरुपद का पुरुषार्थ, सत्संग अटूट प्रेम परमार्थ बुद्धि पुष्ट रखते हुये कल्याण की सब सामग्री अधिक बलवान करके तिसी घेरे मे जीवन भर विराजना चाहिये। नही तो सब शुभाशुभ सामग्री जङ्कशन रेल पटरीवत बाल-मेल होने से जो कही कुसंगति बलवान हो गया तो पारमार्थिक निश्चयता पलट कर बधन छूटने के बदले और बन्धनों में जकड़ जावेगा। यातें, बोध, स्थिति, वैराग्य, सत्संग, भक्ति, सदाचरण, सर्व हित सामग्री को पूर्णतया धारण करते हुये इनमें कभी ढिलाई न रख के इन्ही के अन्दर रहते हुए प्रारब्ध समाप्त कर देना चाहिये। बीच मे गाफिली प्रमाद सुखासक्ति न गहे, निरन्तर सावधानता युक्त सत्पुरुषार्थ में तत्पर रहना ही जीवन्मुक्ति स्थिति है ॥ ९४ ॥

प्रसंग ८—वैराग्य और मोक्ष प्रतिपादन

फैसन सब स्थूल के, भूल करन मद हूल ।
योग्यायोग्य बिचार तजि, कुमति कुसंग कबूल ॥ ९५ ॥

टीका—राजस द्रव्यो से नाना शृङ्गार—ठाठ बढाकर चर्ममय स्थूल को बहुत सुन्दर बनाना फैसन कहते है। गुरुदेव बताते हैं कि जितने फैसन-शौक-ठाठ हैं वे सब नश्वर चर्ममय स्थूल देह के ही

तृप्ति है ? खर्च की इति नही, मन की शाति नही, सदाचरण सत्यता का लेश नही। जव नाशवान रोग-शोक पूर्ण चमड़ी की सूरत दर्पण मे आपको देखने से इतना आनन्द कि सामने के हर्ज-खर्च को आप भूल रहे है, तो भला ! प्रकृतिभिन्न सर्व द्रष्टा साक्षी चैतन्यरूप राम अपना आप जो असली स्वरूप को शुद्ध बुद्धि रूप दर्पण मे देखेंगे, विचार करेंगे तो कितना सर्वोपर अचल विश्राम मिलेगा ? सोचिये ! अक्षय अचल निर्वासना नित्य तृप्ति का आप अनुभव करेंगे।

प्रश्न—सुख शान्ति सौन्दर्य का क्या लक्षण है ?

उत्तर—इच्छा पूर्ण होना अर्थात निवृत्ति होना। क्योकि कमी आपूर्ति से कोई भी सुखी नही होता।

प्रश्न—इच्छा पूर्ण निवृत्ति कैसे हो ?

उत्तर—"सो भोगे बिन इच्छा पूरी होय।" अर्थात विषय विलासो को छोड़ देने से। जैसे नशेबाजी न करने से नशे की इच्छा शून्य रहती।

प्रश्न—फिर खाया-पिया भी न जाय ?

उत्तर—धैर्य से विचार पूर्वक समझिये ! निर्वाह न लेने से शरीर नही चल सकता, फैसन तथा भोग सुख छोड देने से वैसा नही। एक मार्ग देख-देखकर चलना, दूसरा आँख मूँद के जहाँ-तहाँ गिर के दुख उठाना, ये दोनो एक नही। विचार युक्त देह निर्वाह यात्रा करिये। भोजन वस्त्रादि व्यवहार शुद्ध सादगी जीवन बिताइये। इसके अलावा सर्व मन की दौड़ है, वासना तृष्णा चिन्ता व्याधि उपाधि है।

प्रश्न—हमारा कर्तव्य क्या है ? छन्द से विचारिये।

छन्द—"नीच कामो मे न गिरने की अगर इच्छा हमें।
तो राजसी सामग्रियो से वच सदा रहना हमें॥

पड़ते जिसकी थाह नहीं। राजसी भोगों को सर्व अज्ञानी खेंचते हैं? कितने तो घर से ही चोरी चालाकी करते। कितने बहुत कष्ट से द्रव्य कमाकर क्षण भर सिनेमा मौज शौक से मस्त होते। पुन. दरिद्र दीन लाचार होने पर विषय भोग ठाठ-बाट के लिये आसुरी विद्या चपल चालाकी लूट फूँक झूठ विश्वासघात जूआ आदि कोई कुकर्तव्य बाकी नही रखते। जिससे सबकी प्रतिकूलता, सब प्रकार का विक्षेप नये-नये विघ्न उरहना झगडा सहते-सहते हरदम कुराम—बेचैनी ही मे उसकी आयु समाप्त होती है ॥ ९६ ॥

जो कछु रुकते देखिये, तहाँ रुकावट मान।
अधिक भये पर ना रुकै, आखिर को विलगान ॥ ९७ ॥

टीका—जहाँ कहीं शृंगार प्रिय मनुष्य दुराचरण से रुकते दिखाई दे रहे है, वहाँ कुछ मानभंग के भय से ऊपर-ऊपर दिखावा मात्र है। भीतर राजसी पुरुषों को सारे कुसंकल्प उत्तेजित करते रहते हैं। धीरे धीरे जब फैसनबाजी और अन्य कुसंगो से कुसंकल्प बलवान हो जाते हैं, तब नीच कर्मो से वह कदापि रुक नही सकता। अंत में वह फैसनप्रिय मनुष्य सदाचार, नीति, धर्म, मर्यादा का भी उल्लघन कर अपनी छिपी नीचता को सबके सामने प्रत्यक्ष कर देता है और सज्जन समाज से पृथक हो जाता है। फलत. वह नीच कर्तव्य को ही सुखमय सबके सामने सिद्ध करने लगता, जिनसे तन-मन उसका हरदम जला ही करता है ॥ ९७ ॥

दृष्टांत—एक युवक विद्यार्थी खूब माँग सँवारकर फैसनदार कोट पतलून बूट-सूट, रंग-चमक बनायके मुख रंगीनकर घटों दर्पण मे अपनी सूरत देखा करे। जिससे उसके काम-काज पढने आदि मे हानि हुआ करे। एक दिन एक सत्सगी मित्र ने उसका दर्पण छिपा लिया। बाद मे बहुत दुखी देखकर उसके मित्रों ने कहा—इस फैसन से आपका या समाज ससार का क्या लाभ है? क्या शान्ति तथा

मन पूरा पूरा नहीं, जहँ तक करिये पूर।
आखिर को रुकना दुखहि, सब पुरुषारथ धूर ॥ ९९ ॥

टीका—मन रोकने का कष्ट न पडे, इस हेतु जो-जो मन चाहता है, वही खूराक देते-देते और-और तृष्णा लत–कामनारूप भूँख बढ जाती है। चाहे जहाँ तक मन की कामना पूर्ण की जाय, अन्त में हार खाके विषय क्रियाओ से रुक जाना ही पडेगा। निदान फिर वही मन रोकने का दुख जीव के शिर पर आ जायगा, जिस मनोवेगो को रोकने में वह दुख मानता था। विषय विलास से रुकना नही चाहता था, किन्तु चर्म मशीन रुककर शक्ति साधन हत होने से जब आगे चलती ही नही तो क्या हो ? विवशता से विषयों से रुकते हुये और अपार कामना सताती ही रहती, फिर तो मन रोकना न पडे इसके लिये विषय भोगो का जितना परिश्रम जीव ने किया था वह सब निरर्थक हो गया। अर्थात बार-बार कामना प्रचण्ड होकर सताने से और-और अनन्त गुना मन मार-मार के रहना पड़ता है। भोगो के लिये सारा परिश्रम, विघ्न, उत्पात ऊपर से फादिल में लेना पडता है ॥ ९९ ॥

दृष्टात—एक सन्त विषय विलासो से अलग रहने की शिक्षा दे रहे थे। सब जिज्ञासु जन सुन रहे थे। इतने मे एक मनुष्य सन्त की बाते सुनकर बोला–वाह ! आप कैसे कह रहे है ? मन रोकना ही तो दुख है। सन्त बोले–तुम तो मन न रोकते होगे ? मनुष्य–जी नही। सन्त ने कहा—तुम्हारी यह बात किस प्रकार से हम सच्ची समझे ? मनुष्य—इच्छा हमारे दिल मे जो उठती है देखने-सुनने, खाने-पीने की वैसा ही कर लेते है, बस आनन्द मिल जाता है। सन्त—तो जब तुम मन इच्छित भोग भोग लेते हो तो तब भी तुम्हरा मन चलता रहता है या नही ? मनुष्य—चलता रहे तो सुख न मिले, अत· मन रुक या शात हो जाता है। सन्त ने कहा—तुम्हारी

सात्विक उदासी भेष हो पर ज्ञान तीव्र सुधार हो ।
देखै हमारा पूज्य कम अथवा विशेष उदार हो ॥ १ ॥
सौन्दर्यता प्रिय यदि तुम्हे तो बात यह सुन लीजिये ।
स्नान ध्यान से तन करो शुचि ब्रह्मचर्य सँभारिये ॥
इस मुख क भूषण रंग नहि सत् प्रिय बचन उच्चारिये ।
करि नेम सयम कर्ण मुख शुभ गुण सदा सब धारिये ॥ २ ॥
श्रेष्ठजन के पग पडो यहि शिर क भूपण जानिये ।
बहु भाँति बाल श्रृगार इत उत खैंच हेतू मानिये ॥
बाल बुद्धी राजसी तज श्रेष्ठ बुद्धी सात्वकी ।
सात्वकी का ध्यान धर के लाभ ले लो आस्तिकी" ॥ ३ ॥

इन सब बातो को सुनकर वह भी जाग्रत हो शुद्ध सादगी जीवन व्यतीत करने लगा ।

राग चाह जेहि साज से, सो सब फैसन योग ।
विविधि तरह रफ्तार तेहि, मन गति देखि कुयोग ॥ ९८ ॥

टीका—जिन सामग्रियो से अधिक-अधिक विषय विलास के लिये राग, चाह, कामना प्रचण्ड हो उन सब सामग्रियो को फैसन समझना चाहिये । उसकी रीति एक प्रकार से नही, बल्कि अनेक प्रकार से है । कही तो भाँति-भाँति बालों को सजाते, हाथ-पाँव-मस्तक रगते, फैसनदार आभूषण एवं वस्त्र पहिनते और कही युवक-युवतियाँ असयमिक अभेद वर्ताव करके नैन-सैन-बैन द्वारा निर्लज्जता से काम प्रेरित होते । भाव यह कि जिस प्रकार मन, कर्म, वाणी द्वारा विपयोत्पादक कामरस के भावयुक्त बाहरी क्रिया सैन-चेष्टा, अभेद बर्ताव तथा ठाठ-बाट किया जाय, वह सब फैसन के अन्तर्गत ही है । ये सब मन की चाल कुयोग, कुमार्ग मे डालकर सतमार्ग से विचलित करके दुख देने वाली है, ऐसा विवेक करके रहना चाहिये ॥ ९८ ॥

से सिनेमा देखता, शहर, बाजार चाट, अलबट, नाना नाच-रंग, युवतियो का मनमाने प्रसग-फैन्सी बूट-सूट, नाना पहिनाव-बाहन आदिको को ग्रहण करते-करते या तो इन्द्रियाँ थक जाती या तो वे भोग सामान ही नष्ट हो जाते, पर इच्छा ज्वाला नहीं बुझती। हाय-हाय! कोई उपाय नही। सन्त बोले—फिर जिस भोग व्यापार को अनादि काल से करते आये और इच्छा तृप्तिरूप लाभ न मिला तो उस व्यापार को घाटा का धन्धा क्यो नही समझे? अरे इच्छा बुझने का सहज उपाय इधर है। तुम्हे मालूम नही। देखो! "ख्वाहिश दूरि न देय के साधन, जेहि ते होय सदै निज रक्षा। "सो भोगे विन इच्छा पूरी होय।" इन पूरे शब्दों का अर्थ सुनाते हुए सन्त ने कहा—विषय भोगो का त्याग ही सदा के लिए इच्छापूर्ति का सर्वोत्तम साधन है। जैसे नशा, नाच, रंग, मासादि अभक्ष्य सेवन से जो दूर रहता, उसकी इच्छा उसे कभी कायल नहीं करती, उसे सदा तृप्ति रहती। तद्वत जो विपय भोगो को ग्रहण करता, उसको अनेक दुख प्राप्त होते रहते। कुछ नमूना देखो—

१—चिन्ता होली प्रथमै जलई। कामासक्ति सो दूजो बढई॥
२—बुद्धि भ्रष्ट ह्वै दुर्गुण धारण। थू थू थैया पाप हजारन॥
३—पाप करम संचित ह्वै पुष्टी। भौतिकवाद कथै मति भ्रष्टी॥
४—स्वार्थी विषयी जन को संगा। दुखित दुखावत अति अड़बगा॥
५—तेज वीर्य ह्वै क्षीण बिबेका। अतिशय दीन जो मरकट टेका॥
६—सभ्य अजादी पशुवत रीती। चञ्चल चर्म ठाठ अति प्रीती॥
७—शील परस्पर निर्छल दूरी। विषयी विषय बिबश छल भूरी॥
८—सन्तगुरू के निकट न जावै। धर्मशास्त्र को पढत लजावै॥
९—धूम्रपान बनि नारिन चेरा। जोक बुद्धि विषियन के घेरा॥
१०—पुनर्जन्म फल मुक्ति न मानै। तेहिते सब दुख द्वन्द्व मे तानै॥

तात्पर्य—सृष्टि के सम्पूर्ण दुख द्वन्द्व इसी मनमानी पूर्ण करने के

पूर्व बात झूठी हो गई या नहीं ? मनुष्य—कैसे ? सत—उलट के देखो ! जब तुम कहते हो कि मन रोकना ही दुख है और फिर इसके साथ ही मन शात होने के लिए नाना भोग भोगते और जब तक उन भोगो मे किसी प्रकार रुकावट नही आती, तब तक तुम भोगते ही रहते, अन्त मे विवशता से अल्प कालीन इच्छाये निर्बल सी देख के मनकी इच्छा पूरी मानकर सुख प्रतीत करते। इससे तो यही स्पष्ट हुआ कि इच्छा चलना ही दुख, इच्छा का रुकना या शात होना सुख, यही तुम्हारा भी ध्येय है, यही बात है या और ? मनुष्य—हाँ ! हाँ !! है तो यही बात । सन्त--फिर तुम क्यों कहे कि मन रोकना दुख है ? जब तुम स्वय किसी न किसी प्रकार मन शात करना चाहते तो फिर आगे कहो क्या बात ? मनुष्य—सन्त जी ! सचमुच मे आपकी बात सच है। हम मे बड़ी भूल थी। "मेरे मुख मे जीभ नही, ऐसा कहने के समान" व्याघात दोषयुक्त मेरा कथन हुआ। जीभ के विना यह भी कैसे कहते बने कि मेरे मुख मे जीभ नही ? जीभ न कहने के साथ ही कहने वाले की जिह्वा सिद्ध होती है। वैसे ही मन रोकना ही दुख है, इसके साथ मनमाने भोग भोगकर मन शात होने की बात कहना ये दोनो बाते विरोधी है। हम अज्ञानियो के कहने से भी मन रोकना ही सुखरूप सिद्ध हो जाता है। अच्छा महात्मन ! जैसे भोजन से पेट भर जाता, तैसे विषय स्वादो से क्या मन नही छकता ? सन्त—स्वयं अनुभव की बात विशेष वजनदार होती है। तुम स्वय विचार लो। देखो ! तुमने शक्ति भर सब विषयो को देखा, सुना, भोगा होगा। तुम्हारा मन कुछ तृप्त हुआ या नही ? मनुष्य—तृप्त हुआ कि जिस भोग को जितना ही भोगा, उसके बिना उतना ही रहा नही जाता। क्या कहे महाराज ! मन तो चाहता है कि वर्षात झड़ी के समान निरंतर भोग स्वाद लिया ही करूँ। इसके लिए कर्जा लेकर चोरी-चलाकी हिंसादि द्वारा धन

परिणाम में जिसके संग्रह से वन्धन कष्ट आपदा मे पड़ना पडे, वे सब कुवस्तु है। सर्प, बिच्छू, बाघ, भालू आदि जिनके साथ से हमेशा भय विक्षेप वना रहता है, कुजतु है। चोरी, ब्यभिचारी, बैर, हिंसादि आसक्ति जिनके धारणा से लोक मै भी निन्दित होना पडता, परलोक व मोक्ष मार्ग तो बिगड़ता ही है, ऐसे अनाचार को कुकर्म जानिये। यह कुकर्म का स्वभाव हरदम साथ रहने वाला बडा घातक कुसग है। इस साखी से स्पष्ट हुआ कि मात्र खराब मनुष्यो का साथ करना तो कुसग है ही, बल्कि कुसंग, कुठाम, कुमनुष्य, कुमन, कुवाक्य, कुदेश, कुखाद्य, कुवस्तु, कुजन्तु, कुकर्म ये सब कुसगरूप ही हैं। इनमे धॅसने से किया कराया परमार्थ साधन वैराग्य भक्ति के अकुर सूखकर नष्ट हो जाते है। अत उपरोक्त कुसगो से कल्याणार्थी सदा बचे रहे ॥ १०० ॥

जो जेहि इन्द्रिन सनमुख परे, उदय खोटि अध्यास।
सो सब जानि कुसंग है, देवै निशदिन त्रास ॥ १०१ ॥

टीका—जो प्राणी और पॉच विषय पदार्थ, जिन इन्द्रियो के सामने पड़कर उनके देखने सुनने, स्पर्श करने, स्वाद लेने, सूँघने तथा संग करने से हृदय मे दबी हुई खोटी कामनाये काम, क्रोध, लोभ, मोह, मदादिक सचेष्ट हो आवे, बल भरे, उन्ही सर्वको कुसग जानना चाहिये। यही सर्व कुसंग जीव को रात दिन खिचाव करके त्रास, चाहना, विक्षेप, असमजस, भय रूप कष्ट दिया करते है ॥ १०१ ॥

त्यागै तेहिको दूरि से, जहँ तक त्यागन योग।
नैराश्य वृत्ति तन भोग में, तन मन साधि अरोग ॥ १०२ ॥

टीका—उपरोक्त जहॉ तक राग-द्वेष से अलग रहि के तिसको त्यागा जा सके तहॉ तक सबका त्याग करे। क्योकि वासना वश जीव को असंयम बर्ताव और कुसग प्रभावित करके मद्य नशा न्याय ऐसी जगह में डाल देता है कि कल्याण करने का साहस ही नष्ट हो

साथ ही तो प्राप्त होते रहते है। अत: इस मन को विपय विलास से रोकना चाहिए। "इहै पेड उत्पति परलय का, विपया सबै विकारी।" यह गुरु वाक्य न भूलना चाहिये और भी विशेप परमार्थ की बाते उस मनुष्य के प्रश्नानुसार सत समझाकर उसके अज्ञान को हरण कर लिये। वह निर्भ्रान्त यथार्थ निश्चय सयुक्त हुआ हाथ जोड सतमार्ग पर चलने के लिये मनको रोकने की कोशिश करने लगा। अल्पकाल ही मे यथार्थ रहस्य को प्राप्त कर स्थिर हुआ। यदि हम इस अमृत विचार का पान करे तो वास्तविक सर्व दुख द्वन्द्व रहित हो जावें। स्ववश स्वतत्र मुक्तरूप होकर ठहर रहे।

कुअंग कुठाम कुमनुष्य जो, कुमन कुवाक्य कुदेश।
कुखाद्य कुवस्तु कुजन्तु है, कुकरम कुसंग हमेश॥ १०० ॥

टीका—नर-नारी के जिन-जिन अवयवो को देखने से कामादिक कुसस्कार जगे उन को कुअग कहते है। जिस जगह जाने से पाप और विपयवृत्ति जगे वैसे ठौर को कुठॉव कहते है। जो दुराचारी हिंसा मैथुन मद्य मे रत हो, जो वाचाल छली कपटी दम्भी असत-मार्गी हो, ऐसे कुमनुष्य के लक्षण है। जिन-जिन सकल्पो से जगत वासनाओ की पुष्टि हो, शुद्ध चैतन्य पर आवरण होते जाय, काम-क्रोध, स्त्री-स्मरण, वैर, राग-द्वेप विश्व प्रपच स्मरण ही कुमन है। जिन वचनो के सुनने या कहने से विपयासक्ति और वृथा अनुमान-कल्पना की पुष्टि हो, जो वाक्य अपने तथा दूसरे का प्रत्यक्षरूप से घातक हो, ऐसे कठोर झूठे वचनो को कुवाक्य कहते है। जिस देश शहर बाजार भूमि मे जाने, रहने, ठहरने, रमने से भक्ति सदाचरण धर्म मे विशेप रुकावट हो, वैसे देश मे विचरण करना कुदेश संग्रह है। खराब भोजन, हिंसा, मलीन, नशील, राजसी, उत्तेजक आहारो को कुखाद्य कहते है। वैराग्य विरोधी चीजे वैराग्यवान के लिये कुवस्तु है। कचन-कामिनी आदि सग्रह, मादक द्रव्य, चोरी की वस्तु,

नेत्र घुमा के शम कर लेना, यही अभ्यास स्वाद, स्पर्शादि सर्व ओर से मन रोकने मे करे।३—पुनः जब-जब मन परमार्थ मार्ग से कायर होने लगे, तब-तब परम वैराग्य मग लीन सन्त गुरु का स्मरण ध्यान जप तप करे। प्रेमी मे मन को स्थिर करना सरल उपाय है।४—पुन: सद्ग्रंथ के श्रवण-मनन-पठन करे, प्रत्येक अवसर की सुधारक बाते सद्ग्रथ मे आ जाती है। यह एक नित्य का बड़ा भारी सत्संग है। इस रीति से किसी समय दुख देख-देख के, किसी वक्त हठता करके कभी इष्ट देव का ध्यान करके, किसी अवसर में सद्ग्रथो का पठन मनन करके मन को स्ववश करे, कुसंगो से बचे। इसमें चार साधन और आगे श्रवण करो ॥ १०३ ॥

स्व स्वरुप स्मरण कहुँ, कहूँ अवस्तु अनिष्ठ।
कहूँ समझि मिथ्या सुखहिं, कहुँ तेहि सहन बलिष्ठ ॥१०४॥

टीका—(५) स्वयं चैतन्य नित्य तृप्त सर्व कामना रहित मै सर्वोत्तम हूँ, नित्य प्राप्त हूँ। मुझे प्राप्त करना कुछ नही है। जिस सुख शाति को मै खोजता हूँ वह मृग-कस्तूरी न्याय अपनी कुशलता ही भ्रम से मनन कर-करके जड़ भोगो मे दर्शती है। सो मैं ही सबकी कल्पना करने वाला निष्काम अमृत सत्य हूँ। मुझे बिल्कुल कामना करनी ही न चाहिये। एव यथार्थ विवेक से नर-नारी घटों की वासनामयी मोहकता में दौडे हुये मन को पकड़ के शात करे। ६—पुन: नर-नारी घटादि अन्य भोगों मे सुख मानना कल्पना की दृढता आदत मात्र से सुन्दरता की भ्राति होने से वह मानना भास अवस्तु वन्ध्यापुत्र वत मिथ्या है, ऐसा लक्ष्य मे दृढ करे। 'भरम का बाँधा ई जग' जब उधर कुछ नही तो क्यों दौड़े ? इस रीति से मन रोके। ७—कही पच विषयो की क्षणिक स्थिर वृत्ति का सुख मृगजल भ्रान्तिवत आनन्द है ही नही तहाँ दुख ही दुख सब जीव भोगते है। ऐसा विचार दृढ करके शात रहे। पुनः कभी कामादिक स्मरणो के

जाता है, याते कुसंग का त्याग अवश्य करना चाहिये । प्रारब्ध यात्रा पूर्ण निमित्त शरीर के छाजन भोजन व्यवहारादि मे उदासीनता व सतोष सहित बेगार भाव अथवा नौकर पालने वत कल्याण के काम लेने के भाव से प्रारब्ध गुजारना चाहिये । साथ ही तन-इन्द्रियो को रोके और मन की आशा वासा कामना सबको साधन सयम द्वारा त्याग करे, इस रीति से आरोग्य हो जावे । आरोग कहिये शुद्ध अंत -करण बनाय के शुद्ध स्वरूप मे स्थित होकर वासना कृत जन्म-मरण रोग से मुक्त हो जाना चाहिये ॥ १०२ ॥

तेहि त्यागन जेहि योग्य जस, दुःख जानि कहुँ हट्ठ ।
कहूँ इष्ट स्मरण लहि, कहुँ सद्ग्रन्थ ततष्ठ ॥१०३॥

कुसङ्ग कुवासनाओं को त्याग कर एकरस जीवनमुक्ति में विराजने के सरल श्रेष्ठ आठ उपाय

टीका—जो कुसग जिस प्रकार त्याग हो सके उसी युक्ति से त्यागे । विविध भ्रम ओर विषयाकर्षण करने वाले नर-नारी, ग्रन्थ-पथ, असतवादियों का सग दूर से छोडे और जहाँ निर्वाह आदि सिल-सिले से कुसग बढने लगते वहाँ जिस-जिस प्रकार खिचावा होवे उस-उस प्रकार सबका त्याग करता रहे १—विषय भोग त्रिकाल दुख पूर्ण है—नाश हो जाना, बदलते रहना, सुख भोगते भी अतृप्ति रहना, अपार कामनाओं की अग्नि भभकना, परिश्रम, चार खानियो मे जन्म-मरण तीन ताप का समग्र कष्ट विषय सुखों मे पूर्ण है। एव पूर्ण दुख स्मरण रक्खे विना सुख भ्रम से हट ही नही सकता। ताते विषय भोग कुसग सयोग त्रिकाल दुख पूर्ण है, ऐसी दृढ़ परीक्षा द्वारा मन को रोके। इतने पर भी मन दौडे तो तहाँ। २—हठता से जबर्दस्ती सयम करे, बलात्कार साधन किये बिना साधनपथ मे पाँव नही रुकता। पूर्व का चाटी हरहट मन इसे बलात्कार स्ववश करे। जैसे दुख जानते हुये भी रमणीक सौदर्य मे नेत्र दौडता है तहाँ हठ से

अनुयायियो का सम्बन्ध, आश्रम, पूज्यता, देश जाहिरात, रागद्वेष, नाम-रूप जो कुछ पिण्ड-ब्रह्माण्ड भासमान होता है सो सब छूटनेवाले अलग है। याते अलग की वस्तु अलग ही समझकर तिन्हो के मिलने बिछुड़ने पर हर्षित, शोकित और उद्वेगित न होवे। पिण्ड-ब्रह्माण्ड के प्रलोभनों तथा खिचावा से इन्द्रियो को रोके और मनोवासना को ध्वस करे, इस प्रकार तन-मन को साधन द्वारा शान्त करके कृतार्थ हो जावे। भाव—बाहर का अध्यास हटाकर चेतन जीव शुद्ध मुक्त रूप ही है॥ १०६ ॥

चलत फिरत खावत लखत, देह निर्वाहिक मध्य।
सुखाध्यास नहिं पुष्ट हो, तेहि विधि करनी सध्य ॥१०७॥

टीका—कल्याणार्थी को चलते-घूमते, खाते-देखते जहाँ तक देह ठहराव के लिये आवश्यक काम किये जाते है, तिन्हों मे भी यही लक्ष्य रक्खे कि राजस-तामस या आसक्ति सहित बर्ताव न होने पावे। जिस प्रकार सर्व सुखाध्यास ध्वस होवे उसी प्रकार सर्व रहनी साधन युक्त धारण करे॥ १०७ ॥

चौपाई

कोई जानै अथवा नहि जानै। कोई मानै अथवा नहि मानै॥
देह छुटै या रहै शरीरा। कोउ बिछुडे या मिलै समीरा॥
देश विदेश नदी तट बन मे। चलत फिरत सोया जो तन मे॥
दोहा—कोइ अवसर कोइ क्षण घड़ी, कोई ठाँव नहि भूल।
गुरू कृपा निज बोध बल, मुक्ति द्वार यहि रूल॥

शब्द

ये इन्द्री मन दुख दाई। कोइ जीते बिरला भाई॥टेक॥
यह तोला भरकी जिभ्या, यह बहुत चटोरी लिभ्या।
रस घाँटी नाघे माटी, फिर भी सब उतपाती॥
यहि दुर्मति जानि हटाई, ये इन्द्री ··· ··· ··· ॥ १ ॥

धक्का को बल पूर्वक सहन करे। जैसे क्रोध उद्वेग को क्षमालु पुरुष विचार बल से सहन करना, तैसे कामादिक भ्रान्ति वेग के ठोकर को विचार बल से सहने का अभ्यास करके मनोद्वेग मे न बहे। शीघ्र-शीघ्र अन्तर मनन को और बाहरी कुसगों को त्यागकर स्ववश विराजे। एव अष्टामृत औषधि को सेवन करना चाहिये ॥१०४॥

त्यागै सबै कुसंग को, सुख से जीवन बीति।
सिद्धि करै निज काज को, कबहुँ न तेहिको भीति ॥१०५॥

टीका—पूर्वोक्त रहस्यो को ठीक-ठीक सत्यता के साथ अभ्यास कर सर्व बन्धनरूप कुसगो के विघ्नों को हटा देवे, तभी सुख से प्रारब्ध यात्रा समाप्त होगी और निर्विघ्न कल्याण मार्ग का पुरुषार्थ भी सिद्ध होगा। इस प्रकार अपने जीव का जो मुख्य काम सर्व जड़ाध्यास का त्याग और अचल स्वरूप मे स्थिति होना है, उसे जल्दी से जल्दी पूर्ण करके स्ववशता पूर्वक सदैव विराजना चाहिये। फिर ऐसे पुरुषार्थी को जीवन भर और आगे भी इन्द्रिय-मन उपाधिकृत तथा बाहरी विक्षेप जनित कोई भय सकट आपदा न व्यापेगी। निर्भय निर्द्वन्द्व सद्स्वरूप निराधार स्थिति हो जायगी ॥ १०५ ॥

दोहा—"लाज मान शेखी नहीं, तर ऊपर नहिं देखि।
मन रिपु जेहि विधि नाश हो, सो सब दाव विशेषि ॥ १ ॥
सो सब दाव सँभारिये, ना तरु होई हान।
यत्न किये सब सहज है, सम्हरि गहौ गुरुज्ञान" ॥ २ ॥

जीव के बाहर है सबै, जहँ तक तन मन का साथ।
मिलन बिछोह न तेहि पचै, तन मन साधि सनाथ ॥१०६॥

टीका—अपने शुद्ध स्वरूप चैतन्य जीव से समग्र भास-मान व्यवहार पृथक ही है। जहाँ तक जो कुछ स्थूल-सूक्ष्म भौतिक देह और देह का साथ है तहाँ तक जीव के स्वरूप में भासमान पदार्थ कुछ नहीं। प्राणियो के घट, पंच विषय पदार्थ, धन-मित्र, प्रेमी-

हर्प-शोक अध्यासो को समूलता से नप्ट करने अर्थ तथा वोध-वैराग्य सदाचार आदि सर्व कल्याण की सामग्री का साम्राज्य एकरस चलाने के लिये नैराश्यता, निस्पृहता, उदारता, स्थिरता, गम्भीरता, तृप्ति-भाव, सहन-शीलता ये सब सद्गुण लावे। जव से सव सद्गुण निरन्तर आचरण करते-करते स्वभावसिद्ध बन जाते है तव देह वन्धन जडाध्यास रहित जीव विदेहमुक्त अचल हो जाता है। जो अनादि काल से अध्यास रोग नही छूट रहा था उसे बोधदृष्टि और शुद्धाचरण द्वारा थोडे ही समय के परिश्रम से अर्थात एक ही जन्म के सयम-साधन से ज्ञानवान सर्व बन्धनो को छेदन कर डालते है। हमे भी अनादि अविद्या अध्यास कृत दुखो के दमनार्थ यही सव सरल उपाय ग्रहण करना चाहिये ॥ १०८ ॥

पहिले जानि स्वरूप को, पाछे वन्धन चीन्ह।
दोनौं की परिचय भई, तवै मोक्ष लखि लीन्ह ॥ १०९ ॥

टीका—सर्व प्रथम तो जिसको मुक्त होना है उसका क्या स्वरूप है? अर्थात अपने सद्स्वरूप को भली प्रकार नि सशय रूप से सर्व दृश्य जड से पृथक का ज्ञान करे। पुन: जीव का मुख्य वन्धन क्या है, इस भेद को समझे। फिर दोनो बातें जब सत—सद्ग्रथ तथा स्वानुभव से दृढ हो जायँ, तभी जीव मुक्त होकर कहाँ रहता है? इस शंका का आप से आप समाधान हो जायगा ॥ १०९ ॥

पूरा अनुभव मोक्ष को, तवही लखै ठेकान।
विना यथारथ वोध के, कैसे तेहि पहिचान ॥ ११० ॥

टीका—जीवन्मुक्ति-विदेहमुक्ति का पूर्ण अनुभव और जीव के रहने का ठीक ठेकाना उसी दिन अपरोक्ष जानने मे आ जायगा जिस दिन ठीक-ठीक सत्य स्वरूप का ज्ञान प्राप्त किया जाय। जीव जिन चीजो मे जिस करके वन्धमान है वह सव भेद यथार्थ जव जानने में आ जाय तभी उन बन्धनों से छूटने का रास्ता भी मालूम

यह मासा भर की आँखी, जलती घूमै पाँखी।
फिर हाथ न आई रूपा, क्यों चंचल चपल दुरूपा ॥
लखि सर्पिण की यह खाई, ये इन्द्री० ... ... ॥ २ ॥

ये कान छिद्र के छोटे, सुनि सुनि फूलै मोटे।
करि राग द्वेष की उल्झन, ये खोया मुक्ति के साधन ॥
यह परखो भरम वचाई, ये इन्द्री० ... ... ॥ ३ ॥

यह नासा गधी गामिन, यह करती जीव हरामिन
मन मकरन्दा भूला, सब विपय वासना शूला ॥
लखि दुखमय लत सब ढाई, ये इन्द्री० ... ... ॥ ४ ॥

ये त्वचा छिद्र युत चलनी, करै कोटि रिपु करनी।
नित चाहै कोमल घरनी, ये अगणित दुख की झरनी ॥
यहि डाकिनि मारि गिराई, ये इन्द्री०... ... ... ॥ ५ ॥

ये मनुवाँ तो बहुरंगी, कामादिक दल अड़बगी।
यहि जानै कोइ सतसगी, ये मिलि मिलि घात छलगी ॥
यहि रोके नित्य भलाई, ये इन्द्री० ... ... ॥ ६ ॥

कह प्रेमदास रिपु नगरी, नहिं जाओ इनकी डगरी।
सजग समझ पगधारी, नहिं जाओ क्षण में मारी ॥
गुरु कबीर यही समझाई, ये इन्द्री० ... ... ॥ ७ ॥

जहँ तक तन का भोग है, शुद्धि रीति से भोग।
विदेह मोक्ष हो जीव की, काटि अनादी रोग ॥१०८॥

टीका—जब तक प्रारब्ध भोग रूप शरीर रहे तब तक बोधवान का कर्तव्य है कि शुद्धाचरण द्वारा ही उस प्रारब्ध भोग को व्यतीत करे। कामोत्पादक संग त्यागकर वैराग्यवान सदाचारी सन्त-सद्गुरु में प्रेम-निष्ठा रक्खे। क्रोध, रागद्वेष, प्रपंच वार्ता, हिंसादि सर्व दुर्गुण दबाने अर्थ क्षमा-समता का सदा उपयोग करे। काम-तृष्णा,

मे सुख निश्चय तथा खिचाव ये तीनो जब अन्दर-बाहर त्याग कर दिये जायँगे, तभी जरा-मरण, गर्भवास आदि दुख रहित होकर अचल स्वरूप मे सदा के लिये जीव ठहर रहेगा। इन तीनो का आगे विचार करिये ॥ ११२ ॥

यथार्थ समझ मैं देह नहिं, देह दृश्य जड़ रूप।
पारख मोर स्वरूप हैं, सबसे भिन्न अनूप ॥ ११३ ॥

टीका—ठीक-ठीक समझ-बूझ यही है कि मै चैतन्य जीव हूँ, यह दृश्य भौतिक जड देह नही हूँ। मै तो चैतन्य सबका जानने वाला हूँ, देह अचेत जड है। इस देह और देह सम्बन्धी तीन अवस्था, तीनपन समग्र पदार्थो को जानता हूँ, अत सम्पूर्ण पिण्ड-ब्रह्माण्ड से पृथक हूँ, पारख मेरा असली स्वरूप है। जो सबको परखै और सबसे भिन्न रहे सोई पारखी पारख रूप। मुझ पारख शुद्ध स्वरूप से विलग सर्व भासमान पिण्ड-ब्रह्माण्ड तुच्छ है। एव सबसे भिन्न जैसा अपना स्वरूप बोध द्वारा कथन किया जाता है, वैसा ही वस्तुत स्वय अपरोक्ष बोध प्राप्त होना और सदा वैसा ही निश्चय रखना यही यथार्थ समझ है ॥ ११३ ॥

प्रश्न—एक बार विवेक से उल्टी समझ त्यागने पर फिर विवेकादि साधन में परिश्रम तो नही करना पडेगा ?

उत्तर—इन्द्रिय, मन, प्रारब्ध, प्राणी आदि सग दोष का बादल वत आवरण आते रहते है, इसलिये जिन्दगी भर विवेकादि यत्न मे रत रहना पड़ेगा। कल्याण की इच्छा भी करे और तिसके यत्न से भय भी माने, यह विरोधी बात है। इस विघ्न का त्याग करो।

तन निर्वाहिक काज हित, सतसंगति सद्ग्रंथ।
शोध शांति हित शब्द लै, कुवच छोड़ि सदपंथ ॥ ११४ ॥

टीका—कल्याणार्थी को चाहिये कि जिसके बिना निर्वाहिक कार्य न चले, खास आवश्यक हो उतना ही बोले अनावश्यक वार्ता

होकर मुक्ति स्वदेश भूमिका स्पष्ट दर्शने लगेगी। भला! निज स्वरूप और तिसके बन्धन का ठीक-ठीक बोध प्राप्त किये बिना मुक्ति-देश किस-दृष्टि से पहिचानने—समझने मे आ सकता है? जैसे घोर अन्धकार मे कुछ नही सूझता तैसे स्वरूप को न जानना ही घोर अन्धकार-अविद्या है। तिस अविद्या दृष्टि से मुक्तिदेश नही समझ सकते। जैसे मनुष्यो की भीड़ मे किसी मनुष्य को पिछानना हो तो उसके सर्वाङ्ग हुलिया के जाने बिना पहिचान नही सकते, तद्वत प्रथम यथार्थ स्वरूप ज्ञान के बिना मुक्ति भूमिका नही जानी जा सकती॥ ११०॥

इन्द्रिन से अग्राह्य है, द्रष्टा पारख जौन।
जो देखत सब को रहै, तेहि देखन को कौन॥ १११॥

टीका—जो इन्द्रियो का द्रष्टा है, परीक्षक है वह इन्द्रियो से सर्वथा पृथक है। इसी से चेतन जीव इन जड इन्द्रियो से ग्रहण रहित है, इन्द्रियो से विषयो के समान पकड़ मे नही आता। भला! जो इन्द्रिय प्रकृति अथवा जन्म-मरणादि और सकल भावाभाव वृत्तियो को अलग रहि के देखता-पिछानता, मानता-जानता है, फिर उस चैतन्य को दृश्य जड़ समूह मे किसकी शक्ति है कि देख-समझ सके? वह स्वय ही अपने को सर्व ज्ञाता समझ सकता है। क्योकि चैतन्य का अर्थ ही है कि जो तन-मनादि सबको चेताता-प्रेरणा करता और आप किसी जड़ के द्वारा चेताया नही जाता, बल्कि स्वय चेतनरूप रहता है॥ १११॥

विपरीति समझ विपरीति क्रिया, विपरीति सुखाध्यास।
ये तीनौं छूटैं जबहिं, तबही दुख का नाश॥ ११२॥

टीका—दृश्य जड़ दुख पूर्ण को मै-मेरी सुखरूप मानना यह विपरीति समझ है। विपरीत क्रिया कहिये विषयासक्ति जनित समग्र असत आचरण और विपरीत सुखाध्यास कहिये पाँचो विषयो

वचन कहे तो भी वे उस पर धूल ही झोकेंगे। ऐसा स्वभाव स्वयं और पराये सबके लिये कष्ट दायक है ॥ ११६ ॥

मनमाने की बतकही, हित अनहित को छोड़ि।
कोई सुनैया नहिं सुनै, सबके मन को तोड़ि ॥ ११७ ॥

टीका—मन मे अच्छे या खराब जोई स्मरण हो गये, मशीन जैसे बिना विचार बातें झोकते रहना, दूसरे के तथा अपने स्वार्थ-परमार्थ वार्ता मे हिताहित का कुछ भी ध्यान न देकर बिना सोचे-विचारे बोलना। कोई श्रवण करे या न करे, श्रद्धा हो या न हो इसकी परवाह छोड सबके मन के प्रतिकूल बात कहकर जबरन तोड़-फोड़ तकलीफ पहुँचाते रहना, ये सब कुबोल के लक्षण जानना चाहिये ॥ ११७ ॥

सबको फटकारत रहै, जोर जोर बहु बोल।
घात करन की बतकही, ये सब बोल कुबोल ॥ ११८ ॥

टीका—अन्य को तुच्छ समझ के स्वय बड़प्पन का प्रमाद लेकर, सबको डाट-फटकार करके विवश करते रहने के ध्येय से बोलना, जो कुछ कहे सो अधिक जोर-जोर कडाके—उच्च स्वर से आवश्यक से विशेष वचन कहना। हानि, लड़ाई, झगडा, उत्पात, हिंसा कृत वचन कहना। अमुक को हम मार डालेंगे अथवा अमुक मनुष्य इस-इस प्रकार चोरी-डाका, खून-उत्पात किये व करते है, इस प्रकार के वचन बोलना निरुपाधि चहीता पुरुष त्याग करे। क्योकि इस प्रकार घात कृत वार्ता बतलाते रहने से एक तो मन मलीन हो जायगा, दूसरे अन्य को कष्ट की सम्भावना होकर अपने शिर कोई न कोई उपाधि आ पडेगी, याते घातक वार्ता कुबोल समझ के बिल्कुल त्याग करे। ऐसे ही सर्व कुबोल कामुक—धन हरणादि बाते कामी कामिनी छल प्रपच सम्बन्धी वार्ता ये सब कुबोल को हित चाहने वाले प्राणी छोड़ देवे ॥ ११८ ॥

मे अमूल्य समय नष्ट न करे। सत्सग परस्पर अधिकार देखकर निर्णय करना-कराना, कल्याण हित शका-समाधान समझना-समझाना, पुन सद्ग्रथ का पाठ करना। ऐसा सद्बोध और शान्ति सदाचरण प्रेरक सार शब्दो को भली प्रकार कहना, सुनना, मनन करना तथा आचरना चाहिये और जितना अनावश्यक बन्धन प्रद वाक्य है सो सर्व कुवाक्य है, तिसे छोड़कर सत मार्ग धारण करना चाहिये ॥ ११४ ॥

बोलै नहीं कुवाक्य को, झूँठ खर्स अश्लील।
छल चुगुली परमाद बच, भ्रमकृत वचन तजील ॥ ११५ ॥

टीका—जिससे दूसरे को कष्ट पहुँचे ऐसे वचन, मिथ्या भाषण, समयासमय तथा पात्र का न विचारकर बिल्कुल साफ कह देना, समता रहित शब्द, गालीप्रद वचन हँसी-ठठोली रजोगुणी—गाना-बजानादि, छल—कपट प्रपच वचन, दूसरे की लाई-लगाई करने वाले वचन, तन, धन विद्या मान के जोश मे दूसरे को तुच्छ नीचा दिखाने के वचन, जहाँ तक हिंसावाद भूत प्रेतादिवाद, अनुमान-कल्पना कृत जडवाद, जिसे सुनकर जीव भरम जाय, धोखे मे पड जाय, ऐसे भ्रम जन्य वचन का त्याग कर देना चाहिये ॥ ११५ ॥

मुख चलते कुछ शब्द हो, अर्थिक नहीं सुनात।
सब छिन सबकी बात को, काटब जाहि सोहात ॥ ११६ ॥

टीका—दूसरे को मालूम पडे कि कुछ कहा जा रहा है, मुख चलते शब्द सुन पडे किन्तु तिस वाक्य का क्या प्रयोजन है, यह जान न मिले, ऐसे वार्तालाप से भी सबके मन मे संदेह बनकर कुछ और ही विक्षेप खडा हो जाता है, अस्तु ऐसी वार्ता न करे। कोई तो प्रतिक्षण का यही धन्धा उठा लिये है कि जो दूसरे के मुख से शब्द निकला कि काटे सिद्ध। नीति-अनीति, साँच-झूठ, समय-

केवल सुख हित मान्य जेहि, और न कारज कोय।
सो स्पर्शहिं छोड़ि कै, वर्तें शक्ति लखोय॥ १२१॥

टीका—केवल सुख ही मानकर जो स्पर्श किये जायें और शरीर स्थिति मे उसका कोई प्रयोजन न हो बल्कि हानि कारक हो, जैसे अष्ट मैथुन, विचित्र क्रीडा आदि, सो स्पर्श को भली प्रकार छोड देना चाहिए। शीतोष्ण सहने मे जहाँ तक सहन कर मिले तहाँ तक सहे, जो आवश्यक हो उतना ग्रहण करे। यह स्मरण रहे—जिस-जिस स्पर्श से मन विकारी हो उस-उस स्पर्श को बिल्कुल त्यागना चाहिए॥ १२१॥

अंकूरज अरु अन्न जल, योग्य समय अनुसार।
शुद्ध अहिंसा वर्ति कै, सात्विक खाद्य विचार॥ १२२॥

टीका—अकुर से उत्पन्न होने वाले सर्व अनाज फल-फूल मूल को ग्रहण करे, वह भी समय के अनुसार जब जो कुछ यथा प्राप्त हो और अपने योग्य हो, उस पर भी पवित्रता का ध्यान हो, अहिंसा अर्थात मास, मछली, अण्डादि को सर्वथा त्यागकर ठीक-ठीक अन्नादि अमनिया करके जल छानि के सात्विक भोजन-प्रसाद ग्रहण करे। अधिक उत्तेजक तीक्षण पदार्थ जैसे अधिक खटाई, मिर्चा-मशाला, मिष्ठान्नादि त्याग के शारीरिक प्रकृति सोच विचार कर तिन्हो का ग्रहण हो तो औषध मात्र विवेक पूर्वक हल्का भोजन ग्रहण करना योग्य है॥ १२२॥

शुद्ध सात्विकी पात्र पट, शुद्ध अचार विचार।
विछेप रहित तन भूमि गृह, गन्ध सँभारि सुधार॥ १२३॥

टीका—पात्र-लोटा और पहिनने के वस्त्र आदि सब सात्विकी हो। जैसे मोटे वस्त्र-उदासीन, यह नहीं कि सोने-चाँदी के पात्र, सोना मण्डित कमण्डलु, रेशमी बहुत कीमती वस्त्र, कोट-कमीजादि जो कि साधुभेष के विरुद्ध भाँति-भाँति के टोप पायजामा आदि

कोइ कारज के करन में, बैठे चलते जव्य।
अनर्थ दृष्टि दुख त्यागि कै, योग्य सहज लखतव्य ॥ ११९ ॥

टीका—किसी भी स्वार्थिक-पारमार्थिक कार्य करते हुए बैठा हो या चलता हो अथवा जिस किसी भी समय मे हो अनर्थदृष्टि का सर्वथा त्याग करे। शृङ्गार, स्त्रियो के रूप, नाटक, सिनेमादि जिनसे कुवासनाओ की पुष्टि हो सो सब अनर्थदृष्टि दुखपूर्ण समझ के उधर से दृष्टि घुमावे। निर्वाहिक-पारमार्थिक कार्यो की सिद्धि मे जो देखकर आवश्यकीय कार्य किया जाता है वह योग्यदृष्टि गहे और सहजिक जो दृष्टि के सामने ऐसे ही पडा करते, जिसके देखने ने न हर्ष ही होता न शोक ही, इन सब समयो में विकारी अश त्यागते हुए उदासीनतायुक्त यथार्थ दृष्टि रखनी चाहिये ॥ ११९ ॥

शीत उष्ण को सहन लखि, कोमल कठिन विचार।
वस्त्र शयन बैठन चलन, वर्तै परश सुधार ॥ १२० ॥

टीका—जहाँ तक सहन करने से शरीर मे कोई विशेप उत्पात न खडा हो, तहाँ तक ठण्डी, गर्मी, कठिनता को विचार पूर्वक सहन करके भली प्रकार तितिक्षा धारण करना चाहिये। शरीर को कोमल पदार्थो का अहदी न बनाना चाहिये। वस्त्र पहिनने मे, सोने मे बैठने-चलने आदि सर्वत्र कोमल सुखो की आसक्ति का त्याग करना चाहिये। यदि महीन वस्त्र, कोमल जूता, गद्दी-तकिया आदि का अभ्यास कर लिया जाय तो पैदल चलने, मोटे वस्त्र पहिनने, गद्दी-तकिया आदि नपाने पर बड़ा कष्ट होगा, पुन उनकी प्राप्ति हित नाना बन्धन लेना पडेगा। इससे ऐसा अभ्यास करे कि कोमल सुखो की तरफ आसक्ति न बनने पाये। इस तितिक्षा साधन से प्रथम निष्फिक्रता रहेगी, व्यवहार का भार कम पड़ेगा, भय रहित स्ववश निर्बन्ध विराजेगा ॥ १२० ॥

कृत वचन जिसे सुनकर संसारी प्रपंच भरे ऐसे अनुकूल-प्रतिकूल शब्द श्रवण की किंचित इच्छा न करे। सर्वाङ्ग सम्पन्न तरुणी राजमहल रत्न देश गाँव आदि जिसे देख-देख कर मन हर्षायमान होता हो उनको देखने की किंचित लालसा न चलावे, सनमुख पड़ने पर वारम्बार अवलोकन भी न करे। किसिम-किसिम के कोमल स्पर्श की चाहना उठने ही न देवे, न तो भाँति-भाँति नासिका के अनुकूल सुगन्धी द्रव्यों की इच्छा ही करे॥ १२४ ॥

जल भोजन की चाह नहिं, केवल तन निर्वाह।
इन सब में सुख मान्य तजि, लेय जीव की राह ॥ १२५ ॥

टीका—अन्न-जल की भी कोई कामना न रक्खे, यहाँ तक कि स्वरूप प्रियता के अलावा कोई भी शुभाशुभ कामना शेष न रक्खे। पूर्ववेग से खडे शरीर की प्रारब्ध यात्रा पूर्ण करने मात्र निर्वाह पर ध्यान रख के अन्न-वस्त्रादि उदासीनता से ग्रहण करे। विशेष सुखो को लेना तो दूर ही रक्खे बल्कि भोजन-वस्त्र के व्यवहार मे भी सुख मानन्दी त्यागकर ठीहा वत देह रक्षा भर देह का बेगार भर के फिर इससे जीव का काज करे, परमार्थ मार्ग आचरे ॥ १२५ ॥

देखि सुनब सूँघब परश, खाब पियब तन हेत।
जेहि बिन तन निर्वाह चल, ताहि परखि तजि देत ॥ १२६ ॥

टीका—देखना, सुनना, सूँघना, छूना, भोजन-पानी आदि ग्रहण करना, ये सब मात्र शरीर रक्षा के हेतु से करना चाहिये और शरीर रक्षा नौकर पालने वत उससे अपने जगत-बन्धन छूटने का पुरुषार्थ करना चाहिये। जिस-जिस क्रिया पदार्थ संयोग के बिना शरीर का निर्वाह चल जाय उस-उसको बन्धन पूर्ण समझ के पारखदृष्टि द्वारा सर्व उपाधि रूप जान कर त्याग देना चाहिये, क्योंकि ॥ १२६ ॥

वैराग्यवान को धारण न करना चाहिये। शुद्ध आचार-विचार युत रहना चाहिये। आचार कहिये बाहरी शुद्ध घेरा, पुण्य मार्ग देशी प्रथा अनुसार चौका लगा के भोजन पाना, कपड़ा-जूता निकाल के भोजन करना। यदि इन शुद्धाचारो को छोड़ दिया जाय तो आलस्य, पशुवत मलीनता व्यवहार बढ के मलीन वासना पुष्ट होना सम्भव है। हाँ ! जो आचार मे पाखण्ड शामिल है उसको ग्रहण करने से रत्न समय नष्ट होगा, इसलिये योग्य पवित्र आचार ग्रहण करे, परमार्थ बाधक आचार त्याग करे। विचार कहिये जल छान के, अन्न अमनिया कर, वर्तन स्वच्छकर भोजन (प्रसाद) बना के पाना इस विचार को भली प्रकार गहे। विचार पूर्वक आचार व्यवहार मे मध्य वर्ताव रहस्य गहना चाहिये। भाव यह कि देश काल समयानुसार यथार्थ आलस्य रहित अतर-बाहर पवित्राचार रखनेही से शीघ्र अत करणके कामादिक दोप क्षीण होते है और मन शात होता है। एवं गुरु विचार लेकर विवेक युक्त आचार-विचार की रहनी अवश्य रखनी चाहिये, इस प्रकार गन्ध सुधारे। पुन. अपने और दूसरे को दुर्गन्ध युक्त विक्षेप न पडे, इस हेतु अपना शरीर और रहने के ठौर पृथ्वी मकानादि यथायोग्य पदार्थ स्वच्छ रक्खे। जिस भूमि, सग, ठौर व सग से विक्षेप-उद्विग्नता भय आपत्ति आती जान पडे, वह सब दुर्गन्धरूप है। दुर्गन्ध कहिये विक्षेप मूल मलीनता या कुसंग, कुपदार्थ कुव्यवहार और सुगंध कहिये इत्र, तैल, सुवासासक्ति दोनो त्यागकर योग्य स्ववश निर्वासनारूप स्वच्छता धारण कर मन के विकार को अच्छी प्रकार दमन करके अपना सुधार करना चाहिये॥ १२३ ॥

सुनने की कोइ चाह नहिं, नहिं देखन की चाह।
सपरश की कोइ चाह नहिं, नहिं सूँघन की चाह॥ १२४॥

टीका—मान-बड़ाई या राग-तान लोक कोलाहल शत्रु निन्दादि

दी गई हैं। उसे ठीक-ठीक सावधानी से समझ-बूझ के यथार्थ उपयोग में लावे तो सहज ही श्रम से शरीर बधन जडग्रथि नष्ट हो जायगी। फिर अपने भ्रम और अज्ञान को निकालकर जीवन्मुक्ति मे एकरस ठहरते हुए प्रारब्धान्त पश्चात विदेह मुक्ति मे स्थित हो जायगा। पूर्वोक्त सब विपरीत क्रिया और यथार्थ क्रिया का विवेचन किया गया है॥ १२६ ॥

भोगों का सुखभास जो, संस्कार दिल बीच।
समय समय जब यादि ह्वै, भावै अति मन कीच॥ १३०॥

टीका—इन्द्रियो द्वारे हर प्रकार के पदार्थों को देख सुन भोगकर पाँचों विषयों में जो सुख का निश्चय कर लिया गया है, वही सूक्ष्म सस्कार अतःकरण मे गुप्त रूप से ठहरा हुआ है। समय-समय पर वही सुख भ्रम स्मरण हो-होकर वे ही मलीन दुखपूर्ण भोग-विषय, युवती, स्वाद, बहु व्यवहारादिक मान-प्रेम मन को बहुत अच्छे लगते, यह मलीन वासना ही सुखाध्यास है, तिसे आगे पुन कहते है—॥ १३०॥

सुखाध्यास विपरीति ये, ठेलि होय भव पार।
स्वस्वरूप स्थिति प्रिये, धारि सोई सुखसार॥ १३१॥

टीका—पूर्व पञ्च भोगों की वासनाये जो अच्छी लगती है, वे ही निज शुद्ध चैतन्य को चञ्चल करने वाली है। उन्हे शुद्ध स्वरूप के विपरीत दुखपूर्ण जन्म-मरण त्रयताप का कारण बन्धनप्रद जानकर परित्याग करे, तब दुख समुद्र संसार सागर मनोमय से पार हो जावे। किस शक्ति से सुखाध्यास को ठेले? तो सुनिये—स्व कहिये अपना जैसा शुद्ध चैतन्य है तैसा समझ के वासना रहित ठहरने का अभ्यास करते हुए निष्कामता-निर्चाहता का यथार्थ सुख पुष्ट करके स्वरूपस्थिति का ही परम प्रेमी बन जाइये और उसी नैराश्य-निरिच्छारूप परम सुख को सादर सदा सेवन करते रहिये॥ १३१॥

सुख हित खैंचै जौनि नहिं, तेहि से नहीं अकाज।
पंच क्रिया को भेद ये, सुख हित खैंच कुकाज ॥ १२७॥

टीका—केवल इन्द्रिय सुख के लिये अपने चित्त मे जिधर खिचाव नही होता, बल्कि निर्वाह पर लक्ष्य रख के जो इन्द्रियों से आवश्यक क्रिया की जाती है, उससे कल्याण की हानि नही होती। वह तो प्रारब्ध रोग की निवृत्ति हेतु एक प्रकार कड़ुवी-मीठी जैसी भी योग्य दवा के समान आवश्यक है। पाँचों इन्द्रियों की क्रिया मे यही बात है। निर्वाह मात्र का ग्रहण करना और मन कल्पित सुख के लिये खिचाव राग ही कुकाज-दुखदाई जान के उसका त्याग करना ॥ १२७ ॥

अमित काल से मैं बँधा, हठ कीन्हें नहिं छूट।
जेहि विधि बन्धन नाश ही, मारग सोई अखूट ॥ १२८॥

टीका—गिनती नही कितने समय से अर्थात अनादि काल से हम सब जीव इस देहोपाधि सुखाध्यास जजीर मे बधे हुए चले आ रहे है। केवल विना विचार हठता मात्र से यह जीव बन्धन से छूट नही सकता। कष्ट से शरीर भले जीर्ण कर डाले, परन्तु जिस युक्ति से जो बन्धन होना है उसी प्रकार उसको उलटने से उसका नाश भी होता है। यहाँ सुखाध्यास भूल कृत बन्धन है, उसे पूर्ण परीक्षा करके जिन-जिन युक्तियो से बन्धन की निवृत्ति हो वही-वही साधन-सयम रूप मार्ग अखण्ड भाव से शरीरान्त तक पकडना चाहिये। वासना को ध्वस करने मे मात्र हठता ही काम नही देती, उसके साथ सद्गुरु सम्मत यथार्थ विवेक भी पुष्ट होना चाहिये। कुसग त्याग सत्सग अनुराग तो आवश्यक ही है॥ १२८ ॥

बन्ध निर्बन्धहिं भेद ये, समुझि यथारथ हाल।
तन बन्धन छूटै सहज, भरम अबोध निकाल ॥ १२९॥

टीका—पूर्वोक्त बन्ध और मोक्ष की सब बाते स्पष्टता से बता

सवैया

जिमि प्रेम अहै धन नारि विषय लौ लागी रह्यो अभियंतर माही।
कोटिन कोटि सहै सब आपति नेकु न चित्त से ताहि दुराही॥
ऐसहि प्रेम लगै निज रूप मे जो नित जीव स्वतंत्र रहाही।
त्यागि सबै तृण के सम राग जु पारख रूप अभय टिकि जाही॥१॥

प्रश्न—स्वरूप स्थिति प्रियता दिन-दिन वढे वह उपाय क्या है?

उत्तर—स्थितिवान सत की उपासना, समय-समय पर उनका साथ. चित्त गति शमन, निर्जन रमन, स्थिति दर्शक ग्रन्थो का पाठ-पठन अर्थ विवेक ग्रहण, फैलावा-तृष्णा का त्याग, मृत्यु पर्यन्त सन्मार्ग मे ही चलने का दृढ निश्चय।

पारख पद स्थिर सदा, जहाँ न जग का फन्द।
जाहि प्राप्ति तेहि भास नशि, मिटिगा संसृत धन्ध॥१३२॥

टीका—स्मरण और स्मरण द्वारा जो कुछ जानने मे आवे ताको भिन्न परख के डाले तथा आप सन्देह भ्रम रहित स्थिर रहे वही पारखी पारखरूप, सो पारख जीव का शुद्ध स्वरूप सदा अचल है। जिस शुद्ध स्वरूप पारखपद मे भौतिक जगत का कोई भी बन्धन शोक-मोह प्रपंच नही है, जिस जिज्ञासु को गुरु की कृपा द्वारा निज शुद्ध पारखदृष्टि प्राप्ति हुई उसके सर्व भास इस प्रकार नष्ट हो जाते है—१—शीत-उष्ण-वर्षा ग्रहणादि भेद दिन-रात आदि भिन्न-भिन्न ब्रह्माण्ड के कार्य पृथ्वी, अग्नि, वायु, सूर्य, चान्द्रादि अनादि जड तत्वो के गुण-शक्ति से स्वाभाविक हुआ करते है। क्रिया के बिना कुछ भी कार्य होता नही, सो क्रिया चार तत्वो मे स्वाभाविक ही है। भिन्न-भिन्न ज्ञात हो या समूह कारण रूप से वस्तु की क्रियात्मकता हो, किसी प्रकार भी वोधवान को सदेह नही होता। जड़ ब्रह्माण्ड ज्ञाता सर्व देहधारी चेतन जीव है, सो जड़ इन्द्रियो के सघात द्वारा कर्म अध्यास वश तीन अवस्थावत पाप-पुण्य वासना द्वारा चार

सद्गुरवे नमः

मुक्तिद्वार

पंचम पाठ

निवृत्ति साहस शतक

वन्दना साखी

वन्दीछोर बन्धन हरौ, साहस निज पद शोध।
तत्पर करि तेहि काज में, मेटौ भरम अबोध ॥ १ ॥

टीका—खानि-वानी पञ्च विषयरूप सर्व बन्धनों से छुडाने वाले हे वन्दीमोचन सद्गुरुदेव ! मेरे स्थूल—सूक्ष्म सर्व मनोमय बन्धनो को हर लीजिए—परखा के छोडा दीजिए। सत्य चेतन स्वरूप और स्थिति के सब अङ्ग परीक्षा करने मे मेरे हृदय की हिचकिचाहट मिथ्या पक्ष आलस्य प्रमाद दूर हो, दिनोदिन सत्यन्याय निर्णय मे साहस-हिम्मत अभग रुचि हो। इस प्रकार निर्णय ही के कार्य मे तत्पर कराय मेरे भ्रम, संदेह और अज्ञान को चूर्ण कर दीजिए, यही नम्र निवेदन है ॥ १ ॥

तेहि धारण पुरुषार्थ में, बढ़ै दिनौंदिन प्रेम।
साधु संत से यह विनय, पूर करौ मम नेम ॥ २ ॥

हेतु-छन्द

क्या परिश्रम साधनो मे,
लाभ अगणित नित्य जू ।
सादर सुहर्ष स्वधारणा में,
प्राण अर्पि अभित्य जू ॥
निश्चय अटल के ढाल पर,
सव विघ्न वार टलंत जू ।
इत दृष्टि करने मात्र से,
सव काम शीघ्र वनंत जू ॥

साखी

वोध शोध निज तेज वल,
किमि ठहरै भ्रम अन्ध ।
निश्चय साहस वढ़त नव,
करतल मोक्ष प्रवन्ध ॥

चीजो को प्रकाश करने वाला है। वायु तत्व दृष्टि गोचर रहित सब चीजों को उडाने, हिलाने वाला है। जल तत्त्व प्रत्यक्ष शीत युक्त है और पृथ्वी तत्व उन तीनों तत्वो के गुण धर्मो से रहित धारण शक्ति युक्ति कठोर धर्म सहित देखा जाता है ॥ ३ ॥

चारौ से चारौ पृथक, यहिसे उतपति हीन।
इन्द्रिन द्वार प्रत्यच्च सो, सब ही देखत पीन ॥ ४ ॥

टीका—इस प्रकार अग्नि, जल, वायु और पृथ्वी भिन्न-भिन्न गुण धर्म युक्त चारों से चारो अलग है, यही हेतु है कि ये किसी समय उत्पन्न नही हुये। यदि अग्नि से सब तत्व होते तो सर्व अग्नि ही के गुणों से पूर्ण होते। ऐसे ही वायु और पृथ्वी से सर्व होते तो वायु और पृथ्वी के गुण ही होते, एक शक्ति के उल्टे अनादि स्वाभाविक भिन्न-भिन्न गुण-धर्मी न होते। भिन्न-भिन्न होने से ही अपनी-अपनी शक्ति युक्ति ये अनादि ही है। ये पच ज्ञान इन्द्रियो द्वारे अपने-अपने गुण-धर्म से पूर्ण रूप से सब देहधारी जोवो को प्रत्यक्ष अनुभव होते है, अतः इनके अनादि होने मे कोई सदेह नही है ॥ ४ ॥

एक एक में ना मिलै, कारण कारज कोय।
भिन्न अनादी तत्व सब, ज्यों का तेवहिं रहोय ॥ ५ ॥

टीका—चार तत्वों के वातावरण मे बिखरे हुए सूक्ष्म परमाणु और स्थूल समूह रूप पृथ्वी, समुद्र, सूर्य, वायु मण्डल ये कारण तत्व एक दूसरे मे नही मिलते। तैसे ही तिनके कार्य भी भिन्न ही भिन्न रहते, पृथ्वी और पृथ्वी के कार्य—पत्थर, घर, घड़ा, वीज-वृक्षादि। जल और जल के कार्य—वुदवुदा, बादल, तरगादि। अग्नि और अग्नि के कार्य—अंगार, दीप, विद्युत आदि। वायु और वायु के कार्य—ऑधी, वौड़र आदि। इस प्रकार पृथ्वी-समुद्र-सूर्य वातावरण वायु कारण तत्वो मे देखिये और तिनके वीज, वृक्ष, पत्थर, अंगार आदि कार्यो मे देखिये अपना-अपना कार्य अपने-अपने कारणों से अभेद है।

टीका—ऊपर कहे गये कल्याणमार्ग की शोधनदृष्टि और तिस-की स्थिति-रक्षा के सर्व साधक रहस्य-सत्संग, निर्णय श्रवण, सद्ग्रन्थ सुविचार पान, संयम, मनोद्रष्टा, गुणग्राही, निष्पक्ष, शांति अभ्यास आदि पुरुषार्थ करने मे हमारा दिनोदिन स्नेह बढता ही जावे। ऐसा न हो कि हम अल्प ही में पूर्ण मानकर स्व मार्ग से साहसहीन हो जावें, किन्तु अपना सतमार्ग हम सादर अंत तक पूरा अवश्य करे। यही पारखनिष्ठ रहस्ययुक्त साधुगुरु से इस दास की अर्जी है, सो मुझ दास को गर्जी समझ के मर्जी किया जाय और हमारी उपरोक्त दृढ़ प्रतिज्ञा को आदि से अंत तक निर्विघ्न पूर्ण कर दिया जाय ॥२॥

प्रार्थना

धर्म के नाता पिता सखा है। वन्दन करत प्रभो सदा है ॥टेक॥
क्षण क्षण दया तुम्ही तो करते। सत्य झूठ परखाय सम्हरते ॥
छल बल चचल विषयी मन है। मुक्ति पंथ मे बड़ो कृपन है ॥
इसकी सकल कुचाली नाशो। रवि सम ज्ञान बोध परकाशो ॥
हम मे वह साहस बल शक्ती। वह अर्पण वह भरदो भक्ती ॥
वह उदार वह त्याग औ सयम। ब्रह्मचर्य वह सत व्रत शमदम ॥
वह सतसंग रंग की बूटी। वही पिला दो धर्म घूँटी ॥
सहन परिश्रम प्रेम भि वहई। तन धन प्राण जाय तउ सहई ॥
वही शोध वह बोध पताका। फहरै सदा हृदय तव शाका ॥
कहँ नक कहौ वही सब युक्ती। भव सिन्धू से पाऊँ मुक्ती ॥
और रहनि अपनी रुचि जैसी। प्रेरि करौ गुरुवर निज तैसी ॥
और विशेष शरण ले जन को। दौ निवाहि अब प्रेम परन को ॥

प्रसङ्ग १—जड़ चेतन विभेद

पावक उष्ण प्रकाशता, मारुत अदृश्य उड़ाव।
नीर शीत महि तीनि तजि, धारण कठिन देखाव ॥ ३ ॥

टीका—अग्नि तत्व गरम है, वस्तुओं को जलाने वाला तथा सब

टीका—देहोपाधियुक्त अनादि काल से सब देहधारी जीवो मे मुख्य इच्छा शक्ति है। इन्द्रियों द्वारे पाँच विषयों को देख सुन भोग के संस्कार टिकाकर सुख-दुख ग्रहण-त्याग तीनों काल के लिये बारम्बार सकल्प-विकल्प उठाने को इच्छा-शक्ति कहते है। सुखाध्यास वश रहे हुये इच्छाशक्ति सहित उठना-बैठना त्याग-ग्रहण सब जीव ही करते रहते है, मुर्दा नही। अनादि काल से नित्य जीव ही देहोपाधियुक्ति कर्म से देह, देह से कर्म एव स्थूल सूक्ष्म सस्कार ग्रहण करते ही आये है। दूसरी—अन्न जल से शरीरो मे बल-रूप शक्ति है, वह शक्ति सुखाशा वश जव तक देहों मे जीव बासा किये है तभी तक है। तीसरी—प्राणशक्ति है, जो कि श्वासोच्छ्वास रूप से शरीर सम्बन्ध मे लोहार-भाती वत देहधारी जीव प्रारब्धान्त तक श्वास लेते रहते है। इतने मेल[1] से देह और जीव का सम्बन्ध चल रहा है॥ ७॥

इच्छाशक्ति सुख मानि करि, तेहि हित जाल रचीव।
बँधा ताहिमें जीव यह, विविधि प्रयत्न करीव॥ ८॥

टीका—इच्छाशक्ति पंच विषयो मे सुख मानकर ही बनी है। उसी सुख इच्छा पुरौती के लिये लौकिक-वैदिक समग्र मनोमय भ्रम जाल को यह जीव रचता रहता है। उसी पंच विषय कृत अपने कृत्रिमजाल मे कर्त्ता जीव अनादि काल से वधायमान होते आया है। सुख इच्छा करके ही स्त्री-पुरुष परस्पर देखने सुनने भोगने मे

१. टिप्पणी—उपरोक्त तीनो शक्तियाँ खास जीव के स्वरूप मे नही है, देहोपाधियुक्त संवन्ध मे ही है। तिसमे शरीर वल और श्वासोच्छ्वासरूप श्वासशक्ति देहान्त मे छूट करके केवल तिन्हो का बीज मात्र मुख्य सूक्ष्म देह-युक्त अर्थात अत करण मे ठहरे हुये अन्य तत्त्वयुक्त सूक्ष्म अदृश्य वायु सहित सूक्ष्म सुखाध्यास संस्कार जीव के साथ रहा हुआ पुन-पुन: स्थूल देह धरने-छोड़ने का हेतु हुआ करता है।

कारण तत्त्व एक दूसरे का रूप न होने से सब तत्व अपने-अपने गुण धर्मो से न्यारे ही न्यारे दर्शते है। इसीलिये सब तत्व भिन्न गुण धर्म युक्त अनादि ज्यो के त्यो घट वढ रहित स्थित है। जैसे पृथ्वी मे जल भाग, उष्ण भाग, वायु भाग, पृथ्वी के लक्षणो से अलग ही दर्शित होते है, ऐसे ही सूर्य-समुद्र, वायु-मण्डल मे भी समझिये ओर कार्यरूप वृक्ष मे रस भाग जल का, स्थूल भाग पृथ्वी का, उष्ण भाग अग्नि का, और भीतर रही हुई वायु कि जिससे नीचे की शक्ति ऊपर चढनी वह वायु भाग, घट-वढ़ ऐसे ही सब कार्यो मे जानिये। कारण-भाग और कारज मे घूम-घूमकर वे ही तत्व जितने अनादि से है उतने ही रहते है, कम विशेप नही होते, याते वे न्यारे-न्यारे अनादि उत्पत्ति रहित सदा से है। जैसे ये आज वर्तमान मे है, तैसे इन्हे तीन काल मे ज्यों का त्यो उत्पत्ति-प्रलय रहित जानना चाहिये॥ ५ ॥

जड़ में चेतन ना मिला, खोजे विविधि प्रकार।
पृथक धरम जड़ तत्व तजि, जीवन का विस्तार॥ ६॥

टीका—अनेको प्रकार से तलाश करके देखा गया जड़ तत्वो में कही भी चेतनपना नही दर्शित हुआ। कारण-कारज सब पच विषय रूप ही जड ही है। जैसे अग्नि कभी वायु नही होती, जल कभी पृथ्वी नही होता, तैसे जड़ तत्त्वो के गुण धर्मो से चेतन जीव न्यारा है। वह कभी जड से होता नही। जड़ तत्वो के गुण धर्मो को छोड़कर तिनसे पृथक ज्ञान कलायुक्त भिन्न-भिन्न अखण्ड नित्य जीवो का विस्तार है। चार खनियो के जड़ शरीरो को सत्ता देने वाले ज्ञान कलायुक्त भिन्न-भिन्न अनन्त अखण्डरूप है, वे देहोपाधियुक्ति कर्म करते-भोगते वासना वश प्रत्यक्ष अनुभव हो रहे है॥ ६ ॥

इच्छा औ बल शक्ति है, सुखाध्यास वश जीव।
प्राण शक्ति तेहि साथ में, तन सम्बन्ध चलीव॥ ७॥

था, उस समय शिवाजी ने अपने सरदारों और सिपाहियो को यह हुक्म दिया था कि जहाँ मुसलमानों को देखो तहाँ मार दो। यह खबर पाकर बहुत से मुसलमान चन्दन टीका करके जनेऊ भी पहन लिये थे। एक बार एक मुसलमान शिवाजी के सामने पड गया। शिवाजी ने पूछा कि तू कौन है? उसने कहा—बरेहमन। पूछा—कौन बरेहमन? कहा—गौड। फिर शिवाजी ने पूछा—कौन गौड़? वह बोला—या अल्ला मियाँ! गौड़ मे भी और? बस पोल खुल गई। शिवाजी ने कहा—अरे! मारो-मारो ये तो ब्राह्मण नही तुरुक है, इतना सुनते ही सिपाहियो ने उसे तुरन्त मार डाला। सच है—

दोहा—"अस्सी बरस की मित्रता, पल छल करते जाय।
छल जाने नहि बँधत मन, ठग से नाहि लुटाय॥"

सिद्धान्त—जीव शिवाजी है, वह दुख तुरुक को बिल्कुल नही चाहता, किन्तु अनादि से देहोपाधि युक्त अज्ञान के कारण से दुख ही को सुख मान रक्खा है। सद्‌गुरु सत्संग से जब शुद्ध अपने को चैतन्य समझ के अपने से पृथक सब इच्छा-वासना की पोल मिथ्यात्व ठीक-ठीक परख लेगा उस दिन सुख इच्छा को मार कर दुख-सुख रहित पारख स्वरूप मे एकरस अचल विराजेगा।

प्रसग २—वर्तमान के आधार पर तीनो काल के लाभ औ
हानि मनुष्य के निश्चय और कर्तव्य पर निर्भर है

जो नेत्रन देखै नहीं, श्रोत्र सुनै नहिं जाहि।
जो मुख से बोलै नहीं, तजि निश्चय जेहि काहि॥ १०॥

टीका—वर्तमान मे जिसे नेत्र से देखा नही जाता है, कान से जिसकी वार्ता सुनी भी नही जाती, जिसका स्वयं मुख से बयान भी नही किया जाता और जिसमें सुख निश्चयता भी छोड़ दी जाती है, इस प्रकार पूर्व राग सम्बन्ध से हटकर चारो क्रिया वर्तमान मे बन्द कर देने से उसकी वासनाये सर्वथा नष्ट हो जाती है॥ १०॥

दीप-पतंगवत जलते रहते है। पुत्र मे सुख की आशा से ही स्नेह करके अपने को जीवन भर के लिये बेच देते है। सब नात गोत मे सुख प्रियता के लोभ से यह जीव रागवान रहता है। यहाँ तक कि कर्त्ता—ईश्वर, ब्रह्म, स्वर्ग-बैकुण्ठ और विज्ञानवाद आदि नाना भ्रम मत की कल्पना सुखार्थ ही करता है और नाना उपाय पाप-पुण्य सर्व कर्त्तव्य उसी सुखाशा पूर्त्ति ही के लिये जीव करता रहता है। इस प्रकार सुख मानकर इच्छा से कर्म और कर्म से इच्छा सुखाध्यास करके बन्धन पुष्ट कर लिया है ॥ ८ ॥

इच्छा शक्ती भूल से, तेहिते तन सम्बन्ध।
स्वरूप बोध की दृष्टि लै, जानि तजै दुख धन्ध ॥ ९ ॥

टीका—सम्पूर्ण मनोमय इच्छाये निज स्वरूप के भूल से बन गई है—"भरम का बाँधा ई जग" "है इन्द्रिन सम्वन्ध हमेशा, दृश्य मे लक्ष बहै। तेहि मानन्दी आप को भूला, जड़ सम्वन्ध यहै।" एव भूल से इच्छा और इच्छा-भूल लेकर ही जड़ देह का सम्बन्ध है, सम्बन्ध ही में भूल इस रीति से अनादि काल से देह धरते-छोड़ते जीव चले आये है। शरीर छोड़ते हुये जैसे संस्कार उदय होते हैं, तैसी देह धारण होती रहती। तो इस जड़ देह का सम्बन्ध आवागमन का प्रवाह तभी मिटेगा, जब दुख-सुख, हानि लाभ, तन-मन-प्राण सर्वका जनैया जैसा अपना शुद्ध स्वरूप है, तैसा ही बोधदृष्टि धारण करके निज स्थिति के अलावा अन्य सर्व पच भोग क्रियाओं को दुख का धन्धा देखकर उन सबों की पकड़ त्याग कर देवे ॥ ९ ॥

छन्द—दृष्टि का ही भेद है तुम दृष्टि शीघ्र घुमाय दो।
अंतःकरण को माँजकर निज रूप आप रहाय दो॥
प्राप्त नही करना कछू बरु प्राप्त भास तजाय है।
बस आप ही अवशेष रह वैराग्य दिल में आय है॥

दृष्टान्त—शिवाजी और मुसलमानों मे जिस समय युद्ध हो रहा

व्यवहार मे रहा जाता है, उसका असर भीतर न रखकर दूरस्थ प्रथम वाले का ही प्रेम रक्खा जा सकता है। जरा भी दूर रहे हुये प्राणी पदार्थो का सुख निश्चय और प्रयत्न कम पडा कि तैसे ही वर्तमान सनमुख सग रग क्रिया का ही भाव भीतर पुष्ट हो जायेगा। वर्तमान सनमुख सम्बन्ध से पृथक दूरवाले का भाव शिथिल पड़कर वह दूर का दूर ही हो जायगा। यदि जहाँ कही रहा और बरता जाता है, वहाँ के संग, क्रिया व्यवहार मे थोडा भी सुख प्रियता हो तब तो दूर का तो भाव ही रखना नही बन सकता। यदि कुछ भाव रक्खेगा भी तो कुछ काल मे वह भी ठण्ढा पड जायगा। इसका मतलबयह है कि वर्तमान मे जो संग-रग, पुरुषार्थ होता है वही बलिष्ट होता है ॥ १२ ॥

निश्चय औ संगति तजै, तजि करनी दिल भाव।
चारौ जेहि से दूरि हो, तेहि को कहाँ टिकाव ॥ १३ ॥

टीका—जिसकी तरफ का लाभ सुख निश्चय निकाल डाले, उसका संग भी त्याग देवे, उधर के सुख या लाभ के लिये कोई क्रिया भी न करे और हृदय से उसका प्रियता भी नोचकर फेक देवे तो फिर उसके सुख सस्कार खिचाव का कहाँ चिन्ह रह सकता है ? चिन्ह नही बल्कि चाहे जितने दिन का प्रेम हो इन चारो बातो को करने से उसके लेखे वह तीन काल मे है ही नही, ऐसा अभाव हो जायगा ॥ १३ ॥

पूरब पूरब दूरि हो, उत्तर के आधीन।
उत्तर रंगै रंग जेहि, वही प्राप्ति लखि लीन ॥ १४ ॥

टीका—पहिले वाले सस्कार पूरब-पूरब जानिये। वर्तमान मे जो पुरुषार्थ करते है उसे उत्तर समझिये। तो पूर्व देखे, भोगे, सग मे रहे हुये की आसक्ति को यदि उत्तर (वर्तमान) मे उक्त चारो बाते (निश्चय, सगत, करनी, भाव) ज्यो-ज्यो कम की जायगी त्यो-त्यो

वर्तमान आधार लै, भूत भविष्य की खींच।
जितनै अन्तर तहँ परै, उतनै वहवाँ वीच ॥ ११ ॥

टीका—जो सामने दिन आज गुजरते है, वह वर्तमान है। तो वर्तमान मे ही जितना-जितना जिस-जिस विषय को देखा सुना भोगा जायगा, उतना-उतना पूर्व व्यतीत काल की वासनायें पुष्ट होती जायेगी। आगे के लिए भी वे ही वासनाये पुष्ट होकर खीच के विवश करती रहेगी और जितना ही वर्तमान मे साधन, सयम, वोध, वैराग्य द्वारा पूर्व विषयो को देखना, सुनना, भोगना और सुख निश्चय तथा तिसका स्मरण त्याग किया जायगा, उतना ही पूर्व आसक्ति निर्वल पडती जायगी। अत मे सर्वथा वाह्य क्रिया और अन्तर चेष्टा त्याग कर देने पर विल्कुल पूर्व काल का राग सस्कार ही नष्ट[1] हो जायगा और आगे भी वे संस्कार खैच न सकेंगे ॥ ११ ॥

वहु निश्चय परियत्न से, यहि तजि और को राखि।
नाहिं तो होवै दूरि वह, जो यह हीं अभिलाखि ॥ १२ ॥

टीका—जैसे कोई मनुष्य पहिले जिस सग और जिस पुरूषार्थ तथा जिस सुख प्रियता मे रहा हो, यदि वह उस सग उस पुरुपार्थ स किसी कारण पृथक होकर कही अन्य जगह दूसरे सग-रग मे पड़ जाय तो पूर्व सुख भाव सस्कार जोगाने के लिये वहुत ही वलवान निश्चय-विरह भावना रक्खा जाय, उसके लिये वहुत यत्न रख के शक्ति भर उपाय करते रहा जाय, तब कही यहि जिस सग-रंग

१ टिप्पणी—यदि मास या नशा भक्षी पुरुप वर्तमान मे कुखाद्य गहण करने जाय तो वासना पुष्ट होती और यदि तिनमें दुख-दोप समझ के हिसा और नशा को सर्वथा त्याग करते हुये कुछ काल त्यागते-त्यागते पूर्ग रूप से तिनसे सुख निश्चयता हटा लेवे और उसका वाह्य ग्रहण भी छोड देवे तो वर्तमान आसक्ति अभाव के साथ ही पूर्व मास नशा खाने की आसक्तियाँ सव नष्ट हो जायेगी और आगे भी तिसके सम्वन्धी वासनाये न खीच सकेगी। एवं सर्व विपयो का यही हाल समझिये।

करे। लक्ष्य को अन्य जगह न फँसाकर स्वरूपविचार में तद्गत रक्खे। अन्य क्रिया भोग सुख सर्व का अभाव रक्खे। इन रहस्यो का ठीक-ठीक पालन करने से जीव की सर्व आसक्तियाँ, लत आदत रूप बन्धन नष्ट हो जायेगे और जिससे निरन्तर त्रिविध दुख ही दुख हुआ करता है ऐसे कुदेशरूप जगत का सम्बन्ध उससे छूट जावेगा। अर्थात वह सर्व जगत के मोहक जालों को त्यागकर जन्म-मरण से रहित हो जावेगा ॥ १६ ॥

भोग कुसंगति दृश्य जो, जबरन जैसै देह।
काम लेय तिन से पकरि, जैती अपना नेह ॥ १७ ॥

टीका—बोध वैराग्य द्वारा सर्व प्रपंच त्याग होने के पश्चात जो प्रारब्ध भोगरूप कुसग सामने पड़ रहा है, तहाँ बोधवान की इच्छा न होते हुये भी हठात पूर्व कर्म रचित जैसे प्रारब्धरूप शरीर है जो छोडे नही छूटता और उसके निर्वाहिक सम्बन्धरूप कुसंग पड़ता रहता है, उस बन्धनरूप कुसग को भी विवेकयुक्त उलटकर निर्बन्ध की तरफ ही बोधवान मददगार कर लेते है। उन मन इन्द्रियो को पकड-कर जिन रहस्यो से अपना परम कल्याण होता है, उस अपने हितैषी कार्यो मे ही लगाते हुये वे निर्बन्ध मुक्त स्वरूप ही विराजते हैं। साथ ही समीपियो को भी अपने सदाचरण के प्रभाव से प्रभावित करके सहज ही कल्याण मार्ग की ही तरफ घसीट ले आते है और यथा प्राप्त अन्न, धन, वस्त्रादि को भी परमार्थ की ओर ही लगा करके फलरूप मे आप निर्वन्ध स्वतत्र रहते है। फिर यहाँ बन्धनो की कहाँ गुजाइश रह सकती है ? ॥ १७ ॥

दोहा—शत्रु फोज मे फौज निज, मिल्यो तो भूपहि नाश।
निजै फौज निज ओर दृढ, तो तेहि रक्षत खास ॥ १ ॥
तैसे निश्चय शुद्ध रखि, शुद्ध संग व्यवहार।
बेड़ी छेनी लोह दोऊ, वन रिपु दारु कुठार ॥ २ ॥

पूर्व की आसक्तियाँ दूर होकर जीव की सत्ता न पाने से वे निर्बल पड़ जायेगी । इस प्रकार वर्तमान पुरुपार्थ के आधार पर ही पूर्व सचित वासनाओं का पुष्ट या नष्ट होना अवलम्बित है । वर्तमान मे जिस रग मे रंगेगा, जिसकी तरफ का सग, सुख निश्चय, उसके सम्बन्धी-क्रिया और हृदय मे प्रेम रक्खेगा, वही उसको अवश्य प्राप्त होता रहता है, ऐसा प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है ॥ १८ ॥

भाव और निश्चय जहाँ, करनी जेहि की ओर ।
वही सिद्धि कारज लखो, अन्य विवशता छोर ॥ १५ ॥

टीका—भाव—श्रद्धा (प्रेम) ओर सुख लाभ निश्चय तथा करनी—पुरुपार्थ व सग जिस तरफ का होगा वही कार्य पूर्ण होते देखा जाता है । इसके विरुद्ध 'अन्य विवशता छोर' अर्थात मन इन्द्रियाँ प्राणियो की तरफ से चाहे जितनी विवशता (कठोर बन्धन) का घेरा हो, यदि उनकी तरफ का भाव सुख निश्चय क्रिया त्याग कर दिया जाय, तो उन सर्व बन्धनो से जीव अपने को छुड़ा लेगा ॥ १५ ॥

छंद

कामादि को जड़ मूल से निर्मूल करना ध्येय हो ।
तो चार बाते उलट दो इसमे न गाफिल लेय हो ॥
करि मद्रा परियत्न को गुरु मग मे चारो जोड़ दो ।
प्रेरक तु सोच विचार कर हो मुक्त मन भव तोड़ दो ॥

शुद्ध रांग करि करि रहै, निश्चय भाव स्वदेश ।
टूटै बन्धन जीव को, छूटै जगत कुदेश ॥ १६ ॥

टीका—वर्तमान मे सदाचारी, वैराग्य तत्पर सन्त और मुमुक्षु सतसगीजनो का ससर्ग बारम्बार करता रहे, अपना स्वरूप जड़ तत्वो से भिन्न है, शुद्ध चैतन्य नित्य तृप्त है, इस प्रकार जड देह से भिन्नता का दृढ निश्चय करके सर्व बाह्य प्रेम को हटाय अपने आप ही से दुख की निवृत्ति समझ के अपने स्वदेश (स्वरूप) ही मे प्रेम

पूर्ण है अतृप्त तृष्णा विक्षेपमय है, ऐसा देखने मे न आना और अपने सत्य स्वरूप की ठीक-ठीक पारख न कर पाना, सशयशील बने रहना या विपरीत निश्चय कर लेना यही मुक्ति मे पर्दा है ॥ १८ ॥

जग सुख जस खोजत फिरैं, सुख के हाथ बिकाय।
और न तेहि के काज कछु, नहीं और अपनाय ॥ १६ ॥

टीका—जैसे सर्वाङ्ग युवती के सुख के लिये हैरान रहता है। धन वृद्धि तथा रूप सुख के लिये तो दिन-रात देखता ही नही। मान वड़ाई सुखानन्द की इच्छा पर तो तन-मन-धन, समय सर्व निछावर कर देता है। राज-काज, विजय, विभूति, सबको विवश करने आदि जहाँ तक मन.कल्पित सुखानन्द निश्चय कर रक्खा है, उसके तलाश और उपभोग के लिये तो निरानिर बिक ही गया है। कहने से क्या! ऑख खोलकर देख ही लीजिये। सर्व देहधारी जीवो का लक्ष्य ही क्या है ? परम कर्तव्य क्या है ? किसे अपना प्राण प्रियवत अपनाते है ? थोड़ा भी विचारने से मालूम हो जाता है कि केवल सुख अर्थ ही सर्व कार्य सव जीव करते रहते है। गुरु-सन्त, सद्ग्रथ-सत्यन्याय भले सब छूट जायें, धर्म कर्म चाहे सव स्वाहा हो, भले कोई निन्दा करे, मारे काटे नाना त्रास भय पीड़ा दे, यही नही बल्कि खान पान भी भुलाकर सबकी विवशता, कठोर से कठोर परिश्रम, यहाँ तक सब कुछ यह जीव सहन करेगा। किन्तु अज्ञान हालत मे जिन-जिन विषयो मे आदत बना लिया है उसीको अपनाता है, उसके अलावा कुछ नही। पूर्वोक्त जगत सुखो का जैसे वह खोजी रहता और विपयानन्द के हाथ बिका रहता, तैसे ही मुक्ति को तलाशे, मुक्ति के वास्ते निछावर हो जाय, मुक्ति से पृथक कोई व्यवहार न ग्रहण करे, न कही अन्य से अपनैयत रक्खे, तो फिर मुक्त होने मे क्या सदेह ? कोई सदेह नही ॥ १६ ॥

कवित्त

बोध मूल निज रूप बोध में रमत नित ।
वाही मग रंग में मुक्त में मगो रहे ॥
जगत मन इन्द्रिया विराग को जगात रहे ।
इत उत दौड़ जहाँ तहाँ [illegible] रहे ॥
बोध बाण मनोमय बन्ध जड़ तोरि तोरि ।
नित्य ही स्वच्छन्द होय धीर सो अड़ो रहे ॥
पिण्ड औ ब्रह्माण्ड सर्व मान [illegible] छोड़ करि ।
ज्ञान ध्यान में न रह मुक्त सो खड़ो रहे ॥

मुक्ती तो परत्यक्ष है, जैसे हाथ को गेंद ।
बन्धन चीन्हत नाहिं है, बिन पाए निज भेद ॥ १८ ॥

टीका—मुमुक्षु को मुक्त होकर ठहरने में कोई सन्देह नहीं, भ्रम नहीं, न कोई अनुमान कल्पना ही है। प्रत्यक्षवान् पुरुषों की मुक्ति बिल्कुल हाथ के गेंदवत् स्पष्ट सरल प्राप्त है। जड़ चेतन के गुण धर्म अनादि समझने से सम्पूर्ण परोक्ष धनानन्दादि वाली भ्रान्ति का बन्धन नष्ट हो गया। स्वार्थ छल-कपट प्रवृत्ति परिश्रम आदि समझकर कुसंग त्यागने से स्त्री आदि सब बाह्य विषय की निवृत्ति हो जाती है। राग द्वेषादि और सर्व कामनाओं की निवृत्ति क्षमा-सन्तोष-वैराग्यादि युक्त सदा सावधान रहने से हो जाती है। रह गया देह मात्र तिसे अन्न-जल देकर फिर उस देह से भी मुक्ति के सर्व कार्य करते हुये पठन, निर्णय, श्रद्धा, क्षमा, वैराग्य, सदाचरण द्वारा सर्व वासनाओं को नष्ट करके वर्तमान में मुक्त पुरुष स्थित रहते हैं। इस प्रकार जैसे हाथ में गेंद उठा कर लिये रहना सरल सहज तथा प्रत्यक्ष है, उसी प्रकार मुक्ति स्थिति भी पूर्वोक्त सहज सरल और स्वयं प्रत्यक्ष है। परन्तु इसमें रुकावट यही है कि स्थूल-सूक्ष्म पंच विषय सुखाभ्यास रूप बन्धनों को पहिचान न पाना, सुख ही दुख

बन्धन छूटन ध्येय इमि, तजि ममता निर्मान।
डरै न सो परिशर्म से, नहिं सुख हाथ विकान ॥ २१ ॥

टीका—ऊपरी दृष्टांत अनुसार सर्व बन्धनो से छूटने का दृढ लक्ष्य बनावे। निज स्वरूप के बाद जहाँ तक देह गेह मन्दिर राज काज स्त्री की आसक्ति तथा भेष मे आकर जो जो मोटे ऐश्वर्यो मे ममता अहता बड़प्पन भरता है सो सब मोटी माया। ऋद्धि-सिद्धि और नित्य जीवों के ऊपर कर्त्तादि का भ्रम सो झीनी माया, ये दोनो में जो ममता-अहता बँधे तिसे सर्व परख के त्यागे, क्योंकि अहंता-ममता ही मुख्य बन्धन एवं फाँसी है। आप अमान भाव से बर्तें, स्वरूपस्थिति के सहायक मन मारना, दुर्गुणों को जीतना, सत्सग, विचार, सतसेवादि करना। इनमे जो कठिनता पड़ती है तिससे डरे नही और इन्द्रिय सुख के वश नाचै नही, बल्कि भली प्रकार शोधन करके सर्व सुखासक्तियों का छेदन करे। जैसे कोई मनुष्य वृक्ष के नीचे बैठा हो, इतने मे ऊपर से सर्प उसकी गोद मे गिर पडे, तो वह शीघ्र उसे फेककर प्राण बचाता है, उसे ठहर के देखने मे नही पडता यदि ठहर के देखने मे पडे तो जान का ही धोखा है। इसी प्रकार जो-जो अत्यत बंधन प्रद प्राणी पदार्थ है उनसे दूर ही से निराश हो रहे। प्रेमी-प्रेमी बिछुड़न न्याय बारम्बार देख-सुन-भोगकर सुख सस्कार रूप सर्प को न चितवे, बल्कि चंचलता, लड़कपन, आसक्ति त्यागकर सयम रूप गम्भीरता ग्रहण करे ॥ २१ ॥

छन्द—निज अग का फोडा व माड़ा ज्यो चिराया जाय है।
दाया मया उस पर नही त्यो सर्व दुर्गुण ढाय है ॥
यदि साथिजन भी बिघ्न दीखे डालते भव बन्ध मे।
तो त्याग जल्दी देर मत कर हो रहे निरबन्ध मे ॥

खोजि मिलै सतसंग को, जहाँ पारखी साधु।
निर्वाह काज से श्रेय लखि, मुख्य जीव दुख बाधु ॥ २२ ॥

उत्कण्ठा मनन-शब्द

सो ऐसे गुन कव अइहै सुखदाई ॥ टेक ॥
काहू को उपहास करव नहि, निन्दा कुटिल हटाई ।
अरिहुँ पीर नहि देन भाव दृढ़, जिव रक्षा चितलाई ॥ १ ॥
भक्त समाज साधु गुरु माही, निरछल प्रेम सदाई ।
तेहि सेवत अलसाव न कवहूँ, दिन दिन भाव सवाई ॥ २ ॥
भले भले उपदेश ग्रहण करि, चोरी भोग वहाई ।
निष्कलक पथ पावन पारख, सजग रहव हर ठाई ॥ ३ ॥
शुद्ध नित्य पद देखि आपनो, शुद्धै रहनि वनाई ।
व्रह्मचर्य व्रत शुद्ध शरण गहि, साधन शोधि वढाई ॥ ४ ॥
निज स्वरूप के वाद पृथक को, तजि आशा समुदाई ।
श्री गुरुदेव दया करो जन पै, ऐसेहि प्रेम चहाई ॥ ५ ॥

ना कोइ आपन जानता, ना जानत कोइ गैर ।
करि पुरुषारथ ताहि हित, थकत न मन कर पैर ॥ २० ॥

टीका—सुख ही जीव को प्रिय है, सुख सिद्धि हो तो वह अपना-पराया कुछ नही समझता । यदि अपने माने हुये कुटुम्वियों से सुख न देखे तो तृण के समान तिन्हे छोड़ देता है । जिससे पुरातन से शत्रुता चली आई हो यदि उससे सुख सिद्धि पावे तो शत्रुओं को भी मित्र वनाकर तिनकी शरण ले लेता है। इस इन्द्रिय सुख के ही लिये नौकरी, वनियई, खेती, भिक्षावृत्ति आदि शुभाशुभ अनेक पुरुपार्थ करता रहता है । इसमे यह जीव थकावट नही मानता, न तो उसके मनन चितन से ऊवता, न हाथ-पॉव ही उधर का कार्य करते हुये थकते। थक भी जायॅ तो उस थकावट को यह जीव मानता ही नही, वारम्वार तद्गत होता रहता है। इस प्रकार जीव सुख क्रिया मे तल्लीन है ॥ २० ॥

उत्तर—यथार्थ विवेकी सत सद्गुरु का सत्सग मिलते रहना, जिससे सर्व कल्याण सामग्री—क्षमा, धीरज, बोध आदि की प्राप्ति होती रहती है।

गजल

सतसग रत्न अवसर, इत उत गवाँ रहा है।
प्रात व शाम दुपहर, क्षण क्षण बिता रहा है॥ टेक॥
सद्गुरु अधार लेकर, सद्ग्रन्थ भी मनन कर।
दोनों है प्राप्त तुझ को, काहे भुला रहा है॥ १॥
क्षण क्षण मे चेत करके क्षण ही मे मुक्त होवै।
क्षण-क्षण में भोग भोगी, सबमे फँसा रहा है॥ २॥
कर यत्न सोत जारी, पुरुषार्थ शक्ति भारी।
आसक्ति विघ्न नाशै, मुक्ती को पा रहा है॥ ३॥
यदि प्रेम अब न चेतै, आखिर तु दुख मे रोवै।
फिर पार भी न पावै, पहिले चेता रहा है॥ ४॥

प्रसंग ३—परम्परा विरोध

क्रियामान आधीन है, संचित करम को भोग।
बिन तेहि के सम्बन्ध नहिं, जीव वासना योग॥ २३॥

टीका—सचित कर्मो के भोग होने का सयोग तभी तक होता रहता है, जब तक जीव अज्ञान हालत मे क्रियमान कर्म रचते रहते है। तिस क्रियमान को ज्ञान और साधन के बल से पूर्णतया रोक देने पर सचित कर्मो का जीव से सम्बन्ध नही रह जाता। अर्थात वह भोग देने के सन्मुख नही होता। क्योकि जीव सनमुख वासना के सहारे ही से दबी वासना का मेल कर सकता है। वह भी योग्यता-नुसार ही। योग्यता के बिना नही। सनमुख आगामी वासनाओ का उच्छेद कर देने पर पूर्व सचित वासनाओ से जीव का कोई सम्बन्ध नही रह जाता॥ २३॥

टीका—हे जिज्ञासुजन, तुम अपने जीव के कल्याणार्थ जहां सत्यासत्य का भली प्रकार निर्णय होता है, ऐसे सद्रहस्ययुक्त पारखी संतो को खोजकर मिलो। वहाँ ही शीघ्र से तुम्हारा कार्य सिद्ध होगा। माया की प्रभुता और जगत सुखो से तुम्हे पारख-स्थिति नही मिलेगी। जो कहो छुट्टी नही मिलती, तो जब तुम पारखी सन्तो के सत्संग से स्वअविनाशी धन की प्राप्ति का लाभ समझ लोगे, तब आप ही छुट्टी निकाल लोगे। देखो! निर्वाहिक धंधा करके जो तुम नाना इन्द्रिय भोगो मे सुख मानते हो वे सब भोग रोगरूप है, नाशवान तृष्णा रूप आवागवन के कारण है और पारखीसद्गुरु का सतसंग तथा तिनकी शिक्षा धारणा से जन्म-जन्म का अध्यास नष्ट होकर जीव को नित्य अचल स्थिति मिल जाती है और उसके सर्व दुखो का ध्वस हो जाता है। याते व्यवहारिक निर्वाह गुजारा के काम काज धन्धाओ से अतिशय श्रेष्ठ दुख-द्वन्द्व विनाशक सतसंग विचार है। उसे अन्न धन समय-सेवा सब कुछ खर्च करके प्राप्त करो अथवा यो समझो कि निर्वाह कार्य करते हुये शरीर पोषण इसलिये उचित है कि जिससे सतसंग विचार की प्राप्ति हो, तहाँ नित्य स्वरूप-ज्ञान का परिचय मिलकर स्वरूप से भिन्न सर्व भास-आश की ममता-अहंता वासना त्याग करने मे आ जायगी। वासना त्याग से फिर जन्म ही कैसे होगा? जब जन्म ही नही तो निर्वाह आदि भार से सदा के लिये छुट्टी ही मिल गई। इससे यह अनुभव हुआ कि खाने-पीने, मौज-शौक करने ही के लिये यह नर तन नही है, बल्कि शुभाचरणयुक्त जीविका-भोजन छाजन तो शरीर रक्षा निमित्त है और उस शरीर रक्षा का फल अविनाशी वस्तु को पिछानकर जन्म-मरण का फन्दा काटने अर्थ है, सोई बनाना चाहिये ॥ २२ ॥

प्रश्न—सबसे बड़ा लाभ सुख और जीवन सार्थकता का मूल क्या है?

शम सतोषौ सजग सत। समता शील सुपथ, सद्गुरु सेव समाधि गहि ॥" ऐसे ग्यारह सवर्ग रहस्यों के गुण लक्षण स्मरण करके पूर्ण रूप से इन्हे धारण करे, यही सत पुरुषार्थ में आरूढ होना, टिकना है। किसी हालत मे वैराग्य रहस्य और पारख ध्येय दृढ निश्चय से विचलित न होवे, यह समझ के कि यदि मै गुरुपद ध्येय से विचलित हो जाऊँगा तो तीनो काल मे हमे देहोपाधि जनित छिपा हुआ वहुत कठिन दुख भोगना पड़ेगा। छिपा हुआ कठिन दुख उसे कहते है कि जिसमे तलफि-तलफि असह दुख मे समय जावे, फिर भी तिसमे सुख भ्रम होवे। सो पाँचो विषय के भोग वासना से सब प्रकार के नीच कर्म होकर तिन कर्मो से वासना पुष्टि द्वारे देह धारण, देह मे जन्म-मरण गर्भवास का कष्ट और भयंकर रोग व्याधि, बुढापा, निर्वाह जनित सबके मन को राजी रखने का कष्ट, बुद्धि भ्रम होके व्यभिचार-अनीति, पाप कर्म वश अपमानित, लात, जूतो, भालो की मार, परवशता आदि अनेक दु.ख ये सब सुखाध्यास से ही छिपे है। सुखो को ग्रहण किया नही कि त्रिविध ताप दुख शिर पर आ जाते हैं। अत गूढ दुख जानि के दुखो से भिन्न सत्य स्वरूप के विचार से कभी चलायमान न होवे ॥ २५ ॥

क्रियमान सुख के लिये, तन निर्वाह को छोड़ि।
ज्यों ज्यों रुकता जाय वह, त्यों त्यों जन्मृत्यु तोड़ि ॥ २६ ॥

टीका—क्रियमान (आगामी) कर्म के लक्षण—दोहा—"कर्म करै सुख मानि करि, विषया ब्रह्मानन्द। पाप पुण्य शुभ अशुभ करि, यही अगामी फन्द ॥" आगामी बीज को दग्ध करने के साधन—विवेक युक्त आसक्ति रहित शरीर निर्वाह लेना यह क्रियमान कर्म नही कहा जाता। इससे यह अनुभव हुआ कि आवश्यक शरीर निर्वाह सतोष युक्त कल्याण मे साधक है, इसके अलावा जहाँ तक मन कल्पित सुख के लिये व्यापार है, वह सब जन्म-मरण का हेतु

करै यथार्थ वैराग्य को, छोड़ि राग के ग्रन्थ।
बसि कै निकट स्वरूप के, मेटि वासना धन्ध ॥ २४ ॥

टीका—वैराग्य के सम्पूर्ण यथार्थ आवश्यकीय रहस्य धारण करने मे प्रयत्नवान बन के दृढ वैराग्यदशा धारण करे। नर-नारि, पशु-पक्षी आदि जन्तु और द्रव्य-भूपण, देह-गेह आदि पदार्थो मे जहाँ सुख मानि के राग-पकड उत्पन्न हो, तहाँ-तहाँ राग-मोह ही बधन समुझि के अन्दर-बाहर तिसे त्याग करे।

शब्द

निजरूप निशदिन ध्याइये ॥ टेक ॥

जग प्रपच को देखि ज्वाला, करि युक्ति उक्ति बचाइये ॥ १ ॥
एकरस निजरूप चेतन, भास वृत्ति दुराइये ॥ २ ॥
साध्य साक्षी दृश्य द्रष्टा, भिन्न दोउ बिलगाइये ॥ ३ ॥
प्रेम नित्य समेटि वृत्ती, स्ववश शान्त रहाइये ॥ ४ ॥

साराश—देह और देह सम्बन्धी सर्व हानि-लाभ, दुख-सुख, मिलन-बिछोह मृत्यु आदि भावो से रहित जैसा अपना स्वरूप सदा एकरस निर्विकार है तैसा ही किसी भाव मे वृत्ति चलित न कर स्वरूप भाववाली ही वृत्ति और मुक्ति घेरा के मत्र रहस्य बनाकर सब चचलता ध्वस करके ठहरना ही स्वरूप के निकट बसना है। स्वरूप के भावाकार निश्चय वृत्ति दृढ करके वासना का व्यापार आशा कृत जन्म-मरणादि का नाश कर देना चाहिये ॥ २४ ॥

वैराग्य बोध सनमुख करै, सत पुरुपार्थ अरूढ़।
कबहूँ डिगै न ध्येय से, जानि सदा दुख गूढ़ ॥ २५ ॥

टीका—जीव के लक्ष्य मे अज्ञान कृत पच विषय भोग देह स्वार्थ ही सामने है, तिसमे पूर्ण दुख जान के लक्ष्य के सामने वैराग्य प्रियता और बोध भाव ही पुष्ट किया करै। पुन. जो सत्य स्वरूप स्थिति करने वाले परिश्रम है जसे सोरठा—"सत-संगति सद्ग्रन्थ,

टीका—देह भोग, विषय पदार्थ, विद्या, अविद्या जहाँ तक इन्द्रिय-मन गोचर होता है, तिसमे सुख निश्चय कर लेना, तिसके मिलने मे हर्ष, बिछुडने मे शोक करके तिनको एकरस वनाने के लिये सदा यत्नवान होना, इसी मे जीवन सफल मानना ये भ्रम निश्चय है। चोपाई—"मै हौ देह गेह मम नारी। सुत बित मान वडाई प्यारी॥ सकल पिण्ड ब्रह्माण्ड अहं मम॥ सबहि भोगि सब स्ववश करै हम॥ रहि शिश्नोदर लम्पट लीन्हे। यही लाभ लखि अपर न चीन्हे॥ दोहा—अथवा ईश्वर ब्रह्म कहूँ, कारण कर्त्ता और। लोक लोकान्तर माननो, भ्रम निश्चय को ठौर॥ चौपाई—निज स्वरूप से भिन्न जहाँ लो। भासत सुखमय भूल तहाँ लो॥" ये भूल का स्वरूप है और यही अज्ञान है। इसी से भोगासक्ति कर्म सस्कार पुष्ट होता है। इस भूल अज्ञान का यथार्थ पारखज्ञान दायक पारखी गुरु के चरण-शरण सेवन करते हुये इस प्रकार का जब ज्ञान हो जाता है—"दोहा—मै चेतन सबसे पृथक, सबको जाननहार। सदा एकरस सत्य निज, दुख-सुख भिन्न असार॥" ऐसे ज्ञान की एकरस धारणा से जव अज्ञान, जड़ाध्यास, जडप्रियता नष्ट हो जाते है तव जीव के सन्मुख इस मनोमयरूप जगत का सम्बन्ध नही रह जाता। फिर मन रहित जड सृष्टि और सम्पूर्ण प्राणी वर्ग से भी उसका सम्बन्ध टूट जाता है। ऐसी दशा मे वह जन्म-मरण से छुट्टी पाकर स्थित हो जाता है। उसके लिये "मानो जग उजरो" ॥ २८ ॥

राग जलै वैराग्य से, जीव आपने देश।
बहुरि न तेहि से जक्त हो, बीते सबहिं कलेश ॥ २९ ॥

टीका—जगत का राग—मोहरूप बीज है, सो वैराग्यरूप अग्नि से भस्म हो जाता है। फिर राग निर्मूल होते ही जीव अपने पारख स्वरूप मे एकरस स्थित हो जाता है। जो सुख ममता करके सबमे

होने से नवीन पाप-पुण्य विपयसक्ति ही क्रियामान कर्म है। उस क्रियामान रूप इन्द्रिय सुखो की क्रिया को ज्यो-ज्यो विवेक वैराग्य से कमी करते जायगा (त्याग करते जायगा), त्यो त्यो शुद्ध सस्कार पुष्ट करते हुये पशु आदि अन्य तीन खानियो से वचते हुये चोथा नर जन्म लेते-लेते अथवा इसी नर जन्म मे तीव्र कोशिश करते हुये पूर्ण विवेक-वैराग्य पुष्ट कर जन्म-मरण का वीज अत्यत भून जायगा और जीव आवागवन रहित स्थित हो रहेगा, किन्तु जव पुरुपार्थ की धारा छोडे नही। ऐसा दृढ निश्चय करके गृहस्थ विरक्त नीच-ऊँच किसी को भी मुक्ति मार्ग से साहसहीन न होना चाहिये ॥२६॥

होय सर्वथा भंग जव, तव ही तन निरवीज।
भव वन्धन को छेदि कै, मुक्त मुक्तपद लीज ॥ २७ ॥

टीका—पूर्वोक्त सद् प्रयत्न करते-करते जव सम्पूर्ण आगामी सुख क्रिया और सुख निश्चय नष्ट कर दिया गया, तो पुन शरीर धरने का बीज सूक्ष्म वासनाये दग्ध हो जायँगी। इस प्रकार जगत का भ्रमरूप वन्धन तोड़कर स्वरूप से मुक्त जीव मुक्तिपद को प्राप्त कर लेवेगा। अर्थात अनादि काल से सूर्य-मेघ ढाकन न्याय जीव देहोपाधि युक्त सूक्ष्म सस्कार रखते हुये वारम्वार कर्म और देह के झूला मे झूलता रहता है। इतना होते हुये भी चेतन के स्वरूप सर्व देहोपाधि का परीक्षक होने से लक्ष्य को अपने शुद्ध स्वरूप की तरफ घुमाकर मुक्तरूप मुक्त स्थित हो रहेगा ॥ २७ ॥

छन्द—मुक्ति का कहुं अन्य देश न ग्राम कहुं भी पाइये।
भ्रम ग्रन्थि ढक्कन दूर हो वस आप मुक्त रहाइये ॥
मुक्त देश स्वरूप है जहँ लेश दृश्य न पाइये।
साक्षी परीक्षक सत्य गुरु पद थीर हो ठहराइये ॥

भ्रम निश्चय निरमूल करि, जव अज्ञान विनाश।
तव नहिं सनमुख जीव के, जग का कहूँ निवास ॥ २८ ॥

वाह्य जड पदार्थो में सुख निश्चय, सुख निश्चय से इच्छा, तिससे नाना काम्य कर्म, काम्य कर्मो से सूक्ष्म संस्कार पुष्ट होकर पुन. देह धर-धर के देह के फल त्रिविध ताप चखता रहता है। यही अनादि प्रवाह धारा जानना चाहिये। त्रिविध ताप का अर्थ १ दैहिक—तन-मन के रोग व्याधि। २ दैविक—पानी पत्थर पाला आदि जड तत्त्वो से दुख। ३ भौतिक—छोटे-वडे अन्य देहधारी जीवो से दुख ये त्रिविध ताप मानन्दी कृत कर्म रहट का ही परिणाम है। अब इस त्रिविध ताप से छूटने का उपाय क्या है ? उसे सुनिये—॥३०॥

परखि दलै तेहिको भले, जब जब सनमुख होय।
काटै बन्धन जीव तब, लखि स्वरूप भ्रम खोय॥ ३१ ॥

टीका—पूर्वोक्त तिस सुख मानन्दी को मिथ्या परखि-परखि के भली प्रकार् नष्ट करता रहे। जहाँ तक पंच भोग व्यापार है, युवती शरीर मे, कुटुम्ब मे, वड़ाई मे, ऋद्धि-सिद्धि टोना तन्त्र, नौताथ-वैदाय के लालच मे, जगत की हानि-लाभ में, मन.कल्पित विविध मनोविज्ञान में, विविध मनोरजन क्रीड़ा विहार मे, नये-पुराने भ्रम मत के ग्रन्थो में, ब्रह्माण्ड क्रिया आदि मे, जब-जब जहाँ-जहाँ सुख निश्चय होकर सनमुख लक्ष के सामने खिचाव होने लगे तव-तब अपनी सत्ता-शक्ति समेटि के उसे दुखपूर्ण नश्वर मिथ्या निश्चयकर सर्व विजाति आशा बासा कल्पना को जड़मूल से नष्ट करता रहे। इस अभ्यास का अठ पहरा एक धारा बना लेवे, तब यह जीव सर्व बन्धन रूप जडग्रन्थि को अवश्य नष्ट कर डालेगा। जो सत्य हो तिसे न जानना, जो न हो उसे मान लेना इस प्रकार और-तौर निश्चय ही भ्रम का स्वरूप है। यह नियम है कि भ्रम का यथार्थ स्वरूप नही होता, भ्रम-भ्राति-अविद्या-कल्पना-मानना ये सब जहाँ देह युक्त चेतन है, तहाँ ही प्रत्यक्ष अनुभव होता है। कोई भी भ्रम हो निराधार नही होता। प्रत्यक्ष देहधारी चेतन ही भूलते हैं। वे

आकर्पण हो-होकर सूक्ष्म देह को पुष्ट रखता था, जिससे शरीरान्त मे फिर-फिर सूक्ष्म देह से स्थूल होता रहा। अव जव सद्गुरु कृपा से सबमे पूर्ण दुख-दोप जान मिला, तो भोग सुख क्रिया त्याग देने से सूक्ष्म सस्कार पुष्ट होते ही नहीं, फिर प्रारब्ध कूक समाप्त होते ही स्थूल नष्ट के साथ सूक्ष्म देह भी नष्ट हो गई। जीव के सनमुख पुन· जगन राग सुख वासना न आने से जीव मुक्त हो रहा, तव तो देहोपाधि कृत सर्व त्रिविध दुख द्वन्द्व वीत गये—नष्ट हो गये ॥२६॥

छन्द—दुख द्वन्द की अतिशय निवृत्ती के लिये यहि कीजिये।
जग से उदास निराश हो तहँ एकक्षण नहि भीजिये ॥
जन समूह प्रपच घर अरु वाम सँग उतपात है।
सवसे भला एकान्त ही चल वृत्ति दलि सुख पात है ॥

मानन्दी से सुख भास हो, तेहि हित गर्जी आप।
करै करम तेहि के लिये, त्रिविधि भोग संताप ॥ ३० ॥

टीका—मानन्दी के आधार से सुख मालूम होता है। कैसे ? जैसे मुसलमान को रोजा-निमाज आदि इस्लामी मार्ग मे, हिन्दू को मूर्ति पूजा आदि मे, किसी को नाच-रग सिनेमा आदि देखने मे, किसी को मदिरादि नशा पीने मे, किसी को स्वयं नाचने मे, किसी को गाली झगड़ा करने, पतग उड़ाने, वाल सँवारने मे, वालको को विविध धूल मे, कितने देश-देश देखकर प्रकृति शोधन मे, कितनों को स्त्री विपय मे, विविध विद्या अविद्या पक्ष, एव इन्द्रिय दोपो से उत्पन्न अपने से भिन्न सर्व जड़ पदार्थो में मैं मेरा मान जान कर तिसमे सुख निश्चय से वैसे ही क्रिया-भोग और क्रिया-भोग से वैसे ही वासना आसक्ति लत पुष्ट करके सुख अवश्य है ऐसा दृढ निश्चय होता है। पुन· उस मानन्दी मात्र सुख के लिये अपने आप शुद्ध चैतन्य गर्जवन्दा वन जाता है। जीव दिन-रात सारा पुरुपार्थ उसी मिथ्या भास मात्र सुखानन्द के ही लिये करता है। तो मानन्दी से

कमी, अतृप्ति अनुभव की दुसह अग्नि, भोगान्त मे लत पुष्ट होकर इच्छा-ज्वाला कभी न बुझकर हरदम तिसमें जलन और दुराचरणो का अनन्त कष्ट होने से ।

प्रश्न—तो फिर क्यो लोग तहाँ फँसते है ?

उत्तर—दीप मे पाँखी विमोह न्याय या मद्यपी न्याय लत आदत अज्ञान ममतासक्ति वश लोग दुसह-दुख पाते रोते सोचते हुए भी भोगासक्त हो रहे है ।

प्रश्न—सो मोह अज्ञान का अत कैसे हो ?

उत्तर—बोधवान वैराग्यवानके शिक्षाको पालन करते रहने से ।

वैराग्य बोध धारण किहे, जो स्थिति के काम ।
एक अंश नहिं ताहिके, जग सुख में विश्राम ॥ ३३ ॥

टीका—विवेक से देखिये ! जगत सुखों की कामना और प्रवृत्ति छोड़कर वैराग्य तथा स्वरूप बोध के जो रहस्य धारणा है और स्मरणो को शात कर जो एकान्त मे प्रयत्न किया जाता है और भी सब स्थिति के कार्य साधनों मे तल्लीन ऐसे वीतराग मुमुक्षु को जितना पूर्णरूप से निर्विक्षेप विश्राम शाति निर्द्वन्द्व सुख है उस सोलह आना विरक्ति सुख के आगे एक कौड़ी भी जगत के समस्त ऐश्वर्य राग भोगों मे विश्राम सुख शाति नही है ॥ ३३ ॥

वैराग्य विचार-पद

शून्य सदन वन मे हम जाकर अबिनाशी की याद करै ।
निष्काम जनित सुख सनमुख अमृत वहो नित्य हम पान करै ॥
जड़ सीचे से सब हरियाली पात पात से काम नही ।
सुख की जड़ तो इच्छा शाती इच्छा पार है बोध सही ॥१॥
बोध विराग की यकरस धारा यही हमारा ध्यान रहे ।
चारो ओर अगर्ज अतृष्णा मन कस के निर्मान गहे ॥

ही जब अपने स्वरूप को नित्य शुद्ध चैतन्य रूप ठीक-ठीक समझ लेगे तब उनकी सम्पूर्ण भ्राति नष्ट हो जावेगी और वे मुक्त हो रहेगे ॥ ३१ ॥

छन्द—ज्यो स्वप्न मे विपरीत भ्रम पुनि ज्यो दिशा भ्रम जाइये ।
ज्यो नशा वश और कुछ तिमि भूलि निज दुख पाइये ॥
लखि आप पारख शुद्ध है जब शुद्ध रहनी लाय है ।
अस बोध शोध सुयत्न करि निश्चय परम पद पाय है ॥

क्रिया समझ निश्चय मनन, जग सुख मानि अटूट ।
जहाँ न क्षण कहु चैन है, तेहि हित सदा अखूट ॥ ३२ ॥

टीका—विषय पदार्थो को एकत्र करने तिन्हे भोगने की क्रिया-पुरुषार्थ, वैसे ही समझ, उक्ति-युक्ति तथा तिसी भोगो मे सुख की दृढ निश्चयता, बार-बार तिन्ही विषयो का मनन-चिंतन इस रीति से जगत के प्राणी और भोग पदार्थो मे सुख मान-मानकर एकरस यह जीव जगत प्रपच मे तेली बैल न्याय जुटा रहता है। जैसे कामी पुरुष स्त्री मे सुख मान के स्त्री की प्राप्ति के लिये चाहे जितना परिश्रम दुख अपमान कष्ट बन्धन सहन करना पडे सब हर्ष से मजूर करता है, उधर की क्रिया-समझ-पुरुषार्थ सुख-मनन मे नितनव स्नेह करता रहता है, थकता नही । ऐसे ही सब विषयो के लिये समझिये। जिस जगत प्रपच धारा मे क्षण मात्र भी शाति सुख नही है, रोग-शोक-विछोह, तृष्णा, परतन्त्रता, परिश्रम, पछतावा सकल दुर्गुण दुखद्वन्द्व जलन के सिवा जहाँ कुछ नही, तिसके लिये देखो अनन्त काल से आज तक अथक परिश्रम यह जीव करता रहता है। सार—जिधर जीव लाभ समझता है, उधर सब कुछ कर, धर तथा सह लेता है ॥ ३२ ॥

प्रश्न—जगत के सुख मे क्षण मात्र चैन क्यो नही ?

उत्तर—सुख इच्छा चलने मे अप्राप्ति का दुख, सुख भोगने मे

भजन

सत संकल्प हो पूर्ण हमारा। निश्चय काज करेंगे प्यारा ।।टेक।।
कड़ी धूप ठण्ढी औ वन मे। भूँखे प्यासे व्यथित जो तन मे।।
सर्प वाघ भालू यदि घेरे। वर्छी तोप खडग शिर फेरे।।
मृत्यु सहज पर मग न डिगारा। निश्चय काज ... .. ।।१।।
फूल चढ़ै या स्तुति होवै। वलि-बलि प्रेम व जयध्वनि जोवै।।
भोजन छाजन देह सुखो महँ। सब अनुकूल पूज्य बहु हो जहँ।।
निजमग विघ्नतो तृणतज सारा। निश्चय काज ... ... ।।२।।
हम अविनाशो नश्वर तन है। सुख औ मान क्षणिक सव धन है।।
सपना की सम्पति क्यो फूलै। बलि पशु हो क्यों वाह में शूलै।।
स्ववल सदा सद्धर्म सम्हारा। निश्चय काज ... ... ।।३।।
प्रकृति भिन्न अजरामर द्रष्टा। तृष्णा व्याधि रहित अति श्रेष्ठा।।
लहि साम्राज्य अभयपद प्रेमी। मेटि कामना रोग स्वक्षेमी।।
गुरु पारख सम शम निरधारा। निश्चय काज करैंगे प्यारा ।।४।।

बहुत काल अभ्यास करि, जो वैराग्य प्रवीन।
दलै विघ्न आसक्ति सव, दिन दिन होय स्वधीन ।। ३५ ।।

टीका—सद्गुरु-सन्त सम्मत सद्ग्रंथ भाव निज विवेकयुक्त बहुत काल तक वासनाओं के निरोध करने का अभ्यास करते-करते वे ही पुरुष वैराग्य धारण मे बलिष्ठ हो जाते है। उनमें वैराग्य अंगो को पालन करने की निपुणता प्राप्त हो जाती है। वे ही वैराग्यवान मन-प्राणी और जड़ भोग ये त्रिविध वर्गो की तरफ से जहाँ तक कल्याण मे रुकावट अंग आने लगता है तिसे वे अपनी उक्ति-युक्ति धारणा वल से त्यागते रहते तथा विश्व तन-मन प्राणियो की सर्व आसक्तियाँ नष्ट करते हुये दिनोदिन आगे-आगे स्ववश स्वतत्र होकर निराधार पारख स्वरूप मे टिके रहते है ।। ३५ ।।

इसी हेतु के सिद्धि करन को परमारथ का साथ लहे।
मित्र आप भी सुख यदि चाहे गुरु प्रेम को नेम गहे ॥२॥

प्रश्न—बोध वैराग्य स्थिति के कार्य में क्यो पूर्ण सुख शाति है ?

उत्तर—एक तो यहाँ साझे झगडे विघ्नरूप विषय वासना का त्याग होता है। दूसरे क्षमा, शील, सत्यादि सर्व सदाचरणों का ग्रहण होता है। जिसमे किसी का साझा नही, कमी नही। तीसरे गोचर सुखो को सर्वथा त्यागने से संस्कार नही खेंचते, संस्कार के विना कोई कष्ट-उपाधि नहीं। सदा तृप्त स्वय प्रकाश।

जब सब देखै जीव यह, सत संकल्प टिकाय।
धीर वीर संतोष गहि, सत मारग ठहराय ॥ ३४ ॥

टीका—राग की हानि और वैराग्य का लाभ जो कि ऊपर कहा गया है उसे भली प्रकार जब जीव देखै, समझै दृढ करे तब परम लाभ समझे हुये परमार्थरूप वैराग्य साधन का ग्रहण और हानिप्रद विषयासक्ति त्याग करने का सत्य सकल्प करे। सत्य सकल्प, पक्का निश्चय, दृढ प्रतिज्ञा एकी वात है। तन, धन, शरीर मान सुख भले नाश हो जाय पर हमारा सत्य संकल्प न छूटना चाहिये। सत्यसकल्प के साथ धीरता भी हो। धीरता से सर्व विघ्न-वाधा दूर हो जाते हैं, ऊब घवराहट नहीं आती। पुन वीरभाव धारण करे। वीरता हो तो विवेक-वैराग्य साधन मे आलस्य कायरता नही आती। वर्तमान मे राज-काज से लेकर स्वर्गादि सर्व इन्द्रिय सुख स्वाद की क्रिया और भीतरी इच्छा वासना त्यागकर देह निर्वाह मे भी मोटे उदासीन भाव स्वीकार कर सतोष रक्खे, स्वरूप भाव मे ही तृप्त रहे। इस प्रकार सत्य जो अपना पारख चेतन स्वरूप है, वैसे ही निर्वासना होकर एकरस स्थित होने के मार्ग मे सव चचलता त्यागकर ठहर जावे ॥ ३४ ॥

प्रसंग ४—जैसा सचित हो वैसा ही पुरुषार्थ जीव से
होना और प्रतिकूल न होना मानने
मे अन्य सचितो की विषमता

संचित कई प्रकार का, एक देह के साथ।
एकै विधि के क्यों नहीं, एक जीव के साथ ॥ ३७ ॥

टीका—यदि सचित रूप सस्कार या स्मरण बदलने मे जीव बिल्कुल समर्थ नही तो विचारिये अनेको प्रकार के संचित एक नर देह के साथ क्यो हो गये ? एक ही प्रकार के सचित आश्रय से एक ही प्रकार का भोग फल स्मरण क्यो नही होता ? भला[1] एक जीव के शिर पर क्रिया, भोग, फल एव नाना सचितों का भार क्यो पड़ गया ? भाव—जब बन्धन-मोक्ष की क्रिया पूर्व सचित से ही माना जायगा, जीव की कुछ स्ववशता नही, तो प्रथम अकेले जीव को एक देह मे अनेक स्मरण उठना ही न चाहिये. फिर उसमें त्याग-ग्रहण करके कम-विशेष त्रिगुणात्मक नाना कर्म न होना चाहिये, ऐसा तो नही दीखते ॥ ३७ ॥

एक विवशता जो किये, दूसर कैसे कीन।
दूसर से तीसर किया, कारण कौन नवीन ॥ ३८ ॥

टीका—एक सचित अनुसार एक देह या एक स्मरण सनमुख होकर जीव को परवशता से भुगा रहा है। तो भला दूसरा संचित रूप स्मरण और दूसरे देहो में जाने के नाना कर्म जीव से कैसे हो गया ? पुन दूसरे संचित से तीसरा, तीसरा से चौथा एव एकी नर देह में अनेक खानियो के भोगने योग्य कर्म सस्कार रच के आगामी भोग हेतु नये-नये सचित[१] कैसे रच लेता है ? अर्थात नवीन-नवीन कर्म होने का कारण क्या है ? ॥ ३८ ॥

१ टिप्पणी—जिस मत से सचित के अलावा कुछ हो ही नही सकता। अगर हो सकता तो सचित कर्म सस्कार की सिधाई मे हो सकता है, विपरीत

डिगै न कबहूँ ध्येय जेहि, यकरस तेहि पुरुषार्थ।
दुख सुख सनमुख तौल सत, साहस बढ़ै यथार्थ ॥ ३६ ॥

टीका—किसका आदि से अंत तक एकरस वैराग्य, भक्ति, वोध-भाव का पुरुषार्थ झकाझक यथार्थ वना रहता है और किसके दिनो-दिन कल्याणमार्ग से साहस-हिम्मत वढते रहते है ? इसका उत्तर यही है कि जो अपने परमार्थ निश्चय से किंचित चलित नही होता। अर्थात जीव की सत्यता, कर्म वासना वश जन्म-मरणादि फल होना तथा वासना त्याग से मोक्ष को प्राप्त होना ये सब दृढ निश्चय अपने लक्ष से जो नही भुलाता उसी से परमार्थ मार्ग का एकरस परिश्रम सहज ही सधता रहता है। इसके साथ जब यह ठीक-ठीक तौल (परीक्षा) हरदम सनमुख लक्ष्य मे दृढ रक्खा जावे कि किससे हमे दुख द्वन्द्व मिलते रहते है ? किससे सुख शाति होती है ? अर्थात जब स्मरण रक्खे कि दुर्गुण और विपयासक्ति ही दुखपूर्ण है, विपय त्याग और सद्‌गुण ग्रहण ही सच्ची शाति का उपाय है, तब यथार्थ कल्याण पथ पर चलने मे आगे-आगे साहस-हिम्मत ठीक-ठीक वढती ही रहेगी ॥ ३६ ॥

छन्द

यह भूल तन के साथ है इसको हटाना धर्म है।
द्रष्टा के घर मे घुस सके नहि साधना यहि पर्म है ॥
इसके लिए गुरुदेव औ सद्‌ग्रन्थ मे सब ठाम हो।
सव सद् रहस्य को लाइए उपराम हो उपराम हो ॥ १ ॥

जब इन्द्रियो के वेग दलि अन्तस मना ठहराय है।
मन वृत्ति तद्‌गतता जभी अभ्यास से दुर जाय है ॥
शीघ्र अपनी स्थिती लहि श्रेय पूरण काम हो।
इसके लिये नित युक्ति कर उपराम हो उपराम हो ॥ २ ॥

टीका—बुद्धि भ्रष्ट हेतु समग्र संसार कुसंग ही है। जहाँ जाओ देखो सुनो, सब कुसग ही मिला करता है। शुद्ध विवेक वैराग्ययुक्त पारखी सत सज्जन वहुत कम है। बिरले-विरले कही कोई मिलते है। भला ऐसे पारख प्रिय सत के मिले बिना इस जीव का सम्पूर्ण स्थूल-सूक्ष्म वन्धन कैसे छूटेगा ? शुद्ध सग मे रहते हुए भी जो शुद्ध सग से दुराव, छल, चतुराई एव मान रखते और सूक्ष्म कुभावना कुमति कुसंग का ही पोषण करते, उन्हे शुद्ध सग का फल मिले ही कैसे ? तथा वे जड़ाध्यास की वेड़ी को तोड़े ही कैसे ? अत शुद्ध सत्-सग मे जब सच्चा प्रेम हो तभी जानो जीव को शुद्ध सग मिला और तभी इसका कल्याण भी होगा ॥ ४० ॥

कुसंग पाय जो नहि गिरे, संचित के वलवान।
तेहि रचना कैसे किये, तब का ग्रसे न आन ॥ ४१ ॥

टीका—परमार्थ घातक कुसग मे रहते हुये भी जो पूर्व सचित के बलिष्ठ होने से नही गिरते, ऐसा यदि कहा जाय तो प्रथम यह निश्चय ही कुसग मे धॅसाकर नीचे गिराने वाला है। थोडे समय के लिये यह वात मानी भी जाय तो इससे भी प्रयत्न की विशेषता सिद्धि होती है, क्योकि वह न गिरने वाला ज्ञानी ऐसे बलिष्ठ शुभ सचित का निर्माण कैसे कर लिया ? क्या तब (पूर्व जन्मो मे) अन्य विरोधी भोगाकर्षण वाले संचित वेग नही घेरे पडे थे ? अवश्य घेरे थे ॥ ४१ ॥

स्पष्ट—देहोपाधि युक्त शुभाशुभ कर्म के बिना देह रचना होती ही नही। सो देह बन्धनो से घिरे रहते हुए भी कोई-कोई नर जीव जगत प्रपच मे न खिचने का शुभ संचित पूर्व नर जन्मो मे वना लिये, अब वर्तमान मे भी उसी प्रकार अगर जो कोई जिज्ञासु प्रयत्न करे तो स्थूल का बन्धन और सूक्ष्म सचित सस्कार होते हुये भी वाहरी सर्व कुसग त्यागकर भीतर का सर्व जड़ाध्यास नष्ट करते

यहिते जीव स्वतंत्र है, संचित सकै न रोकि।
जस चाहै तैसहिं करै, समझ संग अवलोकि ॥ ३६ ॥

टीका—पूर्व कथन अनुसार एक सचित के वश होते हुये भी नर देहो मे अनेको शुभाशुभ कर्म जीव रच लेते, ऐसा देखने मे आता है। इस कारण से नर देह मे जीव पुरुषार्थ करने मे स्वतंत्र है। उसे पूर्व सचित कर्म रोक नही सकते। वे दृढ निश्चय और अटूट पुरुषार्थ से डिगा नही सकते। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि यह नर जीव जैसा चाहता है, आवश्यकता समझता है, वैसा सकल्प उठाता है, तैसा ही क्रिया करता है और वैसे ही समझ धारण करता है। जैसा सग-कुसग अनुसार अपने भीतर समझ-बूझ तौल-नाप करके जिधर सुख-दुख निश्चय मे आता है उधर ही प्रवृत्ति-निवृत्ति ग्रहण-त्याग का पुरुपार्थ मनुप्य प्राणी करता रहता है ॥ ३६ ॥

कुसंग सवै संसार है, शुद्ध संग कोइ कोय।
तेहि विन पाये जीव यह, कैसे वन्धन खोय ॥ ४० ॥

त्याग-ग्रहण कुछ नही हो सकता। ऐसी वात यदि हो तो अनेक प्रकार की खानियो के तथा अनेक प्रकार के सुख-दुख हेतु अनन्त शुभा-शुभ कर्म होना ही न चाहिये। यदि अनेक कर्म हो गये तो इसका हेतु वताना पडेगा। यदि वैसा सचित वतावे तो एक समय मे एकी सचित रहेगा या अनेक? प्रत्यक्ष एक जीव के सनमुख एक समय मे एकी वासना रहती है और उसी वासना के अनुसार जीव से पुरुपार्थ भी होता रहता हे। तो एक वासना अनुसार एक पुरुपार्थ, एक पुरुपार्थ के अनुसार एक वासना वश यही एक ही कर्म का बीज-वृक्षवत हमेशा प्रवाह रहना चाहिये। पुन आगे पीछे न तो दूसरी वासना उठ सके, न दूसरी किया हो सके, तव तो जाना जाय कि सचित अनुसार ही प्रवृत्ति-निवृत्ति होती है। यदि इसके उल्टे सव नर देहधारी पल-पल मे भिन्न-भिन्न वासनाओ को समझ बूझ के त्याग-ग्रहण तथा तैसे ही पुरुषार्थ को उलट पलट करने मे समर्थवान प्रत्यक्ष दृश्य है, तो सचित अनुसार ही सम्पूर्ण गति-मति कहना विल्कुल अयुक्त तथा कल्पना पूर्ण है।

था, किन्तु अभिमान की मात्रा अधिक होने के नशेबाजो की सङ्गति करते-करते धीरे-धीरे चोर-डाकुओ की सङ्गति से अतिशय क्रूर वन के फलरूप मे मै जन्म-जेल का भागी हो रहा हूँ। सच है—"को न कुसङ्गति पाय नशाई। रहै न नीच मते चतुराई॥" ऐसा कुसङ्ग भयकर समझ के तिससे दूर रहना चाहिये।

प्रसंग ५—स्मरण-दृश्य वाली क्रिया को जीव रदवदल करने मे स्वतंत्र है

प्रारब्धि बनाई जीव की, संचय लहिया जीव।
क्रियामान जीवहिं किये, सुखाध्यास भ्रम लीव॥ ४३ ॥

टीका—प्रारब्ध देह जो अब दुख-सुख देने के सन्मुख है, इसको भी पूर्व-पूर्व कर्मो के संस्काराधीन अविनाशी चेतन जीव अपनी सत्ता से ही निर्माण किया। अभुक्त सचित कर्म भी जीव ही अत करण सयुक्त धारण कर रक्खा है। वर्तमान मे नाना पाप-पुण्य रूप क्रिय-मान कर्म भी जीव ही करता रहता है। इन तीन कर्मो का हेतु सुखाध्यास ही है। सर्व सुखाध्यासो को भ्रम वश जीव ग्रहण कर रक्खा है। सारांश—अनादि काल से देह सम्बन्ध मे निज स्वरूप को भूलते हुए भ्रम वश सुखाशायुक्त त्रिविध कर्मो को जीव ही रचते तथा धारण करते आये है॥ ४३॥

पद—पाप पुण्य शुभ अशुभ क्रिया करि, सुख माने अध्यास लिया।
क्रियामान यहि कर्म ताहि मे सनमुख भोग के जौन लिया॥
तिसे कहत प्रारब्ध सयाने दुख सुख भोगत विवश भया।
भोगत भोगत शेष रहा जो सचित कहते सत तया॥१॥
कर्त्ता धर्त्ता जीव सकल कर यह खेती नित करता है।
त्यागत गहत विविधि विधि तन मे सुख आशा करि फिरता है॥
तन खेती मे दुख जब देखै तब बोना सब बन्द करै।
शेष बीज को भस्म करै नित मुक्त आप बस मुक्त धरै॥२॥

हुये मुक्तिदशा को प्राप्त कर लेवेंगे, सचित आदि नही रोक सकते।

यहौ न्याय से सॉच नहिं, कुसंग किये नहिं हान।
बहुतक गिरते देखिये, कोई एक विलगान ॥ ४२ ॥

टीका—निर्णय दृष्टि से देखने पर यह बात सच नही कि कुसग सेवन से शक्तिमान को परमार्थ धारणा में घाटा नही लगता। विचारने योग्य है कि जिन दुर्गुणों की याद मात्र करने से हृदय मलीन होने लगता है, तो दुर्गुण परक कुसगी के साथ मे प्रेम करके हृदय मलीन हो जाना तो सहज बात है। प्रत्यक्ष अनेक भक्त सज्जन साधु श्रेणी मे आ-आकर जो-जो कुसंग कुभावना से प्रेम किये वे सब गिर जाते है। हाँ! यह बात अवश्य है कि यदि पूर्व के ज्ञान-वैराग्यादि पुरुषार्थ जिसमे विशेप भरा है, उस पर बाहर के प्रलोभन जल्दी असर न करे। इस रीति से कोई विरले कुसग का असर नही आने देते, फिर भी आगे बढने का पुरुपार्थ तो रुक ही जायगा। ऐसी दशा मे यदि वह सावधान होकर ज्ञान-वैराग्य के किसी पुरुपार्थ में न जुटेगा और कुसङ्ग मे अनन्त दुख न देखेगा तो अवश्य उसकी भी हानि हो जायगी। अपुरुषार्थी साधारण की बात ही क्या है? "ज्योति देखि पतग हुलसे, पशू न पेखै आगि। काल फाँस नर मुग्ध न चेतहु, कनक कामिनी लागि ॥" (बीजक) ताते कुसङ्ग त्यागना चाहिये ॥ ४२ ॥

दृष्टात—एक चित्रकार एक धार्मिक यशस्वी पुरुप का अतिशय सरल नम्र सुन्दर चित्र खीचकर प्रसन्न हुआ। चार वर्ष बाद वही चित्रकार जेल में जाकर सबसे बडे अपराधी कठोर मनुष्य का एक चित्र खीच लिया और दोनो चित्रो को उस कठोर मनुष्य को दिखाते हुये पूर्व चित्र का परिचय दिया। इन बातों को सुनकर वह जेली पुरुप बडे जोरो से रोने लगा और कहा कि यह अतिशय सरल-विमल चित्र भी मेरा ही है। तब मैं साधु सद्ग्रन्थ सज्जनो का प्रेमी

निश्चय के विरुद्ध अन्य मार्ग को छोड देते है। फिर जिज्ञासुजन तो सहज ही दुख रूप जगत से हटकर तृप्त शान्त एकरस स्वरूप के विचार में विराजेगे, इसमे कुछ सदेह नही ॥ ४५ ॥

छन्द—निज लक्ष्य बोध विचार तज हत भाग्य क्यो विलखाय है।
ठोकरे खाया बहुत अब भी न गुरु शरणाय है ॥
जो मूल को सीचे तभी सब शाख भी हरियाय है।
मूल पारख वोध सद्‌गुण सेव सब सुख पाय है ॥

प्रसग ६ – सत्संग करने के लाभ के विघातक

लखि प्रतिकूल न सहि सकै, करि इर्षा आभाव।
परमारथ के ओट से, भोग सुखन को चाव ॥ ४६ ॥

टीका—१—निर्णय ठौर मे अपने मन के उल्टा देखकर तनिक भी सहन न कर सकना। २—किसी प्रकार सत्य वक्ता या सज्जन सत-भक्त समाज से भ्रम वश अपनी हानि मानकर तिनसे ईर्ष्या जलन करना, निन्दा तुच्छता आदि वकने लगना, परम हित की बात हो तो भी उसका अभाव तिरस्कार करना। ३—परमार्थ का आश्रय लेकर धर्मध्वजी वन अर्थात सुन्दर साधु या भक्त का भेष बनाकर तिसके सत कर्तव्य मे मन न लगा के उलटे इन्द्रिय सुखो की ही अभिलाषा सिद्धि मे लगे रहना ॥ ४६ ॥

अपने में नहिं लखि कमी, वशि अभिमान वेहोश।
सत शिक्षा नहिं संग की, सुनि कै मोद लहोश ॥ ४७ ॥

टीका—४—अपने मे कमी न देखना। ५—वुद्धि, धन, ऐश्वर्य, वाचाली आदि विश्व अभिमान वश मद्य-नशावत बेखवर रहना। ६—सत्सग मे जो सत शिक्षा होती है, उसे सुनकर प्रसन्न न होना[१]। ये भयकर दोष सतसंग के लाभ लेने नही देते ॥ ४७ ॥

१. टि०—चौ०-अमृत कथा को खारी कहई। श्रद्धा सुरुचि विना का लहई ॥

भानि जानि त्यागत गहत, सुखाध्यास वश आप।
संस्कार दावत अमित, तर ऊपर करि थाप॥ ४४॥

टीका—जीव विषय पदार्थ और तत्सम्बन्धी प्रयत्नों को जानते तिसमे दुख-सुख हानि लाभ मानि-मानि के तिन्हे छोड़ते-पकडते रहते है। अपने आप सब जीवो को अनुभव है कि हम दुख निवृत्ति रूप सुख ही के लिये सारा व्यापार करते है। प्रत्येक नर जीव के सामने आई हुई अन्त:करण मे तमाम वासनाओं को हानिकारी जानकर वे दवा देते और जो वासनाएँ सनमुख नही है, भूली बिसरी है, यदि उनमे सुख अनुभव हो तो उनका बारम्बार स्मरण करके पुष्ट कर लेते है भूली-विसरी विद्या का जैसे पाठन-पठन आदि। प्रत्यक्ष ही वासना समूह को उठाने, दवाने, बदलने मे शक्तिमान रह के अपनी रुचि अनुसार किसी भी संस्कार को नर जीव पुष्ट करते रहते है॥ ४४॥

छन्द—सकल्प सिद्ध महान नर सब पूर्ण धन भण्डार तू।
अभिमान तज जड देह का तज हो रहे निरधार तू॥
तू ईश का भी ईश है तू देव का भी देव है।
सब कामनाये दग्ध कर अब भ्रान्तियाँ सब छेव है॥

सबको देखौ हाल यह, जस निश्चय करि लीन।
वही पुष्ट दिल में करै, औरन को तजि दीन॥ ४५॥

टीका—चोर, कामी, नशेबाज, जुवक्कड, नेता, प्रधान, विद्यार्थी, विद्वान, अविद्वान, सज्जन, दुर्जन, वेश्या, सती सबको देखो अपने अपने कामो मे कितना सहन, कितनी अडिग्गता, कितनी धीर-वीरता, कितनी पुरुषार्थ तत्परता? ये सब देखते-विचारते ही बनता है। समस्त प्राणी जिस प्रकार जिसमे सुख और लाभ निश्चय कर लेते है, उधर ही की भली प्रकार वासना पुष्ट करते हुये मन, कर्म, वाणी से यहाँ तक कि प्राण देकर उसी की पूर्त्ति करते है और सुख लाभ

रखना अर्थात छिपाव-दुराव (कपट) रखना। भाव—सत्सग सुनकर अपने भीतरी निश्चय को चाहे भ्रम मात्र ही हो तो भी निर्णय करने-कराने से रहित रहना, बल्कि उसी को पुष्ट करना। ११—अपने मे जो मन-इन्द्रियो के दुराचरणमय विषयाकार स्वभाव पड़ गये है, उन्ही को प्रिय मान के उसी स्नेह मे रगे रहना या भ्रमकृत कल्पित मत-पथ-ग्रथ का अथवा भ्रमिक मनुष्यो का पक्ष लेना। १२—हम जो बोल-चाल-कर्तव्य ग्रहण कर रहे है, उससे हमारा और दूसरे का (लाभ) होगा या हानि होगी,इसका कुछ भी शोध विचार न करना। १३—अपने देहस्वभाव एव विषयासक्ति की ही युक्ति उक्ति मे लगे रहना, इन दोषो को धारण करने से किसी को भी सतसग का लाभ नही मिल सकता ॥ ४६ ॥

जीत कहै जीतहिं लहै, यहि अनुमोद अँधेर।
उलट सीध को पत्त तजि, मान भंग सुख हेर ॥ ५० ॥

टीका—१४—वाक्य और कर्तव्य मे अपनी ही विशेषता का परिचय देते रहना। जहाँ तक उपाय चले तहाँ तक वाक्य बरबरता से सबको हरा के जीत प्राप्त करते रहना। १५—इसी में अनुमोद एव प्रसन्नता मानकर बारम्बार फूलते और समर्थन करते रहना, यही अधकार का स्वरूप अज्ञान आवरण है, इसमे निज कल्याण की दृष्टि पर पर्दा पड जाता है। १६—पुन. उल्टा-सीधा शुभाशुभ न्याया-न्याय, साँच-झूँठ जो कुछ मुखसे निकल पडा उसी का पक्ष मजबूत करने लगना। साराश—केवल सत्यन्याय को न गहना, विषय कल्पना मे पचना, साथ ही दूसरे का मान मर्दन करके अपना सुख चाहना ये सब बातें सत्सग लाभ मे रुकावट रूप है। और भी—॥ ५० ॥

सकुच छमा आग्राद तजि, मान ध्यान तजि धर्म।
साधु नीति को छोड़ि कै, पंथ लहै मन भर्म ॥ ५१ ॥

मित्र मित्र से कहता है--सत्सग-सद्ग्रथ या निर्णयोक्त साखी-शब्द का पाठ-अर्थ करे हे मित्र! क्या देर है? उत्तर--'हमारा सब जाना है जी।' ऐसा कह के लगे प्रपच की झड़ी लगाने। सत्सगी ने कहा—अच्छा सुनिये! "शौक स्वाद बकवादा। ऊँघौ थकौ न माँदा॥ जग बवाल ना थकहू। पाँखी सम तो जलहू॥ हितहि विचारत जूडी। कैसे बन्धन तूड़ी॥ जब नहि प्रेम स्वबोधा। कैसे वृत्ति निरोधा॥

ऐश्वर्य चाह मन में रखै, निज दुर्गुण नहिं दृष्टि।
पर में कुछ सम्भावनहु, ज्वलित क्रोध दुख वृष्टि॥ ४८॥

टीका—७—जगत के जितने विघ्न प्रपंच से सने ऐश्वर्य विशेष धन-धाम पदवी आदि नश्वर असत को ही सर्वस्व समझ के कामना रखना, उसी की हानि-लाभ की चिता सुख-दुख से सदा सने रहना। अपने दुखदाई दुर्गुण दुःख स्वभावो की परीक्षादृष्टि न रखना। ८—दूसरे मे जो सम्भावना (सुबहा) मात्र दुर्गुण का निश्चय हो गया तैसे ही क्रोध रूप अग्नि मे जल-जलाकर दुख देने की क्रिया की झड़ी आरम्भ करने लगना। निन्दा, तुच्छता के विषय वचन द्वारा जन समाज मे मिथ्या प्रपंच फैलाकर स्वय राग-द्वेष मे जलना और साथी को भी जलाते रहना, इन दुर्गुणो का जहाँ वासा है, तहाँ सत्सग सद्ग्रथ मे प्रियता ही कब होने लगी। याते इन दुर्गुणों को छोड़ देना चाहिये॥ ४८॥

दोहा—गौथन बछड़ा जोक दोउ, इक पय इक भख खून।
जोक भाव छल दम्भ तजि, वत्स भाव सुख लून"॥

भेद राखि सतसंग में, निज स्वभाव प्रिय रंग।
हेतु कुहेतु न शोध करि, देह स्वभाव के ढंग॥ ४९॥

टीका—१०—सतसग निर्णय शोधन विचार करते समय भेद

दोहा—सब जन ठेलै ताहि जब, तब मन बेग बलिष्ट।
सतसङ्गत कौ छोडि वह, भोगत नाना कष्ट'।"

बिना बोध स्वरूप के, बिन बिराग सायुक्ति।
जीति न जावै शत्रु मन, वाक्य ज्ञान मद उक्ति॥ ५२॥

टीका—ठीक-ठीक चैतन्य स्वरूप का बोध ज्ञान यदि न हो और स्वरूप ज्ञान की रक्षा हेतु एकरस वैराग्य धारणा की रीति, नीति, ढंग, फहम, साधन न प्राप्त करे तो मनरूप शत्रु जीता नही जा सकता। मनोदमन का अभ्यास किये बिना मन वश नही हो सकता। वाक्य बोलने गढने बनाने छन्द—प्रबन्ध, श्लोक रचने की चतुरता भले हो और अपने को अहकार भी हो कि मैं सबको वाक्य क्षेत्र मे पराजय कर देता हूँ। ऐसे वाक्य ज्ञान अभिमान से कुछ लाभ नही, क्योकि स्वरूप के विस्मरण और जगत राग से ही मनोवासना वन के पुष्ट है, उसे स्वरूप बोध और यथार्थ वैराग्य लाये बिना कैसे नष्ट कर सकते है? नष्ट नही बल्कि स्वरूप बोध और वैराग्य रहित वाक्य मद वश विशेष-विशेष मनोवासना के भुलावे मे पड़कर अनन्त कष्ट उठाया ही करेगा॥ ५२॥

सब अभाव करि आप रहि, सो न जानि जो पाय।
दै सद्ग्रंथ तिलांजली, सद उपास्य तजि जाय॥ ५३॥

टीका—निज स्वत· चैतन्य स्वरूप के अलावा जहाँ तक इन्द्रिय गोचर—स्थूल पदार्थ और मन गोचर—जहाँ तक स्मरण कामना-चाहना उठती है, से लक्ष्य हटाकर निराधार अपने आप रहने की दशा जो नही जानते, जो सद्ग्रन्थ पढने पर तिलाजलि दे दिये अर्थात परित्याग कर दिये, पानी उलच दिये। उपासना करने योग्य जो रहनी और बोध सम्पन्न वैराग्यवान साधु गुरु है तिनकी सेवा-भक्ति-आज्ञापालन या गुण ग्रहण आदि भी जिन्होने त्याग दिये, ऐसे

टीका—कुवोल, अधर्म, अन्याय, जवर्दस्ती आदि जिन कर्तव्यो से धर्ममार्ग की हानि हो, उन-उनसे हटते हुये वारम्वार सोच-विचार के अपने तथा अन्य के कल्याण हेतु ही वर्ताव गहे, इसके लिये पग-पग मे ध्यान रक्खे, यह सकोच का लक्षण है। दूसरे से अपने प्रति गलती हो जाने पर उससे वदला न ले, शात रहे, ये क्षमा गुण तथा अ-वाद एव निर्विवाद रहना। निर्विवाद का लक्षण—दोहा—"हठ करि जवरन नहि कहै, वादी खैंच न चाव। मान राखि होइ नम्र निज, निर्विवाद मग पाव।।" तो पूर्वोक्त लक्षण युक्त सकुच क्षमा और निर्विवाद को जिसने छोड़ दिया और मनमाने वर्ताव वोल-चाल गहना ये सकुच-शील रहित होने के लक्षण है। वदला लेना तथा हठ पक्ष युक्त झगड़ा करना, ये क्षमा और निर्विवाद रहित के लक्षण है। इस प्रकार जिसने सकुच, क्षमा निर्विवाद रहस्य त्याग कर केवल अपनी वडाई पाने का ही ध्यान रख लिया, जो अपने दर्जे का सत्य धर्म पालन करना छोड़ दिया, जो साधु भेप धारणकर भी ऊपर कथित साधु नीति से पीठ दे दिया, ऐसो को मन वश घोर वन मे रास्ता भूल के अनन्त कप्ट पाने वत दुर्गुण दुर्बुद्धिरूप भ्रम-मार्ग की ही प्राप्ति होती है ।। ५१ ।।

छन्द—इन्द्रियाँ मन बेग वश मे सर्व दुर्गुण को गहै।
व्यभिचार हिसा झूठ छल-वल सर्व दुख भट्ठी दहै।।
जड़वादि तनु पोषक वनै विपरीत भ्रम सुख को लहै।
कर्म काल स्वभाव भ्रममग जन्म धरि धरि भव वहै।।

चौपाई

कहुँ हारा दुतकारा जावै। मिथ्यावादी अयश कमावै।।
छल वल हठ करि जो कहुँ जीते। समुझि चलाँक लोग तजि प्रीते।।
निज मुख निजहि वड़ाई सुनि कै। लखि सकाम दोपी उर गुनि कै।।

विपय विकारो मे डूबा ही करेगा। भले ही वह अपने को अलिप्त-असगी सिद्ध कर देवे और वह वाक्य बोलने मे निपुण हो, अन्य को जीत लेने की उसमे टकसार हो, वात पर वात गढता जाय, किसी प्रकार हार का अवसर न आने देवे, वाक्यों द्वारा मौके पर अपनी जीत ही रक्खे उसे वाक्य निपुण टकसार कहते है। ऐसा होने पर भी सब खाली हाथ सार कुछ नही। भाव—शुद्ध रहस्य, अभ्यास मे तल्लीन न हो तो सब वक्तृत्व कला सूवा रट्टूवत या खरवद्भार न्याय बोझ मात्र ही है ॥ ५५ ॥

प्रश्न—इन सब दुर्गुणो का त्याग कैसे हो ?

उत्तर—पहिले तो ऐसी चिंता रखना ही मुख्य साधन है। फिर चितापूर्ति साधक कार्य आरम्भ कर देना बारम्वार, गुरुजन-सद्ग्रथ स्वानुभव से पुनर्जन्म, कर्म फल, निज का नित्यत्व, भोग असार, परमार्थ-मग सार एवं विचार की धारा बना लेना, फिर तो रक्षक-भक्षक का ग्रहण-त्याग यथायोग्य बर्ताव द्वारा पवित्र हो जाओगे।

लड़न भिड़न परवृत्ति लै, मान बढ़ावन टेक।
राग द्वेष की भावना, उलझन दिल में भेक ॥ ५६ ॥

टीका—हमेशा वाद-विवाद करके लडने-भिड़ने की बहिर्वृत्ति मे भटकते रहना, इस हेतु से कि जिसमें सबसे बढकर हमारा मान यश कीर्ति फैल जाय, मानवृद्धि का ही पक्ष मजबूती से पकड़ रखना और साथ ही राग-द्वेष कृत स्मरणों की उत्तेजी युक्त रहना। जैसे मेढक प्रथम बरसात मे मुख फुलाकर बोलने मे आतुर रहता है, तैसे राग-द्वेष, उखाड़-पछाड़ विवाद की असंख्य भावना द्वारा प्रेरित होते हुये, उलझन-अशातित्व आतुरता धारण किये रहना, १८—ये सब बातें विल्कुल सत्संग के फल को लेने नही देते, ताते कल्याण मार्ग के घातक है ॥ ५६ ॥

प्रश्न—इन सब दुर्गुणो की जड़ क्या है ?

को भला कल्याण की आशा कहाँ ? कल्याण तो दूर है यथार्थ मार्ग का बोध होना ही दुस्तर है ॥ ५३ ॥

प्रश्न—क्या सब प्रपच का अभाव जरूरी है ?

उत्तर—अवश्य । इसके साथ जो सब राग से हट कर शेष चेतन अपना आप स्वय स्ववश स्थित होना, सबका फल है।

जन समूह में स्थिती, सब छिन मानि अबन्ध ।
अन्य रिझावन रीझि खुद, भोग प्रतिष्ठा बन्ध ॥ ५४ ॥

टीका—जन समूह—भीड़-भाड प्रपंच मे ही दिन-रात रह कर अपनी निर्बन्ध स्थिति मुक्ति गति मान लेना, केवल दूसरो को मनो विनोद द्वारा रिझाना, उन्ही मे स्वय रागवान हो जाना, इन्द्रिय भोग और अपनी प्रतिष्ठा-बड़प्पा के कल्पित स्वाद मे मग्न होकर अज्ञानी वत जगत प्रपच मे जकड जाना ये सब वध ज्ञानी के लक्षण है। १७—इसमे भी सत्सग सद्ग्रन्थ का फल नही मिल सकता ॥ ५४ ॥

प्रश्न—क्या जन समूह से पृथक होना भी चाहिये ?

उत्तर—अवश्य ! बिना इसके उल्झने कैसे मिटेगी ?

होय कामना भंग जब, तब दुख अगम अपार ।
तन मन सिधु न पार सो, वाक्य निपुण टकसार ॥ ५५ ॥

टीका—विवेक वैराग्य छोड़कर उपरोक्त दुर्गुण वाले मनुष्य की कामना पूर्ति के मार्ग मे जब रुकावट पडती है तब उसे अथाह अनन्त कष्ट होता है । असहन, भोगातुर, असमता, मायाबी वस्तु की तृष्णा, उपाधि सग्रह, वाक्य खरभरता और हुकूमत की इच्छा ये सब दुर्गुण इकट्ठे होकर कामना वासी को दुतकार-फटकार, हार-भार, बधन, राग-द्वेप, प्रपच, लड़ाई-झगडा आदि अनन्त कष्ट मिला करते है । वह तन—इन्द्रियो की खैच और मन—सूक्ष्म वासना काम क्रोधादि आसक्ति वेगो की लहर से पार नही पा सकता, तन-मन

जगत परपंच से हटना अवश्यक है अवश्यक है।
चपल मन को स्ववश करना अवश्यक है अवश्यक है ॥"

प्रसग—७ विघातको को हटाय शुद्ध साधु सज्जनो
की संगति करने का फल

सतसंगति से समझ बढ़ै, जो जैसहिं चित देय।
हानि लाभ देखै भले, गहै यथारथ ध्येय ॥ ५६ ॥

टीका—जहाँ सत्य-असत्य का पारख युक्त निर्णय होता रहता है, ऐसे सन्तो के यथार्थ निर्णय श्रवण-मनन से सुबुद्धि रूप समझ बढ जाती है। जो कहो बहुत सत्सङ्ग मे रहते हुये भी सुबुद्धि वाले नही दीखते है, तो सुनो पूर्व दोषो को जान बूझ के धारण करने से सत्सङ्ग का फल नहीं मिलता। प्रत्यक्ष देखिये! जो जितना ही अंतः-करण को स्वच्छ करके सत्सङ्ग निर्णय की बातों मे ध्यान देता है, उतना ही उसे विशेष पारमार्थिक समझ प्राप्ति हो जाती है। जिस समझ से हानि रूप विपयासक्ति दुर्गुण कुसंगादि और लाभ रूप स्वरूप विचार वैराग्य भक्ति दया धर्मादि ये भली प्रकार देखने मे आ जाते है। हानि-लाभ समझने के बाद ठीक-ठीक दुख छूटने का मार्ग स्वरूपज्ञान और वैराग्यादि सत्साधन निश्चय पूर्वक सत्य सिद्धात को सत्सङ्गी जन ग्रहण कर लेते है। फिर वे कभी अपने सत्य सिद्धांत से विचलित नही होते ॥ ५६ ॥

सतसंग फलै ततकाल ही, श्रेणी के अनुसार।
दुख सुख होना हेतु लखि, निज निज शक्ति सुधार ॥ ६० ॥

टीका—विवेकवान सन्तो की संगति करने का लाभ शीघ्र मिल जाता है। अपने-अपने दर्जे के अनुसार गृहस्थ हो या विरक्त, स्त्री हो या पुरुष, विद्वान हो या अविद्वान सबको कल्याण मग की सूझ-बूझ होकर कल्याण मार्ग की तरफ ही वे चलने लगते है। दुख क्यों और किससे होता है? अक्षय सुख शाति का हेतु क्या है? ये दोनो बाते

उत्तर—वस मान-सम्मान की कामना ।

प्रश्न—इस विघ्न का त्याग कराइये !

उत्तर—आपकी ऐसी दृढ चिंता ही .वढनी चाहिये, एकान्त शान्त स्ववश मे सव लाभ देखो ।

निजय करन सब विश्व को, जब लग दिल में भाव ।
राति दिवस तेहि फेर में, कहाँ शांति को पाव ॥ ५७ ॥

टीका—१६—सम्पूर्ण जगज्जीवो पर जीत प्राप्त करने की जब तक जिसके दिल मे दृढ लालसा वनी हुई है और रात-दिन उसी के फेर-फार रेच-पेच उक्ति-युक्ति मे जो आकुल-व्याकुल रहते है, उन्हे कव कैसे कहाँ शाति-समाधि की प्राप्ति हो सकती है ? भाव—झगडे उपाधि का काम करके फिर निरुपाधि—झगडा रहित शाति समाधि को कोई नहीं प्राप्त हो सकता । यदि केवल राग-द्वेप हठ-पक्ष मान वाचाली दम्भ इसी को शाति समाधि कहे तो अशांति झगड़ा द्वन्द्व उपाधि किसे कहा जाय ? इसी मान और विपयासक्ति कामना की विवशता से तो सर्व जीव प्रपच मे सने नजर आ रहे है ॥ ५७ ॥

सतसंगत फल देत नहिं, इनको राखि परोस ।
मूल छेद तिनको भले, सतसंगति फल पोप ॥ ५८ ॥

टीका—साधु सग मे रहते हुए भी पूर्वोक्त उन्नीस दोपों को पास मे रखकर "औंधे घड़ा नही जल भरिया" न्याय यथार्थ साधु-गुरु का सत्य निर्णय उसे फल न देगा । पारखी सतो के सङ्ग का फल उसे ग्रहण न होगा । इसलिये इन दोपो को जड़मूल से त्यागकर भली प्रकार श्रद्धा सहित सत्संग करना चाहिये । जिस सत्सग के फल स्वरूप मे सदाचरण ओर सद्बुद्धि रूप अमृत चखकर सत्सगी पूर्ण तृप्त हो जाता है ॥ ५८ ॥

पद—"तुम्हे सत्सङ्ग को करना अवश्यक है अवश्यक है ।
सकल दुर्गुण को तजना ही अवश्यक है अवश्यक है ॥

टीका—साधु संग मे जाके निर्णय कथा-वार्ता सुनकर वह वस्तु मिलती है जो कि जगत मे सम्पूर्ण धन-ऐश्वर्य से नही मिल सकती। प्रथम शाति की प्राप्ति होती है। दोहा—"कलह कल्पना कामना, छोड़ि रहे निर्भ्रान्त। जग तृष्णा तजि तोष थिर, गहौ रत्न ये शात॥" दूसरे सुबुद्धि मिलती। दोहा—"दया धरम शत शील युत, लहै मोक्ष को अंग। सो सुबुद्धि नयना खुले, धन्य-धन्य सतसङ्ग॥" पुनः साधु-सग से समता की प्राप्ति होती है। दोहा—"निज सम जाने जीव सव, दोष कलक निवारि। आप बन्ध तजि हित सबै, समता बोल विचारि॥" फिर साधुसग करने ही से जगतके सर्व सुख भोग नश्वर तृष्णा आसक्ति अघ अवगुण उपाधि मूल समझ के त्याग हो जाते है। जब भोग प्राप्ति ही कामना व्याधि पूर्ण है तो अप्राप्त भोगो की आशा क्यों करे? फिर तो प्रारब्ध भोग तन निर्वाह मे यथा प्राप्ति अल्प ही से संतोष धारण करके स्वरूपबोध द्वारा पूर्ण तृप्ति हो जाती है। दोहा—"जेहि तृप्ती हित रातदिन, जगत जीव हैरान। सो सब निकटै चाह तजि, तोष से हृदय जुडान॥" इस प्रकार जो जितना ही साधु-सग मे जाकर हर्षयुक्त ज्ञान का श्रवण मनन रहस्य धारणारूप परि-श्रम करते है वे उतना ही शान्ति-सुमति-समता ग्रहण के साथ विषय भोगो को त्याग संतोषयुत सर्व संचित-आगामी पाप-दोष क्रिया भस्म करके शुद्ध हसरूप हो जाते है। अतः सत्सग विचार करने मे आलस्य-प्रमाद न करे॥ ६१॥

सत्सङ्ग प्रेरणा—गजल

सतसग सार जग में जो चेत कर पियारे।
निर्मल प्रवाह गंगा मन मैल धो सफारे॥टेक॥
दोहा—विद्या धन कुल रूप यश, मिले गये बहु बार।
रहटचक्र नहि बन्द भौ, पुनि पुनि मन भवधार॥
दुर्लभ है सन्त मिलनो भव से करे जो पारे॥ १॥

सत्सग द्वारा समझ मिल जाती है। फिर अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार सत्सङ्ग के प्रेमी जन अपने सुधार-उद्धार मार्ग मे लग जाते है। दुख दायक कुकर्तव्य त्याग के शुभाचरण रूप सत्य मार्ग मे चलकर अक्षय सुख शाति को प्राप्त होते है ॥ ६० ॥

शब्द

करौ सतसङ्ग हटै दुख भारी ॥ टेक ॥

खगन उडावत लाल जु फेक्यौ, गई सो गई अब राखु सभारी ॥१॥
दाद खुजावत द्वार जु टार्‌यो, अधदशा भई रहत दुखारी ॥२॥
मन्दिर देह मध्य धन दरशे, प्रेम स्वतः पारख सुखकारी ॥३॥

प्रश्न—गृहस्थी मे सुधार—कल्याण मार्ग कैसे प्राप्त करे ?

उत्तर—सत्य धरम की कमाई से जीविका, आश्रित कुटुम्ब का धर्मोचित पोपण करते हुये सबको धर्म भक्ति ज्ञान मे लगाने के लिये नित्य ज्ञान कथा, भूखे-दूखे की यथाशक्ति उपकार, माता-पिता की सेवा, सन्त-गुरु की उपासना, पर नारि, पर द्रव्य, हिंसा, मछली, मास, पर अपमान से पीठ देकर अपनी वस्तुओं में भी धर्मोचित वर्तते हुये आसक्तियो के त्याग का प्रयत्न, स्वरूपबोध ग्रहण, झगडा न वढावे, समता-क्षमा से रहे ये सब गृहस्थ नर-नारियो के कल्याण पथ है।

प्रश्न—नर-नारी, गृही-विरक्त, मठधारी, मुमुक्षु-विद्यार्थी सर्व के लिये हितैपी सरल सुगम मुक्तिमार्ग कौन है ?

उत्तर—एक सत्य दूजो धरम, तीजो कर सत्सग।
चौथे इन्द्री मारि मन, जन्म मरण हो भंग ॥१॥
इस प्रकार सतसग से, सबका होय सुधार।
जो न गहै हिय हर्ष से, ते का होइ है पार ॥२॥

शांति सुमति समता मिलै, भोगन में संतोप।
जो जैसहिं पुरुपार्थ करि, तैसहिं ह्वै निर्दोप ॥ ६१ ॥

तैसहि सत सुज्ञान सुझावत मेटि अबोध हिये को अज्ञाना।
नित्य सप्रेम करो सत संगहि जो निज रूपहि चाहत जाना ॥

प्रश्न—क्या सत्संग से बहुत कुछ धन या सुख मिलता है

उत्तर—क्यो नही । वह धन वह सुख जिसका नाश न हो सदा स्ववश रहे स्वरूप ज्ञान रहस्य रूप सर्वोच्च लाभ मिलता है ।

पुरुषार्थ न खाली जात है, जहाँ दृश्य स्मर्ण ।
अदृश्य न सनमुख होत है, तिनको वैसहिं भर्ण ॥ ६३ ॥

टीका—किसी भी हालत मे रहकर हे जीव ! तुम्हारा सतसंग, सद्ग्रथ तथा सद्धारणा रूप पुरुषार्थ निष्फल न होगा, सदा फलदाई होगा । जहाँ पर सन्मुख स्मरण उठ-उठ कर जानने में आ रहे है, वहाँ स्मरण कृत काम, क्रोध, राग-द्वेषादि विकारो को जितना ही सत्साधन युक्त रोकने का प्रयत्न करोगे उतना ही स्मरण स्ववश मे आकर सदाचरणरूप मे ढल जायेगे । जिन सदाचरणो के प्रताप से इसी वर्तमान जन्म मे भी कृतार्थ होकर विराजोगे, आगे भी वासना वीज दग्ध करने से जन्म-मरणादि दुखों से बच जाओगे । अदृश्य भोग जो कि स्मरण में नही आते, जैसे बिजली गिर पड़ना, कोई अचानक व्याधि आ जाना, प्रिय वस्तु का बिछुड़न हो जाना, कल शरीर की हालत कैसे होगी, यत्न करते भी दैहिक यात्रा मे लाभ के बदले हानि, हानि के बदले लाभ एकाएकी प्राप्त हो जाना, जिसका पहिले से पता नही ऐसे देह भोग होने वाले अदृश्य कर्मो को पूर्व प्रारब्धानुसार ही हठात भोगना पड़ता है । ऐसा समझ के अदृश्य देह भोग की चिन्ता त्याग दृश्य मनोमय ही स्ववश करने के लिये पुरुपार्थी बने रहो । फिर देखो ! सब काम पूर्ण होता है या नहीं ॥ ६३ ॥

छन्द—बहु देव देवी तीर्थ व्रत वहु शास्त्र वेद बिचारिये ।।
जड़ योग भोग विक्षिप्त हो हो चित्त उल्झन हारिये ॥

नारि हेतु कागा बने, मन नट बन्दर जीव।
नाचत नाचत रैनि दिन, हो निलज्ज शठ कीव ॥
कागा को हस क्षण मे रहनी पुनीत धारे ॥ २ ॥
पाँच चोर दस ठग लगे, डाकिनि तृष्णा रोश।
तीर मान सुख के चुभे, तलफै जीव वेहोश ॥
दुख द्वन्द्व जाल काटै क्षण माहि सुख अपारे ॥ ३ ॥
पापी अधम मलीन मन, कचन को ज्यो ताव।
साधु सोनार के हाथ लगि, कसत दिव्य होइ जाव ॥
करि प्रेम नेम देखौ गफिलत कि नीद टारे ॥ ४ ॥

लाभ महान मनुष्य को, संतसंग गहि ज्ञान।
होय स्ववश मन आपना, भक्ति धरम पहिचान ॥ ६२ ॥

टीका—सबसे बडा लाभ मनुष्यो को पारखी गुरुदेव का सत्सग ही है। क्योकि तिस सत्सग को धारण करने से यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति होती है। भौतिक जड तत्वो से भिन्न मैं स्वय चैतन्य हूँ, यह सम्पूर्ण जगत अनादि है। मुझ चैतन्य का जड़ से सम्बन्ध भूल भ्रम मानन्दी द्वारा ही है। इसकी निवृत्ति यथार्थ वोध मे स्थिर होने और जगत वासनाओ के त्याग से हो जाती है। प्रारब्ध भोग नैराश्यतायुक्त भोगके समाप्त कर देने से देह ग्रथि रहित जीव सदा के लिये विदेह-मुक्त हो जाता है, ये सब बाते सत्सग से अच्छी प्रकार दृढ हो जाती है। मन के वशवर्ती रहने से अनन्त कष्ट होता है। मन को स्ववश रखनेसे अनन्त शाति-सुख मिलता है। सत्संग करनेसे चंचल मन भी अपने काबू मे आ जाता है। यथार्थ भक्ति और मनुष्य के गुण-लक्षण व यथार्थ धर्म की पिछान होकर वे सब धारणा मे आ जाते है ॥६२॥

सवैया

ज्यो सिकलीगर जग छुड़ावत वायु उड़ावत वादल नाना।
नैन सलाके को मेलि नशै पट भूले को राह दिखावत थाना ॥

जैसे चोर, जार स्त्री, नशेबाज आदि । क्या ये ही ? सब कोई विवश रहते हुये भी अपना शुभाशुभ ध्येय अलग ही अलग रख के क्रिया करते हैं। इससे अनुभव हुआ कि भूलवश चाहे जितने बधनो को जीव गढ लिया हो और चाहे जितनी परवशता से जकड गया हो, किन्तु ठीक-ठीक सत्सग द्वारा समझ दृढ करते ही सर्व बन्धनो को तोड़कर स्ववश विराजेगा ॥ ६५॥

जेहली सेवत जेलहू, रचि बन्धन निर्बन्ध ।
उक्ति युक्ति बहु जीव में, दुख छूटन के धन्ध ॥ ६६ ॥

टीका—जेली भी पहिले लोक विरुद्ध मनमानी चोरी व्यभिचारी करके आप ही बन्धन बनाकर जेल मे कई वर्ष के लिये ठेल दिया गया है। पर वह वहाँ भी रात-दिन इसी चिंता मे रहता है कि कब मै इससे छुट्टी पाऊँ ? इसके लिये वह जेल मे रहते हुये भी यथाशक्ति स्वतत्रता से अनत युक्ति-उक्ति रचता रहता है। कोई तो सदाचार पूर्वक रहते हुये मौका पाते ही उत्तम-उत्तम सद्ग्रन्थ पढता और शील भाव से रहकर आगामी दुष्कर्मो को रोकने की दृढ चेप्टा प्रतिज्ञा कर लेता। इस कर्तव्य से वह जेल मे रहते हुये भी जेल के दुखों से पृथक रहता। पुन भविष्य मे जेल जाने का तिसे हेतु ही नही रह जाता। अब इसके उल्टे बहुत ऐसे भी है कि जेल मे रहते भी अत्याचार दुष्कर्म करते, कुग्रथ पढते, आगे के लिये कुकर्तव्य की चेष्टा रखते। जेल मे भी भयानक कर्म करने वाले कैदियों की सजा और बढा दी जाती है तथा अन्छे आचरण व।ले को अल्प ही काल मे छोड़ भी दिया जाता है। एवं जेल मे रहते-रहते जब जीव बध-निर्बन्ध के विचार तथा धन्धा-कर्तव्य मे स्वतत्र है। इस विचार से प्रत्यक्ष मनुष्य जीवो मे दुख छुड़ाने की अनन्त युक्ति-उक्ति विद्यमान है। यदि सत्संग सद्ग्रन्थ परीक्षा शक्ति का शस्त्र लेकर निजी भूल कृत मनोमय बन्धन को नष्ट कर देवे, तो निश्चय ही जीव मुक्त हो

जब तलक गुरु परख रवि सत्सग सन्मुख हो नही ।
तब तलक जड भूल से अज्ञान तम जावै कही ? ॥

जीव निराला कर्म से, सोचै युक्ति अनेक ।
घात पाय चूकै नहीं, शीघ्रहि दुख को फेंक ॥ ६४ ॥

टीका—शारीरिक, मानसिक और शुभाशुभ सर्व क्रियाओं का चैतन्य जीव जाननहार सर्व से पृथक है । वह दुख निवृत्ति ओर सुख प्राप्ति अर्थ अनेक युक्तियो को सोचता विचारता शोध लगाता रहता है । भला ! ऐसे सरकार क्या दॉव पाकर चूक सकते है ? कभी नही । दुख निश्चय होते ही झटपट दुख कूडा करकट रूप क्रिया को फेंक देंगे—त्याग देगे । केवल दुख छल भेद जानने की ही देरी है, ताते सत्सग अवश्य कर्तव्य है ॥ ६४ ॥

सवैया

भोर भयो अब जागि गये गुरुदेव दया करि बैन जो टेरे ।
सतन के संग सौदा किये अब अल्पहि मूल्य अनत मिले रे ॥
सोचि विचारि सयुक्ति से बोलत आगे व पीछे व सनमुख नेरे ।
मारि मनोमय थीर विराजत पारख सत्य में प्रेम डटे रे ॥

प्रसङ्ग ८—निश्चय के आधीन मनुष्य जीवो मे
पुरुषार्थ करने की स्ववशता

राजा परजा नारि नर, पिता पुत्र लखि भिन्न ।
पृथक समझ करनी रहै, सेय विवशता खिन्न ॥ ६५ ॥

टीका—नृपति-प्रजा, स्त्री-पुरुष, पिता-पुत्र सब अलग ही अलग दिखाई दे रहे है । तहॉ सबकी समझ मे न्यारी-न्यारी तथा कर्तव्य भी न्यारे-न्यारे । प्रजा राजा के वश, स्त्री पुरुष के वश, पुत्र पिता के वश में रहकर ये सब विवशता के दुख मे पडे हुये भी अपनी समझ और कर्तव्य को अलग ही अलग रखते है । यहॉ तक कि कठिन दुख पाकर भी अपने-अपने निश्चित, समझ और कर्तव्य को नही छोड़ते ।

करता है। जब जो देह धरता तब तिस-तिस देहो मे सब कर्मो का रचने वाला पीव (मालिक) अपने आप चैतन्य जीव ही बासा करके दुख-सुख भोगता पहता है। जैसा एक जीव का हाल तैसे ही सब जीव अपने-अपने कर्मो का कर्त्ता-भोक्ता जानना चाहिये, सो प्रत्यक्ष ही है ॥ ६८ ॥

स्पष्ट—यहाँ व्यापक का अर्थ नही, बल्कि चारो खानियो मे निज-निज किये हुये सर्व शुभाशुभ कर्मो के मालिक कर्म करने वाले वे ही आप-आप जीव वासना वश देह धर-धर के पृथक-पृथक दुख-सुख फल भोक्ता होते हैं।

कर्म भूमिका देह नर, तेहिमें गढ़ि कै कर्म।
राग विरति दुखसुख विविधि, वुद्धि विधाता पर्म ॥ ६९ ॥

टीका—कर्म भूमिका नरदेह ही है। इसी में सब कर्म बनाते रहते है। राग सम्बधी सुख-दुख देनेवाले शुभाशूभकर्म और वैराग्य सम्बधी दुख रहित होने का पुरुषार्थ एव अनेकों व्यवहार करते हुये सब नर जीव प्रत्यक्ष दिखाई दे रहे है। वे नर जीव ही अपनी बुद्धि—निश्चयता को सग साधन तथा अभ्यास द्वारे उलट-पलट करते रहते है। इसी से यह नर जीव वुद्धि का सृजने वाला सर्वोपर है ॥ ६९ ॥

सब सुकृत को फल कहे, सद्ग्रन्थन में गाय।
प्राप्ति भई सो आजु जेहि, कस न फन्द विलगाय ॥ ७० ॥

टीका—सर्व अच्छे-अच्छे कर्म करने का परिणाम रूप इस मनुष्य देह की प्राप्ति है। अन्य सद्ग्रन्थों में भी यही कथन किया गया है। "चौ०—सचित कर्म उदय जब होय। मानुष देह तब पावै सोय ॥ उत्तम नर की देह जो लागे। भूलि गये सो अधम अभागे ॥" पच० ॥ "मानुष जन्म चूकेउ अपराधी। यहि तन केर बहुत है साक्षी ॥" "अबकी वार जो होय चुकाव। कहहि कबीर ताकी पूरी दॉव ॥" ॥वी०॥ ऐसी सर्व गुणागार मनुष्य देह जिसे प्राप्त हुई, वो क्यो नही

रहेगा। कितना उच्च दृष्टांत सिद्धांत ! इसे विचार करते ही करते इन अनुभवपूर्ण बातों का रस मिलेगा। अब आगे देखिये ॥ ६६ ॥

तन मानन्दी जेल है, बन्धन सेवत जीव।
मनन दलै गुरु ज्ञान से, क्रम क्रम गुरुमग लीव ॥ ६७ ॥

टीका—स्थूलिक रोग, इन्द्रियों की खैच, निर्वाहादिक भार और सुखाध्यास, नाना भ्रम अनुमान कल्पना, एवं तन मन स्थूल सूक्ष्म देह की विवशता देह और देह के साथ जितनी मानन्दी है यही जेल है। इसी बन्धन रूप कष्टप्रद जेल का जीव सेवन कर रहा है अर्थात कष्ट भोग रहा है। दो०—'यम अज्ञान बहु वासना, मनो दूत वपु नर्क। कटि पिटि छिदि पिसि ताहिमे, त्रिविधि ताप रुज गर्क ॥' ऐसे देह नर्क मे जीव दुसह दुख भोगता है। साथ ही विषयासक्ति पाप-पुण्य काम्य कर्मादि आगे के लिये बीज भी बो रहा है। इस जेल से छूटने का उपाय यही है कि जितने बन्धन रूप जड़ाध्यास सुखासक्ति मनन-चितन होते है, उनको गुरु के पारख बल से दुखपूर्ण मिथ्या समझ-समझ के मनन ही को त्यागे। पहिले अशुद्ध मन काम—राग-द्वेषादि चितन को हटा-हटा कर उसकी जगह पर सत-सद्गुरु का निर्णय बोध शुभाचरण ये सब चितन करे। एव इन्द्रियों को असत मार्ग से रोक कर धीरे-धीरे ऊब-डूब रहित लगातार अभ्यास करते हुये गुरु-मार्ग हंसदशा एकरस पुष्ट कर लेवे। इस युक्ति से जीव पुरुपार्थ के बल से गुरु के पारख पद को प्राप्त कर लेगा ॥ ६७ ॥

करम रचे चव खानि के, मनुष्य देह में जीव।
ऊँच नीच मध्यम तहाँ, सबमें सबका पीव ॥ ६८ ॥

टीका—चारो खानियो के कर्म नर देह मे यह जीव रचता रहता है। तहाँ चारो खानियो मे भोगने के लिये उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ तीनो प्रकार के कर्म करता। जैसा कर्म किया तैसे ही वासना अनुसार उत्तम-मध्यम-कनिष्ठ सब देहों को समय-समय पर धारण

जब देखै सुख बन्ध मम, जानि आपना भेद ।
खोदि बहावै ताहि तब, साँचा होय अखेद ॥ ७२ ॥

टीका—जब जीव के परखने में भली प्रकार यह बात आ जाय कि सुख भोग ही मेरा पूर्ण बन्धन है, गले की फाँसी, सकल कामना रोग और सम्पूर्ण दोष दुर्गुण हेतु त्रयतापो से जलाने वाला है। वारम्बार जन्म-मरण का बीज है और मेरा स्वरूप गुण प्रभाव असलियत हैसियत सुख-दुख क्षणिक वृत्तियो से पृथक सर्व भौतिक प्रकृतिवर्ग से पार एकरस नित्य तृप्त निराधार है। भोग वृत्तियो की मेरे मे कोई आवश्यकता नहीं। "सो भोगे विन इच्छा पूरी होय।" जब ऐसी पूर्ण परीक्षादृष्टि से पुष्ट हो जाय, तो वह दुखपूर्ण समझे हुये सुख की जड़ खोद-खोद के परीक्षा कर-करके ध्वस कर डालेगा और आप सत्यता पूर्वक सत्य रहनी-गहनी सत्य स्वरूप की महानता स्थिति एकरस पुष्ट करके दुख द्वन्द्व रहित मुक्तदशा को प्राप्त कर लेगा, ये निश्चय ॥ ७२ ॥

छन्द

चैतन्य जड़ कर के पृथक लख सुक्ख भ्रान्ति मनोमई ।
आदत व लत आसक्ति में क्यो व्यर्थ चंचल धावई ॥
एक वृति से कर मनन गुरु बोध ही चित भावई ।
सुख खैंच भ्रम मिट जायगा द्रष्टा स्वतः ठहरावई ॥

दृष्टांत—जागो लोगो चोर

इक धनपाल कि पुत्री जानौ । सोवत रही अटारी मानौ ॥
तहँ धन कोष जमा यह जाने । गये चोर तहँ तीनि लोभाने ॥
पुत्री जानि गई यह बाता । चतुराई कौहट से माता ॥
अम्मारी ! अम्मा ! मोंहि देखै । तरुण अवस्था मोर बिशेषै ॥
दोहा—मम संलग्न कराय यदि, पतीजन्य जब पूत ।
तव बिचित्र मै नाम धरि, 'जागो' एकहि कूत ॥

अपने अनादि काल के मनोमय वन्धन को त्याग सकता है ? अवश्य त्याग सकता है । ऐसा समझ के सर्व फन्दा काटकर जीवन्मुक्त होने के लिये अवश्य कटिवद्ध होना चाहिये, क्योकि—"आजु वसेरा नियरे हो रमैया राम । काल वसेरा वड़ि दूरि हो रमैया राम" भाव—आगे की आशा मे विविध विघ्नो से घिर के मृत्यु या अति वृद्ध अथवा पशु-पक्षी देहो मे जाकर कष्ट पाते हुये भी कोई उपाय न चलेगा, याते प्रथम से ही सजग हो कार्य पूर्ण रक्खे ।। ७० ।।

प्रश्न—मानुष देह तो वहुतों को प्राप्त है वे निर्वन्ध क्यो नही होते ?

उत्तर—अनादि अज्ञान से दृष्टि घिरी है । सत्संग विवेक को वे प्राप्त करे तो कार्य वना सकते है। प्रथम अपने सुधार का दृढ फिक्र कीजिये ।

स्वतंत्र आप यह जीव है, दुख सुख भिन्न प्रवीन ।
दुख छोड़त सुख चाहता, ताहि हेतु लौलीन ।। ७१ ।।

टीका—कार्य-कारण, अश-अशी भाव रहित यह चेतन जीव अनादि नित्य होने से स्वतत्र है । देह और देहोपाधि कृत दुख-सुख सव मनोमय तथा परमाणु सृष्टि से न्यारा सर्व जनैया जान मात्र सवसे श्रेष्ठ शिरोमणि है। यह चेतन जीव भूल के वश रहने पर भी अपनी पृथकता का सैन दे रहा है। वह शक्तिभर दुख को लेश मात्र भी कभी नही चाहता। जहाँ-जहाँ उसे कठिन दुख अनुभव होता है उसे जल्दी से वह त्याग करने मे ही तत्पर रहता है। एव दुख रहित होकर वह सदा सुख के लिये लालायित रहता है और जहाँ इसने अपनी समझ अनुसार सुख मान रक्खा है उसी वस्तु-क्रिया के लिये हमेशा प्रवृत्त होता रहता है। यही स्वतत्रता के चिन्ह है ।। ७१ ।।

टीका—प्रारब्ध भोग तो सनमुख फल देकर क्षीण हो जाता है। पूर्व अभुक्त सचित—भोगने से जो अभी शेष है, सो प्रारब्ध वर्तमान देह के साथ भोगने मे आते नही और जितने कर्मो से स्थूल बनकर हठात सामने जीवन भर भोग मे पड़ते वे प्रारब्ध भोग उदय जानिये ॥ ७३ ॥

क्रियामान पुरुषार्थ है, राग विरागहिं ओर ।
दुख सुख का सोइ हेतु है, रचत बुद्धि के जोर ॥ ७४ ॥

टीका—छूटने और सुख प्राप्ति अर्थ जो कुछ मनुष्य मानन्दी युक्त क्रिया करते है वह सब क्रियमान पुरुषार्थ है। वह राग और वैराग्य दो प्रकार से किया जाता है। विषय सुख सिद्धि अर्थ कितने पुरुपार्थ करते और कोई वैराग्यपुष्टि अर्थ क्रिया करते। दुख और सुख का कारण राग और वैराग्य की क्रिया है। राग-क्रिया से दुख-बन्धन प्राप्त होता है और यथार्थ वैराग्य-क्रिया से निर्बन्ध स्वतत्ररूप सुख प्राप्त होता है। सो राग विषयासक्ति की क्रिया और विषय त्याग-रूप वैराग्य की क्रिया बुद्धि-बल से जिधर लाभ-सुख निश्चय नर जीव करते है, उधर की क्रिया उक्ति युक्ति पुरुषार्थ द्वारे ग्रहण करते रहते है। इस प्रकार बुद्धि, समझ, शक्ति के आधार से राग और वैराग्य की क्रिया[1] होती है॥ ७४ ॥

तन मन से वर्तमान में, दुख सुख देते सोय ।
संस्कार अब तब फलैं, पुनः देह जो होय ॥ ७५ ॥

टीका—शरीर के हाथ, पाँव, मुख आदि इन्द्रियाँ और अंतःकरण

१ टिप्पणी—सकाम क्रियमान से जन्म-मरण होता है और निष्काम बोध सहित किया अर्थात पुरुषार्थ से वासना बीज दग्ध होता है। इस प्रकार क्रिया के दो भेद समझना चाहिये। यहाँ किसी कार्य करने के लक्ष्य से कियमान का अर्थ लिया गया है। किंतु कियवान के उपरोक्त दो भेद है—विशेष करके सकाम कर्म ही कियवान नाम से प्रसिद्ध है।

पुनि 'लोगो' दूसर धरब, तीसर को कहि 'चोर'।
तब सब मोको हँसहिंगे, जागो लोगो चोर ॥
चोर भुलाय गयो सुनि वाता। कहत चढी वह ऐसेहि माथा ॥
जागो लोगो चोर जो टेरी। आय गये वहु जन तेहि वेरी ॥
भूप सामने न्याय करायो। मत कोड़ा मारन बतलायो ॥
मास छमाही दण्ड कठोरा। सुनि दुइ दुखी भये अति भोरा ॥
तीसर अधिक अधिक कहि मारो। भूप कह्यो तव कौन विचारो ॥
पूरव की कुछ बुद्धी जागी। होश भयो असमजस पागी ॥
दोहा—चोर कह्यो अस हाल मम, पुत्री लग्न सुनेय।
कोड़ा दण्डहि सहत इमि, क्षणक मोह वश एय ॥
जो साँचो तिय आदि सुख, मानि भुलत दिन रैन।
काहे न ते भव दुख लहहिं, महा जेल वपु ऐन ॥
दूसर धन के लोभ समाना। बुद्धि बिगाड़न हार न जाना ॥
तीसर धन सुख हेतु उपाधी। नई नई आवत सव व्याधी ॥
दण्ड भोगि हम सव कुछ त्यागी। अविनाशी के भजन मे पागी ॥
जस चतुराई स्वारथ माहीं। ऐसेहि नित्य स्वतः पद चाहीं ॥
दोहा—सुनि अस वातहि भूपने, तृतिय चोर दियो छोर।
वह हू दूषण छोड़ि के, सतमग लागि वहोर ॥
ऐसो कर्म भूमिका माही। समझि बूझि दुष्कर्म तजाही ॥
नर तन पाय सुसगति कीजै। सुमति पाय दुख सबही छीजै ॥
ज्यों त्यो गुरुमग लागौ नीके। नहि तो कठिन दण्ड होइ जी के ॥
दोहा—जेहि समान अतिशय नही, दूसर और विशेष।
सो द्रष्टा पारख परख, स्वतः सत्य चिद शेष ॥

प्रसंग ९—कर्म फल भोग और कर्मो की उत्पत्ति दोनो का अभाव रूप वैराग्य

प्रारब्ध भोगि के अंत भौ, संचित भोग न होत।
सनमुख भोगन को जिते, सो प्रारब्ध उदोत ॥ ७२ ॥

छंद

उपरोक्त बातें सोच हम नित पुण्य पथ को ही गहे।
पाप मग दुखदा समुझि तिससे सदा हटते रहे॥
वैराग्य सुख की प्राप्ति हित सत्सग में डटते रहे।
ऊबें न डूवें यत्न मे गुरु पर्ख मग जुटते रहे॥

राग माहिं शुभ अशुभ है, दुख सुख देना काम।
अनुमान हेतु शुभ अशुभ कहुँ, कहूँ चाह तजि धाम॥ ७६॥

टीका—पूर्वोक्त जगत राग मे शुभाशुभ दो प्रकार के कर्म होते है। उन शुभाशुभ कर्मो के धारण करने वाले मनुष्य जो कि दूसरे को मन, कर्म, वाणी से सताते वह अशुभ क्रिया है तथा जो दूसरे को मन, कर्म, वाणी से हित करके सुख पहुँचाते वह शुभ क्रिया है। इस शुभाशुभ कर्म का नतीजा अब और आगे दुख-सुख प्राप्त होना है। अर्थात शुभाशुभ जैसी क्रिया जो करता, वैसे ही उसके भीतर सस्कार जम जाते और वैसे ही क्रिया के परिणाम अनुसार बीज-वृक्ष न्याय फल मिलते रहते है। दूसरी तरफ कही अनुमान हेतु शुभ-अशुभ क्रिया नर जीव करते रहते। अपने सुख के ही नाते से कोई देव-देवी, भूत-प्रेत, खुदा-अल्ला, ईश्वर-दैव, ब्रह्म-स्वर्गलोक आदि की कल्पनाये करके पाप-पुण्य दोनो प्रकार क्रिया मनुष्य जीव करते रहते। कितने ऐसे तामसी काली-देवी, खुदा आदि कर्ता थापे है, जिनमे दूसरे जीव का वध करके बलिदान, कुर्बानी आदि नामो से हर्ष युक्त घोर हिसा कर्म करते है। वकरी, वकरा, भेड़ा, भैसा, सुअर, गौ, मुर्गा आदि की हत्या करके देवता का प्रसन्न होना मानते है। स्त्री आदि की वासना मे अधिक लम्पट केवल कल्पित देवी-देव के नाम से ही पाप कटना मानते। नाथ सिद्ध औघड़ अथवा ब्रह्मज्ञान के अंत मे कितने तो असग ब्रह्म बन के कितने देह ही को जीव मान कर कितने भौतिक विकास विज्ञानवाद विषयानन्द को सत्य जान

से संकल्प द्वारा वर्तमान काल मे जो दुख-सुख दूसरे को दिया जाता है, उसी क्रिया का संस्कार हृदय मे टिककर अव भी फलदाई होता है और आगे देह धर के भी उसी के अनुसार दुख-सुख प्राप्त होते रहते है। जो न्याय, धरम, संतोष, क्षमा से वर्त करके दूसरे का हित करते, उनका इसी जन्म मे ससार मे सुन्दर यश होता है, लोग उनकी वात की प्रतीति और प्रीति करते, भाँति-भाँति से रक्षा-पालन करते। इस जन्म मे भी, उत्तम आचरणों का वर्ताव करने से सुख होता है। जो कुछ दुख उसको भोगना पडे, पूर्व प्रारब्ध कृत है। सो भोगते हुये भी सतकर्मी शुभाचरण के बल से दुख मे भी उसका हृदय शात, प्रफुल्ल, सहिष्णु, उत्साही, सन्तुष्ट रहता है। यही सकाम शुभाचरणयुक्त दूसरा शरीर वनने पर वहाँ भी शुभ कर्मो में प्रवृत्ति होकर सदा सुख ही मिलता है। दूसरे जो पापी है, मलीन मति युक्त राजसी-तामसी मनुष्य है वे प्रमाद वश सम्पूर्ण प्राणियो को तन-मन से सताते है, जवरन, चोरी, डाका, व्यभिचारी से अन्य के तन धन जन को छीनते, नाना चतुराई-दम्भ से दूसरे के सुख-शाति का अपहरण करते है। ऐसे मनुष्यो की प्रत्यक्ष ससार मे अपकीर्ति होती, अन्य लोग भी तिन्हे मारते-कूटते तथा जेल, सजादि नाना दण्ड उन्हे भोगना पड़ता है। तिनकी उत्तम वस्तुओ को हरण करके नाना क्लेश देते, उनकी वात का विश्वास नही करते। प्रत्यक्ष वे नाना वंधन नये-नये आपदाओ का भार सहन करते रहते है। पापी मनुष्य इस लोक मे दुख का पात्र वनता है और मरने पर भी राजस-तामस प्रधान वृत्ति युक्त चार खानियों मे शरीर धर के उसी पाप सस्कार वेग से फिर-फिर नीच क्रिया करके दुसह दुख को प्राप्त होता रहता है। इस प्रकार शुभाशुभ संस्कार और क्रिया के परिणाम द्वारा वे कर्म अव भी फलदाई होते तथा आगे जन्मो मे भी सूक्ष्म से स्थूल देह धर-धरके वे शुभाशुभ कर्म फलदाई होते रहते है ॥७५॥

शुद्धाचार, विचार, अनुद्वेग, विक्षेप रहित शुद्ध रीति से सर्व हित हेतु रखते है। इस प्रकार परमार्थ गामी को वर्तमान मे भी झगड़ा-झंझट नये-नये राग-द्वेष भार खैचा-खैची रहित सुख मिलता। निर्मल यश रहता, शुभ शाति स्थिर वृत्ति रहती। यहाँ तक कि सतोषयुक्त निर्वाहिक सुख और पारमार्थिक शुभाचरण के नित्य शाति सुख को वर्तमान मे ही वे पाते रहते। उन्हे देह निर्वाह हेतु कोई जगत प्रपच बन्धन रूप क्रिया आरम्भ नही करनी पडती। बोध-वैराग्य सत्य निर्णय युक्त बर्तते हुये मोक्ष की सब सामग्री प्रवल कर लेने से मिथ्या भूल भ्रम सर्व वासना आशा मिट जाती है और निर्भ्रान्त रूप इसी जन्म मे वे मुक्त हो जाते। पूर्वोक्त यदि प्रयत्न करते-करते किंचित कसर रही तो आगे जन्म मे प्रयत्न पूर्ण करते हुये नि.सदेह वासना ध्वस करके मुक्ति स्थिति को प्राप्त कर लेवेंगे। इस प्रकार जिज्ञासु-जन को "अब तब योग्य जस मिटै जीव की भ्रात" ॥ ७७ ॥

दोहा—क्रिया करन दुइ भाँति से, बध मोक्ष की ओर।
वीज बोय भूनव दोऊ, भिन्न भिन्न फल होर ॥

छन्द—जन्म कर्म रु बुद्धि विद्या धन्य सोइ सराहिये।
जड़ देह भौतिक भाव तजि चैतन्यनिष्ठ रहाइये ॥
सोइ बोधवान के क्या कमी जो पारखी है सर्व के।
निज पर्ख वाद अभाव सब तृण तूरि तन धन गर्व के ॥

प्रसङ्ग—१० त्रिविधि कर्म विनाश

जब जब नरतन जीव रहा, तब तब क्रियमान सकाम।
अबोध भरम बश जीव तहाँ, संचित मेल मुकाम ॥ ७८ ॥

टीका—जब-जब मनुष्य देह में जीव रहते आया, तब-तब पाप पुण्यरूप सकाम क्रियमान कर्म करते ही रहा। तहाँ अज्ञान द्वारा भ्रम वश, खानि-बानी के कर्म कर-करके जड़ग्रन्थि को पुष्ट करते हुये जागृत अवस्था मे किये हुये कर्म का सब सस्कार अंत करण मे

के मैथुन, मद्य, मास ग्रहण करते। घोर युद्ध से असंख्य जीवो की हिसा करते, स्वय विपयासक्त रहते। ये सब इस तामसी क्रिया के आधार से सूक्ष्म वासना वश विशेप हिसकी खानियों मे जाकर असख्य दुख पाते रहते है। कितने देवता और कर्तादि सात्विक भावना से थाप लिये है। जैसे विष्णु, राम, कृष्ण आदि की पूजा प्रसन्नता निमित्त जीव रक्षा उपकार और इन्द्रिय निग्रह तप-साधन आदि सर्व दैवी सम्पत्ति ये पुण्यरूप क्रिया के आधार से सूक्ष्म वासना टिककर पुण्य के परिणाम मे वैसे ही उनको पुनर्जन्म रूप चार खानियो मे देह धर-धर के अनेक देहो के अल्प सुख मिलते रहते हैं। एव अनुमान कर्त्तादि हेतु नर जीव शुभाशुभ क्रिया रच-रच के फल को प्राप्त होते रहते है। इन्हो से भिन्न कहूँ कोई विरले सुकृत-वान जिज्ञासु "चाह तजि धाम" अर्थात जगत के लौकिक सुख और स्वर्ग-ब्रह्मादि लोको का सुख भ्रम मात्र आवागवन का हेतु जानकर तिन सबकी चाहना त्याग कर अपने स्वरूप मे अचल शांत होने के लिये प्रयत्न करते रहते हैं, इस पुरुपार्थका फल मुक्ति स्थिति है ॥७६॥

कहूँ यथारथ कर्म करि, दान आदि सिद्धांत।
अथ तव दोनों योग्य जस, मिटै जीव की भ्रांत ॥ ७७ ॥

टीका—पूर्वोक्त कही कोई विरले मुक्ति हेतु यथार्थ सदाचरण का पुरुपार्थ करते। वे अन्न-धन-प्रिय वचनो से सतपुरुषो को दान, धर्म, सेवा-भक्ति तथा जीव रक्षा-पालन आदि कर्म करते हुये अपने अंत करणरूप पात्र को मॉजते रहते। सत सिद्धांत जानने और वोध पुष्टि के हेतु पारखी साधुगुरु के सत्सग मे जाते, तिन्हो के वचनामृत सुनते, सदग्रथ पढ़ के अर्थ भाव युक्त रहनी-रहस्य ग्रहण करते, क्रोधवेग मे क्षमा, काम वेग मे धैर्य-शांति युक्त इन्द्री दमन, युवति सग और जन समूह मे अप्रीति, नैराश्य, हितैषिता, पर दुर्गुण ढाकन, पर मान रक्षा, निर्वाह मे शुभ जीविका युक्त सतोष, व्यवहार मे

टीका—पूर्वोक्त कही तो अज्ञान युत प्रारब्ध आधार से पूर्व सचितो का भोग होता है और कही क्रियमान के आधार से अभुक्त असनमुख सचितो का उदय होकर फल भोग होता है। सचित कर्म-फल भोग देने मे यही कारण है। प्रारब्ध कर्मो को आसक्ति रहित भोगकर और क्रियमान को बोध-वैराग्य से नष्ट करके त्रय कर्म ग्रथियो के बन्धन से रहित होकर जिज्ञासुजन मुक्त हो जाते है ॥८०

स्पष्ट—गर्भ मे ही शरीर छूटने या अनजान अवस्था, अति वालपन मे ही या पशु-पक्षी आदि खानियो मे जहाँ पाप-पुण्यरूप आगामी कर्म करने का सामर्थ्य नही है ऐसे जगहो में केवल प्रारब्ध-रूप अत करण ग्रन्थि के आधार से रहे हुए अदृश्य सचित कर्म देहात होते-होते सन्मुख होकर सूक्ष्म देहयुक्त पुन -पुन देह धरने का कारण होता रहता। क्योकि अनादि काल से स्वरूप के अज्ञान से उत्पन्न-पुष्ट भये सूक्ष्म देह का तब तक अभाव नही हो सकता, जब तक स्वरूप का ज्ञानरूप एकरस प्रकाश न उदय हो। अज्ञान हालत मे उपरोक्त कही प्रारब्ध आधार से सचित कर्मो का भोग होता रहता है, कही पुरुषार्थ आधीन। जहाँ मनुष्य देह मे क्रियमान कर्म करने का सामर्थ्य है, नवीन कर्म कर भी रहे है, वहाँ नवीन सस्कार वेगानु-सार पूर्व सचित सस्कार देहात मे खीच के उदय होकर जो बलिष्ठ रूप प्रथम सन्मुख होते है वे ही कर्म प्रथम भुगाते रहेगे। इस प्रकार अभुक्त सचित कर्मो का फल भोग होता रहता है। यदि स्वरूप-ज्ञान द्वारा उधर क्रियमान कर्म न करे तथा प्रारब्ध को निराशता से भोगकर अन्त करे तो जगत अभाव काल मे प्रारब्धात होते-होते संचित कर्म रूप अज्ञान स्वरूप बोध प्रकाश के सन्मुख न आने से जीव कर्मग्रथि से निर्भार शुद्ध स्वरूप अचल-स्थित हो जाता है।

भोग बिना संचित रहा, बिना योग्यता पाय।
संयोग मिलै जब ताहिको, तबही फल दरशाय ॥ ८१ ॥

जीव धारण किये रहता। पुन इस प्रारब्ध के अत होने समय पूर्व के शेप सचित और अव के क्रियमान सस्कारो का योग्यता पूर्वक सगम होकर¹ ही आवागवन की तरफ ढारू होता है। अर्थात सचित और क्रियमान कर्मो के मिलान की भूमिका शरीरात ही है ॥७८॥

भा विभाग प्रारब्ध जब, जिस खानी का कर्म।
क्रियामान संचित कोई, पुनर्देह को मर्म ॥ ७६ ॥

टीका—एक नर जीव से सब खानियों मे भोगने योग्य किये गये अनेक कर्म एकी समय मे तो भोग हो नही सकते, अत जिन खानियो के कर्म-सस्कार वलिप्ट रूप से जीव के सन्मुख उदय होंगे, वे ही सस्कार उसी खानि मे प्रथम जीव को देह धारण कराय दुख-सुख के हेतु होते रहते, आगामी सचित सर्व कर्म समूहो मे से योग्यता-नुसार सन्मुख भोगने के हेतु कर्मो का उदय होना यही प्रारब्ध का विभाग होना है। इस देह मे किये हुए क्रियमान कर्म-सस्कार अथवा पूर्व शेप सचित कर्मो के सस्कार या दोनो मिश्रित जो कर्म-सस्कार घट-अवस्था युक्त परिपक्व रूप से जीव के सामने होते है, वे ही पुन. देह धराने मे हेतु जानना चाहिये। यही देह धरने का भेद समझो ॥ ७६ ॥

कहुँ प्रारब्धि अधार लै, कहुँ क्रियमान अधार।
संचित को फल हेतु ये, विन तेहि जीव अभार ॥ ८० ॥

१ टिप्पणी—सचित मेल मुकाम का भेद-बीजक टीकाकार श्री पूरण साहेव "उर्धनिश्वाँसा उपजि तरासा हकराइन परिवारा हो" इस कहरा की टीका करते हुये अत मे कहते है—मरण अवस्था मे "तव जीव घवडाया, नाना प्रकार का अध्यास उठा, तैसी अवस्था भई। उपरात सव नाडी हृदय स्थान मे आई। सोई नाडी की ग्रन्थी खुली और सुपुप्ति अवस्था भई, फिर चोला छूटा, सुपुम्ना नाडी जीव को ले उडी, सो जहाँ आशा तहाँ वासा पाया" इस प्रमाण मे शरीरात मौका ही सचित आगामी के संगम होने का स्थान है, ऐसा विवेक से जानना चाहिये।

सन्मुख आगामी कर्म वनते और तिसके मिलान वाले कुछ शेष कर्म भोग होते गये, तैसे मनुष्य देह मे सत्संग का सम्वन्ध करके अनादि अविद्या-अज्ञान कृत भ्रम समझ को पलटकर कर्मो का वन्धन तोड़ के जीव मुक्त हो जाता है ॥ ८३ ॥

आगामी की रफ्तार तजि, पारख प्राप्ति स्वरूप ।
अनादि विरोध अयोग्यता, सचित नष्ट घनूप ॥ ८४ ॥

टीका—विषयासक्तिरूप आगामी कर्मो के करने की प्रवाह छोड-कर मै शुद्ध पारख नित्य तृप्त निर्चाह निराधार हूँ, ऐसी दृढ परीक्षा करके पारख स्वरूप के एकरस दृढ वोध मे जो जिज्ञासु ठहराव वना लेते है, तो फिर जड़ाध्यास खिचाव न कर पाने से वे स्ववश मुक्तरूप स्थिर रहते है। अनादिकाल से जो अज्ञानयुक्त आगामी कर्मो के मेल से संचित का भोग होता था, सो अब मनुष्य देह मे बोध-वैराग्य—प्राप्ति द्वारा तिसमे विरोध पड़ जाने से सचित उदय होने की अयोग्यता हो गयी। जैसे मिट्टी पानी न मिलना किन्तु उल्टे अगार मिलना बीज जामने की अयोग्यता-विषमता है। मिट्टी और जल रहित अंगार के बीच मे कदापि बीज ठहर ही नही सकता, तो अकूर फल फूल होने की वहाँ सधि ही कहाँ है ? तद्वत पारख से वोध-वैराग्य प्राप्त होने पर सचित नष्ट हो जायँगे। जव अज्ञान हालत मे कर्म सस्कार रखते हुये मनुप्य देह मे आकर आगामी कर्म कर-करके तिस वलवान सस्कार के आगे पूर्व सचित को दवाने मे जीव समर्थ हो गया, तो भला जहाँ स्वरूपज्ञान की प्रवल अग्नि है वहा क्यो न वे सचित जडमूल से भस्म हो जायँगे ? अवश्य पारख की समझ प्राप्त करके सत्सङ्ग-साधन द्वारा देह धरने का सयोग जीव पलट करके मुक्त हो जाता है। इसीलिये गुरुदेव कहते है "आजु वसेरा नियरे हो रमैया राम। काल वसेरा वडी दूरि हो रमैया राम ॥ साखी—मन सायर मनसा लहरि, वूडे वहुत अचेत। कहहि कबीर ते बाचि है, जाके हृदय विवेक ॥" यहाँ विवेक द्वारा मानसिक धारा से स्वय वचकर विवेकवान मुक्त हो जाते हे, सो तुम भी मुक्त होओ। ऐसा जग जीव प्रति श्री कवीर साहेव शिक्षा कर रहे है।

टीका—पूर्व प्रकार से वोधनिष्ठ पुरुष के सचित कर्म भोग दिये विना नष्ट हो जाते हैं। क्यो नष्ट हो जाते है ? योग्यता न पाने से अर्थात सचित उदय होने की सिलसिला आगामी और प्रारब्ध है। सो आगामी कर्म वोध-विचार से और प्रारब्ध नैराश्यता से भोग कर समाप्त हो जाता है। इस रीति से सुखाध्यास और पुनः अज्ञान न होने के कारण सचित ठहरने व उदय होने की भूमिका ही न रही, इसलिये वे योग्यता पाये विना पूर्वार्जित (पूर्व के एकत्र किये हुये कर्म) सचित फल भोग देने से रहित वेराग्यवान के नष्ट हो जाते हैं। अव इसके उल्टे जहाँ अवोध और सुखाध्यास युक्त आगामी कर्मो का सयोग रहता है अर्थात जो अज्ञानयुक्त नाना सकाम कर्म करते रहते है, उन्ही के घट मे शेप सचित कर्मो का मिलान होकर वे ही कर्म सस्कार सुख-दुखादि फल देने मे समर्थ वने रहते, ऐसा विवेकयुक्त जानने-देखने मे आता है॥ ८१ ॥

संचित को कारण कहा, जेहिं से संचित होत।
तेहिं भोगे विन अन्य कम, होय भोग प्रगटोत ॥ ८२ ॥

टीका—यदि वोध, वैराग्य से सचित नष्ट न माने, तो सचित कर्म शेप रह जाने मे क्या हेतु है ? जिस कारण से शेप सचित कर्म एकत्र होकर सचित नाम पड़ गया, फिर उन सचितों को भोगकर चुकौती किये विना वीच ही मे अन्य-अन्य कर्म भोगने के लिए कैसे उदय हो गये ? ॥ ८२ ॥

जैसै संचित गे दवत, और होत गे भोग।
तैसै नर की देह में, पलटि समझ संयोग ॥ ८३ ॥

टीका—जैसे नर देह मे आगामी कर्म समूह होते रहने से सन्मुख वलिष्ठ सस्कार द्वारा कुछ सचित दवते[१] गये और अन्य वलिष्ट

१ टिप्पणी—जिस कारण से योग्यता रहित सचित कर्म कुछ दवते गये और अन्य वलिष्ठ आगामी कर्म वनने और भोग होते गये। उसी कारण

हृदय ग्रंथि प्रारब्धि गत, निवृत्ति भयो ततकाल।
क्रियमान जेहिके नहीं, परखदृष्टि भ्रम टाल॥ ८६॥

टीका—पूर्वोक्त वासना-रहित स्वरूपबोध रत पुरुप का प्रारब्ध वेग समाप्त होते ही हृदय की सूक्ष्म ग्रथि शीघ्र निवृत्ति हो जाती। तिस सूक्ष्म ग्रथि के टूटते ही करोड़ो सचित वध्यापुत्र वत लोप हो जाते, सुखाध्यास रूप क्रियमान कर्म जिन्होने त्याग दिये है, वे एक-रस पारखदृष्टि रखते-रखते भ्रम मात्र स्मरणो को पृथक देखते-देखते ही शात हो जाते है। जब उनके सन्मुख खेंच करने वाली कोई वासना ही नही, तो जीव मे क्रिया हो ही कैसे सकती है ? इस रीति से गुरुपारख दृष्टि द्वारा सर्व मनोमय सदेहो को नष्ट करके पारखी सन्त जिज्ञासु जन जन्म-मरण रहित हो जाते है॥ ८६॥

छन्द—मध्य मदिर दिव्य मूर्ती द्वार तजि भटका किया।
द्वार पाया दर्श भाया शीघ्र सद् चिद् निज प्रिया॥
जग शोक सिन्धु से भाव तजि निज देव देव रहा लिया।
ज्यो बाण लक्ष्य बिधा गया फल आप अपने ठाँ जिया॥

जहाँ योग्यता ना पड़ी, संचित रहिगे शेप।
साथी वै तिनके रहे, जोगँ लीन्ह करि पेश॥ ८७॥

टीका—जिन कर्म वासनाओ को जीव के सन्मुख उदय होने का सयोग नही मिला, वे ही बचे हुये शेप कर्म सचित ठहर गये। तिस सचित कर्म के साथी-रक्षक क्रियमान कर्म सहित प्रारब्ध की सूक्ष्मग्रन्थि है। उसी अत करणरूप क्षेत्र में अनंत शेप कर्मो के सूक्ष्म सस्कार अदृश्य रूप से खेत-वीज न्याय सुरक्षित रहते है। फिर वे ही समय सयोग अनुसार जीव के आगे फल देने के हेतु उदय हुआ करते है। अर्थात प्रारब्ध वेग समाप्ति काल मे हृदयग्रथि को पुष्ट किये हुये आगामी एवं सनमुख वासना ही सम-सम सचित वासनाओ

वोधाग्नि से सुखाध्यास त्याग हो जाने के पश्चात घनूप अनादि काल के वहुत-वहुत संचित बीज निर्मूल हो जाते है, तो फल-फूल रूप भोग देने के सन्मुख ही वे कैसे हो सकते है ? इस प्रकार से अष्ट मद, पच विषयासक्ति, सूक्ष्म हता वासनारूप आगामी कर्म त्यागकर स्वरूपस्थिति मे आरूड होने से सचित कर्मो का विनाश हो जाता है तथा जीव सदा के लिये ही मुक्त हो जाता है, सोई बनाना चाहिये ॥ ८४ ॥

ध्वंस वासना जीव करि, अपने आप प्रकाश।
जहाँ न गति करतव्य की, भास आश गत गाँस ॥ ८५ ॥

टीका—वासना चार प्रकार की। १—जगत भर पर कब्जा करने की तथा मान बड़ाई प्रचार करने की इच्छा विश्व वासना है। इससे अतवृ ॅत्ति युक्त शाति नही आती। २—जल-तरङ्ग, पृथ्वी-घट न्याय सारे जगत का स्वरूप ही ब्रह्म है, ऐसा बुद्धि मे निश्चयकर द्रष्टा दृश्य विवेक त्याग देना ब्रह्म वासना है। इससे व्यक्ति दृश्य वासना से पृथक नही होता। ३—उदू ॅ, अंग्रेजी, सस्कृत आदि नाना वाणी जाल मे मोहित होकर आगे-आगे ललचाना विद्या वासना है। इससे मिथ्या भ्रान्ति दूर नही होती। ४—इन्द्रिय सुखो में आसक्त होना देह वासना है। इससे दुराचरण तृष्णा हत नही होती। यहाँ तक कि सर्व परीक्षक पारख स्थिति स्वरूप विवेक कर्तव्य के अलावा जहाँ तक विजाति वासनाये है, सो सब आवागवन को पुष्ट करने के हेतु होने से दुख पूर्ण समझ के जब अधिकारी पुरुष स्वरूप विवेक से तिन सब वासनाओ को नष्ट कर डालते है, तब सचित-आगामी त्यागकर प्रारब्धात मे अपने आप पारख प्रकाश एकरस अचलरूप स्थिति हो जाते है। वहाँ कोई वासना जगत क्रिया का प्रवेश नहीं। सन्मुख दुख-सुख, हानि-लाभ आदि भास के आश से रहित स्वयं एकरस निराधार स्थित है ॥ ८५ ।

अपने निज देश (स्वरूप देश) अजर-अमर अखण्ड पारख शुद्ध स्वरूप मे ठहर जाता है। अब यहाँ वैराग्यबोध का सारा पुरुषार्थ फलीभूत हो गया। जिस मुक्ति के लिये गुरुदेव सत श्री कबीर साहेब का सदेश—उपदेश था वह पुरुपार्थ परिश्रम सब जीव का सफल हो गया। धन्य-धन्य महिमा सर्वोपरि गुरु साधु! आपकी शिक्षा-दीक्षा सँभालने से जन्म-मरण का अन्त हुआ, जय श्री गुरुदेव! ॥ ६० ॥

गुरुबोध संदेश की सर्वोपर विशेपता और सफलता

चौपाई

जो माया अग्न्यास्त्र चलाई। जरत बरत कहुँ थिति नहि पाई ॥
तो गुरु वरुण अस्त्र शुभ छोडे। शात स्वत निज पद मे जोड़े ॥
गुरु अस बान तीख लखि मारे। बिधे हृदय मद मोह निवारे ॥
गुरु अस जीवनमूरि पियायो। मन रुज नाशि अरोग करायो ॥
गुरु अस अंजन दृष्टि दे शोधे। तिमिर मिटे अतस अविरोधे ॥
गुरु बल निज लहि जीव यशस्वी। बिरति बिवेक सचिव बरतस्वी ॥
क्षमा शील सब सहन पताका। फहरत देखि काल मन थाका ॥
रहि इकन्त पावन सुख धामा। निज स्वरूप स्थिति अभिरामा ॥
भोग त्याग सतोप खजाना। जो कोउ निकट सो सबहि अघाना ॥
संयम नेम सुदृढ भट नाना। अति उपराम तीर भरि ताना ॥
काम क्रोध मद मत्सर बैरी। गर्दि मर्दि तहँ कोउ नहि गैरी ॥
ससद भवन सदा हित निर्णय। पारख परख-परख महँ निर्भय ॥
शील धीर अविरोध अमोहा। अमद अचाह अचल पद सोहा ॥
यह स्वराज्य समराज्य अनूपा। बसत हृदय जेहि पुनः न कूपा ॥

दोहा—विपयानन्द रु ब्रह्म जग, विश्व विपुल बिज्ञान।
पारख पटतर कोइ नहि, सब को परखत जान ॥
पल पल क्षण क्षण मगनमन, पारख सैन सँभार।
रुकब थकब अलसाब नहि, गुरुमग श्रेय विचार ॥

को जीव के सामने कर देते है, जिससे कि वासनानुसार तैसी अवस्था, पुनः वैसी खानि मे देह धारण करता रहता ॥ ८७ ॥

यहाँ तो तिनकी जड़ खुदी, पारख प्रबल प्रकाश ।
अज्ञान मूल उनका रहा, तेहिका भयो विनाश ॥ ८८ ॥

टीका—इधर मुक्ति स्थिति दशा मे संचितादि कर्मो की जड़ प्रारब्ध-क्रियमान ये दोनो खुद गये, जड-मूल से नष्ट हो गये । अव पारख प्रकाश ही स्थित है। क्योकि अज्ञान, अवोध, आसक्ति ही उन कर्मो की जड़ रही, सो तिसको तो देह रहे-रहे ही वोध-वैराग्य से नष्ट कर डाला गया और प्रारब्ध नैराश्यता से भोगकर अंत हो गया, पश्चात विदेह मुक्ति मे तो किसी का सम्वन्ध ही नही ॥८८॥

प्रारब्धि नशानी भोग करि, आगामी सतबोध ।
को रक्षै सनमुख करै, संचित नष्ट विरोध ॥ ८९ ॥

टीका—रहस्य युक्त यथार्थ वोधवान की प्रारब्धि देह भोगकर समाप्त हो जाती है, आगामी कर्म सद्वोध द्वारा नष्ट हो जाते है । इस प्रकार दोनों कर्म नाश हो जाने पर अव सचित की कौन रक्षा करे ? और कौन सनमुख करे ? तो जिस प्रारब्ध अंत करण के आश्रय से वे सचित ठहरते आये थे, सो वोधवान के नैराश्य भोग से समाप्त हुए और आसक्तिजनित कर्म आगामी सस्कार ही सचित सस्कार के उदय करने मे प्रवाहरूप अनादि काल से सहायक होते रहे, सो भी रहस्ययुक्त सद्वोध से नष्ट हो गये । यही सचित के ठहरने और सन्मुख होने में विरोध पड़ गया । इस हेतु वोधनिष्ठ के सचित कर्म नष्ट हो जाते है ॥ ८९ ॥

त्रिविध कर्म का ध्वंस भा, जीव मुक्त निज देश ।
सफल भयो पुरुपार्थ सब, जो गुरु बोध सँदेश ॥ ९० ॥

टीका—पूर्वोक्त रीति से तीनों कर्म का जड़मूल से विनाश हो गया । फिर तो जीव सदा के लिये मुक्त हो जाता है । मुक्त होकर

उष्मज इन चार खानियो मे ये सब बाते समान ही देखी जाती है। सबमे सुख मानन्दी रूप स्मरण वृत्ति घुसी हुई है ॥ ९२ ॥ भाव— सब देहधारी मन-मानन्दी द्वारे ही शरीर को सत्ता दे-देकर स्थूल-सूक्ष्म देहो से सर्व क्रिया करते रहते, याते उनमे मन भी घुसा अर्थात ठहरा हुआ है। यथा—"मन इन्द्रिन भोगत विषय, तिन स्मरण प्रवाह। रहत परीक्षक जीव तेहि, सब देहन के माह ॥"

खाना पीना सोवना, मलहु मुत्र को त्याग।
जागृत रहि करते क्रिया, चेष्टा सुख अनुराग ॥ ९३ ॥

टीका—भोजन करना, जल पीना, सोना, मल-मूत्र का त्याग करना, जागृत अवस्था मे नाना प्रकार के पुरुषार्थ करना, प्रेम करके विविध इच्छा प्रगट करना और सुख मे प्रेम रखना ये सब लक्षण देह धारियो मे पाये जाते है ॥ ९३ ॥

बाल तरुण औ वृद्धता, देह धरब औ छूट।
चारौ खानि समान है, सबही दुख से जूट ॥ ९४ ॥

टीका—बाल, युवा, वृद्धपन, देह धरना-छोडना ये बातें सब खानियों में खानि के अनुसार बराबर है। कोई भी जीव ऐसा नही कि जो किसी न किसी से पूर्व दुख से मिल कर दुखी न दिखे। अर्थात सब जीव देहोपाधि के रगडे-झगड़े मे पडकर दुखी हो रहे है ॥ ९४ ॥

मनुष्य देह से जो प्रगट, वहँ हीं से सो छूट।
करि पुरुषारथ ध्वंस करि, राग मनोमय लूट ॥ ९५ ॥

टीका—नर देह कर्म भूमिका मे सुखाध्यास वश चार खानियो के जो सर्व कर्म आगामी-सचित प्रगट होते रहते है, सो यहाँ ही से सब छूट भी सकते है। क्योकि मनुष्य देह पुरुषार्थ करने योग्य कर्म भूमिका है। जैसे वह सुख मान मानकर सर्व खानियों के कर्म गडकर आगामी, सचित, प्रारब्ध बनाने मे समर्थ होते आया है, तैसे

प्रसग ११—जीव का शुद्ध स्वरूप पारख जिसकी प्राप्ति से सब
सुख आशा रहित जीव मुक्त हो जाता है

सब खानिन में वासना, सुख दुख जानब धर्म ।
लोभ मोह भय क्रोध लखि, स्पर्श काम सुख कर्म ॥ ९१ ॥

टीका—नर, पशु, अण्डज और उष्मज ये चार राशियों के जितने देहधारी जीव हैं उन सबमे वासना है। इच्छा वश ही सब देहधारी चलते-घूमते सारी क्रिया करते दिखाई दे रहे हैं। उन जीवो मे सुख और दुख का ज्ञान होना धर्म है। मनुष्य के समान ही चीटी, पशु, पक्षी आदि अपनी-अपनी सुख सामग्री का संचय करते या परस्पर अनुकूल मे ही प्रसन्न होते हे, तिनमे ये लोभ है। अपने-अपने स्वजाति की ममता रूप मोह भी उनमें है। आपत्ति आने पर या बाधको को देखकर वे डर से बचने का उपाय करने लगते, एव भय भी सबमे है। प्रतिकूलता मे क्रोधित हो जाना ऐसा क्रोध भी तिनमे है। त्वचा से स्पर्श का ज्ञान करके शीतोष्ण मे चार खानियो के जीव सुखी-दुखी होते रहते। तीन खानियो मे काम सुख श्रम की क्रिया गहना तो प्रत्यक्ष ही है और उष्मज खानि मे शीतोष्णादि का स्पर्श तथा कोमल योग्य भूमिका आश्रय ढूँढना ही उनमे स्पर्श सुख कामना की क्रिया है। इस प्रकार सब देहधारी जीवो के लक्षण जानना चाहिये ॥ ९१ ॥

राग द्वेष आशा घिरे, तृष्णा डाइनि चूस ।
नर पशु अण्डज उष्मजहु, सब समान मन घूस ॥ ९२ ॥

टीका—वस्तु या प्राणी किसी मे राग-ममता करना तथा परस्पर प्रतिकूलता वश लड़ना-झगड़ना ये द्वेष, शरीर सुखो के हेतु बाहरी पंच विषयो की आशा अवलम्ब रखना। प्रत्येक देहधारी जीवो के रक्त को तृष्णारूप डाकिनी चूस रही है, अर्थात सब जीवो मे अधिक-अधिक सुख भोग की तृष्णा है। मनुष्य, पशु, अण्डज, तथा

नष्ट कर दिया, तब तिसके साथ सचित कर्म शेप नही रह जाता, नष्ट हो जाता है ॥ ६६ ॥

संस्कार सुख वासना, मानन्दी सब एक।
अज्ञान ध्वंश सदरहस्य युत, तब ये बचै न नेक ॥ ६७ ॥

टीका—पच विषयो के देखे, सुने, भोगे, अनुभव किये हुये का गुप्तरूप अत करण मे फोटू वत या बीज वत अध्यास टिक जाते है, सोई पूर्व-पूर्व की मानन्दी दबी हुई अति सूक्ष्म सस्कार है। अज्ञान करके जड़ वृत्तियों में तद्गत होना सुख भ्रम है। प्रत्यक्ष परोक्ष जड भास को मान लेना मानन्दी है। इन सबों के कुछ विभेद होते हुये भी ये सव एक ही है। इन सबो का मूल निज स्वरूप को न जानना-रूप अज्ञान ही है। यही कारण है कि वोध और शुद्ध रहस्य धारणा द्वारा जव अज्ञान को नष्ट कर दिया जाता है, तब ये कर्माध्यास किंचित भी शेष नही रह जाते, जड़ मूल से नष्ट हो जाते है ॥६७।'

अवस्था औ घट भेद है, मूल सबहि अज्ञान।
सब खानिन भरमत सबै, कतहूँ होय न आन ॥ ६८ ॥

टीका—जैसे इस देह मे जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति होती और इसी देह मे बाल, जवानी, वृद्धता घट के तीनों पन होते रहते है। इन सबो की जड़ निज स्वरूप की भूलरूप अज्ञान ही है, क्योकि पूर्व-पूर्व जन्मो के अज्ञानयुक्त कर्म सस्कार से ही यह स्थूल देह निर्माण होता है। देहोपाधि से कभी वही जीव जाग्रत में, कभी वही स्वप्न मे, कभी वही सुषुप्ति मे, कभी वही वाल्यावस्था मे, कभी वही युवा अवस्था मे, कभी वही वृद्धता मे, जव जैसी देहोपाधि से जीव के सन्मुख आया तब तैसी वह मानन्दी धारण करके आप अकेले एक-रस चेतन जीव अवस्थाओं में विराजमान रहता है। इसी प्रकार यही मनुष्य खानि का जीव अज्ञानवश अनेक प्रकार के कर्म सस्कार वनाय के सर्प, कीट, पतंग, शूकर, भैसा आदि पशु-पक्षी विविध देहो

स्वरूप ज्ञान द्वारा सबमे दुसह दुख होना देखकर विवेक-वैराग्य-बोधरूप शस्त्र से कर्मो की जड़ सुखाध्यास को काटने का पुरुषार्थ करते हुये सर्व कर्म-बीज जड से नष्ट करने मे भी समर्थ है। जो राग-मोह माया मनोमयसृष्टि स्वरूपज्ञान धन को लूट-लूटकर जन्म-जन्म मे जीव को दुख देती रही, वह आज मनुष्य देह मे सत्य बोध के पुरुषार्थ से सदा के लिये नष्ट हो जायगी। सोई बनाना चाहिये ॥ ९५ ॥

शब्द

नरतन पाय विषय मन रोको ॥ टेक ॥

प्रबल ज्ञान अग्नि के माही, निज दुर्गुण को झोको ॥ १ ॥
सुत वित नारि सकल प्रभुताई, अत सहाय न तोको ॥ २ ॥
करतल रत्न पाय क्यो फेंको, कछु सुधार परलोको ॥ ३ ॥
प्रेमदास हित चाह जो आपन, करु सुसंग गत शोको ॥ ४ ॥

मनुष्य देह सदबोध जो, पाय आपनो धाम।
त्याग मानंदी जीव करि, संचित बचै न काम ॥ ९६ ॥

टीका—मनुष्य देह मे जो सोच-विचार सत्संग करके सत्य बोध—सद् स्वरूप का ज्ञान ठीक-ठीक निश्चय कर लेवे तो उसे अपने सर्वोपर स्वरूप देश की प्राप्ति हो जावेगी। स्व स्वरूप तो अपने आप होने से नित्य प्राप्त ही है, देहोपाधि से मद्य नशावत स्वयं स्वरूप का विवेक लक्ष्य मे नही रहा। अत प्राप्ति का अर्थ सबसे पृथक स्वरूप की सत्यता अखण्डता नित्य तृप्तता और अपरोक्षताको विवेक से भान होकर सर्व दृश्य भास से लक्ष्य हट जाना है। सर्व क्षणिक आनन्द और दुख का जनैया दोनों से पृथक श्रेष्ठ आरोग्य चेतन स्वरूप है। स्वरूप श्रेष्ठता का जब ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब वह अपने स्वरूप से पृथक सारी सुख मानन्दियाँ, लत, आदत निर्मूल कर डालता है। जब सर्व मन-मानन्दियो को जीव परख के

आगामी कर्म के अवस्थान्तर मे दो विभाग होते हुये सचित-प्रारब्ध इस प्रकार त्रिविध कर्म कहे जाते है। ये सब जड़-चेतन का सम्बन्ध प्रवाहरूप अनादि होने से एक कर्म दूसरे के आधारित है, एक बिना दूसरा नही ॥ ६६ ॥

विना लच्च चैतन्य के, सकाम कामना ओर।
करम वासना लेश कस, आप आपने ठोर ॥१००॥

टीका—यदि चैतन्य जीव विषय सुखों की कामना न करे, उधर लक्ष्य न चलावे, तो स्त्री आदि पाँचों विषय के भोग हेतु शुभाशुभ कर्म भी कैसे बन सकते है ? निर्जीव से कुछ होता नही। जीव जिस व्यापार मे दृढ दुख निश्चय कर लेता है, वह कार्य करता नही। इस प्रकार चैतन्य के लक्ष्य दिये बिना सकाम कामना कर्म अर्थात इन्द्रियो के सुख भोग हेतु पाप-पुण्य कर्म, केवल जड़ इन्द्रियो से हो ही नही सकते। स्वयं कर्त्ता के बिना क्रिया होती नही। क्रिया भोग के बिना संस्कार टिक नही सकता, सस्कार के बिना देह नही, देह के बिना दुख सुखादि फल नही। एवं जब जगत सुखो को मिथ्या जानकर तिसकी भावना-क्रिया त्याग दिया गया और उधर प्रारब्ध भोगकर समाप्त हो गया, फिर तो जीव अपने आप पारख भूमिका मे निराधार स्थित हो गया। अब वहाँ आगामी सचित प्रारब्ध स्थूल-सूक्ष्म आदि जड़ देह का किंचित भी सम्बन्ध नही रह गया, यही परम पद है ॥ १०० ॥

शुद्ध स्वरूप चैतन्य है, आप आप निश्चेष्ट।
स्वरूप ज्ञान में जो ठहर, तहाँ न कोई एष्ट ॥१०१॥

टीका—शुद्ध स्वरूप चैतन्य जीव मे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र कुछ नही। ये सब प्रत्यक्ष अपने से दूर भासमान हो रहे हैं। जीव मे स्थूल इन्द्रिय प्रकृति नही है। क्योकि जीव मान द्वारा इन इन्द्रियो को यदि सत्ता न देवे, न जाने न माने तो इन्द्रियाँ जड़

ही तट स्थान स्वयं आत्मा करके सब प्राणियों के प्रकट किया हुआ है। प्रमाण चाहे जड़ हो, अनूप हो या गज हो, कीट हो या नर हो, सभी में चेतन जीव एक समान का नहीं बन जाता। क्योंकि जीव का स्वरूप अखण्ड, एकरस, अनादि नित्य है, इस लिये जीव सबके शरीर बनाने पर भी भिन्न नहीं रहता, अतएव जैसे एक जीव का है वैसे सब जीवों का भी एक जानना चाहिये। यह समझना है कि भिन्न-भिन्न स्वरूप, अखण्ड, अनादि स्वरूप वस्तु और पूर्व-पूर्व के नर देहों में भिन्न-भिन्न संस्कार, तदनुसार भिन्न-भिन्न कर्माध्यास अथवा स्वभाव हैं, वैसे ही भिन्न-भिन्न शरीर-निराकार जीवादि का सम्पूर्ण पशु-पक्षी-उद्भिज्ज योनियों की आकृति पुनः-पुनः नर देह में वही जीव आया करते हैं। इस प्रकार अनन्त जीवों की कर्म दशा और स्वरूप की एकरूपता जाननी चाहिये। ९८॥

करम करै अज्ञान वश, मनुष्य देह में जीव।
क्रियमान प्रारब्ध सोई, संचित कहिये सीव॥ ९९॥

टीका—स्वरूप को भूल कर अज्ञान वश जगत विषय, तन, धन, प्रपंच में विषयानन्द का भोग अभिलाषा आदिक सहित। इस सुख साधन निमित्त करके ही जिनकी प्राप्ति हेतु जो-जो शुभाशुभ कर्म नर देहधारी जीव करते रहते, जिन कर्मों को क्रियमान कर्म कहा जाता है। उन्हीं कर्मों में से जिन प्राणियों के कर्मों के संस्कार सूक्ष्म समय सामने होते, वे प्रारब्ध विधान बीज वासना से शरीर बन के दुःख-सुख भोग एक देह में जितने भोगे रहते हैं वे प्रारब्ध कर्म कहे जाते। पूर्व-पूर्व नर देह से किये हुये कर्मों में से जितने भोग के सम्मुख नहीं आये, वे अभुक्त संचित कर्म कहे जाते। यही संचित कर्मा की अवस्था योग्यतानुसार सम्मुख हो-हो कर प्रारब्ध विधान में आ-आ देह धर-धर के बारम्बार भोग होता रहता है। बाकी असम्मुख संस्कार फिर संचित पड़े रहते। एक ही अज्ञान कृत कर्म वासना के सहारे बने हुये

चैतन्य जीव के अपने स्वरूप में ठहरते ही उसकी कर्मग्रन्थि निर्मूल हो जाती है ॥ १०२ ॥

तन प्रारब्धि को साथ है, परखि स्मरण न्यार ।
आसक्ति सबै निर्मूल करि, आप आप ही प्यार ॥१०३॥

टीका—स्वरूप बोध के पश्चात प्रारब्धिक शरीर का जो पूर्व वेग करके सम्बन्ध जहाँ तक रहता है, तहाँ तक उसमे उठते हुये सुख स्मरणो को भिन्न परख-परख के तिनमें चलित न होकर अपने को न्यारा समझ के बोधवान स्थिर रहते । साथ ही हिंसा, मैथुन, ममता, राग द्वेष इन्द्रिय भोगो की लत जितनी स्थूल-सूक्ष्म आसक्तियाँ है, जो कि मुख्य देह धराने में वीजरूप है उन सवो को बिल्कुल ध्वस कर देते है । वे निश्चय करते है कि ठेला-वेग न्याय मेरी ही सत्ता कल्पना से बलवती बनी हुई कामादि वृत्तियां सुखकर प्रतीत होती है । यथार्थ विवेक मे वे कुछ नही, मिथ्या है, निरन्तर दुखपूर्ण है । फिर मै क्यों भोगो की तरफ खिचूं ? ऐसे दृढ विचार को साधन संयम से पुष्ट करते-करते वे अपने आप शुद्ध पारख ही मे पूर्ण स्नेह रखते हैं ॥ १०३ ॥

प्रश्न—प्यार का भेद क्या है ?

उत्तर—सुनिये—

दोहा—एक प्यार है विषय का, मनो रहट दुख द्वन्द ।
द्वितीय प्यार निज रूप का, करि विवेक स्वच्छन्द ॥ १ ॥
निजी प्यार तव जानिये, अन्य सर्व सुख फीक ।
सयम साधन अमिय सम, मुदित आप सुधि नीक ॥ २ ॥

कारण कारज तत्त्व नहिं, सनमुख जीव के कोय ।
विदेह मुक्ति ह्वै जीव की, परख प्रकाश सदोय ॥१०४॥

टीका—विस्तार रूप से इन्द्रिय गोचर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और तिनके सूक्ष्म परमाणु सृष्टि ये कारणरूप और तिन्हो के कार्य

मुर्दा पडी रहती। स्वप्न और सुपुप्ति में जीव भीतर रहते हुए भी स्थूल इन्द्रियाँ कई है, जड है। जीव इस प्रकार अकेला है, प्रेरक है, चैतन्य है। अत. ज्ञाता जीव मे इन्द्रियाँ नही, मन भी नही। मन के तरग क्षण-क्षग मे उठते-वैठते रहते, उनमे हानि-लाभ दुख-सुख निश्चय द्वारा जीव ही पृथक होकर छोड़ता या पकडता, पुप्ट करता। जीव मे प्राण भी नही है, प्राण आते-जाते भी वह प्राण सुपुप्ति में वाह्य ज्ञान कुछ नही कर मकता। वायू का ही अंश प्राण होने से प्रत्यक्ष जड़ है तथा शून्य भी जीव नहीं। शून्य का ज्ञाता शून्य से भी पृथक चैतन्य सत्य है। जीव मे सर्व विकारी पिण्ड-ब्रह्माण्ड का विल्कुल अभाव होने से मर्वका ज्ञाता शुद्ध स्वरूप चैतन्य है। आप-आप निश्चेप्ट है। निश्चेप्ट का अर्थ सर्व इच्छा-वासनाओं का द्रष्टा होने से मर्व इच्छा रहित नित्य तृप्त है। ऐसे लक्षण लक्षित अपने आप स्वरूप ज्ञान मे विवेक वैराग्य दृढ अभ्यास सहित मुमुक्षु जीव ठहर जाते है, उन्हे फिर उनमे कोई विजाति वस्तु राग नहीं रह जाता। यही आप-आप मे स्थित होने का लक्षण है। निश्चेष्टा स्वरूप को जानकर स्वरूप वोध मे एकरस ठहराव वनाने से किन्ही भी दृश्यमान वस्तुओ की चाहना-सुख प्रियता नही रह जाती ॥ १०१ ॥

नात छूट सब देह से, कौन मिलै तेहि हेर।
जड़ कर्मन की गति कहाँ, जहाँ भूल निरवेर ॥१०२॥

टीका—मनुष्य, पशु, अण्डज, उष्मज जहाँ तक खानियाँ है, तिन मव देहो की सुखासक्ति विपय कामना त्याग देने से सव देहो का सम्वन्ध टूट गया। अव उस सुखाध्यास छेदक जीव को किसकी शक्ति है कि अपनी तरफ खीच सके? कर्मो की जड़—भूल-भ्रम-अध्यास जहाँ नप्ट कर डाला गया वहाँ जड़ कर्मो की पहुँच ही नही, या जड कर्मो में शक्ति ही नही कि जीव की सत्ता विना ठहर सके। अत

खाके नम्रता युक्त रहने वाले को निर्भयता रहस्य मनन स्मरण होते रहते तथा जगत के राग-द्वेषादि सर्व क्रियाओ को जो छोडकर निष्फिक्र विवेक-वैराग्यादि कर्तव्य गहते है, उनको निष्फिक्र ही रहस्य मनन होते । एव सर्व प्राणियो को जिसकी जैसी हानि-लाभ की सूझ-बूझ समझ है, उसी प्रकार अपनी-अपनी मानन्दी से सब मनुष्य जूझ रहे है—भिड रहे है । भाव—अपने-अपने निश्चय-क्रिया में सब तल्लीन होकर हानि-लाभ, सुख-दुख को प्राप्त हो रहे है । यदि उनका जीवन भर निश्चयता न पल्टे, तो जीवन भर वे उसी एक दशा मे निछावर रहते है । इन बातो से यह अनुभव हुआ कि मनुष्य अपने को एकरस रखने मे शक्तिमान है । अज्ञान हालत मे जब तक उसकी समझ न पल्टे, तब तक उसको उस मार्ग से विचलित करने मे कोई समर्थ नही होता । तो जहॉ सर्वकी परीक्षा होकर यथार्थ हानि-लाभ की समझ दृढ हो जावे, तो उस मार्ग मे एकरस रहना तो अत्यन्त ही सरल है ॥ १०६ ॥

सतसॅग शिक्षा वैराग्य जो, स्थिति को अभ्यास ।
बहुत काल जो कुछ करै, वही स्वप्न हृदयास ॥ १०७ ॥

टीका—सत्य में टिकने का जहॉ विविध यथार्थ निर्णय होता है, उसे सत्संग कहते है । न्याय, धर्म, पात्र देखकर शाति पूर्वक यथार्थ वार्ता जो वक्ता कहते है, उसे शिक्षा कहते है । पच विषयो का राग सुख-प्रियता त्यागकर उदासीनता से बर्तना वैराग्य है । निरतर एकान्त निरुपाधि ठौर मे स्थिर आसन से या स्वच्छन्दता पूर्वक चलते-फिरते अकेले स्वत ठहरकर मात्र स्मरणो को देखते हुये सस्कारो मे न मिलना, अपने का पृथक समझ के सदा स्थित रहना या सद्स्वरूप के गुण-लक्षण का हरदम वृत्ति मे भान रखकर सदा शात रहना, यह स्थिति का अभ्यास है । एव सत्सग हो या शिक्षा करना हो, या दृढ वैराग्य सहित स्थिति का अभ्यास

रूप—घड़ा, घर, वस्त्र, दीप-मशाल, आँधी-वौडर आदि तथा चारों खानि की किसिम-किसिम की देहे इत्यादि दृश्य स्थूल-सूक्ष्म भास जगत प्रपच ये सव मुक्त पारख स्वरूप के सन्मुख नही है। अभी देहोपाधि का स योग रहते हुये भी सर्व प्रतीत कर्त्ता चेतन के सन्मुख जिस चीज का स्मरण नही होता उसकी हानि-लाभ हैता कुछ प्रतीत नही होती, इसी हेतु वोध स्थित जीव के सामने मानन्दी का सर्वथा विनाश होने से जगत का उसके समीप गध तक नही। स्वरूप सर्वथा जड कें पार है। सर्व जड कर्मग्रथि को ज्ञान शस्त्र से छेदन करते-करते जीवन्मुक्ति के पश्चात प्रारव्धात मे सन्मुख वासना खेच करने वाली आभाव होने से ग्रथि टूटकर जीव सदा के लिये विदेह मुक्त हो जाता है। मुक्त पुरुप अपने आप पारख प्रकाश स्वरूप सदा के लिये निराधार हो जातें है॥ १०४॥

प्रसङ्ग १२—हमेशा (तीन अवस्थाओ मे) सावधान रहने की मनुष्य जीवो मे शक्ति होने से, दृढ सकल्प वाले वोधवान सन्त सर्व कर्म वन्धनो का उल्लघन कर, पार हो जाते हे

सव ही करते काम जो, वहो मानसिक संग।
ज्यों ज्यों वदलत समभ क्रिया, त्यों त्यों मनन प्रसंग॥१०५॥

टीका—सव मनुष्य जो-जो शुभाशुभ कार्य करते, वही उनके मनमे मनन होता रहता और उसी मनन का ही सङ्ग जीव का वना रहता है। पुन· इस कर्म भूमि पर नर देह मे सुसङ्ग-कुसङ्ग द्वारा जैसी-जैसी समझ और वाह्य क्रियाओ को वे वदलते रहते तैसे-तैसे मनन स्मरण भी उनका वदलता रहता है॥ १०५॥

भय औ अभय अफिक्र सव, हानि लाभ की सूझ।
निश्चय औ पुरुपार्थ वश, सवहिं मनुष्य मन जूझ॥१०६॥

टीका—भयवाली क्रिया—लूट-फूॅक, जवरन करने वाले को वही भय कृत भावना सवार रहती और निर्भय क्रिया—क्षमा दया गम

टीका—नर देह पुरुषार्थ सिद्ध भूमिका है। यहाँ ही कर्मों के रफ्तार को चाहे जिधर बदल सकते है। साधनधाम मोक्ष का तो यह फाटक ही है। अदृश्य जो देह का प्रारब्ध खास भोग है—तीन अवस्था, तीन पन, भूख-प्यास, निर्वाहादि तो भोग के आप ही समाप्त हो जायगा और जो प्रारब्ध स्थूल के सम्बन्ध सहारे से स्मरणरूप मानसिक रोग—काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, भय, हर्ष-शोकादि अंकुरित होते रहते है, तिनको विवेक-वैराग्य, भक्ति, साधन शस्त्र से नष्ट करते रहने मे मनुष्य समर्थ है। याते तिस मनोरोग को नष्ट करना चाहिये ॥ ११० ॥

सदमग गामी शूर जो, साहस दिन दिन दून।
कादर बनौ न भूलि कोइ, सिद्धि काज दुख भून ॥ १११ ॥

टीका—शील, सत्य, सन्तोप, वैराग्य आदि सतपथ पर चलने वाले, मनोसैन्य दल के भीषण युद्ध मे न पछड़ने वाले शूरवीर जिन्हो का साहसबल एवं सामर्थ्य दिन-दिन आगे-आगे बढता ही जा रहा है ॥ "चौपाई—सुख-दुख की परवाह नहीं है। देह नाश पै क्लेश नही है ॥ कुछ भी हो सत मग नही छूटै। दिन दिन मनोनाश मे जूटै ॥ आप बचै साथिन कूँ तारै। ऐसो सत्य शूर निरुवारै ॥" ऐसी मुक्तदशा का अनुकरण हमलोगों को भी करना चाहिये। हे मोह नगर के बासी जीव! तुम कल्याण के कार्यो मे भूलकर भी साहसहीन मत वनो। शरीर प्रारब्ध इन्द्रियों को गुरुपद मे लगाओ। मानसिक प्रारब्धाकुर अविवेक तथा कुसंग से प्रफुल्लित हुये कामादि जड़ को अपने बोध-वैराग्य तेज से भस्म कर डालो। कुसग-कुमार्ग से अपने को बचा लो। फिर तो तुम्हारा कार्य सव सिद्धि ही है। जो कुछ तुम चाहते हो वह पूर्ण हो जायगा। तुम दुख शत्रु को दग्ध कर डालोगे ॥ १११ ॥

हो, जो कुछ साधन अभ्यास एकातार वहुत समय तक किया जायगा, उसका वेग जाग्रत मे अखण्ड धारा तो रहेगा ही, वल्कि हृदय मे स्वप्न भी उसी का ही दिखाई देगा ॥ १०७ ॥

सुपुपति में लयता वही, जागृत सनमुख टेक।
सोवत चौंकै भाव वहि, जो अति इष्टहिं जेक ॥ १०८ ॥

टीका—यहाँ तक कि सुपुप्ति अवस्था मे भी वही अभ्यासिक सस्कार लेते-लेते अचेत हो जाता है। पुन॰ जव जागता है, तैसे ही वही पूर्व दृढ मानन्दी का पक्ष लेकर ही दृढता पूर्वक उसी पूर्व कार्य मे लग जाता है। यदि सोते-सोते बीच मे किसी कारण चौक हो जाय, तो शीघ्र वही अभ्यासिक भावना लेकर ही चौक उठता है, जिसमें जिसकी अत्यन्त प्रिय भावना है। तिसमे पूर्वोक्त तीनो अवस्थाओ मे यही हाल होता है ॥ १०८ ॥

पारख पद को प्राप्ति जो, सद अभ्यास अरूढ़।
मन वच कर्म से जो जुटै, होवें निजपद रूढ़ ॥ १०९ ॥

टीका—व्यापक-व्याप्य वर्जित, एकात्मवाद रहित, परोक्ष कर्त्ता भ्रम पार, प्रकृतिवाद अर्थात देहवाद से पृथक, यहाँ तक कि सर्व असत सिद्धातों की कसर-विकार को परख के तिसके अध्यास पक्ष रहित होकर सर्व परीक्षक सवसे न्यारा अपने शुद्ध स्वरूप को समझ के सदा शात रहना। अपने आपको किसी मन तरग मे वहने न देना, सो पारख पद है। ऐसे पारख पद को प्राप्त करके सद्अभ्यास विवेक, वैराग्य और यथार्थ उपासना मे जो कायम हो जाय और मन, वच, कर्म से उसी निजपद स्थिति मे हो तत्पर रहे, तो ऐसे पुरुष अपने अचल स्वरूपस्थिति को पाते जाते हैं। प्रारब्धवेग समाप्त होते ही वें सदा के लिये निराधार स्थित हो जाते है ॥ १०९ ॥

मानुष तन पुरुषार्थ है, अदृश्य देह को भोग।
काटि मानसिक रोग को, जो प्रारब्धी योग ॥ ११० ॥

क्रिया करने लगता है। सोचिये ! ऐसी अन्धता मे जो दुख मिले सो थोड़ा ही है। जगत स्नेह ही से अहंकार की बढती होती है। यह तन धन प्राणी तथा पंच भौतिक पदार्थो पर स्ववशता के अभिमान ने ही तो सब प्राणियों के मुख पर दुर्गुण-दुराचार का कारिख लगाया है। अहंकार के कारण मनुष्य अपने शुद्ध चैतन्य का शोध-बोध किंचित नही करता। एक बुन्द से निर्माण—मास पिण्ड को मै-मेरी मानकर पल मात्र इन्द्रिय आराम के लिये पराया जीव बध करता, अनेक प्रकार अन्याय से बडे-बडे उत्पात करता, फिर भी अपने को ज्ञानी-विज्ञानी मानने का अहंता भरता है दुर्गुण दुराचार के फलरूप मे असख्य वन्धन, ताप, पीड़ा प्राप्तकर शिर पकड के रोता, हाय-हाय करके पछताता, किंतु दीप-पतग न्याय वासनावेग मे पुन वही शोक-मूलक आचरण करता रहता है। इस प्रकार भूल का स्थान अब और आगे तथा पूर्व तीनों काल मे महान दु:खों का स्रोत जगत राग ही है। यदि ममता मैथुनादि विषय प्रपंच मे फँसने का अवसर आवे तो मर जाना अच्छा है, क्योंकि उपराम हो के मरने से वर्तमानिक दुराचरणो से बच जायगा, भविष्य मे त्याग की भावना पुष्ट होगी। अतः मृत्यु लेना श्रेष्ठ है, जगत प्रपच में धँसना अच्छा नही। भाव यह है कि प्राण जाय तो जाय किन्तु अपना परमार्थ मार्ग न छूटे, इतनी दृढता होनी चाहिये ॥ ११३ ॥

चौ०—कोटि मृत्यु सम जग को रागा। तेहि तजि रहै सोई बड़ भागा।
मरन नीक पर नीक न रागा। जेहिते कोटि कोटि दुख जागा।

दोहा—मै अबिनाशी लक्ष रखि, जग अभाव विष त्याग।
गमनागमन न होय तेहि, अस विचार निज जाग ॥

सकल कामना छोड़ि कै, पारख पद पर थीर।
जुटै न पावै और कोई, राखि बिरति की भीर ॥११४॥

टीक—१—विजातीय सब चीज जान लेने की कामना। २—

जाहि मनन में सुख नितै, ध्यान क्रिया सुख ध्येय ।
घाटा तेहिमें कौन है, जो औरहि चित देय ॥ ११२ ॥

टीका—जिस स्वरूप ज्ञान और तिसके रक्षक शील, सत्य, सन्तोष, धैर्य आदि सद्रहस्यों के स्मरण-मनन मे सुख ही सुख है, जिस पारमार्थिक रहस्य की तरफ ध्यान करते ही करते सर्व दुख—द्वन्द्व निर्मूल हो जाते है । कामाग्नि शात होकर पूर्ण शीतल सुखमय दशा दर्शने लगती है । जिस परमार्थ पथ मे हरदम निर्वासना स्वरूप का ध्यान करने मे निर्विक्षेप समाधि लग जाती तथा जिस परमार्थ रहस्य का मन, कर्म, वाणी से आचरण करने मे अनन्त शान्ति मिलती है । यहाँ तक कि जिसके निश्चय मात्र से सब भूल—भ्रम दुख—द्वन्द्व दूर भागते है । ऐसे सिद्धात रहस्य भाव को धारण करने मे नुकसान ही क्या है ? सिवा लाभ ही लाभ के ! फिर परमार्थ पथ छोड़कर अन्य विषय मार्ग या अनुमित कल्पित मार्ग मे क्यो चित्त देवे ? अर्थात नही देना चाहिये ॥ ११२ ॥

जगत राग सुख लेश नहिं, भूल थान दुख जेष्ठ ।
भूलि न तेहिमें लच दे, तेहि तजि मरना श्रेष्ठ ॥ ११३ ॥

टीका—युवती, पुत्र, दास, दासी और भी मान-बड़ाई, उत्तम-उत्तम भोग, राज-काज, प्रधानता, नृत्य, फैसन, सिनेमा, राग-मोह आदि जगत विषय किसी मे भी सुख का लेश नही है । क्योकि ये सब भूल-भ्रम के स्थान हैं । जहाँ भूल भुलैया है वहाँ मदिरा-नशा न्याय वेभान होकर कुकर्म-कुबुद्धि जनित दुखो की कौन गणना ? अत· जगत स्नेह मे महान भयंकर दुख प्राप्त होते रहते है । प्राणी और पदार्थो के मोह से विविध भोग कामना की जाग्रति, कामना मे रुकावट पडने से इसे मै मार डालूँगा इसके पीछे मै मर जाऊँगा चाहे जेल सजा अपमान पछतावा अनन्त कष्ट हो तो भी मैं इस विषय को अवश्य ग्रहण करूँगा, ऐसी निश्चयता से अन्ध होकर

सहित स्वरूप भाव दृढ न होना। इसलिये विषय वासना, असत सिद्धांत, देहाभिमान युक्त भ्रमाने वाले नर-नारियो के फन्दों में दीप-पतग न्याय मुग्ध होकर शाति और अचल स्थिति मार्ग को छोड़ वैठते है ॥ ११५ ॥

प्रसङ्ग १३—देह से भिन्न जान मात्र चैतन्य अपने आपकी
आसक्ति से वन्धन की हानि

लोभी मन के दाम गत, कामी मन कै वाम।
मोही मन का वाल गत, तिनहुन जगत वेकाम ॥११६॥

टीका—लोभी को मनानुसार खूब रुपये-पैसे आदि धन की प्राप्ति हो, अगर वह किसी प्रकार न रह जाय, तब जो उसकी कष्ट जनक दशा होती है; कामी पुरुष को मन अनुसार सुशीला, रूपवती आज्ञाकारिणी स्त्री मिली हो, पुन· किसी प्रकार उसके पास से चली जाय या मर जाय तब, उसे जैसा भयंकर कष्ट होता है और मोही मनुष्य को मन अनुसार पुत्र की प्राप्ति हो, यदि वह न रह जाय, तब जो मोही को दुसह दुख होता है, वह कष्ट अवर्णनीय होता है। मानों तीनों के लिये जगत व्यर्थ है ॥ ११६ ॥

लोभी के सपना वही, कामी सपना वैस।
मोही के सपना वही, तेहि तजि जाय न कैस ॥११७॥

टीका—लोभी को वही धन के वियोग-विरह जनित कष्ट सपना मे भी प्रतीत होता है। कामी को भी स्त्री का ही स्वप्न होता है। मोही को भी उस प्रिय-वियोग का सोते वक्त भी सुरता चढी रहती है। तीनो अपने-अपने पदार्थो की ममता, आसक्ति को छोड़कर अन्य किसी तरह ध्यान नही देते। उन्हो का लक्ष्य घूम-घूमकर अपने इष्ट-विरह मे ही वना रहता है ॥ ११७ ॥

तन छूटै तेहि भावना, जो प्रारब्धि समाप्त।
निष्ठा असिली जानिये; और न मन में व्याप्त ॥११८॥

विद्या जग चतुरता धन वल मे सवसे विशेप होने की कामना। ३—देह, प्राणी और पदार्थ सबको स्ववश करके अनुकूल वनाने की कामना। ५—वहुत प्रसिद्धि की कामना। ५—देह-इन्द्रिय सुखो तथा हिंसा, मैथुन, मोह की कामना। ६—अपने को वड़ा मनवाने की कामना। ७—वाहरी शत्रु मारने की कामना ये सप्त कामना वन्धन मुख्य है। सत्य स्वरूप के अलावा जहाँ तक कामना चलती है सो सवको दुख विजाति नश्वर जान के सव कामनाओं का अभाव कर अपने आप परीक्षक स्थिर हो जावे। इधर-उधर लक्ष्य न दौड़ाकर शात रहे, यही पारख पर थीर होना है वैराग्य भाव के अलावा और कोई भाव तथा कर्तव्य मे लक्ष्य न मिलने देवे। भीर का अर्थ अधिकता है, सो वैराग्य रहस्यों की इतनी अधिकता रक्खे कि उसमे अन्य कोई भी वन्धनकारी वृत्ति दुर्गुण-दुराचार घुसने का अवसर ही न आवे। सत्य शव्द स्मरण, अर्थ का विवेक-विचारण, दुर्गुण प्रेरक सग से भागन, सत्सगत मे पागन, साधन तितिक्षा धारन इत्यादि घेरा को कभी न छोडे ॥ ११४ ॥

खान रु पान सुधी तजि वालक, खेलत मस्त न और विचारा।
जैसे किसान जु खेती गृहस्थी के अग सवै जस चांही सो धारा ॥
जैसे जुवारी को आपन दॉव ज्यों मान प्रिया सब जीव हॅकारा।
तैसहि सन्त सदा शुभ लक्षण, धारि के आप तरै अरु तारा ॥

जो जो विचलित होत है, कारण मन के पेंच।
पारख अटल स्वरूप विन, परे काल मुख खेंच ॥ ११५॥

टीका—पूर्वोक्त रहस्यो को धारण किये रहने से कभी नीचे गिरने की सम्भावना नही है। अब जो जो गुरु के दरवार मे आके परमार्थ मार्ग में लगकर भी डगमगाकर गुरुपद से वदलते देखे जाते है, उनमे हेतु है—मन मानन्दी के रेच-पैच ठगाई मे भूल जाना और एकरस यथार्थ शुद्ध स्वरूप को पिछानकर दृढ साधन संयम सावधानी

सक्ति छोडने और योग्य व्यवहार बर्तने मे देह के दुख-सुख आराम का ध्यान छोड़े। तन सम्बन्धी स्नेहियों-प्रेमियों का मोह तजे, उनके आशावद्ध होकर उनका राग-भार न ले और जगत भर से निर्चाह होकर सव वन्धनदाई उद्योग छोड़ देवे। इस प्रकार जो जगत क्रिया, जगत वासना को अत करण मे रंचक मात्र भी शेष नही रखते, जिसे कुछ भी आशा तृष्णा कामना नही, इस प्रकार अपना कार्य जो पूर्ण-कर लिये है, वे सदा अध्यासविजयी है। ऐसे बोध तत्पर का प्रारब्ध शरीर त्याग होते ही, सदा के लिये अपने आप अचल शुद्ध स्वरूप विदेह मुक्त निराधार रह जाते है। यही अपना असली राज्य प्राप्त करना है। जहाँ तन, मन, त्रिविध कर्म जगत प्रपच का लेश मात्र द्वन्द्व नही ॥ १२० ॥

आना जाना नहिं कहूँ, टूटि वासना तंतु।
कोई वृत्ति की गति कहाँ, जहाँ राग तजि अंतु ॥ १२१ ॥

टीका—ऐसे बोधवान को गर्भ संकट में पुन· आना-जाना नही होता। जिनका सर्व वासनारूप सम्वन्ध टूट गया है, उनका शुद्ध स्वरूप ही रहने से तहाँ कोई भी नई-पुरानी वृत्ति संस्कारों के सनमुख होने की पहुँच ही नही है। फिर आवागवन की वहाँ कहाँ गन्ध है ? जब देह रहे-रहे ही बोधवान सर्व जगत राग के लक्ष्य को दुखपूर्ण मिथ्या समझ के अभाव कर दिये और तिसी सुखाध्यास रागवृत्ति के अभाव करते-करते जिन्हो की प्रारब्ध ग्रन्थि टूट गई, फिर आगे बन्धन न होने से शुद्ध अचल स्थित हो रहा, अब वहाँ जड़ वृत्ति का कहाँ पता-निशा ? ॥ १२१ ॥

छन्द—सत्य धाम व पर्म धाम बिशेष जो कुछ गावई।
निर्वाण पद कहि मुक्तपद दुख पार जीवहि भावई ॥
सर्व फल अब पूर्ण भौ निर्वासना थिति पावई।
अपरोक्ष सत्य स्वरूप अविचल वृत्तियाँ सब दूर गई ॥

टीका—उन्हो के प्रारब्धान्त का यदि समय आ गया हो, तो अपनी-अपनी दृढ भावना ही मे उन तीनों के शरीर छूटेगे, यही सच्चे प्रेम के लक्षण है, जव कि प्रिय के अलावा दूसरी भावना न व्यापे ॥ ११८ ॥

ऐसहिं जाहि विराग प्रिय, निज स्वरूप ठहराव।
तेहि विन भावैं ना कहूँ, दावानल सम ताव ॥११९॥

टीका—युवती धन और प्रिय पदार्थ मे जितनी सहिष्णुता, प्रयत्नता आसक्तियुक्त प्रियता, कामी, लोभी, मोही को होती है, उतना ही जिसे वैराग्य अग प्रिय हो जाय, अर्थात जो मन-इन्द्रियो के सुखदाई पदार्थ है, उन सवोको नाशवान दुख पूर्ण जान के तिसके त्यागने मे निरतर अथक प्रयत्न सहिष्णुता धीरतायुक्त सव साधन-सयम कठोर से कठोर मन-इन्द्रिय निग्रहरूप तप में दिनो दिन रुचि वढावे, सव स्मरणो से पृथक होकर परीक्षक स्वरूप आप-आप ही स्ववश स्थित होना ऐसे निज स्वरूप ठहराव को साधन अभ्यास से इतना दृढ़ कर लेवें कि सदैव निर्वासना के साधनों मे ही सव सुख दर्शे। जव इस निर्वासना स्थिति के क्षण भर भी वियोग काल मे खान-पान, व्यव-हार कुछ अच्छा न लगे और सव सद्गुण सहित निर्वासना होकर स्वरूपभाव मे मग्न के सिवा सर्व पिण्ड ब्रह्माण्ड, युवती स्पर्शादि का सुख भार शूल के समान और जगल मे लगी हुई प्रचंड दावाग्नि के समान जलाने वाले अनुभव हो, तव स्वरूपनिष्ठा प्राप्ति होती है ॥ ११९ ॥

तन प्रेमी को मोह तजि, जग अचाह तजि काज।
जाके वाकी कुछ नहीं, तन तजि निजहीं राज ॥ १२० ॥

टीका—गुरुपद रहस्य से वाहर न जाने, विवेक युक्त विचरण करने, निर्मोह होकर रहने, निद्रा भोजन स्वार्थ सम्बन्धों की कमी करने, भोग सुखो को पूर्ण त्यागने, उदासीनता युक्त तन की प्रेमा-

समझ के युक्ति पूर्वक अभ्यास करते-करते त्याग कर देता है ॥१२३॥

बहुत काल अभ्यास करि, नाशि वासना कीन ।
बहुरि न तेहि की खैंच हो, मृतक कबहुँ लखि लीन ॥ १२४ ॥

टीका—पूर्वोक्त तमाखू आदि नशे या किसी भी चीज की आदत को बहुत काल त्याग का अभ्यास कर लिया गया है तो उसकी वासना नष्ट हो जाती है। फिर तो वह वासना कभी जीव को मोहित करके खैच नही सकती। एक तो जल्दी सन्मुख ही न होगी। कदाचित कभी सन्मुख होगी तो भी मरे हुये शत्रु के समान दृश्य होकर अपना असर नही जमा सकती। परन्तु यह बात तभी होगी जब आसक्ति छूटने के पश्चात भी आदती पदार्थो से अलग और मन से सावधान रहा करे, नही तो फिर वे मृत सस्कार जाग्रत हो उठेगे ॥ १२४ ॥

जब छोड़े तब की नहीं, जस कोइ लतन कि खैंच ।
तैसहिं उसके पूर्व की, नहीं सतावै ऐंच ॥ १२५ ॥

टीका—जब पूर्ण साधनयुक्त गाँजा-अफीम या नाच-रंग आदि कोई भी पड़ी भई लते त्याग दी जाती है, तब उन वर्तमान लतों की खैच मिट जाती है। तैसे वर्तमान लत त्याग होने के साथ ही पूर्व-पूर्व दस-बीस-पचासो वर्ष से जो वही लतो की वासनाये पुष्ट होती आई थी, उन सबो का अभाव वर्तमान उसी आसक्ति के अभाव के साथ ही हो जाता है फिर वे वासनाये कष्ट देकर खैच नही सकती ॥ १२५ ॥

वर्तमान आसक्ति जस, नर देही की छूटि ।
तैसहिं जानौ कल्प शत, सब देहन की टूटि ॥ १२६ ॥

टीका—वर्तमान की ही आसक्ति त्याग से पूर्व-पूर्व की आसक्ति नष्ट हो जाती है। तैसे जब इस मनुष्य देह मे बोधयुक्त सब साधन वैराग्य लेकर इन्द्रियों के विषय नख-शिख सुखाध्यास विविध लत-

प्रसग १४—सुख मानदी का भोग छोड देने से
बाकी बन्धन नही बचता

गाँजा भाँग अफीमहूँ, पिये तमाखू चर्स।
ताड़ी मदिरा और जो, बनीं लतैं कोइ हर्ष॥ १२२॥

टीका—गाँजा, तमाखू, चर्स, सुलफा पीने की चाट, भाँग खाने की चाट, अफीम की चाट, नाच देखने की चाट इत्यादि अनेक प्रकार की चाट-लत जो कुछ मनुष्य डाल लेता है, उसी मे प्रसन्नता मानता है। वह पहिले ही से सुख मान-मानकर लतो मे प्रवृत्त होता है॥ १२२॥

असह कष्ट लखि ताहि में, जानि जानि दिल बीच।
बहु साधन परियत्न से, जो त्यागै लखि कीच॥ १२३॥

टीका—पूर्वोक्त चाहे जितनी कठिन से कठिन लत पड गई हो, उसमे असह दुख देखने मे आ जाय और वारम्वार उसके दुख-दोष को अंत करण से मनन करके तिसमे दुख दृष्टि ही हरदम सामने रक्खे, तो उसमे कदापि प्रवृत्ति न होगी। यदि आसक्ति वश दुख-पूर्ण जानी हुई वस्तु मे अपने को खिच जाने का संदेह होगा तो यह चैतन्य होने से आसक्ति-क्रिया पर वारम्वार सोच-विचार करेगा, अपने को धिक्कारेगा। पुन पुन जिस ठौर से, जिस सग से, जिस मनन और क्रिया से उसे आसक्ति मे खिचने की परीक्षा मिल जायगी, उसे यह अवश्य आगे-पीछे शोध कर-करके अनेक साधन प्रयत्न द्वारा अपने पक्के निश्चय को अवश्य पूर्ण कर लेगा अर्थात फिर वह ऐसी मानसिक कूक भरेगा कि दिन-रात उसे उस लत के असंख्य दुख सामने पड़ते रहेगे। फिर तो आगे पीछे वर्तमान किसी समय मे मन के बहकावे में नही आ सकता। इस प्रकार विवेक-वैराग्य, सत्सङ्ग भक्ति आदि बहु साधन-प्रयत्न से जो मनुष्य अपने हृदय मे सम्पूर्ण विषयो की पड़ी हुई आदतो को मलिन बन्धन दाई

बारि दीप क्षण महँ भगै, त्यो अबोध करु चूर ॥

पंच विषय सुख एक हैं, जहँ तक खानिन भोग।
तेहि हित करते कर्म नर, भोगत सबही लोग ॥ १२८ ॥

टीका—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गध इन पाँचो विषयो का सुख सब खानियो मे एकी प्रकार का है। जितना चन्दन चर्चित पुष्प मालायुत भाँति-भाँति शृगार से मण्डित रानी को देख राजा को सुख-आनन्द मिलता, उतना ही चिथडा लपेटे अति गन्दगीयुत निर्भूषण अशोभित भिक्षुकी स्त्री मे भिक्षुक सुख मानकर उधर खिंचते देखा जाता है। उतना ही चहले से भरी दुर्गन्धयुक्त शूकरी से शूकर भेट करके आनन्द मानकर केलि खेल करता है। उतना ही खर-खरी, अश्व-अश्वनी, कुत्ता-कुत्ती कामोन्माद वश परस्पर सुख मानते, नाना कल्लोल करते। जैसे सब खानियो मे स्त्री जनित बरावर सुख आनन्द है, तैसे स्वाद तथा रूप गन्धादि मे जिस खानि को जिस प्रकार अनुकूल है, उसी-उसी प्रकार उनको बराबर सुख होता रहता। जितना राजमत्री किसिम-किसिम के मशालायुक्त अगणित पकवान बना के भूख के समय खाकर सुख मानता, उतना ही गरीब अति क्षुधित को साधारण सूखी रोटी मे आनन्द मिल जाता है। उतना ही खानि अनुसार बैल को खरी या हरी-हरी घास, तृण मिल जाय, गोबर कीट को गोवर ही सब कुछ है। इसी प्रकार देह धारियों में खानि अनुसार पाँचों विषयो मे सुख मानना एकी प्रकार का है। उसी पशुवत पाँचो विषयों की प्राप्ति के लिये मनुष्य भी रात-दिन शुभाशुभ कर्म करके यथाशक्ति सब विषय विलासो के भोग-शोग मे रमन गमन कर रहा है ॥ १२८ ॥

यहिसे पृथक न कर्म कोई, नहिं काहू से नेह।
ध्वंस भये यहिके नहीं, पुनः देह को गेह ॥ १२९ ॥

टीका—पच विषय सुखाध्यास के सम्बन्धित ही सब कर्म होते है,

आदत-सर्वस्व त्याग करके स्वरूपस्थिति के ही पुरुपार्थ मे निरन्तर सावधान तत्पर रहकर सारी विजाति वासनाओ को नष्ट कर दिया जाता है, तव तिस वर्तमान सुखाध्यास नष्ट करने के साथ ही अनन्त जन्मों की चार खानियों के सुखाध्यास-जडाध्यास रूप सचित क्रियामान समूह नष्ट हो जाते हैं तथा जीव मुक्त स्थित हो जाता है ॥ १२६ ॥

पूरव पूरव पुष्ट करि, वर्तमान अभ्यास।
कठिन दोप लखि छूट जो, मूल से ताहि निकास ॥ १२७॥

टीका—वर्तमान के पहिले उसे पूरव कहते है। आज से दस-वीस या चालीस वर्प से भी पहिले से जो जो लत वना ली गयी है, उसकी पुष्टि वर्तमान के अभ्यास हो पर निर्भर है। वर्तमान मे जितनी ही उसकी आदत वढाते जायँगे, उतना ही वे पूर्व की वासना पुष्ट होती जायँगी। यदि मृत्यु से वढकर कठोर से कठोर असह दुख देखकर वर्तमान काल मे नशा, मैथुन, ममता आदि विषय की आसक्ति जीत ली जाय, तो वर्तमान के साथ ही तीस चालीस वर्प या जहाँ से वे लत आसक्ति आरम्भ हुई थी या अनादि काल की प्रवाहिक आसक्तियो की एकदम मफाई हो जायगी, क्योकि इसी जन्म की तमाम दिन के अध्यास आसक्ति पर वर्तमान काल में पूर्णतया विजय कर लेने पर वह सस्कार चाहे जव से पुष्ट हो खिचाव नही होता। उसका स्मरण होते हुये भी वे मृतक वत आकर्षण शून्य दर्शित होते है। जव सन्मुख वासनाओं का यह हाल है, तो जो दवी निर्वल निरस पडी है, वे कैसे सवल होकर खिचाव कर सकती है ? खिचाव नही वल्कि यहाँ ही के पट पशु कर्म, विपय सुखासक्ति को तोड देने से जड़-मूल से अनादि सर्व संचित टूट जाते—नष्ट ही हो जाते है। "काटै आम न मौरसी" वीजक ॥ १२७ ॥

दोहा—अमित काल को गिरि गुफा, रह्यो अध भरपूर।

टीका—सब प्रेमी और मित्रो के दिल की बात हम जान जायें, अपने दिल की बात उन्हे बता देवें। परस्पर उनसे मिले, देखे, कहे, सुनें इस प्रकार की जो इच्छा होती है, सो हे मुमुक्षु जीव! नैराश्य वर्तमान बोध धारण के बाद इन बातो के न जानने से स्वरूप मे हानि क्या है? तथा जानने-जनाने से लाभ ही क्या है? क्योकि अपना स्वरूप तो सर्व हानि-लाभ से परे है। फिर बिना आवश्यकता तिसके लिए क्यो कष्टित होते हो? शात! शांत!! शात!!! ॥१३१

प्रकाश रूप स्पर्श रस, शब्द गन्ध बेकाम।
हर्ष शोक जाने खटक, बिनु जाने निज धाम॥ १३२॥

टीका—सूर्य-चन्द्र का प्रकाश, गैस-चिराग, भाँति-भाँति लाल-पीली रगदार बिजली की जगमगाहट, किसिम-किसिम के चित्र-विचित्र रंग-रूप। बाह्य वायु या कोमल चीजों के स्पर्श, नर नारियों के विषय भोग क्रिया स्पर्श स्मरण और भाँति-भाँति खट्टे मीठे चर्फरे पट रस, पुन मन भावन कोमल-कठोर शब्द, देश देश के उद्वेगक समाचार तथा अनुकूल गंध ये सब बिल्कुल निरर्थक है। इनको जानने-भोगने की इच्छा से क्षण-क्षण मे प्रसन्नता-अप्रसन्नता रीझ-खीझ एव भाँति-भाँति की खटकायें-चिताये लगी रहती है। यदि बाह्य पच विषय न जाने जायें तो उनका स्मरण ही क्यों हो? स्मरण रहित फिर तो अपना धाम-अखण्ड स्वरूप स्वयं स्थिर समाधि रूप ही है, फिर क्या कमी? स्थिति! स्थिति!! स्थिति!!! ॥ १३२ ॥

हेतु न मिलने में कोई, जहँ तक जग का साथ।
प्राणी मात्रन के मिलत, राग द्वेष दुख हाथ॥ १३३॥

टीका—जहाँ तक दृश्य जगत का साथ रहते आया है, उसको मिलने की इच्छा करने, सकल्प उठाने की कोई आवश्यकता ही नही। चार खानि नर-नारी आदि देहधारी जीव और धन ऐश्वर्य

इसे छोड़कर नही। पच विषय सुख के अलावा किसी से अज्ञ जीव का नाता नही है। यदि पच विषयो का सुखाध्यास छल-दुख एव विवशता पूर्ण समझ के नष्ट कर दिया जाय, तो फिर सकाम कर्म और अध्यास नही बन सकते। कर्माध्यास रहित कदापि देहरूप घर जीव को नही प्राप्त हो सकता ॥ १२९ ॥

पारख को परकाश जहँ, शुद्ध स्वरूप स्वदेश।
मन वाणी को अंत तहँ, आप आप ही शेष ॥ १३० ॥

टीका—विदेहमुक्ति मे पारख प्रकाश शुद्ध स्वदेश मात्र स्वरूप ही स्वरूप है। जिस स्वरूप में मन-वाणी का अत्यन्त विनाश है अर्थात जो सर्व स्थूल सूक्ष्म तन मन उपाधि रहित निर्विकार है, जिसका अन्य देश नही, वल्कि आप अपना स्वरूप ही देश· वह स्वरूप देश कैसा है कि जैसे सूर्य मे अधकार का सर्वथा अभाव है, तैसे सर्व परीक्षक चैतन्य पारख का ही जहाँ तेज है, जिसमे रात-दिन शीत-गर्मी-वरसात आदि और सूर्य, चन्द्र, तारा गण आदि ब्रह्माण्डिक क्रिया, इधर चारों खानियों के तन कृत रोग व्याधि विपय भोग आदि इन्द्रियो का व्यवहार तथा स्मरण, मन कृत प्रतिकूल-अनुकूल, हर्ष-शोक सर्व विक्षेप और सर्व वाक्यजाल रूप अधकार का जहाँ अत्यन्त अभाव है, मात्र सर्व परीक्षक अपने आप सत्य स्वरूप ही शेष स्थित है ॥ १३० ॥

प्रसङ्ग १५--स्थिति

जानि जनाय देखे सुने, सव मित्रन दिल हाल।
हानि लाभ इसमे कहा, जो तेहि हेतु वेहाल ॥ १३१ ॥

टिप्पणी—यथा उष्ण को आगि है देशा। उष्ण अग्नि नहि भिन्न रहेशा॥ यथा शीत है जल को देशा। जल औ शीत एक ही वेशा॥ जीव देश त्यो जाता आपै। जगत राग तजि स्वत सदापै॥ जड को राग तजे सो आपू। मुक्त होय निज देश सदापू॥

प्रारब्ध बेगार नैराश्य वर्तमान करते हुये दृढ अपरोक्ष पारख बोध में लक्ष्य रखने से वैराग्यवान की सदा समाधि बनी रहती है। नित्य तृप्त स्वरूप चेतन स्थूल-सूक्ष्म जड देहो से तीनों काल मे पृथक है। जैसा आप सर्व से पृथक है, तैसी ही समझ दृढ करके सर्व विजाति राग-सस्कार को नष्ट किये हुये वैराग्यवान सन्तो का हरदम पारख मे ही वासा रहता है। देह भाव से हमेशा पृथक नैराश्य दशा दृढ हो जाने पर देह रहे या छूट जाय, क्या हर्ष-शोक! मिला भी क्या, बिछुडा भी क्या! आप अपना सदा स्वय प्रकाश स्थिर। अत हर समय एकरस स्वरूप समझ के वैराग्यवान हरदम कृतार्थ रूप विराजते है। समाधि इच्छुक को ऐसे ही रहस्य बोध से प्रसन्न होकर विराजना चाहिये। जीवन-मरण की आशा छोड़कर जीवन की अपेक्षा देह सम्बन्ध त्याग होने ही की मुक्त पुरुष राह देखते हैं। यथा—

छन्द

स्थिति दशा जो दृढ किये सम्बन्ध दीखै भार है।
ठग नग्न देह सबंध लखि बचि जावने का कार है॥
सब साधना फल मुक्ति पारख क्यों चहे ससार है।
संतोष युत प्रारब्ध भरके मृत्यु स्वागत प्यार है॥
स्ववश-समाधि! समाधि!! समाधि!!! ॥ १३५ ॥

सोई रहस्य अपनाइये, और कहूँ नहिं नीक।
सबसे आपै नीक है, जहॉ रहे सब फीक॥ १३६॥

टीका—पूर्व कथन युक्त निराश वर्तमान मे हरदम नैराश्यता का अभ्यास करना चाहिये। सब कोई अच्छी से अच्छी वस्तु चाहते हैं, सो पिण्ड-ब्रह्माण्ड मे कोई भी अच्छी वस्तु नही है, क्योकि चाहे जितनी अच्छी वस्तु मानी गई हो, आखिर पृथक वाली सब वस्तुये छूट ही जायॅगी। उससे कामना-व्याधि अवश्य लगेगी। फिर छूटने

अन्य जड पदार्थो के मिलने से राग तथा द्वेप इन दोनो मे एक न एक हाथ आयेगा ही, या तो राग या तो द्वेप। सो राग मे मोह-ममता का भार और द्वेप मे प्रतिकूलता वश विविध विक्षेप क्रोध का भार पड़कर दुर्बुद्धि वश दुख ही दुख उठाना पडेगा। याते—पृथक ! पृथक !! पृथक !!! ॥ १३३ ॥

तन मन इन्द्रिन प्रेम से, चाह होत वहिरंग।
सो सव कल्पित जीव के, विना हेतु ही तंग ॥ १३४ ॥

टीका—तन, मन, इन्द्रियों के प्रेम मे फूल-फूलकर इन्ही इन्द्रियो के सुख साध्य हेतु वाहरी तरफ चाहनायें दौडने लगती है, जिस वहिर्वृत्ति चाहना दौड़ने का परिणाम नरक से भी बढकर है। "चल वृत्ति दुख जस गुखुरू विछूवा, पग चुभि चौरस महि तल मे।" ऐसी दुखदाई नख-शिप देह, मन और भिन्न-भिन्न इन्द्रियाँ से सव जीव के भूल-भ्रम वश मन कल्पित अध्यास-वासना से उत्पन्न हो गई है, क्योकि विना भूल कर्म नही, कर्म विना सुख सस्कार नही, सुख सस्कार के बिना देह नही देह विना दुख-द्वन्द्व नही, तो सबका हेतु मन की कल्पना ही है। अत विना जरूरत ही अविनाशी नित्य तृप्त चेतन जीव सवके मिलने-विछुड़ने प्राप्ति-अप्राप्ति हेतु कष्टित हो रहा है। याते तन-मन व इन्द्रियों के प्रेम को भी तोड़ना चाहिये। निराधार ! निराधार !! निराधार !!! ॥ १३४ ॥

पारख अटल समाधि है, देह भिन्न सव काल।
देह रहे या ना रहे, यक सम जानि निहाल ॥ १३५ ॥

टीका—पूर्वोक्त सव अभाव कर देने से अभाव करने वाला वृत्ति निरोधक चेतन शेप है। वह शुद्ध पारख स्वरूप नित्य प्राप्त अचल समाधि एकरस स्वयं ज्ञान प्रकाश स्थित है। तिस के देहोपाधि का वाहरी वन्धन सग छोड़ने से छूट जाता है और भीतरी मन कृत वन्धन नित्य स्वरूप के मनन-चिंतन से नष्ट हो जाता है। मात्र

जन्म में पारख स्वय गुरुपद के प्राप्त होते ही पूर्ण हो गई। अब किसी के मिलने, कुछ करने-धरने, कहीं जाने-आने की किसी ठौर ममतासक्ति वश बँधने की, कुछ सुख भोगने की आशा त्रासा कल्पना नहीं, मात्र सर्व परीक्षक सर्व से भिन्न पारख स्वरूप सत्य अपने आपमे मै निरतर एकरस विराज रहा हूँ। फिर क्या बाकी ? अचल-पारख ! पारख !! पारख !!! ॥ १३८ ॥

मन प्रबोध-शब्द

श्री सद्गुरू पद पाग रे मन पाग रे मन पाग रे॥ टेक॥
सद्गुरु बिना कौन हितकर, हरण भ्रम तम राग रे मन राग रे ॥१॥
जिनके चरणरज धारि मस्तक, होत है बड़ भाग रे मन भाग रे ॥२॥
कबसे दुसह दुख भोगते जिव, सो मिटै क्षण लाग रे मन लाग रे ॥३॥
जन्म फल तै आजु लै लै, भक्ति गुरु से माँग रे मन माँग रे ॥४॥
प्रेमदास बिशाल गुरुपद, सेवते गौ जाग रे मन जाग रे ॥५॥

वंदना

साहस दीन्हों मोक्ष को, दृढ़ वैराग्य सो प्रीति।
दुख तजने के मार्ग को, भली दियो परतीति ॥ १३९ ॥

टीका—सर्व आसक्ति छोड़कर स्वरूप मे शात रहना ऐसे मोक्ष-पद प्राप्त करने मे साहसहीन, कायर बना था। सो कायरता छोड़ाकर मोक्ष प्राप्ति हेतु आप सद्गुरु मुझ दास मे साहस, हिम्मत, जोश भर दिये। जिस बल से दुखदाई सब जगत रागो से मन हटकर वैराग्य भाव मे ही मेरा अत्यत प्रेम हो गया। एव दुख के छुडानेवाले मार्ग शुभाचरण युक्त स्वरूप बोध मे भली विधि दृढ निश्चयता करा दिये। धन्य गुरुदेव ! आपकी युक्ति-उक्ति पर बलिहारी ॥१३९॥

अछय अटल गुरु की कृपा, औ निज कृपा जो होय।
दोनौं सनमुख होय जेहि, सो जग बन्धन खोय ॥ १४० ॥

टीका—कभी न क्षय होने वाला, और कभी न चलायमान

वाली वस्तु का सम्वन्ध ही क्या ? ताते सर्व से श्रेष्ठ अच्छे से अच्छा प्रियकर-हितकर अपने आप सत्य स्वरूप ही है। जिस अपने आप सत्य स्वरूप मे ठहरने से सर्व सुख और भोग पदार्थ भास मात्र कल्पित फीके तुच्छ-त्याज्य हो जाते है, सर्व इच्छाये मिट जाती है, फिर ऐसी सर्व शिरोमणि स्वत: स्थिति को छोडकर और क्या चाहिये ? कुछ नही। तृप्त ! तृप्त !! तृप्त !!! ॥ १३६ ॥

अब तौ सनमुख कुछ नहीं, जबसे मानब छूट।
गुरू कृपा निज बोध बल, ठहरि आप मन टूट ॥ १३७ ॥

टीका—पूर्वोक्त यथार्थ निश्चय और रहस्य को धारण कर लेने से कुछ भी इच्छा-वासना जीव के सामने नही सताती है। जब से ईश, देवी-देव, भूत-प्रेत, नाना परोक्ष अदृश्य वैकुण्ठ लोक विकास-वाद आदि विविध भाँति से जगत उत्पत्ति की कल्पना तथा स्त्री, पुत्र, तन, मन, धन को सत्य मानना परख करके छूट गया, तवसे सब वोझा उतर गया। मानन्दी द्वारा ही सारा जगत प्रपञ्च सन्मुख था, सो मानन्दी नष्टकर अभाव कर देने से आप ही आप स्थिति हो गया। सद्गुरु वन्दीछोर ! आप पारख प्रकाशी की दया के सहारे और अपने वोध स्वरूप चैतन्य वल से निराधार अपने आप ही मे स्थित होकर प्रवाह रूप अनादि काल की मानन्दी मात्र वन्धन की जजीर टूट गई और जीव मुक्त हुआ। बस-नि संबंध ! नि सवध !! नि संबध !!! ॥ १३७ ॥

जेहि हित सब कुछ करि थके, सो सब पाया आज।
अब तौ बाकी कुछु नहीं, पारख स्वतः बिराज ॥ १३८ ॥

टीका—जिस दुख निवृत्ति और अविनाशी सत्य स्थिति अर्थ अनादि काल से सब भ्रम मार्गो की ओर विषयारण्य मे भटकि-भटकि थके पर हाथ कुछ नही आया। अत मे थक-थक कर वासना वश रहट-चक्र न्याय घूमते रहे, वह सम्पूर्ण अभिलाषा आज इस

प्रार्थना

शरण आधार देकर के, निबाहे हो निबाहे हो ।
करूँ अब ध्यान क्षण-क्षण मे, निबाहे हो निबाहे हो ।।टेक।।

कृपासिन्धू पतित पावन, सकल शुभ नाम गुण लक्षण ।
सुना देखा यथा प्रभु मे, निबाहे हो निबाहे हो ।। १ ।।

सकल जग जीव डुबते है, बिषय परपंच की धारा ।
चढा सद्बोध के बेड़ा, निबाहे हो निबाहे हो ।। २ ।।

दिखै संसार की धारा, अनादी काल से योही ।
सकल सदेह को नाशे, निबाहे हो निबाहे हो ।। ३ ।।

सदा निज रूप पारख है, घुमाकर लक्ष्य इस जग से ।
डटाकर स्थिती यकरस, निबाहे हो निबाहे हो ।। ४ ।।

नमो गुरु सन्त बोधक हे, तुम्हारे दास के दासा ।
गहूँ तव प्रेम से शिक्षा, निबाहे हो निबाहे हो ।। ५ ।।

चौपाई

जो जानत घट की सब करनी । छोड़त पकड़त तेहि गुण बरनी ।।
सो स्वरूप मे नहि तन माया । प्रकृति लेश तजि स्वत' रहाया ।।
तन जहाज आरूढ जु प्रेरक । चलत उपाधि बिबश दुख हेरक ।।
सूक्षम थूल थूल अरु सूक्षम । चारि खानि बस्था बस घूमम ।।
अति आसक्त भयउँ सब माही । जिमि पतग गज श्वान भ्रमाही ।।
साहस हीन रहित सत मग से । बाँधि नयन पट भोरि कुजन से ।।
ठौरे सत हृदय अति कोमल । सपनेहुँ मिलत न तेहि रुचिसे भल ।।
इत कुटुम्ब सब मोहि भ्रमावै । उत गुरुवा जन जिय डहकावै ।।
मन इन्द्री सब रिपु ठग करनी । मानि अह बाढत जिय जरनी ।।
बिश्व प्रमाद नशा मे अन्धे । यहिबिधि अगणित जन्मनि वन्धे ।।

होने वाला ऐसे पारख सिद्धात की शिक्षा देकर गुरुदेव तो अक्षय अटल दया कर दिये, अब अपने ऊपर अपनी कृपा होनी चाहिये, अपने जरा-मृत्यु-गर्भ, तन-मन विश्व उपाधि दुखो से त्राहि-त्राहि करके इससे छूटने के लिये कल्याण करने की तीव्र श्रद्धायुक्त प्रयत्न करना अपने ऊपर दया करना है। एव जव गुरु की अनत दया और अपनी दया दोनो जिस मनुष्य जीव के लक्ष्य के सामने पुष्ट हो जाती है, तब यही जगत के कठोर से कठोर सर्व वन्धनो को तोड देता है, ओर आप मुक्त हो जाता है ॥ १४० ॥

छंद

मोक्ष पद दर्शित कियो गर्जी लहै तेहिंको भले।
गर्जी बिना नहिं प्राप्त हो निर्णय कोई कैसेउ अले ॥
परकाश पारख जो दिये रत्ता रहै जेहि साथ ले।
पद बन्दि बारम्बार तेहि निरुवार हो जग दुख टले ॥

टीका—श्री गुरुदेव असीम दया करके मुक्ति भूमिका पारख स्वरूप और तिसके रक्षक सदाचरणो को खुलासा करके दर्शा दिये। जो कल्याणपद की प्राप्ति करने का तीव्र इच्छुक होगा वही इस श्रेष्ठ विचार को भली प्रकार प्राप्त कर सकेगा। कल्याण की तीव्र इच्छा रूप गर्ज के बिना कितना ही श्रेष्ठ निर्णय कोई कर देवे तो क्या ? "शब्द है गाहक नही ?" या "बधिर को टेर" न्याय, अश्रद्धालु को सत्यन्याय का कुछ फल नही। इसलिये हमे कल्याणपद की प्राप्ति करने का गर्जी बनना परम आवश्यक है। अब जो गुरुदेव स्वरूप का बोध कर दिये और जिन सतो का साथ करके बोध तथा रहस्य की रक्षा मे सहायता मिलती रहती है, उन गुरु और सतो के चरण कमलो की वारम्वार वन्दना करता हूं। इस हेतु से कि आपकी दया लेकर ही जड़ासक्ति का बन्धन त्याग करके जगत के सर्व दु.खो से पृथक होकर मुक्त हो रहूंगा, ये दृढ निश्चय।

फल छंद

वहि मंत्र है वहि ज्ञान है
 वहि ध्यान वहि कल्याण है।
जेहि भाँति से गुरु परख दृढ़
 वहि ग्रन्थ नित्य प्रमाण है॥
सयुक्ति निर्णय वाक्य को
 आदर सदा सुख खान है।
ऐसी सुमति जन को मिलै
 गुरुदेव शरण अमान है॥

चौपाई

रचन वचन तिय कामी जैसे।
 प्रिय लागै सद निर्णय वैसे॥
कहत सुनत सब भूल भगै से।
 सरल सुमग मन क्यो न गहै से॥

उभय फन्द से जो अति न्यारे । जेहि प्रताप लखि यमगण हारे ।।
दृढ बिवेक वैराग्य पताका । भ्रमत अवनि जेहि सतमग वाँका ।।
सोइ गुरुदेव अचानक आये । देखि दुखी निज हृदय लगाये ।।
मो सुख शाति कि बहियाआई । प्रवल दोष क्षण माँहि डुबाई ।।
साधन वेग भँवर अति भारी । चलत प्रवाह परीक्षा सारी ।।
जहँ देखौ तहँ शील विचारा । वन्धन शोक मोह सहारा ।।
यह सव गुरु की दया विचारौ । निशदिन गुरु-गुरु ध्यान सम्हारौ ।।

दोहा—हृदय समात न हर्प यह, सपना कौहट जाहि ।
जागृत पारख परख नित, अभय अशंक अदागि ।।
वहिर्प्रवृत्ती काल गुण, है निवृत्ति गुरु देश ।
दलि प्रवृत्ति निजरूप रहि, नहिं होवै दुख लेश ।।

सद्ग्रथ मुक्तिद्वार सटीक पचम पाठ निवृत्ति साहस शतक समाप्त

सद्गुरवे नम

मुक्तिद्वार

षष्ठ पाठ

शांति शतक

वन्दना साखी

अशांति धार बहते रहे, शांति जलाये जात।
अघटित विपति मिटाय कै, हरौ मोह भ्रम घात ॥ १ ॥

टीका—हे गुरुदेव! जड़ देह को सत्य मानने के कारण राग-द्वेप, कामना करके अशाति धारा मे बहा करता हूँ। विक्षेप, उलझन, कमी, अतृप्ति, तृष्णा भोग कामनारूप अशाति के वश हमेशा चंचल तपायमान रहता हूँ। उधर अशाति कामना धारा में तो बहता ही हूँ, इधर साथ ही शातिरूप नित्य तृप्त सद्बुद्धि के रहस्य को भस्म किये डालता हूँ अर्थात चैतन्य पक्ष, धार्मिक मार्ग का खण्डन करते हुये जिससे दुर्बुद्धि उत्पन्न और पुष्ट होती है, उसी जड़वाद और काम, क्रोध, लोभादि दुर्गुणो को सत्य मानकर धँसते जा रहा हूँ। यह मेरी न मिटने वाली अनन्त आपदा का हेतु महान दुर्बुद्धि है। इसे कृपया परखा के छुडाते हुये मोह, अज्ञान, भ्रम, उल्टी समझ से जो मै अपनी हानि कर रहा हूँ, उसे हरण कर लीजिये ॥ १ ॥

हेतु-छंद

सह विवेक विराग युत
जे परख पद मे थीर है।
तेइ साधु है तेइ गुरु अहै
तेइ धीर वीर कबीर है॥
पुनि ताहि वानी बीजकौ
रवि दलत भ्रम की भीर है।
रुज वासना कटि जाय जेहि विधि
शस्त्र ले वहि वीर है॥

साखी

निर्णय वाक्य प्रकाशमय
शांति शतक उद्योत।
मनन करत याको भले
मुक्ति सरल मग होत॥

एते दिन सब भ्रमत वितायो, नहिं विश्रांति समाऊँ।
परखत परखत छल बल परख्यो, गुरू कृपा डटि ठाऊँ ॥४॥
छल स्वरूप सब जानि मनोमय, ता से प्रेम हटाऊँ।
गुरु पारख के ऐन वैन बसि, ठौर ठेकाना लाऊँ ॥५॥

प्रसंग १—बोध साज, ज्ञानाग्नि से सचित कर्म दग्ध होने मे हेतु

सुख मानन्दी की क्रिया, छोड़ि बोध बल संत।
बिमल बिराग प्रकाश मिलि, सकल कामना अंत ॥ ३ ॥

टीका—सुख मानन्दी करके जो स्थूलाभिमान स्त्री-पुत्र-घर, धन, काम-क्रोधादि पच विषय ये खानि जाल। ईश्वर ब्रह्म, देवी-देव, स्वर्गादिलोक, भूत-प्रेतादि ये वानी जाल, इनकी क्रिया तथा पुरुषार्थ को पारख स्वरूप के बोध-बल से संत त्यागकर देते है। मै पारख स्वरूप सर्व का पारखी सबसे न्यारा हूँ और वृत्तिजनित सर्व सुख भास कल्पित है। इस प्रकार वैराग्यवान जड़ाध्यास मल रहित निर्मल वैराग्य का प्रकाश और स्वरूपज्ञान ये दोनो एक से एक पुष्ट करके जगत-ब्रह्म सम्बन्धी सव कामनाओ को नष्ट कर देते है ॥ ३ ॥

वैराग्य के चार भेद—चौपाई

मन्द मध्य पुनि श्रेष्ठ बिरागा। तीव्र तरौ कहि चारि विभागा ॥
पुनर्जन्म फल भोग समुझि कै। अथवा कुटुम छूटिहै गुनि कै ॥
करत धरम सो मध्यम जानौ। मंद परे दुख करै गलानौ ॥
शव लखि कथा सुनत बैरागा। क्षणक ऊबि पुनि मन्द सरागा ॥
छल वल श्रम तृष्णा भ्रम चिता। दृश्य असार देखि दुख मिता ॥
नख शिख नारि विषय से रूखे। संयम सहित परमपद भूखे ॥
होइ उपराम करत सत्सगा। गो मन साधि सो श्रेष्ठ प्रसगा ॥
निज स्वरूप सुधि रमण तहाँही। ताहि छोडि कछु और न भाही ॥
सुख के सुख जीवन के जीवन। प्रिय के प्रिय निज सार लहीवन ॥
अन्य मान सुख तजि सव रागा। सदा एकात बिबेकहि पागा ॥

हरौ दीन की दीनता, दीनानाथ उदार ।
शांत जीव को शांत करि, अचल प्रभाव सम्हार ॥ २ ॥

टीका—देह सुखाध्यास के पक्ष मे यह जीव दीन-दुखी हो र है । विषयासक्ति काम, क्रोध, तन मन दुखो से असहाय वा भ्रामक मत पथ ग्रथ इन्द्रिय मन मोहनी माया का चेरा हो रहा है ऐसे दीन आसक्त जीव की अज्ञान कृत सर्व दीनता-दासता हर कर लीजिये । आपही तो लाचारों की अज्ञानकृत लाचारी मिटा के रक्षा करने वाले है और अपना सद्रहस्य देकर समर्थ बनाने अति उदार है । सूर्य पर बादल वत ऊपर से सम्बन्ध कृत भू अध्यास लगा हुआ है, तिसको मिटाने पर जीव ही शुद्ध शात मु रूप स्थिरपद है । तिस स्वयं शातरूप मे ठहरा देने की आप गुरुदे से याचना है । इस जीव की सर्वोपर सामर्थ्य यही है कि स्वरूप यह अक्रिय, अचल, पवित्र, नित्यतृप्त, निराधार, एकरस, पारखप्रका निर्बन्ध, नैराश्य स्वय है । सो मैं अपने अचल अचाह एकरस प्रभा एव तेज को सम्हार के सावधानता युक्त स्थिर हो रहूँ । देहात त कभी चचलरूप विश्व, मन, विषय के आनन्द भास मे न भूलूँ बस यही आपसे विनय युक्त माँगना है ॥ २ ॥

पश्चाताप और उत्कण्ठा-प्रार्थना।

कौनी विधि साहेब के पद पाऊ ॥ टेक ॥

देखी सुनी न अस विपरीती, जस कुछ निज भ्रम भाऊँ ।
भोग रिपुन से अति प्रिय मानत, दुर्गुण राशि बढ़ाऊँ ॥१॥

पर अघ कहत सुनत मन मोदित, पर सद्गुण विसराऊँ ।
मान चाह सुख देह गठन मे, चित्त भ्रमाय कुठाऊँ ॥२॥

सतसंगति सद्ग्रन्थ मनन करि, लहि पारख तरि जाऊँ ।

(त्रिविध कर्म समूहो) के अध्यासबीज को भस्म कर देती है। कर्म-बीजो के भस्म होने का मुख्य यही चिन्ह है कि बोधनिष्ठ जीव को भ्रमरूप सुखासक्ति अपनी ओर खीच न सकती, बल्कि, पारखदृष्टि से सन्मुख सर्व उद्वेगो का अभाव हो जाया करता है। ऐसी प्रवल स्वरूपस्थिति की धारणा पुष्ट कर लेने पर कर्म वासनाये खिचाव रहित एव शक्तिहत होकर नष्ट हो जाती है ॥ ५ ॥

ज्ञान अग्नि यहि भाँति से, संचित देय जलाय।
प्रारब्धि भोग तन भोगता, सह विचार ठहराय ॥ ६ ॥

टीका—अज्ञान से विषय सुखो में भाव, भाव से कर्म, कर्म से सस्कार, संस्कार से जन्म-मरणादि की प्राप्ति होती है। तिसे उलट-कर पूर्व कहे प्रमाण ठीक-ठीक पारख से विषय सुख भ्रम मात्र दुख-पूर्ण जानने से तिसका अभाव, अभाव से त्याग रूप पुरुषार्थ, तिससे नये-पुराने संस्कारो का ध्वस, इस प्रकार ज्ञान अग्नि सर्व सचित कर्मो को भस्म कर देती है। मात्र पूर्व बेग से प्रारब्धरूप देह कटा बट वृक्ष हरा न्याय खड़ा है। तिसे नैराश्यता से भोगते हुये विचार सहित स्वरूपस्थिति में एकरस ठहर जाना चाहिये ॥ ६ ॥

मन साक्षी मन से परे, परखि परखि मन छोड़।
अनमिल पारख आप रहि, तोड़ि मनोमय गोड़ ॥ ७ ॥

टीका—मन का देखने वाला दृश्य मनोमय स्मरणो से विलग है। विचार करना यह है कि मन ही द्वारा मुझ शुद्ध चैतन्य को दुख-सुख, हानि-लाभ, राग-द्वेष आदि सम्पूर्ण देहोपाधि का भार लेना पड़ता है। तिस बोझ को डालने के लिये मन चितनो को भिन्न असार परीक्षा कर-कर छोडते रहना चाहिये। जड भास-अध्यास मे न मिलने वाला आप सर्व का परीक्षक पारख सर्व जड़ भास से अनमिल है। किसी भी प्रकार से जो किसी मे न मिले उसे अनमिल कहते है। जड़ तत्त्वो का भास-अध्यास, कल्पना-मानन्दी

दुख सुख हानि लाभ कुछ नाही। देखत वृत्ति विलग रहि जाही॥
चित उदवेग शात कर दीन्हे। अति उदास सब वन्धन चीन्हे॥
राग विराग प्रवृत्ति निवृत्ती। वध अवंध हेतु सब दिखती॥
लखि परिणाम ध्यान यहि जापा। जेहिविधि वध राग नहि व्यापा॥
सोइ उपाय यहि नीति विभूपण। समता सहित रहित सब दूपण॥
सोई तीव्रतर परम विरागी। जीवनमुक्त परख महँ जागी॥

दोहा—सकल कामना अन्त करि, अपने आपै थीर।
मुक्त प्रत्यक्ष सो जानिये, फिर न सहहि भव भीर॥

अबोध राग उतपति करम, बोध विराग से नाश।
शुद्ध जीव वन्धन रहित, जन्म मरण तजि त्रास॥ ४॥

टीका—स्वरूप का अज्ञान, तिससे प्राणी और विषयो में ममता उत्पन्न होती है। तिस ममता वश पाप-पुण्य कर्म वनते है। फिर तिस कर्म से देहरूप जगत जन्म-मरण का प्रवाह चलता रहता है। सो इस अज्ञान और राग जन्य कर्म और जन्म-मरणरूप रोग का विनाश स्वरूपज्ञान और दृढ वैराग्य ग्रहण से हो जाता है। जीव के स्वरूप मे वन्धन स्वभाव से तो है नही, भ्रम कृत वन्धन लगा आ रहा था, सो वोध और वैराग्य से नष्ट कर दिया गया। फिर तो सर्व वन्धन नष्ट करने के पश्चात शुद्ध चैतन्य जीव निर्वन्ध स्वतत्र मुक्त रूप स्थिर हो जाता है। इस प्रकार अविनाशी जीव जन्म-मरण की आपदा से अपने को छुड़ा लेते है॥ ४॥

प्रबल अनल तृण जारे सब, जो तेहि होय नगीच।
ऐसहि परख प्रकाशथिति, कर्मन भस्म अवींच॥ ५॥

टीका—जैसे धधकती हुई उत्तेज अग्नि मे जो तृण पड़ा सो भस्म हुआ, उसके अगल-वगल पडे हुये तृण की जहाँ तक सिलसिला मिलेगी तहाँ तक वह जलाती चली जायगी। इस प्रकार पारख प्रकाश रूप एकरस स्थिति की धारणा प्रचण्ड अग्नि के समान कर्मन

जो गाफिल पुरुषार्थ तजि, सो कैसेहु नहिं ठीक।
सुखाध्यास ठगि ताहिको, छूटि जीव की लीक॥ १०॥

टीका—गाफिल होकर सत पुरुषार्थ से ढीला पड़ना किसी हालत मे ठीक नही है। बोध प्राप्ति के पश्चात सबसे अभाव करके शीघ्र शरीर छूटने की योग्यता पडे अथवा विवेक वैराग्य द्वारा नैराश्य दशा से बर्तते हुए बहुत काल पश्चात शरीर छूटकर विदेह मुक्त होने की योग्यता पडे, दोनो प्रकार से विवेक वैराग्य स्थिति के पुरुषार्थ मे ढिलाई नही करना चाहिये। जो आगे की आशा रख के वर्तमान मे स्वरूप लक्ष्य छोड़कर जगत प्रपच मे गाफिल हुआ, तिसको सुखाध्यास ठगिनी ने ठग लिया, मन ने उसे धोखा दिया। नही तो बोध पश्चात दुखपूर्ण प्रपचासक्त होने की आवश्यकता ही क्या है ? निश्चय ही उससे अपना कल्याण मार्ग छूटकर उस जीव का काज नही बन सकता। अत सावधान॥ १०॥

बन्धन छिपै न जाहि से, मुक्ति ताहिकी दृष्टि।
बन्धन जेहि अनुभव नहीं, तेहिको मुक्ति अदृष्टि॥ ११॥

टीका—आनन्द, कर्त्ता-भास, शून्य-सर्व व्यापक, अष्ट मद, पंच विषय, प्रमदा-वानी, काया-कामना, आशा-व्यवहार प्रवृत्ति आदि जहाँ लो इन्द्रिय गोचर लोक-वेद सकल पक्ष, सकल ज्ञेय अध्यास, भास, है सो सर्व बन्धनों का जो ज्ञाता, देखता, जानता है, वही बन्धनो को छोडकर स्वय स्वरूप शेष रहा हुआ मुक्ति स्थिति को भी देखता है। और जिसे बन्धन क्या है, इसका अनुभव ज्ञान नही, उसके लिये मुक्ति अवश्य अदेख है। अत मुक्तिदेश समझने के लिये बन्धनो को भली प्रकार जानकर उसका अभाव करना चाहिये। तब सर्व ज्ञाता आप मुक्तरूप आप ही रहेगा॥ ११॥

अपनै बन्धन में पड़ा, मानि प्रयोजन भिन्न।
लखा ताहिको झूठ जब, तबही मुक्ति अखिन्न॥ १२॥

मात्र है और इन भास अध्यासादि से अपने आप चेतन त्रयकाल भिन्न है। सो अपने पारख स्वरूप को सबसे पृथक जान के अपनी कल्पना-रूप स्मरण धारा को देख-देखकर तिसमे सुख मान-मान सत्ता न देकर मनोभव से अनमिल रहते हुये आप परीक्षक रूप ठहरकर मनोमय की चाल को तोड़ना चाहिये ॥ ७ ॥

करत करत अभ्यास यहि, मन निरसन ह्वै जाय।
अंधकार आसक्ति मिटि, जीव स्ववश ठहराय ॥ ८ ॥

टीका—इस प्रकार मनोमय मे न मिलने का अभ्यास नित्य चालू रखने से स्मरणो मे भावरूप सत्ता न मिलकर वे शात हो जायँगे, खैच रहित होकर कब्जे मे आ जायँगे औ लक्ष्य को शात रखने का अभ्यास सरल हो जायगा। तिस शाति स्थिति मे ठहरकर सूक्ष्म से सूक्ष्म आसक्तियाँ सुख मानना रूप अधकार की कसर-विकार देख मे आकर वे अत्यन्त निर्मूल हो जायँगे। जीव स्ववश-स्वतंत्र होकर मोक्ष दशा मे ठहर रहेगा ॥ ८ ॥

पारख पद को प्राप्त जो, सबसे ह्वै निःसंग।
जो छूटै तन भाव यहि, शीघ्रहि मुक्ति अभंग ॥ ९ ॥

टीका—पारख पद (यथार्थ स्वरूप बोध) को जो प्राप्त करके जगत-मन सबसे नि संग अर्थात अध्यास—राग रहित सबका अभाव करके अपने आप ठहर जावे। यदि इसी स्थिति हालत में प्रारब्ध भोग रूप देह का अत हो जावे, तो जल्दी ही नि सदेह अभग अखण्ड विदेह मुक्ति को जीव प्राप्त हो जायेगा। साराश—वैराग्य दशा एव रहस्य-बोध ठीक कर लेने पर, चाहे उसी पल मे शरीर छूटे अथवा विशेप दिन का प्रारब्ध भोग होकर छूटे, बस हर क्षण मुक्त रूप ही है। स्वरूप मे जगत है नही, केवल भाव से बँधा था, सो पारख से अभाव करते ही अपने आप अचल है ॥ ९ ॥

विसिष्ठ चतुर्भुज विष्णु-रामादि विग्रह औतार मे प्रेम बना रहना ही मुक्ति जानते है। कई अहं ब्रह्म सर्व ब्रह्मात्मैक्य बोध से मुक्ति मानते हैं। कितने सुरति वृन्द को सुरति तार मिलाकर कर्त्तार सिंधु में मिलना मुक्ति बखानते है। कितने विद्या को सरस्वती देवी मानकर तिसको जन्मभर रटने ही से मुक्ति मानते है। कितने देहवादी स्त्री आदि विषय लम्पट रहना जीवन फल समझते है। कोई तो सारे विश्व को प्रकृतिमय मानकर प्रकृति, सूर्य, चन्द्र, समुद्रादि की क्रिया ही का निरीक्षण करते रहने से मुक्ति समझते है। इस प्रकार 'मुक्ति मुक्ति सब कोइ कहे' किन्तु ये सब नाशवान ठाठ है। जहाँ तक इन्द्रिय-अंत करण गोचर है, सो सब पिण्ड-ब्रह्माण्ड पृथक है। तिन से पृथक दुर्भास की आशा-वासा ग्रहण करके ही यह जीव जड़ाध्यासी बन के जन्म-मरण मे पडा हुआ है। 'मुक्ति न चीन्हे कोय' तो इसी सर्व विजाति बन्धनो को उलट देना—त्याग कर देना ही मोक्ष है। हृदय मे जहाँ तक स्वरूप से भिन्न मनोमय दृश्य होते है, तिनमें सुखाकर्पण रहित होकर अचल स्वरूप में स्थित होना ही मुक्ति भूमिका मुक्तरूप है। यथा—

दोहा—"अखण्ड अनादी सत्यचिद, शुद्ध सतत अपरोक्ष।
पंच भास जड आश तजि, स्वत आप है मोक्ष" ॥
'मुक्त को ही मुक्त कर विपरीत नहि करता रहै' ॥ १३ ॥

भक्ति विरति पारख सुथिर, रहि करि अपनो काज।
जाहि योग्यता प्राप्ति जस, तस प्रारब्धि निवाज ॥ १४ ॥

टीका—अब बोधवान का प्रारब्ध वर्तमान कहते है। भक्ति, वैराग्य और स्थिति इन्हीं के अन्दर रहते हुए स्थितिदशा पूर्णरूप से पुष्ट हो जायेगी। यही अपना काज पूर्ण करना है। वैराग्य मे भी अन्दर बाहर पच विषयो का त्याग है। तैसे ही वैराग्यवान सत की आज्ञा पालनरूप सेवा-भक्ति की क्रिया मे भी अन्दर-बाहर जगत

टीका—जीव को कोई वन्धन में नही छोडा है। अपने अज्ञान से स्वयं वँधा है। अपने आपको सदैव तृप्त रूप न समझकर भूल वश अपने से भिन्न प्रयोजन मान लिया है। जहाँ तक विषयानन्द और ईश-व्रह्म स्वर्ग, वैकुण्ठ धाम, विद्या, मान, स्थान, सुख लाभ-लोभ देह कृत ज्ञेय दृश्य से सव प्रयोजन माना है, तहाँ तक प्रयोजनिक वासनाओ की धारा मे यह द्रष्टा ज्ञाता जीव वह रहा है। पारख-दृष्टि से विचार करने पर अखण्ड सत्य स्वरूप में कोई जगत प्रयोजन है नही। ऐसे निश्चय द्वारा जव स्वयं के अलावा सर्व प्रयोजन को झूठा दृढ कर लेता है, तभी यह जीव नित्य तृप्त, मुक्तरूप तथा नि:शोक होकर विराजता है॥ १२॥

प्रश्नोत्तर दोहा

जग सुख तो नीको अहै, नहि नहि सुन विप जान।
विषवत सुख तुम क्यो कह्यो, इच्छा वढत महान॥१॥
इच्छा वढि वढि भोग सुख, तो यह ही वड रोग।
रोग कह्यो क्यों भोग को, लखु लखु सवही शोग॥२॥
जैसे नयना दर्द मे, जाय डाक्टरौ धाम।
करि अपरेशन ताहि को, से जादिक आराम॥३॥
विपम दवा से दर्द वढि, भागु भागु कव भाग।
यों ही जग सुख जान लो, सुनत गयो वह जाग॥४॥

उपरोक्त वाते मनन-अभ्यास से सर्व इन्द्रिय सुखो की इच्छा नप्ट हो जाती है, तव जीव स्वरूप मे अचल टिक रहता है।

मुक्ति मुक्ति सव कोइ कहै, मुक्ति न चीन्है कोय।
अपने से जो पृथक है, मुक्ति ताहि तजि होय॥ १३॥

टीका—कोई इस सूर्य-चन्द्र के ऊपर स्वर्ग, वैकुण्ठ, साकेत लोक, परमधाम, सत्य लोकादि को जाना मुक्ति मानते हैं। कोई शव्द व्रह्म या ज्योति स्वरूप मे मिलना मुक्ति मानते है। कोई सगुण माया

फल स्वरूपस्थिति ही है सोई गुरुपद सर्व परीक्षक पारख अपना स्वरूप है। अस्तु, यहाँ अन्तिम तीनो फल स्वरूप मे एक ही है। जो स्वरूपस्थिति की तरफ चलता है, उसने जानो तीनों प्राप्त कर लिया है ॥ १६ ॥

करै चलाँकी जो मनुष्य, ताहि काज नहिं पूर।
न्याय धरम सद्रहस्य युत, तजि कायरता शूर ॥ १७ ॥

टीका—चलॉकी का अर्थ जब सदगुरु की सेवा-उपासना करने का मौका होवे, तो कहे हम वैराग्य कर रहे हैं। भक्ति तो इसी से है। वाह्य सेवा उपासना नेम-प्रेम भक्ति से क्या मतलब ? ऐसा कहकर भक्ति को जो टाल देवे। ऐसे ही सत्संग-बोध लेते समय या द्रष्टास्थिति समय या वैराग्य अवसर को भी कोई न कोई ओट लेकर उसे भी छोड़ देवे। मात्र बोध, भक्ति, वैराग्य के नाम से मनमानी ममता, इर्षा, वड़ाई, कुसंग, कुमार्ग, आरामतलवी, मालिकत्व आदि भ्रमकृत प्रपच ही में भटकता रहे, यह चलॉकी का स्वरूप है। सो ऐसे मनुष्य का काज पूर्ण नहीं हो सकता। याते कल्याण प्रेमी को उचित है कि सचाई के साथ न्याय, धरम, सद्-रहस्य को ग्रहण करे। यथार्थ निर्णय से जैसा ठहरे वैसा समझ के वर्ताव करना ये न्याय है। उपकार दाता का उपकार स्मरण रख के तिनके प्रति हरदम कृतज्ञ होकर गुलाम (आज्ञाकारी) वने रहना धरम है। वैराग्यादि सर्व कल्याण अगो को लेना सद्रहस्य है। सो तीनों अगो का यथायोग्य पालन करे। सुखाध्यास के वशी-भूत होकर कल्याण मार्ग मे ढिलाई न करे। न्याय-धरम पालन मे आगा-पीछा न खैंचे। वल्कि अपना जन्म-जन्म का काज पूर्ण होने का अवसर देखकर शूर वीर वत यथायोग्य सर्वाङ्ग रहस्य पालन कर अचल स्वरूप में सदा के लिये स्थित रहे ॥ १७ ॥

प्रपञ्च का त्याग है। और सवको भिन्न परख-परख के सर्व परीक्षक आप पारख स्वरूप के विवेक तथा स्थिति मे भी सब विजाति वन्धनो का त्याग है। ये तीनों-तीनों की आवश्यकता—अपेक्षा रखते है। जव जिस समय तीनो मे से जिस प्रधान अंग को पालन करने का शुभ अवसर प्राप्त हो, तव सो धारण और तिसके साथी रक्षक को लेते हुये प्रारब्ध भोग को व्यतीत करना चाहिये ॥ १४ ॥

ये त्रिविधी अभ्यास जहँ, रहै एक में एक।
एक शुद्ध धारण जहाँ, तहाँ तीनिहूँ टेक ॥ १५ ॥

टीका—पूर्वोक्त तीनो प्रकार के अभ्यास का क्रम वताया गया। जहाँ तीनो मे से एक शुद्धता पूर्वक धारण किया जाता है, तहाँ उसके साधक दोनो अग आ जाते हैं। भक्ति के विना वैराग्य नही, वैराग्य के बिना भक्ति नहीं तथा दोनो के विना पारख स्थिति नही। याते जहाँ एक भी शुद्ध रहस्य ग्रहण किया जावेगा तहाँ दोनो निश्चय ही आ डटेंगे। एव तीनो परस्पर एक दूसरे का आश्रय रखते है, ये निश्चय जानो ॥ १५ ॥

भक्ति बोध गुरुपद रहा, नहिं कहुँ अते च्रेम।
पारख अपन स्वरूप है, गहि वैराग्य स्वप्रेम ॥ १६ ॥

टीका—[सर्व विजाती वन्धन अभाव करके जव अपने आप स्थित रहा जाता है, उस समय भी तीनो अग रहते हैं] गुरुदेव के मनसाय, सिद्धात और सद्‌रहस्य को धारण करना ही गुरुदेव की भक्ति है। वोध स्वरूप ही गुरुपद है, इसके पृथक कहीं जीव का छुटकारा नहीं है। तहाँ सर्व परीक्षक पारख अपना सत्य स्वरूप ही है, तिसे जानकर और सवका अभाव करके अपने आप मे ठहरना वैराग्य है। साराश यह है कि पहिले तो सेवा, आज्ञापालन आदि भक्ति और सत्य स्वरूप को जानना वोध तथा जगत वासना त्यागना वैराग्य है। फिर यही अभ्यास करते-करते स्थिति दशा मे तीनो का

स्वरूप के वाद शुभाशुभ कामनाये उठें, सर्वको पृथक समझ के उनसे दूर भागो। अपने आप स्वरूप के विवेक मे निरंतर प्रेम करो। स्वरूपवल से स्वरूप का उद्धार करो। गुरु का सैन मात्र लेकर खास स्वतत्र पारख के बल से स्थिति का काम करो। पारख स्वरूप के अलावा जहाँ कही भी तुम्हारी ममता लग रही हो, उसे वंधन-प्रद कालरूप समझ के त्याग दो ॥ १९ ॥

छन्द—कोटि रिपु औ कोटि घातक कोटि कोटि अनर्थ सो।
कोटि विधि से राग तज तेहि स्थिती से दुरर्थ जो ॥
कोटि विधि अपनाइये तेहि जो कि पारख साध्य हो।
रक्षक रखो सब पर्ख के भक्षक न कहुं आराध्य हो ॥

अबला में सुख प्रेम तजि, रूप शब्द स्पर्श।
यहिसे मनहिं छोड़ाय ले, मिटै जगत दुख भर्स ॥ २० ॥

टीका—स्त्री के शरीर मे सुख मानना, स्नेह करना छोड दो, तिसके अगो की बनावट और शृंगारादि पर दृष्टि मत डालो। तिसके विकारोत्पादक वचनों को मत सुनो। स्त्री के अगो के स्पर्श सम्वन्ध से दूर भागो। अनादि काल से और इस वर्तमान जन्म मे भी स्त्री घट के सुख मे, प्रेम मे, सुन्दरता मे, वचनों मे, स्पर्श करने मे, निकटवर्ती वन के एकदम मन जकड़ गया है। अब ज्ञान के पश्चात जन्म-मरण सर्व वन्धनो से छूटने के लिये उन सब बातों से वधे हुये मन को छुड़ा लो। जिससे जहाँ तक स्त्री को ग्रहण करके स्त्री के पीछे सव कुल-कुटुम्व का सिरतोड बोझा, विपयासक्ति की खैचरूप प्रवल आँधी और सर्व दुर्गुण सम्बन्धी असह त्रिशूल छेदन कष्ट, वारम्वार सबकी चारो तरफ से विवशतारूप महाजाल तृष्णा अपमान भय-चिता लड़ाई झगड़ा का कूड़ा करकट और अध्यास की दुर्धर वेड़ी के वश देह धर-धर के त्रिविध तापो की भट्ठी मे जलते रहना ये सव वर्तमानिक कष्ट और भविष्य कष्ट बीजो मे जो तुम

जो कुछ सनमुख भावना, प्रारब्धहिं तन केर।
रहौ भिन्न तेहि यत्न निज, आप में आप निवेर ॥ १८ ॥

टीका—यथार्थबोध होने के पश्चात सर्व आगामी अनुमान-कल्पना तो नष्ट हो जाता है। फिर भी इन्द्रिय अन्त करण ससारियो के सम्बन्ध से जो कभी कुछ सुखाध्यास रूप काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, राग-द्वेषादि की भासना अकुरित होने लगती है, उसमे मुख्य प्रारब्धरूप शरीर उपाधि का संयोग ही कारण है। सो जव तक शरीर है तव तक गुरु पारखदृष्टि लेकर स्वयं विवेक-वैराग्य मे पुरुषार्थ करके सर्व सुखाध्यास कुसग उपाधियो से न्यारे रहा करो। वारम्वार अपने चैतन्य के लक्ष्य को बहिर्वृत्तियो से घुमा-घुमाकर अपने आप स्वरूपविचार मे ही अतर्मुख करके स्वरूप भाव मे शात रहो। इस प्रकार अपने स्वरूप बल से अपनी वन्धवृत्ति का छेदन करते हुये अपना उद्धार करो। अलिप्त असगी बन के किमी भी सुखाध्यास मे अपने को मत वेचो, यही पारखबोध का फल है ॥ १८ ॥

राग द्वेष भय फिक्र तजि, छोड़ि कामना भागु।
आप आपमें प्रेम करि, छोड़ि और अनुरागु ॥ १९ ॥

टीका—हे बोधवान ! किसी भी दूर-निकट नर-नारिवर्गो मे ममता मत वाँधो। अपनैयत करके ममता बाँधने से सर्व बंधनो मे तुम जकड जाओगे। इसलिये ममता से दूर रहो। फिर राग त्याग के साथ वैर-विरोधरूप द्वेष को भी हृदय से भूल ही जाओ। यह स्मरण रक्खो ! "जीव भूल वश निज वश नाही। दुखिया दुखहि देन नहि चाही ॥" परमार्थ पथ मे चलते हुये भय तो किसी का मानो ही मत ! जगत फिक्र से जगत भर का भार लद जायगा। याते सव फिक्र छोड़ो और सर्व विषय कामना, जगत प्रसिद्धि कामना, जग जीवो को स्ववश करने की कामना, जहाँ तक निज

कालीन एकरस वैराग्यवान का अवलम्ब, स्वरूप विचारधारा पुष्टि हित सद्ग्रंथ नित्य मनन, सत्संग और स्व विवेकादि भ्रान्ति का अंत होता रहता है।

तन निर्वाहिक काम जो, करै विचार समेत।
स्वरूप बोध से भस्म करि, सुखाध्यास बलजेत ॥ २१ ॥

टीका—काय-वचन स्त्री के सुखाध्यास से अतर-बाहर विरक्त हुआ पुरुष सर्व झगड़े से रहित हो जाता है। रह गया शरीर निर्वाह, तिसमे भी विचार से संतोष पूर्वक कष्टसहिष्णु होकर बर्तना चाहिये खान-पान, आसन-वसन, मान-सन्मान, नर-नारि, द्रव्य-आश्रम आदि जिस किसी मे पूर्व सुखाध्यास बल से खिचाव होने लगे, उसको स्वरूप से पृथक समझ के स्वरूपबोध स्थिति के तेज बल से वासनाओ को भस्म कर देना चाहिये। जिससे कि आगामी देह धरने का बीज न पुष्ट हो, वही उपाय करना चाहिये ॥ २१ ॥

जेहि में तन निर्वाह नहि, केवल सुख को साज।
परखि परखि तेहि को तजै, करै जीव को काज ॥ २२ ॥

टीका—जिस सामग्री से देह का निर्वाह न हो, बल्कि केवल सुख भोग ही के लिये जो सामग्री हो, जैसे नाच रंग शौक ठाठ, नाना नशा कारक द्रव्य, ममता, मैथुन आदि पंच भोगासक्ति ऐसे लत मात्र को भ्रमपूर्ण परख परख कर छोड़ते हुये जीव का कार्य मुख्य स्वतः स्वरूप की स्थिति एकरस दृढ करना चाहिये। "आदति कुमग समुझि विसराई" इस भवयान के पूरे शब्द में आदत मात्र वृथा बधनरूप सुखाध्यासो का भली प्रकार वर्णन है, तिसे दुखपूर्ण समझ के त्यागकर मोक्षरूप रहना चाहिये ॥ २२ ॥

जठराग्नि हवन सुख ध्येय तजि, मनुष्य देह के योग।
खाना पीना रक्ष तन, बंध हरण उपयोग ॥ २३ ॥

झसुं (जले जा) रहे हो, वह सव आपदाये स्त्री सम्वन्धी अन्दर-वाहर वासना और सग त्याग देने से नष्ट हो जायगी। मुक्ति इच्छुक स्त्रियो को भी पुरुपासक्ति मे इसी प्रकार दोप दर्शन दृढ करके मन-मथ जीत कर कल्याण करना चाहिये ॥ २० ॥

सवैया

राग रु द्वेप को सोत अहै तह, मोह मया मद घोर अंधारी।
कोटिन फिक्र मिलै विछुडै दुख, शाख सुतादिक भौर डुवारी॥
मोहक ठोर मे तृप्ति कहाँ भइ, दोनों कि आश पचै मृग वारी।
भूलनि के सग भूलि गये अव, आपति मूल तजै तो सुखारी॥

प्रश्न—क्या अवला मे सुख प्रेम सौन्दर्यादि नही ?

उत्तर—विवेक से कुछ नही। सोचिये ! क्या जवानी स्थिर है ? हसी-विलास, राग-रग शक्तिहीन या शोक अवस्था मे क्यो फीके हो जाते है ? उत्तम रमणी के साथ मे अनन्त चिंता, परिश्रम, निर्वलता, सभ्यता, तृष्णा, आतुरता, विह्वलता, भार, रोग-शोक अनन्त उपाधिया क्यो व्याप्त होती है ? "मुख मे शहद शिर, पेट, पैर पर अंगार भट्ठी न्याय" सुख मानिये भी तो उसी हेतु सारे दुर्गुण-वन्धन भी तो साथ ही है। मुख्य इच्छा रोग वढाउक होने ही से और नश्वर विघ्न-रूप होने से सुख प्रेम सोन्दर्यादि तहाँ नहीं।

प्रश्न—फिर प्रतीत क्यो ?

उत्तर—जैसे मदिरा, सुर्ती, तम्वाकू आदि मे प्रथम कुछ सुख स्वाद नही, किन्तु आदत पड़ते-पड़ते इतनी सुख निश्चयता हो जाती है कि तिसके विना चैन नही। तद्वत अभ्यास, भ्रम-निश्चय, कुसग ही से विपरीत भी अनुकूल हो गया है।

प्रश्न—इस विपरीत भ्रान्ति का अत कैसे ?

उत्तर—इस भ्रम स्थान प्रारव्ध का साथ है। इस हेतु जीवन भर "रोगी दवा सेवन न्याय" सयम, मोहक समूह से पृथक, दीर्घ-

प्रसङ्ग २—इच्छा का त्याग

हिंसा को आभाव जेहि, मैथुन को अभाव ।
ममता को आभाव जेहि, सुख को दूरि वहाव ॥ २५ ॥

टीका—स्वजाति जानकर छोटे-बडे देहधारी जीवो का मन, कर्म, वचन से घात करना रूप हिंसा का जो पुरुष अभाव कर छोड़ दिये है । मन-वच इन्द्रिय सयम रख के प्रवल प्रयत्न से अष्ट मैथुन और सर्व प्राणियो की ममता मुख्य फॉसी समझकर जो त्याग दिये हैं, साथ ही नख-शिख स्थूल-सूक्ष्म देह में सुख भ्रम मानना जो भली प्रकार हटा दिये है, वे ही मुक्त पुरुष कहे जाते है ॥ २५ ॥

पाप पुण्य जो कुछु करैं, सो इच्छा में लीन ।
जो इच्छा छोड़े फिरै, तेहिको को गहि लीन ॥ २६ ॥

टीका—पाप हो या पुण्य जो कुछ कार्य किया जाता है सो वह किसी न किसी सुखइच्छा पूर्त्ति के ही लिये किया जाता है, इसलिये सुख इच्छा मे ही पाप-पुण्यादि सर्व कर्मो के बीज लीन है । इसी से वारम्वार वासना वश जन्म-मरणादि की प्राप्ति होती रहती है । यही अज्ञान दशा का हाल है । अब जो सर्व इच्छाओ को त्याग के विचरण करता है, उसको खीचकर कौन वन्धन मे डालने को समर्थ है । अर्थात इन्द्रिय सुख रूप फल को मिथ्या समझने से सकाम पाप-पुण्य की क्रिया ही क्यो होगी ! क्रिया के न होने से फिर वासना ही क्यों पुष्ट होगी ! वासना के बिना आवागवन ही कैसे होगा ! एवं सुख की इच्छा मात्र छोड़ देने से जीव नि सदेह मुक्त हो जाता है ॥२६॥

इच्छा कर्मन मूल है, तेहिको खोदि गिराव ।
जेहि में बाँधा जीव यह, ताहि त्यागि बचि जाव ॥ २७ ॥

टीका—निज स्वरूप से पृथक किसी प्रकार की इच्छा कामना ही शुभाशुभ त्रिविध कर्मो की जड़ है । इच्छा-वासना विना तीनो

टीका—केवल सुख स्वाद लेने के लिये नही, बल्कि शरीर रक्षायुक्त प्रारब्ध भोग समाप्त निमित्त पेटाग्नि मे अन्न रूप हवन सामग्री देना चाहिये। पशुवत हिंसा युक्त मलीन अभक्ष मास नशादि त्यागकर नर तन योग्य सामग्री शुभाचरण से प्राप्त अकुर मात्र शुद्ध अन्न और फल-मूल आदि आसक्ति रहित सतोप युक्त ग्रहण करना चाहिये। यह समझ के निर्वाह लेवे कि अन्न-जल से शरीर रक्षा लेना सुखाध्यास बधन तोड़ने मे उपयोगी है। अर्थात देहरक्षण मात्र व्यवहार लेकर पुन: इसी शरीर से सर्व बन्धन त्यागने अर्थ सर्व उपाय—ज्ञान-वैराग्य-उपासना सदाचरण ग्रहण करके मुक्ति-प्राप्ति का पुरुपार्थ बनता है ॥ २३ ॥

चौपाई

"ठीहावत यह देह गुजारा। अन्न वस्त्र आवश्यक धारा" ॥

वर्तत मिलैं पदार्थ जो, प्राणिन को सम्बन्ध।
अहं ममत्व जो हर्ष तहँ, जानि तजै तेहि बंध ॥ २४ ॥

टीका—शुभाचरण सहित प्रारब्ध वर्तमान मे वर्तते हुए मन अनुकूल सुन्दर सुखदाई निर्वाहिक पदार्थ जैसे—अच्छे-अच्छे मकान-आश्रम, कही सुन्दर वाटिका, कही कोई सुन्दर सेज बिछाकर बैठाल दिया, नाना पुष्पहार, द्रव्य, कीमती वस्त्रादि अर्पण किया और भी सुख-सामग्री जो प्राप्त होती रहती है, कही कोई मनानुसार आज्ञा-वर्ती नर-नारि समूह नम्रता युक्त सन्मुख मिलने लगते है, इन सबो में जो अहकार होकर मै-मेरी वश ममता-मोह, संग्रह उत्पन्न होने लगता है तिनकी प्राप्ति मे बडा हर्प-फुलावा उत्पन्न होता है। ये सब स्वरूप से पृथक नश्वर उपाधि रूप और राग-द्वेष बधनरूप समझ के तिन सबो का अहकार, ममता और तिन मे प्रसन्नता को हर क्षण त्याग करता रहे। तहाँ ममता रहित नैराश्यता से वर्तमान करे ॥ २४ ॥

चौपाई

कपट जानि त्याग्यो प्रिय रानी । भर्तृहरि छोडे रजधानी ॥
अस इच्छा व्यभिचारिणि जानै । परखि दुखद तेहि निज ठहरानै ॥

दुख छूटन इच्छा जिसे, छोड़ि इन्द्रियन भोग ।
तन निर्वाहिक काज करि, काटि वासना योग ॥ २९ ॥

टीका—इसी प्रकार सर्व दुखों से पीछा छोडाने की जिसकी उत्कट इच्छा है, वे सर्व इन्द्रियों की सुख-सामग्री को वासना रोग उत्पत्ति हेतु और छल-बल पूर्ण धोखे की टट्टी, बारम्बार जन्म-मृत्यु की फाँसी समझ के प्रयत्न द्वारा छोड देते है। केवल देह रक्षा मात्र शुद्ध कार्य करते हुये निर्वाह के साथ में वासनाओ की जिन-जिन कारणो से उत्पत्ति होती है उन-उन भोगों का संग त्यागकर वासनाओ को काट देते है, यही उनका प्रबल पुरुषार्थ है ॥ २९ ॥

सो इच्छा इच्छा नहीं, वह तो इच्छा काट ।
वैराग्य भक्ति स्थिति ठहर, छोड़ि जो मन की बाट ॥ ३० ॥

टीका—पूर्वोक्त प्रारब्ध भोग का कार्य अर्थात चलने-फिरने खाने-पीने आदि देह रक्षा की जो इच्छा है, वह बोधवान के लिये इच्छा नही, बल्कि कल्याण ध्येय से देह रक्षा किया गया वह शुद्ध व्यवहार ही इच्छाकाट शस्त्र है, क्योंकि देह रक्षा लेकर इसी देह द्वारा तीव्र वैराग्य, भक्ति और स्वरूपस्थिति के सर्व पुरुषार्थ में ठहराव करते हुये मन का जो रास्ता है, जैसे विषय भोग, प्रपच वार्ता, उद्विग्नता, अनुमान-कल्पना, व्यवहारवृद्धि, आलस्य, अहंता असजगता, मोहक प्राणी और राजस वस्तुओ पर प्रीति ये सब मन-मत मार्ग त्याग कर देते है। जैसे थोड़ी लकड़ी ठीहा (आधार) के लिए रखकर उसी लकड़ी पर बढई लकड़ियो को गढता, जैसे जगल की थोडी लकडी कुल्हाड़ी मे बेट लगा के उसी द्वारा सारे जगल

कर्म की स्थिति नहीं। याते स्वर्गादि पाने, ईश-ब्रह्म आदि बनने, स्त्री-मान आदि सुख मिलने, सबको अनुकूल रखने आदि को सर्व इच्छा रूप वृक्ष को दुखपूर्ण असार समझ के पारखदृष्टि रूप कुल्हाड़ी और दृढ़ साधन-सयम रूप कुदाल से खोद-खोदकर काट के गिरा दो, नष्ट कर डालो। यह जीव जिस इच्छा-कामना में बँधा हुआ दिखाई देता है, तिसी मुख्य बंधन को छोड़ देने से हे कल्याणार्थी! तुम आवागवन से बच जाओगे, छुट्टी पा जाओगे। अस्तु, इच्छा को ही मारो, जो कहो गुप्त इच्छा का त्याग होना असम्भव है, तो सुनो— ॥ २७ ॥

प्यारी नारि को शिर हतै, जेहिसे पूरा नेह।
सोना चाँदी फेंकता, जो निज तन को खेह ॥ २८ ॥

टीका—ससार में देखा जाता है कि प्यारी से प्यारी स्त्री जिसके विना एकक्षण भी रहना दुस्तर है और जिससे भली प्रकार प्रियता है, भाँति-भाँति रक्षा-पालन, ताबेदारी करता है यदि वह स्त्री पर पुरुषरता है और उस अनर्थ क्रिया द्वारा स्त्री से अपने ही नाश होने का अवसर आता दिख जाय, तो मनुष्य तमाम दिन के प्रेम को क्षण मात्र मे तोड़कर अपने प्राण की रक्षा के वास्ते उस पूर्व प्रिया स्त्री को कपटी और प्राण घातक जान के शिर उतार लेता है। यदि वह जहाँ रहता हो, सोना चाँदी रुपयो का खजाना इकट्ठा कर रक्खा हो, जो वहाँ उसे निश्चय हो जाय कि इस द्रव्य के कारण मेरा अवश्य प्राण नष्ट कर डाला जायगा, तो वह सोना चाँदी माल खजाना का मोह छोड़ के शीघ्र भागकर अपना प्राण बचाता है या फेंकने से प्राण रक्षा होती दीखे तो शीघ्र सोना-चाँदी को फेंक देता है। इससे अनुभव हुआ कि स्त्री और धन के समान सुख इच्छा अत्यन्त प्रिय होते हुए भी स्वरूपज्ञान द्वारा उसमे पूर्ण छल बल दुख देखने मे आ जावे, तो मनुष्य तत्काल सुख-इच्छा त्यागकर शात हो जायगा ॥२८॥

वह बुझेगी कैसे ? जैसे नशा पीते-पीते नशा की आदत बढ़ती ही जाती है, तैसे सब विषयो मे विचारिये ॥ ३२ ॥

धन की संगति लोभ हो, युवतिन संगति काम ।
मन वच क्रम जेहि त्याग प्रिय, तेहिके संग उपराम ॥ ३३ ॥

टीका—धीरे-धीरे धन का संग्रह करते रहने से लोभवृत्ति बढ जाती है। स्त्रियो के संग-रग से कामचेष्टा हरी-भरी हो जाती है। ऐसे ही जिन सतो को मन, कर्म, वचन से ससार का त्याग प्रिय है, जो विमल विरागी हैं, जगत प्रपंच से अलग रहते है, उन्ही की सगत अगर कोई करता रहे, तो उसे जगत से दृढ ग्लानि होकर वैराग्य भाव जम जाता है, यह प्रत्यक्ष है। सारांश—संगति का असर ही प्राणी को विशेष प्रेरित करता है ॥ ३३ ॥

बोई खेती पैदा भली, कर्जा मिलै जो दीन ।
जो दोनौं से नाशि तन, त्यागै ताहि प्रवीन ॥ ३४ ॥

टीका—यदि स्वय हाथ से बोई हुई खूब पैदा खेती पकी लगी हो और स्वय दिया हुआ पहिले का तमाम कर्जा निर्यत्न मिल रहा हो, फिर भी यदि उस कर्त्ता मनुष्य को जान मिल जाय कि खेत काटने और रुपये लेने से कोई प्रबल दुश्मन खड़ा होकर मेरा शरीर नष्ट कर डालेगा- तो जो समझदार मनुष्य है वह उन्हे त्याग के भाग कर प्राण रक्षा करेगा ॥ ३४ ॥

कवित्त

राज कोष देश महारानि मीत आदि सब,
　　छिन छिन अपनाय अलग न होत है ।
भाँति भाँति उनही की रक्षा अरु पालन मे,
　　दुख सुख ध्यान तजि ताहिको बचोत है ॥
पर जब आप ही को प्राण घात मौका देख्यो,
　　सब तजि भागि के ही प्राण ठहरोत है ।

को काट डालते, इसी प्रकार थोड़ा शुद्ध व्यवहार बन्धन लेकर सर्व बन्धनो का त्याग किया जाता है ॥ ३० ॥

स्वरूप बोध इच्छा रहित, सकल कामना हीन ।
तेहिमें करै निवास जो, अलग वासना कीन ॥ ३१ ॥

टीका—१—स्वरूप में इच्छा नही है, क्योंकि इच्छा का उलट-पलट कर दिया जाता है । २—इच्छा इन्द्रियों द्वारा देख-सुन भोगकर ही बनती है । ३—तिन इन्द्रियो के भोगो का यदि त्याग कर दे तो वह इच्छा नष्ट हो जाती है, किन्तु स्वय जीव बना रहता है । ४—विदेशी या कोई भी वस्तु जिनका इन्द्रियो द्वारा दर्शन भास नही किया गया, तो उनकी इच्छा नही सताती । ५—जितनी इच्छायें उठती है, वे निज स्वरूप के बाद होने से दृश्य भास मे आती है, छोड़ने से छूट जाती है । इसी हेतु स्वरूपबोध सर्व इच्छा वासना से रहित पद है । उस स्वरूपबोध मे जो सत वैराग्यादि रहस्य द्वारा निवास करते है, उनकी जन्म-मरण बन्धन प्रद वासनायें ध्वस हो जाती हैं । अथवा वे उन्हे त्याग देते है । अब उन्हे जन्म-मरण नही ॥ ३१ ॥

जग सुख सब जेहिको मिलै, तबहुँ न इच्छा पूर ।
जेहि उतपति तेहिसे भई, ताहि मिले कस दूर ॥ ३२ ॥

टीका—अच्छे से अच्छे देखने को रूप, अच्छे से अच्छे स्वाद लेने को षटरस व्यंजन, अच्छे सुगन्धित इत्र-तेलादि द्रव्य, भाँति-भाँति के मोहक गाना, मनोहर स्त्री, तोषक-तकिया कोमल गद्दी आदि स्पर्श सामग्री, गज-बाजि आदि वाहन, विजय आदि मन अनुकूल सर्व भोग सुखसाज जिसे सब कुछ प्राप्त है, तो भी किसी की इच्छा पूर्ण नही होती देखी जाती । पूर्ण होना तो दूर है, अग्नि-पेट्रोल न्याय विशेष भोग सामग्री से इच्छा प्रज्वलित हो जाती है । भला ! जिन इन्द्रियो की विषय सामग्रियो के भोग से इच्छा बनी है, उसी के भोगने से

अन्दर-बाहर छोड़ने से ही अपने आप शेष मुक्त रहेगा, अन्यथा नही। जब तक दूसरे कर्त्ता, नाना लोक वास, आनन्द, चराचर विश्वरूप, जगत विहार तथा मनोमय चिताओ, काम-लोभ, मान, सुख प्रियता, जड़ासक्तियों को लिये बैठा है, तब तक जानिये मुक्ति से हाथ धोये बैठा है ॥ ३६ ॥

प्रश्न—सर्वस्व का त्याग कैसे हो ?

उत्तर—इसे बन्ध मोक्ष शतक प्रसग छ' वैराग्य-मोक्ष प्रतिपादन मे सविस्तार देखिये ।

रक्षक राखै ताहिके, भक्षक देय निकारि ।
जेहि में चिंता फिक्र भय, तेहि को दिलहिं विसारि ॥ ३७ ॥

टीका—मुक्ति का स्वरूप निर्वासना होकर स्थिर रहने मे जो रक्षक-सहायक होवे, यथावत शुद्ध साधु भेष, शुद्ध आचार, शुद्ध भाव, शुद्ध सग आदि सव रक्षक अगो को गहे और तिनमे मुक्ति के बाधक व्यवहार आरम्भो को त्याग करे। जिस कार्यो के परिणाम मे चिता की बढती हो, सत्सग, सद्ग्रंथ, उपासना करने का अवसर ही न मिले, हरदम जगत-विषयो की फिक्र सवार रहे, नित्य भयभीत रहना पडे, चिन्तारूप रोग बढे, खैचा-खैची मचे, उन क्रिया और इच्छाओ को अत करण से भुला देवे, कूडा-करकट के समान बुहार के फेक देवे ॥ ३७ ॥

प्रसङ्ग ३—बोध ठहराव से दुर्गुण कृत कर्मो का नाश,
सत्सङ्ग सहायक धर्म विधि

धन जन तन सुख हेतु को, जो कीन्हे अघ भूल ।
पारख पाये भूल मिटि, छूटि क्रिया मन मूल ॥ ३८ ॥

टीका—सोना, रुपये, पैसे आदि धन और जन समाज हमारी तरफ बहुत हो जायँ, इन्ही धन जन को तन-इन्द्रिय सुख आराम की चीजे समझकर इन्ही के लिये पाप समूह जो भूल वश करते रहे,

प्राण हूँ से भारी दुख प्राण हूँ को त्याग चाहै,
मनहूँ को रोकि कर ज्ञान सो समोत है ॥

दोहा—यहि अनुभव करि सब बिलग, दृश्य-भास दुख रूप ।
उलटि लक्ष्य निश्चय क्रिया, स्वतः मुक्त पद भूप ॥

हानि लाभ को मानि कै, बैर प्रीति में लाग ।
मुक्ति भूमिका छोड़ि कै, मन के पाछे भाग ॥ ३५ ॥

टीका—सदाचरण युक्त बोध-वैराग्य मे तत्पर होते हुये को न कुछ हानि है न कुछ लाभ है, न कोई वैरी है न कोई प्रेमी । फिर भी उसे लडकर जीतूँ, उससे विद्या, तर्क, धन, यश मे आगे बढ़ूँ, अमुक पर शासन करूँ, इतना धन-माल एकत्र करूँ, आगे शरीर सुख मिलता रहे इत्यादि साधु या मुमुक्षु दशा मे परमार्थ भेप धरूँ, नाम के ओट से स्वार्थ सम्हाल मे ही पड़ के किसी मे हानि और किसी मे लाभ निश्चय करके कही वैर वश पचने लगा और कही स्नेह के झगडे-रगडे मे लग गया । हानि कृत द्वेप मे तो वैर-घात, उखाड-पछाड, निन्दा-बकवाद बदला शासन-ताड़न, कुटिल-कठोरता से वर्तने लगा और लाभ कृत अनुकूल की ममता मे तिसकी रक्षा-पालन का सब भार लेकर नाना व्यापार-व्यवहार आरम्भ कर-करके दौडा-दौड़ी मचाते हुये प्रीति-वैर के अध्यास मे जकड़ गया, तो जानो वह मुक्ति भूमिका साधु या मुमुक्षुदशा, स्वरूपस्थिति के सत्साधन सत्सग-विवेक वैराग्यादि सब सरल मग छोड़कर मिथ्या मन के बहकावे मे आकर मन ही के पीछे दौड़-दौड कर पचने लगा ॥ ३५ ॥

मुक्ती ऐसी चीज है, सबको छोड़ होय ।
जब तक राखै अन्य को, तब तक तेहिको खोय ॥ ३६ ॥

टीका—मुक्ति ऐसा पदार्थ है कि स्वय शुद्ध मुक्त स्वरूप पारख के अलावा जो कुछ मन इन्द्रिय गोचर होता है उन सब का अध्यास

होता है। तिसी सूक्ष्म बीज अध्यास से पुन शरीर निर्माण होता है। जो शरीर इस जीव के लिये त्रयताप से तपाने वाला उपाधि पूर्ण है। सब झगड़ा सब भार उसी से तो जीव को सहना पड़ता है। "या काया बन्धन दुर्मति दुर्गुण खान" ॥ ३९ ॥

उलटी समझ से जो किया, सीध समझ से छूट।
छूटे भयो अभाव तेहि, जो पूरब मन मूठ ॥ ४० ॥

टीका—उल्टी समझ से जो क्रिया की जाती है, वही ठीक समझ होने पर छूट जाती है। यथा—

"दिग्भ्रम भयो जहाँ तहँ भटकै। रस्सी सर्प पीटि भय लटकै ॥
ठूँठ चोर अथवा मृग नीरा। स्वप्न सृष्टि कौहट मे भीरा ॥
जब सब भूल मिटी भ्रम गयऊ। जागृत होइ बिपरीति न ठयऊ ॥
मृग मछरी पाँखी भ्रम जैसो। निज स्वरूप को भूलि अनैसो ॥
बिषयन मे सुख मानि अपारा। भ्रमत रहत नित जीव बिचारा ॥
काम्य शुभाशुभ कर्म के घेरे। लत आदत बश दुख घनेरे ॥
एते महँ श्री गुरुपद भेंटे। पारख पाय भूल सब मेटे ॥"

पूर्वोक्त अज्ञान कृत उल्टी समझ से जो उल्टी क्रिया होती रही अर्थात विषयासक्ति हेतु—अनीति, कपट, छल, चोरी, हिंसा, प्रमाद, झुठाई तथा सकाम शुभाशुभ सम्पूर्ण असत कर्म तभी छूट जाते है जब शुद्ध समझ स्वरूप ज्ञान दृढ विवेक-वैराग्य की प्राप्ति होती है। जो पूर्व मे कर चुका था और जो अब कर रहा है, सो सर्व दुखदाई कर्मो से प्रियता नष्ट हो जाने से अन्दर बाहर तिसका अभाव हो जाता है। इस प्रकार जो पहिले अज्ञान दशा मे मानन्दीयुक्त सकाम कर्म और तिसके जड़ाध्यास को मर्कट-मूठी न्याय सुख मान के पकड़ रक्खे थे, ठीक-ठीक दुखपूर्ण जगत को जानते ही और अपने स्वरूप की नित्य तृप्तता का अपरोक्ष ज्ञान होते ही पूर्व मानन्दी की मूठी (पकड) त्याग हो जाती है ॥ ४० ॥

जैसे—छल कपट जबर्दस्ती अन्याय आदि सो सब अविनाशी स्वरूप की परीक्षा पाने से भूल और भूल जनित असत कर्म छूट जाते है। जिसकी मन कल्पित भ्रम मात्र सुख की आशा ही जड थी, जब मूल ही नही तो शाखा कहाँ ? जब सुख भोग की कामना ही नही तो उसके लिये असत कर्म क्यो किया जाय ? ।। ३८ ।।

सम्वाद—एक सत्सगी युवक मनुष्य से दूसरा अज्ञानी फैसनबाज मनुष्य सलाह करता है कि हे मित्र ! अमुक धनी के यहाँ सहज ही चोरी करके धन लावे । सिनेमा देखा जाय। खूब अलबेला फैसन बनाया जाय। जुआ और खूब मद्यपान करके मदमस्ती का सुख लूटा जाय । किसी मनोहारिणी का दिल रिझाकर खूब आनन्द लिया जाय । इसके लिये कोई पार्टी-बन्दी किया जाय । क्यो बेकार जिन्दगी गुमा रहे हो ? इन भयकर वचनो को सुनकर समझदार युवक ने कहा—क्षमा कीजिये ! रोग के लिये दवा होती है। मुझे इन बातों की इच्छा रूप रोग ही नही। दूसरे आपकी कथित क्रियायें तो मनोमय के लिये अग्नि में पेट्रोल झोकने वत अशान्ति-मूल है। जिसमें हानि, ताप, दुर्गुण, बन्धन, चिन्ता की वर्षात है ऐसी क्रिया हम नही करते, न आप कोई भी करे। स्वरूप नित्य तृप्त है, देह यात्रा शुद्ध रीति से समाप्त हो जाता है। विषय सुख कल्पना मात्र ही है, तिसका तो त्याग ही मुख्य पुरुषार्थ है और भी विस्तरित शिक्षा सुनकर वह भी सन्मार्ग मे लगने लगा। वह सर्व दुराचरण और जन समूह राग से पृथक हो गया। अत पारख-दृष्टि से सर्व भूल सम्बन्धी क्रियाये त्याग हो जाती है ।

कर्म किहे तेहि हेतु जो, मन इन्द्रिन सुख साध्य ।
तेहिते तन निर्मित भयो, जीव के हेतु उपाध्य ॥ ३९ ॥

टीका—अज्ञान हालत मे शुभाशुभ जो कर्म किए जाते है, वह सारा पुरुषार्थ धन, जन, मन इन्द्रियो के सुख सिद्धि के लिये ही

सुनना सत्सग है । इनको सेवन करते रहने से हृदय पवित्र बन के कल्याण योग्य सद्बुद्धि प्राप्ति होती है । जो धर्म, भक्ति, सतसंग सहित सद्बुद्धि धारण न किया जाय, तो स्वार्थिक-पारमार्थिक कोई भी कार्य पूरा नही होता । जहाँ भी रहे, जो कुछ कार्य करे, तहाँ ही यथार्थ धर्म बुद्धि विना रुकावट बिघ्न वाधा उपस्थित होते रहते है और कल्याण तथा सुख-शाति-विरोधी दुर्बुद्धि-दुराचरण धारण हो जाते है । याते मानुष के दया-क्षमादि धर्म और सद्गुरु की भक्ति तथा सत्य न्याय ग्रथों की कथा-वार्ता सुनते-गुनते रहना चाहिये, जिससे यथार्थ बुद्धि वनी रहे ॥ ४२ ॥

शब्द—गहौ मन धरम सदा सुखदाई ॥ टेक ॥
धरम गहे बिन श्वान सर्प सम, भाईहि भाइ सताई ॥ १ ॥
रावण कंशा औ दुर्योधन, बिना धरम दुख पाई ॥ २ ॥
प्रेम सहित गहि शील क्षमादिक गुरुपद नाव चढाई ॥ ३ ॥

सदबुद्धी गुण ग्राह्यता, देखै अपनी ओर ।
क्या क्या दिल घर काम हो, स्ववश विवश का जोर ॥ ४३ ॥

टीका—सत्सग से सद्वुद्धि यथार्थ निश्चयता धारण करे, गुण-ग्राही बने । अपनी समझ और कर्तव्य को योग्यायोग्य का विचार करे, अयोग्य को छोड़े, योग्य को गहता चले । देखै अपनी ओर कि अत.करण रूप घर मे क्या-क्या काम हो रहा है ? कौन-कौन सी शुभाशुभ वासनाये विशेष उठती है ? इस पर ध्यान देवे । कौन स्मरण और क्रिया के वश मे मै नाचता हूँ ? जितना मन-इन्द्रियो के खिचावरूप विवशता का जोर देखे उतना ही खूब जोश भर के साधन-सयम करे । सत्सग-सद्ग्रथ, विवेक-वैराग्यादि मे खूब डट के परिश्रम करते हुये मन इन्द्रिय वशिता का जोर मिटा डाले ।।४३।।

शब्द—अपने घर का हाल समुझि सुख पाओ ।। टेक ।।
घरै संवारत दिन न बिताओ, निजहू काज वनाओ ।। १ ।।

ज्ञान अग्नि से दग्ध सो, जो तिन भयो अभाव।
नश्यो वृक्ष फल फूल सब, जो निज से बिलगाव ॥ ४१ ॥

टीका—वे अज्ञान कृत कर्म जो ऊपर कहे गये है, तिनको ठीक-ठीक पारखदृष्टि से अदर-बाहर त्याग कर देना ही ज्ञानाग्नि से कर्मो का दग्ध होना—जल जाना है। जैसे अग्नि बीजाकुर को भस्म कर देती है, तैसे ही जड तत्व, प्राण-पिण्ड और सूर्य-चन्द्र, वायु आदि ब्रह्माण्ड से मै परीक्षक सर्वथा भिन्न अखण्ड सत्य नित्य प्राप्त हूँ। विषयानन्द-ब्रह्मानन्दादि सर्व भासवृत्ति मुझ शुद्ध पारख से पृथक भ्रम मात्र है, क्योकि मेरे स्वरूप मे लक्ष, वृत्ति-सूरति, आनन्द, दुख-सुख, शून्य, चंचल आदि अवस्थाये कुछ नही। मै सर्व वृत्ति-गति का पारखी पारखरूप, ऐसा दृढ निश्चय करके इस निश्चयता की एकरस अभ्यास वृत्तिरूप प्रबल अग्नि द्वारा असतवृत्ति जल बल के खिचाव रहित भस्म हो जाती है। इच्छाओ और आसक्ति-कर्मो मे न खिचना ही अध्यास भस्म होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है। फिर तो अध्यास बीज दग्ध होने से अकुर वृक्षरूप देह धरना-छोड़ना त्रिविधताप रूप फूल-फल कभी नही हो सकता। जब अपनी सत्ता न देकर जीव सब अध्यासो को ज्ञानवज्र से विलग कर दिया तो वे अध्यास किसके बल से पुष्ट रह सकते हैं ? जड़ मे तो अध्यास होता नही। चेतन ही देहोपाधि से भूल वश ग्रहण करता था। सो भूल के त्याग होने से अब चेतन आप-आप मे स्थिर हुआ। फिर अब विजाति अध्यास का कहाँ ठेकाना ? जन्म-मरण भी अब कैसे होवे ? ॥ ४१ ॥

धरम भक्ति सतसंग करि, धारण हो सदबुद्धि।
तेहि बिन होय न काज कोइ, जहाँ रहे तहँ शुद्धि ॥ ४२ ॥

टीका:—भूखे-प्यासे, गरीबो का पालन, यथायोग्य सेवा, हितकर स्वभाव से साथियो मे बर्तना ये धर्म मार्ग है। सतगुरु की तन, मन, वचन से सेवा-आज्ञा पालन करना भक्ति है। निर्णय कथा कहना-

तव तक नही प्राप्त होता जव तक सुकृत पुण्याचरण करके अत -करण पवित्र न किया जाय । अत.करण पवित्र ओर ज्ञान-विवेक को वलिष्ठ वनाने के लिये मानुष धर्म का विस्तार तथा नम्रता पूर्वक वृद्धि पुष्टि करना चाहिये। स्वय धर्म मे चलना दूसरे को चलने का इशारा देना चाहिये ॥ ४५ ॥

साधु संग गुरुभक्ति करि, धर्म यथारथ जान ।
छूटै वन्धन जीव को, पाय स्ववश स्थान ॥ ४६ ॥

टीका—विवेक-वैराग्य तत्पर सतो का नित्य कथा-वार्ता सुन के सत्संग करते हुये सद्गुरु की सेवा भक्ति-उपासना मे मन देते हुये मनुष्य के यथार्थ शील-क्षमादि गुण लक्षण धर्म को जानना चाहिये । जिस मानुष गुण को जानकर ग्रहण करते ही जीव का सम्पूर्ण भ्रम वन्धन रूप गढ टूट जायगा और वह स्ववश भूमिका पारख स्वरूप निराधार स्थिर हो रहेगा ॥ ४६ ॥

प्रसङ्ग ४—एकरस स्वरूप बोध ठहराव से पूर्व सस्कार निष्फल

वहुत काल तप यज्ञ करि, घूमें तीरथ भूमि ।
स्वरूप बोध भा ताहि जब, अति अभाव पुनि घूमि ॥ ४७ ॥

टीका—अबोध दशा में ऋद्धि-सिद्धि स्वर्गादि हेतु वहुत दिनो से हठयोग राजयोगादि रूप तप और विविध यज्ञ तथा चार धाम अरसठ तीर्थो की परिक्रमा आदि करते रहे । अब स्वरूप विवेक प्राप्त कर उलट के देखा तो विषय सुख स्वर्गादि कामना दुखपूर्ण मिथ्या जानने मे आया, जिससे तिन सबो का अति अभाव कर अन्दर बाहर त्याग हो गया। यथार्थ मार्ग रूप अमृत प्राप्त होने से झूठे कर्मो में मन क्यो दौड़ने लगा ॥ ४७ ॥

छन्द

काया है काशी ज्ञान गगा विश्वनाथ स्वजीव है ।
धन कोप गृह मे मिल गया क्यो दौड़ धूप मचीव है ॥

मन इन्द्री सब तत्त्व कार्य लखि, तुम चेतन बिलगाओ ॥ २ ॥
है जजीर जेल मन दुर्गुण, तेहि को तोड़ि रहाओ ॥ ३ ॥
लखि विशाल अवसर हित साधौ, गुरु गुण प्रेम से गाओ ॥ ४ ॥

विवश मरण से अधिक लखि, स्ववश हेतु परियत्न ।
निशदिन ततपर याहि में, और तजै सब यत्न ॥ ४४ ॥

टीका—विषय इच्छा की खैंच मे खिच जाना यह मृत्यु से भी अधिक दुख जान के इन्द्रिय-मन जीतकर स्ववश स्वतत्र होने के लिये सब प्रकार परिश्रम करे। आठों पहर इसी कार्य मे सावधान जुटा रहे और जगतप्रसिद्धि, प्रचारभावना, सबको अपनी तरफ खीचने आदि मान धन सेवक वृद्धि की भावना, विद्या वाचाली-तर्क सिद्धि भावना, सबको हराने की भावना, देह सुख की भावना और तिन्हो का सब पुरुषार्थ त्याग कर अतिम पूर्ण सिद्धि विजय लाभ हेतु यही वैराग्य मार्ग गहै जिससे कि सब आदत विषयासक्ति त्याग होकर नित्य स्वरूप विचार मे निरतर स्थिति बनी रहे ॥४४॥

स्ववश रहे बिनु एकरस, कोइ कारज नहिं सिद्धि ।
सो न होय बिनु सुकृत फल, यहिते धर्महिं वृद्धि ॥ ४५ ॥

टीका—मन इन्द्रियो को जीतकर एकरस सदैव स्ववश स्वतंत्र जब तक ठहराव नही दृढ होगा, तब तक मुक्ति तो मिल ही नही सकती, बल्कि जगत का सुख भी नही मिल सकता। यहाँ तक कि मन इन्द्रिय लोलुप मनुष्य की दशा उस पाँखी-माँखी वाली हो जाती है, जो सीरा और दीप मे लसफस होके मर जाती है। मन वश प्राणी अपने को अपने काबू मे न रखकर क्षण-क्षण काम क्रोध मद मत्सर के हाथ बिक के क्षण ही मे ऐसे भयानक कार्य कर डालते है कि जिसका फल आयु पर्यन्त रो-रोकर भोगते नही सिराता। एव मन इन्द्रिय दुर्गुण के वश रहने से स्वार्थ-परमार्थ कोई कार्य पूर्ण नही होता। मन इन्द्रिय काबू करके श्रेष्ठ स्ववशतारूप फल

कार परवश, दौड़-धूप, आवागवन, चितादि यहाँ तक कि सर्व आपदाओ के स्वरूप ये दुष्कर्म ही है। इस प्रकार दृढ ज्ञान हो जाय और वह तिससे पृथक हो जाय, सब दुष्कर्म छोड़ देवे ॥ ४९ ॥

साधु संग सद्ग्रन्थ में, जो तिन पाय निवास।
दिन दिन बाढ़ा प्रेम जो, पाय स्वरूप सवास ॥ ५० ॥

टीका—आगे उसे यथार्थ सतो का सत्सग मिल जाय और बोध-रहस्य प्रेरक सद्ग्रंथ भी प्राप्त हो जायँ, वह सत्सग सद्ग्रथ मनन मे ठहराव बना लेवे और दिनो दिन सत्सग-सद्ग्रथ मे साहस-श्रद्धा बढते ही जायँ, ऐसे साधन से स्वरूपज्ञान को पाय स्वरूपस्थिति के पुरुषार्थ ही मे पूर्ण विश्रान्ति की प्राप्ति कर लेवे और इसी मे नित्य मग्न रहे ॥ ५० ॥

बहुत काल तेहि में गयो, दृढ़ता पूर स्वरूप।
जो छूटै तन भाव यहि, कबहुँ न दुख के कूप ॥ ५१ ॥

टीका—जो ऊपर साधन बोध-धारणा बताये गये है, उसी में अभ्यास करते-करते उसे बहुत दिन पारखदृष्टि की एकरस धारणा बनाते-बनाते व्यतीत होवे तो ऐसा करते-करते स्थूल-सूक्ष्म सर्व बन्धनो से लक्ष्य हट के अपना आप स्वरूप ही स्वरूप स्थिर रहने की अतिशय पुष्ट धारणा प्राप्त हो जाय, बस इसी भाव मे जो उसका शरीर शात हो जाय, प्रारब्ध भोग का अंत हो जाय, तो कभी किसी हालत मे भी जन्म-मरण गर्भवास गढ्ढे मे पुनः नही पड सकता। तहाँ खैचने वाली सन्मुख तत्क्षण जगत वासना कर्तव्य है नही और शरीर शात होने पर वासनाये उठ नही सकती। इस हेतु गुरुपदनिष्ठक का गमनागमन नही होता ॥ ५१ ॥

जीवहि जेहि मंजूर है, सोई रहै तेहि तीर।
जानि ठगी खेद्यो जिसे, ताहिं मिलै नहिं धीर ॥ ५२ ॥

टीका—जीव सब कर्तव्य का कर्त्ता है। वह जिस इच्छा वासना,

है द्वारिका दाया व मन ही शुद्ध मथुरा मानिये ।
यो तीर्थ सब सद्गुण निकट तेहि पर्शि पाप नशानिये ॥ १ ॥
सर्व विषयासक्ति तज यहि तप यतन करि पाइये ।
शुभ यज्ञ यहि समता सहित प्रारब्ध भोग विताइये ॥
यहि श्रेष्ठ व्रत सयम विविधि विधि साँच रहि सुखदाइये ।
यहि भाँति साँचो जीमि व्यजन भूँख भर्म भगाइये ॥ २ ॥

पहिले तीरथ यज्ञ तप, पाछे इच्छा शून ।
कैसे तेहिकी वासना, पाय स्वरूपहिं भून ॥ ४८ ॥

टीका—पहिले कोई अन्य दैव गोसैयाँ मानकर बैकुण्ठ आदि विविध धाम प्राप्ति की आशा से हरिद्वार, वद्रीनाथ, काशी आदि तीर्थ और यज्ञ, हठयोग, तपस्या आदि सब करते रहे । परन्तु अब ज्ञान हुआ कि जैसे प्रकाश न हो तो कोटियो उपाय से अधकार भाग नही सकता, तैसे पारखबोध बिना कोटियो तीर्थाटन यज्ञादि कर्मो से अविद्या ग्रन्थि टूट नही सकती और अज्ञान त्याग भये बिना जीव को अटल पारख स्थिति मिलती नही । ऐसा समझकर तीर्थादि की इच्छा कामना नष्ट हो गई । भला ! वह पूर्व वासना अज्ञान काल की अब कैसे ठहर सकती है ? क्योकि जिसकी आशा से सब करते थे, वह स्वर्ग सुख और विषय सुख बिल्कुल मिथ्या ठहरा ओर सत्य स्वरूप अपना ही ठहरा, सो अपने स्वरूप को जान-मान कर सर्व बानीजाल की मिथ्या वासना नष्ट हो गई ॥ ४८ ॥

चोरी हिंसा लूट कर, पाछे जेहिको ज्ञान ।
पूरा दुख अनुभव भये, जो तेहि से विलगान ॥ ४९ ॥

टीका—कोई मनुष्य चोरी करता हो, मास भक्षण एव जीव हिसा करता हो, जबरन धनादि लूटता हो, फिर उसी मनुष्य को अपनी भूल का पीछे से ज्ञान हो जाय कि ये सब दुष्कर्म अब और आगे तीनो काल मे दुख दायक है, अपमान, तृष्णा जेल-मार-दुत-

पारख प्राप्त करने से सर्व कल्पित सुख मानन्दी नष्ट हो जाती है। खानि यानी सर्व मानन्दी बीज नष्ट हो जाने पर गर्भवास मे आने-जाने का कारण नही रह जाता। जव सर्व अध्यास हटा के आप ही आप स्थित हो गया सो कहाँ आवागवन ? कहाँ जड़ग्रन्थि ? जगत-वृत्ति द्वारे-आवागवन हो रहा था, तहाँ स्वरूपवृत्ति पुष्ट करते ही सदा अचल ॥ ५४ ॥

संचित औ क्रियमान गत, प्रारब्धी सो दूर।
बरबस परी बेगारि जो, ताहि भोग करि पूर ॥ ५५ ॥

टीका—तीन कर्मो को वधनरूप जानकर पारखी तीन कर्मो से पृथक है। इसका हेतु यह है कि सुखाध्यासरूप संचित-बीज-बोधाग्नि से नष्ट हो गया। क्रियामान अभाव द्वारा स्वरूप स्थिति के पुरुषार्थ से नष्ट हो गया। फादिल प्रारब्धि भोग भी त्यागने योग्य दुख बन्धन जानकर त्याग हो गया। रही देह की अदृश्य प्रारब्ध—खान पान स्वाँसोच्छ्वास और अत.करणरूप सम्बन्ध जो हठात् पूर्ववेग से सन्मुख है उसकी भी कोई चाहना नही, तिससे भी दृष्टा पारखी न्यारे है। परन्तु घड़ी-कूक वत जब तक प्रारब्ध है तव तक बेगार भरते हुये नैराश्यतायुक्त प्रारब्ध भोग भोग के अन्त हो जाता है ॥ ५५ ॥

छूटि गया बन्धन प्रबल, पारख के परताप।
अब तौ करना कुछ नहीं, निशदिन वह ही जाप ॥ ५६ ॥

टीका—पूर्वोक्त गुरु पारख के तेज-बल से, अनन्त काल का जबर्दस्त जड सम्बन्ध रूप त्रिविध कर्म बन्धन नष्ट हो गया। अब आगे की आशारूप क्रिया कुछ नही बाकी है। जो कुछ प्राप्त करने की, जानने-मानने मिलने की, यहाँ तक कि जो कुछ आशामय भावनायें उठती है, वह सब स्वरूप मे नही। सब संकल्पो का द्रष्टा होकर सकल्पो मे तदगत न होने से मै सदा चैतन्य स्वरूप नित्य

क्रिया मे लाभ सुख देख कर उसे धारण करेगा, वही वासना व क्रिया तिसके समीप रह सकती है और जो धारण नहीं करेगा तो वह वासना क्रिया उसके समीप रह ही नही सकती। पूर्व धारण की हुई इच्छा-क्रिया की ठगाई भली विधि जानकर तिस इच्छा-क्रिया को डाल के पुन धीर-वीर पुरुष इच्छा को बल नही देते। फिर तो वह इच्छा-क्रिया ठण्ढी पड कर स्वरूपस्थित रहनहार पुरुष को कदापि वह वासना नही पकड़ सकती। 'कहहिं कबीर ठग सो मन माना, गई ठगौरी जब ठग पहिचाना ॥ ५२ ॥

बाहर रहै न वासना, वह तौ दिल के बीच।
आना जाना तेहि कहाँ, ग्रहण त्याग दिल बीच ॥ ५३ ॥

टीका—सचित वासनाये कही बाहर रहती नही। जन्म-जन्म और वर्तमान के समग्र पच विषय पट पशु धर्मो व अष्ट मदो की वासनाये अत.करण मे सुख मानन्दी के सहारे ठहरी हुई है, वे वासनायें कही बाहर थोडे बैठी रहती है कि जो कही से शिर पर कूद पड़े ? बाहरी तरफ से वायु के समान वासनाये गमनागमन नही करती, क्योकि उन वासनाओ को सुख मानकर ग्रहण करना और दुख जानकर छोड देना ये दोनो बाते हृदय मे जीव ही करते है। यह सबको प्रत्यक्ष अनुभव है। साराश यह कि अज्ञान-आसक्ति से वासना ग्रहण है, अज्ञान-आसक्ति छोड़ देने से वासनाये नष्ट हो जाती है ॥ ५३ ॥

सब मानन्दी भूल से, पारख पाय नशाय।
आवागमन को हेतु नहिं, जो निज ही टिकि जाय ॥ ५४ ॥

टीका—अपने सत्य स्वरूप को न जानना रूप भूल से ही जड विषयो मे सुख मानन्दी ईश्वरादि भास तथा विकासवाद आदि अदृश्य लोकादि की सर्व मानन्दी दृढ हो गई है। "है सुख निज स्थिरता केरा। मानत भूलि के विषयन हेरा ॥" परन्तु स्वरूप का

प्रसङ्ग ५—अखण्ड प्रकाश मे सर्वथा अन्धकार का अभाव

ईश ब्रह्म औ देवता, गण भूतन को शोर।
ये सबहीं नाश्यो तबै, मिट्यो भरम जब घोर॥ ५८॥

टीका—सब का मालिक दयालु, न्यायक, सर्व व्यापक, सर्व शक्तिमान, प्रेरक, धर्मवान ये षट लक्षण युक्त ईश्वर माना गया है। ऐसी दशा मे पृथक-पृथक जीव अपने-अपने मन अनुसार क्यो बर्त रहे है? ईश्वर के वेद अडर मनसाय के उल्टा विविध विरोधी मत पथ ग्रथ क्यो चालू है? नाना पाप क्यो कर रहे है? जो ईश्वर ही सब करवाता हो तो अनेक जीव पाप-पुण्य के फल दुख-सुख के भागी क्यों हो रहे है? प्रथम पाप बढावे फिर अवतार लेवे, फिर लीला करके गवाय-गवाय सबको तरावे, इससे तो अच्छा पहिले ही से पाप रोग न बनावे तो सहज ईश्वर की दया प्रसिद्ध हो। ऐश्वर्य का नाम ईश्वर है, जड़ तत्त्व और देहधारी मनुष्य पशु आदि के गुण धर्म छोड़कर न्यारा ईश्वर कहाँ है। जीव ही की प्रभुता को देखकर भगवान ईश्वर आदि विशेषण दिया जाता है। राम कृष्णादि के जड़ देहो मे प्रकाशक साक्षी अनादि चेतन जीव आप-आप रहा। इन हेतुओ से जड़ और चेतन से पृथक कोई भी कर्त्ता नही है। पुन जीव ईश भेद रहित एक चेतन ब्रह्म सबसे वृहद स्वरूप व्यापक माना गया। सर्वत्र एक अखण्ड मे बध-मोक्ष, गुरु-शिष्य, आवागमन जो हो रहा है, वह न होता तब तो अद्वैतवाद ठीक होता। अदृश्य अनेक स्वर्गादि लोको मे गणेश महेश रमेशादि देव माने गये। नन्दी-भृङ्गी, चौसठ योगिनि, भूत-प्रेत-पिशाच, बैताल, यक्ष, राक्षस, किन्नर आदि महादेव के साथ रहने वाले गण इत्यादि जहाँ तक अदृश्य वाणो का शोर (कोलाहल) जीवो ने कल्पि-कल्पि के थापा है कि जिनके गुण-धर्म-लक्षण का कही कुछ पता ही नही, सो सब कुछ हमारे हृदय में दृढ था। वह सब महा घोर भ्रम तम चूर्ण हो गया,

पूर्ण काम संतुष्ट हूँ, अब कहाँ आशा बाकी ? जो कुछ आशा है वह सब आशा की निवृत्ति के ही लिये है। अब सर्व मेरा स्थूल सूक्ष्म कोई कर्तव्य नही। नैराश्य निष्काम निर्भय निष्कर्तव्य निर्वन्ध निष्फिक्र होकर स्थिर रहना ही रात-दिन का मेरा यही जाप है। जिससे पुन बन्धन न गाँसे, स्वरूप निर्वन्ध रहे ॥ ५६ ॥

सवैया

जापक थापक न्यायक सर्व को आपको जापत क्यो न सवेरे।
पच विषय जड़ भास क्यो गाहत तू नित भासिक सत्य वडेरे ॥
फिक्र गहै नहि हो निष्फिक्र अचित अभय थिर युक्ति करेरे।
धाय मिलै सुख शात अक्षय तोहि मै नित तृप्त ये जाप जपेरे ॥

अनंत कल्प की ध्वंस तस, जैसहिं क्षण की एक।
मारग उल्टा सीध जस, गहै तजै भ्रम फेंक ॥ ५७ ॥

टीका—अनन्त काल की सचित वासनाये वर्तमान के दृढ एकरस पारख ज्ञानरूप अग्नि से उसी प्रकार नष्ट हो जाती है जैसे एक क्षण मे काम क्रोधादि वासनाये सन्मुख हुई फिर उनमे पूर्ण दुखदृष्टि द्वारा शम-दम अभ्यास बनाय पारख बल से सन्मुख मन वेगों को नष्ट कर दिया जाता है। सन्मुख कालीन वासना नष्ट के साथ ही तिसके समान संचित वासनायें सम्पूर्ण ध्वंस हो जाती है। जैसे दिशा भ्रम होकर उल्टा मार्ग चल रहा था, चाहे दूर चला गया हो या निकट ही हो, तव तक ठीक-ठीक दिशाओ का ज्ञान हो गया तो ज्ञान होते ही पूर्व भ्रम बुद्धि फेक कर जितना पूर्व मे उल्टा मार्ग चल चुका है उसकी मोह-ममता न रख के उल्टा मार्ग छोड़ यथार्थ मार्ग पकड़ लेता है, तद्वत—॥ ५७ ॥

दोहा—दाम कमी फल वहुत है, केवल मन को मार।
अविनाशी थिर नित्य तू, जन्मादिक दुख पार ॥

प्रश्न—क्या ईश्वर किसी को न मानना चाहिये ?

उत्तर—ईश्वर मानकर अहिंसा दया-धरम से बर्तना यह पक्ष भौतिकवाद से अनन्त गुना श्रेष्ठ है। अस्तु जिसे स्वरूप बोध जब तक न हो तब तक ईश्वर भगवान मानना धर्म विरुद्ध नही है। प्रकृति भिन्न किसी भी चीज का अस्तित्व का भान रहने से समय परे पर परखी सतो द्वारा स्वरूप ज्ञान के अधिकारी भी हो सकते है। याते शिक्षको को चाहिये कि जिनका कम सग पडे, प्रबल सत्य शोधन की जिज्ञासा न हो, उनके लिये ईश्वरवाद का खण्डन न करे। क्योकि ईश्वर न मानकर देह ही सत्य निश्चय करने वालो को स्वरूपज्ञान शोधन की इच्छा ही नही जगती। हाँ! भूत-प्रेतादि तामसी हिंसक देवी-देव की कल्पना सबको त्यागना ही चाहिये। इस हेतु इस कनिष्ठ पक्ष की अपेक्षा ईश्वरवाद मानना श्रेष्ठ है। अब जिसे जन्म-मरण के दुख से छूटने की इच्छा हो और यथार्थ सद् सिद्धान्त का शोधन करना हो और सद्गुरु भक्ति मे लगकर मनोनाश करना हो, तो वह स्वरूपज्ञान द्वारा ईश्वरादि भ्रान्ति का भी अन्त कर देवे। इस लक्ष से इस साखी में कहा गया है कि अपने चेतन स्वरूप का अपरोक्ष बोध प्राप्त होते ही सर्व अनुमान कल्पना की भ्रान्ति उड़ जाती है अत·—।

छन्द—जिसको न हो निज बोध जब तक ईश्वरादिक ध्यान है।
घोर रात्री पथ बिपे ज्यों दीप का भी मान है॥
जब सूर्य तेज प्रचण्ड हो निज परख बोध यथार्थ हो।
तब खेल ईश मिटाय कर सतसग लाभ पदार्थ हो॥

तीसरी कल्पना ही हाथ आती है। शीत उष्ण वर्षादि दिन-रात कियायुक्त जड तत्व है। जड तत्वो के पञ्च विपयो मे सनी हुई वृत्ति को प्रयत्न से छोड-कर पारख स्वरूप के यथार्थ बोध मे ठहरने से सर्व अज्ञान अध्यास आसक्तियाँ नप्ट हो जाती है, सोई बनाना चाहिये।

जव पारखी सद्गुरु से भेंट होकर आप ने सव जाल[1] परखा दिये ॥ ५८ ॥

१ टिप्पणी— **गजल**

कहाँ है भूत की खानी विचारो इसको हे भाई ॥ टेक ॥
दोहा—चुडइल चण्डी डाकिनी, भैरो आदिक भूत ।
कहुँ छाजे ना छाज कहि, यंत्र मंत्र भ्रम कूत ॥
कहो जड वै कि चेतन है दोऊ गुण छोडि क्या पाई ॥ १ ॥
जड को तो सवही लखै, चेतन स्व स्व आप ।
जड चेतन की शक्ति तजि, मिथ्या करस प्रलाप ॥
जगत अम्बा कहो फिर क्यो भला लरिकन क वो खाई ॥ २ ॥
विन इन्द्री स्थूल के, सुक्षम वायु सरूप ।
नेत्र आदि इन्द्री रहित, कैसे कार्य करूप ॥
विना स्थूल इन्द्री के सुनै देखै कहाँ भाई ॥ ३ ॥
नर पशु पक्षी उष्मजी, चारों खानि को छोड ।
प्रेत खानि पचई कहाँ, कैसे उल्टे गोड ॥
कहाँ दिन को छिपे सव वे नजर वो क्यो न फिर आई ॥ ४ ॥
रात दिनो मे देख लो, सव खानी परत्यक्ष ।
पूर्व कर्म देहादि को, वदल न सकते अक्ष ॥
भला कैसे वदल सकता निजी प्रारब्ध वपु भाई ॥ ५ ॥
जो आवत है तोहि पर, अकवक वकता प्रेत ।
तो प्रत्यक्ष निज देह धरि, क्यो नहि वलि को लेत ॥
चलावे हुक्म सव मिलि के जो देवी देव ठहराई ॥ ६ ॥
सर्व शक्ति कर्त्तार है, सव जन दुखिया वाल ।
मात पिता सव दोप क्षमि, क्यो न गोद ले पाल ॥
स्वयं चैतन्य थापक पर कहौ हो और को भाई ॥ ७ ॥
जो चाहो कल्याग निज, कल्पित सपना त्याग ।
प्रेम नेम सद्गुरु शरग, अभय करो अनुराग ॥
सकल भर्मो को नाशो तुम गुरू की शर्ण मे जाई ॥ ८ ॥

इस विचार से तो नर, पशु, अण्डज, उष्मज खानियां से परे कोई भूत-प्रेत देवादि खानि है ही नही । न इस ब्रह्माण्ड से पृथक अधर मे कोई अदृष्य देव लोकादि ही है । क्याकि गुग धर्मयुक्त प्रत्यक्ष जड-चेतन को छोडकर और

प्रथम निश्चयता ही नष्ट हो जाती है। जब उधर सुख निश्चयता[1]

१ टिप्पणी— त्रोटक छन्द

यहि कामहि काल कराल परम् । यहि शोषग रक्त कुबुद्धि करम् ॥ टेक ॥
सुविचार सुसंग विराग न रे । यहि चामहि चाम शृङ्गार धरे ॥
वहि पञ्च विषय घन जङ्गल मे । मद लोभ रु क्रोध अमङ्गल मे ॥
यहि कामिनि मोहि के बोध हरम् ॥ यहि कामहि० ॥ १ ॥
यहि पूतहुँ मोहि के और करै । वहि लाला गरे महँ लल्लू परै ॥
वहि मोद प्रमोद मे भूलि गये । शिशु रूप व बोलि मे फूलि गये ॥
वहि मृत्यु भये हा हा कार धरम् ॥ यहि काम० ॥ २ ॥
यहि सम्पति वाहि के कान किये ? तहँ लोभ बशी सब पाप लिये ॥
कहुँ धर्म दया नहि दान किये । मधु माखि बने अब जान दिये ॥
त्रय लोकहुँ पाय न पूर परम् ॥ यहि का० ॥ ३ ॥
वह मात कहै तुम पूत बडे । यह नारि कहै तुम स्वामि जड़े ॥
वह पूत कहै पितु मोसे चढे । अरु और कहै सब धन्य गढे ॥
बस वाहहि वाह की धूम मचम् ॥ यहि का० ॥ ४ ॥
वह साइन्स वेद बिकास रटे । वह सूरज चन्द्र को शोधि मिटे ॥
वह विश्व विजय सम राज्य जुरे । पर बाम नचावत बन्दर रे ॥
यह एकहि एक को मोहि गिरम् ॥ यहि का० ॥ ५ ॥
वनि श्वान अजा खर कामिनि मे । होय तप्त सदा विरहागिनि मे ॥
जिमि चेटा के पाँख से मृत्यु भई । त्यो मानि बडो मद ताप तई ॥
मदमस्ती भुली रुज वृद्ध घिरम् ॥ यहि का० ॥ ६ ॥
कहुँ हानि वडी कहुँ लाभ बडे । कहुँ सुक्ख बडे कहुँ दुक्ख चढे ॥
तहँ कौनिहुँ भाँति सुपास नही । क्षण ही क्षण वृत्ति जलाय रही ॥
वह तौ मन धार मे डूबि मरम् ॥ यहि का० ॥ ७ ॥
अब सूक्षम बीज ले अन्तस मे । नट स्वाँग रचे बहु जन्मज मे ॥
कहुँ शाति मिली नहि हाय अरे ! सब ओर से खैंचहि खैंच जरे ॥
पछिताव वड़ो अब काह करम् ॥ यहि का० ॥ ८ ॥
यहि घूमत घूमत चक्कर मे । एक संत मिले लखि दीन हमे ॥
सब जाल प्रखाय कुबुद्धि हरे । अब सर्व से खैंचि विराग भरे ॥
गुरुदेव जु प्रेम के पूज्य रहम् ॥ यहि कामहि० ॥ ९ ॥

इस प्रकार समझ के कुल कुटुम्ब की सारी सुख प्रियता नष्ट हो जाती है ।

जहँ तक ऐसी कल्पना, मनही गई नशाय ।
उदय बोध परकाश रवि, कैसे ये ठहराय ॥ ५६ ॥

टीका—जहाँ तक भूत प्रेतादि अदृश्य अनुमान कल्पना भास अध्यास अज्ञान हालत मे कल्पा गया था, वे सब वासनाये बोध काल मे नष्ट हो गईं । सर्व मानन्दी बडी कि सब मानन्दी का रचने वाला जीव बड़ा ? इस विचार से अनादि द्रष्टा-दृश्य का विवेक होते ही अन्य कोई ईश-ब्रह्म, देवी-देव, स्वर्ग-नर्क, यमगण, रुद्रगण भूत-प्रेतादि की मानन्दी नष्ट हो जाती है । जड़-चेतन गुण-धर्मयुक्त नित्य अनादि होने से नाना मत-पथ स्वतत्रता युक्त चलने से, ब्राह्माण्डिक शीतोष्णादि जड तत्त्वयुक्त होने से, पिण्ड कार्य मनोमय चेतन जीव के आधार होने से, जीवो का हानि-लाभ सोचकर प्रवृत्ति-निवृत्ति होने से, वासना सस्कार आधीन कर्म फल पुनर्जन्म इत्यादि होने से अन्य कोई सर्व शक्तिमान कर्त्ता नही है । अगर यह नर जीव सर्व कल्पना परख के छोडे, तो कोई भी शक्तिमान कर्त्तार इसे विवश नचाने को समर्थ नहीं । याते नर जीव सत्य ओर सर्व कल्पना असत्य, एव बोध प्रकाशरूप सूर्य उदय होते ही सर्व असत्य माननारूप अधकार ठहर ही नहीं सकता । इस रीति से भ्रम कृत अनादि अविद्या वानी-भास नष्ट हो जाती है । अब अनादि अविद्या कृत खानि जाल की आसक्ति कैसे नष्ट होती है ? उसे भी सुनिये— ॥ ५६ ॥

प्रथम साँच वैराग जब, मनुष्य हृदय परकाश ।
तजि प्रियता धन धाम की, तिय सुख निश्चय नाश ॥ ६० ॥

टीका—प्रथम जब जिसे निर्दम्भ सत्यता पूर्वक प्रबल वैराग्य हृदय मे विवेकयुक्त प्रकाश होता है, तब चाहे जितना धन हो, चाहे जैसा सुन्दर मकान रमणीक रमणी हो, सबके सुख को नाशवान अतृप्त कामना रोग वर्द्धक दुखपूर्ण जान के स्त्री आदि मे सुख की

सुखो से भी गया । संत की ऐसी वात से सत्सङ्गी अप्रसन्न हुआ । तब संत बोले—अकेले मे मेरी तरफ ही रुचि थी । दो मे उस स्त्री और कुछ माता-पिता की सेवा करता रहा । पश्चात वह भी पुत्रादि के मोह मे छूट जाता है । फिर अनेको मे तो नर-नारि दोनो हाय-हाय ही करते है । परमार्थ कहाँ ? इन बातो को समझ सत्सङ्गी प्रसन्न हो गुरु शरण गहा ।

चोरी हिंसा झूठ तजि, वर्णाश्रम कुल टारि ।
जुआ नशा औ नाच तजि, बहुतक लत निरुवारि ॥ ६३ ॥

टीका—अनादि काल की सुखासक्ति, बोध सयम से अवश्य नष्ट हो जाती है । इसका प्रत्यक्ष प्रमाण पूर्व मे वताया गया है । फिर भी वताते है–पहिले की पडी भई आदतें जैसे चोरी, परद्रव्य हरण, मास खाना या किसी जीव को सताना रूप हिसा और मिथ्या भाषणादि ये सव असत कर्तव्य स्वार्थ-परमार्थ में सदा ही आपदा देने वाले है । ऐसा समझ के सर्व छोड दिये गये तथा बोध भाव प्राप्त होने पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, हिन्दू, तुरुक या भेष, रेख, कुल, आश्रम आदि का भी अहकार मिथ्या जान के छूट जाता है । केवल शुद्धा-चरण पुष्टि हेतु शुद्ध लोक व्यवहार रखते हुये निर्मान रहा जाता है । जुआ खेलना, गाँजा-भाँग, बीड़ी आदि तमाम नशाये और वेश्या-भाँड़, नाटक-सिनेमा आदि देखना ये सब आदतें वृथा भार और वन्धन हर्जा-खर्चा, रोग-शोक उपाधिरूप जान कर नष्ट कर दिया जाता है ॥ ६३ ॥

अनादि काल से ये धँसा, बोध भये मिटि जात ।
शुद्ध बोध वैराग्य से, सब मानन्दी घात ॥ ६४ ॥

टीका—अनादि काल से कर्त्ता धर्ता देहादि भास सत्य मानने और राजसी-तामसी शुभाशुभ सकाम क्रिया या तमाम विषयासक्ति की वासनायें अंत करण मे पुष्टरूप से धँसी थी, वह आज मनुष्य देह

ही मिट गई तो तिसके त्यागने की क्रिया सहज ही होने लगती है ॥ ६० ॥

मात पिता सुत सुहृद जो, प्रिय तन भयो अभाव ।
देश विदेश न लखि अपन, मिट्यो सबन को चाव ॥ ६१ ॥

टीका—विवेक युक्त परमार्थ दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि देह सम्वन्धी जननी-जनक, स्त्री-पुत्र अपने सुहृद—मित्र आदि का मोह स्थिर नही। स्वार्थ रूप परिवर्तनशील राग-द्वेष काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय पुष्टक अहकार हेतु एव परमार्थ की ओर न वढने देने से सवको माया-मोह ही भवसागर रूप है। ऐसे वोध द्वारा ममता त्याग होती है। पुन' जो शरीर सबसे प्रिय है, उस को भी नख-शिख विकारी विविध रोग-शोक कृतघ्न मूल जानकर देह की ठाट-वाट राग-रंग फैसनवाजी सर्व प्रेमासक्ति त्याग दी जाती है। यहाँ तक कि अपना माना हुआ देश और अन्य विदेश एव विश्व भर के मिथ्या अभिमान का त्याग हो जाता है ॥ ६२ ॥

जहँ तक माना जो अपन, सुख निश्चय दिल वीच ।
वोध भये नाश्यो सवै, जो कुछ दिल का कीच ॥ ६२ ॥

टीका—जहँ तक अपने स्वरूप से पृथक जो कुछ पच विपय और कुटुम्व जाल तथा ब्रह्माण्ड दृश्य भास को मै-मेरी मानकर सुख हता दृढ निश्चय पूर्व मे किया गया था, सो मव सद्गुरु कृपा से वोध सहित वैराग्य भाव प्राप्त होते ही उक्त सर्व सुख मानना जो हृदय मे कीचड़ रूप मैल अनादि काल का जमा था, सो सव धोय वुहार के साफ हो गया ॥ ६३ ॥

सम्वाद—एक सत्संगी ने सत से कहा मेरी सगाई अव हुई ! सत—तू मेरे से गया। कुछ दिन वाद एक पुत्र प्राप्त किया यह सुनकर संत वोले—तू माता पिता से भी गया। फिर कुछ दिन के वाद कहा महाराज ! और लड़के-लड़कियाँ हुये। सत ने कहा—अव तू अपने

अबोध दशा में जीव जो, किये जहाँ तक कर्म।
सो सबहीं भोगन परे, जब तक मिटै न भर्म ॥ ६६ ॥

टीका—स्वरूप के अज्ञान काल मे जो पाप-पुण्य या राजसी, तामसी, सातसी कर्म नर जीव करते है, सो सबोका सस्कार टिककर काल कर्म त्रिगुणयुक्त सयोगानुसार क्रमश· भोग होते रहते है। यह प्रवाह तब तक बन्द नही होता, जब तक जड़ मूल से भूल—भ्रम का म्वरूप वोध द्वारा विनाश न कर दिया जाय। जब तक अध्यास बीज बोने की क्रिया बन्द न करेगा तव तक देहोपाधि रूप खेतो जन्य हानि-लाभ सहते ही रहेगा ॥ ६६ ॥

अबोध तहाँ तक जानिये, जहँ तक राग अँधेर।
त्याग भयो जब ताहिको, तबही भयो सबेर ॥ ६७ ॥

टीका—अबोध अज्ञान भूल भ्रम अविद्या का चिन्ह तहाँ तक जानना चाहिये, जहाँ तक नि·सार पच विषयो और नाना कल्पित मत पथ ग्रन्थो के असत सिद्धान्तो मे राग स्नेह बना है। पच विषय और स्त्री-पुत्रादि मे सुख है नही और प्रतीत होता है यही उल्टी समझ अधकार है। तिस उल्टी समझ और उल्टी क्रिया का जब पारख प्रकाश मे ठीक-ठीक नश्वर दुखपूर्ण छूटने वाले चचल हानि प्रद समझ के तिसका त्याग कर दिया जाय, तब जानिये कि हृदय से घोर मोह रात्रि मिट के बोध ज्ञान रूप सबेरा हुआ ॥ ६७ ॥

बोध भये अज्ञान गत, ज्ञान प्रकाश को पाय।
पारख रवि के तेज में, कहाँ करम ठहराय ॥ ६८ ॥

टीका—ठीक-ठीक सर्व शिरोमणि सर्व साक्षी शुद्ध चैतन्य का ज्ञान और तिसमे प्रियता हो जाना बोध है। ऐसा स्वरूप बोध प्राप्त होने पर अज्ञान नष्ट हो जाता है। अज्ञान अँधेर वत है, स्वरूप का बोध प्रकाश वत है। याते पारख स्थिति रूप प्रबल सूर्य का तेज बल

मे गुरुकृपा से पारखबोध होते ही दुखपूर्ण समझ के नष्ट हो गई। इस रीति से नि·कसर शुद्ध अपरोक्ष स्वरूपज्ञान को धारण कर वैराग्य पूर्वक वर्तमान समय स्वरूपबोध मे टिकने से कोटानकोटि जन्म की सर्व मानन्दियो का नाश हो जाता है ॥ ६४ ॥

दृष्टात—एक मनुष्य जुआ, नशा, नाच का बहुत अहदी था। सयोग वश सत्सग का अवसर मिलने से उसके सब दुर्गुण छूट गये। एक बार एक धनिक मित्र उसे बहुत से रुपये देने का लालच देकर उन दुर्गुणो मे प्रवेश कराना चाहा। सत्सगी ने कहा—उन रुपयो और सुख से क्या लाभ जो क्षणकाल मे ही धधकती अग्नि से भस्म करे। तृष्णा वासना ही तो मनुष्य के हृदय की धधकती अग्नि है। लाखो लाभ अनन्त सुख शाति पूर्ण स्वतत्रता तो प्रत्यक्ष कामनाओ को रोककर निष्काम रहने मे है। फिर जान बूझ के कौन ठगावे ? वे बडे ही दीन दुखी है जो मनोवासना की पूर्त्ति मे लगे है। जो सयमी है, उन्ही की कुशल मगल खैरियत है, अत बोध वैराग्य से सर्व सुखासक्ति नष्ट हो जाती है।

पारख को परकाश अस, नाशत सबहिं अँधेर।
ताहि रच्छि सुखिया रहौ, जब तक देह निबेर ॥ ६५ ॥

टीका—पूर्वोक्त पारख का प्रकाश ही ऐसा है कि जिसे सम्यक ज्ञान प्राप्त हुआ वह खानि जाल—नारि ससर्ग कुल कुटुम्बादि मोटी माया, कर्त्ता भास देवी भूत पिशाच विकासादि झीनी माया सर्व वासना तम को दुखरूप मिथ्या-विजाति भार समझ के नष्ट कर डालता है। एव पारख सम्पूर्ण अज्ञान तम को भगा देता है। ऐसे पारखरूप गुरुपद की सद्गुणों द्वारे रक्षा करते हुये नैराश्य वर्तमान में स्वतत्र सुखी रहो तब तक यह पुरुपार्थ-चालू रक्खो कि जब तक देहनिबेरि अर्थात प्रारब्ध भोग के समाप्त न हो जाय ॥ ६५ ॥

पारख की चाह रहै पारख मे लाभ लहै,
पारख को कार गहै पारख लै धीर सो ॥
पारख पिछान रहै पारख को ध्यान रहै,
पारख प्रमान रहै, पारख ही हीर सो।
पारख में मुक्ति रहे पारख स्वरूप रहे
बीजक को ध्येय यही साहेब कबीर सो ॥

अत· पारखनिष्ठ होकर त्रिविध कर्म अन्त कर जन्म-मरण रहित हो जाना चाहिये।

जहवाँ दुख सुख नहिं रहे, जो कुछु देह आधीन।
जिनकी भई न देह लखि, वै तौ वैसहिं छीन ॥ ७१ ॥

टीका—जिस शुद्ध पारख स्वरूप स्थिति मे मनोभास कृत दुख-सुख, हानि-लाभ कुछ नही है, जो सर्वदा शुद्ध स्वरूप है। अब रहा जो कुछ उपाधि सताती है वह देहोपाधि करके ही। फिर भी जो देह आश्रय से हानि-लाभ आदि सर्व मन सम्भव रोग सताते, उन सब स्मरणो मे न मिलने से मन सम्भव विकार और सुख-दुख खैच नही पाते। यथार्थ निश्चय से वे मनोवेग शान्त हो जाते है। इस प्रकार जिस पारख स्वरूपस्थिति मे ठहरने से प्रारब्ध रूप देहोपाधि कृत सुखासक्ति के प्रबल बन्धन भी जब नष्ट हो जाते है। तो जिन कर्मो के टिके संस्कार की अभी देह ही नही बनी है, केवल वे सस्कार मात्र दबे पडे है, उन सब सस्कारो को वैसहि बिना भोग दिये ही वोध द्वारा नष्ट हो जाना तो सहज ही है। अर्थात जिन कर्मो की देह अभी नही बनी वे कर्म संस्कार बोध-वैराग्य स्थितिवान सन्त के बिना भोग दिये ही छिन्न हो जाते है ॥ ७१ ॥

मुख्य देह के भोग जो, सो भोगै से नाश।
पारख के परकाश ते, मिटै सकल भ्रम फाँस ॥ ७२ ॥

टीका—वैराग्य और बोध से जो नही बाध्य होते, जो पूर्व

जिसके घट मे उदय हुआ, उसके आगे बन्धरूप अज्ञान और त्रिविध कर्म कैसे टिक सकते है ? नही टिक सकते ॥ ६८ ॥

पारख को परकाश जहँ, अज्ञान अँधेर नशान ।
तिनसे निर्मित जो भये, उनका कहाँ ठेकान ॥ ६६ ॥

टीका—प्रकाश मे अंधकार किसी ने नही देखा है। तैसे ही वैराग्य, भक्ति, क्षमा, निराशा, परीक्षा श्रद्धा, सदाचरण और सत्संग प्रियतायुक्त जहाँ पारख दृष्टि की एकरस धारणा हुई वहां पारख का प्रकाश उदय हुआ जानिये । इस प्रकार जहाँ पारख प्रकाश एकरस है, वहां विषय मे सुख माननारूप अज्ञान अँधेरा नष्ट हो जाता है । जब अज्ञान ही नष्ट हो गया तो तुच्छ विषयानन्द की इच्छा भी नष्ट हो गई। विषयानन्द की इच्छा न होने से शुभाशुभ सकाम कर्म और तिसका सस्कार तथा संस्कार कृत जन्म-मरणादि उपाधि का कहाँ ठेकाना ? एव पारख प्रकाश से जब अज्ञान ही नष्ट हो गया तो अज्ञानके आधारित काम्य कर्मोका कहां ठेकाना ? सारांश—अज्ञान नष्टके साथ अज्ञान का साथी कर्मग्रन्थि भी नष्ट हो जाती है ॥६६॥

पारख माहिं निवास जेहि, भये करम संहार ।
भूल भरम से जो प्रगट, मिटते ज्ञान मँझार ॥ ७० ॥

टीका—पारख स्वरूप को सत्य स्वयं सर्वोपर जानकर पारख बोध द्वारा ही पारख रहस्य युक्त पारख स्वरूप के विचार में हमेशा जो स्थिति बना लेते है, उनके सर्व कर्मो का प्रलय हो जाता है । यह पक्का नियम है कि भूल-भ्रम की परीक्षा होते ही, ठीक-ठीक ज्ञान पाते ही, भूल और भूल सम्बन्धी सर्व व्यापार छूट जाता है ॥ ७० ॥
चौ०—दिग्भ्रम ठीक होत ही जेसे । उल्टा मग तजि समुझहु तैसे ॥

कवित्त

पारख कहनि वर पारख रहनि वर,
पारख विचार वर पारख में वीर सो ।

और स्वरूप का दृढ बोध नही है, वहाँ समझो अज्ञान-अबोध का ही वासा है ॥ ७४ ॥

रहस्य ज्ञान बिनु नाश नहि, सुखासक्ति को बीज ।
जीव भोग से भिन्न है, तैसहि रहि दुख छीज ॥ ७५ ॥

टीका—कुछ स्वरूप बोध भी हुआ, उसके साथ वर्तमान में वैराग्य युक्त निर्बन्ध वर्तने, एकरस ठहरने का रहस्य ज्ञान नही हुआ, तो भी ठौर-ठौर मे फँस जायगा और बीजरूप सुखासक्ति नष्ट नही होगी । अत स्वरूपज्ञान जितना उपयोगी है, उतना ही एकरस बोध भाव मे ठहरने के हेतु सद्रहस्यो को भी जानना उपयोगी है । उन रहस्यो का बन्ध-मोक्ष के अंत मे तथा सदगुण-शतक मे विस्तार से वर्णन हुआ है अथवा सत्संग-विवेक द्वारा भली प्रकार रहस्यो को जान के अपनाते हुए सर्व भोगो को छोड देना चाहिये । इसका हेतु यह है कि जीव भ्रम वश भोक्ता है और पच विषय भोगरूप जड है । जड भोगो से चेतन जीव त्रिकाल भिन्न है । भिन्न होते हुये भी मिथ्या लत अध्यास वश नाचता है । अब उसी अध्यास-लत को छोडना है । तो जैसे आप चेतन शुद्ध स्वरूप है और जड़ विषय भोग पृथक है, तैसे जड़ के अध्यास से सर्वथा अन्दर-बाहर पृथक रहकर ही उसके सर्व दुक्खो का अन्त हो सकता है । भोग कामना लिये-लिये दुख छूटने को कौन कहे दुख मे धँसते ही जायगा ॥ ७५ ॥

पारख को परकाश वहि, वही बोध ठहराव ।
भोगन से स्नेह तजि, सबका जहाँ अभाव ॥ ७६ ॥

टीका—पारख प्रकाश वही है, बोध भी वही है और एकरस ठहराव भी वही है जहाँ सर्व सुख भोगो की अन्दर से आसक्ति छोड़ दी जावे और बाहरी भी उसके सग्रह का अभाव रक्खा जाय ॥ ७६

देह साथ पुरुषार्थ सत, संग दोष तम जाय ।
यकरस राखौ याहि को, जब तक देह रहाय ॥ ७७ ॥

मानन्दी और रज वीर्य परमाणु सयुक्त प्रारब्धरूप घर के समान स्थूल बन गया है, वह पूर्व कर्म वेगानुसार रोग-अरोग सुख-दुख, भूँख-प्यास, सोना-जागना, वटभेदादि प्रारब्ध का मुख्य भोग है, सो भोगने से ही नष्ट होता है और मन की क्रिया सुखासक्ति शीघ्र ही बोध-वैराग्य से नष्ट हो जाती है। सो पूर्व मे कहा गया है। इस प्रकार स्वरूपज्ञान के प्रकाश मे ठहरते ही सर्व मन सम्भव बन्धनरूप जन्म-मरण की भ्रम फाँसी निवृत्ति हो जाती है ॥ ७२ ॥

प्रारब्ध वेग से भर्म जो, तेहि के हित कर्तव्य।
और न कछु बाकी रहा, बीते सब मनतव्य ॥ ७३ ॥

टीका—प्रारब्ध वेग से जो सुख झलकरूप भ्रम-भुलावा होते रहते है, उसी भुलावा के नाश करते रहने के लिये सदा देहान्त तक दृढ विवेक, वैराग्य, उपासनादि सर्व हस लक्षण एकरस रखने की आवश्यकता है और तो स्वरूपज्ञान होने के पश्चात कुछ मिलने को शेप नही रह जाता। गुरुकृपा से जगत अनादि और स्वय नित्य सत्य अविनाशी नित्य तृप्त पारखरूप अपने आपका बोध होते ही सर्व मन्तव्य-मानन्दी देवी-देवादि अनुमान और विपय सुख भास ये सबमे सुख निश्चयता बीत गई—नष्ट हो गई ॥ ७३ ॥

बोध भये अज्ञान गत, तहँ पूर वैराग।
वैराग्य भक्ति जहवाँ नहीं, तहाँ अबोधहि राग ॥ ७४ ॥

टीका—स्वरूपबोध का फल अज्ञान का नष्ट हो जाना है और अज्ञान का नष्ट जहाँ हुआ है उसके फल स्वरूप मे वहाँ वनिता, वित्त आदि पच विषयो से पूर्ण वैराग्य की प्राप्ति हो जाती है और जहाँ पूर्ण वैराग्य है वहाँ वैराग्यवान साधु गुरु की आज्ञा पालन रूप भक्ति मे हिचकिचाहट नही आ सकती। वैराग्य-भक्ति तथा अन्य सर्व शुभाचरण परायण होना ही बोध प्राप्ति और अज्ञान नष्ट होने का पूरा लक्षण है। इसके उल्टे जहाँ जगत प्रपंच से दृढ वैराग्य

अधिक तेजवान होता रहता है। क्योंकि हर अवसर की बात सद्-ग्रन्थ में सजी होती है। उस पर बारम्बार लक्ष्य देने से कार्य बन जाता है। नर जीवों का मुख्य कर्तव्य भी यही है कि जिस कर्तव्य-आचरण, मनन, विचार से सर्व दुखों का समूलता से ध्वंस हो जावे, वही उपाय करे। फलत नित्य नेम से सद्ग्रन्थ पढना, मनन करना, सतजन का निर्णय सुन-गुनकर आचरण गह के मुक्त हो जाना चाहिये ॥ ७९ ॥

शब्द

जागन वाले जाग गये तेरो नयन खुलै न खुलै ॥ टेक ॥
वन पहाड़ नद नाधि के जल्दी, वो तो निश्चल घर को पाय गये ॥१
पॉच चोर दस ठग यहि मग में, इक डाकिन से जान बचाय गये ॥२
गाफिल नीद में लूट मची है, मदमस्ति मे केते लुटाय गये ॥३
गुरु निर्णय मह प्रेम सो जागै, आपन काज बनाय गये ॥४
कहै कबोर नीद झट तजि कै, जागन को फल पाय गये ॥५

प्रसग ६—उद्धार हेतु अखण्ड साहस

अज्ञान रचै क्रियमान को, प्रारब्धि सहायक ताहि।
दोनौं के आधार मे, संचित कर्म निवाहि ॥ ८० ॥

टीका—स्वरूप के अज्ञान से दृश्य विषयो मे राग होता है। राग से पाप-पुण्य विषयासक्ति की क्रिया बनती है। इस रीति से अज्ञान द्वारा क्रियमान कर्म निर्माण होता है। प्रारब्धरूप इन्द्रियॉ और अन्त करण अज्ञान रचित होने से अज्ञान ही की तरफ दोनो भूलदशा मे साधक होते रहते है। प्रारब्ध रूप देह और क्रियमान कर्म इन दोनो के आधार मे पूर्व अभुक्त सचित सुरक्षित ठहरते चले आये है ॥ ८० ॥

जीवहि बोध अबोध से, करि उतपति संहार।
जीवहि थिति तिनकी किहे, जो उनका करतार ॥ ८१ ॥

टीका—जब तक देहोपाधि का सम्वन्ध है, तव तक वोधवान को सन्मार्ग का निरन्तर पुरुषार्थ करना अत्यन्त आवश्यक है। इस हेतु से कि जिससे संग दोप कृत आवरण नष्ट होता रहे। मनोद्वेग, इन्द्रिन खैंच, विश्व-समाज कृत हलचल, अन्य पदार्थ और समीपवर्ती नर-नारि सम्वन्धी हलचल ये सव देहोपाधि की योग्यता से राग-द्वेष, आसक्ति-मोह, ममता का पर्दा डालने लगते हैं। इस सग दोष से वचने अर्थ ही प्रवलता से विवेक-वैराग्य स्थिति को एकरस आदि से अत तक रखना चाहिये ॥ ७७ ॥

तम का हेतु न जव रहा, तव पुरुषार्थ समाप्त।
रहित आवरण जीव तव, मुक्त आप रहि जात ॥ ७८ ॥

टीका—अज्ञान-भूल-भ्रम, संग दोप सवका हेतु—प्रारब्ध शरीर है। सो विवेकयुक्त आसक्ति रहित पूर्व कहे प्रमाण भोगकर समाप्त हो गया। जव कूड़ा-करकट ही नहीं, तो वहारने की जरूरत ही क्या? तद्वत तन-मन की ग्रथि छूट जाने से सर्व रहस्य पुरुपार्थ भी समाप्त हो गया। यहाँ परिश्रम का अतिम फल भी मिल गया। इस मुक्ति स्थिति में जीव सर्व आवरण (ढक्कन) तन-मन, सुख-दुख, अध्यास रहित निराधार स्थित सदा के लिये अचल रह जाता है ॥ ७८ ॥

छन्द—देहान्त भर ही तप किये फल वोध सत्य अनन्त रे।
अल्प मूल्य अनन्त फल तू क्यों न चेत भुलन्त रे॥
जड़ दूर मे पचता अहो अव आप चेतन मार्ग पर।
आरूढ हो निश्चित हो निर्बन्ध निर्भय कर समर॥

पढ़े सुने औ मनन से, होवै हृदय प्रकाश।
मानुष को करतव्य यहि, सवही दुख का नाश ॥ ७९ ॥

टीका—सद्ग्रथो के पढ़ने, श्रवण करने और वारम्वार मनन करने से हृदय के जितने कलिमल हैं वे नष्ट होकर विवेक का प्रकाश

हो गई है, वे सब ठीक-ठीक ज्यो-ज्यो एकरस पारख दृष्टि पुष्ट करते जाय त्यों-त्यो सब आदते सब कसरे सब अध्यासे निरर्थक दुखपूर्ण समझ के नष्ट होते-होते अत मे एकरस पूर्ण पारखदृष्टि दृढ होकर पूर्व के भूल कृत सब कस्मर विकार जलाकर शुद्ध पारख स्वरूप अचल निराधार सदा के लिये ठहर रहेगा। इस रीति से मुमुक्षु जन मुक्त हो जाते है ॥ ८२ ॥

भूल शक्ति सबको दिखै, ज्ञान शक्ति परचण्ड।
सत्य बोध पारख जहाँ, तेहिकी शक्ति अखण्ड ॥ ८३ ॥

टीका—जिन-जिन हेतुओ से विषयासक्ति-जड़ासक्ति की पुष्टि हो उसे भूलशक्ति कहते है। यह भूलशक्ति सबको प्रत्यक्ष है, जो इन्द्रिय सुख सिद्धि अर्थ रेल, तार, मोटर, हवाई-जहाज, रेडियो, सिनेमा आदि, लड़ने मार काट हिसा के लिये संहारकारक वम, तोप, गैस आदि; अनेक प्रकार के महल मकान, फैसनवाजी के असख्य सामान, देखने के, स्वाद के, स्त्री विषय पुष्टि हेतु असंख्य द्रव्य, अनन्त छल-वल, प्रपच, शासन, विद्या-अविद्या के अनन्त रगडे-झगडे कोलाहल आदि सबको प्रत्यक्ष ही है। एवं भूल वश जड़ासक्ति का व्यापार रच-रच के बन्धन बनाने मे जीव शक्तिशाली है। फिर इनसे भिन्न ज्ञानशक्ति भी मनुष्य जीवो मे विशेष है। जितना-जितना जड़ विषयो से हटकर इन्द्रिय, प्रकृति, तत्व, गुण-धर्मादि का शोधन कर ज्यो-ज्यो सबसे पृथकवृत्ति करता है, त्यों-त्यो स्वरूप के समीप पहुँचने के पात्र बनने से ज्ञानशक्ति प्रचण्ड होती जाती है। नाना दान-पुण्य, तप-साधन-वैराग्य, प्रकृति से भिन्न चेतन का युक्ति-युक्त विवेक, अनेक विचार, साधन-तितिक्षा आदि ये सव ज्ञान शक्ति भी ससार में प्रत्यक्ष है। और जहाँ पर अत करण शुद्धियुक्त गुरु-सत्सग द्वारा स्वरूप का यथार्थ सत्यबोध और साथ ही रक्षा की दृष्टि जिन्हे प्राप्त हो गई, उनका गुण प्रभाव स्थिति वैराग्य साधन

टीका—ज्ञाता जीव ही अपने स्वरूप के भूलरूप अबोध से त्रिविध कर्मो की उत्पत्ति करके तिसके वश मे काल कर्म गुण सस्कार अनुसार चार खानियो मे वहुरूपी—स्वागी वन के अनादि काल से नाचते चला आ रहा है । यदि आज इस मनुष्य शरीर मे सत्सग द्वारा स्वरूपवोध पुष्ट कर लेवे, तो कर्म वासनाओ का सहार भी कर डालेगा । चेतन जीव आपही स्थूल-सूक्ष्म जड़ देहो मे मिलकर सर्व कर्म बीजरूप मन-मानन्दी अध्यासो को हृदय मे ठहरा रक्खा है । जो जीव उन कर्मो को करने वाला कर्तार है, वही राग सयुक्त उन कर्मो की रक्षा भी करता रहता है । फिर कभी वही जव चेत करेगा, तो कर्मो का स्नेह छोड़कर कर्मो को ध्वस भी कर डालेगा ॥ ८१ ॥

कहूँ निवारै भोग करि, कहूँ ज्ञान से नाश ।
जो जो भूली वात है, पारख पाय विनाश ॥ ८२ ॥

टीका—अदृश्य प्रारब्ध भोग को भोगकर और कही तो त्यागने योग्य को त्याग करके प्रारब्ध निवारण किया जाता है और जो वोध के पूर्व अबोध दशा मे किये-धरे सस्कार है उन्हे यथार्थ ज्ञान तथा रहस्य द्वारा ध्वस कर दिया जाता है । ज्ञान से ध्वस होने मे यह प्रत्यक्ष अनुभव है कि बहुत सी वाते बहुत सी क्रियाये दूसरे से कहने-करने का स्मरण उठता और यह प्रतीत होता कि जो हम यह बात यह क्रिया न कर डालेगे तो बहुत हानि होगी । परन्तु थोड़ी देर मे स्वच्छन्दता से विचारने पर पारख मे आ जाती है कि यह बात, यह क्रिया अत्यन्त हानिप्रद है । ऐसी परीक्षा होते ही उसका स्मरण शीघ्र शात करके फिर उस वाक्य और क्रिया को नही करता । तव आगामी उस वाक्य-क्रिया के फल से भी वह वंधमान नही होता । एव "जो जो भूली बात है पारख पाय बिनाश" भूल से सुख मान-मान आवश्यक समझ-समझ के जितनी आसक्तियाँ धारण

व्याकुल होता है। दूसरे के लिये वह कुछ भी नही। एव अपने ही मे स्वय प्रत्यक्ष करलो कि हम चेतन जीव भूल शक्ति से क्या-क्या कर रहे थे? और अब विचार-वोध होने पर किधर आ गये है? इस वात का करतल फल न्याय थोडे भी विचार से स्वय प्रत्यक्ष हो जाता है कि हम चैतन्य जीवो में जैसे वन्धन वढाने की सव शक्ति मौजूद है तैसे सर्व बन्धन त्यागकर सदा अमृत सुख-शाति मय भक्ति-सदाचरण धारण करने की अपार, अनन्त, अथाह शक्ति भी विद्यमान है॥ ८५॥

साहस और सचेतता, एक से एक प्रवीन।
वन्ध हरण शक्ती महाँ, जव सनमुख लखिलीन॥ ८६॥

टीका—कठोर से कठोर कार्य करने का साहस-हिम्मत उक्ति-युक्ति, तजवीज और सावधानी मे एक से एक बढकर श्रेष्ठ मनुष्य दिखाई देते है। कहा भी है कि दोहा—"गिरि सरि वायू मथन करि, विद्या चतुर गुणज्ञ। एक से एक दिखात जग, बढ बढ के समतज्ञ॥" एव स्वार्थ मायाजाल मे भी एक से एक बढ के साहसी और एक से एक सावधानता रखने वाले नर जीव दीख रहे है। प्राण भले जाय। पर वे अपने निश्चय-कार्य को पूर्ण करके ही विश्राम लेते है। तो जैसे वन्धन कृत कार्यो के करने मे जीव पूर्ण शक्तिमान है, तैसे बन्धनों को नष्ट करने मे भी जीव महान शक्तिशाली है। किन्तु कव? जव उसे सामने जगत वन्धनों मे पूर्ण दुख देखने मे आ जावे, साथ ही अपना स्वरूप क्या है, तिसकी निवृत्ति होकर एकरस ठहराव कैसे हो, ये सव वाते भी ठीक-ठीक पारख मे आ जावे तब वह कल्याण सामग्री एकत्र करके कल्याण कर ही लेगा॥ ८६॥

लाभ हानि की सूझ जस, लाभ हेतु संकल्प।
लाभ लखै जव मोक्ष की, तोड़ै अन्य विकल्प॥ ८७॥

टीका—जिधर जीवों को सुख लाभ दीखता उधर चलते रहते

अखण्ड है, अर्थात वे पुरुषार्थी मनोनाश की अनन्त शक्ति को पूर्णरूप से अखण्ड एकरस धारण करते हुये निर्वन्ध-निराधार स्थिति वना लेते है ॥ ८३ ॥

अमित शक्ति शोधक महॉ, शोधै वोध स्वरूप ।
समरथ वन्धन नाश हित, तेहिकी शक्ति अनूप ॥ ८४ ॥

टीका—उधर स्वार्थजाल शोधक जीवो मे भी मनोमय वन्धन रचने की वहुत-वहुत शक्ति है । इधर वही जीव की दृष्टि घूम पडी तो कल्याण की भी अमित-अनन्त शक्ति उत्पन्न कर लेता है। जीव का स्वरूप ही शोध-वोध (पारख) रूप है, जिसका जो स्वरूप है उसको वैसा रहना सहज ही है । यही हेतु है कि भूल मात्र वन्धनो का पारख पाकर वोध-रहस्य धारण करके मुक्त हो जाने की शक्ति सव मनुष्य जीवो मे विराजमान है । उस शक्ति को जो मनुष्य सावधानी से जाग्रत करता है, सत्सग-सद्ग्रथ मुख्य गुणग्राही वन के स्वय वल से सवका शोधन करता रहता है, उसमे ही जडाध्यास रूप वन्धन नष्ट करने की प्रवल-सरल निरुपम अनन्त शक्ति प्राप्ति हो जाती है, सो प्रत्यक्ष ही है ॥ ८४ ॥

जहॅ लागै तहॅ सव कुछ करै, देखौ देखनहार ।
अनुभव स्वयं प्रत्यक्ष है, जीवहि शक्ति अपार ॥ ८५ ॥

टीका—देखो ! इन मनुष्य तनधारी जीवो मे कितनी महान शक्ति है ? यह जिधर एकतर्फी साहसी वनकर जुट जाता है, तहॉ होने योग्य कार्यो की हद्द लगाकर ही छोडता है । चाहे अज्ञानदशा मे हो, चाहे ज्ञानदशा मे हो । जहॉ भी सव वल लगाकर जुटे तहॉ आश्चर्य वत कार्य करके दिखा देता है । इसको देखने-परखने वाले पारखीजन ही भली प्रकार जानते है । देखो ! एक नश्वर स्त्री और तन-धन के लिये क्या-क्या अनर्थ नही करता ? दूसरा इन्हे सहज ही त्यागकर एकात मे विश्राम करता है । एक जिसके लिये रोता-

सम लक्ष स्वरूप के चिन्तन मे, अति प्रेम करै गुरु सतन मे ।
वम ऐसहि ध्येय स्व मुक्ति रखे, अत्र उल्टि के शोध० ॥८७॥

प्रसग ७—बन्धन रूप मानन्दियो के ध्वस होने से
सचित कर्मो का सर्वथा निर्मूल

मानन्दी से दुख सुख लहै, दुख सुख बन्धन जान।
मानन्दी से तन शक्ति दै, करत क्रिया दिखलान ॥ ८८ ॥

टीका—इन्द्रियो द्वारा जो देख, सुन, भोगकर सुख मान-मान के अध्यास टिकाया और विविध प्रकार का सुख मानना निश्चय किया सो मानन्दी का रूप । मानन्दी से जीव दुख सुख को प्राप्त करता है । जैसे एक वडे नगर क्षेत्र मे कही नाच-सिनेमा, खेल-कूद हो रहा है, कही भाँति-भाँति के उपदेश हो रहे है, कही घोडा, हाथी, बैलो की दौड़ हो रही है, कही वेश्या-नशेबाजी हो रही है । तो जिसको जहाँ सुख निश्चयता दृढ है वहाँ जाकर हर्षित होता तथा मान्यता से उल्टे देख-सुन के दुखी होता । अथवा कोई प्रपच राग में राजी होता, कोई राम धुनि मे, इस प्रकार भिन्न-भिन्न मानन्दी द्वारा ही जीव भिन्न-भिन्न दुख-सुख का अनुभव करता रहता है, सो मुख्य दुख और सुख ही जीव को वधन है । कही विविध सुख के हेतु अनन्त आपत्ति सहता तो कही दुख के वश पीड़ित रहता । सुख सिद्धि अर्थ सवका वँधुआ होता है । पुन· सुख भोग द्वारा जो सस्कार पुष्ट हो जाते है वे जीव को शात नही होने देते । सारे प्रमाद-दुर्गुण, नीच मार्गो मे ये सुख ही डाल के प्रेरते रहते है । इस रीति से मानन्दी जनित सुख-दुख महा बधन है तथा मन-मानन्दी के वश होकर ही स्थूल देह मे सत्ता-शक्ति देता रहता है । भीतर अनुकूल-प्रतिकूल मनोद्वेग उठने पर ही देखने-सुनने, भोगने, उठने-बैठने, पाप-पुण्य आदि की सर्व क्रियाये नर जीव करते प्रत्यक्ष दिखाई दे रहे है ॥८८॥

दृष्टात—जैसे एक किराये के मकान मे कई देश के मनुष्य

और जिधर हानि और दुख समझने मे आ जाता तो उधर से हट जाते । हानि-लाभ की जैसी जिसकी दृष्टि है और अधिक लाभ मुख निश्चय जिधर किया है उधर ही के यत्न करने का वारम्वार सकल्प मनन भी किया करता है। यह नियम है कि जो संकल्प अधिक वलवान होते है, वही क्रिया करके उसी के परिणाम फल को भोगता होता है। इसी प्रकार जव मुक्तिदशा मे ही सवसे वढ के लाभ जिसको देखने मे आ जायगा, वही मुक्ति विरोधी वन्धनप्रद सर्व सकल्प स्मरणो को तोड़कर मुक्तिदशा में विराजेगा ॥ ८७ ॥

पद

अव उल्टि के शोध स्वरूप भले, शिरमौर तुम्ही जै जीव अले ॥टेक
यह वेद कितेव पुरान जिते, यह पंथ अनन्तन भेप तिते ।
सव थापक तू नर जीव वले, अव उल्टि के शोध स्वरूप भले ॥१॥
यह रेल व तार व गैस वने, यह खेल अनन्तन कौन गने ।
सव युक्ति व उक्ति प्रत्यक्ष ढले, अव उल्टि के शोध० ॥२॥
कोइ दानी तो सर्वस्व दान किये, कोइ सूम वडे न छेदाम दिये ।
जहँ लाभ जचे तेहि ओर चले, अव उल्टि के शोध० ॥३॥
नित केते तो कामिनि ध्यान किये, पुनि केते तो रामहि नाम लिये ।
कोइ युद्ध चढे ललकार कले, अव उल्टि के शोध० ॥४॥
कोइ चोर व साहु वखानै किये, मन शक्ति लिये सव जीव तिते ।
कोइ मानी व ज्ञानी अमानी धले, अव उल्टि के शोध० ॥५॥
कोइ खण्डन मण्डन सिद्ध करै, स्व स्व वुद्धि विचार पताका फिरै ।
वहि जाने विना निज शक्ति जले, अव उल्टि के शोध० ॥६॥
वहि चाहे तो प्राण व हड्डी गले, नहि टाले टले स्व-स्व ध्येय पले ।
वस ऐसहि ध्येय सुमार्ग रले, अव उल्टि के शोध० ॥७॥
अव सोचु विचारु स्वरूपहि को, निज सर्व परीक्षक नित्यहि को ।
निज सत्य स्वयं पद जान थले, अव उल्टि के शोध० ॥८॥

यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति कर लेने पर भूल कृत सर्व सुख मानन्दी नष्ट हो जाती है। जड़-चेतन अनादि जानने से उत्पत्ति-प्रलय के लिये जगत कर्त्ता मानने का भ्रम मिट जाता है। स्वरूप नित्य तृप्त अचल समझ के वैसा ही सम लक्ष्य पुष्ट करके सर्व विषयासक्ति नष्ट हो जाती है और भी सूक्ष्म सर्व क्रिया-वासनाओ का यथार्थ अभ्यास द्वारा त्याग करने से सर्व सूक्ष्म हन्ता-ममता त्याग हो जाती है। इस प्रकार स्वरूप ज्ञान से सर्व मानन्दी नष्ट हो जाती है ॥ ८६ ॥

मानन्दी दोय प्रकार की, प्रारब्धी पुरुषार्थ।
प्रारब्धि मिटती भोग करि, पुरुषारथ काटि सनाथ ॥ ६० ॥

टीका—जो कहो वोधवान ज्ञानीजन को भी दुख-सुखादि मानदीयुक्त देखा जाता है। तो उसका उत्तर यह है कि मानन्दी दो प्रकार की होती है, एक प्रारब्धरूप, दूसरी पुरुषार्थरूप। प्रारब्ध—जिसके त्यागने से शरीर रक्षा का व्यवहार न चल सके या यथार्थ पुरुषार्थ मे रुकावट पडे, जैसे अन्न-जल खाना-पीना श्वॉस लेना, दिसा-लघुशंका, चलना-फिरना आदि सो देह की क्रिया मुख्य प्रारब्धि भोग नैराश्यतापूर्वक भोगते हुये आप ही शरीरान्त मे नष्ट हो जायगा और जहॉ तक पॉचो विषयो मे सुख मानकर नशा—पत्ती आदि की नाना आदत, काम, क्रोध, आशा, तृष्णा, शोक-मोह, फिक्र, चिन्ता आदि ऐसे सकाम आगामी पुरुषार्थरूप मानन्दी बीज को नैराश्य वर्तमान वोधरूप पुरुषार्थ से मन की क्रिया काट-छॉटकर समस्त कल्याणार्थी कृतार्थ हो जाते, सर्व दुख-द्वन्द्व से पार आवागवन रहित हो जाते है ॥ ६० ॥

दृश्य दृश्य जड़ जड़ नहीं, नहिं सबंध क्रिय ताय।
जड़ के सम पट भेद नहिं, यहि से मुक्ति लहाय ॥ ६१ ॥

टीका—दृश्य-दृश्य अर्थात पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु भिन्न भिन्न इन्द्रियो से दृश्यवान है, तैसे जीव इन्द्रियो से दृश्यवान, इन्द्रिय

पृथक-पृथक रहते है। उनमे किसी का पुत्र मर गया है, किसी के पुत्र का विवाह है। पास ही मे एक के वधाई वज रही है। दूसरे को कूट-कूट कर रोवाई आ रही है। लोग अपनी-अपनी वोली मे वतला-वतला कर दुखी-सुखी होते है। जिस वोली की मानन्दी जिसको नही है, उसकी ओर से कुछ हानि-लाभ स्तुति निन्दा नही व्यापती। जिस मित्र के प्रति मोह होता है, उसी मे शत्रुभाव वनाने पर उसकी हानि चाहता है। अत॰ मानन्दी से ही जीव का सवसे सम्वन्ध है।

मानन्दी से तन साथ है, विन मानन्दी नाहिं।
सव मानन्दी भूल से, ज्ञान से मिटती जाहिं॥ ८६॥

टीका—जीव का तथा जड़ देह का सम्वन्ध भी सूक्ष्म टिके हुये संस्काररूप मन-मानन्दी से ही है, क्योंकि मनोमय सस्कारसे ही शरीर आदि का ज्ञान होता है। ज्ञान से ही सम्वन्ध है। मानन्दी, सस्कार, वासना न हो तो शरीर का जीव से कुछ सम्वन्ध नही और सर्व मनोमयरूप मानन्दी स्वरूप को ठीक-ठीक न जानने से ही होती है। जैसे विषय भोग इन्द्रिय विलास दुखरूप नश्वर, चचल-विजाति न समझकर तिसमे सुख निश्चय कर लेना तथा प्राणी मात्र को मन के वश न समझकर स्ववश मान के रागवान होना, ठीक-ठीक जड-चेतन का भेद, दोनो अनादि नित्य न समझने से विकासवाद आदि की कल्पना करना और व्राह्माण्डिक क्रिया को जड़ गुण धर्म शक्ति से न समझ और पिण्ड की क्रिया उभय सम्वन्धी न जान के पिण्ड-व्रह्माण्ड का सचालक-उत्पादक देव-देवी, ईश्वर-व्रह्म, भूत-प्रेत, यत्र-मत्र, तत्रादि अनेक कल्पित लोक लोकातरो की कल्पना करना इत्यादि सव मानदी भूल से होती है, सो यथार्थ पारख ज्ञान से नष्ट हो जाती है। यह नियम है कि जो वस्तु जिसकी भूल से होती है उसके यथार्थ ज्ञान से वह भूल मिट जाती है। इसी से स्वरूप के

समाधान यह है कि अनादि काल से देह इन्द्रिय सघात द्वारा यह यथार्थ स्वरूप को भूलते ही आया है। सूर्य के ऊपर बादल वत उभय सघात प्रवाह रूप अनादि काल से चला ही आ रहा है। देहोपाधि से भूल-इच्छा-सस्कार और भूल से देह सम्बन्ध एव जड-चेतन के सम्बन्ध से भूल, भूल वश सम्बन्ध अनादि है। ऐसा नही कि पहिले कभी जीव देहोपाधि रहित मुक्त स्थित होवे, फिर पीछे भूल करके जडग्रथि मे धॅस गया हो। ऐसा मानने से सर्वथा देहोपाधि सम्बन्ध रहित जीव के समीप इच्छा न होने से देहोपाधि मे पड़ना ही नही बन सकता था, प्रत्यक्ष सब जीव देहोपाधि युक्त दीख ही रहे है। जो सब जीव पूर्व से ही देहोपाधि युक्त न होते, तो इन्द्रिय सस्कारयुक्त अब भी न देख पड़ते। देहोपाधि युक्त प्रत्यक्ष सब जीवो को देखकर यथार्थ अनुभव होता है कि देहोपाधि का सम्बन्ध प्रवाहरूप अनादि काल से चला ही आया है। प्रत्यक्ष देखिये! पञ्च विषयो मे सुख मान-मान के ही सब दुष्कर्मो मे धॅसकर जीव शूल-पीड़ा को प्राप्त हो रहे है, एवं पहिले से ही बॅधते आया है॥ ९२॥

जैसा अपने आप जिव, तैसा होय जो बोध।
तहॉ ठहरि सब भर्म गत, मिटि मानन्दी रोध॥ ९३॥

टीका—विवेक द्वारा जड़ दृश्य भाग को अलग करके जैसा जीव का स्वरूप शुद्ध-मुक्त रूप वर्णन हुआ है तैसा ही सत्सग-सद्ग्रथ स्व विवेक निश्चय से अपरोक्ष बोध समझ प्राप्त करे, फिर जैसा ज्ञान द्वारा पारख की समझ प्राप्त होवे तैसे ही सब विषय प्रपच, वचक प्रपच, विश्व प्रपच, गृह प्रपच, तन-मन उद्वेग प्रपच त्यागकर एकरस ठहराव पुष्ट करे तो ऐसे जिज्ञासुजनो की सम्पूर्ण भूल अज्ञान आसक्तियाँ नष्ट हो जायँगी। पुन जो मानन्दी कल्याणपथ मे जन्म-जन्म में रुकावट करती थी, सो मानन्दी—विपरीति निश्चयता भूल मिटने के साथ ही मिट जायगी और जीव मुक्त हो रहेगा॥ ९३॥

गोचर नही, क्योकि वह सर्व जड का द्रष्टा है। याते दृश्य-दृश्य नही तथा पृथ्वी भी जड, अग्नि भी जड, जल भी जड़ और वायु भी जड है, तो जडता भाव मे सब तत्त्व एक समान है। उसके उल्टे जनैया जीव से और जड से समानता नही। याते जीव कभी जड-जड नही होता और जैसे कोमलत्व वायु का, उष्णत्व अग्नि का, शीतत्व जल का, कठोरत्व पृथ्वी का, एव वायु मे अन्य तत्त्व सयोग सम्बध से रहे है, तैसे ही पृथ्वी जल, अग्नि मे भी सब तत्व सूक्ष्म रूप से मिले है, जैसे जड़-जड का सयोग स्वाभाविक सम्बन्ध नही, क्योकि जीव देहोपाधि युक्त इच्छा द्वारा सबका ज्ञान करके सम्बन्ध करता है, स्वभाव से नही, यह प्रत्यक्ष है। जैसे चारो तत्त्व के परमाणु स्वभावत: चचल-क्रियावान दर्शित होते है, तैसे जीव मे स्वभावत चचलता है नही। जीव की चचलता इच्छासक्ति होने पर ही अनुभव है। इच्छा उठे विना जीव मे चाल का अत्यन्त अभाव रहता है और जड़ तत्वो मे छ-छ भेद रहते है, जिससे उनमें कारण-कार्यो की स्थिति रहती है। वैसा चेतन जीव मे छ भेद नही, क्योकि चेतन जीव सर्व परीक्षक सदा अखण्ड एकरस ही है। यही हेतु है कि जड गुण धर्म सर्व विकारो से चेतन जीव पृथक शुद्ध ज्ञान स्वरूप है। इसलिये वह प्रयत्न द्वारा यथार्थ पारख प्राप्त करे तो अपने अनादि भूल कृत वन्धन को छुड़ाकर निश्चय ही मुक्तरूप जीव मुक्तिपद मे स्थित हो जावेगा। अत. मुक्त होने के लिये यथार्थ पारख ग्रहण करना मोक्षार्थी का प्रधान लक्ष्य होना चाहिये॥ ६१॥

जीव स्वरूप से मुक्त है, देह सम्बन्ध से भूल।
सो सम्बन्ध अनादि है, सुख मानन्दी शूल॥ ९२॥

टीका—जीव के स्वरूप में जड तत्व नही, न कोई इन्द्रिय मन कृत विकार ही है। इस हेतु से भूल कृत जड़ाध्यास हटा करके जीव मुक्त रूप है। फिर भूल-भ्रम के बन्धन मे जीव क्यो है? तो इसका

भी बन्द हो जाता है। बोधवान तिसे त्यागकर आरोग्य स्वरूप भाव मे सम रहते है ॥ ८५ ॥

सो चेष्टा चेष्टा नहीं, भूने बीज न वृक्ष।
इमि सो देह बेगारि भरि, तजि मन भावहिं स्वच्छ ॥ ८६ ॥

टीका—जैसे भूने हुये बीज मे वृक्षाकुर नही होता, तैसे प्रारब्ध निर्वाह मात्र की चेष्टा, चेष्टा मे शुमार नही है। यद्यपि भूनना भी क्रिया है तथापि तिस क्रिया से बीजाकुर का विनाश हो जाता है। इसी प्रकार देह की बेगार देह से नैराश्यता पूर्वक भरते हुए बन्धन-प्रद मन की आसक्ति छोड़ाना ही सस्कारो को दग्ध करना है। इस प्रकार सर्व मनोमय राग-आसक्ति को छोड़ कर पारखीसत स्वच्छ शुद्ध स्वस्वरूप मे स्थित हो जाते है ॥ ८६ ॥

जब मानन्दी पास में, तबही संचित साथ।
तेहिते न्यारा होत ही, छेदै संचित माथ ॥ ८७ ॥

टीका—जब तक स्वयं स्वरूप को भूलकर देह और देह सम्बन्धी भोग पदार्थो मे सुख मानना बना है, जगत मे माने हुये उत्तम-उत्तम राग-रग क्षणभंगुर प्रपंच मे ही खिचाव जब तक होता रहता है तथा शरीर के नाना भास, अध्यास, कल्पना द्वारा कल्पे हुये ब्रह्म, ईश्वर, भूत, प्रेतादि मे सत्य सुख मानना बना है, पुन नाना कार्य जड पदार्थो मे सुख आनन्द मान के विश्वहन्ता लादकर सब तरफ खिचाव मोह बना है, ऐसी-ऐसी मानन्दियो को जब तक जीव ग्रहण करता रहता है तब तक उसके पास जन्म-मरण के बीज रूप सचित कर्म रहते है, क्योकि दृढ मानना व आसक्ति ही सचित कर्मो का मूल है। तिन मानन्दियो को पारखदृष्टि द्वारा मिथ्या समझ के तिससे परख-परख के अलग होते ही कल्याणार्थी जन सचित का सिर काट देते है ॥ ८७ ॥

अभिलाषा सब नाशि तब, भौ चेष्टा से हीन।
बन्धन जब सनमुख नहीं, जीव अचल तजि दीन ॥ ६४ ॥

टीका—शुद्ध स्वरूप में अभिलाषा—कामना कुछ नहीं। इसलिए शुद्ध स्वरूप का हमेशा लक्ष्य रख के बोध-विचार में लगने से विषय सुख की इच्छा ही नष्ट हो जाती है। जब सुख निश्चयता ही मिट गई तो अभिलाषा (कामना) भी किस चीज की चले ? जब अभिलाषा कुछ नहीं तो चेष्टा ही क्या ? जब जीवन्मुक्ति सहित प्रारब्धांत में विषय पिण्ड-ब्रह्माण्ड की चेष्टा ही नहीं तो बन्धन-खिचावा भी किधर कैसे होगा ? जब कोई जीव के सामने बन्धन ही नहीं तब तो जीव अचल का अचल पारख स्वरूप सदा के लिये स्थित। इस प्रकार उसकी सारी दीनता, सुख गर्जरूप दरिद्रता, जन्म-मरण का प्रवाह नष्ट हो जाता है। इसीके लिए प्रयत्नवान होना विवेकी-पारखी साधु-जिज्ञासु का लक्ष्य होता है ॥ ६४ ॥

चेष्टा दोय प्रकार की, देह भोग मन भोग।
देह भोग को भोगते, तजि वांछित को रोग ॥ ६५ ॥

टीका—स्वरूप में चेष्टा नहीं है तो चेष्टा क्यों होती है ? इसका समाधान अनादि देहोपाधि के सम्बन्ध से कहा गया, पुनः बोध में ठहरने से चेष्टाये निर्मूल हो जाती है। किन्तु प्रारब्ध देह सम्बन्ध तक चेष्टा-इच्छा भी दो प्रकार की होती है। एक तो देह भोग—खास प्रारब्ध भोग पूर्ण निमित्त, दूसरे मनः कल्पित सुख भोग हेतु। तिसमे देह की प्रारब्धिक यात्रा पूर्ण निमित्त चेष्टा तो नैराश्यता से भोगकर देहांत में समाप्त हो जाती है। इसके अलावा कल्पित सुख की जो मन में अभिलाषा होती है, जैसे काम भोग, मान बड़ाई, सब जीवों पर स्ववशता आदि जो-जो मन चाहता है वह सब आशा ही रोग है। इसीसे मानसिक तृष्णा-संस्कार पुष्टि द्वारा जन्म-मरण होते है, यही बन्धन है, फाँसी है। इसके त्याग से ही जन्म-मरण का झूला

मे जीवन्मुक्त पुरुष गाफिल नही होते, सदा विवेक-वैराग्य में तत्पर रहते है ॥ ६६ ॥

बन्धन जहाँ स्वरूप में, तहाँ न छूटब होय ।
जहाँ भूल सम्बन्ध से, तहाँ जानि तजि सोय ॥ १०० ॥

टीका—जहाँ पर अग्नि उष्णता वत बन्धन स्वरूप ही मे होवे तहाँ छूटना ही असम्भव है । अग्नि का उष्णता से तथा शक्कर की मिठास से कहाँ त्याग हो सकता है ? इसी को समवाय कहते है । समवाय का त्याग नही हो सकता और जहाँ भूल भ्रम मानन्दी करके सम्बन्ध है वहाँ भूल-भ्रम की परीक्षा होते ही वह सम्बन्ध छूट जाता है । यही भूल भ्रम अध्यास मानन्दी करके जीव का देह से सम्बन्ध है ॥ १०० ॥

इन्द्रिय मन सम्बन्ध तन, और पदारथ जन्तु ।
पृथक देखि रीझत रहत, न्यारा आप न हन्तु ॥ १०१ ॥

टीका—स्वरूप से बन्धन अलग ही है, इसका यह प्रत्यक्ष प्रमाण है—इन्द्रिय और मन-मनसारूप सब स्मरण तथा नख शिख स्थूल देह और देह के बाद सोना, चाँदी, मदिर-जगह, देश, कोष, दिन, रात, बीज-वृक्ष आदि तथा नर-नारी और भी पशु, पक्षी आदि देह-धारी जीवो की देहे, तत्त्व-विषय, पिण्ड-ब्रह्माण्ड जहाँ तक दृश्य भोग सामग्री है इन सबको अपने से भिन्न देख-देखकर द्रष्टा जीव सुख मान के रीझता, अनुकूल मानकर रागवान होता या कभी इनसे दुख पाकर उपराम भी होता है । यह नियम है कि अपने से पृथक वस्तु ही मे रीझना—खीझना तथा त्याग और ग्रहण होना बनता है, केवल नि सम्बन्ध अपने आप अकेले मे नही । इस प्रमाण से सब मानन्दी-हताओ का द्रष्टा जीव शुद्ध स्वरूप जड़ हन्ताओ से निराला है । वह स्थूल-सूक्ष्मादि दृश्य सुख हताओ का स्वरूप नही, किंतु निज स्वरूप

प्रारब्धि भोग आधार यहि, निश्चय ऐसा जाहि।
तेहिको पुनः न देह है, पारख शुद्ध रहाहि ॥ ९८ ॥

टीका—पूर्व प्रसङ्गानुसार प्रारब्ध भोग का जितना जिस प्रकार आधार देकर समाप्त किया जाता है तथा प्रारब्ध आधार से जिस प्रकार जहाँ तक वन्धन खड़ा हो जाता है और जिस प्रकार उस बंधन को त्यागकर जीवन्मुक्ति मे ठहरा जाता है वह सव भेद पूर्व साखियो मे कहे प्रमाण परीक्षा करके सर्व मोक्ष वाधक क्रिया निश्चय को त्यागकर मोक्ष साधक सर्व प्रयत्न ग्रहण करते हुये अपने स्वरूप पारख को नित्य मुक्त अचल निश्चय करे। ऐसे मुमुक्षु को फिर देह नही होती और वह शुद्ध पारख रूप मुक्त हो जाता है ॥ ९८ ॥

आवश्यक तन व्यौहार जो, पंथी वत करि लेत।
मारग में लोभैं नहीं, जानि आपना हेत ॥ ९९ ॥

टीका—देह रहे तक मुख्य प्रारब्ध व्यवहार पथी के समान वोधवान पारखी संत कर लेते है। जैसे दूर देश का पैदल तीर्थयात्रा करने वाला यात्री चल रहा है, उसे किसी जगह ठहरना भी पड़ता है, भोजन-पानी और वोल-चाल भी किसी से करना पडता है। अनेक गाँव देश और नर-नारी वर्ग राजा रक सव सन्मुख पड़ते, परन्तु मुख्य विरह प्रेम उसका देव-दर्शन मे ही रहता है। देव दर्शन के ध्येय से ही वह मार्ग का मुख्य व्यवहार लेते हुये भी मार्ग मे आसक्त नही होता। जागते-चलते, वैठते, वोलते-मौन रहते हरदम कव देवदर्शन मिले, मेरी अभिलापा पूर्ण हो, वस यही अपना परम हेतु—प्रयोजन निश्चयकर वह कही भी किसी मोहक चीज मे नही मोहता। तद्वत तन मन जगजीव और सर्व जड़सृष्टि से पृथक सदा के लिये मेरी निर्विकार-निराधार स्थिति कव होगी? ऐसा अपना परम ध्येय रख के समीपियो के दिये सुख आराम अथवा देह दुखो

स्पष्ट—जैसे देखने की इच्छा होते ही झट पलक खोल दिये, न देखने का निश्चय होते ही पलक बन्द कर लेते। हाथ फैलाने, चलने-लेटने, उठने-बैठने, दौड़ने इधर-उधर घूमने, खाने-पीने, लेने देने इन सब बातों का भीतर सूक्ष्म देह द्वारा मनन होते ही यथावत इन्द्रियो को कार्य मे प्रवृत्त कर देना तथा रोकने की चेष्टा होते ही रोक देना ये सब बाते जैसे जीव के हानि लाभ निश्चय द्वारा होती रहती है, तैसे उन्ही शस्त्रों से स्मरणों को पूर्ण दुख समझ तिन्हे रोकने या शम करने का दृढ निश्चय करके उस निश्चयता को दृढता से एकरस रखते रखते स्मरणो को शात करके आप आप मुमुक्षु जीव द्रष्टारूप शात हो रहेगा।

प्रश्न—स्मरण मनोद्वेग शांति हित सरल उपाय बताइये ?

उत्तर—चाहे जितना सरल उपाय हो, अभ्यास धारण किये विना कठिन ही दीखेगा। नियमित अभ्यास मे लगन लगाइये, कुछ देर तक नित्य कार्य क्रम हो, सबसे पृथक नि:संग शांत स्थिर आसन आसीन। अपनी तरफ से संस्कार उठावे नही। पूर्ववेग से आशुद्ध स्मरण उठे, तो शीघ्र बल करके विवेक स्मरण प्रवाह बाँध के काम राग रोषादि स्मरण को निर्मूल कर डाले, कदापि कामादि संकल्प न उठे। जब विवेक धारा उठने लगे, तो सहजिक उन्हे आते जाते देख देखकर अपने स्वरूप को सर्व शुभाशुभ वृत्तियों से पृथक समझ दृढकर उसी निश्चय को ही एकरस पुष्ट रखते हुए हानि लाभ रहित उदासीन स्थित रहे। फिर सच्ची लगन से शोध पूर्वक आप ही निवृत्तिमार्ग स्पष्ट दर्शने लगेगा। निवृत्ति मे एकाग्र लगन ही स्थिति दशा है। इसके लिए अधिक एकात और नि:सम्बन्ध तथा अधिक सजगता की आवश्यकता है। यदि एकात मे अधिक उलझन, अपने हृदय की अधिक अशाति बढती दीखे, तो विशेष सत्सग सद्ग्रथ सद्गुरु सेवा भक्ति का ही आधार रखते हुए धीरे धीरे एकान्त रहने

को भूलकर सुख हन्ताओ को धारण कर रहा है, उसको वोध-वैराग्य से त्यागकर स्थित होना चाहिये ॥ १०१ ॥

प्रसंग ८—दृश्य अभाव पारख-समाधि

स्मरणों को मेटे विना, कौन मनुष्य अस आज।
नित नित आपति ना सहै, साधु स्ववश तेहि काज ॥ १०२ ॥

टीका—मेला, वाजार, शहर, आदि मे स्त्री, द्रव्य, स्वाद इत्यादि पदार्थो को देखकर सव तरफ चलते हुए मन स्मरण सव को रोकना ही पडता , यदि न रोके तो एकक्षण भी निवहना दुस्तर हो जाय। एवं स्मरणो को रोके विना कौन ऐसा वर्तमान मे मनुष्य है कि उसे नित्य नये-नये सकट न भोगना पडे ? और सत तो घर-वार जगत का सर्व व्यवहार प्रपच त्यागकर केवल स्मरण को रोक के स्ववश रहने ही के लिये हुआ जाता है।

साराश—जव अज्ञानी विवश होते हुए भी मन को रोकने मे समर्थ है, तो संत को आठो पहर छुट्टी ही छुट्टी है। अगर वे मन को रोकने का अभ्यास करें तो सहज ही स्मरण को स्ववश कर सकते है, इसमे कोई सन्देह नही। अत सत को मनोद्वेग शात करके स्ववश रहना चाहिये ॥ १०२ ॥

सव इन्द्रिन संकोच करि, करि विकास जेहि शस्त्र।
तेहिते गहि स्मरण को, भिन्न आप लखि तत्र ॥ १०३ ॥

टीका—दस इन्द्रियो को जिस भीतरी सूक्ष्म साधन से चेतन जीव समेट लेता और फिर फैला देता है, उसी शस्त्र–साधन अत - करण से चले हुए स्मरणो को भी जीव अवश्य रोक लेगा। क्योकि एक तो स्मरणो को लखने वाला चेतन स्मरणो से पृथक है, दूसरे तत्र अर्थात स्वतन्त्र है। जव स्मरणो को लखने वाला स्मरणो से पृथक चेतन अपने आप स्वतत्र शक्तिमान है तो स्मरणों को स्ववश क्यो न कर लेगा ॥ १०३ ॥

एकमेक मिल के शिथिल हो जाना। इसके हटाने अर्थ वारम्बार दृश्य को पृथक देखना चानिये। ३—थोड़ी देर भी स्थिरता से न वैठ सकना। ४—अल्प स्थिरता से पूर्ण मान के कार्य बन्द रक देना। ५—स्वार्थिक हानि-लाभ की फिक्र इन दोषो के हटाने अर्थ दूर-दूर चल के नैराश्य-विवेकयुक्त अभ्यास बढाना चाहिये।

क्रिया जहाँ तक जड़ सबै, एक लेय यक ठेल।
भिन्न आप लखि ताहिसे, पारख स्वबल अकेल॥१०५॥

टीका—जहाँ तक चाल है सो सब जड़ दृश्य है। जीव जड देह के सम्बन्ध ही से एक क्रिया को पकड़ता तो दूसरी को त्याग करता। भाव यह कि संकल्पो को ग्रहण करना और त्याग करना ये दोनो देहोपाधिकृत है। इससे यह निश्चय करे कि ग्रहण-त्याग दोनो क्रियाओ की परीक्षा करने वाला मै दोनों से पृथक हूँ। मै चलवृत्ति और स्थिरवृत्ति दोनो का ज्ञाता हूँ। अपने पारख स्वबल से सर्व चल वृत्तियो को त्याग, स्थिरवृत्ति करके पुन· मै स्थिरवृत्ति का भी ज्ञाता अकेला सदा निराधार स्वतंत्र स्थित हूँ। यह ही सच्ची समाधि पारख भूमिका एव स्थिति है॥ १०५॥

जड़ मे परीक्षा धर्म नहीं है इसलिये जो सर्व की परीक्षा करना है, वह चैतन्य का स्वबल। ज्ञान चैतन्य का खास स्वरूप ही है। चैतन्य अखण्ड पारखरूप नित्य है। अतः देहोपाधि कृत अत करण साधन से चाहना मानन्दी सर्वकी परीक्षा करके सबसे भिन्न स्वत पारख रह जाता है।

प्रश्न—क्या इसमे सिद्धासन-पद्मासनादि और प्राणायाम आदि की भी जरुरत है ?

उत्तर—कोई आसन हो, देह को स्थिर करने का हेतु है। किसी भी विजाति भास मे योग—मेल नही करना है बल्कि परख-परख के सबसे भिन्न स्वत. रहना है। सो मनोद्वेग को भिन्न देखते रहने के

का थोडा थोडा अभ्यास बढावे। अथवा अपने स्वत: अनुभव विवेक द्वारा जिस किसी प्रकार रहने से शातिवृत्ति की पुष्टि होकर एकरस पारख स्थिति दृढ रहे, वही उपाय सर्वाङ्ग भली प्रकार करना चाहिये। उसमे पारखी गुरुदेव का और सद्ग्रथ सम्मत मिला रहे।

स्मरण उठावै जीव ही, बाह्यवेग करि पुष्ट।
तेहिको जब देवै नहीं, आप ताहि लखि रुष्ट ॥ १०४ ॥

टीका—स्मरणो को जीव ही सत्ता देकर उठाता है और जीव ही उन स्मरणरूप मनोद्वेगो को बाह्य इन्द्रियों से विषय भोग और वह व्यवहार क्रियाओ द्वारा पुष्ट कर लेता है। अब तहाँ स्मरणो को वश करने के लिये पूर्व प्रकार शक्ति न देवे अर्थात अपने स्वरूप को भिन्न जानकर प्रथम वाह्य सर्व विषय क्रियाओ और वाह्य बहु व्यवहार का सम्बन्ध छोड़ देवे तथा मनन मे भी सत्ता न देवे तो वाहरी पंच विषय ग्रहणरूप अहार न पाने से भीतर के स्मरण अधिक खिचाव न करेगे, बल्कि शिथिल पड़ते जायँगे। पुन.–पुन: पूर्व की देखी, सुनी, भोगी हुई क्रियाओ के वेग से जो जो मनन चिन्तन दृश्य होते रहे तहाँ पर उनको अपने से भिन्न देखता ही रहे, हठात मनोद्वेगो के दृश्य पडते ही हानि कारक जाने देवे। रुष्टदृष्टि से देखे, मोह दृष्टि से नही, रुष्टि कहिये सर्वथा विनाश करने की दृष्टि से शत्रु वत देखे। इस प्रकार स्मरणो को अपने से भिन्न और रुष्ट—सहारदृष्टि से देखते रहने का अभ्यास करते रहने से स्मरण वश मे हो जाते है ॥ १०४ ॥

प्रश्न—मनोद्रष्टा-स्थिति मे भुलावा क्या है ?

उत्तर—वृत्ति देखते समय निद्रित हो जाना। इसके हटाने अर्थ निद्रावृत्ति को भी पृथक समझ के द्रष्टा हो जाय या तो पहले ही से निद्रा पचा ले, भोजन हल्का हो। २—लयता—किसी भावना मे

देखने का परिश्रम रहेगा तब तक मनोद्वेग स्थिर रहेगे। उठने पर भी मृतकवत दृश्य होगे। पश्चात विवेकरूप मे ढलना ही स्थिति फल है।

अति सुक्षम यह हाल है, शीघ्र परै कस जान।
सुज्ञ लखैं तेहि धीर धरि, जिनहिं जगत दुख ज्ञान ॥१०७॥

टीका—ऊपर का कथन स्थिति प्रसग अति सूक्ष्म है। सर्व स्थूल व्यवहार दृष्टि से अलग है, फिर जल्दीबाजी से-या विवाद करके हठ या पक्ष पकड के यह हाल जाना भी कैसे जा सकता है? सदा धर्माचरण करने वाले नम्र निराभिमान और हठ-पक्ष रहित कल्याणार्थी समझदार अधिकारी ही धैर्य धारणकर बहुत ठहर के इस बात को जान सकते है। जिनकी दृष्टि मे हरदम जगत-ऐश्वर्य, मान-बड़ाई सम्पूर्ण सुख विहार धधकती अग्नि के समान नाशवान, दुर्गुण दोष तृष्णा परवश दुखपूर्ण जचता रहता है, वे ही दुख छुडाने अर्थ इस स्थितिदशा की आवश्यकता समझ के स्थिति भेद को समझेंगे, ठहरेंगे। और जिन्हे जगत मे सत्य सुख निश्चय है, उन्हे इस बात की आवश्यकता समझ में न आने से वे समझने मे लक्ष्य ही न देंगे, तो समझेंगे ही क्या? ॥ १०७ ॥

जग दुख देखब कठिन है, और सहज सब बात।
देह भाव मद दोष बिनु, कैसे निज को भात ॥ १०८ ॥

टीका—रण मे लड़ना, युवती के हाथ बिकना, तरह-तरह के विज्ञान शोधकर यत्र-मशीन बनाना, जग जीवो के मन मोहक क्रिया वाक्य कहना, सबको आकर्षित करना, वाक्य चपलाई से सबको जीत लेना, कहाँ तक कहा जाय निज उक्ति-युक्ति से समुद्र पहाड़ उलघन करना, खगोल, भूगोल का हाल जानना, नाना दृष्टात कथा आरोपण करना इत्यादि सब कुछ सरल है। ये सब जीव प्रसन्नता से कर लेंगे, किन्तु जगत मे निरन्तर दुख देखना, जगत के सुख भोगो

साधन से स्थिति हो जाती है। श्वास चढाने की क्या जरुरत ? हाँ ! एकान्त अधिक आवश्यक है। वाहरी शुद्ध-विक्षेप रहित अल्प योग्य व्यवहार-आहार की आवश्यकता है। भोग कामना तृष्णा लोभ करेगा तो स्थिति नही मिलेगी, ताते इनका त्याग ही मुख्य स्थिति सामग्री है।

जैसी रुकती वृत्ति लखि, तैसहिं शांति आय।
चिन्तन होवे और जब, तबही ना ठहराय ॥१०६॥

टीका—स्मरणो को तोडने के लक्ष से जितना ही स्मरणो को देखने मे लक्ष दृढ किया जायगा, उतना ही स्मरण रुकेंगे। जितना ही स्मरण रुकेंगे उतना ही स्मरणो की चचलता रहित जीव को शाति प्राप्ति होगी। आगे स्मरण का भार न पडने से हटाने का भी पुरुषार्थ शिथिल हो जाता, इस हेतु जब कभी देखने का लक्ष छूटकर अन्य चिंतन करने लगेगा तो फिर स्मरण नही ठहरेंगे। संस्कारो का धीरे-धीरे आगमन होकर चचलता का अनुभव होने लगेगा। साथ ही जब स्मरण चचलता वोझ शूलवत दुखरूप दीखे और वार-वार निवृत्ति की तरफ खीचे, सुख प्रतीत होवे तब जानिये कि इस साधन के द्वार मे कुछ प्रवेश होने लगे हैं। इस स्थिति के फलरूप मे दिनो-दिन परीक्षा वल वढके स्मरणो की वशिता मिट जायेगी। इन्द्रिय मन दमन करने की विशेष-विशेष शक्ति आ जायगी। सूक्ष्म कसर विकार, हना जानने मे आकर उन्हे नष्ट करने की अमित शक्ति प्राप्त हो जायगी, अत परमपद इच्छुक को इस साधन मे अवश्य परिश्रम करते रहना चाहिये ॥ १०६ ॥

प्रश्न—मनोद्वेग कव तक शात रहेगे ?

उत्तर—स्वय अभ्यास करके देखिये। विना स्वय अभ्यास किये अर्थात फल चखे विना स्वाद कैसे मालूम होगा ? वानगी मात्र अनु-भव हो सकता है। जव तक स्मरणो को अत्यन्त सजगता से पृथक

मनन प्रवाह को देखते, मनन त्याग के ध्येय।
देखन मात्रहि काम लै, और फिक्र तजि देय॥ ११०॥

टीका—प्रथम धर्म, भक्ति, वोध, वैराग्य को प्राप्त करते हुये पुन' स्थिति अभ्यास मे चित्त देवे, उठती हुई सकल्प धारा को अपने से भिन्न देखता रहे, इस ध्येय-निश्चय से कि मनन सव हमसे छूट जायँ अर्थात शांत हो जायँ। इस ध्येय को लक्ष्य मे रख के जो-जो संकल्प उठे उनको देखता ही रहे, वस यही काम करे और सर्व वाहरी-भीतरी आशा-चिन्ता-आवश्यकता छोड देवे। अन्य फिक्र रखने से मनोद्वेग देख-देख के स्थिर रहना यह कार्य वन ही नही सकता। ताते सर्व शुभाशुभ चिता त्यागकर मनोद्रष्टा में लीन होवे॥ ११०॥

प्रश्न—स्थिति-अभ्यास मे सहायक क्या है?

उत्तर—स्थितिवान का समय-सयय पर संग, भीडभाड़ से पृथक, काम, वैर, मद, लोभ मन के तरङ्गो से वचकर सद्बोध-विवेक ही का स्मरण करना, निर्णय वचनो का भी पाठ-अर्थ हुआ करे। समय-समय पर निर्णय कथन, सद्शिक्षा जरूरी है और कोई भी जगत से व्यवहार न रक्खे। फिर सबसे निष्फिक्र होकर नित्य-नित्य मनोद्रष्टा का अभ्यास बढावे, किसी समय मद को न आने दे।

मनन भुलावा जो वहुरि, छोड़ि ताहि वहि धारि।
ऊब न लावै ताहि में, करतव्य अपन विचारि॥ १११॥

टीका—मननो को भिन्न देखते-देखते फिर-फिर मननो में जो भुलावा हो-होकर देखने का कार्य छूटके कुछ और ही और चितन होने लगता है, तो जव अन्य संकल्पो मे भुलावा होने लगे, तव पुन उसे अपने से भिन्न परीक्षा करके सकल्पों को छोडकर पूर्व जो देखने के कार्य मे जुटा था, उसे फिर धारण करे। निरन्तर सव स्मरणो को भिन्न ही देखा करे। जव फिर मनन सामने होने लगे, तो फिर

को सर्पवत भयदायक लक्ष्य मे रखना वह वात वडी कठीन है। निरन्तर सद्अभ्यास से यह वात सरल होती है। जवतक देह मे प्रियता हन्ता मे दृढ दोप दर्शन न लाया जायगा, तव तक निवृति मार्ग अपने को अच्छा ही कैसे लगेगा ? अच्छा लगना तो दूर रहा मनोनाश की वार्ता ही विपवत प्रतीत होगी ॥ १०८ ॥

देह भाव इन्द्रिय सुख सारा। जव तक लखत न ताहि असारा॥
तव तक चेतन भाव न आवै। नशा वेग उतरे सुख पावै॥

धरम वुद्धि विनु प्राप्ति नहिं, धीर गंभीर विचार।
यथार्थ साज लै कै चलै, तवही काज संभार ॥ १०९ ॥

टीका—दया, धर्म, परोपकार, यथार्थ रहस्यवान संत गुरु की भक्ति उपासना आदि धर्मपथ पर चलने की जिसे वुद्धि नही है, जो धर्मानुकूल नही वर्तता, जिसका अतःकरणरूप शीशा ही असत कर्म, असत वुद्धि से छादित है, विपय सुख मान-माया संग्रह हेतु जो विक्षिप्त मति अत्यंत चचल है; उसे अतिशय श्रेष्ठ स्वरूपस्थिति का विचार नही प्राप्त हो सकता। यह सर्व शिरोमणि स्थिति पाने के लिये यथार्थ साज कहिये सामग्री शुभाचरण शुद्ध व्यवहार शुद्ध आचार शुद्ध विचारयुक्त धर्मपथ मे चले, सर्व शुद्ध वर्ताव रक्खे, तव ही अपने परमार्थ का कार्य स्मरणो को स्ववश करने का ध्येय पूर्ण कर सकता है, और उपाय नही ॥ १०९ ॥

प्रश्न—सर्व श्रेष्ट मनोद्रष्टा स्थिति में वाधक क्या है ?

उत्तर—कुसगादि दुराचरण से तो स्थिति लाखो कोस दूर ही है, वल्कि सावक अंग भी सच्चाई और युक्ति से न किया जाय तो वाधक हो जाता है। एकान्त मे अकेले स्वच्छन्द रहने मे भी यदि सद्ग्रन्थ भक्ति भाव ओर सवमे धर्मपूर्वक वर्तते हुये सिद्धान्त पुष्ट वाहरी शुद्ध आचरण पुष्टि द्वारा मानसिक धारा शुद्ध न होगी तो स्थिति न होगी।

मन मकरद असूझ । कहँहि कबीर पुकारि के, तै अकिलकला ले बूझ ॥" बी० ॥

स्ववश भये शक्ती बढ़ै, जीतै मन की चाल ।
आप आप ठहरै तवै, नशै वन्ध जग जाल ॥ ११४ ॥

टीका—पूर्वोक्त स्मरणो से भिन्न रहकर देखने का साधन करते-करते स्मरण-रहित स्थिति होने से अपने आप स्ववश-स्वतत्र होकर ठहरने की शक्ति बढ जाती है । दुस्तर मन की चाल—काम—क्रोधादि वासनाये कब्जे मे आ जाती है । अपने आप स्वत स्थिर हो रहता है । जगत बन्धन सुखाध्यास हन्ता हर्ष शोकादि काम क्रोध विकार और बाहरी प्रलोभन प्रपच सब जगत जाल बधन नष्ट हो जाते हैं । वे नही सताते, ये द्रष्टापन अभ्यास का अक्षय अमोघ फल है ॥११४

'मन मनसा सकल्प मिटाओ । जाते ठहरि हसपद पाओ ॥'
ते द्रष्टा साधूजन मुक्ता । ते द्रष्टा शिष्य गुरुमुख युक्ता ॥पच०॥

प्रति दिन समय निकारि कै, करै यही अभ्यास ।
होय सकल दुख नाशि तब, ठहरै अचल निवास ॥ ११५ ॥

टीका—रोज-रोज अवसर निकाल के, सब बाहरी भार को डालकर, लगातार इसका अभ्यास करते हुये इस मनोद्रष्टा साधन को पुष्ट करते रहना चाहिये । कल्याण के नित्य आवश्यकीय अगो मे यह प्रधान अग है । इस साधन के किये बिना एक दिन भी न रहना चाहिये । जब इस मनोद्रष्टा का अभ्यास लगातार चालू रहेगा, तो मनसम्भव कर्मकाल गुण अवस्था जाल कृत देहोपाधि सम्बन्धी सर्व दुख-द्वन्द्व नष्ट हो जायेंगे और जीव अपने आप पारख स्वरूप अचल स्थित रहेगा ॥ ११५ ॥

ना मिलने की चाहना, ना छुटने को सोच ।
धन प्राणिन निर्वाह में, कहँ न मन को रोच ॥ ११६ ॥

टीका—स्वरूपस्थिति मे मग्न होने के पश्चात जीवन्मुक्ति दशा

फिर वही देखने के कार्य को सँभारे । इस कार्य मे ऊबे-डूबे नही । हलवली गाफिली आलस्य न लावे । यह समझ के कि हमारे कल्याण का मुख्य कार्य यह स्वरूपस्थिति ही है ॥ १११ ॥

शीघ्र शीघ्र पूरब छूटै, उत्तर देर लगाय ।
बादि स्ववश ह्वै जाय वहि, जो करनो निज काय ॥ ११२ ॥

टीका—पहिले देखने वाला कार्य जल्दी-जल्दी छूट जाता है, फिर अभ्यास करते-करते उत्तर—पीछे-पीछे देर-देर से अपने से भिन्न मन को देखने वाला कार्य छूटेगा । अन्त मे मनोद्रष्टा वाला कार्य स्ववश हो जायगा अर्थात स्मरणो को देखने का अभ्यास पड जायगा, तव फिर जो अपना कर्तव्य मुख्य करना था वह पूर्ण हो जायगा ॥ ११२ ॥

प्रश्न—इस अभ्यास मे जो कि प्रथम मनोद्वेगो की जोर से खलभली मचती है उसका शमन कैसे हो ?

उत्तर—अभ्यास मे मन लगाओ । हर समय यह वात नही । किसी समय हो तो बोध लक्ष्य से अंत·करण कस के शम हो रहो । अथवा पूर्व से वत-तितिक्षायुक्त खूव सत्य शव्दो का पाठ करो । फिर वेग शम होने पर स्थिति अभ्यास किया करो, वस स्थिति ।

मन देखत मन लीन नहिं, निज शक्ती लौटारि ।
शक्ती जब पावै नहीं, तब सो क्षीण निहारि ॥ ११३ ॥

टीका—सम्पूर्ण स्मरण मनोधारा को अपने से पृथक देखते रहने से मनोद्वेगो मे अपने आप द्रष्टा मिलता नही । द्रष्टा की शक्ति अपनी ही तरफ लौटती रहती । इस प्रकार जव मनोमय जीव की शक्ति नही पाता, तव वह देखते-तेखते ही नष्ट होता रहता, तव जीव स्ववश विराजता है ॥ ११३ ॥

श्री कवीर साहेव भी इस साधन को पुष्ट करते है । "कर्हाह कवीर भूल की औषध, पारख सवकी भाई ॥ नाना रंग तरग है,

दृष्टि से छेदन करने की शक्ति प्राप्त करे। इतने लक्षण युक्त कल्याणार्थी को होना चाहिये, तब जीवन्मुक्तिदशा एकरस विराजेगी। इनमे यदि सदेह[1] हो तो ठहराव नही हो सकता ॥ ११७ ॥

१. टिप्पणी—प्रश्न–सशय रहित बोध (ज्ञान) कहाँ तक है ?

उत्तर—ऊपर तो कहा ही गया, फिरभी सुननेकी इच्छा हे तो सुनिये और नि.संशय स्वरूपस्थिति कीजिये। जैसेएक प्रपंचकामना रहित मनुष्यहो वह अपने खाने-पीने की जगह घूमने टहलने की जगह, कुल शरीर रक्षा की जगह जान जावे, बस इतना ही जानने से उसे देहरक्षा मे रुकावट नही होती। इसके अलावा गाँव भर मे कितने घर है ? कौन-कौन घर मे कौन-कौन हे ? उनमे क्या गुण-दोप है ? उनका कहाँ-कहाँ सम्बन्ध है ? उनके कितने-कितने खेत बाग व्यापार है ? अथवा देश मे क्या हो रहा है ? इत्यादि विस्तार प्रपच न जानने से शरीर रक्षा मे रुकावट नही। तैसे मोक्षार्थी पुरुप को बस अपना स्वरूप कैसा है ? इसी हेतु जड तत्वो की देह के मुख्य-मुख्य विभेद समझ के और जीव जिस विपयाध्यास मे बँधा है तथा उसका छुटकारा इस-इस प्रकार होगा। रक्षक-भक्षक के भेद इस प्रकार है। हम एकरस इस रहस्य से निजपद मे टिके रहेगे। बस इतना ही जानना है और विशेप जानने का कोई प्रयोजन नही। चन्द्र ग्रहण, सूर्य ग्रहण, दिन-रात, शीत-उष्णादि सर्व जड तत्वो का क्रियान्तर है। अत वे सब उन्ही से होते है। क्यो ? कैसे ? पृथक-पृथक सहज मे जान मिले तो जान मिले नही तो सहज ही समाधान कर लेना। कोई का प्रश्न हो कि समुद्र का जल कितने मन है ? इसका उत्तर यह है कि इसको न जानने से क्या हानि हे ? जब कोई हानि ही नही तो इसकी कल्पना ही व्यर्थ है। समुद्र जलराशि है। कियाशील अनादि कारण रूप है। इतना ही जानकर भ्रान्ति का अत है। इसी प्रकार कारण समूह समष्टि रूप से सर्व भ्रान्तियो का अत कर देना चाहिये। जीवन भर मन शात रख के सत्य स्वरूप स्मरण रखना ही पूर्ण नि.सशय प्रबोध (ज्ञान) है। इतने ही से मोक्ष परमपद स्थिति सुलभ है। और भोग हेतु नाना सर्व लोक कला भेद जानने का कही अन्त ही नही। ये सब बाते दृष्य की ओर भोग वासना वर्धक है। इनमे कही स्थिति नही। अस्तु एक सद्स्वरूप की स्थिति जानकर ही सर्व लोक नृत्यवत देखकर सबसे भिन्न स्थिति करना ही शीघ्र परम शातिपद प्राप्त करना है।

दो०—युवती धन कुल सकल सुख, सबमे तृष्णा शोक।
सर्व वासना त्यागि थिर, तेहि सम नहि श्रय लोक ॥

मे किसी नये-नये देश प्राणी पदार्थो के मिलने की काक्षा न करे और मिले हुये यदि छूट जायँ तो उनकी चिन्ता भी न करे। रुपये-पैसे आदि धन मे, नर-नारियो के प्रलोभनो मे और निर्वाहिक भोजन-छाजन आदि मे कही भी मन को न बाँधे। इनमें आवश्यक से विशेष का तो दूर से त्याग करे। आवश्यक मे भी उत्तम-उत्तम की कामना त्याग कर मध्य भाव मे वर्तते हुये कही भी अच्छा मानकर मनोद्वेग मे खिचावे नही, सबसे उदासीन रहे ॥ ११६ ॥

प्रारब्धि भोग निर्वाह में, संशय रहित प्रबोध।
पृथक मुक्त संशय रहित, समझ मुक्तपद शोध ॥ ११७ ॥

टीका—प्रारब्ध भोग खास देह निर्वाह मे सदेह रहित रहने का प्रबोध कहिये दृढ ज्ञान करे। आगे निर्वाह कैसे चलेगा ? रोग व्याधि या किसी संकटदशा मे कैसे बीतेगा ? इत्यादि जो चिन्ता व्यापने लगती है, उसको वैराग्यवान निश्चय करें कि जैसा देह का प्रारब्ध होगा, तैसा वर्तमान व्यतीत हो जायगा। जहाँ तक सहन होगा, तहाँ तक सहा जायगा, न सहन होगा तो क्या प्रारब्धग्रन्थि खुल ही जायगी। चेतन स्वरूप का तो कुछ हानि-लाभ नही, फिर क्या चिन्ता ? ऐसा विचार से निश्चित अपने स्वरूप मे तदगत रहना चाहिये। इस प्रकार प्रारब्ध भोग निर्वाह मे सदेह रहित दृढ बोध हो। पुन जड़ तत्त्व और अनुमान-कल्पना सर्व भास-अध्यास से जीव पृथक है। सदेह रहित सर्व से पृथक जीवपद ही शुद्ध-मुक्त है। अन्य दूसरा नही। इसलिये मुक्त स्वरूप जीव देहोपाधि कृत भ्रम बन्धन को त्यागकर अवश्य मुक्त हो रहेगा। इस बात मे सशय रहित ज्ञान होना चाहिये तथा मुक्तिपद का सब रहस्य स्वयं शोधन करने की समझ दृढ कर लेना चाहिये। जिससे कि मन और जग जीव के किसी भी तर्क-वितर्क से अपने मुक्ति रहस्य धारण, मुक्ति ठहराव, मुक्त स्वरूप मे संशय न खड़ी हो जाय। कल्पित सब सदेहो को स्वयं

सब प्राप्त हो चुका है, होना न कुछ भी बाकी।
शम लक्ष प्रेम शम कर, गुरु पर्ख स्व डटावै॥ ४॥

प्रसग ६—स्वरूप विवेशता

सर्वै काम को छोड़ि कै, रहै आप में आप।
पारख पाय अनाथ गत, मिटै जगत दुख पाप॥ ११६॥

टीका—लोक स्ववश हेतु, युवती धन पुत्रपौत्र स्वर्गादि प्राप्ति और जगत प्रसिद्धि हेतु काम्य कर्म जो किया जाता है, सो सब इन्द्रिय गोचर नश्वर छूटने वाले होने से तुच्छ है। अतः तिन सबकी कामना और प्रयत्न त्यागकर अपने नित्य शुद्ध स्वरूप मे ठहरना चाहिये। जो इन सबोको देखने वाला ज्ञान स्वरूप अविनाशी स्वय प्रकाशी है, वह अति श्रेष्ठ सदा अपने आप अपरोक्ष है। जो दूर नही, निकट नही, बल्कि दूर-निकट का ज्ञाता स्वय अपने आप है, अपरोक्ष है, ऐसा अपने आपको निश्चय कर स्ववश निर्वासना होकर ठहरना ही अपने आपमे रहना है। अपने स्वरूप की एकरस पारख-दृष्टि प्राप्त करने से विषयासक्ति कृत चाल नष्ट होकर मनोमय जनित अनाथता छूट जाती है। "दो०—काम क्रोध मद लोभ वश, डुबत डुबावत जीव। याते सर्बहि अनाथ है, विन गुरु कौन वचीव॥" सर्व जड़ग्रन्थी की परवशता का जहाँ अत है, वही सनाथ—स्वरूप स्थिति है, तिसे गहना चाहिए। जगत मे जो कुछ चार खानियो में तन धर-धर के प्रतिकूलता का दुख और त्रिविध ताप सहना पडता है, वह सब अपने आप पारख स्वरूप मे स्थित होने से मिट जाता है, अतः अपने आपको पकड़ो॥ ११६॥

सब काजन को काज यह, सब जापन को जाप।
सब ज्ञानन को ज्ञान यह, जेहिते पुनः न ताप॥ १२०॥

टीका—धन-धान्य, स्त्री-पुत्र, राज-काज प्राप्ति हेतु पुरुपार्थ तथा विद्या-अविद्या, पठन-पाठन, पदार्थ-विज्ञान-शोध, योग-भोग सम्बन्धी

जो आवश्यक निर्वाह तन, तेहि चाहत विन चाह।
पचत न तेहिके हेतु को, निजके लक्ष निवाह ॥ ११८॥

टीका—पारखवोध और शुद्ध रहस्य द्वारा सर्व सशय कामना चिताये त्याग हो जाती है। जो कहा जाय कि प्रारब्धरूप देह निर्वाह आदि की तो चाहना रहेगी। तो निर्वाह भी निर्वाह ध्येय लेकर ही ज्ञानी पुरुप करते है। चलने फिरने, खाने पीने, सोने जागने, मिलने विछुडने, देश विदेश, शिक्षा करने, मौन रहने, रोगी अरोगी हर हालत मे वे पिण्ड-ब्रह्माण्ड की आशा-वासा को दुखपूर्ण वन्धन जानकर तिसे त्यागने के ही पुरुपार्थ मे तत्पर रहते है। स्थूल व्यव-हार उनका सहजिक होता रहता। निज के लक्ष्य अर्थात जैसा हर्ष-शोक, दुख-सुख, मिलन-विछोह, हानि-लाभ आदि से रहित एकरस अखण्ड स्वरूप अपने आप शुद्ध चैतन्य है, तैसा ही लक्ष्य रखते हुए देह निर्वाह वे करते है। देह निर्वाह मे फूलते-पचकते नही। उत्तम मध्यम मे उद्वेगित न होकर स्ववश रहते। सतोपयुक्त प्रारब्ध गुजा-रते हुए अपनी स्वरूपस्थिति को पुष्ट रखते। सोई मुक्त पुरुप है ॥ ११८ ॥

गजल

तू नित्य चिद अनाशी, निज रूप शोध लावै।
ज्ञाता अभय अखण्डित, निराधार शुभ रहावै ॥ टेक ॥

यह नैन वैन सैना, यह देह गेह ऐना।
स्मर्ण जो उठै सव, छिन मे सवै दुरावै ॥ १ ॥

अस जानि राग रोगा, तज दे विजाति शोगा।
मन को भी भिन्न देखै, वैराग्य में समावै ॥ २ ॥

निर्वाह मे गरीवी, निर्णय मे हो धनी वर।
रहनी मे पुष्ट होकर, मन मार के वितावै ॥ ३ ॥

अवेद, अज्ञान, अन्धकारमय, प्रपंच वार्ता बन्धनरूप है ॥ १२१ ॥

प्रश्न—सर्वोच्च वेद-शास्त्र क्या है?

उत्तर—वेद ज्ञान को कहते है। सर्वोच्च ज्ञान स्वरूपज्ञान है। जिनसे निज स्वरूप का ज्ञान हो, ऐसे बोधक सत सद्गुरु के वाक्य यथार्थ अत करण के विचार ही सर्वोत्तम वेद-शास्त्र है, यही मंत्र है।

चैतन्य जीव बिन ना कछू, जहँतक जेते मान्य ।
लै लै याहि अधार सब, कल्पित मग भरमान्य ॥ १२२ ॥

टीका—जहाँ तक मत पथ ग्रथ कला कौशल कर्म उपासना आदि की मान्यता दिखाई दे रही है, उन सबो को प्रत्यक्ष नर देह-धारी चैतन्य जीव ही सिद्ध करते है। यदि चैतन्य जीव देह मे न हो, तो कोई भी कल्पना नही हो सकती। जीव की सत्ता बिना देह मुर्दा है और मुर्दारूप पृथ्वी, जल, अग्नि-वायु जड़ तत्त्वो मे कही भी कल्पना करने की शक्ति नही है। इस स्वयं चेतन का आश्रय लेकर नर जीव ही कही ईश्वर, ब्रह्म, देव-देवी, भूत-प्रेतादि कल्पना मात्र को चैतन्यरूप अनुमान कर लिये। परन्तु इस अपरोक्ष चैतन्य जीव के अलावा कही न तो सर्व ब्रह्म आदि की सिद्धि है और न कोई सबको एक ऐन-कानून मे चलाने वाला सर्व शक्ति रखने वाला ईश्वर ही का दर्शन होता है। इसलिये यह चैतन्य जीव ही पंच विषय के नशा मे होकर अपनी सत्यता तृप्तता को जड़ मे कल्पना[1] करके अपना ही आधार-सहारा-अवलम्ब पकड़-पकड के अपनी कल्पना से

१ टिप्पणी—वेदादि ग्रन्थो का आधार चैतन्य जीव ही है। कहा भी है—

दोहा—"ब्रह्म रूप अहि ब्रह्मवित, ताकी बाणी वेद।
भाषा अथवा सस्कृत, करत भेद भ्रम छेद ॥ (वि० सा०)
ईश ब्रह्म परमातमा, पार ब्रह्म जो कोय।
यह जीव की निर्जीव है, पडित कहिये सोय ॥ कबीर प० ॥

सर्व पुरुषार्थों से बढ़कर यह अपनी स्वरूपस्थिति का कार्य है। क्योंकि सब कार्यों के फल मे काम-क्रोध, लोभ-मोहादि की वृद्धि-पुष्टि, आशा-तृष्णा दिखाई दे रही है और अपनी स्वरूपस्थिति के कार्य मे लगने से सर्व मानसिक रोगो की निवृत्ति होकर परम शाति की प्राप्ति होती है। अत "सब काजन को काज यह"। ईश्वर, ब्रह्म, ॐ, राम, खुदा, अल्ला, ओह, सोह, ररा, ममा आदि सर्व जापो मे बढकर यह जाप है "मै अक्रिय, अचल, अचाह, सबसे न्यारा, चैतन्य स्वरूप हूं।" ऐसे निरन्तर बोध को स्मरण रखने से विजाति वासनाये भस्म हो जाती है। अत· यह सर्वोपरि जाप है। सर्व लौकिक, वैदिक ज्ञानो से बढकर यह स्वरूपज्ञान है, जिस स्वरूप-स्थिति के कार्य—जाप और ज्ञान को पाकर पुन बारम्बार देह धर-धर के त्रिविध ताप में नहीं जलना पड़ता। वर्तमान मे भी सर्व मानसिक तृष्णाओ का अत होकर परम शाति की प्राप्ति हो जाती है॥ १२०॥

सब बेदन को बेद यह, सब शास्त्रन को शास्त्र।
जेहिको रचना सब रचे, तेहि तजि सबहिं अशास्त्र॥ १२१॥

टीका—ऋग, यजु, साम, अथर्व ये वेद और धनुर्वेद, गधर्वादि उपवेद, इन सब वेदो से बढकर यह स्वरूपज्ञान का निर्णय है। मीमान्सा, वैशेषिक, पातंजल, साख्य, वेदान्त, न्याय ये छ शास्त्रो से बढकर यह स्वरूपज्ञान निर्णय श्रेष्ठ शास्त्र है। क्योंकि जिस स्वय चैतन्य हेतु मुक्ति स्थिति परमपद प्राप्ति और सर्व दुख निवृत्ति के भाव से ही अपनी-अपनी समझ अनुसार सब वेद-शास्त्र, पुराण-गीता आदि रचे गये, परन्तु तिन्हो ने विविध विरोधी अनमिल बानी मन्तव्य-सिद्धान्त होने से पारख से पृथक सर्व सिद्धांत मिथ्या ठहरे। सर्वका थापक-ज्ञापक-निश्चय कर्त्ता चैतन्य सदा सत्य ठहरने से तिस सत्य निर्णय स्थिति बोधक वचन को छोड़कर बाकी सब अशास्त्र,

तीत आदि अदृश्य सब धामो से बढकर यह स्वरूपस्थिति धाम परम विश्रामस्थल है । क्योकि अपना आप सर्व ज्ञाता एकरस निरतर स्वत नित्य प्राप्त है । अत जिससे अपने अविनाशी अक्षय सत्य स्वरूप मे सदा के लिये स्थिति हो जाय, बस वही उपाय साधन युक्ति सर्वोपर ग्रहण योग्य है । यही सब बातो की बात, सब पुरुषार्थो का पुरुषार्थ है, इससे बढकर कुछ नहीं ।। १२४ ।।

निज स्वरूप स्मृति—भजन

सुमिरौ निज स्वरूप अविनाशी, जेहि सुमिरे दुख द्वन्द बिनाशी ।टेक।
प्रकृति पार शुचि अति अभिरामा, तन मन पार स्वतः निज ठामा ।
प्रोक्ष प्रत्यक्ष देखि मन द्वारे, रहि अपरोक्ष आप निरधारे ।।
अस स्वरूप भासिक कस भासी, सुमिरौ निज ... ।। १ ।।
तीन काल जहँ भौतिक नाही, ज्ञान मात्र सब ज्ञाता आहीं ।
सर्व रूप नहि व्यापक नाही, परखि परखि सब भिन्न रहाही ।।
पारख रूप शुद्ध तजि आशी, सुमिरौ निज .... ।। २ ।।
नहि परमाणु न शून्यहि कोई, शून्य परमाणु को जानत जोई ।
नित्य प्राप्ति नित आप रहावै, तदपि भूल केहरि सम लावै ।।
भूलत स्वपन माहि गल फाँसी, सुमिरौ निज .... ।। ३ ।।
मस्तक नाभि प्रमाणुहि ढेरी, चारि अन्ध मिलि देख न हेरी ।
शीत उष्ण कोमल जड कठिना, देखत भिन्न क्रिया जड रचना ।।
सर्व परीक्षक भिन्न है खासी, सुमिरौ निज .... ।। ४ ।।
भूललक्ष्यवश निजनिज बिसर्‌यो दूरिबिषय कहँनिजलखि पकर्‌यो ।
अब अस गाढ मूढता पकरी, सप्नेहु सुधि नहि आपन जसरी ।।
मृग भ्रम दौड़त नाहि सुपासी, सुमिरौ निज . .. ।। ५ ।।
बिषय भोग सुख तनमन चितन, बिरह बियोग सतावत हरक्षण ।
अस आश्चर्य कहत नहि बनई, आप बिरान बिरान स्व भनई ।।
सुत बित नारि घटा सम नाशी, सुमिरौ निज ...... ।। ६ ।।

आप ही नाना भ्रमपूर्ण मत पंथ-ग्रथ प्रकट करके स्वय उसी मे भरम रहा है और दूसरो को भी भरमा रहा है ॥ १२२ ॥

मुख बिन बानी ना बनै, बिना भये नर देह ।
नहीं स्वयं अनुभव कोई, सबको कल्पक येह ॥ १२३ ॥

टीका—जिभ्या, कण्ठ, ओष्टादि सयुक्त मुख न हो तो कोई भी वानी बोलत नही बनेगा । बावन वर्ण युक्त विविध भाषा का ज्ञान इस मनुष्य देह से ही हो सकता है । बिना मुख के एक भी वानी होती नही । मनुष्य देह को छोड़कर अन्य ठोर से वेद, कुरान, शास्त्र या कोई भी ग्रन्थ वन गये, इसका कोई न तो अपने पास स्वत: प्रमाण ही है, न किसी को इसका युक्तियुक्त अनुभव ही है । ईश्वर के श्वास से वेद वन गये, कुरान खुदा का कलाम है, इंजील भी खुदाई है इत्यादि सब अपने-अपने मतों के ग्रन्थो को जो जिसे बड़ा मानते है उसके द्वारा उच्चरित ठहराते हैं । किन्तु प्रत्यक्ष ही मनुष्य सव विद्या-वाणी को कहते-सुनते, लिखते-पढ़ते है । तन धारण किये विना जिसे ईश्वर अवतारी कहते है वह भी कुछ लीला नही कर सका । इसलिये किसी मनुष्य ने बनाया, ऐसा कहना तो ठीक है, किन्तु मनुष्य जीवो से पृथक कोई कल्पित कर्त्ता-धर्ता ने नाना वानी-विद्या रच दिया, ऐसा विना देखे अनुभव किये कल्पना ही कर लेना है । सर्व अदृश्य कल्पनाओं को करने वाला यह प्रत्यक्ष नर जीव ही है । नर जीव जिस अनुमान कल्पना वानी खानि को न माने, न जाने, न चलावे, तो सब शून्य धोखा है ॥ १२३ ॥

सब रहस्य को रहस्य यह, सब धामन को धाम ।
जेहिते मिलै स्वरूप को, वह उपाय वर काम ॥ १२४ ॥

टीका—दैवी सम्पत्ति, साधु सम्पत्ति, सिद्धात शिरोमणि आदि सब रहस्यो का रहस्य यही स्वरूपज्ञान की स्थिति है । सर्व कल्पित अदृश्य वैकुण्ठ-कैलाश, सत्यलोक, सतपुरुषधाम, परमधाम, अक्षरा-

कुछ नही, स्वयं प्रकाश अपरोक्ष स्थिति। धन्य-धन्य सर्वोपरि स्थिति ! ॥ १२५ ॥

विशालदास गुरु पद शरण, स्व स्वरूप धन प्राप्ति ।
मिले गयो अज्ञान दुख, पुनः दरिद्र न व्याप्ति ॥ १२६ ॥

टीका—ग्रंथकर्त्ता स्वय लघु कृतज्ञ दीन होते हुये और गुरुदेव की विशेषता स्मरण करते हुये कहते है—विशाल दास नामक यह दास श्री कबीररूप बोधक सद्‌गुरुपद की चरण-शरण जाकर अविनाशी स्व-स्वरूप धन को पा गया। जिस परम श्रेष्ठ चैतन्य धन को पाते ही अनादि अज्ञान जनित सर्व मनोमय सहित तन धरने का कष्ट छूट गया। फिर ऐसे गुरुपद स्थिति मे दरिद्रता, कामना, चाहना भी कैसे व्याप्त हो सकती है ? दरिद्रता का मूल तो अज्ञानरूप तन-मन मे सुख मानना ही है। सो दृढ विवेक-वैराग्ययुक्त पारख द्वारा सर्व आगामी वासनाये नष्ट होने से देह धरने-छोडने का प्रवाह बन्द हो गया। फिर देह धारण बिना कामना चाहनारूप दरिद्रता का कहाँ ठेकाना ? ॥ १२६ ॥

दोहा—गुरु कबीर पद सुमिरि कै, सतन ध्यान लगाय ।
गुरु बोधक के गुण कछुक, मनन करब मन लाय ॥

संत रहस्यावली शिष्य विनय-शब्द

हे बोध शोध साधन, परकाश करने वाले ।
नित एकरस बिबेकी, पारख में रमने वाले ॥ टेक ॥
एकात बास निर्जन, अतिशय प्रिये तुम्हे है ।
सब कामना के त्यागी, निष्फिक्र रहने वाले ॥ १ ॥
सबकी सहन क्षमा नित, अनहित न काहु सपने ।
सबके हितार्थ सोचक, समता से चलने वाले ॥ २ ॥
खुब शोधि शोधि अनुभव, ऐसे प्रबन्ध कहते ।
हितकर अकाट्य युक्ती, लखि कै लखाने वाले ॥ ३ ॥

यद्यपि निज स्वरूप नित आपै, सुमिरन ध्यान कहाँ केहि जापै।
तदपि भूल के छेदन हेतू, गुरु सैन लहि आपहि चेतू॥
लहि विवेक वैराग्य उपासी, सुमिरौ निज ..... ॥ ७ ॥

भ्रम चिन्तन होवै सब दूरी, यहि हित सुमिरन बनत हजूरी।
जस जल मीन व कामी हाला, तस स्वरूप चिंतन प्रिय चाला॥
गहि उत्साह विजाति उदासी, सुमिरौ निज .... ॥ ८ ॥

ब्रह्मचर्य गहि होइ निर्मोहा, जप तप ज्ञान गुरुपद सोहा।
सदस्वरूप सम लक्ष्य न विचलै, गहे यत्न करि आपन अचलै॥
स्ववश स्वस्थ गहि यहि अभ्यासी, सुमिरा निज . ॥ ९ ॥

प्रेमदास वन्दत शुचि साधू, गुरु कबीर पारख निरव्याधू।
सोइ विशाल गुरु निर्मल रहनी, देहु दया करि भव भय तरनी॥
ठहरि रहो निज अचल मवासी, सुमिरौ निज .... ॥ १० ॥

वन्दना

जग परताप कबीर का, जो पारख सिद्धांत।
निराधार पद प्राप्ति करि, जहाँ न संसृत भ्रांत॥ १२५॥

टीका—इस जगत मे पूज्यपाद सद्गुरु श्री कबीर साहेब का प्रताप एव यश-कीर्ति सराहने योग्य है, जो कि इस सर्व परीक्षक पारख सिद्धांत के आदि प्रचारक हे। पुन. वेद-शास्त्र पुरान-कुरान के सिद्धातो को ठीक पारख कसौटी पर कस के सर्व विजाति भूत प्रेत दैवादि विपयासक्ति का कचड़ा वहाय केवल पारख स्वरूप के ही सत्यता को दृढ निश्चयकर सर्व कारण-कार्य कर्त्ता के भ्रम को दूर करके आप निराधार सत्य स्वरूपस्थिति को प्राप्त कर लिये और अन्य के लिये बीजक व शंका-समाधान, सत्संग-निर्णय सिलसिला कायम करके स्वरूपस्थिति का इशारा बता गये। जिस स्वरूप-स्थिति देश मे जन्म-मरणरूप सशय, परोक्ष-प्रत्यक्ष भास भूल-भ्रम

गुरुवर कबीर रहनी, बीजक के भाव पारख।
शुभ सत के कथन जो, सम्यक सु गहने वाले ॥१७॥
सदगुरु "विशाल" हितकर, मुक्ती क द्वार टेरे।
जन जो लगन करैगे, सुख शांति लहने वाले ॥१८॥
आश्रित जनो कि बिनती, लेवो रहनि दयामय।
नित आपका रुचै पद, जन प्रेम नमने वाले ॥१९॥

चौपाई

सुनेउँ सकल परमारथ वाता। निज स्थिति सम कुछ नहि ताता ॥
निज दुख दमन हेतु गुरुदेवा। कहेउ प्रसंग पुनीत सुभेवा ॥
नर तन को भूषण सतसगा। सगति भूषण बोध प्रसगा ॥
वोध विभूपण फल अति भारी। सदाचरण सब सम्यक धारी ॥
सव पुनीत मग को यह भूषण। स्थिति लहइ तजइ सब दूषण ॥
सो निज रूप स्वत· वल लाई। संयम साधन बिविधि बढाई ॥
भीर भार तजि निजपद माही। मनोगती लखि भिन्न रहाही ॥
सो मन दृश्य देखि नहि मिलई। देखन वाला शेष जो रहई ॥
सोइ पारख निज रूप अनूपा। स्वयं प्रकाश अचल थिर भूपा ॥
बिश्व द्वन्द गत स्थिर नीके। गुरुपद निजपद थीर सु जीके ॥
देह उपाधि यदपि असमजस। तदपि दियो गुरु औषधि बहु रम ॥
सो औषधि गहिलहि वडभागी। श्रद्धा सहित गहत जिय जागी ॥
गुरुभक्ती सतन की सेवा। ब्रह्मचर्य ब्रत शोधि समेवा ॥
सव कर फल शोधहि निरधारा। सकल भोग सुखतजि थिति प्यारा ॥
सो नित प्राप्त प्राप्त कर दीन्हे। जय जय जय गुरु अव तोहि चीन्हे ॥
ब्रह्मबाद जड़बाद से न्यारा। शून्यवाद से साहिब पारा ॥
नहि अलिप्त नहि माया संगा। सहित बिबेक परख के अगा ॥
अन्तर बीज जगत के जेते। फिर जामन की आश तेते ॥
सो सब वीज दग्ध करि दीन्हे। शाति बचन कहि दुखहरि लीन्हे ॥

कबहू विवाद नाही, इर्षा व काम ध्वंसक।
सब आश्रितो के रक्षक, सन्तुष्ट रहने वाले ॥ ४ ॥
होवै निकट व दूरी, आशा न काहु राखो।
निजपद स्वयं सम्हारे, सबसे हि हटने वाले ॥ ५ ॥
चहु प्राण कष्ट होवै, चहु मान दे न कोई।
सब बंध तुरि तृण सम, स्थिति मे टिकने वाले ॥ ६ ॥
अय हो ! महान तपसी, संयम सजग हमेशा।
अतिशय कुसग त्यागी, चचल को तजने वाले ॥ ७ ॥
निज बाद कुछ न अपना, परवश गे सर्व सपना।
अस जानि मान त्यागी, निर्मान रहने वाले ॥ ८ ॥
व्यवहार मध्यवर्ती, परिणाम अग्र सोची।
निर्विघ्न सर्व रहनी, कहु भी न ललने वाले ॥ ९ ॥
तजि के अमीरि सारे, धारे गरीबि रहनी।
अतिशय तितिक्षु देखा, दुख को न गिनने वाले ॥१०॥
गुरुपद को नेम धेरा, दृढता से नित्य रख के।
नीयम के बाह्य कहु भी, कुछ भी न गहने वाले ॥११॥
सकल्प सब स्ववश कर, अतिशय कुचिन्त नाशक।
हे दीन बन्धु साहिब ! निर्मोह रहने वाले ॥१२॥
जग जीव भांति भांती, सबकी मती पिछानो।
जस योग्य तैस बर्तो, सबको निभाने वाले ॥१३॥
भौतिक कि आन्ति वहिया, सब जीव भार डूबे।
लखि कै दुखित दयामय, भवयान रचने वाले ॥१४॥
गुण को सदाहि गहते, कोई भि हित कहै जो।
किहु मान भंग नाही, चुगुली न सुनने वाले ॥१५॥
अय धर्म पथ रक्षक, अय जीव सार लटाक।
बड भाग्य दर्श पाये, सत विचरने वाले ॥१६॥

फल-छन्द

पारख गुरु की प्राप्ति भौ
सब काम पूरण हो गये।
निज परख वाद जु काल सब
तेहि मोह अब सब खो गये ॥
निज हेतु से सब लक्ष्य है
निज परख नित्य समो गये।
पारख परख मे शान्त हो
अब शान्त शान्त सदो गये ॥

चौपाई

पारख परख परख मे ठहरै।
पारख छोड़ि अन्य नहिं विहरै ॥
पारख परख परख विन जहरै।
गुरु कबीर की शिक्षा यहरै ॥

छन्द

गुरु कृपानिधि दीन लखि निज बोध अमृत से झरे।
सब शोक तजि विश्राम धाम जो पर्ख प्रिय अतिशय करे॥
यह मूल अर्थ विचार सार सँभार नहिं गाफिल परे।
गुरुपद सहज थिर शांतिमय अभ्यास निज जो यहि धरे॥

दोहा—सद्ग्रन्थन को फल यहि, गुरु आज्ञा यहि देत।
यहि उपकार मनाइबो, जगत राग तजि चेत॥ १॥

वहि ज्ञाता वहि पारखी, वहि टकसार बखान।
वहि कबीर गुरु सत पद, समुझि परख ठहरान॥ २॥

वही यशी निर्मान पद, साधक सिद्ध सुजान।
धर्म सार सिद्धांत वहि, सकल कामना हान॥ ३॥

चहु कोइ देश के पारखी, चहु कोई सद्ग्रन्थ।
जोइ विराग युत बोध गहि, ते सब मुक्त सुपथ॥ ४॥

अस निर्णय कब्बीर मत, बीजक रचि यहि हेतु।
'मुक्तिद्वार' 'भवयान' सोइ, हंस अभय गहि लेतु॥ ५॥

अस निश्चय मोको भयो, गुरु तव दया अनन्त।
सब रहस्य गुण दीजिये, जासे भव भय अन्त॥ ६॥

गति मति बोध रहस्य गुण, संग प्रेम सब वाहु।
जेहिते गुरुपद सरस नित, दीजै साहिब ताहु॥ ७॥

सद्ग्रंथ मुक्तिद्वार षष्ठ पाठ शांति शतक समाप्त

सद्गुरवे नमः

मुक्तिद्वार

सप्तम पाठ

शब्द विभाग

शब्द—१

अब हम संतन के ढिग जइबै ॥ टेक ॥

भाव भक्ति करि मनहिं रिझइबै, इत उत ना भरमइबै ।
परम हितैषी मानि उन्हीं को, अन्तस शुद्ध बनइबै ॥१॥
जीव को काज वनब मन लइबै, देह भाव बिसरइबै ।
त्यागि अमीरी ऊँच बड़प्पा, उनको मन बनि जइबै ॥२॥
भाँति भाँति के निर्णय सुनि कै, मन के दाग छोड़इबै ।
हठता कुतर्क छोड़ि मन करनी, परम लाभ को पइबै ॥३॥
गुन को खोजि खोजि कै गहिबै, दुर्गुण ध्यान न दइबै ।
हानि लाभ मन की बिसरइबै, सन्त समागम ध्यइबै ॥४॥

टीका—जगत प्रपच दुखो को देखकर कल्याण इच्छुक उत्कण्ठा कर रहा है कि अब हम रहस्यवान पारखी-विवेकी सन्तो के समीप जायँगे, निकटवर्ती वन के सद्रहस्य सद्बोध धारण करेगे ॥ टेक ॥ दृढ विवेकी, वैराग्यवान संतो मे प्रेम और तिनकी सेवा-टहल के कार्य मे ही अपने मन को प्रसन्न रक्खूँगा । जैसे—

हेतु-छंद

नम्र हो दुख देखि के
सीधे सरल हित जीव के।
गुरुदृष्टि ले सतमग सहज वहि
पुष्टि हित मुख शीव के॥
सद्‌बुद्धि साधन धर्म मैत्री
भक्ति भाव लहीव के।
मार्ग सब विघ्न क्षय हो
सत्य शब्द गहीव के॥

साखी

जो महान नित जीवपद,
जडासक्ति मल टार।
सो कबीर गुरुपद रहे,
शैन शब्द टकसार॥

सत्यादि रहनी-रहस्य संयमादि साधन और स्वरूपज्ञान कराने के लिये जो संतजन समय-समय पर दृष्टांत-सिद्धात विविध अनुभव युक्त सरल प्रिय अनेक प्रकार के प्रसग निर्णय करते रहते है, उनको सादर सुनते हुये हम अपने मन के मल, विक्षेप, आवरण[1] को हम छोडाते रहेगे। जो जन्म-मरण के कारण है उन सस्कारों को हम नष्ट कर देगे। मिथ्या का पक्ष, जोश, मद और कुतर्क, हित की वात का भी खण्डन कर देना, इससे संतजन की शिक्षा रुक जाती है। हठी-कुतर्की के आगे सतजन कुछ कहते ही नही। अत. ये सव मन कल्पित मन की ही काली करतूत है। तिस मन की करनी—हठता और कुतर्क को त्याग करके हम परम लाभ सत्सग फल को प्राप्त करेंगे। चित्त की वासनाये त्यागकर स्थिर मति से अखण्ड सत्य स्वरूप भाव मे शात ,रहना ही सर्वोपर लाभ है। परम लाभ के साधक वर्तमान में सत्सग-सेवा, सयम नि.स्वार्थ, नम्र, निष्काम भाव ये सब सत्सङ्ग प्रेम द्वारा परम लाभ हम पायँगे ॥ ३ ॥ चाहे अपनी संगत का हो, चाहे विजातीय, चाहे दुर्जन हो या सज्जन, चाहे जिसका कथन हो या ग्रथ हो, सबमे से जहाँ जो कुछ सद्गुण मिलेंगे, तिसमे से शोधि-शोधि के मथन करके हितैषी सद्गुण मात्र ले लेवेंगे[2] और तिनके दुर्गुणो पर ध्यान न जमावेगे। 'अपनी करनी

१ टिप्पणी—मल-विषयासक्ति मलिन कर्म है, विक्षेप-भोगो के सस्कार द्वारा हरदम चचल वने रहना, आवरण—स्वरूप को भूलकर परोक्ष-प्रत्यक्ष, अनुमान-भास ही मे लक्ष्य द्वारा फँसे रहना, इन्ही तीनो को दूसरे शव्दो मे कहा जाय तो कहे जायेगे जडासक्ति, कुसस्कार और विपरीत निश्चय रूप दाग।

सन्तो की शरण से लाभ

२ टिप्पणी—एक सत सेवक से एक ने प्रश्न किया कि आप सन्त सेवा और सत्सङ्ग क्यो करते है ? उसने कहा—प्रत्येक कार्य लाभ ही समझ के तो किया जाता है। सन्तो की सेवा-सत्सङ्ग से लाखो-करोडो की सम्पत्ति मिलती

सवैया

"झाड़ू लगाय के लीपि सुठौर को वर्तन मॉजि के पानी भरेंगे ।
पर्शि पदौरज हाजिर सेवक हौ मन कर्म जो आज्ञा लहैंगे ।।
स्नान कराय सुवस्तुहि अर्पि के जो प्रिय स्वामी को सोई गहैंगे ।
वोध रहस्य हो आपकी शरण से हे गुरु सत ये प्रेम चहैंगे ।।"

जैसे पूर्व मे पच विपय भोग-विलास हेतु नाना प्रपच कार्य मे मन को रिझाता था, उसी प्रकार अव पूर्वोक्त सतो की सेवा, प्रेम के अन्दर मन को सन्तुष्ट रक्खूंगा और इधर-उधर जहॉ-तहॉ मन को चचल करके नही भटकाऊँगा अर्थात सिनेमा, जुआ, नशेवाजी, फैसनवाजी, मित्र और स्त्रियो से हॅसी-मजाक, गप-शप और भी भूत-प्रेतादि भ्रमिक मत पथ ग्रन्थ, वचक सग आदि मे मन को नही दौड़ाऊँगा । सर्वोपर अक्षय स्वरूपज्ञान देने वाले पुण्यपथ रत सत जन ही तो है, उनके समान अन्य कौन सहायक है ? कोई नही । एव महान कल्याणकारी सतजन को समझ के उनकी सहायता से सारे दुष्कर्तव्य और कुसकल्प छल छिद्र भोग वासना त्यागकर अंत -करण पवित्र करूँगा ।। १ ।। सत्सग-सद्गुण के आधार से निर्वासना होकर स्वरूप मे टिकने के लिये जीव के उद्धार निमित्त सत्कार्यो मे मन को हम लगायॅगे और राग-द्वेप ईर्ष्या-प्रपंचवार्ता आरामी ममता काम क्रोध दम्भ अभिमान ये सव देह भाव को तुच्छ झूठा समझ के तिसे हम भुला देवेंगे । विशेप-विशेष इन्द्रिय सुख लेने के अहदीपन को अमीरी कहते है । अमीरी के वश होकर सत्सग सेवा साधन आदि सत्कार्य कुछ नही वन पड़ता और राग रोष आसक्ति सर्व दुर्गुण अमीरी में आ जाते है । इसलिये अमीरी दिल से त्यागकर और उच्चता-वड़प्पा का मद-जोश छोड़ के हम सन्तो के मन वन जायॅगे । विचारवान संत जैसी मनसा मेरे प्रति देगे उसी अनुसार निजी मन को चलायॅगे और खास अपने मन का कहा नही करेगे ।। २ ।। शील,

निश्चय करके देह को प्रारब्धाधीन जानकर देह कृत हानि-लाभ, सुख-दुख, हर्ष-शोक का अभाव कर-करके शात रहेगे और सदाचरण लक्षण लक्षित सतजन के ही दर्शन-पर्शन, ज्ञान-बोध का ध्यान धरेंगे। खूब लक्ष्य देकर पारखी संतो का ससर्ग बढायँगे और स्वरूप-बोध मे ही हमेशा मग्न रहेगे। यही संत समागम का अतिम फल है ॥ ४ ॥

लावनी—२

वाह वाह में भूल भुलइया निर्छल अति भल प्रेम चहै ॥टेक॥
वह निर्मान मान दे तुझको सेवा बहु परिशर्म चहै।
तन मन अर्पि न मानै दुख को सुख को कबहूँ नाहिं चहै ॥
बर्ति चलै तू भावै जैसी मेटन कबहूँ नाहिं चहै।
वह सुख मानि मोदयुत तुझको उर में राखि न अन्य चहै ॥ १ ॥
इसी हेतु से दर दर भिक्षुक सब दिन सब कुछ करन चहै।
जैसा चहै मिलै जो तैसा बिकै तहीं नहिं खबरि चहै ॥
काम देय नहिं कोई तेरा उलटा सब दुख द्वन्द्व चहै।
दुख छूटन को मारग भूला जेहि हित पहिले त्याग चहै ॥ २ ॥

टीका—'वाह-वाह'—बात मात्र की विशेषता मान-बड़ाई मे फूलकर यह जीव अपनी अक्षय अमृत स्थिति से चूक रहा है। हे जीव ! तू इसी बात में तो सुख मानता है। पहली बात—अन्य मनुष्य मुझ से छल-कपट, भेद-भाव न रक्खे। दूसरी बात—मुझसे भली प्रकार अत्यत सब प्रेम करे ॥ टेक ॥ तीसरी बात—वह अतिशय नम्र दास बने। चौथी बात—सारी मान-बड़ाई मुझे दे अर्थात् अतिशय बड़ा करके मुझे शिरमौर माने। मेरे सामने वह अपने को कुछ न गिने। पाँचवी बात—सब प्रकार मेरी सेवा करे। छठी बात—वह परिश्रम को किंचित भी न डरे। मेरी मनसा अनुसार कठिन से कठिन परिश्रम करने मे अत्यन्त उत्साही हो। सातवी बात—वह

पार उतरनी' न्याय अपने ही सुधार से तो अपना उद्धार होगा। सब साथी सद्‌गुण गहे तब हम गहेंगे तो यह बात होना ही दुस्तर है। दूसरे की मर्जी पर है वो गहे या न गहे। जैसे शरीर निर्वाह लेने मे ससार की राह नही देखते, तैसे सद्‌गुण स्वय हम गहेंगे, दूसरा गहे या न गहे। हम आदर्श सत नीति लेकर गुणग्राही बनेंगे। कोई बडा माना कोई छोटा, कही अपमान कही मान, कही दुतकार कही सत्कार, ये सब हानि ओर लाभ मान-मान के मन फूला-पचका करता है। सो सब स्वप्न के राज्यवत मिथ्या है। ऐसा

है। सब प्रकार दुश्मनो से बचावा होता है। इच्छा पूर्ति होनी है। यहाँ तक कि देशसेवक, विश्वसहायक, जनरक्षक, समाजउद्धारक, सच्चे पारमार्थिक नेता सन्त ही तो है। एक कलक्टर या जज चोरी व्यभिचारी रोकने के लिये अन्यायी जन को दण्ड देता है। दण्ड पाते हुये भी समझ न होने से फिर-फिर वही दुष्कर्म मनुष्य करता है। दूसरे निस्वार्थ जजरूप सत ऐसी बुद्धि ही प्रदान करते है कि जिससे चोरी-व्यभिचारी की इच्छा ही छूट जाय। कोई भी अन्यायी मनुष्य शुद्ध विचार प्राप्त कर लेने पर कभी दुष्कर्म कर ही नही सकता। इसलिये सबसे शिरमौर न्यायक सन्त जन ही है, जो ऐसी शिक्षा देते है कि क्रोध की दवा क्रोध नही बल्कि क्षमा है, काम की दवा भोग नही किन्तु निष्काम है, लोभ की दवा संग्रह नहि बल्कि उदारता है। देखिये! आप लोग सत सेवा सत्सङ्ग मे मन नही देते। अभी हाल मे ही आपके दूसरे भाई से एक बीता भर जमीन के वास्ते मार-काट होके खून हो गया है जिसने कई हजार रुपये सरकार दरबार मे उठ गया। मिथ्या गवाही देनी पडी। तब कही जेल-फाँसी से बचे। तो भी क्या बचे, झगडा चल ही रहा है। सन्तो के उपदेश से हम लोग ऐसी आपत्ति के कार्य पहिले ही से नही करते, जिससे हमारा धन व्यर्थ नही जाता। वही धन दान-सन्मान मे खर्च करने से लाखो की सम्पत्ति रूप शील-क्षमादि सद्‌गुणो की प्राप्ति होती है। क्योकि कहा है—"जोरि जोरि धरै खाय कोई औरै। बिना धर्म धन जाय कुठौरे' ॥ जिन सद्‌गुणो के प्रताप से बाहर कोई दुश्मन नही प्रतीत होते, भीतर क्रोध काम मद मत्सर तृष्णा मुख्य इन रिपुओ से भी बचावा होता है। यही सब संतजन देते है। अब हम लोगो का कर्तव्य है कि जो सदाचारी हितैषी सत-सज्जन हो, उनका आधार लेकर सद्‌बुद्धि प्राप्ति करे और अपना उद्धार करे।

द्रष्टा स्थिति मार्ग है, तिसे भूल गया, साधन-अभ्यास से ढीला पड़ गया। सुखाशा वश जगत ऐश्वर्य और जन समाज जो चचल-चपल है तिनके सम्हालने मे पड़ गया। अहो! अब भी विचार कर जिस कल्याण के लिये तू रात-दिन हैरान था, जिस अनादि अचल पद में स्थिति की तुझे बहुत दिन से इच्छा थी, वह मार्ग तू क्षणिक वाह-वाही मे बिसार रहा है। "तजौ जग बैर प्रेम दुखदाई" की टीका मे प्रेमासक्ति का दुख विस्तार से वर्णन है। वही सब तू अपनी दुर्गति स्मरण कर ले। अरे! इस प्रेम-सुख की आशा से तू जगन्नगर का गधा बनकर सब दुखो का अनुभव किया करेगा। अत. मनोमय प्रेम-प्रतिष्ठा वाहवाही की लालसा रस्सी को तोड़कर जीवन्मुक्त हो जा॥ २॥

दृष्टान्त—एक भाँट और भाँटिन एक गाँव मे रहते थे। भाँट नित्य पास के राजदरबार मे जाकर राजा को उत्तमोत्तम कविता सुनाया करे। राजा कविता सुनकर कुछ अन्न, वस्त्र, धन इनाम में न देकर बस इतना ही कह देवे कि वाह भट्टराज शाबास! खूब कविता सुनाया। शाबास शाबास, इतना सुनकर भट्ट फूले न समावे। घर आकर स्त्री से कहे कि राजा साहब खूब प्रसन्न हुये। भाँटिन बोली—प्रसन्न हुये तो कुछ पेटपूजा दिये या नही? भाँट ने कहा—शाबास, वाह, धन्यवाद तो देते ही है। यही हाल जब-जब नट जावे तब-तब राजा किया करे। भाँटिन एक दिन भट्टराज से बोली—अच्छा! आज मैं भी चलूँगी। दोनो साथ-साथ राज दरबार मे उपस्थित हुये। राजा की आज्ञा से भट्टराज कविता सुनाने लगा। अन्तिम में महाराज भूपाल ने कहा—शाबास भट्टराज! धन्य-धन्य खूब कविता सुनाये, शाबास!! भाँट तो फूल गया। यह तमाशा देखकर भाँटिन भी कुछ गाना-बजाना सुनाई। पुन भूपाल शाबास शब्द ज्यो ही बोलने लगा, त्यों ही स्त्री कहने लगी—"शाबास

अपना शरीर-अत करण मुझे दे देवे, अर्थात मेरे इच्छानुसार वह अपनी इन्द्रिय और अन्त करण को चलावे। ऐसे वर्ताव के साथ ही वह किसी प्रकार का कष्ट न लावे। आठवी वात—अपने सुख-आराम को हमेशा भूल ही जावे। नवी वात—हम चाहे जैसा वर्ताव करे, वह दास सदा मेरे वर्ताव से प्रसन्न रहे। साथ ही मेरे किसी भी वर्ताव मे आगे-पीछे कभी भी रुकावट न डाले। दसवी वात—वह मेरे मे ही सुख मान कर प्रसन्नता पूर्वक मेरा ही प्रतिक्षण ध्यान रक्खे। ग्यारहवी वात[१] —मुझ स्वामी के अलावा वह कभी कुछ चाहना ही न उठावे और दूसरी तरफ जाना तो दूर ही है॥ १ ॥ वस तू इतनी ही वातों के लिये सव दर-दर का याचक वन के अनादि काल से आज तक सव कुछ करने-सहने को तैयार होकर अपनी खुशी से नाच रहा है। हे मन वश जीव! जैसा तू चाहता है, यदि वैसा दास-दासी, नर-नारि कोई भी प्राणी मिल जाय तो विना दाम ही तू उसके हाथ विक जाय, अर्थात उसका गुलाम हो जाय। फिर तो अपने जीव के हानि-लाभ की सुधि-वुधि भूलकर वस उसी के नचाये तू नाचा करे या नाचा करता है। अरे तू स्मरण रख! कोई कैसा भी आज्ञावर्ती अनुकूल दास-दासी, समाज-सम्वन्धी क्यो न हो? वे सव तेरे काज की सिद्धि नही कर सकते। उल्टे उनकी ममता वश तुझे सव दुख, सव विघ्न और आपत्तियो का सामना करना पडेगा। अरे! तू मन अनुकूल प्राणियो की इच्छा करके मानो दुख का खन्धक रच लिया। विचार कर! वाह-वाह भूल भुलइया मे पडकर दुख छूटने का जो निर्णय

१ टिप्पणी—पूर्व ग्यारह अंगो को स्वय धारण करके गुरुदेव की उपासना करे तव तो वन्धनो से छूट जाय और यदि कामना युक्त सुखाध्यास के लिये दूसरे से करवाने की इच्छा करे, हर्ष मान के आसक्त हो तो सारे वन्धन खडे हो जायँगे, इसी वात पर इस पद मे विवेक किया गया है।

दोहा—यहि ते सबके वाह मे, मति फूलै तू जीव ।
एक बृत्त करु काज निज, ठहरै अचल सदीव ।।

छट्टी का मनन शब्द—३

कोइ कैसेउ करे ना तुझसे मतलब ।। टेक ।।

चहै बनावै चहै बिगारै, भाव अभावहिं करतब ।
निजपद में तू रहै अटल ह्वै, मारग अपनै धरतब ।। १ ।।
पवन प्रचण्ड बहै झकझोरन, सहिरहिं भूमि न टरतब ।
जो आवै तेहि देब फिराई, धरि दरवानि पछरतब ।। २ ।।
लाभ देखाय घुसन जो चहते, होय अगर्ज मचलतब ।
पूरण आप चहै कस पूरण, धारण भाव यही नहिं भरतब ।। ३ ।।
हानि रहित की हानि कहाँ कोइ, बिना कल्पना खरतब ।
प्रवृत्ति भुलान लाभ को खोजै, हानेन हानि को डरतब ।। ४ ।।
हानि जो अर्पण आपै होवै, नेकु न ताहि परखतब ।
अनमिल सदा राखिये अनमिल, तजि अन्याय सो बरतब ।। ५ ।।
लहौ परमपद प्राप्ति जो निशदिन, उठि उठि दौरहिं तजतब ।
फिक्रहिं छोड़ि अफिक्र न छूटै, जागृत जागृत रहतब ।। ६ ।।
लहौ बिशाल अपनि कुशलाई, अकुशल सगरी तरतब ।
जैसा कुशल राखिये तैसा, दास गुरू के घरतब ।। ७ ।।

टीका—कोई कुछ भी करै, किसी दूसरे से तुम्हारा कुछ भी प्रयोजन नही। तुम अपने से पृथक सर्व की कल्पना त्यागकर निश्चिन्तता से स्वरूप मे ठहरो ।। टेक ।। कोई सत्सग, बोध, सत्साधन द्वारा अपना कार्य बना लेवै; अथवा अपने अज्ञान वश कुसग-कुमार्ग द्वारा कोई अपने को नष्ट कर देवे, बारम्बार जन्म-मरण का बीज बो देवे। यहाँ तक कि तुम्हारे प्रति कोई श्रद्धा-प्रेम करे अथवा अश्रद्धा करे, उसके मन की बात है। जैसा जो करते है वैसा उन्हे फल भी मिलता है, तुमसे क्या वास्ता ? जिन सद्रहस्यो से जड़ाध्यासो को

खाओ, कि शावास पीओ, कि शावास लै मैं हाट भॅजाओ। शावास ओढो, कि शावस डशाओ, या शावास लै का काम बनाओ।" इतना सुनकर राजा लज्जित हो गया और बोला—अच्छा एक बात मे चाहे जो माँग ले हम देने को तैयार है। तब वह भॉटिन कहती है—"दोहा—कुसमी सारी पहिनकै, डेलिया भेलिया जाउँ। सगरा दोना गाँठि कै, घर बैठे रेउरी खाउँ।" अर्थात कुसमी, सारी, डेलिया, भेलिया, सगरा, दोना, रेउरी इतने गावो को एक जवान मे नाम सूचित कर दी। राजा वचनवद्ध था ही, उसकी चतुरता से रीझकर उसे इन गावो को वक्सीस दे दिया।

सिद्धान्त—कवित

"नारि कियो धन कियो पुत्रहू प्रपुत्र कियो,
यश कियो विद्या पढ्यो प्रेमी कहैं वाह वाह!
शासन स्वराज्य कियो दास दासी वहु कियो,
चपल चलॉकी कियो सबै कहैं वाह वाह!!
सवही विधानहुँ से इन्द्रिन को सुख लयो,
भेड़ा खर तित्तुल मे सवै कहैं वाह वाह!
अतस तपत जैसे अवॉ प्रतिकूलता से,
कमी कमी चिंतन मे कहाँ सुख वाह वाह॥ १॥
जैसे काहू सेज को विछाय सब सुख देव,
वाकूँ अति पेट पीर कल ना परतु है।
तैसे राज्य सुख पावै भीतर जो तृष्णा पीर,
फाँसी के हुकुम सम धीर न धरतु है॥
जैसे कोऊ सुखिया को सपने में वाघ घेरे,
सेज पर सोवे तवू हा! हा! ही कहतु है।
तैसे ही तो सुख भ्रम मोह नींद त्यागे विन,
शान्ति न लहत नर कोटि जो पचतु है॥ २॥

वन्धनप्रद सम्पूर्ण स्मरणो को और वाहर के सर्व मोहक वन्धनो को स्वरूप से पृथक जानकर पछाड़ते रहो अर्थात उसे घुमा दो, परख के छोड़ते रहो ॥ २ ॥ मान्य, सेवा पूज्यता या धन विद्या प्रचार निर्वाह आश्रम सुख आदि का लाभ मिलेगा ऐसा लोभ दिखाकर कोई भी नर-नारी दास-दासी तुम्हे नित्य स्वरूप स्थिति से बहिर्वृत्ति कराके अन्त करण मे प्रवेश होकर बाँधना चाहे, गुलाम बनाना चाहे, चंचल किया चाहे, या कोई भी वासना तुम्हे सुख लाभ दर्शा-कर प्रपंच कार्य मे घुसाना अरुझाना चाहे, तो तुम शीघ्र ही उनसे नि:गर्ज, निर्चाह होकर असन्तुष्ट हो जाओ[१] । उन्हे घातक पीडक मोहक लदने वाला बोझरूप जानकर उन्होंका हठ करके सम्बन्ध और स्मरण छोड दो । अपने को निश्चय कर लो कि मेरा स्वरूप नित्य सतुष्ट है । पूर्ण तो स्वय पूर्ण ही है फिर अपने अक्षय नित्य तृप्त पूर्ण स्वरूप को भुलाकर अन्य से पूर्ण या तृप्ति की कामना करना

१ टिप्पणी—जैसे अति क्रोध भरी दृष्टि से कोई पुरुष अति व्यभि-चारिणी दुखदाई सुन्दर स्त्री को मार के निकाल देता है। उसके सुन्दरत्व प्रिय भाषित्व का मनन नही करता। इसी प्रकार किसी भी प्रकार मान्य भोग कामादिक सुख भावना आते ही इतनी कडी वृत्ति धारण करे कि शीघ्र हृदय का स्मरण वन्द हो जाय। 'विषय दुख को भय समुझि' एव 'आप ताहि लखि रुष्ट' 'होय अगर्ज मचलतव' ऐसा करने से वृत्ति रुक जायगी। बस रुकी हुई वृत्ति ही उपराम दशा है। इसे देर तक साधने से ही सारी वृत्तियो मे सत्ता न मिलने से वृतियो का बोझ उतरकर द्रष्टा जीव स्ववश हो जायगा। वस तहाँ से अपना अक्षय वल पुष्ट करके इतना प्रवल उपरामता का अभ्यास बनावे कि जैसे ही उधर सुख भावना आवे तैसे ही इधर कोटि बज्र लगने के समान चौक होकर इसके निर्मूल अर्थ क्रोध दृष्टि आ जाय और एकाकार होकर इन्द्रियों की चचलता छोड शीघ्र नेत्र दृष्टि थमकर अन्त.करण की वृत्तियो को रुष्ट दृष्टि से देखते हुये कुवासना वेग को पछाड देना चाहिये। ऐसा करने पर आगे राह घाट मिल जाने से मुमुक्षु अवश्य इस 'रुष्ट दृष्टि' को पुष्ट करके कदापि कुसङ्कल्पो के वश नही होंगे, सदा सावधान रहेंगे। इसको शान्ति शतक 'स्थिति प्रसङ्ग' मे विस्तार कर आये है तहाँ से पुष्टकर लीजिए।

काटकर अभय अगर्ज अचल अविपय अक्रिय अचाह अभार स्थिर होकर सदा ठहरे वस यही तुम्हारा पंथ है। इसीको पूर्ण करो। किसीके रगडे-झगडे मे मत फडो ॥ १ ॥ देखो हे जीव ! मन सुखाध्यास का चिन्तन, इन्द्रियो के वश पडी हुइ आदते, जड़ासक्त नरनारी और वाचाल प्रकृतिवादी ये वडे-वडे छल-प्रपच, मान-सुख, प्रेम का लोभ दे-देकर पशुभोग को ही सार्थक समझने वाले ऐसे-ऐसे अनन्त खानि-वानी, धोखाधार की जगत मे वडी तेजी से आँधी चल रही है। इन सबोका सम्वन्ध ही इधर-उधर धक्का दे-देकर वोधवैराग्य, विवेक रूप वृक्ष को जड-मूल से ढहाने वाला है, और इन्ही का चारो तरफ वोल वाला है। ऐसी दशा मे हे मुक्ति इच्छुक ! तुम्हारा परम कर्तव्य है कि तुम पृथ्वी के समान सहनशील वन जाओ "जोतै खोदै गोड़ै अंगा। सहन भूमि फल वीज प्रसगा ॥" सब प्रकार की प्रतिकूलता सहन कर अपनी पारख भूमिका से मत डिगो। जैसे कोई वड़ा वृक्ष हो जिसकी जड़े वडी मजवूती से पृथ्वी के अन्दर पुष्ट हो जो कि वड़ी-वड़ी आँधियो के वेग भी गिरा न सके। वह जड़ वृक्ष भले ढिग जाय पर तुम वृक्ष और पहाड़ से भी अपना ध्येय अडिग—एकरस रक्खो। इसमें यह दृष्टात स्मरण रहे— जैसे कोई राजा अपने राजमहल मे निश्चिन्त सुख शय्या पर विश्राम करता हो। उस समय शत्रु-मित्र सवके आने की मनाई हो। इसके लिये दरवानी—रक्षक गण फाटक पर खडे हों शत्रु-मित्र कोई भी आवे फाटक के अन्दर वे दरवानी न जाने देवे। यदि कोई जवरन घुसना चाहे, तो वलात्कार से वे रक्षक गण प्रवेश होने वाले को उधर ही गर्दन पकड़ के पछाड़ देते। भीतर प्रवेश होना तो दूर रहा फाटक के सामने में भी वे ठहरने नही देते। तद्वत अत करणरूप फाटक पर विवेक और वैराग्य रूप दो अच्छे भले दरवानी रक्षक रक्खो। शुद्ध वोध मनन विचार रूप सेज पर विश्राम करते हुये शुभाशुभ

तुम अपनी भूल को परख के नही देखते। न मिलने वाली चीज पंच विषय तन मन है। अत सम्पूर्ण भोग सुख विजाति अनमिल को अनमिल ही रक्खो अर्थात जड भोगो को मत पकड़ो। देखो! पिण्ड-ब्रह्माण्ड की आशा-वासा ही अन्याय है। तिसे छोड के अध्यास रहित स्वरूपस्थिति रक्षक सुचाल का बर्ताव हरदम किया करो ॥५॥ जो इन्द्री विषय तत्व अवस्था सबका प्रतीत करने वाला सबसे पृथक है, जो राम भगवान ईश ब्रह्म आत्मा दैव तत्वमति ओह सोह नि:अक्षर सब विशेषणो का स्थापक है, जो जहाँ-तहाँ कल्पना आदत लत मे सुखानन्द को भ्रान्ति वश कल्पता है, जो इस चर्मक्षेत्र से पृथक मनोमय द्वारा सबको देखता है, ऐसा अपना आप सर्वका पारखी पारख रूप चैतन्य स्वरूप नित्य तृप्त परमपद श्रेष्ठपद है। सो रात-दिन एकरस स्थिर तुम अपना आप नित्य प्राप्त हो, मात्र देहोपाधि वश बाह्य लक्ष्य से तुम अपने को भूल गये हो। सो भूल मिटाकर विवेक लक्ष्य से अपने आपको निरन्तर स्मरण रक्खो और जो भ्रम वश बाह्य पदार्थो मे सुख के लिये उठ-उठ के दौड़ते हो, चचल होते रहते हो तिसे त्याग दो। दुराचरण और सर्व जगत सम्बन्धी फिक्र वासनाओ को भी छोड़ दो। निष्फिक्ररूप अपनी स्वरूपस्थिति के रहस्य छूटने न पावें, यही फिक्र रक्खो। सावधानता सहित निर्वन्ध रहना ही जाग्रत रहना है। तुम चैतन्य जाग्रत रूप हो। अन्य भोग प्राणी संकल्पों मे अचेती की नीद न लाओ। सदा साव-धानता से वर्तो, जिससे कि अज्ञान न व्याप्त हो। "संतो जागत नीद न कीजै"—यह मत्र स्मरण रहे ॥ ६ ॥ परमपद सदेशक सत विशाल साहेव कहते है कि हे मुक्ति अभिलाषी जीव! जैसा अपना स्वरूप अचल, अक्रिय, अचाह, सर्व शोक-मोह, कामना से पार कन्याण रूप शुद्ध चैतन्य है, तैसे ही रहस्य युक्त धारणा वनाकर ठहरो। तव सर्व विजातीय अज्ञानरूप आसक्तियो से छूट जाओगे। अपनी

यह अज्ञान नही तो क्या है ? इस अज्ञान का विवेक शस्त्र से छेदन करके मै नित्य तृप्त स्वय पूर्णकाम अचल अखण्ड हू । बस यह निरतर एकरस भाव रक्खो कि अन्य और किसी प्रकार की सुख भावना या क्रिया मेरे अन्दर भरने न पावे । चौ०—सर्वासक्ति हृदय से त्यागी । केवल गुरुपद मे अनुरागी ॥ ३ ॥ हे जीव ! तुम हानि रहित हो, अखण्ड सत्य शुद्ध चैतन्य हो । जब तुम्हारे मे देह मन धन तथा पच भोग भोतिक ये दृश्य प्रपन्च कुछ नही, तब तुम्हे हानि या घाटा ही किस बात की ? तुम परमपद रूप परम लाभ नित्य सन्तुष्ट हो एकरस हो । फिर तो बिना हानि के तुम हानि की कल्पना कर-करके दुनिया की सब कल्पना रूप घास समूह अतःकरण में जमा लिये हो । बहिर व्यवहार मे भूलकर नाना विषय सुख लेने की, बहुत धन-धाम कुल बढाने की, सर्वत्र मानप्रतिष्ठा फैलाने की, सबको प्रेमी बनाने की, सबको कृतज्ञ बनाने हराने की, विवाद पूर्वक शिक्षा प्रचार की इत्यादि लाभ को खोजते रहते हो । मिथ्या लाभ की आशा वश हानि न हो जाय, कभी घाटा न हो जाय, इस भय वश हरदम पीडित रहते हो ।

छन्द—"दास दासी धन कमी हा ! मान्य मन नर नहि अहे ।
हा ! हानि ही हा ! हानि है तब सन करुणा कर कहे ॥
ए मनुज ! तू क्यो दुखी तेरा स्वरूप स्व अस्ति है ।
तहँ हानि का नहि गन्ध है यह हानि सपना वस्ति है ॥

दोहा—सपना के दृष्टान्त से हानि लाभ मन रोप ।
ताहि परखि न्यारा रहै, गहे विवेक सदोप ॥ ४ ॥

अहो ! तुम कौड़ी की हानि से डरते हो, लाखो-करोड़ो की हानि का कुछ न विचार किये । सबसे भारी हानि तो यही है कि जो तुम अपने शुद्ध नित्य तृप्त चेतन स्वरूप को भूलकर स्वयं निजी कल्पना मे निछावर होते रहते हो । अरे ! तनिक भी

आज्ञा मे तत्पर दिख रहे है। 'तीन लोक टीड़ी भया, उड़ा जो मन के साथ' ॥ टेक ॥ मन ही हुकूमत कर-करके जबरन सबको वश में रखता है। कभी क्रोध की प्रचण्डाग्नि से जलाकर पीछे रुलाता है। कभी काम वश कोटि-कोटि छल-प्रपच धारण कराता है। इस प्रकार सब दुर्गुण-दुराचारो ने जीव को प्रेरता रहता है। अहो! इस मन से राजा, गरीब और भिक्षुक कोई भी पृथक नही है। राष्ट्र सरदार को तो और-और राज्य भोग सरदारी की तृष्णाग्नि जलाती है, लडना-भिड़ना, शासन-हुकूमत, हार-जीत का दुख, सबको वश रखने का दुसह दुख। यथा—

चौपाई

अगणित धन सुख भाँतिन भाँती। वाहन सेज धाम बहु जाती ॥
नृत्य ताल धुनि मोहनि सन्मुख। भोग साज सब भोगत मन रुख ॥
विद्या कुशल चतुरता भारी। जय नृप होय तबू दुखकारी ॥

दोहा—रोगि वृद्ध रिपु बिच घिरे, जलै कामना ज्वाल।
मायारस मृगजल रह्यो, अंत काल के गाल ॥

गरीब को इतना मिल जाय तो पूरा परे ऐसी आशारूप अग्नि दग्ध करती है। देह आश्रम नारि सतान दास बुद्धि विद्या आदि विश्व के पदार्थो का जो जितना ही मै—मेरी रूप विशेष-विशेष अभिमान—जोश ग्रहण करता है, उतना ही विशेष-विशेष यह मन उसके ऊपर सवारी करता है। सवारी का मतलब इक्का के घोड़ा न्याय खूब दौड़ाता है, मोह-माया मे रुलाता है ॥१॥ स्थूल इन्द्रियाँ, मन, सोना, रुपये, पैसे आदि विभव को जो स्ववश अपने आधीन मानि के फूलते रहते है कि हमारा मन हमें धोखा नही देगा, एवं मन से सजगता जो नही रखते उनको यह मन अच्छी प्रकार फटकारता अर्थात कुकर्म करा-कराके खूब साँसति देता है। जैसे व्यभिचारिणी स्त्री बल धन सर्वस्व हरण करके पीछे नाना त्रास देती

स्वरूप स्थिति रूप कुशलता की प्राप्ति करने से तुम्हारी सर्व अकुशलता रूप कामना-भोगासक्ति आपही नष्ट हो जायेगी। अतः आसक्ति ढिलाई, ममता और मद त्यागकर वैराग्य युक्त अपने कुशल स्वरूप की रक्षा करो, स्थिति करो। इसी ध्येय की पूर्ति के लिये गुरुदेव के अनुचर बनो। तभी अटल पारख स्वरूप में विराजोगे अथवा तभी गुरु की मनसा पालने वाले सच्चे जिज्ञासु बन सकोगे। जब गुरु की कही हुई युक्तियों से स्वरूप घर में निश्चित ठहरोगे तब ॥ ७ ॥

छंद—जाकी प्रतिष्ठा से प्रतिष्ठित सर्व लोक समाज है।
जाकी कुशलता से कुशल सब सो कुशल शिरताज है॥
जग सर्व अकुशल निन्द्य लखि निज वृत्ति निज में रोंक कर।
ते धन्य संत महान सब पर बोध रमि भय शोक हर॥

शब्द—४

मन तो अखिल भुवन सरकार ॥ टेक ॥

करि करि शासन सबको राखै, राजा रंक न पार।
जो जैसे अभिमान ग्रहण कर, तस तेहि पर असवार ॥ १ ॥
तन मन धन जो स्ववश मानते, तिनको भल फटकार।
दिन अरु रैन जलावै अतिशय, भेजि शोक परिवार ॥ २ ॥
मानि अमीरी प्राण सरिस जो, करै दासता झार।
नारि पुरुष सब तेहि के वश में, सेवत रुख को हार ॥ ३ ॥
जो विद्वान चतुर ज्ञानी के, सुखाध्यास को धार।
हार जीत में पटकै तिनको, गढ़ि गढ़ि भर्म पहार ॥ ४ ॥
जो मन चीन्हि पृथक ह्वै जावै, नहिं वहि पर अख्त्यार।
तेहि से और बड़ा नहिं कोई, जो जग छोड़ि किनार ॥ ५ ॥

टीका—यह मन ही सम्पूर्ण संसारवासी प्राणियों का मालिक हो रहा है। तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण देहधारी जीव मन ही की

है ॥ ३ ॥ जो बहुत पढे-लिखे अँग्रेजी-सस्कृत, फारसी आदि के विद्वान वोलने मे चतुर है, जो इन्द्रियों के सुखो की कामना रूप धारा मे निरन्तर बह रहे है, उनको यह मन विद्या वाद-विवाद मे अन्य द्वारा पराजय करा के शोक मे पटकता है । सभा के मध्य वाक्य युद्ध में हारे हुये कितने जहर खाके मर गये, जल मे डूब मरे, देश छोड़ दिये अथवा रात-दिन शोकानल मे जलते रहे । कही वाक्य युद्ध मे जीत जाने पर फूले नही समाते, पुन विद्या मद से नाना कुकर्तव्य मे भी प्रवृत्त होते है । वह अनन्त भ्रान्तियाँ विद्यावाद के पक्ष से ही मन गढवाया करता । जगत की उत्पत्ति-प्रलय कोई अन्य कारण-कर्त्ता गोसैयाँ, भूत-प्रेतादि सर्व विश्व ब्रह्म, कही स्वर्ग-नर्क, कही भूतवाद शून्यवाद क्षणिक विज्ञानवाद एव अनन्त भ्रान्ति का पहाड़ यह मन ही लदवा देता है और इन्ही भ्रान्तियो को विद्या वल से मन पुष्ट कराता रहता है । दोहा—सबका कल्पक कौन है, सबका हेरक कौन । उलटि ताहि जाने बिना, मृग जल भ्रान्ति दुखौन' ॥ अब जो सद्गुरु के प्यारे सत्संगी है वे मन स्मरण चितनो को अपने से पृथक भ्रान्ति मात्र समझ के मन का कहा नही करते । वे परख-परख के मन मनसा से विलग रहते है । तिन जिज्ञासुओ पर मन का जोर नही चलता । उनके आगे मन मृतक है । उन पुरुष रत्न से कोई बड़ा नही, जो जगत-विषय को छोडि के किनारा ले लिये । विचार से दृढ वैराग्य पूर्वक बर्तते है, तेई पूज्य है, उन्ही की शरण जाकर मन को शात करिये ॥ ५ ॥

प्रश्न—मन का भेद खोल दीजिये !

उत्तर—मन कोई स्वतत्र द्रव्य नही है । जड़-चेतन के सम्वन्ध मे दर्पण-छाया न्याय प्रवाही अनादि इन्द्रियोपाधि द्वारा देख सुन भोग करके जो सस्कार टिकाये गये है, वे सब पूर्व-पूर्व और अव के सस्कारो का नाम ही मन है । वह अत करण रूप सूक्ष्म यत्र मे

तद्वत। विविध शोक समूह मे डालकर यह मन ही छाती दग्ध करता रहता है। भाव—तन मन धन को स्ववश मानने से उसके जोश मे नाना दुर्गुण बढते है ओर तिनके हानि—विछोह के समय मे अत्यत शोक सताया करता है ॥ २ ॥

दृष्टान्त—एक मनुष्य दस हजार रुपये का सोना लेकर जमीन मे गाड़ दिया। शरीर भी उसका खूब गठीला था। मानसिक चपलाई उक्ति-युक्ति मे निपुण था। इसलिये उसे बहुत गर्व था। वह सबको नीचा जाने और ताड़न भेदन छेदन परपीडन किया करे। वह गडे हुये सुवर्ण को आठवें दिन जमीन खोद-खोद के देखा करे। यह बात किसी के जानने मे आ गई। वह सारा सुवर्ण चुरा ले गया। जब यह फिर आठवे दिन उस जगह को देखा तो धन है ही नही। हाय कौन ले गया! हाय कौन ले गया!! यही शोक तरंग मे उसका दिमाग घूम गया। भोजन-पानी छूट जाने से शरीर मे बुखार ओर बुखार मे ही वह लुन्ज हो गया। अनन्त शोक सागर में डूबते हुये उसके दिन व्यतीत होने लगे। अत. तन मन धन सर्व नश्वर विघ्न रूप है। उनको एकरस मानकर उनमे फूलने से सदा कल्पना ही हाथ आती है, अत सावधान।

जो मनुष्य अमीरी ठाठ बाट राजस भोग देह आरामतलबी को प्राण के समान जीवन लाभ मान लेते है, उन सबको तो यह मन हर प्रकार गुलामी कराता है। उनकी सब स्ववशता नष्ट हो जाती है। मन ही के वश रहना पड़ता है। राजसी सब स्त्रियाँ और पुरुष उस मन के वश मे हुये। उस मन ही के रुख का सेवन कर रहे है। हार का मतलब है कि हर प्रकार वासना वश तन मन धन सर्वस्व हार-हार के दुख पाते हुये कही ठौर-ठिकाना न देखकर भ्रान्ति वश घूम-घुमा के पुन· मनोवासना की ही पुरौती मे लग जाते है। विना गुरु पारख की शरण गहे यह सब दुर्दशा जीव की हो रही

आसक्त कराय दीन-हीन लाचार बनाय हमेशा त्रिविध ताप मे जलाता ही रहता है। जिसकी सेवा की जाती है वह हित करता है, किंतु मन तो जीव द्वारा रक्षित होने पर भी उल्टे जीव ही को धोखा देता है ॥ १ ॥ हे मन ! जो हम तुझे गुरु सत सद्ग्रथ सम्मत अनुसार विवेक मार्ग सुझाते है तिसको तू स्वीकार नहीं करता। निर्वासना रहना, साधु-गुरु की सेवा-भक्ति करना, सद्ग्रन्थ अध्ययन, इन्द्रियासक्ति दमन, शात चित्त, धीरज, अचचल, सहनशील, क्षमा, सत्य स्वरूप का मनन करना ये सव विवेकमार्ग हित कार्य के उल्टे वार-बार वही सन्मुख याद दिलाता है, वही करने को प्रेरणा करता है, जो हमारे काम क्रोध मद ईर्ष्यादि सर्व शत्रु रूप है। नशेवाजी चोरी व्यभिचारी आलस्य प्रमाद नाच रग जुआ नाना तृष्णा मैथुन सुखाध्यास राग-द्वेष वहिर्वृत्ति आदि दुष्कर्तव्यों मे ही ढकेलता है। जो जीते जी रुलाने वाले है, मरने पर भी नाना योनियो मे कष्ट देने वाले है, यथा दोहा—क्रोध काम मद लोभ रिपु, मन वश दौड़त श्वान। मद्य जुआ लत और सव, दुर्गुण गहि वउरान ॥ माथ पकरि आँसू भरे, चिन्ता छाती जार। थू-थू परवश कूट पिट, परगट मन दुख धार ॥ इस प्रकार पूर्ण शत्रुओं के मध्य मुझे बेंचता है ॥ २ ॥ मन का कुटुम्ब—काम-क्रोधादि सर्व मोहदल, सारे कुकर्तव्य सो हे मन ! कुटुम्ब सहित तू घटिहा-विश्वासघाती नीच दिखाई दे रहा है। दुख को सुख, सुख को दुख प्रतीत करा रहा है। जहाँ तक मुझ चैतन्य की दृष्टि मे धोखा भुलावा हो रहा है, सो सबकी जड़ तू ही है। प्रथम तो जड़ स्थूल देह ही मे भुलावा मै-मेरी गर्व, फिर स्थूल सम्वन्धी प्रमदा सुत वित काम-क्रोध पच्च विषय आदि सारे शोक-समाज मे भुलावा। अहो ! जो साधु या मुमुक्षु गृहस्थ कोई भी तुझ मन-मानन्दी के भुलावा मे भूल जाय सुखाध्यास मे दौडे तो वह अत्यंत नीचे मार्ग मे पतित हो जाय, सद्बुद्धि-सत्कर्तव्य से शून्य

चेतन के सहारे ठेला-वेग या घडी-कूक न्याय दृढ मानना मात्र संस्कारित है। वह बाहरी संग और भोग से ही पुष्ट है। सो सब बाह्य उपाधि बने तहाँ तक छोडकर भीतर कुसंस्कारो को शुभ सस्कारो द्वारा मिटाकर स्वरूप बल से सदा स्ववश रहे। सम्पूर्ण मनोमय को अपने से भिन्न सर्पवत फेंकने की दृष्टि से देखते-देखते ही मनोमय बिल्कुल शात हो जाता है। सोई एकरस अभ्यास बनाना चाहिये।

शब्द—५

हमारे मन हमसे काहे प्रतिकूल ॥ टेक ॥
हमहीं तुमको धारण कीन्हे, मानि गाफिली भूल।
सुख हित सेय सेय के राखे, तुम देते नित शूल ॥ १ ॥
जो विवेक मग तोहिं सुझावैं, तेहिको नहीं कबूल।
पुनः पुनः वहि करैं सामने, जो मम शत्रु समूल ॥ २ ॥
वटिहा वंश सहित तू दरशैं, सब धोखा को मूल।
जो कोइ चूकै जाय रसातल, दर्द न ताहि रखूल ॥ ३ ॥
गुरु पारख की प्राप्ति जाहि को, परखि परखि करि धूल।
तब कहुँ चिन्ह मिलै नहि तेरा, भस्म होय जस तूल ॥ ४ ॥

टीका—विचारवान कह रहे है—हे हमारे मन! तुम हम से क्यो उल्टा चलते हो ? अर्थात मुझ चैतन्य शुद्ध स्वरूप अचाह नित्य तृप्त के विरुद्ध इन्द्रिय विषयों की कामना क्यों उठा-उठा के मुझे चचल करते हो ? ॥ टेक ॥ हम ही चेतन जीव तुझ मनोमय को धारण करते आये। अपने सत्य स्वरूप को भूलकर पच विषयो मे सुख-आनन्द मान-मान के गाफिली-अचेती धारण करके सुख मिले सुख मिले इसी लिये तुझ मन के कथनानुसार भोगो को दे-देकर तुम्हारी सेवा कर-करके तुम्हे पुष्ट करते ही आये, फिर भी हे मन! मुझे निरन्तर शूल दे रहा है, अपार तृष्णा बढाय दुर्गुणी बनाय

कहैं "विशाल" स्ववश कुछु नाहीं, चलति वार पछिताव पड़ा ।
मोक्ष काज सव पूरा जिनका, आना जाना वन्द पड़ा ॥ ६ ॥

टीका—पथिकवत रमता चेतन जीव रमि गये, चलि गये, मन्दिर रूप शरीर शूनशान निचेष्ट जड़ रूप दिखाई पड़ रहा है ॥ टेक ॥ वालपन का शरीर हो या जवानी का अथवा बुढ़ापा का, जिस किसी अवस्था के शरीर से जव रमता चेतन जीव निकल जाते हैं तव उस समय बालक जवान वृद्ध तीनों शरीर ज्ञान से शून्य मुर्दा दृश्यमान होते है। रमैया राम निकलने के पश्चात नेत्र अव रूप को नही ग्रहण कर रहे है, भाँति-भाँति के पदार्थो को नही देख रहे है। जीवित समय मे जो नेत्र की पलके खुलती-झपती थी अव वह बात नही है। जीवित समय मे अनुकूल वस्तु को कोई विगाडे या उसे उठा लेवे तो हानि समझ के दुख होता रहा। अव मुर्दा मे हानि का ज्ञान कौन करे ॥ १ ॥ कान से जो शब्दो का ग्रहण रूप कार्य हो रहे थे, अव कान किसी भी शब्द को ग्रहण नही कर रहे है। जो जीवित काल मे एक क्षण भी श्वास नही बन्द होता था, अव जीव के पृथक होने पर विल्कुल श्वास नही चल रहा है। अव सुगध-दुर्गन्ध का भी ज्ञान नही हो रहा है। पहिले किसी सुगध को सूँघकर प्रसन्न होते थे। सो प्रसन्नता मुख पर छा जाती थी। अब ज्ञाता के पृथक होने पर प्रसन्न होने वाला कोई नही जान पड़ता ॥ २ ॥ नन्हे से नन्हे देहधारी जन्तुओं—कीड़े-मकोड़े चमड़ी पर रेंगते ही चेतन जीव स्पर्श ज्ञान द्वारा चमडी चचल कर देते थे, सो अब मुर्दे में त्वचा कपायमान नही हो रही है। दुख-सुख मानन्दी रहित नाना यत्न रहित मुर्दा दिखाई दे रहा है। अब न तो त्वचा पर जन्तुओं के चढने का ज्ञान ही है और न तो काटने मारने वाले को हटाने का यत्न ही है। दुख-सुख मान के तिसके त्याग-ग्रहण हेतु यत्न अव कुछ नही। पहिले जीवित काल मे भूख-प्यास का सव

होकर सर्वत्र विललाता घूमे। हे मन! कठोर से कठोर दुख-दर्द देकर जीव के कष्ट को तू नही देखता। चौपाई—"घात करै वहु भाँति कसाई। दै चारा पुनि अति दुखदाई॥ तैसहि मन की चाल विचारो। स्ववश नशाय जगत दुख डारो" ॥ ३ ॥ अब जिसे गुरु पारख की प्राप्ति है, सद्बुद्धि से दृढ़ निश्चय है कि मेरा स्वरूप इस मनोमय सस्कार सृष्टि से पृथक है, द्रष्टा है, चेतन है, ऐसी एकरस बुद्धि जिसे प्राप्त है, वे मनोमय को परख-परख के नाश कर देते है: सब इच्छा-वासना, सब कल्पना-सस्कार को मिटाते हुये अपने मे शात रहते, तब हे मन! तेरा कही चिन्ह तक नही मिलता। जैसे रुई अग्नि से भस्म हो जाती है, तैसे तू पारख अग्नि से खाक हो जाता है। विवेक युक्त सदा मनोमय का अभाव रखते-रखते देह पर्यन्त स्ववश स्थिर शात हो जाता। आगे सदा के लिये मनोमय नष्ट हो जाता है। अतएव पारख प्राप्ति करके छली मन को स्ववश करो॥ ४ ॥

शब्द—६

रमि गये रमता मुसाफिर मन्दिर शून पड़ा ॥ टेक ॥
बाल तरुण मन्दिर करि शूने, वृद्धापन तन शून पड़ा।
नेत्र न ग्रहण रूप को करते, खुलैं ढपैं ना हानि पड़ा ॥ १ ॥
श्रवण न काम शब्द को करते, श्वाँस चलनि नहिं देखि पड़ा।
गंध सुगंध को ज्ञान न होवै, मुदित सूँघि नहिं जानि पड़ा ॥ २ ॥
जन्तुन परश त्वचा नहि चंचल, दुख सुख मानि न यत्न पड़ा।
क्षुधा तृपा को काम न चालू, तृप्त भूँख नहिं कोइ पड़ा ॥ ३ ॥
हाथ न गहैं पाँव नहिं चलते, मुख ते शब्द ना निकल पड़ा।
मल अरु मुत्र को त्याग न होते, देह कुरूप तजि त्रास पड़ा ॥ ४ ॥
जो कुछ कीन्हें साथै लीन्हें, ना कुछ जाते राखि पड़ा।
बाहेर का सब बाहेर छूटा, मानन्दी का शिर भार पड़ा ॥ ५ ॥

आदि न किया। यदि अधिक मोहासक्त अज्ञानी होगा तो कहेगा हाय ! मैने पूरा सुख नही भोग पाया, शत्रु आदि मारने को ही बाकी है, इत्यादि पछतावा होगा। अत' अभी से चेतो ! और जिन्होने पहिले से ही सद्‌गुरु तथा विचारवान सन्तो के सत्संग सेवा साधन द्वारा स्वरूपज्ञान युक्त निराश वर्तमान मे शात चित्त होकर निर्वासना युक्त ठहर गये, मैथुन-ममतादि का अभाव कर दिये, एव मुक्ति साधन पूर्ण जिन्होने साधे उनकी अन्तर सूक्ष्मग्रथि टूटकर वे अपने आप निराधार स्वरूपदेश मे अचल स्वय प्रकाशी स्थिर हो गये। उनका फिर आना-जाना, जन्म-मरण बन्द हो गया ॥ ६ ॥

शब्द—७

छूटि जाई साथ सबन को आखिर ये ॥ टेक ॥

तन प्राणी धन साथ न तुम्हरे, काहेक खेद बढ़ातिर ये।
ज्ञान समुझि सुखिया ह्वै जाओ, मन के दॉव बचातिर ये ॥ १ ॥
ममता अहं मानि कै तिनका, मोह बिबश दुख भातिर ये।
बोझ लादि भरमत दिन राती, तिन हिन सबहिं सतातिर ये ॥ २ ॥
अब तब साथ न देवै कोई, मन माने की बातिर ये।
जेहि दिन पूर न तिन मनमानी, सब ही बिमुख लखातिर ये ॥ ३ ॥
धरम न चीन्ह सदा जो साथी, घर बाहेर हित थातिर ये।
सदा सुखी तजि भार सबन को, बृथा गुमान नशातिर ये ॥ ४ ॥
सब जीवन में समता धारै, काहेक राढ़ि बढ़ातिर ये।
तन छूटत में खैंच न काहुकि, गुरु का ज्ञान सुहातिर ये ॥ ५ ॥
दुष्कर मन की लदै न गठरी, जीवन सुभग बितातिर ये।
आप आप को समुझि निराला, साहेब कबीर बतातिर ये ॥ ६ ॥

टीका—कितना भी वस्तु-प्राणियो को अपनाओ, ममता बॉधो, अत मे तो इन सबका सम्बन्ध छूट ही जायगा ॥ टेक ॥ यह शरीर और ये सब सगे-सम्बन्धी नर-नारी वर्ग तथा यह रुपये पैसे लाख-

काम चालू था । अब जीव के निकल जाने पर भूख-प्यास का ज्ञान कुछ नही । अब हम तृप्त हो गये, अघा गये, अथवा अभी हम भूखे है, चेतन जीव बिना ऐसा कौन कहे ? अब भौतिक जड शरीर पड़ा है ।। ३ ।। जो जीव के रहते-रहते हाथ से नाना पदार्थ लेते-देते, धरते-उठाते कुछ काम करते थे, पाँव से चलते थे, मुख से नाना शब्द बोलते थे और मल-मुत्र को त्याग करते थे, जीव निकल जाने पर ये सब बाते कुछ नही । जीवित काल मे जो देह सुन्दर प्रतीत होती थी, अब जीव के निकल जाने पर वही देह महा कुरूप तथा बेढगी दिखाई दे रही है । उसमे जब जीव था तो साँप-बिच्छू, दुश्मन आदि के मिलने पर उसे पीडा मालूम पडती थी । अब तो जीव के निकलने के पश्चात सर्पादि का किंचित भी दुख का ज्ञान नही है ।। ४ ।। पाप-पुण्य विषयासक्ति आदि जो कुछ भला-बुरा कर्म चेतन जीव किये थे, वे सब सूक्ष्म देह के सस्कार बीज अपने साथ ही रमैयाराम लिये गये । चलते हुये रमैयाराम अपने मनोमय सस्कार रूप सामान कुछ नही छोड़ गये, मात्र पिजरा पड़ा है । जितना स्थूल सम्बन्धी घर-मन्दिर, सेज-गहना, रमणी, पुत्र-धन, कोष-ऐश्वर्य था वह सब बाहरी सामान स्थूल त्याग होते ही बाहर के बाहर ही छूट गये । मात्र जो कुछ मनोमय सस्कार सचित किये थे, वही मानन्दी रूप बोझा रमैयाराम के मत्थे पड़ा, बाकी सब छूट गया ।। ५ ।। सत्य शिक्षक महात्मा त्रिशाल साहेब कह रहे है कि देखो हे रमैयाराम ! विजातीय तन-धनादि पदार्थ और वासना वासी देहधारी जीव कोई भी अपने स्ववश नही है । इन पर अपना पूर्ण कब्जा नही है । यदि सबको अपनैयत मानकर स्ववश का मद करोगे और सुखाध्यास वश इसी ममता मे जीवन बिताओगे, तो स्मरण रक्खो ! चलती बार पछिताव पडेगा । कहोगे—हाय ! स्वार्थी ससार के चक्कर में पड के मैने कुछ धर्म-भक्ति, स्वरूपज्ञान-स्थिति

उठा लिए हो। नित-नित सरकार दरबार मे झूठी गवाहियें, इर्ष्या-द्रोह की बात घात उत्पात दलबन्दी पंचायत बदला कठोर से कठोर बन के असुर हो गये।

दृष्टात—एक स्त्री के चार सुन्दर पुत्र अधिक सम्पत्ति और पुरुष अनुकूल था, इसलिए स्त्री को बहुत गर्व था। वह पास मे पटैत गरीब स्त्री से लड़ा करे। उसके पास उतना धन भी न था। पुत्र भी कोई नही। उसे वह नित्य निर्वंशी अभागिनि कह के ठेना दिया करे। कर्म वश उस अभिमानिनी स्त्री के पुत्र और पुरुष हैजा मे सब साथ ही मिट गये। धन भी नष्ट हो गया। क्या हो! इस कर्म भोग क्षेत्र मे ममता-अहकार न करना चाहिये ऐसा उसे अब विचार हुआ। अव धर्मपथ रत हुई। इस प्रकार कोई भी विजाति ऐश्वर्य का गर्व भरना दुख पना है। मद त्यागकर आगे आँख खोलो तब दिखाई देगा।

अब-शरीर रहे तक, तब—दूसरे जन्मो मे ये कोई भी कुटुम्बी प्रेमी या समीपी तुम्हारे वासना कृत दुखो को बटा नही सकते। तुम प्रत्यक्ष देखते ही हो कि शरीर के रोग व्याधि बुढापा मृत्यु मे हाय-हाय अपने को ही करना पडता है तथा मन की चितायें व्यथायें-वासनाये अपने को ही जलाती रहती है। स्वार्थिक प्रेमी सुख न पाकर प्रत्यक्ष तुमसे हटते रहते, लड़ाई उत्पात घात भी कभी कर डालते है। इतना अनुभव करते हुये भी मनमानी कल्पना कर लिये कि इनसे मुझे सुख होगा यही मन का भुलावा है। विचारो तो सही! प्रियजन जिस दिन अपने मन की पुरौती तुमसे न देखेगे उस दिन सबके सब तुम्हारे प्रेम से उलट जायँगे। कहेगे कि तुम्हारे रहने से क्या लाभ? न रहने से क्या हानि? "जैसे कंथा घर रहे तैसै रहे विदेश" इस प्रकार प्यारी ताना मारेगी और माता-पिता, भाई-बन्धु भी नि स्वार्थ देखकर तुमसे उदासीन हो झगडा, नाना छल-बल ईर्ष्या

करोड़ धन क्या तुम्हारे साथी होगे ? नही। फिर क्यो उनके हानि-लाभ मे चितादि दुख की वढती करते हो। एक तो सव विछुड़ने वाले है। दूसरे सव स्वार्थ छल वल पूर्ण है। तीसरे भूल और प्रारब्ध विवश है। अत उनके मिलन विछुडन, हानि-लाभ की चिता डाल देनी चाहिये। सद्गुरु द्वारा यथार्थ ज्ञान समझ कर अविनाशी के भजन-भाव मे लगकर पूर्ण सन्तोष युक्त सुखी हो जाओ, यही सुख पाने का उपाय है। इस जीवन मे मन का दॉव वचाते रहो। स्मरण रहे—मन अपना दॉव हर जगह फेकता है। जव तक शरीर है तव तक उसकी झपट है। गृहस्थी मे तो वनिता-पुत्र, धन-ऐश्वर्य के लिये सत्सग-सत्साधन का अवसर ही नही निकाल पाता। कही जडवाद मे पड गया तो उसके दुर्वुद्धि-दुराचार की मति नहीं। कहीं मान-वडाई का हेतु रखकर स्थिति पथ से गिरता है। कही भेष मे आकर पूज्यभाव आरामतलवी की अनन्त कामना रख के पचता है। यथा—"मन नहि मारा मान करि, सके न पॉच प्रहारि। शील साच सरधा नही, अजहूँ इन्द्रि उघारि ॥" (सा० स०) अत· छली मन का फन्दा वचाकर हर समय स्वरूपज्ञान की रक्षा करो। नही तो मन जीते विना केवल ज्ञान तुम्हारा काम न देगा ॥ १ ॥ स्त्री-पुत्र, कुटुम्बी-धन तथा जड़ देहादि विश्व मे सुख मानि के खिचते जाना, ऐसी ममता फिर तिन्हो का अह मम अर्थात सव हमारे स्ववश है। इनको सदा मैं अपना करके रक्खूँगा। अह—जोश मानि-मानि के निश्चय द्वारा मोह-भ्रान्ति वश जो दुख रूप हैं अपना नही, सुखदाई-स्ववश नही, जो राग-द्वेप, प्रपच पूर्ण है, सोई तुम्हे भाता है, इसीसे सवका वोझ लाद लिये हो। तिन्हों की रक्षा पालन वढती में उल्टी गति-मति वश दिन को दिन रात को रात नही गिनते। इन्ही में सदा चंचल रहते हो, एक क्षण भी सुपास नही लेते। अहो ! छूटने वाले इन्ही नश्वर कुटुम्वियो के लिये तुम सव जीवो को सताने का वीड़ा

घात छल एक के हेतु, दूसरे के हेतु मोह-माया अहो ! ये किस जरूरत के लिये किया जाय ? एक को हर प्रकार सताना, दूसरे की रक्षा चाहना ये मोह—अंधकार है। इसको त्यागकर चैतन्य सदा ज्ञान स्वरूप अखण्ड सबसे पार है और जड़ दृश्य सब चल विचल है। हानि-लाभ सब अपने-अपने प्रारब्ध-प्रयत्न आधीन है, फिर अन्य से क्या सबंध ? नर देह पाकर दिन-रात इसके लिये प्रयत्नवान होना चाहिये कि शरीर छूटते समय न तो किसी वस्तु या प्राणी की मोह-ममता मे खीचे और न तो किसी के उखाड़-पछाड़, वैर-विरोध भाव मे खीचे, राग-द्वेष से रहित स्वस्थ होकर जैसा गुरु का पारख ज्ञान है, स्वयं स्वरूप निराधार निर्विकार है तैसा ही हृदय मे एक लक्ष्य से स्वरूपवृत्ति उदय द्वारा किसी भी पिण्ड ब्रह्माण्ड की आशा न कर मात्र स्वरूपनिराधार का भान रहते-रहते शांत हो जाय। यही लक्ष्य यही ध्येय, यही पुरुषार्थ निरतर करना चाहिये, जिससे गुरु का ज्ञान स्वरूप-स्थिति ही हरदम अतिशय प्रिय हो जाय और जगत प्रियता शत्रु मित्र हर्ष शोक मनोमय दिल से उठ जाय, जिससे कि अन्तिम कसौटी मे पूर्ण उतरे ॥ ५ ॥

दृष्टात—एक सत्सगी मनुष्य किसी से लडे नही, बकवाद करे नही, कुटिलता-नीचता बतलावे भी नही, निन्दित आचरण करे भी नही, थोड़ा निर्वाहिक कार्य करके नित्य सत्संग सद्ग्रथ विचार मे लीन रहे, राग-रग से भी हटा रहे। गाँव का एक मनुष्य उससे विविध कुटिलता-हँसी किया करे। क्षमा के आगे वह हार खा के एक दिन कहा—ऐ विचित्र जीव ! आप को जिन्दा कहे कि मुर्दा ? सत्सगी ने कहा—जो कहिये, हर तरह मुझे मजूर है। इसी बर्ताव से तो अविनाशी मुक्तिद्वार मे प्रविष्ट हो रहा हू, फिर मृतक दशा क्यो छोड़ू ? साधनतो यहाँ तक हो कि किसी हालत मे क्रोधके वशन हो। काम-मद मोह-लोभ और सुखाध्यासभी न खीच सके, वही विजयी है।

सब उत्पात सम्बन्धियो से ही तो होता है। यही सब ससार की दशा प्रत्यक्ष दिखाई दे रही है। फिर तुम सबसे सच्चा नाता मान कर अपना रत्न समय क्यो खो रहे हो ? ॥ ३ ॥

दृष्टात—एक पुरुष की स्त्री बड़ी प्रेमिन अति अनुकूल सेवाशील थी। आगे चल के कुछ न भाने से पुरुष दूसरी स्त्री लाया। अब नित्य-लड़ाई झगडा की वर्षात होने लगी। एक दिन पहिले वाली प्रेमिन स्त्री-पुरुष को बाधकर मूसलो से कूट-कूटकर खूब सेवा की। सुवह टूटे-फूटे मलीन मुख देखकर उसके मित्र ने पूछा कि ये क्या बात ? वह बोला—"प्रेमिन की गति टूटी। मूसल से मोहि कूटी॥ हा! हा! हमहूँ अनारी। जो कीन्हा जग से यारी॥ मन मूसल सबको कूटै। बड़ भागी समुझि के छूटै॥"

ये धर्माचरण ही सर्वत्र सबके परम रक्षक है, यह तुम्हारे पहिचान मे ही न आया। परोपकार सत सेवा जीव रक्षा इन्द्रिय-मन निग्रह सत्सग सयम निर्वासना अक्रोधादि घर मे क्या वन में अर्थात गृहस्थी या विरक्ती, स्वार्थ-परमार्थ, इस जन्म मे आगे जन्म मे देश-विदेश प्रत्येक स्थान मे धर्म सेवन ही पूर्ण थाती है। थाती का अर्थ जो सुरक्षित धरोहर हो। हर अवसर मे सुख पहुँचाने वाला, प्रत्येक दुख-सकटो से बचाने वाला धर्म ही है। धर्म सेवन से हृदय पवित्र, मन स्ववश-स्वारथ ज्ञान और सब सदाचरण प्राप्त होते है। अत धर्म सेवन अवश्य करते चलो और सबके हानि-लाभ, शोक तथा मोह का बोझ डालकर सदा के लिये निश्चिन्त निष्कलंक सुखी एव स्वस्थ चित्त होओ। देह सम्बन्धी कुटुम्बियो का झूठा अभिमान नाश कर दो ॥ ४ ॥ सब शरीर धारी स्वजाति होने से बराबर है। उनमे समता अर्थात मन वच कर्म से उनकी हितैषिता का लक्ष्य लेकर सरलता से धर्मानुकूल व्यवहार करो। जब सब स्वजाति जीव है, तब झगडा की बढती किसीसे क्यो ? बदला निन्दा कटुबात उत्पात

करता है कोई बहुत। ऐसा न हो कि बहुत के लोभ से थोडा भी समाप्त हो जाय। जीवन मे हलचली दुराचरण न हो, शाति गरीबी सदाचरण हो, इसी मे देहान्त हो जाय बस हमारा लक्ष्य पूर्ण हो गया। सबके लक्ष्य को पूर्ण करना हमारे सामर्थ से बाहर है। परोपकार, जन सेवा, सर्व हित, सघ-रक्षा, हमारी तरफ से यह हो रहा है कि जिस रास्ते से हम चल रहे है, उसी रास्ते से सम्पूर्ण मनुष्य चलने की कोशिश करे, यदि न करें तो उनकी मर्जी की बात है। जबरन हमारा क्या अख्त्यार ? सबके लिये सहायक और अपना उद्धारक वही है जो सबसे प्रवृत्ति हटाकर स्ववश निवृत्ति मे विराजे, स्वरूपस्थ हो। जन समूह राग-वाग से अलग रहे, सहजिक स्ववश किसी समय हित सदेश बोल दे, कोई माने तो न माने तो उसी की मर्जी पर रक्खे।

शब्द—८

नहिं कोइ साथ जाय धन धामा ॥ टेक ॥

मात पिता भाई संग छूटे, भगिनी भतीजे भामा।
सुत पुत्री औ सारी सरहज, ससुर दमाद बेकामा ॥ १ ॥
लोग कुटुम परिवार जहाँ तक, छूट देश कुल ग्रामा।
खान पान सुख शय्या छूटे, वाहन शस्त्र तजामा ॥ २ ॥
अच्छे अच्छे वस्त्र सुहावन, अंग सुसज्जित सामा।
ऊँच नीच सब दर्जा छूटे, धरणी मुलुक तमामा ॥ ३ ॥
प्रिय तन देखि भयावन लागै, परी निरादर ठामा।
प्रेमी राखि निकट नहिं सकते, गाड़त जाय धरामा ॥ ४ ॥
जल प्रवाह या अग्नि जलावैं, जेहि के बन्यो गुलामा।
करि अघ कर्म भोगु तन धरिधरि, यहि विधि देह ठगामा ॥ ५ ॥
समुझि विशाल छोड़ु आसक्ती, काहे भूल्यो तामा।
जो छूटै सो अपन नहीं है, गहि अभिमान नकामा ॥ ६ ॥

देखो ! होशियार रहो ! निर्वाह या सुख हेतु चोरी व्यभिचारी झूठ जालसाजी छल कपट वेइमानी हिंसा द्रोह परपीडन काम क्रोध मद मत्सर पच भोगासक्ति आदि किसी भी पापरूप कुकर्तव्य की गठरी न वॅधने पावे, "मति वॉधौ गठरिया अपयश की"। वल्कि सर्व सुख भोग मिथ्या होने से उनको त्यागने का दृढ प्रयत्न करते हुये शुभाचरण सहित सुमार्ग में ही देह यात्रा पूर्ण करो। सत्य अहिंसा निर्वैर दान धर्म उदारता सत्संग सेवन ये सव सुमार्ग है, इनका विस्तार सद्गुण शतक मे कर आये है। यही सुकृतरूप धन सचय की निरन्तर कोशिश करो। सव दूष्कर्मो को तो सत्य कर्मो के ग्रहण द्वारा त्याग करो और सत्कर्मो का फल—स्वरूपज्ञान दृढ करो। अपने आप शुद्ध चैतन्य जो कि सर्वका द्रष्टा है, वह स्वय हंस सर्व इन्द्रिय गोचर दृश्य जाल से न्यारा है, यही श्री कवीर साहेब का कथन है। यही वीजक तथा सर्व सद्ग्रंथ और पारखी विवेकी संतों का पवित्र श्रेष्ठ सिद्धात है और विशेष कहॉ तक कहा जाय, अतिम वात यही है कि अपने को सवसे निराला समझो और सर्व आसक्ति स्नेह दुराचरण त्यागकर सदाचरण ग्रहण कर मुक्त हो रहो ॥ ६ ॥

दृष्टान्त—एक संत तीस-चालीस कोस के घेरे में विशेप भ्रमण करते थे। समय-पात्र अनुसार शिक्षा सत्य वर्ताव शुद्ध आचरण शुद्ध देह व्यवहार क्षमा निराशा सतोष निर्ममता और उदार तथा निर्विवाद युक्त वर्तने से आपके वहुत प्रेमी हो गये थे। आप एक वड़े प्रतिष्ठित महात्मा थे। एक दिन एक वाचाल वक्ता आकर संत से वोला—अगर आप चाहे तो जनता का वहुत हित हो सकता है। जगह-जगह सभा सुसाइटी कीजिये। किसी पार्टी वन्दी मे होइये। दौड़ धूप लगाइये। एकान्त मे वैठे-वैठे क्या करते है ? आप स्वतंत्र है। आपको समय है। मान्यता भी आपकी है। विवेकी सत ने कहा—घर मे सव काम सवसे वरावर कहॉ सधता है ? कोई कम

ये सब तुमसे छूट जायँगे। इन सबसे तुम्हारा बिछुड़न हो जायगा। जहाँ कही भी रहो तुम उसी वासना के आधीन पीडित रहोगे। खट्टे, मीठे, चर्परे सहित सर्व खाद्य आदि पदार्थो और भाँति-भाँति के जल दुग्ध शर्बत आदि के पीने मे तथा कोमल नरम स्वच्छ सुगन्ध युक्त बिछौना मे पडे रहना ही तो तन का फल समझते हो! तो कम से कम इनकी अनित्यता और बिदाई का तो तुम ध्यान रक्खो? घोड़ा हाथी ऊँट बैलगाडी आदि तथा साइकिल चढके फैसन युक्त जब तुम सनसनाते हो तो मानो तुम्हारी हस्ती में कोई नही। निजी कार मोटर जहाज आदि हो तो फिर मानो आसमान के ऊपर हो गये, कौन किसे पूछता? क्या यह अभिमान ठीक है? जो कही तुम्हारे पास बन्दूक तीर तलवार काँता बर्छी आदि शस्त्र हो तो फिर तुम अपने को भीम, आल्हा, ऊदल से कम नही समझते। जो कही तोप और एटम—अणु बम आदि तुम्हारे-समीपी के पास हो तो फिर गर्व का क्या ठेकाना? यह तुम्हारी मदमस्ती छूटने की एक यही सुन्दर औषधि है कि तुम दिन-रात यही स्मरण रक्खो कि ये सब अचानक हमसे एक दिन तमाम छूट जायँगे। "फिर छुटहा साथ कसैसी" इनका प्रमाद जोश भी कैसा॥ २॥

दृष्टात—एक शौकीन बना हुआ युवक एक की कमर झुकी हुई थी ऐसे बुड्ढे को आते देख हँसी किया, बाबा! यह धनुष कितने का मोल लाये हो? बुड्ढा बोला—यह धनुष बिना मोल दो दिन में सबके गले मढ जाता है। रोग-शोक विविध परतन्त्रता अभी ही तुम सबको सतायेगी ही। फिर भैया! क्यो हँसी आती है? गर्व दुखदाई का त्याग करो, एव कोई भी गर्व लेना ठीक नही।

वेलबूटे, नकाशे, गोटे-पट्टे, कोमल-पतले तथा छीटदार-कालर-दार रग-बिरगे मोटे-महीन जहाँ तक नर-नारियो की दृष्टि मे सुन्दर-सुन्दर अच्छे-अच्छे कपडे-गहने हाथ पाँव के कडे गला आदि के

टीका—हे जीव ! जो तुम पैसे रुपये, सोना-रत्नो के खजाना मे और ऊँचे-ऊँचे पक्के मकानों को अपना मान के फूलकर परमार्थ से चूक रहे हो, तो ये तुम्हारे शरीर के छूटने के साथ ही सब छूट जायँगे, कोई तुम्हारे साथ जाने वाले नही है ॥ टेक ॥

दृष्टात—एक धनवान हिसकी चोर डाकू था। व्यभिचार की मात्रा भी उसमे अधिक थी। वह एक बार कही जगल मे होकर निकला। एक सतने एक बोरा मे मिट्टी भर के मदान्ध से कहा—जरा इसे उठाकर मेरे शिर पर रख दीजिये ! वह उठाने लगा तो उठा ही नही, जोर भर-भर के रह गया। सत ने कहा—फिर तुम ये सारा महल धन कुटुम्ब अत मे कैसे उठा सकोगे ? देह भी तो छोड जाओगे ? जिसके लिये सब पाप कर रहे हो। उसे चेत हो गया, वह सब पाप छोड सत्संग का प्रेमी बन गया। अत· मनुष्य को विचार करके सत्मार्ग मे ध्यान देना चाहिये।

इस देह के पालन पोषण करने हारे माता पिता तथा सगे भ्राता का भी अत मे साथ न रह जायगा। बहिन, भतीजे तथा स्त्री यहाँ तक कि खास पुत्र प्रिय पुत्री और सारी सरहज ससुर प्राण प्रिय दामाद आदि भी तो शरीर छूटने पर राई, रत्ती काम न देंगे। देखो ! जीव को पथिकवत पर लक्ष्य देने से सबकी मोह-माया निरर्थक है। कोई दूसरे जन्म के कर्म जनित दुख को बँटा नही सकता। इस जन्म मे भी सर्व पच विषय वासना मे ही सहायक हो कर दुस्सह दुख देने वाले है। अत अभी से आसक्ति की कमी करो ॥ १ ॥ ससार के सम्पूर्ण लोग कुटुम्ब परिवार देह के नाता विस्तार मान लिया गया है, सो सबों का सम्बन्ध जहाँ तक है और अपना देश नदी पहाड बाग वन भूमण्डल रात दिन प्रकृति के दृश्य वर्ग मे मोहित होकर विश्व मद मे जो तुम भुला रहे हो तो देखो !

वडा डर लगता है। अब वह निरादर सम्मान रहित जहाँ-तहाँ पडी है। जीव के निकलते ही लोग कहते है कि शरीर ठण्ढा हो गया। अब खाट से उतार दो। गाँव के भाईचारा और घर के बडे-बूढे कहते है अब देर न करो। मुर्दा घर मे रखना अच्छा नही होता। जल्दी करो, श्मशान ले चलो। मोह वश युवती बहिन भौजाई पुत्र पुत्री तथा अन्य प्रेमीजन, आगे घर गाँव कैसे सुधरेगा ? मुझे सुख कैसे मिलेगा ? इस स्वार्थ के भंग से हाय-हाय करके अति करुणा विलाप करते है। किसी मुर्दा को रख के होगा भी क्या ? एव कोई भी प्रेमी मुर्दा को पास न रखकर या तो धरती मे गाड़ देते है ॥ ४ ॥ या तिस मृत शरीर मे बालू पूर्ण गगरी बाँधकर या पत्थर बाँधकर जल मे डुबो देते या ऐसे ही फेक देते। तहाँ मगर मछली कछुओ का यह शरीर अहार हो जाता है। अथवा लकडी की चिता बनाय तिसपर मुर्दा को धर के अग्नि लगाकर तिस तन को भस्म कर देते। जिस कृमि खाद्य, मल कोष, मिट्टी रूप इस देह के रात-दिन गुलाम बने थे, लो ! आज उसी शरीर की यह दशा है। प्रचण्ड रूप से जल-बल खाक हो रहा है। इतने पर भी हे जीव ! तुम्हारा छुटकारा नही है। बल्कि इस नश्वर शरीर के मोह वश जो जो तुम चोरी-व्यभिचारी, हिसा-घात कुटिलाई-विषयासक्ति राग-द्वेष आदि असख्य पाप कर लिये हो, उनके जडाध्यास बीज अंत -करण मे पडे हुये समय-समय पर सस्कार सनमुख हो-हो कर अनेक शरीर धराय, तुम्हे तीन ताप युक्त विविध कष्ट से पीडित करते रहेगे। इस प्रकार तुम्हे यह बहुरुपिया शरीर पूर्ण ठग के समान मोहित कर जन्म-जन्म ठगता है, अविनाशी सत्य स्वरूप मे स्थित नही होने देता ॥ ५ ॥

दृष्टान्त—एक वाचाल अपने मित्र से कहा करता था मै अपने शरीर के नाश होने की कभी भावना नही करता, अत मेरा शरीर

हार, सोने की करधनी घडी आदि अनेक सजने वाली सामग्री युक्त शरीर के सुन्दर अग आदि आखिर छूटना तो निश्चय ही है। ऊँच दर्जा मे हो जैसे वकील, वैरिस्टर, मुलकीलाट, प्रधानमंत्री, मिनिप्टर, विज्ञान के प्रोफेसर, प्रिन्सिपज, सिविल्सर्जन हो या किमी प्रकार भेप मे जन समूह द्वारा प्रतिप्ठा सहित तमाम ऐश्वर्य मिला तो क्या इससे तुम अपने को वड़ा मान लिये ? होश तो करो ! क्या विजातीय उच्च दर्जा सदा तुम्हारे हाथ रहेगे ? नही। कोई तो थोड़ी सम्पत्ति अल्प विद्या, अल्प वडाई, अल्प श्रेणी पाकर रात-दिन अपने को अभागा अतृप्त दीन-दुखी मान के शिर पीटते रहते है। क्या यह अत्यन्त अनारीपन नही है ? नीचत्व दर्जा भी तो जीव का संघाती नही है। फिर काहे वृथा कप्ट लादा जाय ? जिनके तमाम जगह जागीर है, जो धरणीधर है, उदय अस्त लौ झण्डा फहराता है, कितने-कितने मुलुक स्ववश है, वे भी तो खाली हाथ जायँगे सव उनसे छूट जायगा। देह छूटे वाद पुनर्जन्म मे तो धनी-गरीव, राजा-रक सवकी वरावर ही दशा। सव निज-निज कर्म वासना के फल भोगने हित परवश है। सव विदेशी यात्री है॥ ३ ॥

दृप्टात—एक महाराज सम्राट की लाश वडे सज-धज से लाखों मनुप्यो की भीड युक्त श्मसान की तरफ लोग ले जा रहे थे। थोड़ी देर मे जार वार के सव लौट पडे। एक छोटा भाई वडे भ्राता से पूछा—जिसकी सारे भू मण्डल पर आज्ञा चलती है, तमाम डाक्टर, हकीम, वैद्य, वैज्ञानिक घर मे भरे पडे है, जिसके सव कुछ है उसकी भी मृत्यु होगी ? वडे भाई ने कहा—जिसकी उत्पत्ति हो उसकी निश्चय ही मृत्यु समझो, कोई भी हो। इसलिये मद छोडो धर्म मे मन जोड़ो।

देखो-विचारो ! जो कल सजीव था, जीव के वास्ते निज जीव के समान जो देह प्रिय थी आज वही देह मुर्दा हो गई। उसे देखकर

मानुष को करतव्य इशारा, यही संत बतानो ।
विशाल दास दुख छूट जीव को, जो यहि मार्ग लहानो ॥ ५ ॥

टीका—स्वरूप बोध के लक्ष्य से देखा जाय तो मालूम होगा कि चेतन जीव का स्वाभाविक सम्बन्ध किसी से नही है । वह न किसी का है और न उसका कोई है ॥ टेक ॥ माता-पिता स्त्री-पुत्रादि खास देह सम्बन्धी कुरमा-गोत्र, काका-बाबा आदि बाहर के सम्पूर्ण लोग तथा धन-मानादि सम्पूर्ण विश्व वस्तुओ से चेतन जीव का असली सम्बन्ध नही है । प्रत्यक्ष ही उससे सब छूटते रहते, अदल-बदल होते रहते, या आप ही सबको छोडता-पकड़ता रहता है ॥१॥ वेद-शास्त्रादि, कुरान-पुरान आदि ग्रंथ और सनातन आर्य जैनी वैष्णव आदि भेष मार्ग में रहे हुये मनुष्य हानि—दुख जान-जानकर धारण किये हुये मार्ग भेष ग्रंथो को छोड़ते रहते या उसी मे मनानुसार उलट-पलट किया करते तथा न धारण किये हुये को लाभ समझ के पकड़ते रहते है । इससे प्रत्यक्ष अनुभव हुआ कि इस चेतन जीव का उपरोक्त वस्तुओं मे से किसी से स्वाभाविक सत्य सम्बन्ध नही है । कहाँ तक प्रमाण दिया जाय ? खास जो हरदम साथ लिये रहता है, तिस देह को भी धन-मान हानि होने या कोई असह कष्ट पाने पर छोड़ देता है, फाँसी ले लेता, पानी मे या अग्नि मे धँस के या पहाड़ पर से कूदकर देह को भी तृण के समान छोड़ देता है । अथवा एक दिन शरीर यो ही छूट जाता है जीव का शरीर होता तो छूटता ही क्यो ? अत. जब देह ही नही रह जाती तब और किससे नाता कहा जाय ? ॥ २ ॥ केवल दुख से छूटने के अर्थ ही जीव का नाता है । जिस-जिससे दुख त्याग होना देखता है उसीसे नाता जोड़ता है । इसके अलावा उसका कोई भी सगा नही । वह आप दुख रहित होने से उसे दुख सहन नही है । इसलिए दुख छुड़ाना ही एक मात्र सम्पूर्ण जीवों को इष्ट है । इसीसे समझ अनुसार सबसे सब नाता जोड़ रक्खे

छूट नही सकता। निदान तीस ही की वर्ष उम्र में खून सूखने की वीमारी हो गई। कोटियो उपाय करते भी इकतीसवें वर्ष मे मूख के नष्ट हो गया। मित्र ने अन्य लोगो से कहा—ऐसे-ऐसे भयंकर मदान्ध भी पडे है मृत्यु शय्या पर तो "और कि केतिक वात" अत देहाभिमान त्याग करते रहो।

हित चिंतक विशाल साहेव कहते है कि ह जीव तुम इस शिक्षा को श्रवणकर ठहर के विचारो! समझो! सर्व छूटने वाले स्थूल-सूक्ष्म, पिण्ड-ब्रह्माण्ड, तन-मन, वाह्य पदार्थो की आसक्ति-ममता त्याग कर दो। दुखरूप क्षणभंगुर जान-वूझ के भी उन पदार्थो मे क्यो आसक्त होकर प्रियता मान रहे हो? जो जन धन कुटुम्व मान वाणी वैभव छूटने वाले हे, तो छूटने वाली चीज कही अपना स्वरूप होती है? छूटने वाले पिण्ड-ब्रह्माण्ड छूट ही जायँगे। ममता करने से यही लाभ मिलेगा कि उसी अभिमान मे फूल-फूल कर सदा अध्यास वश जन्म-मरण मे पचा करोगे, अत चेतो। अपने स्वरूप को सर्व परीक्षक पारखरूप समझ के अध्यास कामना ममता का त्याग कर दो, सदा स्वरूप स्मरण रक्खो॥ ६॥

शब्द—९

जीव को नात न काहु से जानो॥ टेक॥

मात पिता से नाता नाहीं, नहिं वरणी परमानो।
लोग कुटुम्ब से नात न तेहि को, नहिं कोइ वस्तु वखानो॥ १॥
वेद शास्त्र से नाता नाहीं, ना कोइ और ग्रन्थ को ठानो।
नहिं कोइ भेप पंथ से नाता, ना तेहि देह रहानो॥ २॥
दुख छूटन से नाता तेहि को, और न नात कहानो।
सो वह काज होय जेहि विधि से, सोई यतन मनमानो॥ ३॥
पाठ पठन सोइ वोलव वर्तव, ग्रंथ पंथ भेपानो।
हित वन्धू प्रिय सव हैं सोई, वहि घर वस्तु पिछानो॥ ४॥

सर्व सन्त, सर्व सद्ग्रंथ और गुरुदेव तथा स्वतः सर्व सम्मत यह मत्र है कि तीनो काल में अपने को जिससे दुख की प्राप्ति न हो, वही धर्मसार निर्भय होकर ग्रहण करे। अत कोई भी जो उस दुख हारक पारख पथ को निर्णय पूर्वक ग्रहण करेगा उसका अवश्य कल्याण होगा। श्री कबीर साहेब भी इस बात को पुष्ट कर रहे है—"थे जियरा तैं अपने दुखहिं सम्हार। जेहि दुख व्यापि रहा ससार॥ माया मोह बधा सब लोई। अल्प लाभ मूल गौ खोई॥" और भी—"जरत-जरत ते बाँचहू॥" (बी०) इत्यादि। इससे मन सम्भव दु.खो का जिस प्रकार अत हो, वही कार्य करना प्रधान कर्तव्य है। ऐसा न हो कि किसी के भय लालच-प्रलोभन अध विश्वास मे पड़कर अपना सतमार्ग साधक कर्तव्य भूल जाय। अत सावधान। "धन्य सो बूझि समुझि पग धरही। अँधरन भटकि भटकि भव परही॥" (पञ्च०)॥ ५॥

शब्द—१०

काम अरि अपना जानौ न मीत॥ टेक॥

पथ परमारथ बरबस छूटै, जो सब सुख कै नीति।
सब सुख दाता यम सम भासैं, ऐसी विषम अनरीति॥ १॥
जानि कुकर्मी सज्जन हटि हैं, दुर्जन संग में जीवन बीति।
उपकार यादि जहँ दया न छुइगै, स्वारथ ही तक प्रीति॥ २॥
गति मति सब तिनके सम ह्वै कै, सदा रहौ भयभीत।
शूकर कूकर बनचर खानी, जाय बासना कीत॥ ३॥
निर्बल सबल युवक नर नारिन, सबके हित कै सीख।
जो धारै सो महा सुखी है, को तेहिके सम दीख॥ ४॥
पाय स्वबशता बिबश न होवै, अबकी पूरी जीत।
कहैं कबीर सम्हरि जा राही, सफल जनम दुख तीत॥ ५॥

है, किन्तु अज्ञानियो ने दीप-पतग न्याय विपरीत बुद्धि होने से दुख रूप इन्द्रिय भोग से ही दुख छुटना मान लिया है। अतः उसके सर्व आचरण उलट के दुख पूर्ण ही होते है और विवेकी सत्संगी तो विवेक पूर्वक सम्पूर्ण मन सम्भव दुख द्वन्द्व जड़मूल से जिस प्रकार नष्ट हो वही यतन करते है ॥ ३ ॥ कल्याणार्थी विचारवान वही पाठ स्मरण करता , वही ग्रथ पढता, वही बोलता, वही वर्तता, वही ग्रंथ पंथ भेप—बाना सब रखता है और उसीको हितैपी परम बन्धु सहायक यहाँ तक कि वही सर्वस्व प्राण प्रिय मानता है, जिससे अत्यन्त दुखो से छुटकारा देखता है तथा वही विश्राम स्थान उसीसे मुख्य नाता अपनैयत माना जाता है जिससे दुख छुटना देखते है। जिससे सर्व जड़ाध्यास का अंत हो, स्वरूपबोध की पुष्टि हो, सदाचरण की प्राप्ति हो, जड़-चेतन का निर्णय होकर एकरस स्थिति मे आरूढ हो, सर्व दुख-द्वन्द्वो का अत हो जाय, बारम्बार जन्मना-मरना न पडे, वर्तमान मे भी सर्व प्रपच बन्धनो का अत हो जाय, इस प्रकार दुख का अत करना ही विवेकवान का ध्येय है ॥ ४ ॥ यथार्थ मानुष के ग्रहण करने योग्य गुण धर्म आचरण ग्रथ पथ इष्टादि सेवन का यही इशारा है यही मनसा यही सर्वोपर निर्विवाद अकाट्य सिद्धात है कि वह अपने जन्मादि दु खों का अंत जिस प्रकार देखे वर्तमान मे राग-द्वेप कामना रहित निष्फिक्र नि-भार विराजे वही-वही आचरण विवेक युक्त गहे। किसी की भी कही हुई यथार्थ बात हो तो उसे माने, अयथार्थ बात छोटे-बडे किसी की भी न माने। स्पष्ट निर्णय पारख बोध और सदाचरण मे बल दायक सहायक को ही अपनावे, घातक को त्यागे। पूर्व ने भी जो श्रेष्ठ विवेकी सत हुए है, वे सब देहोपाधि जनित दुख छूटने के अर्थ ही सर्व योग्य बर्ताव विचार-विचार के ग्रहण किये। हितैपी भाव विदित करता 'विशाल साहेब' कहते है यही समज्ञ-दृष्टि जिसको प्राप्त हो, उसी जीव का सम्पूर्ण दुख छूटेगा। अर्थात

कहीं कूकर, कहीं खग-मृग, भालू-बन्दरादि मे वासना वश जाकर अनेक देहों मे काम विरह वियोग रोग वश पीड़ित होना पडता है ॥ ३ ॥ पूर्वोक्त काम कला मे सब दुखो की झड़ी लगी देखकर गुरुदेव सबको सम्मत देते है कि चाहे किसी प्रकार कमजोर हो या वलवान हो, जवान हो या वृद्ध या बाल कोई भी हो, पुरुष हो या स्त्री, नीच-ऊँच सम्पूर्ण मानव समाज के कल्याण विश्राम होने की यही शिक्षा सम्मत दिया जाता है कि इस काम विषय को मित्र समझो। बल्कि पूर्ण दुश्मन समझ के जल्दी से जल्दी त्यागने की चेष्टा करो। नही तो पूर्व सर्व दुख-द्वन्द्व तुम्हारे शिर पर आ जायँगे जो इस शिक्षा को धारण करेगा, अर्थात जो पूर्ण ब्रह्मचारी बनेगा, वह निर्वासना कृत अनन्त सुख शाति को प्राप्त होगा। भला उस काम विजयी के समान कौन श्रेष्ठ और सुखी दीखता है ? कोई नही। त्याग वृत्ति ही निर्भार है, साझा रहित है, निरन्तर स्ववश पूर्ण है, कामाग्नि रहित है, सदैव शातामृत है, विरह-व्यथा रहित है, परिश्रम का अंत है, सरल है, निर्भय है निश्चित एवं पवित्र है, वछिुडन रहित है, दिव्य दृष्टि है, पाप रहित है, शील क्षमादि सर्व सद्गुण का स्रोत है। सर्व कातिमय आकर्षक विमल कोमल नीति रीति अपना और साथ ही सर्व भाई का हितकर है। आरोग्यप्रद बुद्धिकर परमार्थ सम्पन्न निर्वाह मे भी सुरीतिकर यहाँ तक कि जो कुछ अच्छाई भलाई हितैषित्व रहस्य है वह सब इस शुद्ध ब्रह्मचर्य व्रत मे सहज ही एकत्र आ जाते है। अत· विषयत्यागी के समान कोई भी सुखी नही दीखता। यदि आप सब सुख चाहते है, जगत मे सबसे श्रेष्ठ पद पाना चाहते है, सबके प्राणप्रिय बनना चाहते है, आजादी या स्वतन्त्रता चाहते है, जीवन्मुक्ति मे विराजना चाहते है, तो शुद्ध ब्रह्मचर्य पालन मे कटिबद्ध होइये और उच्च पद पाने का कोई उपाय नही है ॥ ४ ॥ यह मनुष्य देह की कल्याण हेतु साधन

टीका—यह काम जीव का दुश्मन है। इसे मित्र-सुखदाई करके मत समझो। क्यो पक्का वैरी है ? उसका कारण सुनो ॥ टेक ॥ जो परमार्थ रहस्य सत्सग विवेक भक्ति स्वरूपवोध वैराग्यादि सब सुखो का न्याय पथ है, ऐसा हितैपी परमार्थ पथ व्यक्ति न छोडना चाहे तो भी आसक्ति वश ऐसे वन्धन प्रपंच खडे हो जाते हे जिससे उसका परमार्थ मार्ग वरवस छूट जाता हे, ऐसे-ऐसे इसमे भुलावे हैं। कामी नर-नारियो को सब सुख देनेवाले सरल-विमल सद्गुरु सत और जिज्ञासु तो यमराज के समान प्रतीत होने लगते है। अहो ! ये कैसा भयकर अन्याय है कि जो जीव के सब प्रकार हितैपी है वे ही काल के समान मालूम होने लगे ! ऐसी उल्टी गति-मति कर देना काम मे ही शक्ति है ॥ १ ॥

कामुक वृत्ति गहने से छल कपट अनीति अधर्म वर्ताव होने लगते, जिससे वह कुकर्मी के संग से अपनी हानि होना समझ कर सज्जन उससे बहुत दूर हो जाते हैं। सज्जनो की सगति न मिलने से कामी को दुर्जनो के रगडे झगडे के घेरे में जीवन व्यतीत करना पड़ता है। जिन दुर्जनो मे परोपकार याद रख के हितैपी वर्ताव करना इनका तो उसके घट में लेश नही, दूसरी वात दीन-दुखियो पर अहेतुक द्रवित होकर दया-धर्म रक्षा करना इसका भी तिनमे सचार नही। केवल वे इन्द्रिय सुख-स्वार्थ हेतु तक ही प्रेम करते पश्चात तो जान ले लेने मे नही सकुचते। अहो ! ऐसे भयंकर सर्प के समान दुर्जन के सग मे जिसे रहना पडता होगा, उसके कष्ट की थाह नही ॥ २ ॥ यदि पहिले का शुद्ध विचार और कर्तव्य भी बन पडा हो तो वह सब आचरण और यथार्थ बुद्धि पलट कर तिन्ही दुर्जनो के समान गति-मति हो जाती है। उसे दुष्कर्म वश सदा भयभीत रहना पडता है, शरीर रहते तक तो इस प्रकार नरक भोगना पड़ता, पुन शरीर त्याग होने पर मैथुनाध्यास की प्रवलता से कही शूकर,

तेहि से भ्रांत अवस्था कहिये । पुनः विवश लत के वश बहिये ॥

२—विवशता

जोइ कुछ नारि कहै सोइ भावै । विवश आपने रङ्ग नचावै ॥
राग द्वेष अरु तामस राजस । पंच विषय सुख चाहत गाजस ॥

दोहा—धर्म नीति सत्सग सब, शील सत्य सन्तोप ।
सब सद्गुण को खोदि जहँ, निज मन भोगिन पोष ॥

चौपाई

जो कुछ सचय पूरब शुभ गुन । कबहुँक करन चहत जो वह पुन ॥
तौ वह घूटि डाटि फटकारै । नखरा बहुत देखाय सँभारै ॥
हँसै दुरै लसि मन करि बश मे । पुनि बेंचत यम इन्द्रिन गस में ॥
मृत्यु सेज तक देइ न छुट्टी । जन्महु जनम में विवश कि घुट्टी ॥
ऐसहि पुरुष नारि कहँ फाँसै । ज्ञान भक्ति तेहि रोकि नचासै ॥
प्रसव असह दुख लत दुख नाना । अहो बिकल दोउ तउ सुख माना ॥

३—असूझ

दोऊ विवश ह्वै देखि न पावै । परमारथ से मुखंहि छिपावै ॥
जड़ चेतन को भिन्न न देखै । पुनर्जन्म फल को नहिं पेखै ॥
मनोवेग मे कहँ तक दोरे । थाह नही दावानल बौरे ॥
बन्ध अयश साँसति नहिं सूझै । पल सुख मानि सदा दुख गूझै ॥
ऐसो अहो असूझ अवस्था । काम अन्ध कामिनि हिय सस्था ॥

४—उन्मत्त

पुनर्जन्म फल निश्चय तजि कै । अति उन्माद देह सब सजि कै ॥
संत सुग्रन्थन की करि हाँसी । नारी गल कर ताहि उपासी ॥
क्षण-क्षण लहरि काम की आवै । मनमाने शूकर सम धावै ॥
ठट्ठा ठोली हँसी मजाका । जीवन लाभ लखे करि दापा ॥
जेहिते जरै ताहि मे दौरै । सपनेहु तेहि दुख यादि न गौरै ॥
ये सब उन्मत के है लच्छन । अहो! कुटिल गति कामी गन्छन ॥

मे स्ववश है। जिधर सुख लाभ निश्चय करे उसीको सहज ही करने मे यह समर्थ है। ऐसी स्ववश प्रयत्न सिद्ध नर देह पाकर काम वश मत होइये। अवकी वार आपकी ही पूर्ण जीत है। इसमें पूर्ण सहायक सत्सग सद्ग्रथ सद्विचार भी आपके सामने ही है। दृष्टि करने की देरी है। सद्गुरु कवीर साहव कहते है कि देखो! तुम्हारा शरीर और स्त्री सम्बन्ध आदि स्थिर न रहने से तुम इसमे राही पथी के समान आ गये हो, इससे चेत करो! सम्हर जाओ!! सावधान होओ!!! जिससे तुम्हारा देह धरना सफल हो जाय। साथ ही तन-मन कृत सर्व दुख-द्वन्द्वों से पार भी पा जाओ। सर्व आपदाओ से छुट्टी पा जाओ ॥ ५ ॥

काम के दोष

एक सन्त जिज्ञासु से कहते हैं—काम दोप मे प्रवृत्ति होने पर मुख्य १८ आपत्तियाँ आ घेरती है। जिज्ञासु ने पूछा—कौन-कौन आपत्तियाँ है कृपया वतायें ? शिक्षक बोले—नाम और तिनके लक्षण भी सुन लीजिये। १—भ्रान्ति, २—विवशता, ३—असूझ, ४—उन्मतत्ता ५—आसक्ति, ६—निर्वुद्धि, ७—क्षीणता, ८—खिन्नता, ९—ताप, १०—विरह, ११—हरदम अतृप्ति, १२—मलीनत्व, १३—अपकारत्व, १४—चौरत्व, १५—असद्गामित्व, १६, कृतघ्नत्व, १७—ग्रथिपुष्टि, १८—चार खानियो के तन-मन का सर्व भार। ये १८ द्वन्द्व काम विपय मे आ जाते है।

१—भ्रान्ति

दोहा—निज स्वरूप को भूलि के, भ्राति विवश रचि काम।
जड़-जड मे संघर्प करि, मान्यो सुख अभिराम ॥

चौपाई

कामिहु कामवेग जव नाही। घृणित अपावन देखि दुराही ॥
मदन वेग मे औरहि औरे। नख शिख नरक अंग मे दौरे ॥

११—हरदम अतृप्ति

आदि मध्य औ अन्त के माही। शिर धुनि सोचिसोचि पछिताही ॥
काह कहौ हा! भोग वियोगे। नव नव होय किधौं संयोगे ॥
इन्द्रिय शक्ति नाश उत भयऊ। मनोवेग दावानल दहेऊ ॥
यहि विधि सदा अतृप्ति जु कामी। सुख आदत वहि मृग जल गामी ॥

१२—मलीनत्व

रक्त मुत्र त्वक ध्यावत ध्यावत। कामी मलिन अवस्था पावत ॥
क्रोध लोभ मद देह को मोहा। ये सब घृणित काम के सोहा ॥
बिन गुरु प्रेम नेम नहि देखै। मलिन ठौर कहँ अमृत पेखै ॥
मलिन हेतु तजि शुद्ध स्वरूपा। काहे न परै अहो भव कूपा ॥

१३—अपकारत्व

पर उपकार सधै केहि भाँती। काम मृगीरुज उलटि दवाती ॥
नारि मोह से सव अपकारा। का न करत कामी लखु सारा ॥
धन जन बल में तोष न कतहूँ। ताते सब अनीति तहँ लतहूँ ॥

१४—चौरत्व

छल बल कपट दम्भ बरजोरी। हिंसा घात रूप सब चोरी ॥
देह निर्वाह मे नीति न राखै। अहो! काम करनी लखु साखै ॥

१५—असद गामित्व

सुखाध्यास वश कहुँ जडवादी। प्रकृति सत्य कहि बनत विवादी ॥
देह ठाठ फैसन बिज्ञानी। मानहुँ भाद्र नदी उपलानी ॥
कहुँ असग कहुँ दुस्तर माया। कहूँ कठिन कहि पचत सदाया ॥

१६—कृतघ्नता

जेहि अविनाशी कृपा सव पइये। भाँति भाँति सुख मानि भुलइये ॥
सव कल्पक सब जाननहारा। इच्छा भोग पृथक निज सारा ॥
सो निज रूप सत्य नहि जानै। गुरुवर सैन हृदय न मानै ॥
तेहि कर फल सब भाँति जु पावै। बिकल श्वान खग मृग सम धावै ॥

५—आसक्ति अवस्था

दोहा—याद होत विह्वल भयो, हा ! हा !! कछू न सूझ ।
विषयासक्ति ज्यों पाँखिया, जरि-जरि मरत अमूझ ॥

६—निर्बुद्धि अवस्था

स्वारथ परमारथ की नीती । उत्तम मध्य धर्म सुरीती ॥
मध्यम पक्ष गृहस्थी धर्मा । एक नारि व्रत गहि शुभ कर्मा ॥
शक्ति सम्हारि चलै गहि धर्मा । क्रमश. लहै धीर पद पर्मा ॥
साधु सेव सत्संग बढावै । काहे न होय सुधार लखावै ॥
सो न गहे कामी सु विचारा । अपन परार न करत सँभारा ॥
बिन कुछ त्याग वृत्ति के पाये । करि न सकत सतसंग सुहाये ॥
बिन सतसग बुद्धि कहँ पावै । चेत अजहुँ क्रम क्रम मग आवै ॥

७—क्षीण अवस्था

रज वीरज नारी नर शोभा । खोय भयो तेहि खोई खोभा ॥
तन बल अबल ढील सब यतना । अहो का मुर्दा करि रतना ॥

८—खीनता

रात दिना शोकातुर काखत । कामी काम रोग दुख चाखत ॥

९—ताप

भट्ठी चारो ओरहि तापा । कामी जलत हहरि करि दापा ॥

१०—विरह

मन अनुकूल नारि नहि सगा । यहि विधि कामी जरत उतंगा ॥
तेल गध वर केश अभूषण । हाव भाव रति मोद सदूषण ॥
गायन नृत्य ताल धुनि जोरै । हँसि हँसि मदपी मदन बढोरै ॥
सेज महल वाहन सब रक्षक । स्वाद कान्ति जहं तक मन लक्षक ॥
दोउ अभेद पुनि करत विहारा । नव नव नारि रमत सुख सारा ॥
कातिक श्वान पाँखि गुबरीला । इतनै सुख समझहु अनमीला ॥
मिलि मिलि विरह वेग अति भारी । लखु विरक्त यह दुख सब झारी ॥

की खूबसूरती देखकर, कानों से विषयोत्पादक वाक्य सुनकर, त्वचा से उसका स्पर्श करके इस प्रकार नर-नारी एक दूसरे के सम्बन्धिक आदत पुष्ट करके तहाँ मैथुन मे सुख निश्चय कर लिये। विवशता से कइयो महीने गर्भाशय में रहा। उत्पन्न होने के वाद बाल्य अवस्था मे तिसके द्वारा लालन-पालन गोद मे धारण हुआ। पश्चात युवा-वस्था मे मैथुन की आसक्ति पुष्ट हुई। जहाँ-जहाँ देह रहा, क्या मनुष्य क्या पश्वादि क्या अण्डज-पक्षी आदि ये तीनो खानियो मे स्पर्श मे सुख मान कर आसक्त रहते। अनादि काल से और वर्त-मान में भी घटक्रिया स्पर्श मैथुन हाव भाव का मनन करता रहता है। मनोमय के आश्रय से मन ही द्वारा कल्पित सुख का भोगता होता रहता है। न तो वह हृदय से मनन का अभाव करता, न बाहर का मोहक कुसग ही छोड़ता, बल्कि और लोभाता जाता है। अपने आप निष्काम शुद्ध चैतन्य को भुलाकर विष विषय मे स्पष्ट दुख-द्वन्द्व होते हुये भी इस जीव को तहाँ दुख नही सूझाता। निज शुद्ध चैतन्य सर्व जड़ तन-मन भोगो से पृथक है, विषय भोगों की कामना ही महाव्याधि है। भोग कामना को स्वरूप बोध बल से हटाकर, मै नित्य तृप्त स्ववश हूँ। इस प्रकार निज स्वरूप का विवेक पुष्ट न करने से झूठी स्पर्श आदत को सत्य स्वाभाविक मानि के उसी भोग क्रिया के यत्न मे लीन हो रहा है। नर देह मे इसका त्याग अवश्य हो जाता है। इसको दूसरे कवित्त से विचारिये ॥ १ ॥

याहि हेतु छूटने में कठिन देखाय परै,
आसक्ति बढ़ाय ताहि भेद न लखाना है।
जड़ है विजाति देह क्रिया मानि ताहि लिये,
याहि से खटक मेल दुख ही रचाना है॥
आश तृप अनमिल प्राप्ति बिन सहै त्रास,
सुख किमि होय लखौ मिथ्या अरुझाना है।

१७—ग्रन्थि पुष्टि

नहिं निर्बाह हेतु यह कामा। केवल लत आदत को धामा॥
तेहि ते उभयग्रन्थि ह्वै पुष्टी। याहि पालि सपनेहुँ नहिं तुष्टी॥
दुख सुख रहित स्वरूप जो द्रष्टा। टिकि न सकै तहँ चलित जु भ्रष्टा॥
तेहि ते काम राग तजि दीजै। ग्रन्थि छेदि तब मुक्ती लीजै॥

१८—सब खानियों के तन मन का सर्व भार

मैथुन सुख जब लगि यह मानै। तव लगि पाँचौ हेतु लुभानै॥
करै कर्म सबही साकामा। जेहि वल चारि खानि मे जामा॥
देह धरै पुनि सब दुख पावै। तन मन भार सदैव रुलावै॥

सोरठा—अष्टादश ये दोष, यामें अगणित शाख दुख।
पावै मैथुन पोष, थर थर काँपत याद करि॥ १॥
सुखावर्ण जव याद, तब यह दुख स्मरण करि।
तव नहिं होय बिषाद, यथा सिंह रव जन्तु भगि॥ २॥
सुनि जिज्ञासु बिचार, करन लग्यो साधन भले।
जीतेउ मैथुन सार, आगिहु तृण सम कुसंग तजि॥ ३॥

कवित्त—११

नित नव भामिनी अभ्यास भोग होय रहा,
नेत्र कर्ण त्वचा से ही मेल सुख माना है।
गर्भ मेल गोद मेल सेवा मेल देह जहाँ,
तहाँ तहाँ येही ध्येय तीनों खानि भाना है॥
मनन करेहि नित मनोमय अधार लै,
हिये न तजत ताहि बाहर लोभाना है।
आप को भुलाय रहा दुख न देखाय तहाँ,
निज के बिबेक बिन सत्य क्रिया ठाना है॥ १॥

टीका—जन्म-जन्म से लेकर इस जन्म मे भी नवीन-नवीन नारि सम्बन्ध भोगाध्यास का अभ्यास पुष्ट होते जा रहा है। नेत्र से घट

होता ! तैसे केवल जड़ के समान यहाँ देहधारी चेतन जीवों का हाल नहीं दिखाई देता। यहाँ तो देह जड़ तत्वो का रूप है और चेतन जीव नख-शिख जड इन्द्रियो को जान-मान कर प्रेरक है। वह जड़ तत्वो से सदा बर्जित सत्य स्वतन्त्र है। उसमे स्वाभाविक क्रिया नही किन्तु जड तत्वोवत छह भेद नही। सुख मनन हो-होकर ही उसमे क्रिया होती है। जैसे कोई मद्यादि दुख जान के त्याग कर देता है, उसी प्रकार साधन बोध द्वारा सुख मनन की जगह दुख मनन कर लेवे तो सर्व विषयो को त्यागकर वह स्वतन्त्र मुक्त प्रत्यक्ष विराजेगा। प्रत्यक्ष दृढ विवेक-वैराग्वान सयमी धीर पुरुष निष्काम पद मे शोभित हो रहे है। अत हमे भी दृढ सयमी वनना चाहिये। "कहहि कबीर ठग सो मन माना। गई ठगौरी जब ठग पहिचाना" ॥ २ ॥

शब्द—१२

त्याग चही मनसिज सुख मन से ॥ टेक ॥

ह्वै निश्चिन्त अभय सुख सरसै, छूटि गुलामी तन से।
राजा रंक से मुक्त होय वह, स्व अवलम्ब रहै नित सुख से ॥ १ ॥
संकल्प विकल्प कि अग्नि बुझानी, सृष्टि मनोमय विनसे।
सब पुरुषारथ को फल यह ही, रहै न बड़ा कोइ तिन से ॥ २ ॥
नारि पुरुष तन जीवहिं बन्धन, अपनि परारि ठगैं दोउ छल से।
भूलि न जाव विपिन काया में, स्वबल सँभारि चलौ गुरुमग से ॥ ३ ॥
इन्द्रिन की विपरीति चाल सब, भुजंग व्याघ्र अरि तस्कर से।
विशालदास दुख ध्वंसक बूटी, घोटि पियाय संत कोइ हित से ॥ ४ ॥

टीका—मन से उत्पन्न माना हुआ कामचेष्टाकृत सुख का सत्यता पूर्वक दिल से त्याग करना चाहिये। सत्यता पूर्वक ही कार्य सफल होता है। ऊपर-ऊपर से दिखावा मात्र त्याग होगा और भीतर उसका मन द्वारा किसी भी प्रकार भोग सुख निश्चय होगा तो फिर वन्धन मे पड़ जायगा, अत जोर लगाकर मन से त्याग

जड़ में संयोग भेल जड़ जड़ जौन जहाँ,
अन्य भेद जौन ताहि यहाँ न देखाना है॥ २॥

टीका—पूर्वोक्त अन्दर-वाहर बन्धन प्रवाह वढा लेने से तिसके त्याग करने मे कठिन सा प्रतीत होता है। भोगों को भोग-भोग मनन कर-करके आसक्ति ममता वढा लेने से आवर्ण युक्त दृष्टि के सामने उसे यथार्थ नही सूझता। उस सुख को मिथ्या भ्रान्ति आदत मात्र दुख राशि है ऐसा भेद ठीक-ठीक यह नही जानता। चारो तत्व जड़ विजाति अचेत है, तिन्ही से वनी हुई यह देह भी विजाति जड है, किन्तु अनादि काल से सुख मान-मान के जड़ विषयो को भोग-भोगकर उसीके अध्यास को लिये रहता है। इसीलिये काम भावना का खटका हृदय मे चोट पहुँचाता रहता है। जीव दुख ही दुख की रचना करते रहते है। युवक युवती न मिलने पर कव मिले, कव मिले, ऐसी आशा मे जलते और जव मिल जाते तो सदा एकमेक कैसे हो सकें? इस भावना से वासना निरन्तर वढते-वढ़ते मिलने की तृष्णा यहाँ तक वढ जाती है कि दोनो एकत्र रहते हुये भी काम की ज्वाला नही बुझती। ज्यो-ज्यो नर-नारी परस्पर मेल-सयोग करते है, त्यो-त्यो वासना पुष्ट होकर अनमिलता वढती जाती है। इस प्रकार नर-नारी दोनो भी एक रूप नही हो सकते तथा देह विजाति द्रष्टा जीव के स्वरूप से नही मिल सकती। किन्तु भ्रम वश अनमिल को मिलना मान-मान के जीव सदा त्रास कहिये दुसह दुख पाता रहता है। ऐसी हालत मे सुख की प्राप्ति कहाँ से हो? जीव इस अशुद्ध काया मे भोग-विलास रूप झूठे ही मद्य नशा या पतग-खेल न्याय अरुझ रहा है। जड़ तत्वो मे स्वाभाविक परस्पर सयोग और क्रिया है। पच विपय युक्त पट भेद[1] सहित कारण से कार्यों के वनने विगडने की स्वाभाविक धारा है। उसका ज्ञान द्वारा वाध्य नही

१ टिप्पणी—जड मे छ. भेद है, तिनको स्वतन्त्र जीव शतक मे देखिये।

बोध, बोध का भूषण निष्काम शातिवृत्ति ही है। सच्चे ब्रह्मचर्य जीवन ही के लिये सारे प्रयत्न किये जाते है, फिर उससे बढके श्रेष्ठ माननीय-पूज्य हितैषी कोई भी नही। अन्य कोई भले ही विद्वान धनी ऐश्वर्यवान हो फिर भी कामक्रीड़ा मे शूकर कूकर वत ही उसका जीवन है। अत बड़ाई-निकाई उसीकी है जो मैथुन विषय का त्याग करे ॥ २ ॥ एक जीव के लिये दो बन्धन है, अपनी देह और पराई अर्थात पुरुष नख-शिख इन्द्रियों की बनावट को देख-देख कर तन सॅवारि-सॅवारि के अपनी देह में आसक्त होता और स्त्री के इन्द्रियो की बनावट चमक दमक ठाठ मे भूलकर तहॉ अत्यन्त आसक्त होता। स्त्री भी निज देह निहारि के आसक्त होती और अलग पुरुष घट के अवयव अगो में निछावर होती। दोनों-दोनो की काया-माया मे ठगे जाते। तहॉ छल बल सुखाशा से दोनों दुख ही पाते रहते। शुद्ध चेतन जीव का विवेक विचार स्वप्न में भी सुधि नही करते। जो उनका अपना आप चेतन सत्य स्वदेश है तिसको तो आप दोनो भूल पड़े और जड़ काया का लगे फैसन बढाने। चौ०—'नयन बैन करि सैन सजीले। ठाठ बाट सब अग रंगीले। लसत गॅसत कामातुर मन मे। नर नारी सब फूले तन मे ॥ 'दस इन्द्रिय कण्ठ छाती नाभी शिर पेट आदि अनेक अगों वाली ऐसी काया-माया को जंगल समझो। जैसे गहन बन हो, अंधेरी रात्रि हो, व्याघ्र सर्प ग्रसे हो, रास्ता न मिले, तैसे ही इस नर-नारी के काया वन को भूल भुलैया पूर्ण भयकर समझो। ये सब एक दूसरे को क्षण ही मे मोह करके गुरु मार्ग भुला देते है। अत अपनी काया का मदन हत करो। इसके लिये सब सादगी चाल रख के शुद्ध चेतन का विवेक मनन किया करो, फैसन का सर्वथा त्याग करो। युवती आदि घटों पर तो ध्यान ही मत दो, क्योंकि पुरुष की मनोमय दृष्टि मे युवतियो का घट और गढन-स्वभाव मोह उत्पन्न करता है, तैसे ही स्त्री को भी सुधार करना चाहिये।

करे ॥ टेक ॥ सच्चाई से त्याग करने का फल यह होगा कि नाना चितारूप अग्नि की जलन से वह छूटकर निश्चित हो जावेगा और निर्भयता जनित सुख की वृद्धि होगी। देह से जो सवके मन को राजी रखने हेतु अथक परिश्रम करना पड़ता था, उन सर्व परिश्रमो का अंत हो जावेगा। सकामी नर नारी की गुलामी–खिदमदगारी छूटकर स्वस्थ रहेगा। जिस मैथुन सुख सिद्धि हेतु धनिको, राजा-वावुओ तथा रक-गरीव, नौकर-चाकर आदि सवके विवश होकर नाचना पड़ता था, परावलम्वन एव नित्य वेचैनी मे दिन-रात कटते थे ये सव दुख स्त्रीविपय के त्याग करते ही समाप्त हो जाते है। राजा-वादशाह और जन समाज सवके फन्दे से मुक्त होकर स्वतन्त्र सुख पूर्वक विराजेगा। स्वतन्त्र होकर चलना-फिरना, सतोप युक्त भोजन-छाजन विविध साधन अभ्यास करना, निश्चित जीवन व्यतीत करना ऐसी स्वावलम्वता त्यागी को प्राप्त होती है ॥ १ ॥ कैसे मिले ? अच्छी मिले, अन्य प्रकार की या इस प्रकार की मिले, अथवा मिली हुई के मन की रक्षा कैसे हो। युवती-युवक का निरतर क्षण मात्र भी विछुड़न न हो, भोग और मै भोक्ता एक किस प्रकार होऊँ ? इन्द्रियाँ शक्तिहत हो गयी है। नाना विघ्न लग गया है। मन नही मानता, हाय ! भोग का क्या उपाय ? इस प्रकार अनन्त सकल्प-विकल्प की ज्वाला वढ-वढ़ के काम सम्वन्धी भावनाये जलाती रहती है। ये सव चित्तदौड़ ज्वाला सच्चे त्यागी पुरुष की वुझ जाती, शान्त हो जाती है। मुख्य ससार का सारा प्रपंच द्वन्द्व इस मानसिक मनन-कल्पना पर ही निर्भर है। सो संसार का जितना वन्धन रूप मान-मान के मनोमय राग का गवाह चलता था, सो सव नष्ट होकर सच्चे त्यागी की शुद्ध विचारधारा वन जाती है। दान दया सत्संगादि समग्र शुभ पुरुषार्थ का अन्तिम फल मन से काम भावना का त्याग हो जाना ही है। नम्रता का भूपण भक्ति, भक्ति का भूपण स्वरूप-

हानि कष्ट जब सनमुख आवै, तब उपराम सुजान ॥ १ ॥
सुखाध्यास वश घट को धारै, यहिते समीपी जान ।
तब वशि द्रष्टा वैसहिं देखत, जेहि दिशि सुख अनुमान ॥ २ ॥
पर ज्ञाता तेहि हानि लाभ को, भूत भविष्य वर्तमान ।
खास अवश्यक फिक्र सुधारै, समय परे लहि ज्ञान ॥ ३ ॥
सहज न लखत मूल में तेहिके, जेहिते दुख निकसान ।
याते फहम प्रबल बिन धिरणा, योग्य सहायक लान ॥ ४ ॥
बाधक अंग त्याग बिन कीन्हे, सड़े फलहिं वत ठान ।
अनादि काल के दुखहि छुटन में, नहिं परिशर्म देखान ॥ ५ ॥
दुख सुख अर्पण तृण सम करि कै, ध्येय लिहे बिलगान ।
समर भूमि पर अड़े शूर बर, बिजयी मोक्ष लहान ॥ ६ ॥
तृषा भूल परबशता नाशै, स्वयं स्वतः के थान ।
तब निज कृपा भई निज ऊपर, सफल कृपा सब शान ॥ ७ ॥

टीका—मानसिक संग्राम मे कोई विरले ही धीर-वीर समझदार सावधान रहते है ॥टेक॥ विषय भोगों का जो अभ्यास पड़ गया है, वह जीव के लक्ष्य के सामने वना रहता है। जिसे जो आदत पड़ गई है, वह भूल वश ठीक-ठीक विषयों को दुखरूप न जानने के कारण से ही है, सो विवेक निर्णय करके भूल जानने मे आ जाती है। सत्सग सद्ग्रथ या स्वयं किसी धक्का से जब यह जीव सोचने लगा कि इन विषयासक्तियो से कामना नही तृप्ति होती, कामना वश क्या-क्या अनर्थ नही करने पड़ते है। भोग-क्रिया के मनन से भोगो मे सुख की आसक्ति उत्पन्न होती । आसक्ति से उधर ही प्रवृत्ति होती । फिर प्रवृत्ति से स्ववशता नष्ट हो जाती है। स्ववश विवेक न होने पर सम्पूर्ण दुख-द्वन्द्व अब और आगे प्राप्त होते रहते है। जब भोगों के दुख का विवेक करता है, तब भोगो की हानि का स्वय

देखो ! सदा अपने चैतन्य स्वरूप का बोध-वल संभारि के गुरुमार्ग ही पर चलते रहना ॥ ३ ॥ आवश्यक देह यात्रा के अलावा जहाँ तक सुख भोग हेतु आँख, त्वचा, रसनादिक इन्द्रियो की दोड है, वह सब विपरीत-चाल वन्धन प्रद है। वह विपय भोग भयकर विपधर सर्प या केहरी सिंह और दुश्मन तथा डाकू चोर के समान कोटि-कोटि दुर्दशा कराके अत मे प्राणहारक है। सर्प विप आदि एक जन्म मे दु:ख देकर प्राण संकट मे डालते, इन्द्रियासक्ति तो अनन्त काल से अव और आगे भी दुख ही दुख दिया करेगी। अत: शिक्षक 'विशाल साहेव' कहते है कि जन्म-मरण नाना शोक-मोहदुख-द्वन्द्व रोग समूल से नाश करने के लिये सुन्दर ब्रह्मचर्य विचार रूप बूटी है। इसे घोटि कर श्रवण मनन साधन संयम करके स्वय सतजन पीते और दूसरे के प्रति हित कल्याण का यही सदेश देकर युक्ति वताय साधन ग्रहण कराके अचल अक्रिय निश्चित अभय कर देते है ! धन्य-धन्य ! ऐसी सत शिक्षा की बूटी को वारम्वार पान करना चाहिये ॥ ४ ॥

संक्षेपभाव—दोहा

वर विरक्त जिज्ञासुजन, लहिसुवोध निर्धार।
जो वहु वन्धन वश गसे, तिनको सुनो विचार ॥ १ ॥
गृह आश्रम मे होय तो, गुरू सत वहु सेव।
सद्ग्रन्थन को नित पढ़ै, धर्म भक्ति वल लेव ॥ २ ॥
जस जस शक्ती वोध वल, देखै अपने माँय।
तस तस सयम महँ वढै, स्ववश करै मन काय ॥ ३ ॥
गृह नीति सद्धर्म युत, भक्ति पदारथ लक्ष।
सत्संगति से वल मिलै, तव छूटै मन लक्ष ॥ ४ ॥

शब्द—१३

वीर कोइ चौकस धीर सयान ॥ टेक ॥

आदति रहै जीव के सनमुख, भूल विवेक से जान।

याद तो होता है किन्तु शीघ्र भुलावा हो जाता है। इसलिये भुलावा होने के अवसर के पूर्व ही कल्याणार्थी को सावधानी तथा परीक्षा-दृष्टि रखनी चाहिये। पुन. पच विषय कृत पडी भई लतों और तिनके भावनाओ-सगो से अत्यन्त घृणा-तुच्छ त्याज्य कष्टदाई जान के अति अभावदृष्टि रखना जरूरी है और योग्य सत्सग सद्ग्रथ सदाचार को ग्रहणकर सयम भी रक्खे। जिन-जिन कारणों से भूलने के सस्कार बल पाते है, उन-उन कारणों को सोच-विचार के पहिले ही तिससे पृथक रहना चाहिये। जरूरी सम्बन्धो मे सजग, उपराम नियम, गुरुपद का घेरा रखना चाहिये। योग्य सहायक लाकर धारण करना चाहिये। क्योकि चौकसी और अत्यन्त घृणा दृष्टि और यथायोग्य सहायक रक्षको को साथ लिये बिना आदतो पर विजय नही मिल सकती॥ ४ ॥ लतो पर विजय करने मे जो-जो अग बाधक हो, अर्थात जिन संग, पदार्थ, वाक्य, मनन, भूमिका, समय, सम्बन्ध, वार्त्ता आदि से लत कृत सस्कार उद्गारित होकर भुलावा कर देते है, वे सब भली प्रकार विवेक करने पर बाधक अंग जानने मे आ जाते है। जानते हुये भी पूर्व ममता वश बाधक अगो को प्रथम त्यागने का मन नही चाहता। बल्कि युवती नाच रग जूआ नशा प्रपचवार्ता आदि उधर लतो मे फंसने लगता है। तहाँ बारम्बार विवेक पुष्ट करके सडे फल के समान निरर्थक कष्ट दायक समझ के सर्व बाधक कुसग, कुसकल्प, मोह-ममतादि को त्याग देना चाहिये। ऐसा किये बिना लत का खिचाव नही मिट सकता। अत बाधक अग त्याग करना जरूरी है। गुरु सन्त स्वविवेक में लक्ष्य लगन द्वारा ज्यो-ज्यों बाधक कुसङ्ग का त्याग होवे, त्यो-त्यो लत निर्मूल होते जायँगे। अतः अनादि काल की आपदाओं से छुट्टी पाने के लिये जो पूर्व मे साधन संयम वताये गये, उनको धारण करने मे परिश्रम न गिनना चाहिये। यदि कुछ परिश्रम ही पड़ जाय, तो भी उससे यदि

ज्ञान लक्ष्य के सामने दृढ होता है। जब किसी चीज मे नुकसान देखने मे आता है, तब उससे विचारवान निराश हो जाते है ॥१॥ सुखाध्यास मे लक्ष्य रखने से गर्भवास मे जाकर रज-वीर्य द्वारा अध्यास से ही जीव देह धारण करते है। सुखाध्यास युक्त देह और देह से नाना लत पुष्ट होती है। इसी हेतु से आदते जीव के सामने निकट रहती है। सुखाध्यास, भूल, प्रारब्धघट उपाधि से द्रष्टा चेतन जीव का लक्ष्य उधर खींचता है कि जिधर वर्तमान मे उसे सुख निश्चय हो रहा है ॥ २ ॥ पूर्वोक्त आदतों से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध होने पर भी १—चेतन जीव आदतो से न्यारा है, आदत जड़ है अज्ञान है। २—तिस आदत और आदतों के हानि लाभ का जीव जानने वाला है। ३—प्रारब्धिक स्मरणो का दमन तथा घट-वढ उलट-पुलट करने मे जीव शक्तिमान है। ४—बीते हुए समय भूत की घटना कृत और वर्तमान मे सर्व क्रिया के हानि-लाभ तथा परिणाम भविष्य में इसके द्वारा ऐसे-ऐसे हानि-लाभ होगे, नर-जीव त्रिकालदर्शी रहने मे प्रत्यक्ष शक्तिमान है। इन्ही कारणो से मुख्य प्रयोजन जिस कार्य को यह जीव निश्चय कर लेता है, उसकी अत्यन्त फिक्र धारण करके मौका आते ही झट उसके हानि लाभ का पूर्व से ही कूक भरने की वजह से वहाँ यथार्थ ज्ञान स्मरण हो आता है। फिर सुधार करने मे तत्पर होकर सुधार करने वाला सुधार कर ही लेता है। यथा—'व्याघ्र भालू लखि दुखद, नर शक्ति भर टलता रहै। जो सतावै अति जिसे, नहि जन्म भरि भुलता रहै ॥' त्रिकाल ज्ञान होने से जीव मुक्ति के साधन कर सकता है, सोई बनाना चाहिये ॥ ३ ॥ जिन आदतो के स्मरण मात्र से सारे दुख निकल पड़ते है भुलावा हो जाता है, वे आदत भूलवश सुखरूप निश्चय होने के कारण असावधान रहने से सहजिक सरलता पूर्वक यह बात याद नही आती कि ये आदत ही पूर्ण दुख रूप है। कुछ हानि दुख

होकर शान धरने के समान सब बलवान रूप से सहायक बन जाते हैं। इस युक्ति से पच विषयो की आदतो का उल्लघन कर जीव परम पद को प्राप्त हो जाता है। सोई बनाना बुद्धिमानों का परम पुनीत कर्तव्य है। इसे परस्पर सत्संग अथवा स्वत एकान्त मे बैठकर खूब मनन करके अर्थाकार वृत्ति द्वारा पारखदृष्टि एकरस पुष्ट कर लेना चाहिये। यही सिद्धात मूल-कल्याणकारी शुभ सन्देश है ॥७॥

वीरत्व प्रेरक ज्ञानांजन—चौपाई

पारख प्रभु की शरण समाया। स्वच्छ दृष्टि तब आप जगाया ॥
लगे बिचारन आप अनाशी। अक्षय अमृत स्वय प्रकाशी ॥
दिव्य पुण्य सर्वोत्तम कहिये। स्वत अलौकिक अनुपम रहिये ॥
चर्मक्षेत्र तन मन प्राणादिक। कठपुतली इव प्रेरक भासिक ॥
सो भासिक तेहि पटतर नाही। जानत आप आप रहि जाही ॥
इन्द्रिय मन को साक्षी अतिशय। आप विचार आप मे थिति लय ॥
नश्वर स्वाद पर्श त्वक भोगू। भौतिक सुख सब ब्यर्थ बियोगू ॥
प्रेम मान युवती अनुकूला। जाके मनन मात्र सब झूला ॥
कोटि कोटि विज्ञान प्रचारै। चर्म भोग तृष्णा धधकारै ॥
चर्म दृष्टि किमि लखै महाना। उलटि आप अंतर जो जाना ॥
जेहिके मनन मात्र से सबही। सिद्ध होत सब भ्रम सुख वहही ॥
मनको लखि जेहि मन नहि लेखै। गो पेखै जेहि गो नहि पेखै ॥
जड को साक्षी जड नहि जानै। शिरे लाभ जो आप पिछानै ॥
विगरव वनब न हानि कलेशू। ऐसो स्वच्छ आपनो देशू ॥
सब द्रष्टा सब साक्षी न्यायक। सब थापक सब याद सहायक ॥
व्यापक व्याप्य द्वैत अद्वैता। सर्ब पारखी भिन्न बिजैता ॥
फिर दूसर को निज को जानै। गुरु की दया से आप पिछानै ॥
विजय भूति सब सिद्धि हमारे। नीति रीति सब हेतु हमारे ॥
बडो विशेष पुनीत प्रसिद्धी। सुख निश्चय हित सकल समृद्धी ॥

अनन्त लाभ मिलता हो तो वह परिश्रम किंचित ही है। ऐसा यथार्थ विवेक दृढ करके वाधकों के त्याग करने तथा साधक अंग गहने मे परिश्रमवान होना चाहिये ॥ ५ ॥ जो भोगों के त्याग करने मे परिश्रम तथा दुख मालूम होता है, कि हमारा सुख छूट जायगा, ऐसी भ्राति या ममता होती है, सो स्वार्थिक ममता हानि लाभ ये सब दुख-सुख तुच्छ तृण के समान समझ के छोड़ देना चाहिये। दुख-सुख की परवाह न कर कडाई से भूख और शीत-उष्ण मान-अपमान के वेग को यथायोग्य सहते हुये पूर्ण कष्ट सहिष्णु बन के कल्याण सिद्धि का जो निश्चय है, उसे दृढता से लेते हुये, हरदम लतों से पृथक हो जाना चाहिये। इन साधन रहस्यो से निश्चय ही आदतों से पृथक स्थिति मिल जायगी। इन साधनों को सादर अपना कर इस मानसिक समर भूमि मे टिक कर वीरो मे श्रेष्ठ जो धीर वीर है, वे ही इस लत भूल भ्रम अभ्यास बधन आसक्तियों से लड़ के सुख संस्कार निर्मूल करके विजयी स्ववश हो मुक्तपद पारख स्थिति को प्राप्त कर लेते ॥ ६ ॥ पूर्वोक्त सुखासक्ति हनन करने पर १—हैजा की प्यास के समान भोग सुखो की कामना ही नष्ट हो जाती है। २—भूल रूप महा अधकार नष्ट हो जाता है। ३—नर-नारि देश-समाज-प्राणी कृत परवशता भौतिक द्वन्द्व और मन इन्द्रिय कृत परवशता सारी परतन्त्रताओं से छुट्टी मिल जाती है। इस प्रकार गुरुदृष्टि साधन से स्वयं अपने आप जो जीव है, वह आप ही बोध दृष्टि लिये-लिये अपने स्व स्थान पारख रूप निराधार अचल रह जाता है, क्योंकि अपना अविनाशी एकरस निराधार स्वरूप रहने से अपना स्थान-स्वरूप आप ही स्थित है। पूर्वोक्त मानसिक संग्राम मे लगन लगाकर सर्व आसक्तियो पर जिसने विजय प्राप्त कर ली है जानो उसी ने अपनी कृपा अपने ऊपर की है और तभी गुरुकृपा, सन्तकृपा सर्व कल्याण सामग्री प्रारब्ध प्रयत्न सद्ग्रन्थ सर्व सदाचरण कृपा फलीभूत

दृष्टि मात्र से भ्रम गढ तोरे। आप आप मे आप समोरे ॥
सद्गुरु दर्शन मिले जो आजू। जीवन लाभ सफल सब काजू ॥
प्रीतम प्रिय दिलदार पियारे। अँखिया प्रेमी प्राण अधारे ॥
ईश पीव शिव इष्ट जहाँ लो। गुरु से श्रेष्ठ न कहौ कहाँ लो ॥
छन्द—सम्यक सुशील स्वदृष्टि दै इह घोर भ्रम तम ध्वंसकम् ।
सतधर्म भक्ति बिचार पारख जीव सद चिद् लक्षकम् ॥
उल्झन कलह् विद्वेष तृण करि भस्म शांत स्वदेशकम् ।
इमि सर्ब पर सिद्धात लहि गुरुवर कबीर सदा भजम् ॥
जिनकी दया दीन भौ साहब। जाहि चरण रज पर्शि निबाहब ॥
मैथुन अष्ट कि धूरि उड़ाई। लोभ मोह तृण तूरि बहाई ॥
देह ठाठ राजस की लादी। दिये बहाय सादगी सादी ॥
सत्सगति की नदी नहाई। तनिकौ कलिमल रहन न पाई ॥
बोध विचार बिमल पट धारी। सजग दया गलहार सँभारी ॥
शुद्धाचार विचार के ताजू। साधन संयम सुभट समाजू ॥
मनोदमन के सेज बिराजे। निवृत्ति नारि सुत शुभ गुण राजे ॥
साहस हिम्मत रस मे पागे। बिरति बन्दूक देखि रिपु दागे ॥
सुख शत्रू पर तनिक न दाया। त्याग तीर सर सर धमकाया ॥
सहि प्रतिकूल काज निज साजे। हुचे न दॉव लाज नहि लाजे ॥
जडासक्ति की किये सफाई। जय विबेक झडा फहराई ॥
ममता क्षमा निराश के डका। मान रक्षि सब चरै अशंका ॥
मन वच कर्म स्वजाती रक्षा। अटल स्वराज्य स्थिती पक्षा ॥
ज्ञान को व्यञ्जन शब्द मथन कर। भूख नीद सहि देह गुजर भर ॥
जड चेतन दुइ नित्य सदाई। पाँचो गोचर जड़ दिखलाई ॥
सब ब्रह्माण्ड क्रिया जड सारा। अस हिय जानि सकल भ्रम टारा ॥
चेतन स्वतः आप सरकारा। जेहि पर है सब दारमदारा ॥
अन अधिकारी केहि बिधि जानै। नेत्राबरण न रबिहि पिछानै ॥

ईश ब्रह्म परमातम आतम। जहँलो वदत महान महातम ॥
सब अवतार व सर्बाहि वडाई। जो कुछ जहँलो मनहि खिचाई ॥
सकल विशेषण शोभत जासे। सवको त्यागत दुख लखि खासे ॥
सपने मे नहि प्रकृति झमेला। मनन मात्र सव खेलहि खेला ॥
मन सम्भव सव जाकी रचना। लोक बेद औ यावत वचना ॥
यत्र कला कौशल निपुणाई। जाको देखत जाय लुभाई ॥
सो सव महिमा जीवन केरा। जीव विना जड प्रकृति अँधेरा ॥
अहो ! धन्य निज रूप सुभागी। स्थिर अचल तृप्त नित जागी ॥
जाहि बड़ाई मे कोइ नाही। जाकी गुरुता टिकै न काही ॥
जाहि अचलता मे नहि दूसर। जाकी शोभा अनुपम हूँ वर ॥
गौरव सत्य सुभाग्य पराक्रम। परम पुनीत के आगे सव कम ॥
कोटि काम रति कोटिन मोहक। कोटि कोटि उपमा जो सोहक ॥
सुखानन्द अनुकूल खिचावा। मीठ राग प्रिय कर मन भावा ॥
इन्द्रिय मन गोचर जहँ आवै। सो तम दूरि न रवि निज पावै ॥
आप सत्यता सवमे भासे। जल छाया की भाँति प्रकाशे ॥
हेतु आपनो तजत गहत सव। आप बिना सव कथा खतम तव ॥
आप बड़ाई आपै गहिये। आप विचारि आप मे रहिये ॥
भू-जल अग्नि वायु सम नाही। पच भोग जड़ निकट न जाही ॥
सब उपमा उपमेय को साक्षी। ज्ञान मात्र अति शुद्ध यथाक्षी ॥
केहि बिधि ताहि वड़ाई कीजै। सबके पार पार निज लीजै ॥
जाहि भूलि निज सव खलमण्डल। तीनताप चवरासी वण्डल ॥
अहो ! पाप वड़ आप बिसारे। दीन हीन दुख दुखि हत्यारे ॥
अगणित जन्म मृत्यु की फाँसी। काहि कहौ निज भूल कि गाँसी ॥
विन दुख के दुख हा ! जिय ऊवै। कौहट नीद नृपति सरि डूवै ॥
कोटि मरण सम सुख मानन्दी। हठ शठ कीर भ्रम्यो आनन्दी ॥
वानी अंत न दुख को अता। भ्रमत देखि भव जल मे सता ॥

दीन हीन कैसेउ दुख माही। पढै गुनै सब सुख प्रगटाही ॥
नारो नर या रागि विरागी। होय रंक या वाल रुजागी ॥
काहू मत या विवशहुँ काहू। ज्ञानाजन पढि भाव निवाहू ॥
अवशि होय सो जीवन्मुक्ता। श्री गुरुदेव दया फल बक्ता ॥

दोहा—धन्य धन्य गुरुदेव जी, प्रभु से बड़ा न कोय।
ज्ञानाजन मोको दियो, सर्ब हितैषी सोय ॥ १ ॥
काय बचन मन दास तव, रखि हौ मुझे सम्हार।
प्रेम जनन की आश यहि, एकै आप अधार ॥ २ ॥

शब्द—१४

जहॉं जिव वसै ज्ञान गुणवाला ॥ टेक ॥

सुख इच्छा वश तन की चेष्टा, इन्द्रिन विषय को गहने वाला।
भोग पदारथ निश दिन ध्यावै, दुख न चहै सुख हित मतवाला ॥ १ ॥
मन प्रतिकूल हानि को मानत, अनुकूल लाभ ठनि चाला।
तेहि हित राग द्वेष उपजावै, कहुँ दयाल कहुँ काला ॥ २ ॥
जागै सोवै स्वप्न विवश ह्वै, सुषुपति में अध्यास को पाला।
पुनः पुनः लहि त्रिविधि अवस्था, ज्ञान स्वरूप निराला ॥ ३ ॥
ये सब हाल न लखिये जहवॉं, नहिं तहॅं जीव रहाला।
जड़ तत्त्वन के पंच विषय तहॅं, जड़हि शक्ति क्रिय घाला ॥ ४ ॥

टीका—ज्ञान गुणवाला चेतन जीव जहॉं जिस-जिस देहो मे निवास करता है उसके चिन्ह आगे वर्णन करते है ॥ टेक ॥ जहॉं जीव रहता है, वहॉं सुख इच्छा के वश होकर देह को हिलाना, डोलाना, चलाना आदि क्रिया और भीतर से हर्ष-शोकादिक चेष्टा स्थूल पर जाहिर किया करता है। वह नेत्र कर्णादि इन्द्रियो से देख सुन सूँघ स्पर्श स्वाद आदि पच विषयो को ग्रहण किया करता है। वह चेतन जीव भोग वस्तुओ को रात-दिन स्मरण करता, तिसमे

जेहिको जानि गयो विक्षेपा। जेहिको पाय अटल अभिषेका॥
विरह वियोग न क्षणहूँ भर जहँ। हानि कमी कुछ घटी न लख तहँ॥
रच न जहं प्रतिकूल के झगडे। साधु-साधु ध्वनि अम मग पकडे॥
प्रभुता विजय सुमगल घेरे। जस कुछ चही सो पूरण मेरे॥
सवै मीत सव वडी वडाई। सव आजादी को फल पाई॥
केवल मन को जाति विराजे। जीवन्मुक्त प्रत्यक्षहि साजे॥
भूल कि पारख गुरुवर दीन्हे। तिनसे वडा न कोई चीन्हे॥
अव तो कोइ से गर्ज नही है। केवल गर्ज गुरू से रही है॥
अव तो गुरु मग मे ह्वै दासा। सव प्रकार यहि मोर सुपासा॥
रती रती चहुँ तन उड़ि जावै। चहु कोइ पूजै कोइ गरियावै॥
काटै पीटै बाँधै ठेलै। हासै निन्दै नीचहि हेलै॥
प्राण हरै सव संकट देवै। अथवा विनय पूज्य सव सेवै॥
सव दुख सव सुख तृण सम लागे। स्थिति महा लाभ मे पागे॥
हो अरोग को शूल चहोरै। डूवत वचि को पुन. डुवोरै॥
जो मन पास भुलावनहारा। तो गुरु युक्ति है दाँव अपारा॥
मुक्तिद्वार में सो विस्तारा। रात दिना तेहि मनन संभारा॥
चलत फिरत अरु सोवत जागत। दुख सुख दूर विषम सम आगत॥
राग द्वेष अनुकूल हो कोई। शिक्षा पसर व कहुँ कुछ होई॥
हानि लाभ छूटन पुनि मिलनो। स्थिति पद से कभी न हिलनो॥
सो गुरु कृपा सहज ही लागे। सद्अभ्यास निरंतर पागे॥
सो कवीर गुरु दियो दया कर। लहि ज्ञानांजन सन्त सकल वर॥
रहौ सदा साहिव अनुकूला। तुम विशाल हम दीन हैं धूला॥
ज्ञानाजन जन दियो लगाई। सूझ बूझ सव मिल्यो सवाई॥
याहि काम पूरण अव भयऊ। कोउ आँजै ताहू दुख गयऊ॥
ज्ञानाजन को शाम शवेरे। दुपहर अथवा जवै पढेरे॥
शोक मोह भ्रम भूल जो शंका। नाशै सर्व द्वन्द्व दुख वंका॥

क्रिया होते हुए भी चेतन जीवों का बासा नही। जहाँ चेतन जीव नही ऐसे बीज-वृक्ष, ककड-पत्थर आदि कार्या मे केवल जड तत्त्वो के लक्षण पच विषय हैं। तिन कार्यो में रस भाग जल, कठोर स्थूल दृश्य भाग पृथ्वी, तेज चमक भाग अग्नि और सूक्ष्म गमनागमन करने वाला वायु इन चार तत्त्वो के गुण—शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध और पिण्ड बँधे हुये रसायनादि शक्ति सव कार्य है। वढने सूखने आदि की साधक-बाधक क्रियायें ही मिले जुले जड तत्त्व रूप ही हैं। तिसमे ज्ञाता चेतन जीव नही। ऊपर लक्षण लक्षित चेतन जीव रहने और न रहने की परीक्षा करके यथावत जान लेना चाहिये ॥ ४ ॥

शब्द—१५

चेतन जीव न वृत्तन माहीं ॥ टेक ॥

माटी पानी अनल पवन मिलि, बीज शक्ति तिनका ही।
शक्ति रसायन स्नेह आदि से, उगत बढ़त हरियाही ॥ १ ॥
सत तत्त्वन में क्रिया रही है, सब सब में मिलि जाही।
मिलत रुकत जस पाय योग्यता, ज्ञान विहीन रहाहो ॥ २ ॥
वृद्धि रहै औ फूलै फलते, साधक योग्य रत्तते ताही।
साधक बाधक शक्ति जड़हिं की, बाधक विघ्न पड़त तहँ वाही ॥ ३ ॥
इन्द्री हीन न भोगन गहते, सुखाध्यास इच्छा नहिं लाही।
सुख दुख मानि न कर्म करैं कोड, नहिं तहँ भोग रहाही ॥ ४ ॥
पंच विषय जड़ पूरण रहते, जानब मानब नाहीं।
याते जीव न जानौ तिनमें, जड़ का ठाठ दिखाहीं ॥ ५ ॥

टीका—चेतन जीव का बासा बीज वृक्ष अकूर्य आदि मे नही है ॥ टेक ॥ जो तुम्हे शका हो कि ये हरे भरे तथा किसिम-किसिम के क्यो है? सूख क्यो जाते तथा वढते मोटाते क्यो हैं? इत्यादि शकाओ का उत्तर यह है कि मिट्टी, जल, अग्नि और वायु तत्त्व

मन लगाकर चाहना किया करता। वह चेतन जीव दुख नही चाहता। जहाँ तक उपाय चलता, तहाँ तक दुख से भागता रहता है। सुख के लिये वह मतवाला बना रहता है अर्थात सुखसिद्धि के अर्थ अपनी सारी शक्ति लगा के मदमस्त रहता है ॥ १ ॥ शरीर-धारी जीव की मनसा के जो उल्टे होते है, उनसे अपना नुकसान निश्चय करके वह दुखी होता तथा अपने मन अनुकूल प्राणी पदार्थो से मन मे लाभ निश्चय करके अनुकूल ही प्राप्ति के लिये इन्द्रियो द्वारा चल-फिर, उठ-वैठ, देख-सुन के पुरुषार्थ करता रहता है। अनुकूल और प्रतिकूल लाभ तथा हानि जहाँ जैसा माना है, तिसके लिये चेतन जीव राग और द्वेष उत्पन्न करता। जिन प्राणियो को अनुकूल मानता, उन पर पदार्थ और क्रिया द्वारा दयाल होकर उनकी रक्षा करता है। जिनको उल्टा मानता, तिनके लिये काल रूप कष्टदायक होता। उसके पदार्थ और सम्वन्धियो का घातक वनता रहता है। इस प्रकार घट खानि शक्ति अनुसार जान-जानकर राग-द्वेप और तिसकी क्रिया धारण करता है ॥ २ ॥ देहधारी जीव जागता है। जागने का मतलव जागृत इन्द्रियों से देखने-सुनने आदि का व्यवहार करता और कभी सो जाता। तहाँ स्वप्न मे विविध वासना मात्र तमासा देखता, एवं स्वप्न वश रहता और कभी सव अध्यासो को समेट कर अध्यासो की प्रियता को लिये-लिये सुपुप्ति अवस्था धारण करता। सुपोप्ति मे भी अध्यासो को सचय किये रहता। ऐसा नही कि एक ही वार तीन अवस्था हो। बल्कि देहधारी जीव वारम्वार तीन अवस्थाओं को उलट-पलट धारण करते रहते है। धारण करते हुये भी तीन अवस्थाओ के ज्ञाता चेतन जीव तीन अवस्थाओ से न्यारा ही रहता है। इस प्रकार नर, पशु, अण्डज उष्मज ये चेतन देहधारी के लक्षण कहे गये ॥३॥ ये सव लक्षण जहाँ न दिखाई देवे, वहाँ पर वढना-सूखना आदि

योग्यता और वस्तु बिगडने की क्रिया बाधक शक्ति ये दोनों जड तत्त्वो की क्रिया है। कार्यो के नाशक विरोधी क्रिया कार्यो के बनने ठहरने मे विघ्न रूप है। विघ्न रूप होते हुये भी कम-विशेष सब जड तत्त्व ही है। जैसे दीपक कम जले या ज्यादा या भक-भक होवे या बुझ जावे हमेशा उसमे मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु ये जड़ तत्त्व ही रहते है। परमाणुओ का घट-बढ लगा रहता है। किन्तु उसमे ज्ञाता चेतन जीव नही। यही हाल बीज-वृक्षो का समझ लो ॥ ३ ॥ वृक्षादि इन्द्रियो से रहित है, इसलिये वे भोगों को ग्रहण नही करते। जैसे देहधारी चेतन जीव आँखो से रूप को देखते, कानो से शब्द सुनते, त्वचा से ठण्डी-गर्मी, कोमल-कठोर को जानते, नाक से गन्ध लेते, जीभ से स्वाद लेते और हाथ पाँव मुख लिग गुदा आदि दस इन्द्रियो द्वारा कर्म करते है, वैसे वृक्षो मे इन्द्रिय और इन्द्रिय सम्बन्धी भोग ग्रहण नही होते, इसलिये तिनमे भोगो का सुखाध्यास भी नही टिकता। न वे इच्छा या संकल्प कर-करके अन्दर बाहर क्रिया ही करते। इस हेतु तिनमें इच्छासक्ति भी नही। जब इच्छासक्ति ही नही, तो सुख मानना, दुख मानना तथा सुख प्राप्ति हेतु और दुख निवृत्ति हेतु किसी प्रकार का कर्म-पुरुषार्थ भी तिनमे नही। जब तिनमे कर्म सस्कार का लेश नही तो कर्म संस्कार विना प्रारब्ध भोग या पुरुषार्थ करके अनेक भोग वे कैसे ग्रहण कर सकते है? अस्तु तिनमे भोग भी नही इस लिये कर्म कर्त्ता तथा भोक्ता मानन्दी युक्त ज्ञान कर्त्ता चेतन जीव तहाँ नही है ॥ ४ ॥ जो वृक्षों मे चमक-दमक सो रूपत्व, जो चिखने से खट्टा मीठा कषैलादि सो रस विषय और जो उनमे गध-दुर्गन्ध सो गन्ध विषय तथा उनके छूने से कठिन कोमल शीत उष्ण सो स्पर्श विषय, वायु के धक्का या परस्पर घर्षण से उनमे आवाज होती सो शब्द विषय, एव वृक्षादि पाँच विषय चार जड़ तत्त्वो की कला से पूर्ण जड़ पच विषय के

युक्त अनेक प्रकार के वीज की शक्ति तिनमे मिली हुई है । पदार्थों मे परिवर्तन करने की शक्ति को रसायन शक्ति कहते है । चिकनापन होना, पिंड बाधना स्नेहशक्ति है । यह तत्त्व के परमाणुओ मे है । धारणा शक्ति जो थामे रहे, एक दूसरे परमाणु को धारण किये रहे, विशेष यह पृथ्वी मे है । सामान्य रूप से सव तत्त्वों मे है । दाह शक्ति जो गर्म पहुँचाकर पुष्ट करे वह अग्नि की शक्ति है। इस प्रकार धारण शक्ति आदि के मेल से अनन्त वीज प्रथम भूमिका मे पडकर फिर जडे निकलकर वाद मे अकूर फूट के क्रमश· वढते-मोटाते हरे-भरे रहते है "दीप प्रकाश न्याय" ॥ १ ॥ वायु ओर नदियो का वहना, सूर्य-चन्द्रादि की किरणो का फैलना, पृथ्वी मे नाना अकुर की उत्पत्ति-नाश होना, पृथ्वी पर वडे-वडे वृक्ष का होना, एव चार तत्त्वो के परमाणुओ मे स्वाभाविक चलने मिलने विछुडने की क्रिया है । पृथ्वी मे जल, अग्नि, वायु के परमाणु मिले हैं, जल मे पृथ्वी, अग्नि, वायु के वायु तथा अग्नि मे अन्य तत्त्व के परमाणु मिले है । उनके वीज-वृक्ष आदि कार्य मे भी सव-सव मे मिलकर जैसी साधक योग्यता पाते है वैसे रुकना वॅधना पुष्ट होना आदि भी तिनमे होते रहते है । ये सव क्रियाये होते हुये भी मानन्दी युक्त वासना धारण करने वाला ज्ञान स्वरूप चेतन जीव तिन वीज वृक्षो मे नही रहता है, इसलिये वे ज्ञान रहित मात्र जड़ तत्त्वो के कार्य हैं ॥ २ ॥ मिट्टी, पानी, प्रकाश, वायु की सव ठीक-ठीक योग्यता मिलते रहने से वे अकुर्य पदार्थ बढते मोटाते, फूलते-फलते एव साधक परमाणुओ की क्रिया से ही उन वृक्षो की रक्षा होती है । यदि वाधक रूप जल विशेष हो गया या कही अग्नि अधिक हो गयी, कही विल्कुल जल न मिला या प्रकाश-मिट्टी का अभाव हुआ, तो तिनकी शाखाये सूखने लगती या सम्पूर्ण वृक्ष सूख जाता अथवा कमजोर रह जाता । वस्तु वनने-ठहरने की ठीक-ठीक सामग्री साधक

आधार से जीवों की देह का लड़कपन मे पालन पोपण होता और उष्मज खानि देहधारी कृमि-पतगादि जीव की देहे फल-फूल, सडे-गले पदार्थ, जल-थलादि में जहाँ वे देह धरते, वहाँ प्रारब्ध योग्यता-नुसार वाह्य तत्त्वो से ही छोटपन मे उनकी देहो का पोषण होता रहता। वड़े होने पर फिर मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतगादि घट-खानि अनुसार तहाँ नाना प्रकार का शरीर पोषण अर्थात जीविका निमित्त और पंच भोग सुख निमित्त तथा नर देह मे विविध कामना पूर्त्ति हित नाना युक्तियो से जानि-जानि परीक्षा कर-करके कम-विशेप पुरुषार्थ सव देहधारी जीव करते ही रहते है ॥ २ ॥ पूर्व प्रकार से देहधारी जीवों की देहों की उत्पत्ति होती और पुष्ट होती। इस प्रकार वे देहधारी जीव भिन्न-भिन्न निज-निज कर्माधीन दुख-सुख मानि-मानि के सस्कार वश दुख-सुखादि भाँति-भाँति के प्रारब्ध फल-भोग को भिन्न-भिन्न प्रत्यक्ष प्राप्त कर रहे है, पुन उन जीवो की देहों का पूर्व प्रारब्ध भोग पूर्ण होते ही उनकी देहो का विनाश की योग्यता अर्थात सर्पादि काटने से, विजली आदि गिरने पर, वाढ, वीमारी आदि तीन ताप मे पड़ के स्थूल देह छोडकर पूर्व कथनानुसार सूक्ष्म देहयुक्त सस्कार उदय द्वारा पुन· चार खानियो मे देह धर-धर के वहते अर्थात घूमते रहते है। यह सव देहधारी जीवो की देह बनने का हाल वर्णन किया गया है। ये सव लक्षण[1] वीज-वृक्षादि कारण-कार्य जड़ तत्वो मे नही देखे जाते ॥ ३ ॥

१—टिप्पणी—भौतिक विज्ञान मे भी वनस्पति विज्ञान और जन्तु विज्ञान दोना का पृथक ही पृथक वर्णन हुआ है, किन्तु उनका चेतन की तरफ शोध वोध लक्ष्य न होने से वे घूम कर जड तत्वो की क्रियाओ को ही चेतनशक्ति मान लेते है, यह उनका भ्रान्ति ज्ञान है। क्योकि १—किसी भी सयोग से वह शक्ति नही होती जो उनमे न हो, अभाव हो। यदि उस मूल मे शक्ति न होवे और वह केवल कई सामग्री मिला देने से हो जावे, तो अयोग्य चीजो के मिला देने से या शून्य वन्ध्या पुत्र शशाश्रृङ्ग से भी सब कुछ हो जाना चाहिये ऐसा असम्भव है।

स्वरूप है। पाँच विषय के अलावा वृक्षों मे सुख दुख वस्तु प्राणी और विपय आदि पदार्थो को जानि-जानि के ज्ञान करना तथा हानि लाभ मानि के कर्म करना और भोगना ये चेतन शक्ति कुछ नही। इसलिये वृक्षादि अंकूरज खानि मे ज्ञाता चेनन जीव नही है। वे केवल चार जड तत्त्वो के घट-वढ जड़ परमाणुओ की सामग्री निर्मित है ॥ ५ ॥

शब्द—१६

जीवन देह धरत जहँ लखते ॥ टेक ॥

भोगासक्ती करम वासना, जड़ग्रन्थी को लहते।
खानि बीज से बनत देह तिन, कहूँ योग्यता तत्त्वन रहते ॥ १ ॥
मात पिता के आश्रित कतहूँ, कहुँ जड़ योग्यहिं रहते।
खानि भेद से तहँ पुरुषारथ, जानि जानि जीव करते ॥ २ ॥
यहि विधि तन उत्पति औ वृद्धी, दुखसुख मानि भोग को लहते।
प्रारब्धि भोग तन नाशि योग्यता, पुनः जाय खानिन में बहते ॥ ३ ॥

टीका—जहाँ-जहाँ अविनाशी जीव का जड देह धरना देखा जाता है, तहाँ-तहाँ यह नीचे लिखे लक्षण होते है ॥ टेक ॥ नर देह मे मन इन्द्रिय युक्त पच भोग के लिये शुभाशुभ कर्म करता है, उसी की वासना अन्त करण मे ठहराता है। इस रीति से सूक्ष्म देह अन्य तत्त्व सूक्ष्म परमाणु युक्त सुखाध्यास सहित जड़ग्रथि पुष्ट कर लेता है फिर प्रारब्धान्त मे स्थूल शरीर छोड़कर किये-भये कर्म सस्कार उदय द्वारा नर, पशु, अण्डज ये तीन खानियो मे जाकर खानियो के माता-पिता के रज-वीर्य सम्वन्ध द्वारा जीव देह धारण कर लेते और कही शरीर छोड़कर सूक्ष्मदेह युक्त चेतन जीव कर्म सस्कार अनुसार सड़ी-गली चीज, जल-थल, फल-फूलादि पदार्थो मे जाकर वाह्य तत्त्वो की योग्यता से ही उष्मज खानि मे कृमि-कीटादि की स्थूल देह वन जाती है ॥ १ ॥ नर पशु अण्डज ये तीन खानियो मे माता पिता के

पवन परश मृदु शीतल पानी, लागत कठिन थले।
अनल जलाय देखावत वस्तुन, विविधि प्रकार ढले ॥ १ ॥
नीच ऊँच हित अनहित जानी, समझत गहत चले।
श्रवणन शब्द श्रवण करि जीवहि, रीझत खीझि छले ॥ २ ॥
विविधि स्वाद रसना मन मोदित, निरखत परख वले।
जानि जानि सब गंध दुर्गन्धहिं, सनमुख घ्राण तले ॥ ३ ॥
पग पग देह चलावत जीवहिं, गुनना मानि रले।
धरत उठावत पाणि क्रिया करि, जस कछु प्रेरि घले ॥ ४ ॥
जानि मानि वहु बोल बोलावै, मुख से खोंटि अले।
खान पान करि भरत उदर को, रक्षा देह फले ॥ ५ ॥

टीका—चेतन और जड़ ये दोनो पदार्थ अपने-अपने गुण धर्म युक्त भिन्न-भिन्न भली प्रकार स्पष्ट जानने मे आते है। अथवा भली प्रकार जड-चेतन जैसे पृथक-पृथक है उसी प्रकार निर्णय करो ॥टेक॥ वायु तत्व कोमल स्पर्शवान है, पानी ठण्ढा लगता है, पृथ्वी तत्व कठोरता युक्त त्वचा मे लगता है, अग्नि तत्व वस्तुओ को जलाता गर्माता और अग्नि के प्रकाश से सव वस्तुये दिखाई देती है। इस प्रकार चारो तत्व भिन्न-भिन्न मुख्य चार भेदयुक्त अनादि है। तिन्ही के परस्पर सयोग सम्बन्ध से स्वाभाविक प्रवाहरूप बीज-वृक्ष, वादल-वुन्द, विद्युतादि असख्य कार्य सुन्दरता युक्त अच्छे-अच्छे बन जाते है ॥ १ ॥ अब चेतन के लक्षण विस्तार करते है—देहधारी चेतन जीव चलने-फिरने मे ऊँच-नीच मार्ग देख-देखकर सम्हल के चलते या किसी को ऊँच-श्रेष्ठ किसी को नीच—लघु मानते ओर प्रत्येक बात मे अपने हित, सुखदायक और अनहित, दुखदायक क्रियाओ को भिन्न-भिन्न समझ के ग्रहण-त्याग करते रहते। हित समझे हुये का ही आचरण करते है, अहित का नही। कानो से अनेक प्रकार के शब्द जाल चेतन जीव ही सुनकर कही अनुकूल मान के प्रसन्न होता तो

शब्द—१७

जीव जड़ भिन्नहि भिन्न भले ॥ टेक ॥

अत पच विषय जड रूप जड तत्वो से चेतनता का अत्यन्त अभाव होने से कभी कही उनके सयोग से चेतन की उत्पत्ति नही हो सकती। जहाँ कही जड देहो के सम्बन्ध मे चेतन देखते है वह जड से न्यारा धर्म वाला जीव का स्वरूप स्वतन्त्र अनादि है। २—सम्पूर्ण दृष्टात विपय विरोधी अघटित है' भौतिक गुण क्रियाधर्म शक्ति सयोग कारण कारज सर्व-मन मानन्दी ज्ञान शक्ति रहित होने से कोई भी जड दृप्टात चेतन पर घटित नही होता। ३—कारण कारज परस्पर किसी हालत से भिन्न नही। इसको भवयान मे अनेक युक्तियो से वर्णन किया गया है। अत.करण चारो जड़ तत्वो उनसे वने सर्व कार्य जड तिससे पृथक जनैया चेतन स्वत अपरोक्ष है। ४—भिन्न-भिन्न गुण धर्म लक्षित वस्तुये भिन्न-भिन्न होती है, जैसे-आग-पानी-मिट्टी-वायु क्रम से उष्ण, शीत, कठोर, कोमल, धर्म युक्त कभी एक नही होते। निर्वाह के लिये भी वे पृथक ही पृथक ग्रहण किये जाते। भला! जव जड तत्व ही गुण धर्म भिन्न होने से एक नही होते, तो चेतन तो सर्वथा जड तत्वो से पृथक ज्ञान धर्मवाला सत्य है, वह कभी जडरूप हो नही सकता। ५—स्थूल सूक्ष्म तन-मन को जान-मान कर प्रेरणा करने वाला चेतन कभी तन-मन रूप नही होता, क्योकि अपनी भिन्नता सवको प्रत्यक्ष है। मै नही हूँ, यह कभी देहधारी चेतन को प्रतीत नही। ६—सवमे दुख देख कर चेतन जीव सबका अभाव करके अभाव कर्त्ता स्वय भाव रूप चेतन शेप रह जाता यह प्रत्यक्ष अनुभव है। इन सव कारणो से जड़ तत्वो से चेतन की उत्पत्ति कहना सर्वथा कल्पित है।

डा०—जगदीशचन्द्र वसु ने जो वृक्षो मे वढने मोटाने प्रकाश वायु युक्त खुली तरफ विकसित होना ही जीव मान लिया है, वह पूर्व शब्दो मे जड तत्वो की शक्ति गुण धर्मो के अन्दर कहा गया है, अत. वृक्षो मे जीव मानना युक्तिहीन, प्रत्यक्ष प्रमाण रहित, कल्पना का दृढ भास है। क्योकि मनुष्य पशु पक्षी कीडे मकोड़े आदि बिना यन्त्र के ही उनमे प्रत्यक्ष तीन अवस्था जाग्रतादि धर्म और दुख सुखादि मन मानन्दी दिखाई देते है। वृक्षो मे ऐसा प्रत्यक्ष नही। ये सव वाते ऊपर विस्तार से वर्णन हो आयी हैं। अत. जडवाद अर्थात जड को ही जीव मान लेने का पक्ष त्याग देना चाहिये और अपना चेतन स्वरूप जड़ से सर्वथा पृथक दृढ निश्चय करके सर्व जडाध्यास त्यागकर जीवन्मुक्त के रहस्य मे प्रेम पूर्वक चलना चाहिये। चेतन सिद्धा.त का दृढता से प्रतिपादन जहा हुआ है उस प्रसङ्ग को भली प्रकार पुष्ट कर लेना चाहिये।

लक्षण और विलक्षण सबही, चारौ भेद मिले।
सबका द्रष्टा आप जनैया, समता कोइ न सले ॥ ८ ॥
जो कुछु जानि जहाँ तक जीवहि, सोइ चतुष्ट पले।
धारत अंतःकरण ताहि बल, नाहिं तो ताहि न ले ॥ ९ ॥
विवश बासना भोगन जावत, इन्द्रिन साथ धले।
जो जेहि शस्त्र त्याग करि दीन्हे, रहत न ताहि जले ॥१०॥

टीका—जीव ही गुदा से टट्टी करता, शिश्नेन्द्रिय से लघु-शका त्याग करता, इनमें सुख-दुख मानन्दी द्वारा जीव ही को कष्ट होता रहता है। इस प्रकार चेतन जीव की सत्ता से चलती हुई पॉच ज्ञान इन्द्रियॉ और पॉच कर्म इन्द्रियॉ ये दस मिलकर नख-शिख भौतिक देह का ठाठ मलीन जड़ बन्धन से पूर्ण है ॥ ६ ॥ अपने चेतन स्वरूप को, और अपने से पृथक कारण-कार्य सो जड़ तत्व इन दोनो का गुण लक्षणो द्वारा पारख करो। देखो ! दोनो में अत्यत पृथकता है। स्वाभाविक दोनों अलग-अलग जानने मे आ रहे है। जड तत्वो मे जहॉ तक मिल-मिलकर जितनी मशीन विद्युत यन्त्र कला तथा नाना प्रकार बीज-वृक्षादि बनते है, सो सब चार जड़ तत्वो के लक्षण से परिपूर्ण रूप से कायम है ॥ ७ ॥ अपने-अपने कारण के गुण कार्यो मे होना सो लक्षण है, जैसे अग्नि के कार्य अगार आदि और एक तत्व का गुण अन्य-अन्य तत्वो के कार्य मे परणित होना जैसे जल मे उष्णता। इसी प्रकार सब तत्वो का गुण-धर्म परस्पर सब तत्वो के परमाणुओ के सयोग सम्बन्ध से अनन्त प्रकार की वस्तुओं मे अनेक प्रकार के गुण-लक्षण युक्त विदित होना सो न्यारे-न्यारे कार्य पदार्थ जो दीखते है सो सब चारों के गुण धर्म शक्ति सयोग आकार क्रिया लक्षणो के अतर्गत ही है, बाहर नही। याते जड़ लक्षण सहित विलक्षण अनन्त किसिम की वस्तुये सब चार तत्व के चिन्ह युक्त चार तत्व रूप ही है, याते देह पिण्ड से लेकर सर्व ब्रह्माण्ड जड़ है।

कही उल्टा मानकर असन्तुष्ट होता । इस प्रकार असत शब्द भास मे जीव ही भुलाता है। इससे यह अनुभव हुआ कि न तो जीव शब्द है न कान है। वल्कि कान शस्त्र से शब्द क्रिया को जानने-मानने वाला कर्त्ता जीव सवसे न्यारा है ॥ २ ॥ अनेक प्रकार की खटाई-मिठाई, फल-पकवान, तिक्त-मधुर स्वाद जिभ्या से लेकर मन मे प्रसन्नता मानता है। चेतन अपनी पारखशक्ति से सव स्वादो को निरखता जानता है । इसी प्रकार नाक के द्वार के सनमुख हुये भॉति-भॉति की गन्ध और दुर्गन्ध को जीव ही जानता और अनुकूल तथा प्रतिकूल मानता रहता है। इसी हेतु जनैया जीव इस जीभ और रस तथा घ्राण और गन्ध से न्यारा स्पष्ट अनुभव है ॥ ३ ॥ जीव ही पैर उठा-उठाकर देह को पग-पग चलाता है, भीतर हानि-लाभ का गुनावन-चिन्तन करना इसकी एक धारा वना लिया है। जिस गुनावन मे सुख निश्चय करता है, उसी अनुसार देह से क्रिया कराता है अर्थात शरीर को रले—ढकेलता है। जीव ही हाथ से क्रिया करके पदार्थो को धरता और उठाता है। जैसी कुछ हानि-लाभ भीतर मानता है तिसी मानन्दी मे मिलकर तन-मन मे प्रेरणा जीव ही करके तहॉ आसक्त होता है ॥ ४ ॥ भीतर जीव ही हानि-लाभ जान-मान कर अनेक प्रकार के शब्दो का मुख से उच्चारण करता है खराव से खराव कठोर घातक अनहित के बचन भी मुख से वोल देता तथा हितैपी सत्य प्रिय कल्याणप्रद सन्तोष जनक श्रेष्ठ अच्छे-अच्छे शब्द भी मुख से कहता है । जीव ही नाना प्रकार के भोजन करके पानी पीकर पेट भरता, जिसका फल देह की रक्षा है ॥ ५ ॥

शौच क्रिया लघुशंका त्यागै, सुख दुख मानि खले।
इन्द्री ज्ञान औ करम दशौ मिलि, तन का ठाठ कले ॥ ६ ॥
भिन्न-भिन्न शोधौ निज पर को, दोनौं फॉट हले।
करि संयोग जहॉ कुछ होवै, सव जड़ चिन्ह ठले ॥ ७ ॥

न चलाने पर हिंसादि झगडे से मनुष्य पृथक हो जाता है, तैसे इन्द्रियो की विपयासक्ति छोड देने से देह रहते-रहते भी इन्द्री-मन कृत आसक्ति नही जलाती ।। १० ।।

यह अनुभव तव ही परत्यक्षहि, परखै मनन दले।
जानि जानि रहि मिलै न सब में, यह पुरुषार्थ बले ॥११॥
जेहि धारणा करि ताहु को परखै, छूटत मिलत झले ।
मन ही सब कुछ करत सामने, तेहि तजि दृश्य टले ॥१२॥
जगत ज्ञान से रहित रहन को, कारण याहि वले ।
मुक्त विदेह देह तजि तवही, दुख से छूटि भले ॥१३॥
पाय मानुप तन वृथा न खोवौ, दुख से छोरि गले ।
लहौ विशाल परम पद अब की, सुयश सुवास थले ॥१४॥

टीका—वासना उपाधि से बाह्य ज्ञान, वासना त्याग से अन्तर स्थित शान्त रहने का अनुभव अपरोक्ष ज्ञान तभी होगा जब सर्व वासना समूह को अपने से पृथक परीक्षा कर-करके तिसमे न बहे। शुभाशुभ सर्व दृश्य भावनाओ को दुखपूर्ण जान-जान कर तिसमे राग न करे। यही नित्य का पुरुषार्थ साधन करते हुये अपने स्वत चैतन्य बल की पूर्ण जागृति करके ही यथार्थ अनुभव होगा ।। ११ ।। जिस अन्त करण के लक्ष्य साधन को लेकर तिस वासना समूह को परख-परख के अलग देखता है, कभी वासनाओं से अलग होता, कभी वासनाओ मे मिलता यह जो झकझोर मिलने छूटने की उपाधि क्रिया है वह भी देह सम्बन्ध ही करके है, शुद्ध स्वरूप मे नही। मनोमय स्मरण ही चैतन्य के सामने सम्पूर्ण सृष्टि का भान कराता है। यदि मन न रह जाय तो जहाँ तक इन्द्रिय गोचर का भान होता है सो सब चेतन के सामने से उपाधि छूट जाती है। प्रत्यक्ष देह रहते-रहते भी मन को शात कर देने से सब दृश्य प्रपंच का भार टल जाता है, सन्मुख नही रह जाता ।। १२ ।। बाह्य ज्ञान रहित

जड-जड के सयोग से जड ही होता, चेतन नही, क्योंकि चेतन का धर्म जड तम से निराला है। सबोका द्रष्टा देखने वाला तिनके गुण-लक्षणों को जानने-मानने वाला जोव अपने आप ज्ञान मात्र है, तिसके पटतर मे कोई चीज नही। मूर्य चन्द्र विद्युतअणु धुआँ ज्योति, शून्य ठण्ढ गर्म वीज वृक्षादि सर्व जड ही है। कही कोटि-कोटि भानु का प्रकाश, कोटि-कोटि चन्द्र का प्रकाश, कही सर्व शून्य, कही अमृत नदी आदि ज्योति अदभुत रूप स्वर्ग लोक और देवो की जो कल्पना करते है वह तो अदृश्य मनोमय का विस्तार कल्पित ही है। प्रत्यक्ष स्त्री-पुरुपो की देहे अन्य खानियो के शरीर वीर्य श्वास मस्तक आदि सव सड-गल जाने वाले जड़ के कार्य तुच्छ है, और जीव इन सवोका भिन्न-भिन्न ज्ञाता होने से सवोंसे विलग स्वय सत्य अनुपम ज्ञान मात्र है। याते जीव की वरावरी मे किसी कारण-कार्य जड़ तत्वो की उपमा घटित नही होती ॥ ८ ॥ जहाँ तक जो कुछ जानता है, सो सव जीव ही जानता है। जो कुछ इन्द्रिय रूप शस्त्र से जीव ने जाना-माना उसीका संस्कार चित्त चतुष्ठय रूप से पुष्ट रखता है। चेतन की शक्ति से ही अत करण मे सर्व अध्यास टिकते है। चेतन न हो तो किसी भी पूर्व सस्कारो को लेकर जड़ अत करण ग्रहण नही कर सकता ॥ ९ ॥ अनादि काल से वासना के वश रहा हुआ सूक्ष्म सस्कारो के आधार से वाह्य भोगो का जीव ही ज्ञान करता रहता है। यदि वासना का सम्वन्ध न हो तो शुद्ध स्वरूप चैतन्य जीव वाह्य भोगो का ज्ञान नही कर सकता, औजार त्यागकर कारीगर औजार सम्वन्धी कार्य नही कर पाता, तद्वत। वह चेतन इन्द्रिय अत करण का साथ करके दौड़कर चेष्टा युक्त सव विपयो को ग्रहण करता है। यह वात लोकविदित है कि जो जिस औजार को छोड़ देता है, या औजार रहते-रहते ओजार सम्वन्धी क्रिया नही करता, तो उस उपाधि से वह न्यारा हो जाता। जैसे तीर-तलवार शस्त्र

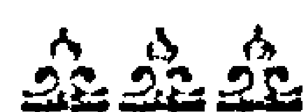
ही नही, वल्कि सूत्ररूप मे भी कठिन युक्तियों का मिश्रण किया गया है। दृष्टात विशेषण तो सामने है, सिद्धात का लक्ष्य भेदी बिना नही जाना जाता। यद्यपि पारखी विवेकी सन्त तिसके कथन का सिद्धात सत्सग से अनुभव द्वारा स्पष्ट कर लेते है, यथापि सर्व साधारण जन समाज तो भेदी से अर्थ पाये बिना स्वय उसके भाव को यथार्थ समझ ही नही सकते। "पारख बिन परिचय नही, बिन सतसग न जान" ॥ १ ॥

पारख के सिद्धांत हित, बीजक माना मुख्य।
प्राप्ति होय तेहि की जहाँ, सो सब बीजक मुख्य ॥ २ ॥

टीका—पारख सिद्धात के ही समझने समझाने के लिये बीजक की विशेषता जानी जाती है। याते बीजक वाक्य इशारा संज्ञा सैन हुआ और पारख स्वरूप को जानना मानना ठहरना यह उसका लक्ष्य, ध्येय, परिणाम अथवा फल स्वरूप ठहरा। पारख स्वरूप की प्राप्ति करना ही नर जीवो का परम कर्तव्य है। इसीलिये श्री कबीर साहेव बीजक मे प्रतिपादन किये। तो जव बीजक का भाव पारख स्वरूप को जानना मानना ठहरना ही है, तो वह मूल बीजक से हो या बीजक त्रिजा या पंचग्रथी या जितने उत्तर-उत्तर बनाये गये किसी भी पारख प्रतिपादक ग्रन्थों से हो वे सब वाक्य बीजक से कम नही वल्कि वोध और सदाचार प्रेरक समग्र ग्रन्थ बीजक का लक्ष्य अर्थ-रूप ही प्रसिद्ध जानिये। उसमे बीजक से लेकर सब या जिस किसी ग्रन्थ से अपने को सरलता मालूम पडे उन सबों को घोखना-कण्ठ करना, श्रवण मनन अनुशीलन करते हुये स्वरूप स्थित करना

टिप्पणी—"अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहइ दिवस जहँ भानु प्रकासू ॥
सोइ सेवक प्रियतम मन सोई। मम अनुशासन मानै जोई ॥"
इस दृष्टात अनुसार गुरुपद सैन शब्द निर्णय बीजक रूप ही है।

जीव को ठहरने का यही पुष्ट प्रमाण है कि जब प्रारब्ध रहते-रहते मन शान्त करके जगत प्रपच रहित स्थिर रह जाता है, तो फिर प्रारब्धान्त पश्चात देह इन्द्रिय और मनोमय साधन रहित शुद्ध जीव का विदेह मुक्त हो जाने पर उसे दु ख रूप जगत का भान हो ही कहाँ से ? वहाँ तो दुखरूप तन-मन पिण्ड-ब्रह्माण्डादि सर्व प्रपच का अच्छी प्रकार अभाव है यथा सूर्य के स्थान मे अधकार का सर्वथा अभाव ॥ १३ ॥ मुक्ति योग्य तन पाकर वृथा देह मन जगत प्रपच की आसक्ति मे बरबाद मत करो। दुखो से अपना गला छुडाओ। छुडाने का अच्छा अवसर यही । हितचिन्तक सन्त 'विशाल साहेब' कहते है कि हे जीव ! तुम अपना महान कल्याण रूप स्वय स्थिति अबकी—इसी नर देह मे, इसी क्षण मे दृढ करते चलो, आगे की आशा-भरोसा मत करो, क्या मालूम कौन से विघ्न आ जायँ ? एक क्षण भी मन से पृथक रहने मे ढिलाई मत करो, बस काम पूर्ण है। मन शात और शुभाचरण रखने से अभी सुयश होगा, तुमसे सबका हित होगा, तुम्हे भी स्ववशता प्रसन्नता मिलेगी। साथ ही तुमको त्रिविध ताप काम क्रोध लोभादि विकारो से छुट्टी मिल जायगी। इस प्रकार चैतन्य स्थल विश्राम भूमिका पारखरूप निराधार ठहर रहोगे ॥ १४ ॥



बोध और रहस्य धारण करने के हेतु ही पारखी सन्तो के ग्रन्थो का पठन पाठन इष्ट है, अत पारखी सन्तो के बीजक से लेकर यावत सब पारख सिद्धान्तिक ग्रन्थो का पठन पाठन विधि

सूत्र रूप बीजक रहा, कठिन युक्ति उपयोग।
बिना पढ़ाये अर्थ के, समुझि न पावत लोग ॥ १ ॥

टीका—सद्गुरु कबीर साहेब कृत बीजक संस्कृत सूत्र के समान गूढ है। गागर मे सागर न्याय थोडे मे बहुत भाव भरा है। इतना

व्यापक व्याप्य वर्जित, सम्पूर्ण जगतरूपता रहित तन-मन से सर्वथा भिन्न, सर्व परीक्षक केवल, स्वय पारख स्वरूप शुद्ध स्थिरपद है। तहाँ सर्व जडाध्यास मानना कल्पना त्यागकर स्वय ठहरना चाहिये। इस प्रकार का पारख ज्ञान पुरान कुरान ग्रथो मे कहाँ है? और भी दादू, दरिया, जगजीवन, वैष्णव, जैन, यवन, विकासादि ग्रथ-पथो मे तलाशने से भी पारख सिद्धात की वात कही[1] नही देखने मे आती ॥ ४ ॥

बीजक महिमा याहिते, अंते परख न देख।
सोई पारख होय जहँ, सो प्रसिद्ध सब लेख ॥ ५ ॥

१ टिप्पणी—"पट दर्शन मिलि पथ चलायो' त्रिदेवा अधिकारी। इतते उत उतते इत रहहु, यम की साँड़ सवारी। नौधा वेद किनेव है झूठे का वाना" [बीजक] अद्वैत एकात्मवाद—सव कुछ ब्रह्म ही है, ऐसा वेदात का सिद्धात जानिये। परोक्ष कर्ता ईश्वर, जीव और प्रकृति—तीनो अश-अशी रहित है ये द्वैतवाद जानिये तथा ईश्वर के जीव तथा प्रकृति ये अश है यह विशिष्ठाद्वैत जानिये और सूर्य का टुकडा पृथ्वी होकर नन्हे-नन्हे कणियो से धीरे-धीरे मानवीय सृष्टि का अचानक विकासवाद अथवा दो वस्तु जुडने से धीरे-धीरे विचित्र सृष्टि की विकसित एव सयोगवाद विकासवाद पदार्थ विज्ञानवाद ये सव प्रकृतिवाद देहवादान्तर गत तथा उक्त अद्वैत द्वैत त्रैत, एव सब मिलाकर चार वाद है और इन्ही के अन्तरगत जैन-बौद्ध हिन्दू-मुसलमान कृष्तान, नास्तिक-आस्तिक सव आ जाते है। परन्तु नरशृङ्ग, खपुष्प बन्ध्या-पुत्र, गन्धर्वनगर अभाव अर्थात गुण धर्म रहित केवल शून्य से कोई वस्तु की उत्पत्ति होती नही, तव अकारणवाद सयोगवाद सब मिथ्या और जड़ चेतन गुण धर्म युक्त अनादि होने से अद्वैतवाद कल्पित है। नित्य जीव का अन्य कर्त्ता-धर्त्ता न होने से द्वैतवाद और विशिष्ठाद्वैत कल्पित है प्रत्यक्ष युक्ति और अनुभव से जैसे जड चेतन अनादि भिन्न-भिन्न उत्पत्ति प्रलय रहित नित्य है, तैसा वेद पुराण कुरान ग्रथो मे न वर्णन होने से जाना जाता है कि पारख सिद्धात सद्गुरु कवीर का ही शोधन है।

"हम तो सवकी कही, मोको कोई न जान।
तब भी अच्छा अब भी अच्छा, युग युग होउँ न आन" ॥ बीजक ॥

चाहिये ॥ चौ०—"जेहि विधि काज जीव को होई । लाज मिटाय करै दृढ़ सोई" ॥ पचग्रंथी ॥ २ ॥

ब्रह्म ईश सिद्धांत जो, बीजक से करि पुष्ट ।
काह अधिक तब ताहि में, अन्य ग्रंथ जेहि तुष्ट ॥ ३ ॥

टीका—जल-तरंग न्याय, सुवर्ण-भूषण न्याय एकात्मवाद और परोक्ष कर्त्तार ईश्वर नभवत विभु व्यापक और जड़वाद ये सब सिद्धांत जो बीजक से पुष्ट किये जायं, तो बीजक की विशेषता ही क्या ठहरेगी ? जैसे अन्य सब भ्रमिक ग्रन्थ वैसे बीजक भी हो जायगा । क्योंकि अन्य वेदाधारित ग्रंथों में भी ब्रह्म-ईश सिद्धांतों को विविध अनुमान कल्पना द्वारा परिपूर्ण रूप से आरोपित किये हैं । उन ग्रन्थों में जितना ईश्वर-ब्रह्म का सफाई से वर्णन है, उतना बीजक में नहीं । सो वह ब्रह्म ईश प्रकृति सिद्धांत, विवेक युक्त पारख सिद्धांत की तुला में तोलने से नर जीवों की कल्पनारूप भ्रम मात्र है । "कसत कसौटी ना टिका, पितर भया निदान" "एक ने ब्रह्म पंथ चलाया । एक से हंस गोपालहि गाया ॥ एक से शम्भू पंथ चलाया । एक से भूत प्रेत मन लाया ॥ एक से पूजा जैनि विचारा । एक से निहुरि निमाज गुजारा ॥ कोइ काहू का हटा न माना । झूठा खसम कबीर न जाना ॥" "ई मन बडा कि जेहि मन माना" अर्थात सर्व मन कल्पित परोक्ष ईश्वर ब्रह्म और जड़ प्रकृति का मानना बड़ा है या सर्व को जानने मानने ठहराने वाला यह चेतन जीव बड़ा है ? विचार तो कीजिये ! इसलिये बीजक की सर्वोपर विशेषता पारख सिद्धांत के ही कथन में है न कि अन्य भ्रमिक सिद्धान्त के कथन में ॥ ३

वेद शास्त्र के ग्रंथ में, पारख कतहूँ नाहि ।
अन्य मतों के ग्रंथ में, खोज मिलै नहिं ताहि ॥ ४ ॥

टीका—चार वेद, षट शास्त्र, अठारह पुराण और भी इतिहास काव्य संहितादि ग्रन्थों में कहीं पारख सिद्धांत का वर्णन नहीं है ।

सर्व जडाध्यास त्यागकर पारख स्वरूप मे स्थित होने का निर्णय विचार प्रसग युक्ति युक्त ये कथन जहाँ हो वह सब लेख-वाक्य स्पष्ट सब बीजक ही है। क्योकि बीजक इन्ही सद्बोध प्राप्ति का इशारा दे रहा है॥ ५ ॥

समय-समय सब ग्रन्थ जो, क्रमशः देखि विचार।
रहस्य बोध पावै भले, अपनो काज सुधार॥ ६ ॥

टीका—कल्याणार्थी भक्त मुमुक्षु और सतजन को चाहिये कि वे समय-समय पर बीजक से लेकर पारख सिद्धात के अन्य सर्व ग्रंथो को एक-एक करके आद्योपात पढे, मनन करे, भली प्रकार विचारै कोई युक्ति किसी मे कोई युक्ति किसी मे, एव विविध प्रकार से जड़ाध्यास हनन करने के उत्तमोत्तम युक्तियाँ रहस्य और विमल दिव्य बोध जानने मे आकर तिसके धारण करने मे भी भली प्रकार सरलता से सहायता मिल जायगी। एव जिज्ञासुओ को अपना काज एकरस स्वरूप स्थिति बना लेना परम कर्तव्य है॥ ६ ॥

पारख के सब ग्रन्थ जो, पाठ पठन के योग।
जो जेहि भावै सो पढ़ै, अपनी रुचि उपयोग॥ ७ ॥

टीका—इस रीति से बीजक या पचग्रथी, निर्णयसार, तत्त्वयुक्त और अन्य पारख के न्यायनामा या अपनी जागृति, मुमुक्षुस्थिति आदि सर्व सद्ग्रथ पढने-पढाने योग्य है। सबो से पारख परिचय मिलेगा। अब रहा सबो के पढने का समर्थ न हो या अवकाश कम हो तो तिन पारख भावोक्त सर्व सद्ग्रथों मे जो अपने को अच्छा लगे सरल और स्पष्ट युक्तियो से जिसके पढने से रहनी और सिद्धात मे विशेष बल प्राप्त हो, जिसमे अपनी विशेष रुचि जगे उसी को निर्भ्रान्त बीजक रूप समझकर उसका उपयोग करे। अर्थात उसी का पठन मनन चितन करके अपना बोध-रहस्य पुष्ट करे। कल्याण रूप सामग्री

टीका—इसी से बीजक की सर्वोपर विशेपता है कि जो पारख सज्ञा बीजक मे है वह अन्य मतो के ग्रन्थो और सिद्धातो मे कही नही है। जो बात कही नही वह बीजक में होने से बीजक सर्व कल्पित ग्रथो से भिन्न यथार्थ श्रेष्ठ ग्रंथ है। तो वही पारख सिद्धांत का कथन जिस ग्रथ मे हो वह भी श्रेष्ठ ग्रथ है। यद्यपि बीजक पारख का आदि ग्रथ होने से विशेप मानना चाहिये, माना भी जाता और हमेशा बीजक माननीय[1] रहेगा, इतना होते हुये भी उसकी विशेपता की सिद्धि तो तभी होगी जब सर्वोपर उसका सिद्धात जिज्ञासुओ के जानने मे आ जाय। जानना-जनाना, समझाना, समता युक्त स्पष्ट प्रसग कहे बिना बोध नहीं हो सकता। इसलिये बीजक के अर्थ की आवश्यकता पडती है। अर्थ होने के पश्चात उसी सिद्धात अनुसार देश-देश के सन्त जिज्ञासु उपदेशक जन भाँति-भाँति युक्तियो से शका समाधान द्वारा ओर अनेको ग्रथ रचना द्वारा जनता के अन्दर उस पारख सिद्धात की विशेपता का छाप डाल देते हे। इसी से बीजक विशेपता के साथ वही भावोक्त जितने सन्तों के वचन है वे सब बीजक रूप ही है। मै कौन हूँ ? जगत क्या है ? इससे सम्बन्ध तथा निवृत्ति कैसे हो ? एव यथार्थ जड़-चेतन का निर्णय करना-कराना

१ टिप्पणी—(१) बीजक को विशेप मानकर साक्षी रूप से जहाँ तहाँ प्रमाण देते रहना। (२) यह सिद्धांत बीजक का ही हे। (३) सत्य निर्णय बीजक रूप ही है। (४) सद्गुरु कबीर साहेब आदि पारख प्रकाशी हैं। (५) हम कबीर पथी या कबीर सिद्धात अनुयायी हे। (६) जडाध्यास रहित जीवो का नित्य सत्य स्वरूप ही कबीरपद गुरुपद रूप अचल स्थिति हे। (७) शुद्ध मनुष्य के गुण लक्षण दया धर्म सहित शुद्ध आचार विचार शुद्ध व्यवहार शांति संतोप शुद्ध कण्ठी हीरादि सुवेप और दृढ़ विवेक सहित वर्तते रहना। (८) बीजक आदि कोई भी सद्ग्रन्थ पढ़ना। (९) सत्यन्यायी प्रत्यक्ष साधु गुरु के शरणागत होना। (१२) स्वरूप स्थिति दृढ करना इन दस बातो को ग्रहण करने से बीजक प्रियता पूर्ण सिद्ध हो जाती है "जो मोहि जानै ताहि मै जानौ।"

कबीर के सत्य स्वरूप ज्ञान का परिचय देकर कबीर सिद्धांत चेतन-पक्ष ही से सर्व हितैपित्व खुलाशा । १५—मुख्यतः बीजक के पारख सिद्धात की स्थिति भेद खुलाशा । ये सब बाते भवयान मे खुलाशा की गई है । यद्यपि पारख सिद्धात के पूर्व और अब के ग्रन्थो में सब निर्णय भरा है तथापि यह बात तो प्रत्यक्ष ही है कि दस शिक्षको के बनाये ग्रथों मे उनके सामने जो विशेप रुकावट पडेगा, उनको वे विशेप जोर लगा के साफ करेगे, बाकी सक्षेप मे । समय-समय जन समाज मे और-और बहम फैलने से उनके निवारणार्थ पारखी सतो के ग्रथो मे भी युक्ति तरकीब कथनों का विभेद है । यदि युक्ति विचार विभेद न हो तो अनेक ग्रन्थ रचने की आवश्यकता ही क्यों पडती ? सिद्धात एक होते हुये भी घट बुद्धि भेद होने से किसी में किसी बात का बहुत स्पष्ट निर्णय है किसी मे साधारण । फिर इसमे कहने की आवश्यकता ही नही कि क्या अन्य ग्रथो मे खुलाशा नही । सब फुलवारी लगी है तिसमे घूम-घूम कर देख लीजिये, बहु व्यजन जीमने न्याय सब बात आप ही मालूम हो जायगी "नीर छीर का करै निबेरा । कहँहि कबीर सोई जन मेरा ॥" यहाँ भवयान का प्रसग आने से भवयान के प्रसंग बताये गये है, ऐसे ही सब ग्रंथो में ग्रथ कर्त्ताओ ने आदि अन्त उनमें के प्रसगो का परिचय दिया है, जिससे कि उन ग्रंथों मे चित्त प्रवेश हो ।

बिना स्पष्ट निर्णय वचन, कबहुँ न रक्षा बोध ।
बोध रहस्य रक्षा बिना, छूटै बीजक शोध ॥ ६ ॥

टीका—ग्रथो द्वारा या सत्सग द्वारा सफाई से खुलाशा निर्णय किये बिना तीनो काल मे किसी को स्वरूप बोध और तिस बोध के रक्षक रहस्य नही प्राप्त हो सकते । यथार्थ स्वरूप बोध और दृढ विवेक वैराग्यादि रक्षक रहस्य यदि न धारण होवे तो बीजक का जो शोध है पारख सिद्धात, वह नष्ट हो जावेगा । फिर जिस उद्देश्य

प्राप्त करना परम धर्म है, वह पारखोक्त किसी भी ग्रथ के आधार से हो। 'काल जाल जाते लखे, सार शब्द कहे सोय" ॥ पचग्रथी ॥७

पाठ पठन भवयान को, ठीक जानि यहि हेत।
सरल युक्ति भाषा सरल, बोध विरागहिं लेत ॥ ८ ॥

टीका—भवयान का पढना-पढाना इसी से उचित है कि इसमे सरल-सीधी निर्विवाद भाषा और स्पष्ट युक्तियाँ है जो कि पारख बोध और वैराग्य के रहस्यो को भली प्रकार हृदय मे पुष्ट कर देती है। खास कर उसकी विशेषता यह है कि वह भक्ति भावयुक्त प्रबल वैराग्य सहित दिनो दिन पारख सिद्धात को पुष्ट करता है, किसी प्रकार उखाड़-पछाड़ विवाद किये विना ही सहर्षता से श्री कबीर सिद्धान्त बीजक रहस्य का हृदय मे छाप डाल देता है। अत जिज्ञासु जनो को हृदयगम हुआ है और होता रहेगा ॥ ८ ॥

स्पष्ट—"संतन मत सद्ग्रन्थ इशारा, गुरु की कृपा ज्ञान भयो निजमा। निज हित मनन ज्ञान यह गुरु का, धारण करै सो राजै स्वपद मा ॥" 'गुरु की दया साधु की सगति कहत सदा यहि हित को' इस प्रकार गुरु कबीर का सिद्धात ग्रन्थ कर्त्ता द्वारा वर्णन हुआ है। भवयान में इन बातों की स्पष्टता है— १—नम्रता युक्त भक्ति का विधान खुलाशा। २—मोक्ष खुलाशा। ३—विषयो मे दोष दर्शन खुलाशा। ४—मन के जाल का खुलाशा। ५—इच्छा चाहना ही मुख्य दुख रूप खुलाशा। ६—सुख मिथ्या खुलाशा। ७—जगत के छल पेंच का खुलाशा। ८—वैराग्य मुख खुलाशा। ९—परमार्थ साहस मे जोर खुलाशा। १०—स्वरूपज्ञान खुलाशा। ११—वृक्षो मे जीव का निषेध खुलाशा। १२—विलक्षणवाद सहित भौतिकवाद का खण्डन खुलाशा। १३—और भी सत रहस्य सहित सम्पूर्ण मानव समाज के शुद्ध व्यवहार सहित परमार्थ प्राप्ति का क्रमश उपाय खुलाशा। १४—गृहस्थ-विरक्त-मुमुक्षु, नर-नारि सर्व को गुरुवर

कैसे मिल सकती है ? प्रत्यक्ष ही पारख बोध सत्सग द्वारा पाये विना बीजक का कितने कितने उल्टा-पल्टा सिद्धात कल्पना कर लिये है ।

चौपाई

कोइ अवतारवाद करि टीका । कोइ एकहि आतम करि लीका ॥
कोइ तो राम नाम रट लाये । कहि साकेत लोक समझाये ॥
कोइ तो सत्तपुरुष करि अर्था । आवत जात कबीर समर्था ॥
कोउ कह बीजक का यहि हेतू । वर्णाश्रम खण्डन करि केतू ॥
कोउ भ्रमबश जडबादहि जल्पत । पुनर्जन्म औ मुक्ति को खंडत ॥
यहि विधि बीजक निजनिज मतिसे । विन निर्णय फुटवालकिगतिसे ॥
ताते निर्णय परख कसौटी । युक्ति युक्त स्पष्ट सचौटी ॥
जेहिते मिटै वासना रोगा । स्वय स्वरूप जचै नि:शोगा ॥
वहि पारख सिद्धांत है ठीको । रामरहस पूरण कहि नीको ॥
गुरु दयाल तेहि पुष्टी कीन्ही । काशी साहेब बल करि दीन्ही ॥
जिनके वचन सो रवि सम कता । जो प्राचीन पारखी संता ॥
और अनेक पारखी संता । बिदिताविदित दोऊ सम वन्ता ॥
तिन कर यही प्रतिष्ठा जानौ । वर्तमान गुरु संत मे आनौ ॥
चाहे जस स्पष्ट हो ग्रथा । विन विवेक सत्संग न जन्था ॥
ताते गुरु निर्णय सब शिर पर । श्रद्धा सहित गहत सब भ्रमहर ॥
बर्तमान गुरु सन्त से बोधा । ताते बीजक फल सोइ शोधा ॥

साखी

पारख विन परिचय नही, विन सत्सग न जान ।
दुबिधा तजि निर्भय रहे, सोई सन्त सुजान ॥
नीर क्षीर निर्णय करे, हस लक्ष सहिदान ।
दया रूप थिर पद रहे, सो पारख पहिचान" ॥

॥ बीजक फल ॥

के लिये वीजक रचा गया है, वह प्रयोजन (जीव का कल्याण मार्ग) ही छूट जायगा, तो बीजक पढने का फल ही क्या निकलेगा ? इसलिये "शब्द विना श्रुति आँधरी" "मै तोही छिन-छिन समझावा" वीजक। इस प्रमाण से सरल स्पष्ट निर्णय की आवश्यकता है ॥ ९ ॥ कहा भी है—"जा मुख निर्णय लखै विशेप। ते गुरु सम न और कोइ लेख" पचग्रथी।

विना वोध आस्तिक कहाॅ, कहाँ भक्ति वैराग।
विना वोध भटकैं सवै, कवहूॅ ठौर न लाग ॥ १० ॥

टीका—स्वरूपज्ञान के बिना कोई आस्तिक भी कैसे हो सकता है ? "अस्ति कहौ तो कोई न पतीजे, बिना अस्ति का सिद्धा" वी०। यथार्थ प्रत्यक्ष साधु गुरु चैतन्य की भक्ति और जगत से वैराग्य ये दोनों बोध के बिना ग्रहण नहीं हो सकते। प्रत्यक्ष देखो! पारख वोध रहित ससारी और भेषधारी विविध अनुमान कल्पना विषयाध्यास रूप धारा मे गोते लगा रहे है। "कबिरन भक्ति विगारिया, कङ्कर पत्थर धोय" एव वोध विवेक प्राप्ति विना तीनो काल में कोई ठौर ठेकाना नही पा सकता, निज कल्याण होने की दशा उसे नहीं प्राप्त हो सकती। 'कर्हहि कबीर नर किया न खोज। भटकि मुवा जस वन के रोझ ॥' वी० ॥ १० ॥

वीजक में वहु मत लखौ, विन पाये तेहि भेद।
निर्विवाद सत्संग विन, कैसे होय अखेद ॥ ११ ॥

टीका—वीजक मे वहुत-वहुत से मत भेद हो गये, यथार्थ पारख सिद्धात अनुसार उसका भेद—सिद्धात अर्थ भाव जाने बिना। याते सब पक्ष, विवाद छोड़कर जव तलक सत्यन्यायी सद्गुरु का सत्संग न किया जाय, आपके निर्णय पर ध्यान न जमाया जाय, तव तक केवल चारों तरफ खिचे हुये के समान गूढ शब्दो के आधार से नि:संशय वोध कैसे हो सकता है ? तथा मोह रहित निर्भ्रान्त स्थिति

जायगी। उस स्वच्छ पारख दृष्टि से यथावत जड़-चेतन को पहिचान के वह शात होकर सत्मार्ग मे विराजेगा ॥ १३ ॥

मूल से निकसत अर्थ जो, तेहिसे मूल को मोल।
बिना अर्थ कीमत नहीं, मूल कि कोई खोल ॥ १४ ॥

टीका—मूल बीजक से जो पारख सिद्धातिक अर्थ निकलता है, उस अर्थ को समझने ही से मूल बीजक की कीमत विशेपता जानने मे आती है, अर्थ समझे बिना नही। मूल की महिमा का कोई भी तब तक स्पष्ट लाभ नहीं समझ और समझा सकता जब तक उसका अर्थ भाव सिद्धात न समझे। यथा—गन्ना की कीमत रस ही द्वारा होती है किसी प्रकार रस का अनुभव न हो तो गन्ना की कीमत कौन करे ॥ १४ ॥

तस पारख सिद्धांत के, ग्रन्थों का है हाल।
बीजक से निकसे सबै, बीजक के रछपाल ॥ १५ ॥

टीका—बीजक के पीछे सर्व पारख सिद्धातिक स्पष्ट से स्पष्ट ग्रथो का विचार है। जैसे मूल बीजक से पारख सिद्धात का अर्थ निकला हुआ मूल की रक्षा पुष्टि वृद्धि करता है, इसी प्रकार बीजक के पारख सिद्धात अनुसार बने हुये, बीजक से निकले हुये सम्पूर्ण सद्ग्रथ पारख सिद्धात को स्पष्ट पुष्ट करते है, जिससे सहज ही बीजक की श्रेष्ठता सिद्ध हो जाती है। जैसे वेद व वेद के पीछे बने हुये उपनिषद् गीतादि ॥ १५ ॥

बीजक की महिमा किहे, जो बीजक का अर्थ।
पारख के सब ग्रंथ जो, सिद्धांत को करैं समर्थ ॥ १६ ॥

टीका—जो बीजक से यथार्थ अर्थ निकाला जाता है, वह अर्थ ही बीजक की महिमा बढाता है। प्रथम सिद्धात लक्ष्य लेकर ही मूल बनता है। पश्चात मूल से ही अर्थ निकलता है। अर्थ स्पष्ट से ही पारख सिद्धात का परिचय मिलता है। सिद्धात की विशेपता

इस प्रकार पक्ष तथा विवाद रहित जहाँ तक सरल सत्संग न मिलै तहाँ तक यथार्थ पारख सिद्धान्त नही जाना जा सकता ॥११॥

बीजक पढ़ि कै मुक्त हो, बीजक पढ़ि कै बन्ध।
बिना यथारथ बोध गुरु, कबहुँ न सो निरबन्ध ॥ १२ ॥

टीका—पारखी सन्त गुरु के सत्सग द्वारा यथार्थ पारख बोध लेते हुए जो कोई बीजक पढ गुन के पारख बोध आचरण पुष्ट करेगा तो वह खानि बानी जाल से मुक्त हो जायगा, एव 'बीजक पढि कै मुक्त हो'। जो पारखी सन्तो के स्पष्ट निर्णय वचन, शकाओ के समाधान, बोध, विचार से दूर भागते है, वे नाना अनुमान भूत प्रेत यत्र मत्र तत्र वेद पुरान कुरान कल्पित विद्यादि, कर्त्ता की आशा से बँधे हुए यहाँ तक कि विषय प्रपच जाल की पुष्टि भी बीजक द्वारा कितने करते है, एव 'बीजक पढि के बन्ध'। अत. सद्गुरु से स्वरूपज्ञान जानकर ठहरे विना कभी कोई बन्धन रहित नही हो सकता। एव श्रीगुरु कहते है—"गावै कथै विचारे नाहीं, अनजाने का दोहा। कहहि कबीर पारस परसे बिना, जस पाहन भीतर लोहा ॥" बीजक ॥ अत बोध निर्णय सत्सग प्रधान है ॥ १२ ॥

वही बोध फल ग्रन्थ वै, जहाँ बोध वहि होय।
ताहि बिचारै जो भले, बिमल दृष्टि लखि सोय ॥ १३ ॥

टीका—सद्गुरु सत्सग मनन से जो पारख बोधरूप फल प्राप्त होता है, वही पारख बोध का परिणाम है कि देश काल समाज पात्र देखकर समता सरलता प्रिय वचनो द्वारा निर्णय रूप ग्रन्थ वे बोधवान रचना किये और वर्तमान मे रचना करते है। "कहहि कबीर गुरु सिकली दर्पण, हरदम करहि पुकारा"। ताते उन पूर्व और अब वर्तमानिक बोधवानो द्वारा निर्णय कथित वचनो का जो अच्छी प्रकार विचार करेगा साथ ही सत्सग रत होकर निर्णय मे मन देगा, वह अज्ञान आसक्ति माडा काटकर उसकी दृष्टि स्वच्छ हो

सिद्धात के कोई भी ग्रन्थ श्रद्धा पूर्वक धारण करके पारख सिद्धात जाने जनावे। मतलव तो सवका यही है कि जीव का स्वरूप, उसका बन्धन तथा बन्धनो की निवृत्ति का हाल सव जान के दिल मे यथार्थ रहस्य पुष्ट हो जाय। वस यह फल जिससे मिले वही टकसार ॥ १८ ॥

पारख का सिद्धांत जहँ, कहे पारखी संत।
सो सवही शिर मौर हैं, बीजक लाभ लहंत ॥ १६ ॥

टीका—सद्रहस्य युत पारख सिद्धात जहाँ पर पारखी सतो ने कथन किये है, सो सब श्रेष्ठ बीजक वत मानने योग्य है। हेतु यह है कि जो बीजक पढ के पारख बोध और रहस्यरूप लाभ निकलता है, वही लाभ अन्य पारख सिद्धातिक ग्रथ भी पढ के प्राप्त हो जाता है। अत· वस्तुत. लाभ में भेद न होने से भेद नही। जेसे एक शहर मे प्रवेश हित कई तरफ से रास्ता, तैसे विविध युक्तियाँ स्वरूप ज्ञान साधक सर्व मान्य है। बल्कि सरल सीधा पथ किसे नही प्रिय होता ? ॥ १६ ॥

कोई पढ़इया अर्थ के, कोई पढ़इया मूल।
जेहिको जहाँ सुपास है, सोई करै कबूल ॥ २० ॥

टीका—कोई तो कहता है केवल मूल से मुझे कुछ नही ज्ञात होता, अत हम अर्थ पढेगे। कोई मूल से ही समझ के सादर मूल ही पढता है। जिसको जहाँ विश्राम, वोध ज्ञान प्रतीत होता है, उसको वह मजूर करता है। प्रत्यक्ष ही कोई न्यायनामा कण्ठ करता, कोई निर्णयसार, कोई वैराग्य शतक कोई जड़चेतन भेदप्रकाश, कोई मूल, कोई त्रिज्या पढता। इनमे कौनसा कनिष्ठ, कौनसा उत्तम कहा जाय ? ॥ २० ॥

तस पारख सिद्धांत के, ग्रन्थन का है ज्ञान।
पाठ किहे तिनके भले, बीजक का फल जान ॥ २१ ॥

ज्ञात होने से मूल मे प्रीति बढ़ती है। इस रीति से बीजक मूल का महत्व तिसके अर्थ द्वारा ही होता है। मूल-अर्थ, सिद्धात-जैसे एक दूसरे के पुष्टीकरण रूप एक है, उसी प्रकार पारख सिद्धात निरूपक जितने सद्ग्रथ विवेकियो द्वारा रचित है, वे सब पारख सिद्धात को पुष्ट करते हैं। क्योकि देश काल समाज अनुसार जो सिद्धात मे भ्रान्तियाँ उठती है, उनको वे निर्मूल करते रहते हैं। यदि पारख सिद्धात पर उठी हुई भ्रान्तियो को पारखी सत नष्ट न करते रहे, तो पारख सिद्धात ही लोप हो जावे। एवं "पारख के सब ग्रंथ जो, सिद्धात को करं समर्थ" ॥ १६ ॥

अर्थ श्रेष्ठ कि मूल है, केहिको कहिये काह।
एक एक को बल दिहे, दोनों एकै माह ॥ १७ ॥

टीका—अब विचारने योग्य है कि अर्थ बडा माना जाय या मूल, दोनो मे किसे बडा कहे ? थोडे ही विचार से स्पष्ट हो जाता है कि एक दूसरे के ये सब पुष्टीकरण है और दोनो एक ही स्वरूप हैं। बडे-छोटे कोई नही। मूल न हो तो अर्थ भाव कहाँ ? अर्थ भाव लक्ष्य न हो तो मूल बने ही कैसे ? इस रीति से एक सिद्धात के जितने ग्रथ है, सबका निर्णय समझ लेना चाहिये ॥ १७ ॥

यहि से कोइ न भेद है, पाठ पठन के हेत।
तिरजा निर्णयसार सब, औ निर्पक्ष समेत ॥ १८ ॥

टीका—पूर्वोक्त निर्णय से एक सिद्धात के अनेक ग्रथो मे से किसको पढना पढाना पाठ करना चाहिये, किसको नही, या कौन बड़ा है कौन छोटा ? इसका निर्णय हो गया। पूर्वोक्त मूल अर्थ न्याय से जानने में आया कि पढ़ने-पढाने पाठ करने के लिये पारख सिद्धात के सत्य न्याय ग्रन्थो में कोई भी भेद नही है, चाहे जो पढे-पढावै। मूल पढे या तिरजा अथवा निर्णयसार या निर्पक्ष सत्य ज्ञानदर्शन या तिमिर-भास्कर, न्यायनामा या भवयान आदि पारख

कबीरमत और बीजक किस दृष्टि के सहारे ग्रहण किया जा सकता है ? अर्थात गुरुदेव के बोधक शब्द त्यागने के साथ बीजक और कबीरमत सम्पूर्ण त्याग हो जावेगा। अत बोधक गुरु के निर्णय सत्य शब्दो का पढना, मनन करना, पाठ करना किसी हालत से मध्यम नही कहा जा सकता। इसी पर सद्गुरु कबीर साहेब और श्री राम-रहस्य साहेब तथा श्री पूरण साहेब आदि सर्व सन्तो का जबर्दस्त जोर है। थोडी बानगी देते है विस्तार मे ग्रन्थ बढने का भय है, यथा—"गुरु के अमृत मय वचन सुनि, शिष्य श्रवण मन देय। झाई सन्धि औ काल गुण, तुरत मिटै नहि लेय।।" "गुरु की दया साधु की सगति, निकरि आव यहि द्वार।।" पारखी गुरू नहि कुछ भेदा। और सकल जग कीन्ह निषेधा।।" फलत बीजक पंचग्रथी के अर्थ से बोध प्राप्त करे, अथवा पारख सिद्धान्तोक्त शका समाधान निर्णय से बोध प्राप्त करे, या किसी अन्य पारख बोध साधक ग्रथ मनन करके सत्सग द्वारा बोध प्राप्त करे, मतलब है स्वरूपज्ञान होना और स्वरूप बोध की एकरस स्थिति के लिये दृढ विवेक वैराग्य रहस्यो मे टिकाव होना। सो सब एक दूसरे के पुष्टीकरण है। ऐसा समझ के रहस्य-वान बोधक सद्गुरु-सत का सत्य निर्णय सदा मनन आवश्यक है। मै कौन हूँ ? जगत क्या है ? इससे मेरा सम्बन्ध कैसे है ? बन्धनों की निवृत्ति कैसे हो ? एकरस स्वरूप स्थिति मे डटा रहे वह उपाय क्या है ? इत्यादि प्रश्नो का समाधान और दृढ विवेक वैराग्य ही सत्य शब्द मनन का फल है ।। २३ ।।

पारख सिद्धान्त में मुख्य रहस्य और बोध युक्त ही
उपासना प्रधान है

चौपाई

पाठ पठन बीजक यहि हेतू। निज स्वरूप का होवै चेतू ।।१।।
ईश ब्रह्म औ देवी देवा। भूत प्रेत गण भर्म नशेवा ।।२।।

टीका—लक्ष्य सिद्धात एक होने से चाहे मूल पढे या टीका। इसी प्रकार पारख सिद्धात के सर्व ग्रन्थ पारख सिद्धात को ही पुष्ट करते है। तिन ग्रथों का भली प्रकार पाठ मनन अर्थ चितन करते रहने से वीजक का ही फल पारखवोध रहस्य स्थिति मिल जायगी। जो वीजक का ज्ञान सोई पारख सिद्धात के सर्व ग्रथो का ज्ञान कथन होने से सव एक ही फल दायक है। 'जीव सत्य ओर सव कल्पना मिथ्या है' इतने के लिये वीजक भी है पारख के अन्य सद्ग्रथ भी ॥ २१ ॥

सुनि कै गुरु सत्संग को, होय स्वरूप को ज्ञान।
उक्ति युक्ति तिनकी तहाँ, शिष्य को वोध लहान ॥ २२ ॥

टीका—वर्तमानिक पारखी रहस्यवान सद्गुरु के सत्संग को सुनकर दृष्टात-सिद्धात शब्द लक्ष्य द्वारा-स्वत: स्वरूप का ज्ञान जिज्ञासु को हो जाता है। स्वरूपज्ञान प्राप्ति के साथ गुरुदेव जिस उक्ति-युक्ति शब्द सैन से समझाते है, वह उक्ति युक्ति भी शिष्य के हृदय मे प्रवेश कर ही जाती है, तभी तो शिष्य को वोध प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

निर्णय तिनके ग्रन्थ को, कैसे होवै त्याग।
जिनका वोध हृदय वसा, वीजक का अनुराग ॥ २३ ॥

टीका—भला जिन वर्तमान गुरु के शब्दो से पारख वोध प्राप्त हो गया, उन गुरुदेव का निर्णय किया हुआ प्रकरण प्रसंग प्रवन्ध या साखी शब्द अथवा सद्ग्रथ को किस प्रकार त्याग किया जा सकता है ? या कनिष्ठ भी किस हिसाब से ठहराया जा सकता है ? ध्यान देने योग्य वात है कि जिनका बोध ज्ञान शिक्षा शब्द हृदय मे टिकने से ही वीजक ओर वीजक के पारख सिद्धात मे अथवा कवीरपथ मे सत्यन्याय के मार्ग मे प्रेम हुआ, तो उन बोधक सद्गुरु के निर्णयो का कैसे त्याग किया जा सकेगा ? यदि त्यागकर दिया जाय तव तो

जाता है। यही बीजक का सिद्धात जहाँ पर जिन ग्रन्थो मे निर्णय किया गया हो, वह दूसरे शब्दों में बीजक ही स्पष्ट रूप से दोहराया गया है। जैसे जिसे गन्ना नही चूस मिलता है, वह पेर के रस पीता या गुड शक्कर नाना मिठाई ग्रहण करता है, मीठा की प्राप्ति लक्ष्य पूर्ण करता है ॥ ४ ॥

जड़ से भिन्न न व्यापक सोई। ज्ञान स्वरूप अनन्त रहोई ॥ ५ ॥
सुख वश जीव करम बहु करते। विवश वासना देहैं धरते ॥ ६ ॥

टीका—पच विषय सहित पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये जड़ तत्व अचेत इन्द्रिय गोचर हैं। इनसे पृथक चेतन का स्वरूप केवल ज्ञान मात्र है। वह चेतन स्वरूप पिण्ड-ब्रह्माण्ड मे सर्वत्र ठोसरूप से व्यापक नही है। जीव सर्वत्र हो तो देह मुर्दा क्यो हो जाती है ? तथा सर्वत्र जड़ तत्वो मे ज्ञान होना चाहिये, बध-मोक्ष भी एक मे भिन्न भिन्न कैसे बनेगा ? अत पारख व्यापक व्याप्य नही है। वह व्यापक व्याप्य का साक्षी पारखी सबसे न्यारा अपरोक्ष है। प्रत्येक देह के सत्ताधारी ज्ञाते चेतन जीव पृथक-पृथक वे अपरोक्ष रूप जातीय भाव मे एक सदृश अविनाशी ज्ञान विवेक युक्त देहोपाधि सहित प्रत्यक्ष अनुभव हो रहे है ॥ ५ ॥ सुखाध्यास पुरौती के ही लिये वे शुभाशुभ या विषयासक्ति युक्त नाना पुरुषार्थ कर रहे है। अपने-अपने कर्म वासना के संस्कार द्वारा चार खानियो मे वारम्बार देहो को भी वे धारण करते रहते है, सो भी प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है ॥ ६ ॥

बोध रहस्य वैराग्य सरूपा। निज स्वरूप रहि मोक्ष निरूपा ॥ ७ ॥
भर्मिक जीव जो भर्म बढ़ावा। विविधि भाँति से काटि नशावा ॥ ८ ॥

टीका—पारख और रक्षक रहस्य पच विषयो से दृढ वैराग्य का स्वरूप तथा जिस प्रकार अपना स्वरूप निर्विषय स्थिर रहकर मुक्त रहे ये सब बाते जहाँ निरूपित की गई है और षट दर्शन आदि भर्मिक अनुमानिक तथा भौतिक पक्षी जो जो भ्रान्ति जीव के ऊपर

टीका—बीजक को पढने-पढाने, पाठ करने-कराने का यह प्रयोजन है कि उससे अपने यथार्थ चेतन स्वरूप का ज्ञान होता है ॥१॥ निज शुद्ध चेतन अजर-अमर के ऊपर जो ईश-ब्रह्म नाना देवी-देवता थाप लिये गये है, नाना भूत प्रेत पिशाच महादेव के गण जो माने गये है वो सब भ्रान्तियाँ नष्ट हो जाती है । 'कहहि कबीर पुकारि के, वै पथे मति भूल । जेहि राखेउ अनुमान कै, सो थूल नही अस्थूल' ॥ प्रत्यक्ष राजसी, तामसी, सातसी त्रिगुणमयी सृष्टि चार खानियो की देहो मे रहे हुये देहो के द्रष्टे जड़ देहो से पृथक अविनाशी चेतन राम या महादेव के अलावा और दूसरा कोई नही अनुभव होता । 'हृदया बसै तेहि राम न जाना' "हसा सरवर शरीर मे हो रमैया राम" ॥ २ ॥

जड़ से भिन्न जीव परधाना । बन्ध मोक्ष का होवै ज्ञाना ॥ ३ ॥
सत्य अखण्ड जीव दर्शावा । अनादि स्वतः जहँ तेहिको गावा ॥ ४ ॥

टीका—'जो खोजो सो उहवाँ नाही । सो तो आहि अमर पद माही' ॥ "भँवर बिलम्बे बाग मे, बहु फूलन की बास । ऐसे जीव बिलम्बे विषय मे, अन्तहु चले निराश" ॥ बीजक ॥ एव विषयी अर्थात जड़ चेतन दोनों पृथक-पृथक है । इसीके लिये सद्गुरु कबीर साहेब का प्रधान लक्ष्य है । बन्धन का स्वरूप विषयासक्ति है । तिससे वृत्ति घुमाकर अपनी तरफ टिकना ये मोक्ष का स्वरूप है । इसे ठीक-ठीक बीजक द्वारे सतजन निर्णय करते है ॥ ३ ॥ बीजक मे यह दर्शाया गया कि जीव सत्य है "कहहु हो अम्मर कासो लागा ।' 'नग ते उत्तम पारखी, 'कौन रग है जीवका, ताका करहु विवेक ।' 'जागृत रूपी जीव है' ऐसो शब्द बतावै जीव को' 'शब्द बड़ा की जीव' 'काल न खाय कल्प नहि व्यापै देह जरा नहि छीजै" इन प्रमाणो से कारण कार्य अश अशी से रहित चेतन जीव स्वत स्वतत्र अनादि अखण्ड है । इन्ही सब बातो के बोधार्थ बीजक पढ़ा-पढाया

सिद्धात का निर्णय कर गये है ॥ ११ ॥ वे सब ग्रथ कर्त्ता सत बीजक से पृथक सिद्धात नही कथन किये । बीजक का जो पारख सिद्धांत था उसीका सहज सरल बोध सबको है, इसलिये स्पष्ट रूप से देश समय समाज अनुसार ग्रथ रचे । उन सब सतो ने कही तो अपना स्वय सब बात कह के बीजक का थोड़ा-थोड़ा प्रमाण दे दिये । जैसे श्री रामरहस्य साहेब बीच मे सारशब्द टकसार कह के प्रसंगान्त में बीजक के वचन धर दिये है और किन्ही ग्रथो मे सर्वत्र प्रमाण बीजक का न देकर केवल इतना ही कह दिये कि जो बीजक की स्थिति है वह सब मैने इसमे वर्णन किया है । जैसे श्री पूरण साहेब निर्णयसार के अंत मे कहते है—"जो बीजक की स्थिति रहाई। सो शिष्य सकलो तोहि बताई ॥" यह निर्णय कबीर कृपाला । कहि निरुवारो हंसन जाला ॥" अथवा श्री काशी साहेब कहते है—"कायावीर तव कबीर कहावै, बीजक का यहि कहना जी ॥' १२-१३

संत पारखिन के जो ग्रन्था । बीजक सम ते पारख पंथा ॥ १४ ॥
तिन सबकी यह मनसा पाई । और बात मन में नहिं लाई ॥ १५ ॥

टीका—सत्यन्यायी पारखी सत जो ग्रथ रचना किये वे सब पारखपद दर्शाने मे हेतु होने से बीजक समान है। बल्कि पारख स्थिति को खुलाशा करने वाले बीजक के अर्थ-सिद्धात रूप ही जानिये ॥ १४ ॥ पूर्व और अब सर्व रहस्यवान पारखी सन्तो की यही मनसा भी सर्वत्र देखी पायी जाती है । अत अन्य बात मन मे जिज्ञासुजन न लाकर वे रुचि पूर्वक पारख बोधप्रद सत्यज्ञान के ग्रथ पढते है, पढना भी चाहिये ॥ १५ ॥

जीव हेतु निर्णय कहैं, सदा पारखी संत ।
तिनकी सम्मति समझि कै, होय जीव दुख अंत ॥ २ ॥

टीका—जीव के नाना सदेह आसक्तियो को नष्ट करके उद्धार के लिये सदैव यथार्थ निर्णय वचन सत्यन्यायी पारखी सत कहते

फैलती है, उन भ्रातियो को नाना युक्ति से काटि-छाँटि के चूर-चूर कर दिये, ऐसी-ऐसी युक्तियाँ जहाँ वर्णन है ॥ ७ ॥ ८ ॥

भोगन में बहु दोष कहि, धर्म अहिंसा ज्ञान ।
सब बन्धन को छेदि कै, पारख आपु रहान ॥ १ ॥

टीका—इन्द्रियो के विषय भोग नश्वर तृष्णा दुर्गुण उपाधि रूप है, भोगो के मनन से राग, राग से सुख भ्रांति होकर बुद्धि स्ववश रहित हो जाती है । विषय विलास मे नाना दोष-दुख जहाँ कथन किया गया है, एव धर्मो मे सबसे बढकर अहिंसा धर्म जानना चाहिये । छोटे-बडे कोई भी देहधारी जीव को शक्ति भर कष्ट न पहुँचाना चाहिये । ये अहिंसा व्रत है । मोटी माया—वनिता सुत वित भवन परिवार सम्बन्धी मोह माया संग्रह और आसक्ति । झीनी माया—ईश दैव ब्रह्मादि वासना ऋद्धि सिद्धि हर्ष शोक मान बडाई ये सब झीनी माया । इन बन्धनो को स्वरूप बल से छेदन करके स्ववश स्वस्थ पारख रूप आप विराजना चाहिये ॥ १ ॥

संत पारखी पारख बोधा । जिन ग्रंथन में बहु विधि शोधा ॥ ९ ॥
जिन जिन को पढ़ि दुख से छूटै । ते सब पारख मंत्र अटूटै ॥१०॥

टीका—उपर्युक्त विधान से पारखी सत्यन्यायी संत पारख बोध की पुष्टि हित भाँति-भाँति से शोधन करके जिन ग्रथो की रचना किये है ॥ ९ ॥ जिन सद्ग्रथो को पढकर रहस्य युक्त सर्व दुख द्वन्द्वो से जीव छूट जावे, वे सब ही सद्ग्रथो के वचन पारख दर्शक मंत्र है । ऐसा अटूट अखण्ड भाव से नि सदेह जानके तिन्हे मननाकार वृत्ति दृढ करनी चाहिये ॥१०॥

जो सब संत पारखी होइगे । विविधि भाँति के निर्णय कहिगे ॥११॥
बीजक से कुछ भिन्न न भाषा । बीजक पारख कीन्ह खुलाशा ॥१२॥
कहुँ कहुँ बीजक कहन बताये । कहुँ कहुँ स्थिति तेहि दर्शाये ॥१३॥

टीका—जो पूर्व मे पारखी सत हो गये, वे अनेक प्रकार पारख

पारखी संत का यथार्थ निर्णय ग्रहणकर सदाचरण युक्त नि.सदेह स्थित होना चाहिए, वही "सो फहम है मेरी" गुरु वाक्य है ॥१७॥

जेहि कारण छूटत सतपंथा। तेहि मेटन हित सब सद्ग्रंथा ॥१८॥
जब सिद्धांत में संशय होई। बीजक प्रेम जाय तब खोई ॥१९॥

टीका—जिन-जिन कारणो से अर्थात परोक्ष अनुमान कल्पना प्रत्यक्ष विपरीतभास नाना कल्पित वानी और विषय जालो के कारण से गुरु-पारखरूप सतमार्ग से जीव डामाडोल हो जाता है। निज स्वरूप का वोध जिस वजह से नही प्राप्त कर पाता या साधारण बोध प्राप्त करने पर भी बाहर के हलचलो से सशय उत्पन्न होने लगता है, उन्ही भ्रम जालो को परखा के मिटाने अर्थ सर्व सद्ग्रन्थ सत्यन्यायी सत कहे और कहते है ॥ १८ ॥ क्योकि जब पारख सिद्धात मे ही सदेह हो जायगा, तो पारख हेतु बीजक का प्रेम सहज ही नष्ट हो जायगा। इस हेतु जिन सतो ने नाना सदेहो के छेदन अर्थ सद्ग्रन्थों की रचना किए और जो उनको पढते लिखते है, उन सबको वीजक के प्रेमी समझिए ॥ १९ ॥

यहिते सो करतब्य सदाही। जेहि विधि संशय नहिं समुहाही ॥२०॥
अविषय हृदय भाव उपजावै। कुमग कुसंग न मनमें आवै ॥२१॥

टीका—पूर्वोक्त कथन से सदा यही परम कर्तव्य है कि जिस प्रकार स्वरूप बोध ठहराव स्थिति मे सदेह भ्रम शका सामने न आवे, जीव नि·सशय पारखबोध मे विराजे ॥ २० ॥ सदा हृदय मे पंच विषयो के विचार आसक्ति अध्यास रहित रहने के लिए विवेक भाव उत्पन्न हुआ करे। चोरी मैथुन मिथ्या दम्भ छल झूठ कामना तृष्णा और भ्रमिकजन मोहक प्रमादी आदि के कुसग का लोभ खिचाव आश्रय मन मे व्यापने न पावे ॥ २१ ॥

प्रकृति पार जीवहिं दरशावै। काटि भरम को दूरि बहावै ॥२२॥
ऐसा निर्णय लखिये जहवाँ। बीजक से कुछ भिन्न न तहवाँ ॥२३॥

रहते है। उनकी सम्मति शिक्षा सलाह उपदेशरूप वार्ता या सद्ग्रंथ के भाव को जो ग्रहण करेंगे, उन जिज्ञासु जीवो के सर्व दुख द्वन्द्व समाप्त हो जायँगे। जन्म-मरण रहित होकर वे सदा पारखरूप स्थिर-पद को प्राप्त कर लेवेंगे। "भूल मिटै गुरु मिलै पारखी" ॥ २ ॥

चौपाई

पचग्रंथी तिरजा मे देखौ। ये सब निर्णय तहवाँ लेखौ ॥१६॥
संत पारखिन को जो ज्ञाना। बीजक से कुछ भिन्न न जाना ॥१७॥

टीका—इस प्रबन्ध मे जो शका हो तो पूर्व ग्रन्थ कर्त्ताओ के ग्रन्थो को उठाकर देखो। बीजक, पंचग्रन्थी, निर्पक्षादि में यही बात की झडी लगाई गई है ॥ १६ ॥ कि कबीर साहेब रूप रहस्यवान पारखी सत है। तिनका जो ज्ञान उपदेश है वो सब बीजक से पृथक नही। "सुनिये सबकी निबेरिये अपनी, सेंदुर का सिधौरा झपनी की झपनी ॥ सा० २४७ ॥ इसकी टीका में श्री पूरण साहेब लिखे है—"सब पारखी सज्जन की बानी लक्ष्य लगाय के सुनना, विचार मे ऐसे लक्ष्य लगाना कि लक्ष्य विचार मे पैवस्त हो जाय औ दूसरा स्फुरण कछु न उठे··· ।"

चौपाई

"देखौ शब्द प्रकाश विचारी। जाते सकल होय उजियारी ॥
गुरू एक जो निर्णय करई। झगरा कबहुँ परै न परई ॥
सार शब्द निर्णय को नामा। जाते होय जीव को कामा ॥
जो कोइ निर्णय आश्रित भयऊ। सेवा करि निज कारज कियऊ ॥
कलह कल्पना सब जग भर्मा। निर्मल चाल परख मय पर्मा" पंच० ॥

"ऐसो शब्द बतावै जीव को··· ।" इन विचारो से स्वरूप बोध ही प्रधान होने से स्वरूपबोध लक्षक सम्पूर्ण सारशब्द, निर्णय शब्द, टकसार या सत गुरु का वचन समझ के किसी भी सत्यन्यायी

साहेब है। ये सब बाते बोध के पूर्व सुनने-मानने मे जिज्ञासुजन को आया करती है ॥ २५ ॥

निन्दक जानि न श्रद्धा होती। अनुमान भरम वश समता सोती ॥
दीन स्वरूप ज्ञान जब संता। प्रत्यक्ष पारखी भर्म दहन्ता ॥

टीका—पहिले निन्दक समझने से कबीर साहेब मे प्रेम नही होता था। हाँ! कभी अनुमान मान के ऐसा होता था कि कबीर साहेब नामी या सिद्ध हो गये। धार्मिक प्रतापी मान के अथवा किसी प्रकार कुछ अच्छे थे, एवं कुछ समता लेकर फिर अज्ञान निद्रा मे ही सोता रहा ॥ २६ ॥ किन्तु जब कोई यथार्थ पारखी सन्त मिले और आप जड-चेतन के गुण लक्षण बन्ध-मोक्ष का सब हाल बताते हुए यथार्थ पारख स्वरूप ही सत्य है, ऐसा श्रेष्ठ ज्ञान जब दिये तब यथार्थ सूझने लगा। इस प्रकार प्रत्यक्ष नर तन धारी पारख विहारी पारखी सन्त सद्गुरुदेव नाना दृष्टान्त लक्ष्य शब्द सैन द्वारा सम्पूर्ण भ्रान्ति-सन्देहो को परखा-परखा के भस्म कर दिये ॥ २७ ॥

तब श्रद्धा जिज्ञासुन केरी। दायक बोध में अतिशय हेरी ॥
तब वे कह्यो कबीर प्रतापा। मारग के अगुवा को आपा ॥

टीका—तब जिज्ञासु जनो के श्रद्धा विश्वास उन यथार्थ वक्ता बोधदाता सद्गुरुदेव मे सर्वोपर हो गई। उनसे बढकर कोई हितैषी नही। "सोई गुरु रूप निज पारख लखायो है" यह बात जिज्ञासु के हृदय मे पक्की हो गई ॥ २८ ॥ वे सत्यन्यायी सन्त पुन बताये कि इस सर्वोपर अकाट्य पारख सिद्धात के आदि प्रकाशक सद्गुरु कबीर साहेब हो गये है। आप निन्दकी नही, यथार्थ निर्णय कर्त्ता है। 'साँचा शब्द कबीर का, प्रगट कहो जग माँहि। जैसे को तैसा कहै, सो तो निन्दा नाँहि ॥" एव गुरु कबीर जड़ पिंड-ब्रह्माण्ड से चेतन को न्यारा दरशाने वाले हुये है। ज्ञानी, विज्ञानी, कवि, कोविद,

टीका—पूर्वोक्त वातो की जहाँ परिपुष्टि की गई हो और जड़ तत्त्व पिण्ड-ब्रह्माण्ड से विलग करके ज्ञाता ध्याता स्वत जनैया चेतन जीव को दरशाया गया हो, इसमे जो-जो सदेह तर्क उत्पन्न हो, उनको सत्य निर्णयरूप कुठार से काट के वहा दिया गया हो ॥ २२ ॥ ऐसी-ऐसी निर्णय वार्ता जहाँ पर लिखी कही सुनी या समझी गई हो, या अभी कही जाती हों, वे सब वीजक से किंचित भिन्न नहीं। "कहहि कवीर सोई जन मेरा, जो घर की रारि निवेरे" ॥ २३ ॥

सुनत सैन संशय भगे, बोध सुमग ठहराय।
निःसंशय निजपद मिले, सत्य सैन सोइ आय ॥ ३ ॥

टीका—जिन वचनो को कहने-सुनने से जगत कर्त्तादि उत्पत्ति-प्रलयादि का सर्व सदेह भग जावे, नष्ट हो जावे। अपने शुद्ध चैतन्य के दृढ वोध द्वारा जीव गुरुपद साधु या मुमुक्षु दशा के शुद्ध मार्ग में जीवन भर निश्चल होकर ठहरा रहे, सर्व सन्देहरूप घड़ा चूर्ण करके अपना सद्स्वरूप स्थिर विराजे, गुरुपद मे मिले, ठहरे, वही सत्य सैन है, उसीको सार शब्द कहते है, जा शब्द से जीव पारखपद को प्राप्त होय सोई सत्य सैन सज्ञा है। हे मेरे प्रिय! अव नि सदेह होकर सत्य निर्णय के सम्पूर्ण शब्दो का मनन-चिंतन करते हुए कृतार्थ होकर जीवन्मुक्त के रहस्यो मे विचरो। "हसा हो चित चेतु सकेरा ॥" वीजक ॥

कहुँ कहुँ सुने पूर्व में ऐसा। निंदक पंथ कवीर अनैसा ॥२४॥
कहूँ सिद्ध परतापी सुनि कै। सत्यलोक में कर्त्ता गुनि कै ॥२५॥

टीका—वोध दाता सद्गुरु मिलने के पूर्व अज्ञान हालत मे कही-कही सुना गया कि कवीरपथी निदकी होने से ठीक नहीं ॥२४॥ कही किसी ने कहा—कवीरदास जी परतापी सत थे। किसी से सुना गया कि सत्यलोक मे कर्त्ता सतपुरुप का अश आप कवीर

यह बात जानने मे आई । नर तनधारी मोटी-झीनी अविद्या ग्रथि छेदक, यथार्थ वक्ता, पारख रूप, दृढ विवेक वैराग्यवान एव अनुपम वोध शोध की प्रबल शक्ति आप मे रही, ऐसा समझ के आप गुरु श्री कबीर साहेब और आपके द्वारा वीजक कथित पारख सिद्धान्त मे

के पुधार-विचार, एकरस अवल पारख स्थिति हेतु सद्गुरुकबीर साहेव द्वारा सम्यक सिद्धान वर्णन हुआ । ये सव बाते उनके ग्रथ बीजक और रहस्यवान पारखी सन्त तथा मुख्य बोधक सद्गुरु की पारखदृष्टि द्वारा स्वविवेक से दृढ निश्चय हो जाता है । जब आप वोधक सद्गुरु की दया दृष्टि से अपने स्वरूप के दृढ विवेक और वैराग्य मे आरूढ होते ही अधम पामर ससारी जीव भी आप गुरुपद कवीर रूप समान स्थिति प्राप्ति कर लेते है, तो रहस्यवान सर्व पारखी सन्तो की तो जडाध्यास रहित निराधार समान स्थिति नि सदेह है ही । अत. आप वोधक सद्गुरु के हितैपी प्रवन्धो की धन्यता कहाँ तक वर्णन करूँ ? "धन्य वाणी निर्पक्ष वक्ता, कसर खोट निकारि के । पारख दृष्टि दाता दुर्लभ, गहिये चरण दृढ जाय के ।।" (तत्त्व यु०) और भी—"सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे । अरथ अमित अति आखर थोरे ।। ज्यो मुख मुकुर मुकुर निज पानी । गहि न जाय अस अद्भुत बाणी ।।" रा० ।। इस दृष्टात अनुसार आप गुरुदेव का निर्णय प्रबन्ध बोध सिद्धान निष्पक्ष विचारवानो को तो सुगम है । पक्षपाती के लिये दुर्गम है । सर्व हितैषी होने से कोमल और सुन्दर है । कुतर्की को कठोर है । उसमे अक्षर थोडे है, अर्थ भाव अविनाशी स्थिति रहस्य की ओर अत्यन्त विशेप है । जैसे मुख दर्पण मे देख पड़ता है और दर्पण अपने हाथ मे है । पर वह प्रतिबिम्ब पकड मे नही आता । इस प्रकार अदभुत विशेषण युक्त वाणी आपकी है । इस दृष्टान्त से भी विशेष अङ्ग यह कि आप पारखी सद्गुरु के सत्संग सद्ग्रन्थ से आपके सद्सिद्धात को जिज्ञासु जन भली प्रकार ग्रहण करके मुक्ति स्थिति बना लेते है । अन्त मे यही स्मरण होता है—

"गुरुर्देवो गुरुधर्मौ गुरुर्निष्ठा पर तपः ।
गुरु पर नर नास्ति-नास्ति तत्त्व गुरो परम्" ।।

छन्द—जेहि सद्गुरू पद वन्दना सेवा व भक्ती के किये ।
कुछ शेप नहिं करतव्य रहि गुरु सैन पालन के किये ।।
गुरुपद सुलक्षण गहि सदा यह जीव गुरुपद सम रहे ।
सादर नमो गुरु सन्त सम पारख कबीर महान हे ।।

अवतारो से श्रेष्ठ-सबसे परम पुनीत पारख सिद्धात के मूल हैं। इस प्रकार चैतन्य मार्ग-हंस रहस्य प्रकाशक आगे चलने वाले, आप सद्गुरु कबीर साहेब ही है। श्री कबीर साहेब का प्रताप यश बड़ाई पहिले आप सद्गुरुदेव समझाये, तब पश्चात पारख प्रकाशी कबीर साहेब और बीजक की विशेषता जिज्ञासु के हृदय मे पक्की भई ॥२६॥

भई यथारथ दृष्टि जब, जान्यो तबहि कबीर।
समुझि अनूपम शक्ति तब, बाढ्यो प्रेम गंभीर ॥ ४ ॥

टीका—पूर्व प्रकार बोधक पारखी गुरुदेव के सुझाने से जब यथार्थ-निर्णयदृष्टि[1] प्राप्त हुई तब सद्गुरु श्री कबीर साहेब कौन थे,

१ टिप्पणी—गुण ग्राह्य के लक्ष्य से देखते है तो वेद, शास्त्र, स्मृति, रामायण, गीता आदि के साधन पक्ष धर्म अङ्गादि जैसे रामायण के सन्त लक्षण, सेवक, लक्षण, भावभक्ति, गीता की दैवी सम्पत्ति, मनुस्मृति के धर्म लक्षण आदि और भी पुनर्जन्म कर्मफल साधन सयम अहिसा धर्मादि एव और भी वेदात के विवेक वैराग्य शम दमादि षट सम्पत्ति मुमुक्षुता ये चार साधन एवं समता क्षमादि सर्व हितैषी बाते यथार्थ होते हुए भी सबो के उत्तर पक्ष अन्तिम मे सर्व चेतन असंग व्यापक या एक सर्वातमा अद्वैत भाव, स्वर्गादि अदृश्यलोक मानकर या कभी मुक्त न हो सकने वाला जीव का स्वभाव से प्रकृति बन्ध मानकर या अंश-अंशी भाव अथवा जो कुछ कराता है सो ईश्वर ही, एवं पराधीन भाव मानकर जड़ तत्त्वो के भास अध्यास अनुमान कल्पना अहंता ममता वश फिर दुराशा मे सान दिये। यथार्थ बोध रहस्य युक्त सर्वथा पृथक चेतन स्वरूप को निराला करना तो दूर रहा, वे सब ऋषि मुनि ज्ञानी विज्ञानी नाना भास मे भ्रांति वश विमुग्ध होकर विश्वरूप ही हो रहे। अत ईश्वरवाद ब्रह्मवाद विकासवाद आदि मे जन्म मृत्यु वासनाओ का अभाव विनाश नही होता। "जो पै बीज रूप भगवान। तो पडित का पूछौ आन॥" इसलिए उन्ही मे से शोध-बोध करके सम्पूर्ण विकारी रहस्य, भ्रम सिद्धात को यथार्थ विवेक द्वारे खण्डन करते हुए अपनी विलक्षण बुद्धि से जड चेतन के यथार्थ गुण लक्षण, उभय सम्बन्ध वासना वश पुनर्जन्म जगत अनादि, वासनाओ को त्यागकर सदैव मुक्ति स्थिति, पावन हस रहस्य, नानुप धर्म, सर्व श्रेणियो

विषय, नाना मानन्दी, आसक्ति सर्व जड़ स्थूल और सूक्ष्माध्यास को दुखरूप वताकर जड के जेल से आप छुडा दिये हो। अब तो मै सदा तृप्त सन्तुष्ट हूँ। चेतनस्वरूप चल-विचल रहित सदा स्वरूप भाव से स्थित हूँ। अब राग-द्वेष नाना उल्झन नाना कामना विषय भोगो की इच्छा मान बडाई तृष्णा, क्रोध, स्वर्गादि की आशा विश्वविवश करने की कामना एव कोई भी कामना रूप घाटा मुझ चैतन्य के सन्मुख नही आ सकती। अज्ञान दशा मे जो रात-दिन सुख मान-मान के कमी ही कमी की प्रतीत होती रही, वह आपकी दया से अब सुख कमी की भूँख नही वल्कि सुख तो है ही नही, मात्र भूलकृत सुख-दुख स्वप्न भासवत मिथ्या है। तिसका जनैया शुद्ध स्थिर सत्य स्वत· निराधार है। दृढ विवेक वैराग्य एकरस सदा नैराश्यता युक्त प्रारब्धान्त कर देने से अन्तिम तन-मन उपाधि रहित शुद्ध स्वरूप स्थिर, तहाँ मनोमय भास रूप घाटा का किंचित लेश ही नही ॥२॥

नमो नमो पुनि पुनि नमो, वन्ध विनाशनहार।
पारख शुद्ध प्रकाश प्रभु, मेरो कियो उबार॥ ३ ॥

टीका—नमस्कार है, नमस्कार है, बारम्बार शिर झुकाकर हाथ जोड़ साष्टाग दण्डवत-बन्दगी भाव है। आप ही तो सर्व मनोभव चचलता रूप बन्धन को नष्ट करने वाले है। आप सर्व इन्द्रिय गोचर भास तम से रहित शुद्ध पारख चैतन्य स्वरूप है। हृदय मे बोध प्रकाश स्थिर करने मे आप समर्थ है। गुरुदेव! आप ही मुझ दीन जीव का तन-मन, अहंकार-अधकार मे विकल हुये देखकर निस्तार कर लिये हो। सद्चैतन्य का बोधरूप प्रकाश कर दिये हो। धन्य! ॥ ३ ॥

सदाचारी पारखी सन्त और गुरुदेव की विशेषता-इष्ट ध्यान

शुभ संतन को विनय सुनाऊँ। सेवा भाँति भाँति की लाऊँ॥
सतन के लक्षण गहि सारे। मोह निशा सब दूरि हमारे॥

अतिशय गम्भीर प्रेम प्रतीति श्रद्धा बढ गई ॥ ४ ॥ फलत प्रत्यक्ष सदेशक सद्गुरु बोधदाता ही कबीर साहेब रूप है तिनकी यथाशक्ति उपासना सेवा-आज्ञापालन और तिनका निर्णय सर्वदा जिज्ञासु को कबीर साहेब के वचन वत ही परम मत्र रूप अभेद मान्य होता है और होना भी चाहिये। बीजक के समान पारख सिद्धान्त के अन्य सद्ग्रंथो का भी पाठ पठन करना चाहिये या नहीं ? इस सदेह के निवारणार्थ यह प्रसंग सयुक्तिक प्रमाण पूर्वक कहा गया है। इससे बोध रहस्य स्थिति ग्रहण करने के लिये गुण ग्राही होना परम आवश्यक है—"निर्णय सो सबके हितकारी। जेहि परसे जिव होय सुखारी" ॥ पं० ॥

विनय-साखी

विविधि यत्न गुरु साधु से, दुख छूटन के हेत।
मिली सहज ही जीव को, को अस दया निकेत ॥ १ ॥

टीका—शील, सत्य, विवेक वैराग्य को धारण किये हुये सद्गुरु और तीन्ही के रूप सन्तजनों के सत्सग द्वारा बहुत-बहुत सरल, विमल, उत्तमोत्तम अमित यतन उपाय युक्तियाँ सुनने-सीखने मे आईं। जो अकाट्य युक्तियाँ जीव के नाना परोक्ष—अदृश्य भ्रम, सदेह जड़ासक्ति कामादिक दुराचरण जन्म-मरणादि रूप सर्व दुख तृण को तोड़ने मे अनन्त सामर्थ वाली हैं। वे सब यत्न एवं युक्तियाँ बिना परिश्रम इस दीन जीव को प्राप्ति हो गई। भला ! बोधक सद्गुरु और तिन समान सन्तो के सदृश कौन ऐसा कृपा का समूह होगा ? ॥ १ ॥

अपने आप लखाय कै, जड़ से दियो छुड़ाय।
तृप्त सदा सो एकरस, घाटा नहिं समुहाय ॥ २ ॥

टीका—अपने आप शुद्ध चेतन अजर अमर अविनाशी अखण्ड है, ऐसा निर्णय करके मेरी बुद्धि मे अटल निश्चय कराय के तत्त्व

अर्चा भी तो कुछ न बन सका, फिर भी आप दया स्वभाव से इस विशाल नामक लघु दास को निःस्वार्थ दानवीर होकर ऐसा अक्षय दान दिये कि जिसके पटतर मे सारी उपमा ही निरर्थक है। कुछ उपमा कहते ही नही बनता। "महिमा अमित मोरि मति थोरी। रबि सन्मुख खद्योत अजोरी" ॥ रा० ॥ धन्य-धन्य स्मरण करते ही बनता है ॥ ४ ॥

भजन

गुरु गुरु गुरु गुरु जीव अधार ॥ टेक ॥

जीव अधारे, संकट टारे, मोह निवारे, जीव अधार ॥ १ ॥
शुभ गुण पाये. दुर्गुण ढाये, शांत समाये, जीव अधार ॥ २ ॥
जानि यथारथ, तजि मन स्वारथ, गहि परमारथ जीव अधार ॥ ३ ॥
सफल जनम ये, नमो चरन मे, मुक्ति करन मे, जीव अधार ॥ ४ ॥
गलित मदन मद, रमत अवनि सद्, परख परमपद जीव अधार ॥ ५ ॥
साधु गुणो युत, प्रेम नमत नित, शुद्ध करौचित, जीव अधार ॥ ६ ॥

जो रक्षति तेहिंको बनै, काम लेति बनि जाय।
तब तौ जगत अखोज ह्वै, मुक्त आप रहि जाय ॥ ५ ॥

टीका—जो आप सद्गुरु अक्षय अविनाशी स्वय पारख बोधरूप सम्पत्ति प्रदान कर दिये है, उस बोधरूप धन को यदि हम रक्षा कर सके और उसको अपने कार्य में ला सकें अर्थात स्वबोध विचार तुल्य रहनी धारणा बनाकर यदि हम स्वरूप स्थित रहे, तो तिसका फल महान सर्व शिरे मिल जावे, वह यह कि जगत मनोमय कृत जन्म-

रहिएगा, यह अत्यन्त नम्रता और अपने क्रिया की निरभिपानता कृतज्ञता सूचक भाव है। ऐसे ही भाव गुरु प्रति शिष्य का होना चाहिये। "लाभ अचल पद मिला तुमहि जब समता कौन करीजे ॥" "यहि सदेश सरिस जग माही। करि विचार देखा कछू नाही ॥" [रामा०]

जो कुछ योग्य यथारथ ठीको। सो सब सत मता है नीको ॥
जो कुछ विषम विरोध उपाधू। सब सुधारि लेईहि गुरु साधू ॥
गुरु की दया स्वत. बल दृष्टी। सब विकार दलि पारख पुष्टी ॥
गुरु कबीर के गुण औ लक्षण। परखरूप कोउ जान विचक्षण ॥
उहै परख हित सन्तन बैना। उहै परख हित बीजक सैना ॥
कोउ बीजक कोउ अपर सुग्रंथा। कोउ सत्संग परख के पथा ॥
ग्राम्य एक पथ ग्रन्थ जो नाना। जोजेहि सरल सोगहि मगजाना ॥
सब कर लक्ष ध्येय है एकू। पारख स्वत' एकरस टेकू ॥
जस जस भर्म होय उर माही। तस तस पारख छेदत जाही ॥
जाते होय स्वतः ठहरावा। सार शब्द सोइ सन्त बतावा ॥
मोरे जिन यह अतिशय भाऊ। गुरु कबीर जो परख चलाऊ ॥
मो पारख जो गहइ गहावै। दृष्टि जौहरी सम सम भावै ॥
'तेहि साहेब के लागहु साथा। दुइ दुख मेटि के होउ सनाथा' ॥

दोहा—दरश किये बैना सुने, साथ रहे बनि दास।
बोधे भाँतिन भाँति प्रभु, परखदृष्टि दै खास ॥
प्रारब्धिक वर्ताव मग, शुद्ध अचार विचार।
जन हित वर्तत लोक मत, बन्धन सकल निवार ॥

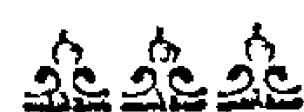
रघुबर गुरू बिशाल को, बिन सेवा बिन दाम।
जो धन दीन्ह्यो दास को, तेहि उपमा बेकाम ॥ ४ ॥

टीका—साधु गुण सम्पन्न सर्वोपर सद्गुरु 'रघुबर साहेब'[1] आप जो कृपया दर्शन देकर अविनाशी पारखबोध रूप अनत अटल सम्पत्ति दे गये, उसके बदले मे दास कुछ न कर सका। आपकी सेवा[2] पूजा

१ टिप्पणी—बिन सेवा बिन दाम का भाव यह है कि जैसे यहाँ किसी श्रेष्ठ पुरुष के सन्मुख तन मन धन सब कुछ अर्पण करते हुये भी कहा जाता है कि हमसे आपकी सेवा कुछ नही बन आई, या हम आपको क्या देने लायक है ? यह तुच्छ सेवा आपके सन्मुख कुछ नही। केवल दीन जानकर दया बना ये

भटकाकर स्वरूपस्थिति से आलीन अर्थात दूर कर दिये। इसमें तो यही बात घटित हो गई कि "अन्धे को अन्धा मिला राह बतावै कौन" ? हम भूले, हमारे पूर्व के सहायक सब भूले। भूलवाले भूले को भुलायेंगे या भूल से छुड़ायेंगे ? याते उन सर्व भूले षट दर्शनों से बढकर आप परीक्षक श्री सद्गुरु कबीर साहेब धन्य है ! आपके पारख शोध पर बलिहारी !! जो आपके पारख को सादर न अपनावे उसके समान मतिमन्द कौन होगा ? आपकी युक्ति भी विचित्र है। वह यह कि आप 'दूरि के दूरि रहि' अर्थात आप इस दास के माया-मोहादि वन्धनो से पृथक रहते हुये भी इस किंकर का कार्य सिद्ध कर दिये और भी आप कबीर साहेब कब हुये ? कितने काल आपको विदेह मुक्त हुये हो गया, फिर भी बीजक ग्रन्थ तथा पारखी सन्तों की परम्परा से पारखदृष्टि द्वारे पारख प्राप्त होकर आज हम अज्ञ जीवो का कार्य आपकी दया सहारे से बन गया, बन रहा है। सर्व जडाध्यासो को परख-परख के डालते रहना, मिल न जाना, आप पारख मे स्थित रहना ही अपना पूर्ण काज है सो काज आपकी दया से ही पूर्ण हुआ है ॥ ७ ॥

परम वैराग्यवान सर्वहितैषी सत्प्रिय शिक्षक पारख निष्ठ सद्गुरु
श्री विशाल साहेब कृत सातवाँ पाठ 'शब्द विभाग' सहित
सद्ग्रंथ मुक्तिद्वार सटीक सम्पूर्ण



मरग आसक्ति हानि-लाभ, दुख-सुख, मिलन-विछोह, शोक-मोह आदि सर्व द्वन्द्व नष्ट हो हो जाय और अपने आप चेतन जीव जो कि अनादि काल से मानन्दी के वश भ्रमते आया है, वह आज गुरुबोध द्वारा सर्व मानन्दी त्यागकर मुक्त हो जाय, सदा के लिये स्थित हो जाय। जड देश से सर्वथा भिन्न हो जाय। कितना महान फल ? जीव को मुक्ति पद मिल जाना और जगत सम्बन्ध की सर्व जरा-मृत्यु आवागमन उपाधियाँ नष्ट हो जाना इस फल की क्या सीमा कही जा सकती है ? अनन्त सर्वोपर शिरे लाभ ॥ ५ ॥

तन धरि त्यागा तनहिं को, मन से मन निर्मूल।
ऐसे संत कबीर गुरु, हरे जीव की शूल॥ ६॥

टीका—जो प्रारब्ध युक्त देह धारण करते हुये भी देहाध्यास बीज त्यागकर विदेह मुक्त हो गये, जो अपने प्रारब्ध जीवन में यथार्थ विचार-वैराग्य रूप शुद्ध मनोमय से सर्व कल्पित बन्धन रूप अशुद्ध मनोमय नष्ट करते हुये। पश्चात स्वरूप बल से शुद्ध मनोमय की भी अहन्ता त्यागकर सर्व मानन्दी रहित निराधार अमन हो रहे। ऐसे पारख प्रकाशी सद्गुरु कबीर साहेब ! आप अपनी कृपा से अधि-कारी जीवो मे पारख प्रकाश करके उनका जन्म मरण गर्भवास और तन मन धन सम्बन्धी सर्व उपाधि हरण कर लिये। धन्य है! आप के समान कौन होगा ? आप गुरु सन्त रूप ही है, शिरमौर रूप, धन्य ! धन्य !! ॥ ६ ॥

आप में आपहि लीन करि, और सबै आलीन।
आप दूरि के दूरि रहि, सिद्धि काज मम कीन॥ ७॥

टीका—शिष्य कहता है कि आप—जो मेरा शुद्ध चैतन्य स्वरूप है, तिसमे आप श्री गुरुदेव लीन—स्थित करा दिये और शेप जितने भ्रमिक मतवादी अपने चैतन्यरूप राम से पृथक देव-देवी, स्वर्ग-नर्क, विकासवाद जगत कर्त्ता आदि भरमभास दृढा के तिसी जाल में

गुरु स्मृति

गुरु कबीर जय कबीर, सन्त रूप जय कबीर ॥टेक॥
जग अनादि ज्ञान दान, जीव जड़ पृथक बिधान।
भासिक व भास छान, गुरु कबीर जय कबीर ॥ १ ॥
पच भोग पार सार, परख रूप निराधार।
हस सब करै बिचार, गुरु कबीर जय कबीर ॥ २ ॥
बिचित्र भिन्न भिन्न पंथ, बाद पुष्ट बहु जु ग्रन्थ।
जीव विना सर्व मथ, गुरु कबीर जय कबीर ॥ ३ ॥
पर्ख रूप जेते सन्त, स्थिति बिरागवन्त।
तव स्वरूप सत्य मत्र, गुरु कबीर जय कबीर ॥ ४ ॥
राग द्वेष सर्प मार, अन्ध मार्ग क्षार सार।
सावधान सत्सँभार, गुरु कबीर जय कबीर ॥ ५ ॥
सोई कबीर पर्ख शोध, बर्तमान गुरु ते बोध।
प्रेमदास तजि बिरोध, गुरु कबीर जय कबीर ॥ ६ ॥
साखी—"जो तू चाहे मूझको, छाँड़ि सकल की आश।
मुझ ही ऐसा होय रहो, सब सुख तेरे पास" ॥
गुरु कबीर जय कबीर, सत रूप जय कबीर ॥ ७ ॥

छन्द

जल तोय पानी सलिल जेहि तेहि नाम से जल पानकर।
होवै तृषा सो दूर शीतल नाम भेद न भेद बर ॥
अस सर्ब पारखनिष्ठ निर्णय ग्रन्थ मर्म बखानियाँ।
तेहि बोध रहनी जो गहै निश्चय परमपद ठानियाँ ॥

चौपाई

"कहहि कबीर अर्ध घट डोलै। पूरा होय बिचार ले बोलै" ॥
सोइ विचार अबिरोध प्रकाशू। जहँ तहँ गुरु मत दृष्टि उजासू ॥

फल छन्द

जेहि सत्य वोध प्रकाश हित ।
गुरुवर कवीर क सैन है ।।
जेहि परखवोध मे रमण हित ।
सव सन्त जन का वैन हे ।।
सो परखवोध विचार वहु विधि ।
युक्ति युक्त सदैन है ।।
हे मन मनन श्रद्धा सहित ।
हो थीर गुरुपद चैन है ।।

चौपाई

जो सिद्धान्त अखण्ड अदोपू ।
सो प्रतिपादक वचन जहोपू ।।
गुरुमुख बचन सोई हित कोपू ।
निर्णय सोइ वीजक सम पोपू ।।

त्रिभंगी छन्द

मन बर जोरा, नहिं झकझोरा, इन्द्री शोरा, जहाँ नही ।
रबि शशि तारा, और अँधारा, सबके पारा, जान सही ॥
अनल समीरा, जल भू भीरा, पंच न तीरा, दृश्य नही ।
मात्र परीक्षक, पारख स्वच्छक, सत्य स्व पक्षक, आप रही ॥ १ ॥
अस पद पायो, गुरु परखायो, शीश नवायो, शरन शरन ॥
जब लगि देहा, होय न खेहा, तब तक नेहा, भरन भरन ॥
बलि बलि जाऊँ, सतसग पाऊँ, गुरुहि मनाऊँ चरन चरन ॥
चित ठहराऊँ, भास नशाऊँ, शात रहाऊँ, तरन तरन ॥ २ ॥
दोहा—पारख कहि पारख सुने, पारख पद ठहराव ।
सकल कामना छोड़ि कै, गुरु मत प्रबल प्रभाव ॥
मुक्तिद्वार हृदि बिच बिधे, प्रफुलित सतमग चित्त ।
जन्म मरण दुख नाश फल, गुरु शरणागत नित्त ॥

सवैया

अंतर्चक्षु को बोध दियो गुरु नाश भई सवही बिपरीती ।
लक्ष्य भिद्यो फल प्राप्त भयो गुरु पारख से यम को अबजीती ॥
बोध रहस्य इशारक बैन मे बारम्बार बढै नव प्रीती ।
होय रहौ मुझ ही अस मंत्र जो सो गुरुदेव रुचै नित नीती ॥ १ ॥
और जिज्ञासु कहे बच नम्र हो कौन भला सब जाल प्रखावै ।
मात पिता सुत नारि जु औरहुं को जड़ चेतन भिन्न लखावै ॥
भोग बिषय सब रोग तजौ भल सयम श्रेष्ठ जो कौन बतावै ।
हो गुरु सत अधार तुम्ही इक प्रेम सदा तोहि शीश झुकावै ॥ २ ॥
आपको भूलि कृतघ्न रह्यो प्रभु मान गुमान जो शीश चढे थे ।
सो सब पारख बोध से ध्वंसि के राग रु द्वेष जो मोह गढे थे ॥
मोह निशा सव दूरि भई अब देखि पर्‌यो जो कबीर कहे थे ।
नाहि बिछेप रह्यो अब लेशहुं तैस गुणौ जस नाम सुने थे ॥ ३ ॥

आप कृपाघन कहेउ जो वानी । आप कृपा करि अर्थ वखानी ॥
सो सव अर्थ भाव करि पूरे । जेहि सदभाव तरत जन रूरे ॥
जन सुवोध हित सहि दुख भारी । तुम प्रभु मोहि जगावत हारी ॥
मै अस कुमति कुशील कुरीती । ध्यान न दियेउँ अहो विपरीती ॥
अव कछु यतन सफल तव भयऊ । मारि निशान लक्ष्यभिदि गयऊ ॥
तो अव जागि कहहुँ वहु भाँती । गुरुपद योग्य करहु दिन राती ॥
केते दिन सव अनरथ कियऊँ । अव सोचत मन लज्जित भयऊँ ॥
अजहुँ हृदय गत जो मन चोरा । कवहुँक करत विपम झकझोरा ॥
तो तव उक्ति उक्ति वल नीके । गहतहिं स्ववश शीघ्र मन ठीके ॥
वोधदृष्टि लखि मनहिं विजाती । परखत दृष्टि स्वत: ठहराती ॥
दोहा—गुरु सद्गुण में पूर हो, मैं दुर्गुण मे पूर ।
दोनो की भटभेर भई, जीति करौ वर शूर ॥
मोहि असमजस यहि अति भारी । साधु रहनि नित जीव सुधारी ॥
नि:स्वारथ प्रिय सव हितकारी । सकुच सजग समता गुणधारी ॥
ऐसेउ प्रभु कर पालि न वैना । काहे न कष्ट सहौ मन ऐना ॥
अव गुरुदेव मोहि निरधारा । अस गति करहु न पुनि ससारा ॥
सत भक्त सत्सग कि रीती । पारख थिति माँगौ सह प्रीती ॥
प्रति उपकार करहुं प्रभु कैसे । दीन हीन शिशु पालहु ऐसे ॥
निर आलस निष्कपट सदाही । सेवक होउँ सु साहिव पाही ॥
प्रवल विराग अंग सव पालौ । बाधक जानि शिघ्र तेहि टालौ ॥
रीझत तुम सद्गुण से देवा । सो सद्गुण सव धारहुँ मेवा ॥
याहि हेतु नित करव सु साधन । चूक न राखव तप आराधन ॥
नहि काहू से कुछ सम्वन्धा । केवल मानि मानि सुख वन्धा ॥
सो सव वन्ध निवारव नीके । गुरुवल स्ववल परख थिर जीके ॥
गुरुपद लक्ष्य परख निरधारा । देह अत करि अविचल प्यारा ॥
पूरण विनय राखि सति भाऊ । सफल जनम गुरु दया प्रभाऊ ॥

ज्ञान अनल उदगारि वेगि, संशय तृण जारे,
प्रभु सशय तृण जारे, बिश्व बिदित तप तेरो,
बिश्व विदित तप तेरो, जय जय मद क्षारे ॥३॥ जय०॥
जानि आपनो जीव सदा, नि:स्वारथ हितकारी,
प्रभु नि:स्वारथ हितकारी, उदित प्रचण्ड विरागी,
उदित प्रचण्ड बिरागी, सम्यक अविकारी ॥४॥ जय०॥
जस कछु गुरु कबीर, सतन की रहनी,
प्रभु सन्तन की रहनी, सो सब सनमुख दरशत,
सो सब सनमुख दरशत, गुरुवर की गहनी ॥५॥ जय०॥
सोइ कबीरपद शुद्ध, परख कोइ जानै अधिकारी,
प्रभु जानै अधिकारी, सोइ बिशाल गुरुदेवा,
सोइ बिशाल गुरुदेवा, जय जय बलिहारी ॥६॥ जय०॥
दोहा—धनि धनि धन्य कबीर गुरु, धन्य सतजन शोध ।
धनि धनि धन्य विशाल प्रभु, पारख कहि अबिरोध ॥

प्रार्थना

यह ज्ञान रहे यह ध्यान रहे। गुरुदेव से ये बरदान चहे ॥टेक॥
जग जन्म अनन्त बिते बिपुल। गुरु पारख दर्शन नाहि मिलन् ।
अव दर्श मिले सतमार्ग गहे। गुरुदेव से ये बरदान चहे ॥ १ ॥
जिमि द्रब्य व नारि व मान हित। नहि आलस रोष न मान मदम् ।
इमि सेव गुरूपद दास लहे। गुरुदेव से ये बरदान चहे ॥ २ ॥
ज्यो स्वाद रु कोमल रूप रुचं। ज्यो देह सुखो हित अग्र रहम् ।
नित त्यो गुरु मार्ग के यत्न महे। गुरुदेव से·· · · ॥ ३ ॥
द्वै बस्तु अनादि सदाहि रह। अध्यास तजे तब मुक्ति लहम् ॥
दृढ साहस हिम्मत नित्य रहे। गुरुदेव से ·· ·· · ·· ॥ ४ ॥
जगके सुख सम्पति भोगक्षण। सुखस्वर्गहु आदि बिनाश दिखम् ॥
अस जानि सदा उपराम भहे। गुरुदेव से ये · ·· ·· ॥ ५ ॥

आरती—१

जय जय जय गुरु ध्यानम् ॥ टेक ॥
नमो नमो सत्पथ प्रकाशक, पारख बोध बिकासम्,
प्रभु पारख बोध विकासम्, सो कबीर गुरु साहेब,
सो कबीर गुरु साहेब, धनि धनि दुख नाशम् ॥१॥ जय०
विविधि भाँति दै बोध गुरू, द्वै जाल विनाशम्,
प्रभु द्वै जाल विनाशम्, बोधक रक्षक पालक,
बोधक रक्षक पालक, गुरु सेवा सारम् ॥२॥ जय०
श्रद्धा सहित सुमिरि सब सत, जो निर्णय धारम्,
प्रभु जो निर्णय धारम्, बोध रहनि सत्संगति,
बोध रहनि सत्सगति, पारख अविकारम् ॥३॥ जय०
ये सब इष्ट समान ध्यान, प्रमुदित निशिवारम्,
प्रभु प्रमुदित निशिवारम्, मुक्तीद्वार सो प्रेमी,
मुक्तीद्वार सो प्रेमी, आरति सुखकारम् ॥४॥ जय०
दोहा—जो कबीर गुरु संतपद, सो गुरु बोधक रूप।
मो पद सत्य स्वरूप निज, अचल आरती भूप ॥
अजुलि धरि शिर नाय कै, त्रिविधि बन्दना लेहु।
जन्म मरण दुख गर्भ दुख, मन कृत रोग नशेहु ॥

आरती—२

जय गुरु बोधक देव ॥ टेक ॥
जय गुरु बोधक देव, यथा निर्णय करि दीन्हे,
प्रभु निर्णय करि दीन्हे, कहँ अस रक्षक पाओ,
कहँ अस रक्षक पाओं, अब गुरुवर चीन्हे ॥१॥ जय०
शुभ सन्तन की सेव, कह्यो सत्सग अधारा,
प्रभु सत्सग अधारा, सद्ग्रथन को चिंतन,
सद्ग्रथन को चिंतन, होवै जिव पारा ॥२॥ जय०

रखूँगा जो दृष्टी दिया है मुझे ॥
अधिक क्या कहूँ ये निवेदन सुनीजै,
न भूलौ न छूटौ हे साहेब मुझे ॥
मिला मुक्ति का द्वार पारख न छोड़ूँ,
यही लक्ष्य बीजक का निश्चय मुझे ॥ १ ॥

सभी सतजन से विनय हाथ जोड़ूँ,
अवशि भूल मुझ मे सुधारौ मुझे।
हूँ आलसी मद अतिशय अनारी,
गुरू की न सेवा भि सधती मुझे ॥
कैसे भला अर्थ मै जान पाता,
जो देते न गुरुदेव दृष्टी मुझे।
सदा एकरस बोध पुष्टी के हेतू,
मिलै सेव सत्सग दीजै मुझे ॥ २ ॥

दोहा—जो पारख सतमत गहे, कहे सुने ठहराय।
गुरु प्रदेश के बासि को, प्रेम सदा शिरनाय ॥ १ ॥

चहुँ जेहि युक्ती कथन हो, चहुँ जहँ जौन प्रबन्ध।
गुरु पारख सदेश प्रिय, हरण सकल भ्रम धन्ध ॥ २ ॥

गुरु कबीर अरु संतजन, कहि पुकार टकसार।
परख बोध सिद्धांत हित, करत रहौ निरुवार ॥ ३ ॥

पारख स्थिति मुख्य है, तेहि के साधक जौन।
प्रेम नेम तेहि हर्ष युत, ग्रहण हेतु नित गौन ॥ ४ ॥

मुक्तिद्वार की पत्रिका, दीन्ह दया करि देव।
अपने आप स्वदेश का, जान्यो सबही भेव ॥ ५ ॥

सुखासक्ति क्यो शेष रखि, जग बिदेश दुखपूर्ण।
मुक्तिद्वार अर्थाय नित, होइहै भव दुख चूर्ण ॥ ६ ॥

यह प्रेम विनीत पुकार कर। गुरु पारख सर्व विशेष पदम्।
नित भक्ति विराग स्वशात रहे। गुरुदेव से ये...... ..... ॥ ६ ॥

दोहा—ठहरौं गुरु तव ऐन मे, जहाँ कही यह देह।
चलत फिरत ठहरत कही, बाढै नित नव नेह ॥ १ ॥
सेवकाई मिलि जाय कछु, कहँ अस भाग्य हमार।
परम पारखी के निकट, सब सुख पावनहार ॥ २ ॥

गजल

गुरु गुरु गुरु गुरु जय जय जय ॥ टेक ॥

जड चेतन परखाने वाले, जड अध्यास नशाने वाले।
पतितन पार लगाने वाले, गुरु गुरु गुरु गुरु जय जय जय ॥ १ ॥
शील क्षमा समता को देकर, वर्तमान सन्तोष गह वर।
सुधा शान्त सरसाने वाले, गुरु गुरु गुरु गुरु जय जय जय ॥ २ ॥
पाँचो विष से भोग करावै, तन मन वचन से मोहि फँसावै।
सो सब मोह दुराने वाले, गुरु गुरु गुरु गुरु जय जय जय ॥ ३ ॥
गुण औ धर्म सहित जग सारा, है अनादि जग परखि दिखारा।
वचक गाँस छुडाने वाले, गुरु गुरु गुरु गुरु जय जय जय ॥ ४ ॥
काल कर्म गुण लत के फदा, मन चचल को रोकि सुछन्दा।
दृढ वैराग्य गहाने वाले, गुरु गुरु गुरु गुरु जय जय जय ॥ ५ ॥
प्रेमदास भयभीत दुखारी, आयो शरण सुपास विचारी।
खैचि के चरण लगाने वाले, गुरु गुरु गुरु गुरु जय जय जय ॥ ६ ॥

साखी—जड़ चेतन दो वस्तु है, धर्मी धर्म अनादि।
तदपि न सूझत गुरु बिना, ढूँढत जग को आदि ॥

अंतिम निवेदन

कहाँ अज्ञ अधा बना था दुखी था,
दिये बोध अंजन यथारथ मुझे ॥
वो औषध हुआ प्राण का दान जीवन,

हठता और प्रभुता से नाही सुहृद भाव से कहना है ।
पढो सुनो समझो फिर बन्धो ! लाभ जंचे सो करना है ॥ २ ॥
असद बाद के ग्रथ पत्रिका गूज रहे है अगणित से ।
आज सन्तजन करै न निर्णय कैसे सतमग दर्शन से ॥ ३ ॥
जानि बूझि के निज हानी कृत कार्य न कोई करते है ।
मात्र समझ का हेर फेर है शुद्ध समझ बिन गिरते है ॥ ४ ॥
देह भेद ब्यवहार पृथक कुछ ध्येय धारणा एक रहे ।
बोध लक्ष्य पारख मे समता पन्थी जानि अमान गहे ॥ ५ ॥
अपार तेज शुभ किरणो से ये सन्त सुदेश समन्वित है ।
असत मार्ग तम पता न अघ का मुक्तीद्वार प्रसगिक है ॥ ६ ॥
जन सेवा हित अक्षय कोष है नर नारी को मौलिक बोध ।
अन्तिम लक्ष हो पूरा सबका मिट जावै सब हृदय बिरोध ॥ ७ ॥
होवै अपने यतन भाग्य से भला कहत फिर क्या जाता ।
कोइ समाज या कोइ आश्रम हो सद्गुण बिन सुख ना पाता ॥ ८ ॥
मानव धर्म के उन्च पताका श्री कबीर के क्षेत्र गडे ।
सन्त बिशाल इस भारत थल मे दिव्य सदेशा रोप खडे ॥ ९ ॥
प्रेम सुजन बल पाय इसीसे प्रकृतिबाद तम लँघ जाओ ।
कथन बहुत क्या बुद्धिमान प्रति मनन कसौटि पै तुल जाओ ॥१०॥

प्रार्थना

अब हे मन ऐसो ज्ञान लहे, जो महान रहे जो महान रहे ।
अब श्री गुरु कर्णाधार मिले, जय ध्यान रहे जय ध्यान रहे ॥टेक॥
जेहि ढूढत बीते अनन्त समय, प्रिय प्रीतम हाथ न आय कदय ।
सद सोइ मिले निज ज्ञाता प्रभो, नित सत्य रहे नित सत्य रहे ॥१॥
सब सचित पाप समूह जले, जिमि सूर्य उदय अन्धेर टले ।
थे नैन मुँदे उघरे हिय के, निरुवार रहे निरुवार रहे ॥२॥

यह लाभ अनन्त को छोड़ि शठौ, भ्रमि नाच रु रंग में खोय समौ ।
यह धन्य घरी सतसग रुचै, चित चाव रहे चित चाव रहे ॥३॥
जग विद्या कला चतुराइ सबे, सबको फल आजु मिलाय अबै ।
सब सशय अंकुर नष्ट भये, अब पूर्ण रहे अब पूर्ण रहे ॥४॥
जन सेवा यही जो रहस्य भले, उपकार वही जो कुभाव जले ।
सद शिक्षा वही जो कि शात हृदय, सुविचार रहे सुविचार रहे ॥५॥
निज राम मिले सब काम पुरे, वहि धाम मिले जो कभी न दुरे ।
यहि बोध लहे जो पर्ख मता, बलिहार रहे बलिहार रहे ॥६॥
अब श्री गुरु के पद पकज मे, नित नव नव प्रेम हो अंकज में ।
मुक्तिद्वार सुधा गहि प्रेम सदा, नित मुक्त रहे नित मुक्त रहे ॥७॥

छंद

नहिं घबराऊँ, नहिं अलसाऊँ, नहिं मद लाऊँ, गुरुकृपा ।
शाति सदाई, भ्रान्ति भगाई, स्थिति लाई, गुरुकृपा ॥
रहनि सम्हारूँ, कलिमल जारूँ मन गति मारूँ गुरुकृपा ।
मुक्त हो जाऊँ, भव नहिं आऊँ, गुरुपद पाऊं गुरुकृपा ॥१॥
निज सद्रूपा, सबकर भूपा, आप अनूपा, गुरुकृपा ।
इमि बोध जमाई, सयम लाई, विजय सोपाई, गुरुकृपा ॥
सुनि निरधारा, मुक्ति को द्वारा, सतत विचारा, गुरुकृपा ।
जय अभिरामं, जय निष्कामं, जय निजठामं, गुरुकृपा ॥२॥

स्वरूप स्थिति ! स्थितिः !! स्थिति !!!

मात